UNIVERSITY OF DELHI



ARTS LIBRARY

D.U.P. 178 - 5-2002 20 000

ARTS LIBRARY

DELHI UNIVERSITY LIBRARY SYSTEM

book should be returned on or before the date last stamped
An overdue charge of Re 1 will be charged for each
ne book is kept overtime

ority F C Res 200 dated 27th August 1996

पितातुल्य चिरस्मरणीय

भाई

की

पुण्य-स्मृति में

प्रकाशकीय

हिन्दी में अबतक जितना आत्मकथा-साहित्य प्रकाशित हुआ है, उसमें इस पुस्तक का विशेष महत्व है। इसलिए नहीं कि यह एक विशेष व्यक्ति की जीवनी है, बल्कि इसलिए कि यह बड़ी ही हार्दिकता, निश्छलता तथा सचाई के साथ लिखी गई है। विद्वान लेखक ने कहीं भी कुछ छिपाने का प्रयत्न नहीं किया और अपने जीवन की दीर्घकालीन घटनाओं को ज्यों-का-त्यों चित्रित कर दिया। वास्तव मे यह कार्य बड़ा कठिन था, क्योंकि उनका जीवन सामान्य जीवन नहीं रहा, राष्ट्र की स्वतंत्रता के इतिहास का महत्वपूर्ण अंग रहा था। जितने उतार-चढ़ाव, जितनी युग-परिवर्तनकारी घटनाएं और जितने संकट उनके जीवन मे आये, उनका सही-सही और सजीव वर्णन करना निस्संदेह बड़ा मुश्किल काम था!

जिस प्रकार लेखक का जीवन सरल और सुलझा हुआ था, उसी प्रकार उनकी लेखन-शैली भी सुबोध तथा स्पष्ट थी। बड़ी-से-बड़ी बात और घटना को उन्होंने इतने आसान ढंग से इस पुस्तक में कहा कि पढ़कर आश्चर्य होता है। हिन्दी में इस प्रकार की सरल-सुबोध आत्मकथा शायद ही मिले!

यह पुस्तक आज से लगभग अठारह वर्ष पूर्व प्रकाशित हुई थी। इन वर्षों मे हमारे देश में बहुत-से परिवर्तन हुए है, लेकिन उनका हाल इसमें नहीं जोड़ा जा सका। हम चाहते थे कि इन वर्षों की घटनाओं को शामिल करके इस पुस्तक को अद्यतन कर दिया जाता, लेकिन लेखक की व्यस्तताओं तथा जिम्मेदारियों के कारण यह संभव न हो सका। फिर भी विशेष रूप से भूमिका लिखकर उन्होंने, संक्षेप में, मोटी-मोटी घटनाओं का उल्लेख कर दिया था।

इस पुस्तक का आरंभ जेल में हुआ था और आगे का अंश भी ऐसे स्थान पर लिखा गया, जहां संदर्भ पुस्तकों आदि की सुविधा नहीं थी। अतः

याददाश्त पर लिखी जाने के कारण इसके विवरणों और घटनाओं के क्रम में कुछ हेर-फेर हो जाना स्वाभाविक था। पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे इस अन्तर पर विशेष ध्यान न देकर इस पुस्तक को यह मानकर पढ़ें कि वे घटनाएं उनकी जीवनी के अंग के रूप में लिखी गई हैं।

हमें प्रसन्नता है कि पुस्तक का चौथा संस्करण पाठकों के हाथों में इतनी जल्दी पहुंच रहा है। विस्तार-भय के कारण पिछले संस्करण में इसके कुछ अंश कम कर दिये गए थे। उन्हें इस बार जोड़ दिया गया है।

इस बीच कई भारतीय भाषाओं में इस पुस्तक का अनुवाद और प्रकाशन हुआ है।

हम आशा करते हैं कि प्रत्येक देश-प्रेमी इस पुस्तक को पढ़ेगा और इसके प्रसार में योग देगा।

—मंत्री

प्राक्कथन

श्री राजेन्द्रबाबू की आत्मकथा को प्राक्कथन की आवश्यकता क्या? तिसपर मेरे जैसा आदमी, जिसने कभी विद्वत्ता का या साहित्यकार होने का दावा नहीं किया, प्राक्कथन क्या लिखे? सन १९१८ के खेड़ा-सत्याग्रह की लड़ाई के दिनों में हम पहली बार मिले थे। उसी समय से राजेन्द्रबाबू के प्रति मेरे दिल में जो आकर्षण उत्पन्न हुआ और हम दोनों के बीच प्रेम की जो गाठ बंधी, वह मुझे इस काम को सिर-माथे चढ़ाने के लिए विवश कर रही है।

श्री राजेन्द्रबाबू को देखते ही उनकी सरलता और नम्रता की जो छाप हमारे दिल पर पड़ती है, उसका प्रतिबिंब इस आत्मकथा के पन्ने-पन्ने में पाया जाता है।

प्रायः पिछले पच्चीस वर्षों से हमारा देश किस स्थिति से किस स्थिति को पहुच गया है, इसका सजीव और एक पवित्र देश-भक्त के हृदय के रंग में रंगा हुआ इतिहास पाठकों को इस आत्मकथा में मिलेगा।

इस आत्मकथा में हमें राजेन्द्रबाबू के बाल्यकाल के बिहार के सामाजिक रीति-रिवाजों का, संकुचित प्रथाओ से होनेवाली हानियों का, उस समय के ग्राम-जीवन का, धार्मिक व्रतों, उत्सवों और त्योहारों का, उस जमाने के बच्चों के जीवन का और उस समय की शिक्षा की स्थिति का हू-ब-हू चित्र देखने को मिलता है। उस चित्र में सादगी और खानदानियत के साथ विनोद और खेद उत्पन्न करनेवाली परिस्थितियों का मिश्रण हुआ है। साथ ही आजकल हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच भेद-भाव की जो खाई बढ़ी हुई नजर आती है, उसके अभाव का और दोनों जातियों के बीच शुद्ध स्नेह का जो चित्र इस आत्मकथा में है, वह आंखों को ठंडक पहुंचानेवाला होते हुए भी दुर्भाग्य से आज लुप्त होता जा रहा है।

सन १९०५ में बंग-भंग के जमाने से ही राजेन्द्रबाबू पर देशभक्ति का रंग चढ़ने लगा था। उसी समय से वह अपने जीवन में इस ओर क्रम-क्रम से बराबर आगे ही बढ़ते गए। सन १९१७ में चम्पारन की लड़ाई के समय उन्होंने गांधीजी के कदमों पर चलकर फकीरी धारण की। उसके बाद की उनकी आत्मकथा हमारे देश के पिछले तीस वर्षों के सार्वजनिक जीवन का इतिहास बन जाती है।

जो कोई इस पुस्तक को पढ़ेंगे, वे इससे जीवन को उन्नत बनाने की प्रेरणा प्राप्त करेंगे। कोई देश-प्रेमी इसे बिना पढ़े न रहे।

—वल्लभभाई पटेल

भूमिका

'आत्मकथा' का पहला संस्करण जनवरी १९४७ में प्रकाशित हुआ था। उस समय तक की घटनाओ का समावेश मूल पुस्तक तथा परिशिष्ट में हो गया। दूसरे संस्करण में उसके बाद की घटनाओं का समावेश होना अपेक्षित था। इस बीच कई महत्वपूर्ण घटनाएं देश मे हुई है, जिनके साथ मेरा घनिष्ट संबंध रहा है। उदाहरणार्थ, संविधान-सभा और उसका कार्य, भारत का स्वातन्त्र्य और अधिकार का हस्तातरण, खाद्य और कृषि-मंत्रि-पद पर नियुक्ति, महात्मा गांधीजी का निधन, 'गांधी स्मारक निधि' की स्थापना, काग्रेस-संगठन, संविधान-सभा द्वारा तात्कालिक राष्ट्रपति-पद पर नियुक्ति, १९५२ में संविधान के अनुसार आम चुनाव के बाद राष्ट्रपति का निर्वाचन, राष्ट्रपति की हैसियत से देश मे भ्रमण व देश-सेवा—ये ऐसे विषय है, जिनपर बहुत कुछ लिखा जा सकता है, किंतु इस काम को पूरा करने के लिए न तो मेरे पास समय है और न, जिस परिस्थिति मे मैं हूं, तदनुसार अनुकूलता। इसलिए मैंने इसमें कोई भी नई सामग्री नही जोड़ी है।

यहां इतना ही कहना काफी है कि ये वर्ष विश्व के इतिहास में विशेष महत्व रखते है। द्वितीय युद्ध की विभीषिका से मुक्त हो संसार के राष्ट्रों ने इस अवधि में पुनर्निर्माण की ओर कदम उठाया है। यही नही, युद्ध की ध्वंस-लीला को देखते हुए सभी देश यह महसूस करने लगे हैं कि स्थायी शांति के बिना मानव की प्रगति और सच्चा सुख मृगतृष्णा से बढ़कर और कुछ नहीं रह सकेगा। इसलिए इस काल को हम आत्मविश्लेषण और आत्मानुभूति का काल कह सकते हैं। इस अवधि के विशेष महत्व का दूसरा कारण यह है कि अपनी नवजात स्वाधीनता के बाद इन्ही दिनों भारत विश्व-शांति के लिए कुछ कर सका। इसके साथ ही शासन-सत्ता राष्ट्र के प्रतिनिधियों के

हाथ में आने के बाद से इस देश में एक नवयुग का उदय हुआ है और उसके निर्माण में हमारी सारी शक्ति लग रही है। अतः विगत दस वर्षों का काल हमारे देश के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। जब एक यंत्र अथवा मशीन चल पड़ती है तो वह अपनी ही शक्ति से कुछ समय तक चलती रहती है, किंतु एक अचल वस्तु को गति प्रदान करना आसान काम नहीं। इन वर्षों में भारत के नेताओं को कुछ इसी तरह का काम करना पड़ा है।

१९४७ से अबतक 'आत्मकथा' के लेखक के जीवन में क्या-क्या घटनाएं घटीं और उसकी जीवनधारा किस प्रकार प्रवाहित हुई, इसके संबंध में कुछ कहना अनुचित नही तो अनावश्यक जरूर जान पड़ता है। मेरे लिए यह प्रश्न ऐसा है, जो अत्यधिक निजी होते हुए भी सार्वजनिक है। मैं नहीं समझता कि इसके संबंध में कुछ कहने का मुझे अधिकार है। हमारे राष्ट्रीय जीवन में जो स्थान राष्ट्र ने मुझे दिया, उसके दायित्व को मैं कहां तक निभा सका, इसका निर्णय स्वयं राष्ट्र की जनता के हाथ है।

पहले संस्करण को साहित्य-जगत एवं जनता ने अपनाकर मेरा जो आदर किया और मान बढाया है, उसके लिए मैं सबका ऋणी हू। इसीके फलस्वरूप मेरी यह पुस्तक द्वितीय संस्करण के नये रूप में पाठकों के सामने प्रस्तुत है।

'सस्ता साहित्य मंडल' के प्रकाशन के अनुभव से इसे नई सजावट और बनावट मिली है और द्वितीय संस्करण के संस्कार से यह परिमार्जित और संशोधित भी हुई है। इसके लिए मैं 'मंडल' का आभारी हूं।

नई दिल्ली
२६ नवम्बर १९५६

—राजेन्द्रप्रसाद

विषय-सूची

१. मेरे पूर्वज १७
२. मेरे भाई बहन २०
३. प्रारंभिक शिक्षा २४
४. गांव का जीवन २८
५. अंगरेजी शिक्षा का श्रीगणेश ३६
६. विवाह ४१
७. हथुआ स्कूल में दाखिल : छपरा स्कूल में वापस ४७
८. कालेज में दाखिला ५८
९. परीक्षा के प्रति अश्रद्धा ६६
१०. बंग-भंग का आंदोलन ७०
११. समुद्र-यात्रा-संबंधी आंदोलन ७७
१२. छात्र-सम्मेलन और कांग्रेस ८४
१३. विदेश-यात्रा का निष्फल प्रयत्न ८९
१४. विद्यार्थी-जीवन की समाप्ति ९३
१५. वकालत की तैयारी ९७
१६. माननीय गोखले से मुलाकात १०४
१७. तिलक-दहेज की प्रथा १०८
१८. वकालत का आरम्भ : एम० एल० परीक्षा १११
१९. पटना आना और पटना-यूनिवर्सिटी बिल ११८
२०. हिंदी तथा सेवा-कार्य १२१
२१. गांधीजी से भेंट १२४
२२. चम्पारन १३१
२३. चम्पारन की विजय का व्यापक प्रभाव १४३
२४. १९१७ की कलकत्ता-कांग्रेस से दिल्ली-कांग्रेस तक १४८
२५. प्रिय मित्र की मृत्यु १५३
२६. प्रथम महायुद्ध के बाद १५६
२७. रौलट बिल-विरोधी आंदोलन १५८
२८. छह अप्रैल और जंगी कानून १६४
२९. पंजाब-हत्याकांड, खिलाफत और असहयोग १६७
३०. पटना-विश्वविद्यालय से असहयोग १७८
३१. बिहार-विद्यापीठ और सदाकत-आश्रम १८०
३२. पूर्णतः असहयोग में १८६
३३. 'देश' और 'सर्चलाइट' का प्रकाशन १९१
३४. आंदोलन का जोर और सरकारी दमन १९४
३५ एक मनोरंजक घटना १९९
३६. हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और खादी-प्रचार २०५
३७ मोपला-विद्रोह और हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न २१०
३८. अहिंसा का तत्व २१५
३९. छपरे की भयंकर बाढ़ २२२
४०. सत्याग्रह की तैयारी २२७
४१. गिरफ्तारियां और समझौते का प्रयत्न २३०
४२. अहमदाबाद-कांग्रेस और सत्याग्रह २३५
४३. सत्याग्रह स्थगित और गांधीजी की गिरफ्तारी २३९
४४. रचनात्मक कार्य का प्रारंभ और भद्र अवज्ञा कमिटी की नियुक्ति २४८

४५. बिहार में कांग्रेस को निमंत्रण और उसकी तैयारी २५३
४६. आसाम और संथाल परगना में दमन २५७
४७. कौंसिल-प्रवेश-संबंधी वाद-विवाद २६२
४८. गुरु का बाग और मुलतान २६४
४९. गया-कांग्रेस २७०
५०. स्वराज्य-पार्टी का जन्म २७७
५१. स्वराज्य-पार्टी के साथ समझौते का निष्फल प्रयत्न २८१
५२. झंडा-सत्याग्रह और गांधी-सेवा-संघ का जन्म २८६
५३. दिल्ली-कांग्रेस के विशेष अधिवेशन से कोकनाडा-कांग्रेस तक २८९
५४. हाईकोर्ट में बरमा का मुकदमा २९३
५५. बेतिया का मीना-बाजार २९५
५६. जुहू की बातचीत और उसके बाद २९९
५७. गांधीजी का इक्कीस दिन का उपवास व एकता-सम्मेलन ३०५
५८. पटना-म्युनिसिपैलिटी में ३१०
५९. बंगाल में दमन : स्वराज्य-पार्टी के साथ समझौता : बेलगांव-कांग्रेस ३२१
६०. बोधगया का मन्दिर ३२५
६१. बेलगांव के बाद की कुछ घटनाएं ३२८
६२. देशबन्धुदास का देहावसान ३३२
६३. सामाजिक सुधार ३३५
६४. बिहार में गांधीजी का दौरा और कौन्सिल का चुनाव ३३८
६५. स्वराज्य-पार्टी में मतभेद और कानपुर-कांग्रेस ३४२
६६. कांग्रेस में एक स्वतंत्र दल ३४७
६७. बिहार-विद्यापीठ और खादी-प्रचार-कार्य ३५५
६८. गोहाटी-कांग्रेस ३६६
६९. हिन्दू-मुस्लिम समस्याएं ३६९
७०. साइमन-कमीशन और मद्रास-कांग्रेस ३७३
७१. लंका की यात्रा ३७७
७२. मेरी यूरोप-यात्रा ३८०
७३. लंदन में मेरा कार्यक्रम और मुकदमे की पैरवी ३८७
७४. युद्ध-विरोधी सम्मेलन में ३९४
७५. रोमां रोलां से मुलाकात : युवक-सम्मेलन में ३९८
७६. जर्मनी और इटली की सैर तथा स्वदेश-वापसी ४०१
७७. साइमन-कमीशन का पुनरागमन और देश-भ्रमण ४०४
७८. कलकत्ता-कांग्रेस और सर्व-दल-सम्मेलन ४१०
७९. एक दुःखद घटना ४१५
८०. राजबंदियों का वर्गीकरण ४१९
८१. जमशेदपुर के मजदूरों की हड़ताल ४२३
८२. एक घरेलू घटना और सरकारी घोषणा का अर्थ ४२५
८३. बरमा-यात्रा ४२८
८४. लाहौर-कांग्रेस और मौलाना

मजहरुल हक की मृत्यु ४३२
८५. स्वतंत्रता-दिवस और नमक-सत्याग्रह ४३५
८६. गांधीजी की डाडी-यात्रा : बिहार में नेहरूजी का दौरा ४३९
८७. बिहार में नमक-सत्याग्रह ४४२
८८. नमक-सत्याग्रह के बाद का कार्यक्रम ४४७
८९. विदेशी वस्त्र-बहिष्कार और मद्य-निषेध ४५०
९०. बिहार में बीहपुर का सत्याग्रह ४५३
९१. मेरी पहली गिरफ्तारी ४६०
९२. हजारीबाग-जेल मे ४६५
९३. गोलमेज-कांफ्रेंस : मोतीलाल नेहरू की मृत्यु ४७०
९४. गांधी-अरविन-समझौता ४७५
९५. कराची-कांग्रेस ४७९
९६. तिरंगे झंडे का राष्ट्रीय रूप ४८३
९७. गोलमेज-सभा मे गांधीजी ४८६
९८. सरकार का भयंकर दमन-चक्र ४९२
९९. हरिजनों के लिए गांधीजी का अनशन ५००
१००. अछूतोद्धार का प्रयत्न ५०४
१०१. प्रयाग का एकता सम्मेलन ५१०
१०२. दुबारा गिरफ्तारी और बिहार की यूनाइटेड पार्टी ५१३
१०३. मेरी बहुत सख्त बीमारी ५१९
१०४. बिहार का प्रलयकर भूकम्प ५२३
१०५. बिहार-सेंट्रल-रिलीफ-कमिटी की सेवाएं ५२९
१०६. भूकम्प के बाद बाढ़ की समस्या ५३४
१०७. सत्याग्रह स्थगित ५४०
१०८. भाई की मृत्यु और ऋण-संकट ५४४
१०९. ऋण-मुक्ति और बम्बई-कांग्रेस ५५२
११०. बम्बई मे कांग्रेस की तैयारी और कार्यवाही ५५६
१११. केन्द्रीय असेम्बली का चुनाव-संघर्ष ५६४
११२. जिन्ना से समझौते की चर्चा : देश का दौरा ५६८
११३. कांग्रेस का इतिहास : देशी राज्यों की समस्या ५८२
११४. दक्षिण भारत का दौरा ५८९
११५. कांग्रेस की स्वर्ण-जयन्ती ५९५
११६. लखनऊ-कांग्रेस ५९८
११७ राष्ट्र-भाषा का प्रश्न ६०३
११८. प्रांतीय धारासभाओं का चुनाव ६१०
११९. कांग्रेस का पहला ग्रामीण अधिवेशन ६२०
१२० चुनाव का दौरा और नतीजा ६२३
१२१ कांग्रेसी मंत्रिमडलों का निर्माण ६३६
१२२. सीमाप्रांत की यात्रा ६४३
१२३. मंत्रिमंडल की कुछ वैधानिक कठिनाइयां ६४७
१२४ किसानों और जमींदारों का समझौता ६५०
१२५. कानपुर की मजदूर-कमिटी और मेरी सख्त बीमारी ६६०

१२६. मंत्रिमंडल का इस्तीफा और हरिपुरा-कांग्रेस ६६३
१२७. बिहार की मजदूर-कमिटी ६६५
१२८. बिहार में शिक्षा-सम्बन्धी कार्य और बाढ़-सम्मेलन ६७०
१२९. गांधी-सेवा-संघ ६७४
१३०. ग्राम-सुधार योजना और नासिक में निवास ६७६
१३१. मध्यप्रदेश के मंत्रिमंडल का दुःखद झगड़ा ६८१
१३२. आसाम-उड़ीसा के मंत्रि-मंडल की कुछ बातें ६८६
१३३. त्रिपुरी-कांग्रेस के पहले और बाद ६८९
१३४. एक अत्यन्त अप्रिय कार्य ७०१
१३५. उड़ीसा और मध्यप्रदेश के मंत्रिमंडल ७०६
१३६. रामगढ़-कांग्रेस के लिए स्थान का चुनाव ७१०
१३७. कांग्रेस और यूरोप का दूसरा महायुद्ध ७१३
१३८. रामगढ़-कांग्रेस का बरसाती अधिवेशन ७२४
१३९. बिहार की तीन महत्वपूर्ण कमिटियां ७३२
१४०. मुस्लिम लीग की कुछ बातें ७४०
१४१. वैयक्तिक सत्याग्रह : कारण और परिणाम ७४३
१४२. मेरी मैसूर यात्रा ७५१
१४३. बिहार-शरीफ का दंगा ७५४
१४४. ढाका जिले में दंगे की जांच ७६
१४५. क्रिप्स-योजना ७६
१४६. क्रिप्स-योजना की नामंजूरी के बाद ७६८
१४७. युद्ध-काल में देश की स्थिति ७७
१४८. १९४२ की क्रांति के पूर्व ७७
१४९. १९४२ के तूफानी दिन ७८
१५०. १९४२ के जेल-जीवन की कुछ बातें ७८७
१५१. १९४२ की उत्तेजनाओं के परिणाम ७९५
१५२. बंगाल का अकाल और भारत की अखंडता ८०१
१५३. जेल में ग्रंथ-लेखन का काम ८०४
१५४. मेरी रिहाई और कुछ दुःखद मौतें ८१०
१५५ अस्थायी केन्द्रीय सरकार की स्थापना से पूर्व ८१६
१५६. पीड़ित राजबंदियों के लिए अर्थ-संग्रह ८२
१५७. असेम्बली का चुनाव और कुछ पार्टियों के कारनामे ८२
१५८. गो-सेवा-सम्बन्धी कार्य ८३६
१५९. भारतीय इतिहास-परिषद ८३८
१६०. १९४६ की घोषणा और सरकारी योजना ८४०
१६१. कलकत्ते का हत्याकांड ८४९
१६२. अस्थायी सरकार के पहले ८५२
— परिशिष्ट ८५

आत्मकथा



: १ :

मेरे पूर्वज

संयुक्त प्रान्त मे कोई जगह अमोढा नाम की है। सुनते हैं कि वहां कायस्थो की अच्छी बस्ती है। बहुत दिन पहले वहां से एक परिवार निकलकर पूरब चला और बलिया मे जाकर बसा। लम्बे अरसे तक बलिया मे रहने के बाद उस परिवार की एक शाखा उत्तर की ओर गई और आजकल के जिला सारन (बिहार) के जीरादेई गाव मे जाकर रहने लगी। दूसरी शाखा गया मे जाकर बस गई। जीरादेई-शाखा के कुछ लोग भी थोड़ी ही दूर पर एक दूसरे गाव मे जाकर बस गये। जीरादेईवाला परिवार ही मेरे पूर्वजो का परिवार है। शायद जीरादेई मे आनेवाले मेरे पूर्वज मुझसे सातवी या आठवी पीढी मे थे। जो लोग जीरादेई मे आये थे, वे गरीब थे और रोजगार की खोज मे ही इधर आ गये थे। उस गांव मे कोई शिक्षित नही था और उन दिनो भी कायस्थ तो शिक्षित हुआ ही करते थे, इसलिए गांव के लोगो ने उनको वहा रख लिया। प्राय. उसी समय मे उन लोगो का सम्बन्ध हथुआ-राज मे हो गया, जहा कोई लिखने-पढने की छोटी-सी नौकरी उनमे से किसी-को मिल गई। हथुआ उन दिनो इतना बडा राज नही था और न उसकी इतनी आमदनी ही थी। उसके रईस का मुख्य स्थान भी वह बाद मे बना, उन दिनो तो कही और ही था।

हथुआ-राज के साथ मेरे पूर्वजो का सम्बन्ध कई पीढ़ियो तक चलता रहा। मालूम नही कि वे लोग किस पद पर थे, पर जहातक खबर है, वह कोई ऊचा पद नही था। गाव के घर भी फूस के छप्पर के ही थे। जीरादेई मे वे लोग एक दूसरे कायस्थ जमीदार की, जिनकी बड़ी जमीदारी थी, रैयत थे और हम लोग आजतक कभी भी अपने गाव की जमीदारी में हिस्सेदार नही हुए, यद्यपि पीछे हमारे पूर्वज और कई गावो के जमींदार हो गये।

मेरे दादा दो भाई थे। उनका नाम था मिश्रीलाल। उनके बड़े भाई थे चौधुरलाल। मिश्रीलाल का देहान्त बहुत छोटी उम्र मे ही हो गया। उनके केवल एक लड़के थे महादेवसहाय, जो मेरे पिता थे। चौधुरलालजी के भी एक पुत्र थे जगदेवसहाय। मिश्रीलाल की आकस्मिक मृत्यु कम उम्र में हो जाने के कारण मेरे पिता के साथ चौधुरलालजी का बड़ा स्नेह-प्रेम था।

जगदेवसहाय और महादेवसहाय दोनों को उन्होंने अपने पुत्र के समान ही पाला-पोसा और तैयार किया। जगदेवसहाय बड़े थे और उनके भी कोई पुत्र नहीं था, केवल एक लड़की हुई जो जाती रही। महादेवसहायजी के तीन लड़कियां और दो लड़के हुए। एक लड़की तो बचपन मे ही गुजर गई। दो की शादी हुई, जिनमें बडी भगवतीदेवी थोड़े ही दिनों के बाद विधवा हो गईं और उस समय से आज तक मेरे ही घर मे प्रायः अपनी जिन्दगी काट रही है। दूसरी बहन भी, जो दोनो भाइयो से बड़ी थी, बिना किसी सन्तान के चल बसी। मेरे बड़े भाई बाबू महेन्द्रप्रसाद हुए और सबसे छोटा लडका घर में मै हुआ।

हथुआ-राज मे चौधुरलालजी ने बड़ी ख्याति पाई। वहा वह दीवान के पद पर पहुच गये और प्रायः पच्चीस-तीस वर्षो तक दीवान रहे। उन दिनो महाराज छत्रधारी साही गद्दी पर थे। उन्होंने अपने लड़के को राज्य न देकर पोते राजेन्द्रप्रताप साही को वसीयतनामा के जरिये राज्य दे दिया। उनका चौधुरलाल पर बड़ा विश्वास था और छोटे पोते की रक्षा का भार मरते समय उनपर डाल दिया। महाराज की मृत्यु के बाद छोटे कुमार पर बड़ी आफते आई। कुटुम्ब के लोगो ने राज पर दावा करके मुकदमा कर दिया जो प्रीवी-कौसिल तक गया। प्रीवी-कौसिल में फैसला हुआ कि हथुआ-राज अविभाज्य Impartible है और अविभाज्य राज्य को वसीयत करने का अधिकार राजा को है, इसलिए राजेन्द्रप्रताप साही राज्याधिकारी हैं। इस मुकदमे के दौरान मे राजेन्द्रप्रताप साही की जिन्दगी पर भी आफत थी और उनकी रक्षा करना कोई सहज काम न था। हमने सुना है कि उनकी रक्षा के लिए चौधुरलालजी उनकी चारपाई के पास ही स्वयं सोया करते थे और जो कुछ उनको खाने को दिया जाता था, वह पहले, जहर के भय से, स्वयं खा लिया करते थे।

चौधुरलालजी ने राजा की केवल रक्षा ही नही की, उन्होंने राज के इन्तजाम मे भी काफी तरक्की की। गैर-आबाद जमीन को आबाद कराकर और दूसरे प्रकार की भी उन्नति करके उन्होंने राज की आमदनी प्रायः तिगुनी कर दी। महाराज राजेन्द्रप्रताप साही इन सब कारणों से उनको बहुत मानते थे और उनकी बड़ी प्रतिष्ठा किया करते थे। सुना है कि उनके सामने महाराज कभी तम्बाकू नही पीते थे और जब सुनते कि वह आ रहे हैं तब हुक्का हटवा दिया करते थे।

उन दिनों कर्मचारियों का वेतन बहुत कम हुआ करता था। चौधुरलाल को शायद दीवान होने के जमाने में भी ५०) या १००) मासिक मिला करता था। साथही, जितने लोग वहां डेरे पर रहते थे सबके लिए

सीधा—चावल, दाल, घी इत्यादि—राजभंडार मे रोजाना आया करता था। राज्य के कई गाव भी, जिनमे जीरात की ज़मीन थी, उनको ठेके मे राजा ने दे रखा था। ज़ीरात की जमीन मे धान की खेती होती थी और उससे काफी आमदनी हो जाया करती थी।

चौधुरलालजी बड़े मुलज़िम आदमी थ। राज की आमदनी उन्होंने दुगुनी-निगुनी बढ़ा दी, तो भी वहा की रियाया उनसे प्रेम रखती और उन-पर विश्वास करती, जिसका सबूत मुझे अपने अनुभव मे भी मिला। जब मैं असहयोग के दिनो मे उस इलाके मे दौरा करने लगा, मैं जहा जाता वहा बूढे लोग मेरा स्वागत विशेष करके इस कारण भी करते कि मै चौधुरलाल-जी का पोता हूं। चौधुरलालजी ने अपने कुटुम्ब की भी उन्नति की। उन्होंने सात-आठ हजार वार्षिक आमदनी की जमींदारी अपनी भी खरीदी। यह जमींदारी विशेष करके चावल बेच करके ही ली गई थी। कई गाव तो हमारी दोनो दादियो के नाम ही से लिये गए, क्योंकि चावल तो घर मे वे ही तैयार करती, बेचती और रुपये देती।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, चौधुरलालजी ने अपने पुत्र जगदेवसहाय और भतीजे महादेवसहाय की शिक्षा का प्रबन्ध किया। अभी अगरेजी का चलन नहीं था। फारसी की ही शिक्षा दोनो को मिली। शायद एक बार छपरा भेजकर अगरेजी पढाने का विचार भी हुआ और मेरे चाचा ने दो-एक किताबें पढी भी, मगर महाराज ने इसमे प्रोत्साहन नही दिया और दोनो भाइयो को फारसी ही पढकर सब्र करना पडा। फारसी भी दोनों भाई उन्हीं मौलवीसाहब से पढते रहे, जो महाराज के पुत्र को—जो पीछे महाराज कृष्णप्रताप साही हुए—पढाते थे।

महाराज राजेन्द्रप्रताप साही की मृत्यु के बाद राज का इन्तजाम कुछ दिनो के लिए कोर्ट आफ वार्ड्स के हाथ मे गया। चौधुरलालजी अंगरेजी तो जानते न थे, इसलिए दीवान रह नही सकते थे और उस पद पर पचीस-तीस बरसों तक रहकर उससे छोटा कोई पद स्वीकार करना उन्होंने अपनी शान के खिलाफ समझा। तबसे हम लोगो का कई पीढ़ियो का सम्बन्ध हथुआ-राज से छूट गया। यह मेरे जन्म के पहले की बात है।

हथुआ से चले आने के बाद चौधुरलालजी जीरादेई मे रहने लगे और कुछ दिनो के बाद, थोड़े दिनों के लिए, गोरखपुर मे तमुकही-राज के दीवान हो गये। पर उस समय उनकी अवस्था कुछ अधिक हो गई थी। वहां का जलवायु अनुकूल न होने के कारण वह शीघ्र ही वहां से जवाब देकर चले आये। उनके अन्तिम दिन जीरादेई मे ही बीते। मुझे तमुकही की बातें कुछ-कुछ याद आती हैं। मैं उन दिनों बहुत छोटा था।

: २ :

मेरे भाई-बहन

ऊपर कह आया हूं कि मेरे पिता की पाच सन्तानों मे सबसे बडी भगवती-देवी हैं। उनका विवाह मेरे जन्म के पहले ही एक बडे धनी कायस्थ-परिवार मे हुआ। बचपन में, जब मै शायद चार-पाच बरस का था, वहा गया था और उन लोगो की शान-शौकत देखी थी। मेरे बहनोई छ भाई थे। सबके लिए अलग-अलग नौकर और सिपाही थे। कई घोड़े-हाथी थे और कई किते की बडी हवेली थी। न मालूम किस तरह से चार-पाच वर्षों के भीतर देखते-ही-देखते सारी जमीदारी, जिसकी आमदनी, सुनते हैं, सत्तर-पचहत्तर हजार सलाना की थी, बिक गई। मेरे बहनोई की मृत्यु भी उन्ही दिनो मेरे ही घर पर जीरादेई मे हो गई। मैं छोटा था, फिर भी उस समय का कोलाहल और दादा, चाचा, पिताजी और घर की स्त्रियो की करुण दशा का चित्र अभी तक नही भूलता। मैंने अपने होश मे मृत्यु का दृश्य पहले-पहल वही देखा।

उनसे छोटी बहन की शादी उसके बाद हुई। भाई साहब की भी शादी हुई। इन दोनो शादियो को भी मैंने देखा। भाई की शादी में मैं बरात गया था। उस समय शायद चार बरस का था और वहा जाकर मा के लिए रोने भी लगा था। उस समय तक शायद ही मा से अलग होकर एक-दो दिनो के लिए कही गया होऊं। भाई साहब मुझसे आठ बरस बड़े थे। इस-लिए मुझे बहुत बातो की सुविधा हुई। जो उनकी शिक्षा का क्रम हुआ वही मेरे लिए भी स्वभावत. हो गया और मैं उनके पीछे-पीछे बिना किसी विशेष कठिनाई के चलता गया।

घर मे चौधुरलालजी रहते थे। मुझे अच्छी तरह याद है कि मैं और मेरे चचा की लड़की, जो मुझसे पाच-छः महीने छोटी थी, उनके बदन पर लोटपोट करके खेला करते और वह बहुत प्यार से हम दोनों को खेलाया करते। मेरे चचासाहब जमीदारी का इन्तजाम करते और अक्सर छपरे आया-जाया करते। वहां जमींदारी के मुकदमे, जो हमेशा कुछ-न-कुछ लगे ही रहते हैं, हुआ करते थे। मेरे भाईसाहब छपरे अंगरेजी पढ़ने के लिए भेज दिये गये थे। जब-तब उनको देखने के लिए भी वही जाया करते। जब

कभी उनके छपरे से आने की खबर मिलती, हम बच्चे घर से कुछ दूर जाकर ही उनका स्वागत करते। स्वागत का अर्थ था उनसे मिठाई, फल इत्यादि की माग पेश करना और जो कुछ मिल जाय उसे ले उनसे पहले ही दौड़कर घर पहुंच मां को दिखलाना।

मेरे पिताजी घर पर रहा करते थे। जमीदारी के इन्तजाम से उनका कम सरोकार रहता। उनको बाग लगाने का शौक था। वह बहुत समय बाग-बगीचे लगाने मे ही बिताते। आज भी उनके लगाये आम के दो बड़े-बड़े बगीचे हम लोगो के कब्जे में है, जिनमे अच्छे अच्छे आम पैदा होते है। वह फारसी के अच्छे विद्वान थे। कुछ-कुछ सस्कृत भी जानते थे। आयुर्वेद और चिव मे उनकी दिलचस्पी थी। इन विषयो की पुस्तको का संग्रह भी कर रखा था और उसका अध्ययन भी किया करते थे। वह इस तरह बिना बाजाब्ता शिक्षा पाये चतुर वैद्य या हकीम हो गये थे। उनके पास तरह-तरह के रोगी आया करते। जो दवा खरीद सकते उनको नुस्खे लिखकर देते। गरीबो को अपने पास से दवा भी देते। उनके साथ एक नौकर हमेशा दवा तैयार करने के लिए ही रहता। कभी किसीकी नाड़ी नही देखते थे और न किसीके घर जाकर रोगी को ही देखते थे, हालत सुनकर ही दवा देते और बहुतेरो को आराम भी हो जाता। इससे उनका यश फैला था। वह शरीर से भी पुष्ट थे। बचपन से अखाडे मे कुछ कसरत उन्होंने की थी। मुझे याद है, जब मै स्कूल या कालेज मे पढ़ता था और छुट्टियो में घर आया करता था, तो स्वय वह मुगदर भाजना सिखाते थे और साथ-साथ मुगदर भाजकर तरह-तरह के खेल दिखलाते थे। घोडे की सवारी अच्छी करते थे और हमेशा एक अच्छा घोडा रक्खा करते थे। बचपन मे मुझे और भाईसाहब को घोडे की सवारी करना भी उन्होंने सिखाया था। छोटी ही उम्र मे हम दोनों भाई दो घोडो पर सवार होकर, कभी-कभी छुट्टियो मे जीरादेई आने पर, घूमने-फिरने जाया करते।

लड़कपन मे हम लोग देहाती खेल भी खेला करते। खास करके वहां का प्रचलित खेल कबड्डी और चिक्का तो हम खूब खेलते। प्राय: कोई दिन बिना खेले नही बीतता होगा। यह क्रम उस समय तक जारी रहा जबतक कालेज की पढ़ाई खतम नही हुई। जब कभी छुट्टियो मे हम जीरादेई आते थे, खेल जरूर खेलते जिसमे भाई भी शरीक होते। एक खेल और गांवो में प्रचलित था। उसे 'दोल्हापाती' कहते है। उसमे पेड़ो पर चढना होता है। मै पेड़ों पर चढने से डरता था, इसलिए उस खेल मे कभी शरीक नही हुआ। इसी प्रकार गाव मे बहती नदी के अभाव मे तैरना भी नही सीख सका।

माता और दादी मुझे बहुत प्यार करती। बचपन से ही मेरी आदत

थी कि मैं संध्या को बहुत जल्द सो जाता था और उधर कुछ रात रहते ही, बहुत सवेरे ही, जाग जाता था। घर पक्का था, पर बना था पुराने तरीके पर। बीच मे आंगन और चारों ओर ओसारे और कमरे। कमरों में एक दरवाजा और छप्पर के नजदीक हर कमरे मे एक या दो छोटे-छोटे रोशनदान। जाड़ो मे, खास करके लम्बी रात होने के कारण, रात रहते ही नीद टूट जाती और उसी समय से मा को भी मैं सोने नही देता। रजाई के भीतर-ही-भीतर उनको जगाता। वह जागकर परानी (प्रभाती) भजन सुनाती। कभी-कभी रामायण इत्यादि की कथाएं भी सुनाती। उन भजनो और कथाओं का असर मेरे दिल पर बहुत पड़ता। इसी प्रकार जबतक रोशनदान मे बाहर की रोशनी नजर नही आती, पडा रहता और मां से भजन गवाता रहता या कथा कहलाता रहता। जब रोशनी खब आ जाती तब घर से बाहर निकलता। सध्या को इतना पहले सो जाता कि शायद ही कभी रात का खाना जागते-जागते खाया हो। उन दिनो रात का खाना भी बहुत देर के बाद तैयार होता था। बच्चे क्या, बूढे लोग भी एक नींद सोकर उठने के बाद ही खाना खाते। शायद ही किसी रात को बारह-एक बज के पहले खाना-पीना होता हो। पहले घर के पुरुष खाते, तब स्त्रिया खाती, और तब नौकर खाते। गरमी के मौसम मे तो नौकरों के खाते-खाते कभी-कभी सवेरा तक हो जाता। इसलिए अगर मैं शाम को बिना खाये सो जाता तो मैं अपना कोई कसूर मानने को तैयार नही हूं।

घर मे रसोई बनाने के लिए एक कायस्थ थे। इसलिए रसोई का भार मेरी चाची या मा पर नही था। तो भी उन्हें तरकारी इत्यादि तो कुछ बनाना ही पडता। सध्या होते ही मैं मां को पकड़ लेता और साथ सोने के लिए रोने लगता। अगर वह किसी काम में लगी रहती तो उसे छोड मेरे साथ उनको सोना पडता। पर मैं समझता हू कि यह क्रिया कुछ देर तक नही होती; क्योकि मैं बहुत जल्द सो जाता और जब एक बार सो गया तो वह फिर उठकर चली जाती और काम करती। मुझे स्मरण है कि हमेशा रात को मुझे जगाकर खिलाया जाता। आंखें खुलती नही, पर बदन हिला-कर मां मैना-सुग्गा के नाम और किस्से कहकर मुंह तो खुलवा देती और उसमे भोजन दे देती। एक दाई थी, जिसको हम 'काकी' कहा करते थे। वह इस प्रकार खिलाने मे बडी पटु थी। जब किसी दूसरे की हजार कोशिश पर भी आंख और मुंह बन्द ही रहते, तो भी वह किसी-न-किसी उपाय से मुंह तो जरूर खुलवा देती और भात खिला देती। सांझ के बाद ही सोने और भोर होते ही जागने की आदत मुझमें बराबर बनी रही। यहांतक कि जब मैं छपरे और पटने पढ़ने के लिए गया, तब भी रात होते ही बहुत

जल्द सो जाता और पाचवें क्लास मे पहुंचने के समय तक शायद ही कभी रात मे अपने हाथो खाया हो। एक ब्राह्मण रसोईदार थे, जो रात को मुझे गोद में बिठाकर, उसी पुरानी रीति मे, आखे बन्द रहने पर भी, खुले मुह मे भात के गोले रख दिया करते, जिनको मै निगल लिया करता था।

जब मै वकालत करता था तबतक साझ ही सो जाने की आदत जारी रही। सध्या समय मवक्किलो का कागज लेकर देखने बैठता और उनके सामने ही, साढ़े सात-आठ बजे, झुकने लगता। तब काम बन्द कर देता। १९१४–१५ मे, जब मैं एम० एल० परीक्षा के लिए तैयारी कर रहा था, एक घटना घटी। उन दिनो कलकत्ता हाईकोर्ट मे मैं प्रैक्टिस करता था। लॉ-कालेज मे प्रोफेसरी भी मिल गई थी। कुछ मुकदमे भी हाथ मे रहा करते थे। इसलिए सवेरे का समय मुकदमों की बहस की तैयारी मे और लॉ-कालेज की पढ़ाई की तैयारी मे लग जाता। दिन का समय कचहरी मे कट जाता। केवल रात का ही समय परीक्षा की तैयारी के लिए मिलता। इसलिए सध्या को ही पुस्तक पढना और जब पुस्तक हाथ मे आती, साथ-साथ नीद भी आ ही जाती। एक दिन सोचा कि इस प्रकार से तो परीक्षा की तैयारी मे सफलता नही मिलेगी, किसी तरह सध्या की नीद को रोकना चाहिए और कम-से-कम नौ बजे रात तक तो पढ़ना ही चाहिए। जब नीद आने लगी तो किताब हाथ मे लेकर खड़ा हो गया। उसपर भी जब नीद का हमला कम न हुआ, तो कमरे के अन्दर टहल-टहलकर पढने लगा। मालूम नही कितनी देर तक यह क्रम चला। एकबारगी हाथ से किताब नीचे गिरी और मैं भी साथ-ही-साथ धडाम से कमरे के फर्श पर चित्त हो रहा। न मालूम सिर क्यों नही फूटा। कुछ तो चोट जरूर आई। तबसे उस प्रयोग को खतरनाक समझकर छोड दिया और जो कुछ समय बैठे-बैठे निकाल सकता, उतना ही पढकर सब्र करता।

: ३ :

प्रारम्भिक शिक्षा

पांचवें या छठे बरस में मेरा अक्षरारम्भ कराया गया था। उस समय मेरे भाई अगरेजी पढ़ने के लिए छपरे भेजे जा चुके थे। उस समय की प्रचलित प्रथा के अनुसार अक्षरारम्भ मौलवीसाहब ने कराया था। जिस दिन अक्षरारम्भ हुआ, मौलवीसाहब आये, बिसमिल्लाह के साथ अक्षरारम्भ हुआ, शीरनी बाटी गई और उनको रुपये भी दिये गए। हम तीन विद्यार्थी उनके सपुर्द किये गए—एक मै और दूसरे दो अपने कुटुम्ब के ही चचेरे भाई, जिनमे एक यमुनाप्रसादजी सबसे बडे और मुझसे दो बरस बडे हैं, तीसरे अब नही रहे, वह भी मुझसे बडे थे। यमुनाभाई ही हम सबके 'लीडर' थे और तमाम खेल और लडकपन की चुल्लेपनी मे आगे रहा करते थे। उनके एक चचा, जो मेरे भी चचा होते थे, बड़े मजाक-पसन्द थे। वह मेरे पिताजी से छोटे होते थे, पर पिताजी के कई गुण उन्होने भी सीखे थे। वह भी घोडे की अच्छी सवारी करते, दवा करते और बाटते और बन्दूक चलाना, गुलेल चलाना खूब जानते थे। फारसी भी पढे थे और शतरंज भी खूब खेलते थे। पर इन सब चीजो मे वह मेरे पिताजी का लोहा मान लेते थे। बड़े ही हँसमुख और पुरमजाक आदमी थे।

मौलवीसाहब, जो हम लोगो को पढाने आये, विचित्र आदमी थे। उनका बहुत बातों पर दावा था। बलदेव चचा के मजाक के लिए वह एक बहुत ही उपयोगी साधन बन गये। चचा तरह-तरह की बाते मौलवीसाहब को सुनाते और उनको उत्साह देकर उनसे कहला लेते कि वह भी, चाहे वह कोई बात या काम क्यो न हो, जानते या कर सकते थे। इस प्रकार मौलवीसाहब का दावा था कि वह शतरंज खेलना जानते थे। बलदेव चचा शतरंज खेलाते, पर बावजूद दावे के मौलवीसाहब कभी जीतते नही। हम छोटे-छोटे बच्चे इन सारे मजाको को भय और कौतूहल से देखते। हँसने का मौका आ जाय तो भी हँसना मुश्किल हो जाता। मजाक की बात दादाजी—चौधुरलालजी—तक पहुंच गई। वह भी कभी-कभी उसमें शरीक हो जाते।

एक दिन बलदेव चचा ने मौलवीसाहब से कहा कि बाग में हनुमान

आ गये है, उनको किसी तरह भगाना चाहिए, वे गुलेल से मारकर भगाये जा सकते है। इतना कहना था कि मौलवीसाहब ने दावा पेश कर दिया कि वह भी गुलेल चलाना खूब जानते हैं। बलदेव चचा तो खूब समझ गये थे कि वह कुछ नही जानते, पर मजाक उनको मंजूर था। वह उनको साथ लेकर बगीचे मे गये। गुलेल और गोली उनके सुपुर्द कर कहा कि खूब खीचकर एक बन्दर को मारिये। मौलवीसाहब ने खूब खीचकर जो गोली छोडी और देखना चाहा कि बन्दर को कैसी चोट लगती है कि इतने में उनके बाये हाथ के अगूठे से तरतर खून टपकने लगा और चोट के दर्द से सहमकर बैठ गये। गोली बन्दर को लगने के बदले मौलवीसाहब के अपने अगूठे पर ही जा बैठी थी।

एक दूसरे दिन का जिक्र है कि शाम को सब लोग, जिनमे हमारे दादा-साहब भी शरीक थे, टहलने निकले। मौलवीसाहब और बलदेव चचा भी थे। तरह-तरह की बाते हो रही थी। इतने मे एक साड देखने मे आया। लोगो ने कहा कि साड लोगो को मारता है। बलदेव चचा के इशारे पर मौलवीसाहब इससे कब डरनेवाले थे, बेखौफ आगे बढे कि इतने मे साड ने उनको दे पटका। इस प्रकार के मजाक बराबर ही हुआ करते।

एक दिन बदलदेव चचा ने मौलवीसाहब को बन्दूक चलाने की शिक्षा दी। मौलवीसाहब किसी चीज को न जानना कबूल करना अपनी शान के खिलाफ समझते थे और उन्होंने साफ कह दिया कि वह अच्छा निशाना लगा सकते है। उन्हें साथ लेकर बलदेव चचा बन्दूक के साथ गये। मौलवी-साहब के दो लडके थे, जो हम लोगो के साथ ही पढा करते थे। हम सब और वह दोनो लडके भी साथ हो लिये। कुछ दूर पर एक ऊचे दरख्त पर एक गीध बैठा नजर आया। बलदेव चचा ने उसीपर निशाना लगाने को कहा। वह काफी ऊचाई पर था और प्रायः खडी बन्दूक करके ही निशाना लग सकता था। मौलवीसाहब को जो बन्दूक दी गई थी, वह पुराने किस्म की थी, जिसमे बारूद ऊपर से भरी जाती थी और वजनी भी थी। मौलवी-साहब ने शायद कभी पहले बन्दूक नही चलाई थी। उन्होंने प्रायः खड़ी बन्दूक अपने सीने पर रखकर निशाना लगाया। उधर बन्दूक का घोड़ा चटका, आवाज हुई और इधर गीध के बदले मौलवीसाहब जमीन पर चित गिरे। बलदेव चचा ने झट उनको उठाया और लडको को पानी लाने के लिए भेजा। मौलवीसाहब किसी तरह घर लाये गए।

इस प्रकार के मजाको के बीच हम लोग फारसी पढ़ते रहे। छः-आठ महीनो के बाद मौलवीसाहब चले गए। हम लोग शायद अक्षर सीख चुके थे और करीमा पढ़ने लगे थे। फिर दूसरे मौलवी बुलाये गए, जो बहुत

गम्भीर थे और अच्छा पढाते भी थे। वही दो बरसों तक रहे और करीमा, मामकीमा, खालकबारी, खुशहालसीमिया, दस्तूरुलसीमिया, गुलिस्तां, बोस्तां तक हम लोगो को पढा सके। उसी जमाने मे हम लोगो ने कैथी लिखना और गिनती करना सीख लिया, पर यह याद नही है कि यह कब और कैसे सीखा। हफ्ते में साढ़े पाच दिन फारसी पढ़ते थे। वृहस्पतिवार के दोपहर के बाद और शुक्रवार के दोपहर तक फारसी से छुट्टी रहती थी और इसी-में कैथी अथवा गिनती वगैरह सीखते। इसके अलावा कुछ खेलने-कूदने के लिए भी अधिक समय दिया जाता।

पढ़ने का तरीका था कि खूब सवेरे हम लोग उठकर मकतब मे चले आते। मकतब मेरे पक्के मकान से अलग एक दूसरे मकान के ओसारे मे था। एक कोठरी थी, जिसमें मौलवीसाहब रहा करते और सामने ओसारे में तख्तपोश पर बैठकर हम लोग पढा करते। मौलवीसाहब कभी अपनी चारपाई पर और कभी तख्तपोश पर बैठकर पढ़ाया करते। सवेरे आकर पहले का पढा हुआ सबक एक बार आमोख्ता करना पडता और जो जितना जल्द आमोख्ता कर लेता उसको उतना ही जल्द नया सबक पढा दिया जाता। मै अक्सर अपने दोनो साथियों से पहले मकतब में पहुंच जाता और आमोख्ता भी पहले खतम करके सबक भी पहले पढ़ लिया करता। यह करते सूर्योदय होकर कुछ दिन भी निकल आता। तब नौकर आता और साथ ले जाकर मुह-हाथ धुला देता और घर मां के पास कुछ खिलाने के लिए पहुचा देता। इसके लिए प्रायः आध घंटे पौन घंटे की छुट्टी मिलती। नाश्ता करके लौटने पर सबक याद करना पड़ता और सबक याद करके सुना देने के बाद मौलवीसाहब हुकुम देते, किताब बन्द करो। किताब बन्द करके तख्ती निकालनी पडती। इन दोनो क्रियाओं के बीच कुछ समय खेलने-कूदने का भी मिल जाता या दोबारा घर जाकर कुछ खा लेने का भी मौका मिल जाता। तख्ती पर लिखना होता और जब तख्ती भर जाती तो उसे धोना पड़ता। इस क्रिया मे भी कुछ समय आपस मे हँसने-खेलने का मिलता। दोपहर को नहाने-खाने के लिए एक-डेढ घटे की छुट्टी मिलती और खाकर फिर मकतब में ही उसी तख्तपोश पर सोना पड़ता। मौलवीसाहब चार-पाई पर सोते। हम लोगो को अक्सर नींद नही आती और तख्तपोश पर लेटे-लेटे शतरंज खेलते और जब मौलवीसाहब के जागने का वक्त होता उसके पहले ही गोटियों को उठाकर रख देते। उसी जमाने मे कभी शतरंज खेलना भी आ गया, पर इसका पता नहीं कि कब, कैसे और किससे सीखा। दोपहर बाद दूसरा सबक मिलता और उसको कुछ हद तक याद करके सुनाने के बाद घंटा-डेढ़-घटा दिन रहते खेलने के लिए छुट्टी मिलती। इसी

समय गेंद, चिक्का इत्यादि खेल खेले जाते। संध्या को फिर चिराग-बत्ती जलते किताब खोलकर पढ़ने के लिए बैठना पड़ता। दिन के दोनों सबक याद करके फिर सुनाने पड़ते और तब हुक्म होता, किताब बन्द करो। किताब बन्द करके, कायदे के मुताबिक मौलवीसाहब को आदाब करके, घर जाकर सो जाते।

संध्या को जल्द नींद आती। इससे हमेशा डर रहता कि कहीं झुकते देखकर मौलवीसाहब मार न बैठें। जल्द छुट्टी के लिए दो उपाय थे। खेल-कूद में जमुनाभाई 'लीडर' थे और जल्द छुट्टी पाने के उपाय भी वही करते। पढ़ने के लिए तेल देकर दिया जलाया जाता था। जमुनाभाई दिन को ही कपड़े में राख या धूल बाधकर छोटी-सी पोटली बनाकर छिपाकर रख लेते। जिस दिन दिया में तेल अधिक देखने में आता, चिराग की बत्ती उकसाने के बहाने, छिपाकर पोटली दिया में रख देते। वह देखते-देखते तेल सोख लेती और दिया जल्द बुझने पर आ जाता। मौलवीसाहब दाई पर गुस्सा होते कि तेल क्यों कम लाई, पर मजबूर होकर जल्द ही किताब बन्द करने का हुक्म दे देते। किसी-किसी दिन जमुनाभाई पेशाब करने के लिए छुट्टी मागकर बाहर जाते और पेशाब करने के बदले दौड़कर कभी मेरी मा के पास, कभी-कभी अपनी मा के पास और कभी गगाभाई की मां के पास जाकर कह आते कि अब नींद लग रही है, जल्द दाई को हमें बुलाने के लिए भेजो, नहीं तो पिट जायंगे। उनके पेशाब से लौटने के थोड़े ही बाद दाई पहुच जाती और मौलवीसाहब से कहती कि अब छुट्टी दे दीजिये। मौलवीसाहब छुट्टी दे देते।

एक दिन, जब इस तरह जमुनाभाई दौड़े जा रहे थे, गांव के एक सज्जन ने, जो रिश्ते में हम लोगों के चचा होते थे, उन्हें देख लिया और जाकर मौलवीसाहब से कह दिया कि जमुना कहीं दौड़े जा रहे थे। तहकीकात हुई और जमुनाभाई की कैफियत हुई कि वह पेशाब करने गये और अंधेरे में डर गये, इसलिए भागे जा रहे थे। इस तरह से बचे।

जो कुछ वहा फारसी का ज्ञान हुआ, उन्हीं मौलवीसाहब ने दिया। हम सब भी उनको प्यार करने लगे थे। जब घर छोड़कर छपरे अंगरेजी पढ़ने के लिए जाना पड़ा, तो मौलवीसाहब को और हम लोगों को भी बड़ा दुःख हुआ।

: ४ :

गांव का जीवन

उन दिनों गाव का जीवन आज से भी कही अधिक सादा था। जीरा-देई और जमापुर दो गाव है, पर दोनो की बस्ती इस प्रकार मिली-जुली है कि यह कहना मुश्किल है कि कहा जीरादेई खतम है और कहा से जमापुर शुरू है। इसलिए आबादी के लिहाज मे दोनो गावों को साथ भी लिया जाय तो कोई हर्ज नही। दोनो गावों मे प्राय. सभी जातियों के लोग बसते हैं। आबादी दो हजार मे अधिक होगी। उन दिनों गाव मे मिलनेवाली प्राय सभी चीजे वहा मिलती थी। अब तो कुछ नये प्रकार की दूकाने भी हो गई हैं, जिनमें पान-बीडी भी बिकती है। उन दिनो ऐसी चीजे नही मिलती थी, यद्यपि काला तम्बाकू और खैनी बिका करती थी। कपड़े की दूकाने अच्छी थी, जहा से दूसरे गावों के लोग और कुछ बाहर के व्यापारी भी कपड़ा ले जाया करते थे। चावल, दाल, आटा, मसाला, नमक, तेल इत्यादि वहां सबकुछ बिकता था और छोटी-मोटी दूकान दवा की भी थी, जिसमे हर्रे-बहेरा-पीपर इत्यादि की तरह की चीजे मिल सकती थी। जहां-तक मुझे याद है, केवल मिठाई की कोई दूकान नही थी। गाव मे कोयरी लोगो की काफी बस्ती है, इसलिए साग-सब्जी भी काफी मिलती थी। अहीर कम थे, पर आसपास के गावो मे उनकी काफी आबादी है, इसलिए दही-दूध भी मिलते थे। चर्खे काफी चलते थे। गाव मे जुलाहो की भी आबादी थी, जो सूत लेकर बुन दिया करते थे। चुड़िहार चूड़िया बना लेते। बिसाती छोटी-मोटी चीजे, जैसे टिकुली इत्यादी, बाहर से लाकर बेचते और खुद भी बनाते। मुसलमानो मे चुडिहार, बिसाती, थवई (राज), दर्जी और जुलाहे ही थे। कोई शेख-सैयद नही रहता था। हिन्दुओ मे ब्राह्मण, राजपूत, भूमिहार, कायस्थ, कोयरी, कुरमी, कमकर, तुरहा, गोड, डोम, चमार, दुसाध इत्यादि सभी जाति के लोग बसते थे। मेरा खयाल है कि सबसे अधिक बस्ती राजपूतो की ही है। उनमे कुछ तो जमीदार-वर्ग के है, जो पुराने खानदानी समझे जाते है और कुछ मामूली किसान-वर्ग के हैं। कायस्थ जीरादेई मे ही पाच घर थे, जिनमे तीन तो हमारे सगे थे और दो सम्बन्ध के कारण बाहर से आकर बस गये थे।

सबकुछ प्रायः गांव मे ही मिल जाता था। इसलिए गाव के बाहर जाने का लोगों को बहुत कम मौका आता था। गांव में हफ्ते में दो बार बाजार भी लगता था, जहां कुछ आसपास के गांव के दूकानदार भी अपना-अपना माल-सौदा सिर पर अथवा बैल, घोड़ा या बैलगाड़ी पर लादकर लाते थे। बाजार मे मिठाई की दूकान भी आ जाती थी और जो चाहते उनको मछली-मास भी खरीदने को मिल जाते। जिनकी जरूरतें इस प्रकार पूरी नही होती, वे 'सीवान' जाते। वही थाना और मजिस्ट्रेट हैं—कचहरियां हैं और दूकाने भी है। वह एक कस्बा है, जो देहात के लोगों के लिए उन दिनो बहुत बडी जगह का रुतबा रखता था। मुझे याद है कि गाव मे बाहर से सगे-सम्बन्धियो के सिवा बहुत कम लोग आया करते थे। मौलवी-साहब के यहां दो-चार महीने मे एक बार एक आदमी फारसी की छोटी-मोटी किताबो की एक छोटी गठरी और एक-दो बोतलो मे सियाही (आज-कल की ब्लूब्लैक रोशनाई नही) लिये आ जाता था। जब वह आता तो हम बच्चो के कौतूहल का ठिकाना न रहता। कभी-कभी जाड़ो में कोई नारगी-नीबू की टोकरी लिये बेचने आ जाता तो हम बच्चे इतना खुश होते कि मानो कुछ नायाब मिल गया। एक दिन ऐसा ही एक आदमी आया और मै दौडकर मा से कहने गया। वहा से दौड़कर जो बाहर आ रहा था कि पैर मे जोर से किसी चीज की ठोकर लगी, गिर गया। ओठ मे चोट आई और खून बहने लगा। बहुत दिनो तक उसका चिह्न रहा था। एक बार और किसी चीज के लिए दौड़ता हुआ गिर गया था—उसका निशान तो आज तक दाहिनी आंख के नीचे गाल पर मौजूद है। गाव मे फल—आम के दिनो मे आम और मामूली तरह से कभी-कभी बाग मे केले—मिल जाते थे। चचासाहब, जिनको हम लोग नून कहा करते थे, छपरे से कभी-कभी अगूर लाया करते थे। अगूर आज की तरह खुले आम गुच्छो मे नही बिका करते थे, काठ की छोटी पेटी मे रुई के फाहे के बीच मे रखकर बिकते थे और दाम भी काफी लगता था। गाव के लोग केवल आम और केले ही मौसम मे पाते थे।

गाव मे दो छोटे-मोटे मठ है, जिनमें एक-एक साधु रहा करते थे। गाव के लोग उनको भोजन देते हैं और वह सुबह-शाम घडी-घटा बजाकर आरती करते हैं। आरती के समय कुछ लोग जुट भी जाते हैं। कभी-कभी हम लोग भी जाया करते थे और बाबाजी तुलसीदल का प्रसाद दिया करते थे। राम-नौमी और विशेषकर जन्माष्टमी में मठ मे तैयारी होती थी। हम सब बच्चे कागज और पन्नी के फूल काटकर ठाकुरबारी के दरवाजों और सिंहासन पर साटते थे और उत्सव में शरीक होते थे, व्रत रखते थे और दधिकांदो के

दिन खूब दही-हल्दी एक दूसरे पर डालते थे। प्रायः हर साल कार्तिक में कोई-न-कोई पंडित आ जाते, जो एक-डेढ महीना रहकर रामायण, भागवत अथवा किसी दूसरे पुराण की कथा सुनाते थे। जिस दिन पूर्णाहुति होती थी उस दिन गांव के सब लोग इकट्ठे होते और कुछ-न-कुछ पूजा चढ़ाते। मेरे घर से अधिक पूजा चढ़ती, क्योंकि हम सबसे बडे समझे जाते थे। अक्सर कथा तो मेरे ही दरवाजे पर हुआ करती थी। उसका सारा खर्च हमको ही देना पड़ता था। जब गांव मे पचायती कथा होती तब गाव-भर के लोग बारी-बारी से पंडित के भोजन का सामान पहुचाते, उसमें मेरा घर भी शामिल रहता। हम बच्चे तो शायद ही कथा का कुछ ज्यादा अश सुन पाते हों; क्योंकि मै तो संझौत के बाद ही सो जाता। पर जब आरती होती तो लोग जगाते और प्रसादी खिला देते।

मनोरजन और शिक्षा का एक दूसरा साधन रामलीला थी। वह आसिन मे हुआ करती थी। रामलीला करनेवाली जमात कही से आ जाती और पन्द्रह-बीस दिनों तक खूब चहलपहल रहती। लीला कभी जमापुर मे होती, कभी जीरादेई में। लीला भी विचित्र होती। उसमे राम-लक्ष्मण इत्यादि जो बनते, कुछ पढ़े-लिखे नही होते। एक आदमी तुलसीदास की रामायण हाथ मे लेकर कहता—'रामजी कही, हे सीता'—इत्यादि और रामजी वही दुहराते। इसी प्रकार, जिनको जो कुछ कहना होता उनको बताया जाता और वह पीछे-पीछे उसे दुहराते जाते। लोगो का मनोरजन इस वार्तालाप मे अधिक नही होता, क्योंकि भीड़ बडी लगती और सब कारबार प्राय. सौ-दो-सौ गज मे फैला रहता। मनोरजन तो पात्रो की दौडधूप और विशेषकर लड़ाई इत्यादि के नाटय में ही होता। उत्तर में रामजी का गढ़ और दक्खिन मे रावण का गढ बनता अथवा अयोध्या और जनकपुर बनता। जिस दिन जो कथा पडती, उसका कुछ-न-कुछ स्वांग तो होता ही। सबसे बड़ी तैयारी राम-विवाह, लकाकाण्ड के युद्ध और रामजी के अभिषेक—गद्दी पर बैठने के दिन होती। विवाह मे तो हाथी-घोड़े मगाये जाते और बरात की पूरी सजावट होती। लकादहन के लिए छोटे-मोटे मकान भी बना दिये जाते जो सचमुच जला दिये जाते। हनुमान-वानर और निशाचरो के अलग-अलग चेहरे होते, जो उनको समय पर पहनने पडते और हम बच्चों को वे सचमुच डरावने लगते। वानरों के कपड़े अक्सर लाल होते और निशाचरों के काले। राम-लक्ष्मण-जानकी के विशेष कपड़े होते और उनके सिंगार में प्रायः डेढ़-दो घण्टे लग जाते। लीला संध्या समय चार बजे से छः बजे तक होती। राम-लक्ष्मण मामूली लोगो की तरह नही चलते। उनके कदम बहुत ऊंचे उठते और लड़ाई मे पैंतरे देने की तो उनको खास

तालीम दी जाती। जिस दिन राजगद्दी होती उसी दिन गांव-जवार के लोग पूजा चढ़ाते, जो नजर के रूप मे रामजी के चरणो मे चढ़ाई जाती। लीला-वालों को भोजन के अलावा नकद जो-कुछ मिलना होता उसी दिन मिलता। दूसरे दिन फिर राम-लक्ष्मण-जानकी को शृंगार करके बड़े-बड़े लोगो के घरो में ले जाते, जहा की स्त्रियां परदे के कारण भीड़-भाड मे लीला देखने नही जाया करती। वहां उनकी पूजा होती और उनपर रुपये चढाये जाते।

एक चीज, जिसका असर मुझपर बचपन से ही पड़ा है, रामायण-पाठ है। गाव में अक्षर-ज्ञान तो थोड़े ही लोगों को था। उन दिनो एक भी प्राइ-मरी या दूसरे प्रकार का स्कूल उस गाव अथवा कही जवार-भर मे नहीं था। मौलवीसाहब हम लोगो को तीन-चार रुपये मासिक और भोजन पाकर पढाते थे। गाव मे एक दूसरे मुसलमान थे, जो जाति के जुलाहा थे, मगर कैथी लिखना जानते थे। मुड़कट्टी हिसाब भी जानते थे, जिसमे पहाड़ा, इकोढा इत्यादि मन-सेर की बिकरी और खेत की पैमाइश का हिसाब शामिल है। उन्होने एक पाठशाला खोल रखी थी, जिसमे गाव के कुछ लडके पढते थे। अक्षर पहचानना तो बहुत थोडे लोग जानते, पर प्रायः प्रतिदिन संध्या के समय कुछ लोग कही-न-कही, मठ मे या किसीके दरवाजे पर जमा हो जाते और एक आदमी रामायण की पुस्तक मे चौपाई बोलता और दूसरे सब उसे दुहराते। साथ मे झाल और ढोलक भी बजाते थे। वन्दना का हिस्सा तो जब रामायण का पाठ आरम्भ होता तो जरूर दुहराया जाता। इस प्रकार अक्षर से अपरिचित रहकर भी गाव मे बहुतेरे ऐसे लोग थे, जो रामायण की चौपाइयां जानते और दुहरा सकते और विशेष करके वन्दना के कुछ दोहो को तो सभी प्रायः बरजबान रखते थे।

त्योहारों मे सबसे प्रसिद्ध होली है। उसमे अमीर-गरीब सभी शरीक होते थे। वसन्त-पचमी के दिन से ही होली गाना शुरू होता। उसे गाव की भाषा मे 'ताल उठना' कहते थे। उस दिन से होली के दिन तक जहा-तहां झाल-ढोलक के साथ कुछ आदमी जमा होते और होली गाते। कभी-कभी जीरादेई और जमापुर के लोगो मे मुकाबला हो जाता और एक गीत एक गांव के लोग जैसे खतम करते, दूसरे गाव के लोग दूसरा शुरू करते। कभी-कभी गांव के आस-पास के दूसरे गावो के लोग भी गोल बांधकर आ जाते और इस प्रकार का मीठा प्रतियोग बडे उत्साह से हुआ करता। मुझे याद है कि एक बार दो गावो मे बाजी-सी लग गई और रात-भर गाते-गाते सवेरे सूर्योदय के बाद तक लोग गाते ही रह गये, और तब उनको कहकर हटाया गया। इस गाने में जो आदमी ढोलक बजाता है उसे काफी मेहनत पड़ती है और वह पसीने-पसीने हो जाता है। एक गांव मे ढोलक बजानेवाला एक

ही आदमी था। वह सारी रात बजाता रह गया। उसके हाथों में छाले पड़ गये, पर वह कहां रुकनेवाला था, गांव की इज्जत चली जाती! छाले उठे और फूट गये और इस प्रकार रात-भर में कई बार छाले उठे और फूटे, पर उसने गाव की इज्जत नही जाने दी। यह बात दूसरे दिन प्रतियोगिता खतम होने पर सवेरे मालूम हुई और सब लोगो ने उसकी हिम्मत की सराहना की।

होली के दिन बहुत गन्दा गाली-गलौज हुआ करता। उसमें बूढ़े और जवान और लड़के भी एक साथ शामिल होते। गाव के एक कोने से एक जमात चलती, जो प्रायः हर दरवाजे पर खड़ी होकर नाम ले-लेकर गालिया गाती और गन्दी मिट्टी, धूल और कीचड़ एक-दूसरे पर डालती गाव के दूसरे सिरे तक चली जाती। यही एक अवसर था जब बड़े-छोटे का लिहाज एकबारगी उठ जाता था। बड़े-छोटे केवल उम्र में ही नहीं, जाति और वर्ग की बड़ाई-छोटाई भी उठ जाती थी। चमार, ब्राह्मण और राजपूत एक-दूसरे को गालियां सुनाते और एक दूसरे पर कीचड़ फेंकते। जब कोई नया आदमी साफ-सुथरा मिल जाता तो उसकी जान नही बचती, मानो उसे भी कीचड़ लगाकर जाति में मिला लेना सभी अपना फर्ज समझते थे। वह धूरखेल दोपहर तक जारी रहता। उसके बाद सभी स्नान करते और घर-घर में पूजा होती। उस दिन का विशेष भोजन पूरी-मालपुआ है। गरीब लोग भी किसी-न-किसी प्रकार कुछ प्रबन्ध कर ही लेते। भोजन के बाद दोपहर को गुलाल और अबीर से रंग खेला जाता। सब लोग सफेद कपड़े पहनते। उसपर लाल-पीले रंग डाले जाते, अबीर और अबरख का चूर्ण छिड़का जाता। गरी-छुहारा, पान-कसैली बांटी जाती और खूब होली गाई जाती।

मैंने सुना है कि और जगहों में लोग उस दिन खूब शराब-कबाब का भी व्यवहार किया करते है। पर सौभाग्य से मैंने यह अपने गाव में कभी नही देखा। राजपूत, ब्राह्मण, भूमिहार तो हमारे यहा शराब पीना पाप मानते हैं। कहीं-कहीं कायस्थ लोग पीते है। पर मेरे घर में एक बहुत पुरानी प्रथा चली आ रही है। लोगों का विश्वास है कि हमारे वंश में जो कोई शराब पियेगा वह कोढ़ी हो जायगा। इसलिए यहा कायस्थों के घरों में भी कभी शराब नही आई। बड़ो को देखकर छोटे भी इससे परहेज करते हैं और यह बात आज तक जारी है।

जन्माष्टमी-रामनौमी का जिक्र कर ही दिया है; दीवाली भी अच्छी मनाई जाती थी। कुछ पहले से ही सब लोग अपने-अपने घरो को साफ करते। दीवारों को लीपते और काठ के खम्भों और दरवाजों में तेल लगाते। उन दिनों किरासन का तेल नहीं जलाया जाता था—शायद मिलता ही नही

था। सरसों, तीसी, दाना अथवा रेंड़ी का तेल ही जलाया जाता। दीवाली में मिट्टी के छोटे-छोटे दिये जलाकर प्रायः अमीर-गरीब सब कुछ-न-कुछ रोशनी जरूर करते। बड़े लोगो के मकान पर बहुत दिये जलाये जाते, केले के खम्भे गाड़े जाते, बांस की मेहराबे बनाई जातीं, रंग-बिरंग की तसवीरें दियो से बनाई जाती, जो देखने में बहुत सुन्दर मालूम पड़ती। बड़े लोग तो ये नक्शे बनाते और हम छोटे उनके बताये हुए स्थानों पर दिये रखते, तेल डालते, बत्ती जलाते। बत्ती जल जाने के पहले लक्ष्मी-पूजा होती। लक्ष्मीजी तथा तुलसी के पास बत्ती जलाने के बाद ही और सब जगहों में दिये जलाये जाते। दिये जल जाने के बाद कौड़ी खेलने की चाल थी। हम लोग तो नाम-मात्र के लिए कुछ कर लेते; पर मैंने देखा है कि कुछ लोग पैसे हारते-जीतते भी थे। दीवाली के दिन विशेष दीप की तैयारी होती, पर यों तो कार्तिक-भर कुछ लोग तुलसी-चौतरे पर और आकाश में कंदील लटकाकर दिये जलाया करते।

दशहरा तो खास करके जमींदारों का त्योहार माना जाता था। पर नवरात्र में कभी-कभी कालीजी की पूजा हुआ करती थी। उसके लिए मूर्त्ति लाई जाती और बड़े धूमधाम से पूजा होती। मैंने अपने गांव में तो काली-पूजा नहीं देखी, पर जवार में कालीपूजा हुई, इसकी शोहरत सुनने पर हम बच्चे वहां दर्शन के लिए भेजे गये थे। वहां जाकर हमने काली का, जो सचमुच काली थी और हाथ में लाल खप्पर और खड्ग लिये हुई थी, दर्शन किया था। रामलीला में राजगद्दी भी प्रायः दशहरे के दिन, या एक-दो दिन उसके आगे-पीछे हुआ करती थी। खास दशहरे के दिन हमारे दादासाहब अपने साथ सब लोगों को लेकर छोटा-सा जलूस बनाकर निकलते और नीलकण्ठ का दर्शन करते।

इनके अलावा एक और त्योहार था, जिसमें सभी लोग शरीक होते थे। वह था अनन्तचतुर्दशी का व्रत। यह भादों सुदी चतुर्दशी को हुआ करता था। दोपहर तक का ही व्रत था। दोपहर को कथा सुनने के बाद पूरी-खीर खाने की प्रथा थी और संध्या को कुछ नहीं खाना होता था। सूर्यास्त के बाद पानी भी नहीं पिया जाता था। इस व्रत में हम सब बच्चे भी शरीक होते। कथा समाप्त होने पर एक क्रिया होती, जो बच्चों के लिए बहुत मजाक की चीज होती। एक बड़े थाल में एक या दो खीरे रख दिये जाते और थोड़ा जल उसमें पंडित डाल देते। सभी कथा सुननेवाले इस थाल में हाथ डालते और पंडित पूछते—क्या ढूंढते हो और लोग जवाब देते—अनन्त फल। तब फिर पंडित पूछते—पाया और उत्तर मिलता—पाया। पंडित कहते, सिर पर चढ़ाओ और सब लोग जल अपने सिर पर छिड़कते। यह

क्रिया समाप्त होने पर सभी लोगो को अनन्त, जो सूत मे चौदह गाठ देकर बनाया जाता था, दिया जाता और वे उसे अपनी बांह पर बाध लेते। हम बच्चों के लिए सुन्दर रंगीन, कभी-कभी रेशम का, अनन्त पटहेरे के यहां से खरीद करके आता। कोई-कोई साल-भर बांह पर अनन्त बांधे रहते थे; इसलिए वे अपना अनन्त अपने हाथों मजबूत और काफी लम्बा बनाते, जिसमें वह सुभीते से बाधा जा सके। इस प्रकार जो अनन्त बांधता वह मांस-मछली नही खाता था। इसी प्रकार जो तुलसी की लकड़ी की माला या कंठी पहनता, वह भी मांस-मछली नही खाता।

कथा, रामलीला, रामायण-पाठ और इन व्रत-त्योहारों द्वारा गाव में धार्मिक जीवन हमेशा जगा रहता था। इनके अलावा मुहर्रम में ताजिया रखने का भी रिवाज था। इसमे हिन्दू और मुसलमान दानो शामिल होते थे। जीरादेई और जमापुर मे कुछ हिन्दू ही कुछ सम्पन्न थे, इसलिए उनका ताजिया गरीब मुसलमानों के ताजिया से अधिक बड़ा और शानदार हुआ करता था। मुहर्रम-भर प्रायः रोज गदका, लाठी, फरी वगैरह के खेल लोग करते और पहलाम के दिन तो बहुत बड़ी भीड़ होती। गांव-गांव के ताजिया कर्बला तक पहुचाये जाते। तमाम रास्ते मे 'या अली, या इमाम' के नारे लगाये जाते और गदका इत्यादि के खेल होते। बड़ा उत्साह रहता और इसमें हिन्दू-मुसलमान का कोई भेद नही रहता। शीरनी और तिचौरी (भिगोया हुआ चावल और गुड) बांटी जाती। सभी उसे लेते और खाते; पर हिन्दू लोग मुसलमानों से पानी या शर्बत छुलाकर नही पीते। मुसलमान भी इसे बुरा नहीं मानते। वे समझते थे कि यह हिन्दुओं का धरम है, इसलिए वे स्वयं हट जाते।

जिस तरह हिन्दू मुहर्रम मे शरीक होते, उसी तरह मुसलमान भी होली के शोरगुल में शरीक होते। हम बच्चे दशहरा, दीवाली और होली के दिन मौलवीसाहब की बनाई 'ईदी' अपने बड़ों को पढ़कर सुनाते और उनसे रुपये मांगकर मौलवीसाहब को देते। ईदी कई दिन पहले से ही हम याद करते। कागज पर, मौलवीसाहब की मदद से, सुन्दर फूल बनाकर उसे लाल, हरे, नीले और बैंगनी रगों से रंगते। उसीपर मौलवीसाहब सुन्दर अक्षरों में ईदी लिख देते, जिसे हम लोग पढकर सुनाते। उसमे जो लिखा जाता वह भी कुछ अजीब संमिश्रण होता। जैसे, दीवाली की ईदी मे लिखा होता—'दीवाले आमदे हंगाम जूआ, इत्यादि; दशहरे की ईदी में लिखा जाता—दशहरे को चले थे रामचन्दर, बनाकर रूप जोगी वो कलन्दर' इत्यादि। मुशाहरे के अलावा मौलवीसाहब को, प्रत्येक वृहस्पतिवार को कुछ पैसे जुमराती के रूप में और त्योहारों पर ईदी के बदले में, कुछ मिल

जाया करता था।

उन दिनों गाव मे मामला-मुकदमा कम हुआ करता था। जो झगड़े हुआ करते थे, गाव के पंच लोग उन्हे तय कर देते थे। अगर कोई बात पचों के मान की न हुई, तो वह मेरे बाबा या चचासाहब के सामने पेश होती। वे लोग भी पचायत मे शरीक होकर तय करा देते। हा, कभी-कभी चोरी हो जाया करती थी। बनिया कुछ सम्पन्न थे। उनके घरों मे रात को सेंध फोड़कर चोर कुछ पैसे उठा ले जाया करते। एक बार का मुझे स्मरण है कि दूसरे गांव के बाजार से लौटते वक्त संध्या को रास्ते मे डाकू ने पैसे और कपडे लूट लिये थे। जब कभी ऐसा वकूआ होता, थाने से दारोगा और सिपाही पहुचते और गाव मे एक-दो दिन ठहर जाते। उनका गांव में आना एक बडा हगामा था। सारे गाव मे सनसनी फैल जाती। जिन लोगों पर शुबहा होता उनके घर की तलाशी ली जाती। दो-तीन आदमी थे, जिनके बारे मे मशहूर था कि वे चोर है; दारोगा पहुचते ही उनको पकडकर मुश्कें कसकर बांधकर गिरा देते और खूब पीटते। आसपास के गाव के भी ऐसे लोग, जो गलत या सही चोर समझे जाते थे, इस प्रकार पकड़कर मगाये जाते और गिरा दिये जाते। मैंने देखा है कि इस तरह एक साथ पाच-सात आदमी बाधकर गिराये जाते थे और घटो तक पडे रहते थे।

हम लोगों की छोटी-सी जमीदारी थी। रैयतों के साथ मुकदमे तो कम होते, शायद ही कभी कचहरी मे जाने की जरूरत होती। मगर एक दूसरे जमीदार के साथ, जिनका भी हिस्सा एक गांव मे था, बहुत दिनों तक कुछ जमीन के लिए मुकदमा चलता रहा। बाबा के समय से शुरू होकर पिताजी के जमाने भर चलता रहा और उनकी मृत्यु के बाद भाई ने उसे सुलह करके तय किया। नूनू छपरे जाया करते और भाई जो छपरे पढने के लिए भेज दिये गए थे, उनको देखते और मुकदमे की भी पैरवी करते।

: ५ :

अंगरेजी-शिक्षा का श्रीगणेश

मैं पहले कह चुका हूं कि भाई के कारण मेरे लिए सब बातों में रास्ता साफ हो जाता था। मेरे बहुत छुटपन में ही भाई को पढ़ने के लिए पहले 'सीवान' भेजा गया। वहा कुछ दिनों तक वह रहे, मगर वहां कोई ठीक सुविधा नही जमी। एक तो उन दिनों सीवान मे कोई हाईस्कूल नही था। दूसरा कोई स्कूल था कि नही, मुझे मालूम नही। मगर एक कारण यह भी हुआ कि जिनके साथ उनको रखा गया था, वह उनको संभाल नही सके। एक अग्रवाल सज्जन सीवान में रहा करते, जिनसे बाबा की बड़ी मित्रता थी। उनके पास भाई भेजे गये और कुछ दिनों तक वहां रहे। उनके मकान के पास एक नया कुआं खोदा जा रहा था। उसमें पानी आ चुका था, पर ऊपर की जगत तक अभी बंधाई नहीं हुई थी। एक दिन पानी देखने या खेलने के लिए भाई वहां गये और कुए मे गिर गये—डूबते-डूबते मुश्किल से बचाये गए। उस सज्जन ने लिख भेजा कि ऐसे चुल्ला लड़के की देख-रेख उनसे नहीं हो सकेगी। उसके बाद ही भाई छपरे भेज दिये गए और वहा जिला-स्कूल में नाम लिखाकर पढने लगे। जब छुट्टियों में वह घर आते तो हम लोगो से छपरे और स्कूल की बातें कहते। हम बच्चे बहुत उत्सुकता से उन्हें सुनते। शायद उस समय तक मैं अपने होश में जवार के कुछ गांवों के सिवा, जहां कभी-कभी रामलीला या दूसरा कोई मेला देखने गया होऊं, और कहीं नही गया था। हा, सुनता हूं कि बहुत बचपन में मां के साथ ननिहाल गया था, जो बलिया जिले मे हमारे गांव से प्रायः अठारह-बीस कोस की दूरी पर है; पर उसका मुझे कुछ भी स्मरण नही है।

छपरे में मेरे पढ़ने की बात तय हो जाने के बाद नूनू ने एक बार मुझे वहां ले जाकर सबकुछ दिखला देना अच्छा समझा, और साथ ले गये। मैं छपरे में कुछ दिनों तक भाई के साथ ठहरा और फिर घर वापस चला आया। मुझे जहांतक स्मरण है, यही पहला अवसर था जब मैं रेल पर चढ़ा था। पर इस यात्रा में मैं स्कूल में दाखिल नही हुआ। जीरादेई लौटकर मौलवीसाहब के पास फिर पढ़ने लगा। इसी बीच एक दुर्घटना हो गई—नूनू की मृत्यु हो गई! हमारे खानदान से घनिष्ठ सम्बन्ध रखनेवाला एक

खानदान था, जिसमें आजकल बाबू फूलनप्रसाद वर्मा हैं। उनके पिता ननिहाल में आकर अपने नाना के साथ रहते थे। उनके नाना से हम लोगों का कुछ पुराना सम्बन्ध भी था, पर उससे भी अधिक आपस की घनिष्ठता थी, जो दोनों खानदानो के हथुआ-राज में नौकरी करने के कारण बहुत जमाने से चली आती थी। फूलनबाबू के पिता की शादी मे नूनू बरात गये और लौटते समय रास्ते में हैजा हो गया। वहा तो अच्छे हो गये और घर पर आ गये, पर गाव में भी बहुत जोरो से हैजा फैला हुआ था। अच्छे हो जाने के प्रायः दो-तीन हफ्तो के बाद उनको दोबारा हैजा हो गया। वह दिन मुझे आज भी याद है। दोपहर ग्यारह बजे के करीब बीमारी शुरू हुई और रात को ही वह चल बसे। बाबूजी ने जो कुछ दवा हो सकी की। दरौली से डाक्टर बुलाये गए जो प्रायः छः कोस की दूरी पर है। पहली बीमारी मे इसी डाक्टर ने आराम किया था। पर उन दिनो तेज सवारी तो मिलती न थी। हाथी पर रात को बारह बजे डाक्टर पहुचे, पर उनके पहुंचने के पहले ही मृत्यु हो चुकी थी। उनकी मृत्यु से घर मे बडा कोलाहल मचा। बाबा के वह एक ही पुत्र थे। घर का प्राय. सब कारबार बाहर-भीतर वही सभालते थे। बाबा की अवस्था प्रायः सत्तर बरस की थी; पर वह अभी पैंतालीस से अधिक के नही रहे होगे। बाबूजी घर के कारबार में कम ही दिलचस्पी लिया करते थे। इसलिए और भी सब-कुछ अव्यवस्थित हो चला। फलतः कुछ दिनो के लिए मेरा छपरा भेजा जाना रुक गया।

प्रायः एक-डेढ साल के बाद मैं छपरे भेजा गया। छपरे में एक छोटा-सा मकान, तीन या चार रुपये मासिक भाड़े पर, ले लिया गया था। वहीं भाई एक नौकर और रसोई बनानेवाले एक कायस्थ के साथ रहते थे। कुछ दिनो तक शुरू मे उनको पढाने के लिए एक मास्टर भी रखे गये थे, पर जब मैं पहुंचा तब दूसरा कोई नही था। मैं भी उनके साथ रहने लगा। मेरे छपरा पहुंचने के कुछ ही दिनो बाद जिला-स्कूल के आठवे दर्जे में, जो उन दिनों सबसे आरम्भिक दर्जा था, मेरा नाम लिखा दिया गया। मैंने वही ए बी सी और नागरी अ आ इ ई की एक साथ शिक्षा आरम्भ की। भाई उस समय दूसरे दर्जे से तरक्की पाकर अव्वल दर्जे अर्थात् एण्ट्रेन्स क्लास में पहुचे थे। मेरे लिए कोई मास्टर नही रखा गया। स्कूल की पढ़ाई के अलावा अगर मुझे कुछ पूछना होता तो, मैं भाई से पूछ लेता। घर पर मुझे पढाने के लिए मास्टर का न रखना बहुत अच्छा हुआ। स्कूल की पढ़ाई पर खूब ध्यान देने की आदत पड़ गई। आरम्भिक काल से ही अपने ऊपर कुछ भरोसा करना भी आ गया। साल के अन्त में भाई एण्ट्रेन्स-परीक्षा की तैयारी कर रहे थे और मैं अपना सालाना इम्तहान दे रहा था। इम्तहान

में मेरा बहुत अच्छा नम्बर आया। मैं अपने दर्जे में अव्वल हुआ और नम्बर भी इतना ज्यादा आया कि हेडमास्टर ने मुझे डबल तरक्की देने की बात सोची।

उन दिनों स्कूल के हेडमास्टर थे श्री क्षीरोदचन्द्र राय चौधुरी। वह बड़े नामी और विद्वान हेडमास्टर समझे जाते थे। स्कूल मे उनका रोब भी बहुत था। केवल लड़के ही नही, मास्टर लोग भी डर के मारे कापते थे। परीक्षा-फल सुनाया गया। मुझे आठवे से सातवे मे तरक्की मिली। हम सब लड़के खुशिया मना रहे थे कि चपरासी ने आकर क्लास-मास्टर से कहा कि हेडमास्टर मुझे बुलाते है। हेडमास्टर उन लड़को को ही बुलाया करते, जिनके खिलाफ कोई शिकायत पहुंची रहती थी। मै बहुत डर गया और डरते-डरते वहा गया। पर वहां जाकर डर दूर हो गया। उन्होने पूछा, "डबल तरक्की लेकर सातवे के बदले छठे क्लास मे जाओगे?" मैं उस समय कुछ घबरा-सा गया—कुछ खुशी, कुछ विस्मय और कुछ इस बात का भय कि एक बरस की पढ़ाई कैसे लादी जा सकेगी—मैंने उत्तर दिया कि भाई से पूछकर बताऊगा। उन्होने पूछा कि भाई कौन है? मेरे नाम बताने पर वह हँस पड़े। भाई को वह जानते थे, क्योंकि भाई को भी तो उन्होंने ही पढाकर एण्ट्रेस-परीक्षा देने की अनुमति दी थी, जिसके लिए वह डेरे पर तैयारी कर रहे थे। उन्होने कहा कि वह क्या मुझसे इस बात को अधिक समझ सकता है कि जो तू उससे पूछना चाहता है—खैर, जाकर पूछ आ। मैं वहा से दौडता हुआ भाई के पास पहुचा। वह, बाबू बांकेबिहारीलाल (स्वर्गीय) और मौलवी शफी दाऊदी, तीनो एक साथ इम्तहान की तैयारी कर रहे थे। मैं वही गया और तीनो ने यह खबर बहुत खुश होकर सुनी। आपस मे कुछ सलाह भी हुई। भाई का विचार हुआ कि एक क्लास लाघ जाने से मैं पीछे कमजोर पड़ जाऊगा और आगे की पढ़ाई ठीक नही होगी। वह मेरे साथ हेडमास्टर के पास पहुचे और उनसे अपनी राय कही। हेडमास्टर ने हँसकर फिर वही बात कही—क्या तू मुझसे इस बात को ज्यादा समझता है। फलत: सातवा लाघकर मुझे छठे क्लास मे उन्होंने भेज दिया।

थोडे ही दिनो के बाद भाई परीक्षा देने पटने गये और परीक्षा देकर जीरादेई चले गए। मैं उस समय से छपरा डेरे पर अकेला, नौकर और रसोइया के साथ, रहता। हा, मेरे मतलब के साथी जमुनाभाई और गगाभाई भी छपरे आ गये थे और स्कूल मे उन्होने नाम लिखा लिये थे। हम तीनों वहा भी साथ ही रहते और पढते थे। उस समय मेरी अवस्था शायद दस-ग्यारह के बीच की होगी।

भाई एण्ट्रेन्स पास हो गये। पटने में कालेज में उनके पढने की बात

हुई और वह पटने जाने लगे। राय ठहरी कि मैं भी उनके साथ ही चला जाऊ और ऐसा ही हुआ। हम तीनो महपाठी, भाई के साथ, पटने गये और भाई ने पटना-कालेज में नाम लिखाया और हम लोगो के नाम टी० के० घोष एकेडेमी मे, जो उन दिनो बडा अच्छा स्कूल समझा जाता था और जिसमे बहुत लड़के पढ़ते थे, लिखा दिये गए। उस स्कूल मे जाकर मैंने महसूस किया कि डबल तरक्की के बारे मे भाई की राय हेडमास्टर से अधिक ठीक थी। मैं प्रतिदिन महसूस करता कि दूसरे लडके कई विषय मुझसे अधिक जानते है। मैं इस कोशिश मे लग गया कि इस कमी को पूरा कर दू। वहा भी घर पर पढाने के लिए कोई मास्टर नही था। जो कुछ पूछना होता, भाई या उनके दूसरे साथी लोगो से—जो वहा रहा करते—पूछ लिया करता।

छपरे मे ही मेरी आदत पड गई थी कि रोज सध्या को, स्कूल मे छुट्टी होने पर, डेरे पर आकर कुछ-खा पीकर फुटबॉल या दूसरा खेल खेलने फिर स्कूल मे चला जाना। फुटबॉल और क्रिकेट दो खेल विशेषकर खेले जाते। ऊंचे दर्जे के कुछ लडके, और मास्टरो मे कुछ लोग—विशेष करके हेड-मास्टर, टेनिस भी खेला करते। पटने मे स्कूल मे खेल का प्रबन्ध नही था। हम लोग इस कमी को बहुत महसूस करते। उसका अहाता भी बडा नही था। पर जो जगह थी, उसमे अपने लोग गेद लेकर जाते और कुछ दौड़-धूप करके चले आते। भाई खेल मे बडे पटु थे। फुटबॉल, क्रिकेट और दूसरे खेलो मे वह बहुत आगे रहते थे। पटना-कालेज मे भी उनका नाम था। हम लोग कभी-कभी खेल देखने पटने के लॉन मे जाया करते।

पटने मे सोमवारी मेला, सावन महीने के प्रति सोमवार को, धूमधाम से हुआ करता था। उस मेले मे हम लोग बडी खुशी से जाते और छोटी-मोटी चीजे खरीदने के लिए भाई से जिद करते। मुझे याद है कि एक बार एक मूर्त्ति, जो बहुत सुन्दर थी, खरीदने के लिए मैंने बहुत जिद की थी और भाई को खरीद देनी पडी। एक बार उसी सोमवारी मेले में बाबू बाकेबिहारी के पाकेट से चोर ने कुछ पैसे निकाल लिये। भाई भी साथ थे। चोर पकड़ा गया। उसपर मुकदमा चला, जिसमे बाकेजी को और भाई को बयान देने पडे। उसी मुकदमे को देखने के लिए, जहातक मुझे स्मरण है, मैं पहले-पहल कचहरी मे गया था।

पटने मे मेरे गाव के एक सज्जन, भाई से जिनकी मित्रता थी, नौकरी की खोज मे हम लोगो के साथ डेरे पर ठहरे थे। वहां भी एक मकान भाडे पर लेकर बाबू बाकेजी और हम लोग साथ ही रहा करते थे। वह सज्जन छोटे-मोटे पहलवान थे। कुछ कसरत वगैरह जानते थे। उन्होंने आंगन में

एक छोटा अखाड़ा बनवाया और वहां सब लोगों से कुछ कसरत कराना और कुश्ती सिखाना आरम्भ किया। एक दिन बाबू बांकेजी को कुश्ती सीखने में कुछ चोट लग गई और उनका पैर कई दिनों तक तकलीफ देता रहा। उसके बाद से कुश्ती और अखाड़े में दिलचस्पी कम हो गई।

जब हम लोग पटने में थे उसी समय हम लोगों ने 'प्लेग' बीमारी का नाम पहले-पहल सुना। उस समय बम्बई से ही इस भंयकर बीमारी की खबर सुनी गई थी, पर थोडे ही दिनों के बाद छपरा-जिले मे भी इसने अड्डा जमा लिया और कम-बेश अभी तक कुछ-न-कुछ रहता ही है। उन्ही दिनो बड़ा अकाल भी पड़ा था। छुट्टी में गांव जाकर हम लोगो ने देखा था कि गवर्नमेण्ट के अफसर, लोगों की मदद करने के लिए, आये थे और हमारे घर पर ठहरे थे।

पटने में प्राय: दो बरस बीत गये। भाई ने एफ० ए० की परीक्षा दी और मैं छठे से पांचवें और पाचवे से चौथे दर्जे में पहुच गया। इम्तहान देकर भाई घर चले गये। मैं, जमुनाभाई और गंगाभाई, पटने में नौकर के साथ अकेले ही दो-तीन महीने तक रहे। जब गर्मी की छुट्टी हुई, हम लोग घर आये।

: ६ :

विवाह

मुझे ठीक याद नही है कि मैं पाचवे दर्जे मैं पढ़ता था या चौथे मे आ चुका था जब मेरी शादी हुई—शायद मैं पांचवे मे ही पढता था। गर्मी की छुट्टी में ही शादी हुई थी। जब हम लोग छपरे मे पढ़ते थे तभी बाबा की मृत्यु और हमारी दादी की भी मृत्यु हो चुकी थी। उन लोगों की बीमारी का हाल पाकर हम सब छपरे से जीरादेई आ गये थे और हम सबके सामने ही दोनों—थोड़े ही दिनो के अन्तर से—चल बसे थे। इसलिए अब मेरे पिताजी ही घर के मालिक थे। मेरी शादी का इन्तजाम उनको ही करना पड़ा था।

मेरे ससुर आरा मे मुख्तार थे और उनके एक छोटे भाई बलिया में वकालत करते थे। दोनों भाई जीरादेई आये थे। मुझे बाबूजी ने अन्दर मां के पास से बुलवाया। उन लोगो ने देखा—कुछ सवाल भी किये और पसद करके चले गये। कुछ दिनो के बाद तिलक आया, जिसमें प्रथा के अनुसार कपड़े, बर्तन इत्यादि के अलावा रुपये भी आये। जहातक मुझे स्मरण है, रुपये के लिए बाबूजी ने कुछ ज्यादा जोर नही दिया था। उन लोगों ने प्रायः दो हजार नगद और सामान मिलाकर, भेजा था। मेरी अवस्था बारह बरस से कुछ अधिक की थी।

उन दिनों दो हजार रुपये का तिलक अच्छा तिलक समझा जाता था। आजकल तो पांच हजार सात हजार भी हम लोगों की औकात के लोग कम मानते है। जितना ज्यादा तिलक हो उतनी ही अधिक बरात की तैयारी होनी चाहिए और लडकी के लिए उतना ही ज्यादा जेवर जाना चाहिए। मेरी शादी के समय पिताजी की आर्थिक स्थिति अच्छी नही थी। एक तो तीन-चार बरसों में एक-पर-एक तीन मौतें हो चुकी थी और उनमें प्रत्येक के श्राद्ध में काफी खर्च हो चुका था। दूसरे, अकाल के कारण, जमीदारी से वसूली कम हो गई थी। खर्च बढ़ गया था। हम लोगों के पढ़ने के लिए छपरे और पटने मे प्रतिमास कुछ-न-कुछ नगद भेजना ही पड़ता था। एक मुकदमा जो बहुत दिनों से चला आता था, उसकी पेशी बहुत दिनों तक चली थी और उसमें भी बहुत खर्च पड़ा था। इन सब तरद्दुदो के रहते हुए

भी शादी में खर्च करना ही था, क्योंकि इसीमें घर की प्रतिष्ठा थी।

जहांतक जेवर वगैरह का खर्च था, वह तो उन्होने खूब किया। दूसरी तैयारी मे भी वह कमी नही करना चाहते थे, क्योकि उनके जमाने मे यही पहली शादी थी। और, अगर पुरानी मिकदार से खर्च न हुआ, शान-शौकत न हुई, तो लोग कहेगे कि भैयाजी (मेरे बाबा को सब लोग इसी नाम से पुकारा करते थे) के मरने के बाद ही घर की शान मे कमी आ गई। इसलिए बाबूजी का विचार था कि किसी तरह से यह शादी शान मे कम न हो।

हमारे यहा शादी मे जलूस के लिए बहुत हाथी-घोड़े मगनी मांगकर लाये जाते है। और भी जलूस की चीजे मंगनी लाई जाती है। शादी का दिन ऐसा पडा जिस दिन बहुत कड़ा लगन था। गाव की भाषा मे 'कडा लगन' उसे कहते है जिसमे ग्रह अच्छे पडने के कारण मुहूर्त्त बहुत अच्छा पड़ता है और बहुत लोग उस दिन को शादी करना शुभ समझते है। जिस दिन कडा लगन पडता है, उस दिन मगनी के सामान मिलने मे कठिनाई होती है, क्योंकि बहुत लोग मगनी मागते है। मेरी बरात के लिए बहुत हाथी-घोडे मागे गये. मगर कड़ा लगन के कारण पहुच नही सके। एक ही हाथी और दो-चार घोड़े पहुच सके।

मेरी शादी बलिया जिले के दलन-छपरा मे, जीरादेई से अठारह-बीस कोस की दूरी पर, होनेवाली थी। दो दिनो का रास्ता था। बीच मे सरजू (गोगरा) नदी थी, जिसे नावों पर पार करना था। बरात जीरादेई की रस्मो को समाप्त करके रवाना हुई। हाथी-घोड़े कम होने के कारण पालकी की सवारी अधिक लेनी पड़ी और बैलगाडियों पर सामान चला। मै एक खास किस्म की पालकी पर, जिसपर वर जाया करते है, चला। घर मे एक बड़ा घोडा था, भाई उसीपर चले। वह सबको रवाना करके सबसे पीछे चले, और जहां दोपहर को खाने का स्थान मुकर्रर था, वहा सबसे पहले पहुंच गये। इन्तजाम मे वह बहुत भाग ले रहे थे। बाबूजी पालकी पर थे। कुटुम्ब और सम्बन्ध के दूसरे लोग पालकी या दूसरी सवारियों पर थे।

वर की पालकी बहुत बेढगी हुआ करती है। उसमे ऊपर से साये के लिए छत नही होती, पर कपड़े की छहियां बाध दी जाती है। जेठ के महीने मे शादी थी। गर्मी खूब पड रही थी। गर्म हवा भी खूब चल रही थी और मुझे उस पालकी पर जाना था। हवा से वह छहियां भी उड़ जाती। पालकी चांदी की थी, इसलिए वजन काफी था। कहारों को वजन संभालना ही कठिन था और उसपर हवा के मारे छहियां बैलून का काम करती; बेचारे बहुत मुश्किल में थे। मैं धूप और हवा दोनों का शिकार था।

किसी तरह दिन कटा और रात को सरजूजी के किनारे के गांव मे डेरा पडा। कच्ची-पक्की रसोई बनी। सब लोगो ने भोजन किया। सवेरे सरजू पार करनेका काम शुरू हुआ। सामान, पालकी, बैलगाडी, बैल, घोडे इत्यादि तो नावो पर लादे गए और हाथी को यो ही तैराकर पार कराने का प्रयत्न होने लगा। वह हाथी भी कुछ वैसा ही था; वह नदी नहीं पार करना चाहता था। कुछ दूर जाता और फिर वापस आ जाता। फिर कई नावो के बीच में करके पार कराने का प्रयत्न हुआ, पर सब बेकार गया। अन्त मे राय ठहरी कि उसे छोड ही देना चाहिए और बरात बिना हाथी के चली। बाबूजी को इसका बड़ा अफसोस था कि बरात मे एक भी हाथी नही गया। जहा मेरी शादी हो रही थी, उससे थोडी ही दूर पर बाबूजी की भी शादी हुई थी। उस समय बाबा हथुआ के दीवान थे और उस बरात मे पचासो हाथी गये थे। बाबूजी को यह बात बहुत अखरती कि जहा उनकी शादी में पचासो हाथी गये, वहा उनके लडके की शादी मे एक भी हाथी न पहुच सका। मगर करना क्या था। बरात वापस तो हो नही सकती। हाथी के झमेले मे इतना समय लग गया कि उस गाव मे पहुचने में रात हो जायगी, ऐसा भय मालूम होने लगा।

बरात बहुत तेजी से चली और जहा दोपहर को पहुचना था, वहां पहुचते-पहुचते तीन-चार बज गये। वहा भोजन वगैरह करके बरात आगे बढी। रात हो गई। इस बीच मे एक घटना हो गई। बरात जब गाव से एक-दो मील पर थी कि दो-तीन हाथी आते हुए नजर आये। वे किसी दूसरी बरात मे गये थे और उसकी रसम पूरी करके कही जा रहे थे। पीलवानो मे बात हुई। उनको कुछ रुपये दिये गए और वे बरात मे शामिल होने को राजी हो गये। इस तरह हाथी का हौसला तो एक प्रकार से पूरा हो गया, पर बरात पहुचते-पहुचते रात के दस-ग्यारह बज गये।

वहां लोग घबरा रहे थे—कुढ रहे थे। अन्त मे बरात पहुची। मेरी आदत सही-शाम को ही सोने की थी, जो शादी के कारण कुछ छूटनेवाली थी नही। मैं बरात पहुचने के पहले ही पालकी मे खूब सो गया था। पहुचने के समय किसी तरह मै जगाया गया और परिछावन की रसम अदा हुई। शादी की दूसरी रस्मे भी एक-एक करके पूरी की गई। गरमी मे दो दिनों का सफर और वह भी पालकी मे। साझ ही सोने की आदत और उसपर इतनी थकावट। मेरे लिए जागते रहना कठिन समस्या थी। सब रस्में हो गई और मेरा शुभ विवाह भी उसी रात को हो गया। मुझे आज वे रस्मे भी पूरी तरह याद नही है और न यह याद है कि उनमे मेरा क्या हिस्सा रहा। लड़कपन में मेरी बहन गुड़ियों के विवाह का खेल किया करती और

उसमें मैं भी शरीक हुआ करता था। यह विवाह मेरे लिए कुछ वैसा ही था। मैंने न तो विवाह के महत्त्व को समझा और न यह महसूस किया कि मेरे ऊपर कोई जिम्मेदारी आई। मेरा हाथ न विवाह का निश्चय करने मे रहा था और न इन रसमों मे। जो कुछ पंडित या हजाम या अपने घर की अथवा ससुराल की स्त्रियां बताती गईं, वह करता गया और अन्त मे लोगों ने समझ लिया कि मेरा विवाह हो गया! मुझे तो इतना भी ज्ञान नही हुआ कि क्या हुआ। हां, इतना समझ गया था कि मेरी भौजाई जिस तरह घर में आ गई थी, उसी तरह एक दिन कोई मेरी बहू भी आ जायगी।

हमारे यहां यह भी चाल है कि कही-कही शादी के बाद ही लड़की को नही लाते है। कुछ दिनों के बाद एक छोटी-मोटी दूसरी बरात जाती है और तब लड़की लाई जाती है। इसे 'दुरागमन' कहते है। मेरी शादी के बाद भी बहू साथ नही लाई गई। एक बरस के बाद दुरागमन की बरात गई और तब वह लाई गई। बरात दो दिनो तक ठहरकर वापस आई। ससुराल के लोग, देर करके बरात पहुचने और उनकी आशा के अनुकूल पूरी शान-शौकत की न होने के कारण, कुछ रंज थे। पर जब उन्होंने जेवर कपड़े, मिठाई वगैरह—जो लड़की के लिए और दूसरों के लिए बर की ओर से दिये जाते हैं—देखा, तब उनका रंज दूर हो गया और सब लोग बहुत खुश हो गये। मैं समझता हूं कि वर को देखकर भी घर की स्त्रियां और दूसरे आये हुए लोग खुश हुए होंगे, यद्यपि मेरे पास इसका कोई सबूत नहीं है!

एक साल के बाद दुरागमन हुआ और बहू घर में आई। दुरागमन की बरात शादी की बरात से छोटी हुआ करती है। इस बार एक या दो हाथी मिल गये थे और बरात मे गये भी थे। हमारे यहां पर्दा बहुत सख्त होता है। मैंने देखा था कि जब मेरी भौजाई आईं तो उनके साथ दो दाइयां आई थी और वह केवल उन दोनों से ही बातें कर सकती थी! जीगदेई मे एक कमरे में रहती थीं। कभी ओसारे मे भी निकलने की इजाजत नहीं थी! उन दिनों ऐसे ही पुरुष नौकर घर के अन्दर जा सकते थे जो उम्र में बहुत कम होते थे और जिनका जन्म हमारी मां-चाची के सामने गांव में हुआ था और जो बहुत बचपन से अपनी मां के साथ आंगन में आया-जाया करते थे। जो सयाने नौकर थे, वे भीतर नहीं जाते थे। एक रसोईदार था, जो रसोई बनाने के लिए आंगन में जाता था। मगर वह भी जाने के पहले पुकार लेता और हमारी मां-चाची कमरों में चली जातीं, तब वह जाता और रसोईघर में घुस जाता। वहां से अगर किसी चीज की जरूरत होती तो वह किसी लौंड़ी को पुकारकर मांग लेता और बाहर जाने के समय फिर उसी तरह

पुकारकर सबको हटा देने के बाद ही वह बाहर जाता।

मेरी भौजाई तो कमरे से बाहर निकलती ही न थी। हां, नित्य-क्रिया के लिए जाने के समय पहले सब लोग हटा दिये जाते। लोगों में दूसरा कोई शामिल नहीं था—सिर्फ जीरादेई की दाइयां थी! मर्द सूरत तो कोई आंगन में रहता ही नही था। अगर कोई छोटा लड़का होता तो वह भी हटा दिया जाता। इतने से भी काफी पर्दा नही होता और उनके नैहर की दाइयां कपड़े का पर्दा लगाकर उनको ले जाती। मैं बहुत छोटा था। इसलिए मैं कभी खेलता-कूदता उनके कमरे में चला जाता और शायद दो-एक बार उनका मुंह भी मैंने देख लिया था। मेरी मा, चाची और बहन भी जब उनके कमरे में जाती तो वह घूघट तान के बैठ जाती। जीरादेई की कोई दाई भी वहा जाने नही पाती थी।

जब मेरी स्त्री दुरागमन के बाद आई तो उनके साथ भी यही सब खेल रहा। यह बहुत दिनों तक चला और आहिस्ता-आहिस्ता कम हुआ। नैहर की दाइया चली गयी। जीरादेई की एक दाई आने-जाने लगी। उससे कुछ-कुछ बातें करने की इजाजत हुई। जबतक मेरी मा जीती रही तबतक न तो मेरी भौजाई और न मेरी स्त्री ही कभी अपने कमरे से निकलकर आजादी के साथ आगन में घूम-फिर सकी या बैठ सकी। मेरी हालत यह थी कि मैं जब कभी गाव पर छुट्टियों में आता, बाहर ही सोता। रात के समय जब सब लोग सो जाते तो मा दाई को भेजती कि जगा लाओ और वह जगाकर मुझे ले जाती और उस कमरे में छोड़ देती, जिसमे मेरी पत्नी रहती। नीद के मारे मुझे उस वक्त रात को जागना कठिन हो जाता। अक्सर मैं, कितनी भी कोशिश होती, जागता ही नही। दूसरे दिन मा या चाची डांटती कि रात को जागते नही और बुलाने पर भी आते नही। सवेरे जब सब लोग सोये ही रहते उठकर चला आना होता और बाहर की चारपाई पर सो जाता, जिसमें किसीको यह पता न चले कि रात को कही दूसरी जगह गया था! यहां तक कि साथ के नौकर को भी इसका पता कम ही लगता।

पर्दा के कारण इस तरह स्त्री-पुरुष की मुलाकात होती। मैं तो लड़कपन से ही अधिक घर के बाहर ही रहा। जब कभी घर पर छुट्टियों में जाता तभी मुलाकात का मौका होता और वह भी इस प्रकार से! इसलिए अगर वे आज विवाह हुए प्रायः चवालीस-पैंतालीस बरस हो गये होंगे, पर शायद ही सब दिनों के गिनने के बाद भी हम दोनों इतने महीने भी एक साथ रहे हों। पढ़ने का समय पटना, छपरा, कलकत्ता में कटा। वकालत के जमाने में

भी मैं कलकत्ते में बराबर अकेला ही रहा और पटने आने पर भी दो ही एक बार घर के लोग साथ थोड़े दिनो के लिए रहे। असहयोग आरम्भ होने के बाद तो घर जाने का समय और भी कम मिला है और घर के लोगों को साथ रखने का न तो सुभीता रहा और न काम की झंझटों मे फुरसत रही।

: ७ :

हथुआ-स्कूल में दाखिल : छपरा-स्कूल में वापस

भाई एफ० ए० की परीक्षा पास कर गये। उनकी इच्छा हुई कि वह कलकत्ते मे जाकर मेडिकल कालेज मे पढे। उन दिनो बिहारी लोगो मे शायद ही कोई मेडिकल कालेज मे पढता था। एक तो कलकत्ता जाना और वहां का खर्च जुटाना ही मुश्किल। दूसरे, वहा बिहारियो के लिए जगह मिलनी भी मुश्किल! जब उनके कलकत्ते जाने की बात तय हो गई तो सवाल हुआ कि मैं कहा पढू। मेरे लिए कलकत्ता जाना उचित नही समझा गया। भाई कलकत्ते गये, मैं पटने मे नाम कटाकर हथुआ-स्कूल मे नाम लिखाने के लिए भेजा गया। वहा की हालत कुछ विचित्र थी। पढाने-लिखाने का तरीका छपरा-जिला-स्कूल और पटना टी० के० घोष एकेडेमी से कुछ जुदा था। पहले तो नाम लिखाने मे ही थोडी दिक्कत हुई। मास्टर ने कहा कि वह परीक्षा लेकर नाम लिखेगे।

खैर, किसी तरह नाम लिखा गया। पढाई का तरीका यह था कि जो कुछ सबक दिया जाता था, खास करके इतिहास मे, उसे दूसरे दिन कण्ठस्थ करके आना चाहिए और मास्टरसाहब कहते, सबक सुनाओ, और सब शुरू से अखीर तक किताब बन्द करके जबानी सुनाना पड़ता। मेरी आदत इस प्रकार बिना समझे-बूझे किसी चीज को जबानी रटने या सुनाने की नही थी और शाब्दिक स्मरणशक्ति भी कमजोर थी। मै प्राय: छ: महीने तक उस स्कूल मे रहा, पर शायद एक दिन भी सबक पूरा याद नही कर सका। कोशिश की कमी मुझमे नही थी, पर मैं कर ही नही सकता था। किसीने मुझसे कह दिया था कि अगर किसी चीज को एक सौ बीस बार दुहरा दिया जाय तो वह जरूर कण्ठस्थ हो जाती है। मै बहुत मेहनत करके एक सौ बीस बार दुहराने का भी प्रयत्न करता, पर तो भी पन्ने-का-पन्ना कण्ठस्थ नहीं कर सकता। मेरी आदत सही शाम सो जाने और सवेरे चार बजे के करीब उठ जाने की थी। हथुआ में एक सौ बीस बार दुहराने के लिए मैं कभी-कभी डेढ-दो बजे रात में ही उठ जाता। तो भी सबक पूरा न कर पाता। स्कूल में मास्टर हालत देखकर कभी-कभी कुढ़ते और कहते कि यह चौथे दर्जे में भरती करने लायक था ही नही और धमकी देते कि

पांचवें क्लास में तुमको वापस कर दिया जायगा। यह सब मेरे लिए मार्मिक दर्द का कारण होता और जैसे दुःख के दिन मेरे वहां कटे और कही पढ़ने के दिनों में नही कटे। कभी-कभी मैं सोचता कि शायद अगर क्लास न लांघे होता तो यह दशा नहीं होती।

अन्त में मैं बहुत बीमार पड़ गया और सालाना इम्तहान के समय तक बीमार ही रहा। सालाना इम्तहान दे देता तो किसी प्रकार पास भी कर जाता और तरक्की भी हो जाती। छुट्टियों मे भाई घर आये और सब हाल उन्होंने देखा-सुना तो उनकी राय हुई कि सालाना इम्तहान देकर तरक्की लेने की जरूरत नही है, इस स्कूल को छोड़कर छपरा-जिला-स्कूल मे फिर वापस जाना ही अच्छा होगा। ऐसा ही निश्चय हुआ और मैं वहां से फिर छपरा-स्कूल मे चौथे क्लास मे ही दाखिल हुआ।

उधर भाईसाहब की भी अजीब हालत रही। मेडिकल कॉलेज मे किसी कारण से उनका नाम नही लिखा गया और वह फिर पटने मे वापस आकर बी० ए० क्लास मे पढ़ने लगे। चूंकि मेरा नाम हथुआ-स्कूल में लिखा जा चुका था, वहां से तुरन्त फिर पटने ले जाना उचित नही समझा गया और छः महीनो तक मैं हथुआ में ही रहा।

स्कूल की पढ़ाई पर ही मैं भरोसा रखता था। घर पर पढ़ाने के लिए कभी कोई मास्टर नही रखा गया था। हथुआ की पढ़ाई की परेशानी के कारण हैरान होकर मैं एक मास्टर के घर पर जाया करता, जो एक प्रकार के सम्बन्धी भी होते थे। वह पढा भी दिया करते, पर सबक एक दिन भी मैं पूरा नही कर सका। उस स्कूल से चला आना मेरे लिए एक बड़ी बात हुई। छपरा पहुंचते ही मानो खोई हुई बुद्धि फिर लौट आई। चौथे दर्जे में छपरा-स्कूल मे बहुत लड़के थे, इसलिए उसके तीन भाग हो गये थे। वहां एक बंगाली मास्टर श्री रसिकलाल राय थे। वह एक सेक्शन के, जिसमें मैं था, क्लास-मास्टर थे। बड़े सज्जन थे। पढ़ाने का तरीका भी बहुत अच्छा था। लड़को के साथ बहुत प्रेम रखते और लड़के भी उनको बहुत मानते थे। यद्यपि वह मेरे क्लास के मास्टर थे, पर दूसरे सेक्शन मे भी पढ़ाया करते और चौथे दर्जे के प्रायः सभी छात्रों को जानते थे। उनकी मेरे ऊपर बड़ी कृपा हो गई। चौथे क्लास में छात्रों की सख्या केवल अधिक ही नही थी, अच्छे-अच्छे छात्र भी थे, जिनमें कई तो मिडिल स्कूल से पास करके छात्रवृत्ति लेकर आये थे। उनका गणित, भूगोल और इतिहास का ज्ञान अच्छा था—चूंकि यह विषय वे हिन्दी में पढ़ चुके थे और यहां पढे हुए विषयों को ही अंगरेजी के माध्यम द्वारा दुहराना था। थोड़े ही दिनों मे मास्टर ने महसूस किया और मेरे साथियों ने समझा कि मैं भी तेज

लड़कों में एक हूं।

रसिकबाबू मुझे विशेष प्यार करने लगे। मैं इतने लड़कों के बीच किसी भी परीक्षा में अभी अव्वल स्थान नहीं पा सकता था, पर रसिकबाबू ने मुझसे उन्हीं दिनों कहा कि देखो, मेहनत करो—अन्त में तुम्हारा और रामानुग्रह का ही मुकाबला रहेगा और दूसरे साथी तेज होने पर भी तुमसे नीचे हो जायगे। न मालूम उन्होंने क्यों ऐसा कहा। पर बात ऐसी ही हुई—केवल उनकी भविष्यवाणी पूरी होने में दो-तीन साल लग गये। सालाना इम्तहान में मेरा स्थान चौथा हुआ। कुछ इनाम मिला, मगर दूसरों को अधिक मिला। तीसरे दर्जे में भी उन्होंने पढ़ाया और एक दूसरे मास्टर ने भी, जिनकी स्मृति आज भी वैसी ही बनी रहती है और जो आज भी जीवित है। उनका नाम बाबू राजेन्द्रप्रसाद है। वह इतिहास पढ़ाया करते थे और उनका ऐसा सुन्दर तरीका था कि सब बातें कथा की तरह याद हो जाती। हथुआ के तरीके के ठीक उलटा तरीका उनका था। अपनी भाषा में जो सब बात अच्छी तरह अदा कर देता, वही अच्छा समझा जाता। मैं यह आसानी से कर सकता था। हथुआ में मेहनत करके बरजबान करने की जो कोशिश की थी, उससे बीच-बीच में अच्छे लच्छेदार शब्द और वाक्य भी आ जाते। अपनी समझदारी और बरजबान करने के प्रयत्न दोनों मिलकर अच्छा रंग बांधते और मास्टरसाहब उसे बहुत पसन्द करते।

तीसरे से दूसरे दर्जे में तरक्की हुई और सालाना इम्तहान में मैंने तीसरा स्थान पाया। इसी प्रकार दूसरे से अव्वल दर्जे में जाने से पहले जो परीक्षा हुई, उसमें मैं अव्वल और रामानुग्रह दूसरे स्थान में आये। रसिकबाबू की बात पूरी हुई। मेरे साथ-ही-साथ मानो रसिकबाबू की भी तरक्की होती गई और चौथे से तीसरे, तीसरे से दूसरे और दूसरे से पहले दर्जे में वह पढ़ाने लगे। हां, इस बीच में बाबू राजेन्द्रप्रसाद की बदली हो गई और रसिकबाबू भी कुछ दिनों के लिए दूसरे स्कूल में चले गये थे। राजेन्द्रबाबू तो वापस नहीं आये, पर रसिकबाबू वापस आ गये। हम लोगों की, खास करके, मेरी खुशी का ठिकाना न रहा।

रसिकबाबू केवल पढ़ाने में ही पटु न थे, लड़कों के चरित्र पर भी ध्यान रखते थे। स्कूल के मास्टरों में से मेरे ऊपर सबसे अधिक और गहरी छाप उनकी ही पड़ी। यों तो बाबू राजेन्द्रप्रसाद का भी और मौलवीसाहब का, जो फारसी पढ़ाते थे, काफी असर रहा, मगर रसिकबाबू तो मानो घर के आदमी थे। उनसे डर भी लगता और प्रेम भी था। वह पढ़ाते भी और अच्छी बातें बताकर विचार भी सुधारते। यद्यपि मैं पटने में दो बरस तक रह आया

था, तथापि इतनी कम अवस्था मे रहा कि मुझे कोई विशेष ज्ञान नही हुआ था। रसिकबाबू कुछ देश की बातें भी बताते थे। कैसे पढ़कर आदमी ऊंचे दर्जे पर पहुंच सकता है, इस ओर भी ध्यान दिलाते। जब मैं एण्ट्रेन्स क्लास में पहुंचा, उन्होंने साफ कह दिया कि मेहनत करो—तुम यूनिवर्सिटी में ऊंचा स्थान पा सकते हो। मैने इसका अर्थ ही नही समझा। मैने इतना ही समझा कि शायद छात्रवृत्ति मिल जाय।

जिस समय मैं दूसरे दर्जे का सालाना इम्तहान दे रहा था, छपरे में बहुत जोरों से प्लेग की बीमारी जारी थी। दो दिन परीक्षा देने के बाद मेरे गले में सूजन आ गया और बहुत ज्वर चढ़ आया। मैं तीसरे दिन से परीक्षा में नहीं बैठ सका। घर पर खबर गई। बाबूजी घबराकर आ गये और मुझे जीरादेई ले गये। वहां उन्होंने खुद दवा की और मै नीरोग हो गया। मालूम नहीं कि मुझे प्लेग हुआ था या केवल गलसुआ, पर शुबहा प्लेग का ही था। काफी घबराहट रही। इसी घबराहट में ठीक समय पर स्कूल की फीस नहीं दी गई। नाम कट गया। परीक्षा का फल देखा गया तो दोनो विषयों मे मैं अव्वल आया था। नम्बर भी इतना अधिक आया था कि बाकी दो विषयों मे परीक्षा दिये ही बिना पास करने के लिए वह काफी समझा गया। उन्ही दिनो नये हेडमास्टर बदलकर आ गये थे। उन्होंने मेरी गैरहाजिरी में ही तरक्की दे दी थी। पर तरक्की होने पर भी फीस न देने के कारण, नाम तो कट ही गया। जब मैं अच्छा हुआ तो कुछ दिनो बाद गया और फिर से नाम लिखाकर पढ़ने लगा।

एक दिन रसिक बाबू ने मुझसे कहा, तुम्हारा नाम कट जाना अच्छा नहीं हुआ। कायदे के मुताबिक एण्ट्रेस पास करने पर उसी लडके को छात्र-वृत्ति मिल सकती है, जो कम-से-कम पूरा एक साल एक स्कूल मे पढता रहा हो। अब तुम नम्बर पाने पर भी छात्रवृत्ति नही पा सकोगे। मगर एक उपाय करो। एक दर्खास्त डाइरेक्टर के पास अपने पिताजी से भिजवाओ कि वह तुमको इस कायदे से बरी करा दे।

एक दर्खास्त मैंने लिखवाकर दी। उसमें यह बात लिखी गई कि प्लेग हो जाने के कारण मैं घर पर रह गया और फीस नही दी जा सकी, जिस वजह से नाम कट गया। इसके अलावा परीक्षा का फल इत्यादि दिखला-कर यह कहा गया था कि आशा की जाती है कि छात्रवृत्ति मिल सकेगी, पर यह नियम बाधक होता है। हेडमास्टर ने दर्खास्त देखकर कहा कि यह फजूल है, नियम बदलने का अख्तियार डाइरेक्टर को भी नही है, इसलिए मैं कैसे दर्खास्त पर सिफारिश कर सकता हूं, मुझे क्या मालूम कि तुमको प्लेग हुआ था या नहीं। इलाज तो डाक्टर का हुआ नही था, इसलिए डाक्टर का सर्टि-

फिकेट भी मैं नहीं दे सकता था। खैर, उन्होंने बिना किसी सिफारिश के ही दर्खास्त ऊपर भेज दी।

रसिकबाबू को इसका अफसोस रहा कि हेडमास्टर ने सिफारिश नहीं की। वह समझते थे कि शायद ऐसी हालत में डाइरेक्टर मंजूर न करे। उन्होंने मुझे सान्त्वना दी कि खैर, दर्खास्त देने से कोई नुकसान तो होता ही नहीं। कायदा था कि दर्खास्त डाइरेक्टर के पास इंस्पेक्टर के मार्फत ही जा सकती थी। इसलिए, यद्यपि वह डाइरेक्टर के लिए थी, तथापि पहले इंस्पेक्टर के पास गई। इंस्पेक्टर ने दर्खास्त पढ़कर उसे डाइरेक्टर के पास भी भेजना जरूरी नहीं समझा और उसे मंजूर करके पत्र लिख भेजा। हेड-मास्टर ने मुझसे क्लास में ही कहा कि तुम्हारी दर्खास्त इंस्पेक्टर ने ही मंजूर करके वापस की है। साथ ही, यह भी कहा कि मैं नहीं जानता, इंस्पेक्टर को इसे मंजूर करने का कोई अधिकार है; पर तुमको अब चिन्ता नहीं करनी है।

रसिकबाबू सुनकर बहुत खुश हुए और मुझे अधिक प्रोत्साहन देने लगे, यहांतक कि वह बिना कुछ लिये अपने घर पर भी बुलाकर सब विषयों में, जहां-कहीं मुझे दिक्कत मालूम होती, बता देते और रोज-रोज ताकीद करते कि इस तरह पढ़ो, यह पढ़ो, वह पढ़ो। उनके दिल में यह बात बैठ गई थी कि मैं यूनिवर्सिटी में भी ऊंचा दर्जा पा सकूंगा। मुझे इसका पता तक नहीं था कि यूनिवर्सिटी में भी मुझ जैसा आदमी ऊंचा दर्जा पा सकता है।

उन दिनों तीन प्रकार की छात्रवृत्तियां मिला करती थीं। दो या तीन, दस रुपयों की, जो जिले-भर में अव्वल दो या तीन लड़कों को—दूसरी दो या तीन, पन्द्रह रुपये मासिक की, जो डिवीजन भर में, जिसमें उन दिनों आजकल के पटना और तिरहुत डिवीजनों के सात जिले शामिल थे, अव्वल दो या तीन लड़कों को—और तीसरी बीस रुपये मासिक की, जो सारी यूनिवर्सिटी-भर में अव्वल दस लड़कों को मिलती थी। बिहार सूबा बंगाल का हिस्सा था और कलकत्ता यूनिवर्सिटी का अधिकार बंगाल, बिहार, उड़ीसा, आसाम और बर्मा पर था। एक ही परीक्षा होती थी और इन सब सूबों के लड़कों में जो सबसे ऊपर आते उन दस लड़कों को ही बीस रुपयों की छात्र-वृत्ति मिलती। मेरी उच्चाभिलाषा हद-से-हद दस रुपया या पन्द्रह रुपयों की छात्र-वृत्ति पाने तक जा सकती थी। इससे ऊपर कभी गई ही नहीं। पर इसके लिए भी मैं समझता था कि काफी परिश्रम की जरूरत है, इसलिए मैं काफी मेहनत करता था।

यूनिवर्सिटी की परीक्षा के पहले स्कूल में परीक्षा हुआ करती। इसमें जो लोग पास होते उनको ही यूनिवर्सिटी की परीक्षा में शामिल होने की

इजाजत मिलती। मैं इस परीक्षा में बहुत नम्बर पाकर सबसे ऊपर आया। यूनिवर्सिटी में परीक्षा देने की आज्ञा तो मिली। पर एक अड़चन का भी सामना करना पड़ा। एक विषय था ड्राइंग, जो ऐच्छिक था। पर छात्रवृत्ति के लिए फल जांचने में उसका भी नम्बर जोड़ा जाता था। यद्यपि मैं और विषयों में तो काफी नम्बर पा चुका था, तथापि ड्राइंग के मास्टर ने ड्राइग में यूनिवर्सिटी में परीक्षा देने की इजाजत देने से इन्कार कर दिया। ड्राइंग में बीस या पच्चीस नम्बर मिल सकते थे। यदि उसमें परीक्षा ही न दू तो ये बीस या पच्चीस नम्बर मिलेगे ही नहीं और छात्रवृत्ति मिलना कठिन हो जायगा। बहुत कहने-सुनने पर मास्टर ने इस शर्त पर इजाजत दी कि उस दिन से परीक्षा के समय तक कम-से-कम एक घंटा रोज ड्राइंग बनाया करूं। मैंने शर्त मान ली और पूरी भी की। अच्छा ही हुआ, क्योंकि शायद ऐसा न करता तो ड्राइंग में पच्चीस नम्बर नहीं आते और जो स्थान मुझे मिला वह नहीं मिलता। अन्त में परीक्षा के दिन निकट आये और मैं कुछ रोज पहले ही परीक्षा देने पटने चला आया।

परीक्षा हुई और पटने से मैं घर आया। भाई भी छुट्टियों में घर आये। उन्होंने कलकत्ते से वापस आकर पटने मे नाम लिखाया, पर बहुत बीमार पड़ गये। डाक्टर की राय से वह पढने के लिए इलाहाबाद चले गये। वहां के म्योर सेण्ट्रल कालेज से उसी साल वह बी० ए० पास कर चुके थे। एम० ए० और बी० एल० पढ़ने के लिए वह फिर कलकत्ते चले गये थे। इलाहाबाद और कलकत्ते में रहने के कारण वहां से छुट्टियों में आकर वह बहुत बातें कहा करते। मैं उन बातों को बड़ी श्रद्धा से सुना करता और जहांतक हो सकता उनको माना भी करता। शायद १८९९ में वह इलाहाबाद से घर आये थे और उन्होंने स्वदेशी की बात कही थी। स्वदेशी कपड़े भी वहां से साथ लाये थे। मैंने उसी समय से स्वदेशी कपड़ा पहनना शुरू किया। जब तक गांधीजी ने खद्दर की बात नही उठाई, स्वदेशी कपड़े ही बराबर पहनता रहा। केवल एक बार कुछ विलायती कपड़े खरीदे थे, जिसका जिक्र आगे आवेगा, नही तो उसी समय से भाई ने स्वदेशी कपड़े का इस्तेमाल खुद शुरू किया और मुझसे भी शुरू कराया। उन्होंने तो फिर कभी विदेशी कोई कपड़ा खरीदा ही नहीं। खद्दर के चल जाने पर खद्दर के सिवा दूसरे प्रकार का स्वदेशी भी कभी नही खरीदा।

स्वदेशी का विचार केवल कपड़ों तक ही सीमित नहीं रहा। जहांतक हो सकता था, और चीजों के खरीदने में भी इसका खयाल रखा जाता था। यूनिवर्सिटी के इम्तहान देने के लिए खास करके देशी कलम और निब भी मैंने ली थी और ऐसी-ऐसी चीजें भाई बराबर इलाहाबाद और कलकत्ते से

ला दिया करते। मुझे अब शक होता है, कि बहुत चीजें जिनको हम अपने भोलेपन से स्वदेशी जानकर खरीद लेते थे, शायद स्वदेशी नहीं थी और दूकानदार हमको ठग लिया करते थे। पर हमारी श्रद्धा अटल थी और हम अपने जानते उनको स्वदेशी समझकर ही लेते थे।

गर्मी की छुट्टियों में हम सब संध्या के समय टहलने जा रहे थे कि किसी-ने आकर कहा कि परीक्षा-फल गजट में निकल गया। हम लोग सीवान गये तो केवल इतना ही मालूम हुआ कि हमने पहले दर्जे (फर्स्ट डिविजन) में पास किया है। अभी छात्रवृत्ति की घोषणा नहीं हुई थी। कुछ दिनों के बाद उसी प्रकार एक दिन संध्या को टहलने के समय एक आदमी ने आकर एक तार दिया, जिसमें लिखा था कि मैं यूनिवर्सिटी में अव्वल आया हूं। भाई ने तार पढ़ा और बहुत खुश हुए। हम लोग दौड़ते-दौड़ते घर आये और बाबू-जी से कहा। भाई ने उनको समझाया कि यूनिवर्सिटी में अव्वल आने का क्या अर्थ है। बाबूजी की तथा घर में मा और सब लोगों की खुशी का ठिकाना न रहा। मैंने, भाई की राय से, पहले से ही ठीक कर रखा था कि पास करने पर मैं कलकत्ते के प्रेसिडेन्सी कालेज में ही पढ़ूंगा। एण्ट्रेन्स की परीक्षा की दर्खास्त भेजने के समय उसमें लिख भी दिया था कि छात्रवृत्ति अगर मिलेगी तो मैं उसे प्रेसिडेन्सी कालेज में ही पढ़कर भोगूंगा। उसी निश्चय के मुताबिक मेरा कलकत्ते जाना जल्दी ही तय पा गया।

छपरा-स्कूल में पढ़ने के समय मैं वहां एक पंडितजी के साथ रहा करता था, जो बड़े नामी ज्योतिषी थे और आज भी हैं। उनका नाम है पंडित विक्रमादित्य मिश्र। वही मेरे अभिभावक के स्थान पर थे। वह स्वयं विद्या-थियों को पढ़ाया करते थे। प्रतिदिन सरजू-स्नान किया करते—किसी दूसरे का छुआ हुआ जल तक भी ग्रहण नहीं करते। पूजा-पाठ खूब हुआ करता। वहीं पर एक छोटी ठाकुरबारी भी हथुआ-राज की थी। इन सबका असर हम छोटे लड़कों के दिल पर वैसा ही पड़ा जैसा पड़ना चाहिए। हम लोग अपनेको कट्टर सनातनी समझते और अगर कोई आर्यसमाजी आ जाता तो उससे बहस भी छेड़ देते। स्कूल में महामहोपाध्याय रघुनन्दन त्रिपाठी हेड-पंडित थे। स्कूल में मैं फारसी पढ़ता था, पर उनके द्वारा घर पर कुछ संस्कृत पढ़ना भी आरम्भ किया। लघुकौमुदी के कुछ सूत्र घोख भी लिये; पर इसको जारी नहीं रख सका। छपरा-स्कूल के संस्मरण आज भी दिल पर असर रखते हैं, जो सुन्दर और सुखमय है।

मुझे याद है कि छुट्टियों के अलावा मैं कभी घर नहीं जाता था। छुट्टियों में घर जाने पर मां अक्सर कुछ अधिक दिनों तक वहां रोक लेना चाहतीं। पर मैं इसपर जल्दी राजी न होता। छुट्टियों में तो जीरादेई

में खूब खेलना ही एक काम रहता और सारा समय प्रायः चिक्का में लगता। भाई भी घर आ जाते और हम लोगों के साथ खेल में शरीर होते।

छपरे का जीवन बहुत सादा था। पास में रुपये शायद ही कभी रहते। वहां एक मोदी से तय था कि वह सब चीजें हमें दिया करेगा। यह प्रथा छपरे में भाई के पढ़ने के समय से चली आती थी। रोजाना पुर्जा लिखकर उसी मोदी के यहां से चावल, दाल, घी, लकड़ी और जलपान के लिए कचौरी-मिठाई भी आ जाती। वह जाति का हलवाई था। इसलिए वह सब चीजें दे सकता था। इसी प्रकार एक कुंजड़िन थी, जो तरकारी पहुचा देती। मोदी जीरादेई आता और पुर्जो को पेश करता, हिसाब होता और उसे रुपये वही मिल जाते। कुंजड़िन को जीरादेई नही आना पड़ता। उसका हिसाब करके वहीं एक कारपरदाज दे देते थे, जो मामला-मुकदमा देखने के लिए छपरे जाया-आया करते। स्कूल की फीस के लिए रुपये भी वही देते। अगर कपड़े की जरूरत होती तो वही खरीद देते। इस प्रकार छपरे मे पढने के समय मेरे हाथों में रुपये शायद ही कभी आते।

घर की अवस्था कुछ अच्छी नहीं थी। जमीदारी तो उतनी ही थी जितनी बाबा और नूनू के समय में। मगर उन लोगो के मरने के बाद से बाबूजी कुछ तरद्दुद में पड़ गये थे। हम लोगों के खर्च के लिए नगद रुपये जुटाने में उन्हें कष्ट होता। मोदी को भी हमेशा नगद जीरादेई में नहीं मिलता। कभी-कभी किसी गाव के तहसीलदार के नाम चिट्ठी मिलती और वह जीरादेई मे उस गांव पर जाता और वहां से रुपये लेता। छपरे का खर्च कम था और इस तरह किसी प्रकार चल जाता। मुझे कभी रुपये की कमी का अनुभव नहीं हुआ। एक और कारण यह था कि भाई इसपर ध्यान रखते और जब छुट्टियों मे आते तो कुछ-न-कुछ प्रबन्ध करा जाते। पर भाई का खर्च महीने-के-महीने इलाहाबाद भेजना पड़ता। इसमें बाबूजी को प्रायः कष्ट हुआ करता। पर उन्होने निश्चय कर लिया था कि चाहे जो हो, लड़को को पढ़ाने का खर्च किसी तरह से जुटाना ही होगा।

एक दीवान थे, जो जमीदारी का इन्तजाम किया करते थे। वह बाबा के समय से ही थे और जमीदारी का पूरा हाल जानते थे। बाबूजी ने बाबा के रहते जमींदारी देखी नहीं थी, इसलिए उन्हें दीवानजी पर भरोसा करना पड़ता। मुझे याद है, भाई को परीक्षा की फीस देनी थी; उनका पत्र आया कि किसी निश्चित तिथि के पहले पचास या साठ रुपये फीस दाखिल कर देनी होगी, नही तो एक साल के लिए इम्तहान से वंचित रहना होगा। रुपये बाबूजी के पास थे नहीं। दीवानजी देहात से रुपये दे नहीं सके। बाबूजी बहुत तरद्दुद में पड़े। मां का सोने का कंठा बन्धक रख कही से

रुपये मंगाकर समय पर भेजे। सबकुछ रहते हुए ऐसी अवस्था पहुंच गई थी कि कभी-कभी रसोई बनने में भी देर हो जाती थी। भाई समझते थे कि यह सबकुछ दीवानजी की बदइन्तजामी से है और बहुत कुढ़ते थे, पर कुछ कर नहीं सकते थे। छुट्टियों में एक बार आकर उन्होंने कुछ कारबार संभालना शुरू किया; पर जबतक इलाहाबाद पढ़ते रहे, कुछ विशेष कर नहीं सके।

जमीदारी की आमदनी सालाना प्रायः सात-आठ हजार की थी, जिसमें सरकारी मालगुजारी देकर पाच से छ. हजार की बचत थी। सैकड़ों बीघे जीरात के खेत थे, जिनमे काफी धान, गेहूं, मकई, अरहर, जव इत्यादि होते और ऊख से गुड़ बनाकर कुछ नगद रुपये भी आ जाते। यही खेत थे जो हमारे बचपन में हमेशा इतना अन्न दिया करते कि घर भरा रहता। गाय-भैंस दूध काफी दे देती और कई जोड़े बैल भी रहते। पर इस समय न मालूम क्या हो गया था कि घर-खर्च के लिए भी पूरा धान नहीं होता और अन्न भी खरीदना पड़ता। बाबूजी ने नुकसान-ही-नुकसान देखकर कुछ दिनों के लिए खेती का काम बन्द भी कर दिया था। वे दिन कुछ दुःख के थे, पर बाबूजी धीरज से रहते और लोगों से बातों में कहा करते कि हमारे दोनों लड़के ही हमारे धन है।

इस सम्बन्ध में एक और घटना यहां कह देने योग्य है। नूनू के मरने के बाद बाबा और बाबूजी रह गये। हम लोग बच्चे थे। हम ऊपर कह चुके हैं कि बाबा ने ही सारी जमीदारी खरीदी थी और सबकुछ उनका ही उपार्जन किया हुआ था। नूनू के केवल एक लड़की थी। नूनू के मरने के बाद किसीने बाबा को समझाया कि उनके (बाबा के) मरने के बाद उस लड़की को और हमारी चाची को कष्ट हो सकता है, इसलिए कुछ-न-कुछ प्रबन्ध कर देना चाहिए। बाबा ने एक वसीयतनामा लिखने का निश्चय किया और वह सीवान से तैयार होकर आया। उसके अनुसार चाची के खर्च के लिए प्रायः एक हजार रुपये सालाना की आमदनीवाले दो गांव उनकी जिन्दगी तक के लिए दिये गए थे और बहन को सारी जमीदारी में से सात आने का हिस्सा दिया गया था, और हम लोगों को बाकी नौ आने।

खानदान बराबर इजमाल रहा था, इसलिए यह निश्चित नहीं था कि बाबा इस प्रकार की वसीयत करने के अधिकारी थे या नहीं। बगैर वसीयत के उनके मरने पर सारी सम्पत्ति के मालिक बाबूजी हो जाते, चाची केवल खोरिश की हकदार होती और लड़की को कोई हिस्सा न मिलता। इसलिए कुछ लोगों ने सलाह देकर वसीयत करने की बात बाबा को सुझाई। बाबूजी को इसकी खबर नहीं दी गई। सबकुछ तैयार हो जाने पर एक दिन रजि-

स्ट्रार रजिस्ट्री करने के लिए जीरादेई आये। लोगों ने राय दे दी कि बाबूजी अगर वसीयतनामे पर हस्ताक्षर कर देंगे तो फिर उनको उसके खिलाफ आवाज उठाने का हक नहीं होगा और सब बात पक्की हो जायगी। रजिस्ट्रार के जीरादेई पहुंचने पर ही बाबूजी को सब बातें मालूम हुईं। बाबा ने उनसे हस्ताक्षर कर देने को कहा। बाबा के दिल मे कुछ सन्देह पैदा कर दिया गया था कि बाबूजी इसमें शायद उज्र करेंगे। बाबूजी ने बाबा से साफ-साफ कहा कि आप जो हुकुम दें, मुझे मंजूर है, आप ही ने हमको पाला-पोसा है, आप ही ने सबकुछ पैदा किया है, आप अगर सोलह आने भी चन्द्रमुखी को दे दें तो मुझे कुछ उज्र नहीं है, मेरे लिए धन तो दोनों लड़के हैं, उनको आप आशीर्वाद दे दें। हम लोग भी वहां बुलाये गए। बाबा फूट-फूटकर रोने लगे और उन लोगों को गालियां देने लगे जिन लोगों ने बातें बनाकर उनके मन में तरह-तरह के सन्देह पैदा करने का प्रयत्न किया था। बाबूजी ने गवाही बना दी और वसीयतनामा को रजिस्ट्री करके रजिस्ट्रार चले गये।

दुर्भाग्यवश, जिस समय मैं हथुआ-स्कूल में पढ़ता था, उसी समय, कुछ दिनों तक बीमार रहकर, हजार कोशिश के बाद भी, चन्द्रमुखी अविवाहित मर गई। चाची बहुत दिनो तक जीती रही और मिली हुई आमदनी को तीर्थ-व्रत मे खर्च करती रही। उनके मरने के बाद सारी जमींदारी हम दोनों भाइयों को पूरी-पूरी मिल गई। वह प्रायः सभी तीर्थों मे गई थी। इसमें उनका साथ देनेवाली मेरी विधवा बहन थी, जो विधवा होने के बाद से बराबर मेरे ही घर में रही हैं और अभी तक है। इन दोनों मे तीर्थ-व्रत में मानो होड़ होती थी और शायद ही कोई स्नान या समैया होता हो, जिसमें ये शरीक न होती हों। दोनो ने चारों धाम अर्थात् जगन्नाथ, रामेश्वर, द्वारका और बदरीनाथ के दर्शन किये। बहन तो बदरीनाथ दो-तीन बार गई हैं। मेरी मां घर पर ही रहतीं, कभी-कभी तीर्थ में जाती। मुझे याद है कि स्कूल में पढ़ने के जमाने में ही एक बार मां-चाची और बहन के साथ मैं अयोध्याजी और दूसरी बार मथुरा-वृन्दावन दर्शनार्थ गया था। इन यात्राओं में खर्च काफी पड़ता था और तकलीफ भी काफी होती थी। उस समय मैंने अनुभव किया कि तीर्थों में पंडा लोग बड़ा काम किया करते हैं। उनके ही घर में हम लोग ठहरे थे। वहांपर वे लोग बराबर साथ घूम-घूमकर सब स्थानों मे दर्शन कराते और किसी प्रकार की तकलीफ नहीं होने देते। किसी जमाने में, जिसका मुझे स्मरण नहीं है, बाबा, बाबूजी, नूनू वगैरह भी इन तीर्थों में गये थे और वहां के पंडों की बहियों में उनके नाम लिखे हैं। पंडों के लिए कुछ-कुछ सालाना की तरह पर भी मुकर्रर था, जो वे

हर साल जीरादेई आकर ले जाते थे। इन कारणों से वे हम लोगों की विशेष खातिरदारी करते और हमारी यात्रा में भी उनको दान तो मिलता ही था। दान-पुण्य, पूजा-पाठ, तीर्थ-यात्रा, स्नान आदि में घर-भर की 'लीडर' बहन थीं और आज भी हैं। घर में एक-न-एक प्रकार की पूजा बराबर लगी ही रहती थी। कुछ-न-कुछ आज भी वही बात है।

इस प्रकार स्कूल में पढ़ने का समय बीता था। घर के साथ मेरा सम्बन्ध कम ही रहता था। केवल छुट्टियों में आना-जाना होता। शादी हो गई थी, पर स्त्री से मुलाकात कम ही होती। छुट्टियों में आने पर रात के समय भेंट हो जाती। एक बार मेरी स्त्री को हैजा हो गया। मैं उस समय घर पर ही था। बाबूजी के दवा-इलाज करने से वह अच्छी हो गई। पर बाबूजी बहुत चिन्तित हो गये थे। मेरी हालत भी कुछ अच्छी नहीं थी। किसीका अपनी स्त्री के सम्बन्ध में फिक्र रखना उन दिनों की प्रथा के अनुसार बदमलीकापन समझा जाता था। मैं चिन्तित था। जानना और देखना भी चाहता था, पर किसी से न तो पूछ सकता था और न देखने की ख्वाहिश जाहिर कर सकता था। घर के लोगों का ध्यान शायद इस ओर गया ही नहीं था कि मुझे भी उस बीमारी में दिलस्चपी है। खैर, उसके अच्छी हो जाने पर फिर कोई बात नहीं रही और मुझे शान्ति मिल गई। अगर कुछ हालत खराब होती तो न मालूम बदमलीकापन का बन्धन कबतक मुझे बांध रखता।

इस प्रकार घर में बराबर बन्द रहते-रहते मेरी भौजाई और मेरी स्त्री दोनों का स्वास्थ्य खराब हो जाना स्वाभाविक था। ऐसा ही हुआ भी। दोनों ही कुछ दिनों तक, एक के बाद दूसरी, गठिया से तकलीफ पाती रहीं, जो, बहुत दिनों के बाद, जब वे आंगन में खूब घूमने-फिरने लगीं तभी छूटी।

: ८ :

कालेज में दाखिला

इम्तहान का नतीजा मालूम हो जाने के बाद मैं छपरे आया और वहां यह पता लगा कि केवल मेरा ही नतीजा अच्छा नही हुआ है, बल्कि स्कूल-भर का नतीजा बहुत अच्छा हुआ। मेरे साथी रामानुग्रह को भी बीस रुपये की छात्रवृत्ति मिली है और दो लडकों को पन्द्रह रुपये की और दो को दस रुपये की। इनके अलावा अव्वल दर्जा हासिल करनेवालो की संख्या भी काफी है और एकवारगी फेल भी शायद एक-दो ही हुए है। इस प्रकार का नतीजा छपरा-जिला-स्कूल का कभी नही हुआ था। बिहार-भर मे किसी भी स्कूल का ऐसा अच्छा नतीजा कभी नही हुआ था। इसलिए स्कूल के लोग बहुत खुश थे और छपरे के वकीलो मे भी बड़ी खुशी थी। बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद छपरे मे वकालत शुरू कर चुके थे। अभी नये थे, बहुत उत्साह था। थोड़े ही दिनों मे लोगो पर, विशेष करके वकालतखाने मे, उनका कुछ प्रभाव भी हो गया था। यद्यपि वह मेरे गाव से तीन कोस पर के ही रहनेवाले थे, पर मैं उनको जानता नही था। जब मै छपरे आया तो उन्होंने भाई से राय करके एक छोटा-मोटा तवाजा (पार्टी) का प्रबन्ध किया जिसमें मैं भी बुलाया गया; पर मै ठीक उसी समय बीमार पड़ गया, शरीक नही हो सका।

छपरे में पहुंचकर मैं सबसे पहले रसिकबाबू से मिला। वह बहुत ही प्रसन्न थे। उन्होने तुरत आम और मिठाई खिलाई। मुझे बहुत देर तक समझाते रहे कि इस नतीजे से मेरी जवाबदेही बहुत बढ़ गई। यह पहला अवसर था कि कोई बिहारी यूनिवर्सिटी मे अव्वल हुआ है। बंगाल के लड़के इस बात को बरदाश्त नही कर सकेंगे। वह बहुत परिश्रम करके मुझे एफ० ए० की परीक्षा मे हराने का प्रयत्न करेंगे। कुछ बुरे लडके मुझे दूसरे प्रकार से भी बिगाड़कर गिरा देने से बाज नही आवेंगे। इसलिए मुझे कलकत्ते मे बड़ी सावधानी और चौकसी से रहना होगा, और परिश्रम करके जो स्थान मैंने पाया है, उसे कायम रखना चाहिए। मुझे सब बातों की सूचना उनको देते रहना चाहिए और किसी तरह से सुस्ती या गफलत नहीं करनी चाहिए। कलकत्ता बहुत बड़ा शहर है। उसमें खेल-तमाशे भी बहुत

हैं। बुरी चीजें भी बहुत है। सबसे बचना चाहिए और कालेज मे जहांतक हो सके मेहनत करके, अपना स्थान बनाये रखना चाहिए। उनके दिल में यह बात बैठी थी कि मेरे लिए अब किसी-न-किसी तरह एफ०ए० मे भी फिर फर्स्ट होना जरूरी है और अगर मैं इसमे चूका तो बहुत खराब होगा। इसीलिए इस बात पर उन्होंने तरह-तरह मे जोर दिया और मुझे बहुत समझा-बुझाकर कलकत्ते जाने के लिए रवाना किया। अपने डेरे पर पहुचते-पहुंचते मुझे बुखार हो गया और यात्रा रुक गई। कुछ दिनों के बाद जब अच्छा हुआ तो भाई के साथ कलकत्ते पहुचा।

कलकत्ते मे भाई पहले से ही ईडन-हिन्दू-होस्टल में रहा करते थे और डफ कालेज मे एम०ए० क्लास मे हिस्ट्री और रिपन कालेज मे बी०एल० के लिए कानून पढा करते थे। मैं भी उनके साथ ही वहां गया। यह पहला ही मौका था कि मैं कलकत्ते गया। वहा के मकानों, सड़कों, ट्रामगाडी इत्यादि को देखकर चकित रहा और जब होस्टल मे पहुचा तो वह मेरे छपरे के डेरे के मुकाबले मे महल-जैसा लगा। मैं इतनी देर करके पहुंचा था कि होस्टल मे विद्यार्थी खचाखच भर गये थे, एक भी जगह नही थी। मैं नबतक भाई के साथ ही उनके ही कमरे मे ठहरा। जब प्रेसिडेन्सी कालेज मे पहुचा तो मालूम हुआ कि वहां भी काफी लडके आ चुके है और नये लोगों की भरती बन्द हो गई है। डाक्टर पी० के० राय प्रिंसिपल थे। भाई ने उनसे मुलाकात की और उन्होंने मुझे भरती कर लेने का हुक्म दिया। कालेज मे तो मैं दाखिल हो गया, पर होस्टल मे तो जगह थी ही नही। उसके लिए भी कोशिश की गई और जिस कमरे मे भाई रहते थे, उसीमे चार की जगह पाच चौकियां रख दी गईं और मैं रहने लगा।

जब मैं क्लास में गया तो वहां कुछ दूसरा ही समा था। मैंने इतने सिर-खुले बगाली लड़के एक साथ कभी देखे ही नही थे। उनमें कुछ कोट-पतलून-हैट पहननेवाले भी थे। वे ऐसे लोगों के ही लड़के थे, जिनके पिता विलायत से लौटकर बैरिस्टरी या डाक्टरी वगैरह कर रहे थे। मैंने किसी हिन्दुस्तानी लड़के को उस दिन तक हैट-कोट पहनते देखा ही नही था। इससे मेरे दिल में शक हुआ कि ये लोग एंग्लो-इंडियन या क्रिस्तान होंगे। पर जब नाम पुकारा गया तो मालूम हुआ कि ये हिन्दू ही है। उन दिनो यह प्रथा थी कि मुसलमान लड़के नाम के लिए तो मदरसा के छात्र समझे जाते थे, पर एफ० ए० क्लास में पढ़ते थे प्रेसिडेन्सी कालेज मे ही। उनको फीस बारह रुपये के बदले चार रुपये मासिक देनी पड़ती और उनका नाम अलग रजिस्टर में लिखा रहता। और सब बातों में वे प्रेसिडेन्सी कालेज के लड़कों से किसी बात में अलग नही थे। उनका होस्टल अलग था। टोपी-

वाले वहीं देखने में आये और दो-एक मारवाड़ी लड़के भी। कालेज में भी सब लड़के एक क्लास में नहीं समाविष्ट हो सके थे, इसलिए तीन विभाग कर दिये गए थे। पढ़ाई एक ही थी।

मैं उन दिनों चपकन, पाजामा और टोपी पहनकर कॉलेज-क्लास में जाया करता। एफ० ए० में अंगरेजी एक दूसरी भाषा और हिस्ट्री, लौजिक (तर्कशास्त्र), गणित के अतिरिक्त सब लड़को को फिजिक्स (पदार्थ-विज्ञान) और केमिस्ट्री (रसायन-शास्त्र) भी पढ़नी पड़ती थी। एफ० ए० में डाक्टर जे० सी० बोस फिजिक्स और डाक्टर पी० सी राय केमिस्ट्री पढ़ाया करते थे। मैं जब पहले दिन कालेज में नाम लिखाकर पहुंचा तो पहला घंटा केमिस्ट्री का था। वहां डाक्टर पी० सी० राय आये। उन्होंने हाजिरी लेनी शुरू की। मैं सबसे पीछे की एक बेंच पर बैठा था। प्रेसिडेन्सी कालेज के सब लड़कों के नम्बर पुकारे गये और सबने उत्तर दिये। मुझे अपना नम्बर मालूम ही नहीं था। अन्त तक मैं इन्तजार करता रहा। जब आखिरी नम्बरवाले लड़कों ने भी जवाब दे दिया और वह रजिस्टर बन्द करने लगे तो मैंने खड़े होकर कहा कि मैं अपना नम्बर नहीं जानता हूं। उन्होंने मेरी ओर आंख उठाकर देखा और कहा, ठहरो, अभी मैंने मदरसा के लड़कों की हाजिरी नहीं ली है, और यह कहकर झट दूसरा रजिस्टर उठाया। मै समझ गया कि पाजामा-टोपी के कारण उन्होंने मुझे मुसलमान मान लिया है। मैंने कहा कि मैं मदरसा में नहीं पढ़ता हू, प्रेसिडेन्सी कालेज में आज ही नाम लिखवाया है, इसलिए नम्बर नहीं जानता। उन्होंने नाम पूछा और जब मैंने नाम बताया तब सब लड़के मुडकर मेरी ओर देखने लगे; क्योंकि वे तो जानते थे कि मेरे नाम का कोई लडका उस साल यूनिवर्सिटी में फर्स्ट हुआ है। डाक्टर राय ने कहा कि अभी नाम दर्ज नहीं है, जब दर्ज हो जायगा तो आज की भी हाजिरी वह पीछे लिख देंगे। फिर उन्होंने इतनी देर से नाम लिखाने का कारण पूछा और इस प्रकार मेरी उनसे पहली मुलाकात हुई और दूसरे साथियो ने भी पहले-पहल मुझे देखा।

हिन्दी जाननेवाले लड़के तो क्लास मे बहुत कम ही थे और स्वभावतः मेरी घनिष्ठता मारवाड़ी देवीप्रसाद खेतान से दो ही एक दिन के भीतर हो गई। इसका एक विशेष कारण यह भी था कि वह भी मेरी तरह बिहार से ही, जहां उनके पिताजी जेलर थे, पास करके आये थे। बगाली लड़कों से भी जान-पहचान शुरू हो गई। उनमें से कुछ ऐसे निकले, जिनके साथ जल्द घनिष्ठता हो गई और आजतक जारी है। केवल दो-तीन के नाम यहां देता हूं। योगेन्द्रनारायण मजुमदार, जो इस समय बंगाल के स्टैंडिंग कौन्सल हैं, गिरीशचन्द्र सेन, जो डिप्टी-कलक्टर हुए और इस समय गवर्नमेन्ट के सेक्रे-

टरी हैं और अविनाशचन्द्र मजुमदार जो गवर्नमेन्ट के ट्रांसलेटर रहे हैं। जे० एम० सेन गुप्त, जो दुर्भाग्यवश अब नहीं रहे, मेरे साथ ही पढ़ते थे और उसी होस्टल में रहा करते थे।

मैं एक हफ्ते से कम ही कालेज में हाजिरी दे सका कि फिर से जाड़ा-बुखार शुरू हो गया। छपरे में ही जो मलेरिया का आक्रमण हो गया था, वह फिर और जोरों से आया। मै महीनोंतक वहा बीमार रहा। होस्टल के डाक्टर ने हजार कोशिश की, पर रोजाना जाडा-बुखार हो जाता। कभी एक-दो दिन अच्छा भी हो जाता तो फिर तीसरे-चौथे दिन जोरों से जाड़ा हो जाता। भाई बहुत परेशान रहे। एक दिन का जिक्र है कि वहां टाउन हाल में बड़ी सभा होनेवाली थी। लार्ड कर्जन की किसी कार्रवाई पर लोकमत प्रकट करने के लिए बगाल के बड़े-बड़े नेता और व्याख्याता बोलनेवाले थे। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी इत्यादि के भाषण होनेवाले थे। दो-तीन दिनों से मैं ज्वर-मुक्त था। सबने समझा कि अब मैं अच्छा हो गया हूं। भाई भी होस्टल के सब लड़को के साथ सभा मे चले गए। मेरे कमरे मे या आस-पास के कमरे मे भी कोई नही था। मै अकेला ही था। जाड़ा आ गया और उसके बाद बुखार चढ़ना शुरू हुआ। मै पड़ा-पड़ा थर्मामीटर लगा-लगाकर देखता रहा। ज्वर चढ़ते-चढ़ते एक सौ छः डिग्री से भी अधिक हो गया। मै घबराता। मगर करूं तो क्या करूं। कोई पास था नही। कभी-कभी ऐसा मालूम होता कि अब भाई से मुलाकात नही होगी। आहिस्ता-आहिस्ता बुखार उतरने लगा। भाई के वापस आने तक बुखार बिलकुल उतर गया। जैसा भाई छोड़कर गये थे वैसा ही हो गया। लौटने पर उनसे सब हाल कहा। उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब अच्छे रहने पर भी छोड़कर कही नही जायंगे। इस प्रकार बहुत दिन बीत गये और दशहरे की छुट्टी के दिन आ गये। मैं इतने दिनों में केवल चार-पाच ही दिन कालेज में जा सका था।

छुट्टियो में किसी प्रकार घर आया। वहां अच्छा हो गया। छुट्टी प्रायः एक महीने की थी। इसमें चगा होकर कलकत्ते गया और वहां पहुचते ही फिर ज्वर आ गया। जी बहुत घबराया। भाई भी बहुत चिन्तित हुए। उन दिनों यह नियम था कि कालेज में जितने लेक्चर हों, उनमें एक निश्चित अनुपात मे जरूर हाजिर रहना चाहिए, नही तो परीक्षा देने की इजाजत यूनिवर्सिटी नही देगी। भय होने लगा कि इतनी गैरहाजिरी के बाद शायद मैं हाजिरी पूरी नही कर सकूगा और परीक्षा देने की इजाजत ही नही मिलेगी। इसके अलावा पढ़ाई तो छूट ही गई थी। कभी-कभी विचार होता कि कलकत्ता छोड़कर इलाहाबाद चला जाऊं। उसमें भी दिक्कत थी कि बीच साल में एक यूनिवर्सिटी से दूसरी मे जाने की इजाजत दो यूनिवर्सि-

टियों में मिलेगी या नही, और फिर वहां जाकर भी वहां की हाजिरी पूरी नही होगी तो एक बरस तो यों ही चला जायगा। रसिकबाबू ने अपने स्थान को बचा रखने की जो बात कही थी, वह भी याद आ जाती और मन बहुत दुखी होता। मगर लाचारी थी। कुछ बस नही चलता। अन्त में डाक्टर नीलरतन सरकार के पास भाई ले गये। उन्होने नुस्खा दिया। ज्वर आना बन्द हुआ और मै चंगा हो गया। यह नुस्खा प्रायः एक बरस तक चलता रहा। न मालूम इस साल-भर मे कितना कुनैन खा लिया होगा। होमियोपैथिक डाक्टर ने पच्चीस-छब्बीस बरसो के बाद कहा कि आज का दमा उसी कुनैन का नतीजा है। मालूम नही, क्या सत्य है!

अच्छा हो जाने पर मैं बहुत परिश्रम से पढ़ने लगा। तीन-चार महीना पढ़ाई में पिछड़ गया था। उसको पूरा करना था और साथ ही यह भी चिन्ता थी कि यूनिवर्सिटी मे अपनी जगह नही खोनी चाहिए। प्रत्येक विषय को मैं इस खयाल से पढ़ने लगा कि मैं इसमें फर्स्ट होऊं। मैं प्रत्येक विषय की एक पुस्तक के अलावा, जो क्लास में पढ़ाई जाती, प्रायः तीन-चार और पुस्तकें पढ गया। मैं अपनेको हिसाब में कमजोर समझता था, इसलिए उसपर विशेष ध्यान दिया और अलजबरा, ट्रिगोनोमिट्री, कौनिकसेक्शन की जितनी पुस्तकें मिल सकी और उनमें जितने उदाहरण दिये गए थे, एक-एक करके सबको बना लिया। यूनिवर्सिटी मे जितने प्रश्न उस समय तक पूछे गए थे, एक-एक को उसी तरह से लगा दिया।

मेरी इच्छा थी कि एफ० ए० पास करके मै साइन्स पढ़ूगा। डाक्टर जे० सी० बोस और डाक्टर पी० सी० राय के पढ़ाने का तरीका इतना अच्छा था कि उस ओर रुचि बहुत हो गई और उन विषयो के अधिक जानने का शौक हो गया। यों तो हिस्ट्री पढानेवाले प्रोफेसर विनयेन्द्रनाथ सेन भी बहुत अच्छे शिक्षक ही नही, बल्कि बहुत उच्च कोटि के सज्जन पुरुष भी थे, जिनकी कृपा मुझपर बहुत रहती थी, और जो बीमारी की हालत में होस्टल में आकर मुझे देख भी गये थे। पर अधिक झुकाव विज्ञान की ओर ही था। उन विषयों में जी लगने लगा और जहांतक पुस्तकें मैं पा सका, पढ़ गया। उन दिनों क्रियात्मक रूप से लैबोरेटरी में एफ० ए० के लड़कों को कुछ नही करना पड़ता था; पुस्तकीय ज्ञान ही पर्याप्त समझा जाता था। मैंने प्रायः बी० एस-सी० क्लास तक का पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त कर लेने की चेष्टा की थी। एक ही दिक्कत मालूम होती थी। ऊपर जाकर अधिक गणित की जरूरत होगी और इतने परिश्रम के बाद भी गणित में मेरा दिमाग नहीं चलता था। इसलिए उसपर अधिक परिश्रम करता।

इस प्रकार दो बरस बीते। परीक्षा के दिन निकट आये। कुछ बंगाली

साथियों से मित्रता हो गई। रसिकबाबू ने जो मुझे डरा दिया था, उसका मुझे कहीं कुछ भी आभास नहीं हुआ। साथियों के साथ दिन बहुत खुशी और प्रेम के साथ बीते। न तो कहीं किसीकी बुरी दृष्टि पड़ी और न मुझे किसीकी भावनाओं का शिकार ही बनना पड़ा। सबके साथ सहृदयता बढ़ती गई और कुछके साथ तो बड़ी घनिष्ठता हो गई, जो आज भी मुलाकात होने पर याद आ जाती है, जैसे वह कल की बात हो।

यूनिवर्सिटी की परीक्षा के पहले क्लास में कालेज की ओर से परीक्षा होती है। वह हुई और मेरा नम्बर प्रायः प्रत्येक विषय में सबसे ऊपर आया। एक-दो विषय में लेक्चर की हाजिरी जितनी होनी चाहिए थी, नहीं थी। प्रोफेसर ने मेहरबानी करके कुछ अधिक लेक्चर दिये, जिसमें यूनिवर्सिटी के नियम मेरे परीक्षा देने में बाधक न हों और अनुपात के अनुसार हाजिरी हो जाय। परीक्षा देने की इजाजत के पहले एक दिलचस्प घटना हुई। मैंने प्रायः प्रत्येक विषय में सबसे अधिक नम्बर पाया था, पर जब कालेज-परीक्षा का फल बताया जाता था तो कहा गया कि मुझे यूनिवर्सिटी की परीक्षा में शरीक होने की इजाजत नहीं दी गई! उस समय एक अंगरेज प्रिन्सिपल आ गये थे। परीक्षा-फल वह स्वयं सुनाने के लिए आये। सब लड़के वहां जमा थे। उन्होंने एक-एक करके नाम बताना शुरू किया। मेरा नाम ही नहीं कहा। जो फिहरिस्त तैयार की गई थी, उसमें गलती से मेरा नाम ही छूट गया था—लिखा नहीं गया था। जब नाम नहीं कहा गया, सब लोगों को आश्चर्य हुआ। मैं तो घबरा गया। मैंने कहा कि मेरा नाम नहीं पढ़ा गया। प्रिन्सिपल ने तो एफ० ए० में पढ़ाया नहीं था; किसी लड़के को जानते नहीं थे। पूछने पर झट उत्तर दिया, "तुमने पास नहीं किया, इसलिए तुम्हारा नाम नहीं कहा गया।" मैंने फिर कहा, "ऐसा हो नहीं सकता; मैंने जरूर पास किया होगा।" उत्तर मिला, "ऐसा हो नहीं सकता, अगर पास किया होता तो जरूर नाम रहता।" मैंने फिर कहना चाहा। वह बिगड़ गये और बोले, "चुप रहो, नहीं तो जुर्माना करूंगा।" मैंने फिर हिम्मत करके कुछ कहना चाहा। उत्तर मिला, "तुमको पांच रुपये जुर्माना करता हूं।" मैं फिर बोला। उत्तर दिया, "दस रुपये जुर्माना।" इस प्रकार पांच-पांच रुपये बढ़कर, जिस तरह नीलाम में डाक बढ़ती है, वह बीस या पच्चीस तक पहुंचे। एक तमाशा था! मेरी समझ में न आया कि क्या करूं। इतने में कालेज के हेडक्लर्क ने, जो मुझे जानता था, उनके पीछे से मुझे इशारा किया कि चुप रहो, सब ठीक हो जायगा। मैं चुप हो गया।

दूसरे दिन फार्म वगैरह जो भरना होता है, उसे भरकर दे दिया और फीस दाखिल कर दी। किसीने कुछ पूछा ही नहीं। उस क्लर्क ने गलती

सुधार दी और प्रिन्सिपल से उनकी या अपनी गलती बताई या नही, इसका मुझे पता नही। जुर्माना तो किसीने मांगा ही नही और न मैने ही अपनी ओर से दाखिल करने की कोशिश की। हां, इस घटना से छपरे मे ड्राइंग-मास्टर ने एण्ट्रेंस-परीक्षा देने की इजाजत मे जो बाधा डाली थी, वह बात फिर याद हो गई।

एफ० ए० की परीक्षा के लिए मैंने खूब तैयारी की। परीक्षा का नतीजा भी एक प्रकार से ठीक निकला। मै उसे एक प्रकार से ठीक निकलना इस-लिए कहता हूं कि यद्यपि मैं सबसे ऊपर आया, तथापि मेरी यह इच्छा पूरी नही हुई कि मैं साइंस में और गणित मे सबसे ऊपर आऊं। इन विषयो में अधिक परिश्रम किया था। अंगरेजी, फारसी, लौजिक इत्यादि मे उनके मुकाबले बहुत कम परिश्रम किया था। पर जब परीक्षाफल निकला तो मालूम हुआ कि अंग्रेजी, फारसी और लौजिक मे मैंने सबसे अधिक नम्बर पाये है, और दूसरे विषयों मे औरों से थोड़े-थोड़े नम्बरों से पीछे पड गया हूं—यद्यपि सब मिलाकर औरों से ऊपर हूं। एण्ट्रेन्स-परीक्षा के फलस्वरूप सबसे अधिक नम्बर पाने के लिए बीस रुपये मासिक की छात्रवृत्ति के अलावा अंगरेजी में भी अव्वल होने से दस रुपयें मासिक की अलग छात्र-वृत्ति एक बरस के लिए मिली थी। एफ० ए० मे सबसे ऊपर होने के लिए पच्चीस रुपये मासिक की दो बरस तक के लिए छात्रवृत्ति मिली। इसके अलावा अंगरेजी में अव्वल होने के लिए दस रुपये मासिक की एक छात्र-वृत्ति, और भाषाओ मे फर्स्ट होने के लिए पन्द्रह रुपये मासिक की छात्र-वृत्ति—जिसे डफ-स्कालरशिप कहते थे—मिली, और लौजिक मे फर्स्ट होने के लिए पुस्तको का इनाम मिला। इसका नतीजा हुआ कि मैंने समझ लिया, मैं गणित मे सफल नही हो सकूगा और इसलिए विज्ञान भी मेरे लिए कठिन होगा।

परीक्षाफल के बाद मैंने पूर्व निश्चय को बदल दिया और विज्ञान की ओर न जाकर बी० ए० क्लास मे नाम लिखाया। उन दिनों एफ० ए० तक की पढ़ाई सबके लिए एक होती थी। सब विषय पढ़ने पडते और तब कोई बी० एस-सी० में नाम लिखाकर साइन्स पढ़ता और कोई बी० ए० में नाम लिखाकर अंगरेजी और फिलासफी पढ़ता। बी० ए० मे नाम लिखा लेने के बाद डाक्टर पी० सी० राय से मुलाकात हुई। उन्होंने पूछा कि तुमने साइन्स में क्यों नहीं नाम लिखाया ? (Why have you deserted our standard ?) मैंने उत्तर दिया कि मैं गणित में कमजोर हूं। उन्होंने उत्तर दिया कि तुमने मुझसे राय क्यों नही ली। मैं भी गणित कम जानता हूं, पर इसलिए मैं विज्ञान से भागता नही हूं। उनको अफसोस रहा, पर अब बहुत

देर हो चुकी थी और बदलना कठिन था।

दो बरस तक पूरे ध्यान से मैंने रसिक बाबू की बात याद करके फिर फर्स्ट होने के लिए कोशिश की और उसमें सफल रहा। रसिकबाबू इस बीच में बदलकर कलकत्ते चले आये थे। मुलाकात करने पर बहुत खुश हुए। कभी-कभी जाकर उनसे मिलता। कुछ दिनों के बाद उनकी मृत्यु हो गई।

: ९ :

परीक्षा के प्रति अश्रद्धा

बी० ए० क्लास में पहुंचकर मेरी हालत बदल गई। परीक्षा की ओर से रुचि कुछ हट गई। ध्यान और चीजो की ओर कुछ बंट गया। बचपन से ही आदत थी, मैं मरसक जो कुछ क्लास मे पढ़ाया जाता, उसे बहुत ध्यान-पूर्वक सुनता और क्लास का समय किसी तरह बरबाद नहीं होने देता। इसका शुरू मे तो एक कारण यह था कि घर पर कोई पढानेवाला मास्टर नहीं था, इसलिए सबकुछ स्कूल के मास्टर के बताने पर ही निर्भर रहता। पीछे आदत ही ऐसी पड़ गई। कालेज में भी यही बात रही। नाम लिखाते ही यह प्रश्न हुआ कि किस विषय में ऑनर्स लिया जाय। उन दिनो बी० ए० में तीन विषय पढने होते, जिनमे अंगरेजी और फिलासफी अनिवार्य थे और तीसरा विषय ऐसा था, जिसको चुन लेने का अधिकार विद्यार्थी को था; पर चुन लेने के बाद उसे भी अन्य दो अनिवार्य विषयो की तरह ही पढ़ना होता और उसमे भी परीक्षा पास करनी होती। मैंने हिस्ट्री और एकनॉमिक्स (अर्थशास्त्र) चुन लिया। उन दिनों ऑनर्स के लिए 'पास' के अलावा कुछ और पुस्तकें पढ़नी होतीं और इन पुस्तको मे परीक्षा भी अलग होती। इस तरह से ऑनर्स के विषय की परीक्षा अधिक कडी होती और क्लास-लेक्चर भी अधिक हुआ करते। यह भी नियम था कि विद्यार्थी चाहे तो एक से अधिक विषयों में भी ऑनर्स ले सकता है। मेरे सामने यह प्रश्न था कि मैं किस विषय में ऑनर्स लू—दो विषयों मे या तीनो मे। मैंने पहले कुछ निश्चय नहीं किया और तीनो विषयो मे ऑनर्स-क्लास मे शरीक होने लगा।

मेरे साथी रामानुग्रह, जो एफ० ए० मे छपरे से दूसरे कालेज में चले गये थे, बी० ए० के लिए प्रेसिडेन्सी कालेज में आ गये थे। उनकी राय हुई कि हम दोनों को तीनों विषयों में ऑनर्स लेना चाहिए। उन्होंने स्वयं तीनों विषयों में ऑनर्स ले भी लिया। बी० ए० परीक्षा के फलस्वरूप दो स्कालर-शिप—एक पचास रुपये मासिक और दूसरा चालीस रुपये मासिक के—मिला करते थे। केवल ऑनर्स के नम्बर जोड़कर ही स्कालरशिप मिला करता था। इसलिए उनका विचार था कि तीनों विषयों में ऑनर्स लेना

चाहिए। पर ऐसा हुआ करता था कि एक या दो विषयों मे ऑनर्स में इतना नम्बर आ जाता कि तीन विषयों के नम्बर से भी अधिक हो जाता। ऐसी अवस्था मे दो ही विषयवाले विद्यार्थी को वह छात्रवृत्तिया मिल जाती। मुझे डर लगता था कि तीन विषयों में ऑनर्स लेने पर परिश्रम बहुत करना पडेगा। चन्द दिनों तक पसोपेश मे रहा। तीनों विषयों के क्लास में जाता रहा। इत्तफाक से उन दिनो फिलासफी के प्रोफेसर कुछ ऐसे नीरस तरीके से पढ़ाते थे कि उसमे मेरा जी नही लगा। इसके बदले में अंगरेजी और हिस्ट्री के प्रोफेसर मिस्टर पर्सिवल और विनयबाबू अपने-अपने विषयों को बहुत सुन्दर रीति से पढ़ाते थे। इसलिए उनके क्लास मे जी बहुत लगता।

मैंने निश्चय कर लिया कि अंगरेजी, हिस्ट्री और एकनॉमिक्स मे ही ऑनर्स पढ़ूंगा। रामानुग्रह और एक दूसरा विद्यार्थी, केवल दो ही विद्यार्थी तीनो विषयो मे ऑनर्स पढते रहे। कुछ दिनों के बाद डाक्टर पी० के० राय फिलासफी पढ़ाने लगे। उनका तरीका इतना सुन्दर और मनग्राही था कि मैंने देखा, सबसे सहज विषय फिलासफी था। उनके लेक्चर इतने अच्छे होते कि अगर उन्हे ध्यानपूर्वक सुना जाय तो पुस्तक पढने की जरूरत ही कम हो जाती थी। परीक्षा में सब विषयो मे पास करना तो जरूरी था, पर जैसा पहले कह चुका हू, छात्रवृत्ति के लिए ऑनर्स के ही नम्बर जोड़े जाते और उनपर स्वभावत. अधिक ध्यान दिया जाता। इसलिए मैंने फिलासफी पर डाक्टर राय के लेक्चर सुनने के अलावा बहुत ही कम ध्यान दिया। पर उनका पढाना इतना अच्छा था कि बिना पुस्तक पढ़े ही मैंने उस विषय का इतना ज्ञान पा लिया था कि परीक्षा पास कर सकूं। पीछे अफसोस भी हुआ कि अगर इस विषय को लिये होता तो शायद कम परिश्रम से ही तीसरे विषय मे भी ऑनर्स हो जाता।

इस प्रकार कुछ दिनो तक तो कालेज मे खूब जी लगाकर पढता रहा, पर कुछ ऐसे संयोग घटे कि परीक्षाफल से मन उचट गया और ध्यान दूसरी ओर जाने लग गया। उन्ही दिनों श्रीसतीशचन्द्र मुखर्जी ने एक सस्था कायम की थी, जिसका नाम था 'डॉन सोसाइटी' (Dawn Society)। विद्यार्थी उसके मेम्बर होते। उनको कुछ देना नही पड़ता था। उसका उद्देश्य था कि पढ़ाई में भी छात्रो को मदद दी जाय और उनके चरित्र सुधारने में और उन्हें देश की बातो की जानकारी हासिल कराने मे भी सहायता दी जाय। उनसे कुछ सेवा का काम भी लिया जाता था और यह वहां की शिक्षा का एक अंग समझा जाता था। तरीका यह था कि प्रत्येक सप्ताह संध्या समय दो क्लास किये जाते और उनमें दो लेक्चर दिये जाते।

एक लेक्चर तो विविध विषयों पर होता और दूसरा गीता पर। गीता-क्लास तो एक पंडित लेते और बहुत सहज रीति से वह गीता समझाते। दूसरे क्लास में सतीशबाबू स्वयं लेक्चर दिया करते और दूसरे लोगों को भी बुलाकर लेक्चर दिलवाया करते। उस क्लास में कभी-कभी एक कालेज के प्रिंसिपल एन० एन० घोष, कभी मिस्टर निवेदिता, कभी और दूसरे लोग लेक्चर दिया करते। ठीक समय से जाना पड़ता। हाजिरी लिखी जाती। लेक्चर के पहले ही पेंसिल-कागज सब लड़कों को दिया जाता कि वे लेक्चर का नोट ले लिया करें। दो जिल्द-बंधी बहियां मिली थी, जिनमें दोनों लेक्चरों का सारांश लिखकर दाखिल करना पड़ता। सतीशबाबू इन बहियों को घर पर ले जाते और पढ़कर जो भूल-चूक होती, उसे सुधार देते और अलग-अलग हर आदमी को बुलाकर गलतियां बता देते। लेक्चर के विषय बहुत अच्छे हुआ करते, जिनसे देश और दुनिया की जानकारी बढ़ती और चारित्र पर भी असर पड़ता। सुने हुए लेक्चर को नोटों की मदद से फिर अपनी भाषा में अदा करने का अभ्यास हर तरह से अच्छा था। इससे यूनिवर्सिटी की परीक्षा में भी मदद मिलती। साल के अन्त में सब बहियां किसी बड़े आदमी के पास सतीशबाबू भेजते और वह महाशय उन्हें देखकर, जिसका काम सबसे अच्छा हुआ रहता, उसको छात्रवृत्ति और इनाम देते। क्रियात्मक रूप से सेवा का तरीका यह था कि एक छोटी-सी दूकान स्वदेशी कपड़ों और दूसरी चीजों की खोली गई थी, जिसकी देख-रेख मेम्बरों के ही जिम्मे थी। वह दूकान शाम को दो घंटों के लिए खुलती और बेचने, हिसाब रखने का काम मेम्बरों के जिम्मे था।

मैं किसी प्रकार इस सोसाइटी के एक लेक्चर में पहुंच गया। सब बातें बहुत अच्छी लगीं। मैं इसमें शरीक हो गया। सतीशबाबू की कृपा रहती, और आजतक बनी हुई है। सतीशबाबू यूनिवर्सिटी के अच्छे छात्रों में थे। उन्होंने उसी साल बी० ए० परीक्षा पास की थी, जिस साल सर आशुतोष मुखर्जी ने पास की थी। पढ़ने के समय वह स्वामी विवेकानन्द के साथी थे। उन्होंने वकालत शुरू की थी, पर थोड़े ही दिनों के बाद उसे छोड़ दिया था और इसी प्रकार के सार्वजनिक काम में लग गये थे। उन्होंने कभी शादी नहीं की। उनका विचार हुआ कि विद्यार्थियों का जीवन सुधारना चाहिए और इसलिए उन्होंने 'डॉन सोसाइटी' की स्थापना की थी। इसमें मिस्टर एन० एन० घोष, सिस्टर निवेदिता, सर गुरुदास बनर्जी प्रभृति जैसे महान् पुरुषों की सहायता और सहानुभूति मिलती थी। सोसाइटी में जाने पर मेरी बहुत ऐसे विद्यार्थियों से भी घनिष्ठता हो गई, जो मेरे क्लास के साथी नहीं थे, पर जो यूनिवर्सिटी के नामी विद्यार्थियों में थे—जैसे विनय-

कुमार सरकार, जो विख्यात विद्वान् और लेखक हैं, रवीन्द्रनारायण घोष जो रिपन-कालेज के प्रिंसिपल थे और जिनका कुछ ही वर्ष पहले स्वर्गवास हो गया।

मुझे स्मरण है कि साल के अन्त में 'डॉन सोसाइटी' की छात्रवृत्ति और इनाम भी मुझे मिले, जिनको सभा में सर गुरुदास बनर्जी ने कुछ उत्साहवर्धक शब्दों के साथ मुझे दिया था। सोसाइटी में जाने से विचारों का मंथन खूब हुआ। परीक्षा से श्रद्धा हट गई और ध्यान सार्वजनिक बातों में अधिक लगने लगा। यों तो मैं बचपन से ही कुछ इस तरह की बातों की ओर अधिक ध्यान दिया करता था। जब स्कूल में पढ़ता था तो वहांपर एक डिबेटिंग सोसाइटी कायम की थी, जिसमें रविवार को हम मिलते, अपने-अपने लेख पढ़ते अथवा भाषण करते। इनमें कभी-कभी स्कूल के मास्टर भी निमंत्रण देकर बुलाये जाते, पर यह संस्था स्कूल की नहीं थी, स्वतन्त्र थी। उसी प्रकार कलकत्ते में भी हम लोगों ने बिहारियों की सभा 'बिहारी क्लब' कायम कर ली थी, जिसमें हम सब प्रति रविवार को मिलते और लेख पढ़ते, भाषण करते। इसके अलावा कालेज के युनियन में भी मैं भाग लिया करता और एक साल तो उसका मन्त्री भी चुना गया था। कालेज यूनियन की ओर से एक मासिक पत्र भी निकाला गया था, जिसके संचालन में मेरा हाथ रहता।

पर इन सब प्रवृत्तियों के रहने पर भी 'डॉन सोसाइटी' में शरीक होने के पहले ये सब एक प्रकार से बिना किसी उद्देश्य की थीं। इनका कुछ भी निर्दिष्ट अभिप्राय नहीं था और न हमारे सामने कोई नियमित कार्य-क्रम ही था। मैं अखबारों को पढ़ा करता था। कांग्रेस का नाम जानता था। जब उसका सालाना जल्सा होता तो उसके भाषणों को ध्यानपूर्वक पढ़ता। यों तो जब कभी कोई सार्वजनिक सभा होती और बड़े लोगों के भाषण होते—जैसे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के—तो मैं उनमें जाकर भाषणों को सुनता। पर डॉन सोसाइटी में अधिक दिलचस्पी थी। स्वदेशी का प्रेम तो भाई ने स्कूल के समय में ही पैदा कर दिया था, पर वह भी अभी पूरी तरह प्रस्फुटित नहीं हुआ था। यह डॉन सोसाइटी और सतीशबाबू के सत्संग का ही प्रसाद था कि यह जो विचार और प्रवृत्तियां अंकुर-रूप में पहले मौजूद थीं और जो बिना किसी उद्देश्य या समझ के अंधकार में काम कर रही थीं, कुछ परिष्कृत हो गईं। मैं कुछ आगे की भी सोचने लगा।

: १० :

बंगभंग का आन्दोलन

१९०४ मे मैंने एफ० ए० परीक्षा पास की। १९०५ में बंगभंग का आन्दोलन शुरू हुआ। मैं सभी सार्वजनिक सभाओं मे पहले से ही जाया करता था। बंगभग-विरोधी सभाओ मे भी खूब जाता। उन दिनो इस बात में रोक-टोक अभी नही थी। ७ अगस्त १९०५ की बडी सभा में, जिसमे विदेशी वस्तुओ का बायकाट और स्वदेशी के प्रचार का निश्चय हुआ, मैं शरीक था। उसमें बहुत उत्साह था। लोगो ने व्रत लिया कि वे स्वदेशी का ही व्यवहार करेंगे। मेरे लिए इसमें कोई कठिनाई थी नही, क्योंकि मैं बहुत पहले ही से केवल स्वदेशी वस्तुओं का ही व्यवहार किया करता था। आन्दोलन खूब जोरो से चला। प्रायः प्रतिदिन कही-न-कही सार्वजनिक सभाएं होती। हम सब जाते। कहीं सुरेन्द्रबाबू, कही विपिनचन्द्र पाल, कहीं ए० चौधरी, कही अरविन्द घोष के भाषण होते। होस्टल के लडकों मे बड़ी हलचल थी। जो लोग कभी स्वदेशी नही बर्तते थे, उन्होंने भी स्वदेशी बर्तना आरम्भ किया। बड़ों की तो मुझे खबर नही, पर विद्यार्थियों में नया जोश और नया उत्साह पैदा हो गया।

एक छोटी घटना का जिक्र करना अच्छा होगा। यों तो मै स्वदेशी का ही व्यवहार करता था; पर क्लास में एक दिक्कत महसूस करता था। जो लेक्चर होते उनके नोट रोज लेता। पेंसिल के नोट मिट जाने का भय रहता। इसलिए कलम-दवात ले जाता और लिखता। एक दिन देखा कि स्टाइलोपेन् (Stylopen) निकला है, जिसमें रोशनाई भर दी जाती है और आदमी को दवात ले जाने की जरूरत नही पड़ती। यह विदेशी था और 'ह्वाइटवे लैडलॉ' की दूकान मे उन दिनों आधे दाम पर ही बिक रहा था। मैंने एक खरीद लिया। होस्टल के साथियों को यह मालूम हुआ। वे बहुत बिगड़े और मुझसे झगड़ने लगे। उनमे एक आदमी ऐसा भी था, जिसके बारे में मैं जानता था कि उसके पास चिट्ठी लिखने के लिए बहुत विदेशी कागज था। दूसरा ऐसा था, जिसके पास थोड़े ही दिन पहले का बना हुआ विदेशी कपड़े का नया कीमती कोट था। विद्यार्थियों ने निश्चय किया था, एक दिन विदेशी कपड़ों की होली जलाई जायगी और उसी दिन

होस्टल के आंगन में उन चीजों को जलाया जायगा। सबके दिल में था कि कुछ कपड़े जला दिये जायं। पर शायद ही किसीके दिल में हो कि सब विदेशी कपड़े जला दिये जायं; क्योंकि प्रायः सबके पास अधिक-से-अधिक विदेशी कपड़े ही थे।

जब लोगों ने मुझे बहुत दिक किया तो मैंने कहा, "सब अपने-अपने ट्रंक खोलो। जिनके पास जितना विदेशी कपड़ा हो, होली मे आज ही जला दो। मैं भी अपना ट्रंक खोलता हूं और जो कुछ विदेशी मेरे पास निकलेगा, मैं सब अभी यही जला दूगा।" सब चौकन्ने हो गये। वे यह तो जानते नही थे कि उसके सिवा मेरे पास कुछ भी दूसरी चीज विदेशी नही थी। मैंने ट्रक खोल दिया और एक-एक करके सब चीजे कमरे में बिखेर दी। उसके बाद भीड़ हट गई और फिर किसीने इस प्रकार का आक्षेप मुझपर नही किया। उस साथी ने अपने विदेशी कागज तो जला दिये, पर जहांतक मुझे स्मरण है, दूसरे साथी ने नये कोट को जल्दी मे जलाना उचित नहीं समझा। हा, उसे उन दिनों फिर पहनने के लिए निकाला नही। ऐसा ही दूसरों ने भी किया।

१९०५ का साल इस प्रकार एक बडे आन्दोलन और जागृति का साल था। विशेष करके विद्यार्थियो में एक नये जीवन का सचार हो गया था और बहुतेरों ने पढना भी छोड दिया था। उसी समय कलकत्ते मे राष्ट्रीय शिक्षा की एक बड़ी संस्था खुली। श्रीमतीशबाबू उसमे चले गए और डॉन सोसाइटी का काम कुछ दिनो के बाद ढीला पड गया। सोसाइटी के साथियों में से कई उस संस्था में शरीक हो गये। मैं इन सब सभाओं में बराबर आया-जाया करता और भाषणों को सुनता, पर मेरे दिल मे किसी समय कालेज छोड़कर इस राष्ट्रीय संस्था में जाने की इच्छा नही हुई। मेरे सामने उसका उद्देश्य साफ नही था और न अपना दिल ही इसके लिए तैयार था कि कालेज छोड दू और भविष्य को इस तरह से एकबारगी बदल दू। मैं एक भीरु आदमी लड़कपन से ही रहा हू और किसी विषय मे जल्दी करके कोई बड़ा कदम उठाना मेरे लिए हमेशा एक कठिन समस्या रहा करती है। उस समय तो कदम उठाने का सवाल भी जोरो से सामने नही आया। जहां-तक मुझे याद है, स्वदेशी आन्दोलन और बग-विच्छेद के विरुद्ध आन्दोलन में कभी विद्यालयों के छोड़ने का कार्यक्रम उसी तरीके से सम्मिलित नही था, जिस तरीके से १९२०-२१ के आन्दोलन मे था। मैं इस तरह उन चीजों के साथ एक प्रकार से बाहर से ही सहानुभूति रखता रहा, कभी उसके अन्दर नही घुसा।

पर इन सब आन्दोलनो का नतीजा यह तो अवश्य हुआ कि पुस्तकों के

पढ़ने में समय कम लगा और परीक्षाफल की ओर से एक प्रकार की उदासीनता-सी हो गई। परीक्षा मार्च के महीने में हुआ करती थी। सितम्बर अक्टूबर में दुर्गा-पूजा और दशहरे के लिए छुट्टियां हुआ करती, जो प्रायः एक महीने या उससे भी अधिक लम्बी होती। मैं इस बार की छुट्टी में कलकत्ते में ही रह गया; क्योंकि मैंने समझ लिया था कि अब कुछ पढ़ना चाहिए, नहीं तो परीक्षा पास करने में कठिनाई हो जायगी।

कालेज की परीक्षा हुई। मेरे दिल में इसका तो भय था नहीं कि इस परीक्षा में पास ही नही करूंगा। हां, यह हो सकता था कि औरो से नम्बर कम आवे। कुछ साथियों ने मिलकर सलाह की, परीक्षा के पहले के प्रायः पांच-सात सप्ताह कहीं बाहर जाकर बिताये जायं, जहा शान्ति से हम पढ़ सकें और परीक्षा के लिए तैयार हो सकें। हम लोगों ने बिहार के संथाल-परगना जिले के 'जामतारा' स्थान में जाकर रहना निश्चित किया। वहां एक मित्र ने छोटा-सा मकान भाड़े पर ठीक कर दिया। कालेज की परीक्षा देकर उसके फल का इन्तजार न करके हम लोग वहा चले गए।

मैं कह चुका हूं कि अंगरेजी और हिस्ट्री में, जिसमे एकनॉमिक्स और पॉलिटिक्स भी शामिल था, मैंने ऑनर्स लिया था। हिस्ट्री-ऑनर्स के परीक्षक थे मि० पर्सिवल। उन्होंने जल्दी ही परीक्षा करके नम्बर हम लोगों को बता दिये। मेरा स्थान सबसे ऊपर था और नम्बर भी बहुत अच्छे मिले थे। और विषयों का पता नहीं था। उस समय के प्रिन्सिपल साइन्स पढ़ाया करते थे, इसलिए हम लोगों से उनकी पढ़ाई का वास्ता नही था। वह हम लोगों को जानते ही नही थे। उन्होंने नोटिस निकाल दिया कि कोई प्रोफेसर किसी विद्यार्थी को परीक्षाफल न बतावे। पर मिस्टर पर्सिवल इसके पहले हमको फल बता चुके थे।

हम लोगों के जामतारा चले जाने के बाद परीक्षाफल सुनाया गया। प्रिंसिपलसाहब ने फल सुनाते समय मेरे नाम पर कहा कि मैं अंगरेजी ऑनर्स में परीक्षा दे सकूंगा, पर हिस्ट्री ऑनर्स में नही। मेरे साथी, जो वहां मौजूद थे, अचम्भे में आ गये। एक ने हिम्मत करके कहा कि वह जरूर पास ही होगा। उत्तर मिला कि अगर पास हो गये होते तो परीक्षा देने की इजाजत जरूर मिलती। उसने फिर कहा कि उन्होने सब परीक्षाओं मे अव्वल स्थान पाया है और छात्रवृत्ति भी पाई है, ऐसा हो नही सकता कि इसमें पास न हों। प्रिंसिपल ने फिर उसीके शब्दों को दुहराते हुए कहा कि सबमें अव्वल पास किया तो अव्वल स्थान मिला और छात्रवृत्ति मिली, इसमें नहीं पास किया, इसलिए इस बार परीक्षा देने की इजाजत नही मिलेगी। उसने एक बार और जोर लगाकर कहा कि हम लोगों को पता लग गया है

और नम्बर भी मालूम हो गया है—उन्होंने उस विषय मे बहुत नम्बर और अव्वल स्थान पाया है। इसपर वह चिढ़ गया और बोला, ऐसा हो नहीं सकता, मैंने नोटिस निकाल दिया है कि किसीको नम्बर न बताये जायं और ऐसा कहकर जोर से डांट दिया कि मुझे ऑनर्स परीक्षा में बैठने की इजाज़त नहीं मिलेगी। उसने बार-बार यही कहा कि बड़ी सावधानी से उसने सब नम्बर देख लिये हैं—कोई भूल नही है।

मेरा साथी घबरा गया। उसने तुरन्त जामतारा मेरे पास तार दिया। तार पाकर मैं और भी चक्कर मे पड़ गया। आपस मे सलाह करके कलकत्ते आना ही ठीक जंचा। मै कलकत्ते पहुंचकर सीधे मिस्टर पनिवल के घर पर गया। वह बड़े विद्वान समझे जाते थे। उनके पढ़ाने का ढग भी बहुत अच्छा था। उनकी विद्वत्ता और पढ़ाई मे लडके मुग्ध रहा करते थे। वह अविवाहित थे। घर पर अकेले रहते थे। केवल पुस्तकों का ही साथ था। बड़े सूखे मिजाज के थे। किसीसे न मिलना, न जुलना। ठीक समय पर कालेज में आना, क्लासो मे जाकर पढाना और फिर सीधे घर चले जाना। केवल युनिवर्सिटी के सिनेट इत्यादि मे, जिनके मेम्बर थे, जाना और घर में पड़े रहना। अपने काम मे बड़े पक्के। वह प्रेसिडेन्सी कालेज मे प्रायः पच्चीस-तीस बरसों तक रहे। पीछे, कुछ दिनो के लिए प्रिंसिपल भी हुए थे। कर्त्तव्य-परायणता इतनी थी कि कभी एक मिनट का समय न क्लास में न और कही बरबाद करते। सादे कपड़े पहनते और जो कोई ठाठबाट से रहते उनको पसन्द नही करते। केवल पढ़ाने से ही सम्बन्ध रखते। पर उनकी सादगी, कर्त्तव्यपरायणता, ऊपरी शुष्कता और कड़ाई का असर हम सबपर बहुत पड़ता। हम डरते भी खूब थे। शायद ही कोई उनके घर पर गया हो। उनका एक तरीका था कि जितनी परीक्षाओ मे वह परीक्षक होते, चाहे वह कालेज की हों अथवा युनिवर्सिटी की, परीक्षार्थियों की नामावली बनाकर जो नम्बर देते, लिखकर अपने पास रख लेते। जब कभी कोई विद्यार्थी उनसे सर्टिफिकेट, नौकरी वगैरह के लिए, मांगता तो उससे उन सब परीक्षाओं का समय पूछ लेते, जिनमें उन्होने उसकी परीक्षा ली थी। अपने रजिस्टर देखकर, परीक्षाफल के आधार पर, दूसरे दिन सर्टिफिकेट लिखकर ला देते। उनके सर्टिफिकेट की बड़ी कद्र होती।

मै हिम्मत करके उनके घर पर पहुंचा। डरता तो था, पर कोई चारा नही था। उन्होने प्रायः दो बरसो तक पढ़ाया था। इसलिए मुझे जानते थे। देखते ही पूछा कि क्यों आये हो। मैंने अभिप्राय बतलाया। अभी परीक्षा लिये चन्द दिन ही बीते थे, उनको फल याद था। उन्होंने कहा कि मुझे याद है, तुम सबसे ऊपर आये हो और नम्बर भी अच्छे मिले हैं, तो भी ऐसा

क्योंकर हुआ ? मैंने तार दिखलाया। उन्होंने अपना रजिस्टर निकाला। देखकर फिर कहा कि मेरा ख्याल ठीक है, तुम्हारे अच्छे नम्बर आये हैं और तुम अव्वल हुए हो, मैंने खुद अपने हाथो से लिखकर परीक्षाफल प्रिंसिपल को दिया है, उसमें कोई भूल नही थी, वहा आफिस मे कोई भूल हुई है, मुझसे कालेज में मिलो।

मेरी जान-मे-जान आई। मैं पहले से ही जाकर कालेज की सीढी पर खड़ा हो गया। वह समय से एक-दो मिनट पहले ही पहुंचे और सीधे प्रिन्सिपल के कमरे में चले गए। वहा देखा कि मेरे नम्बर दूसरे साथी के नाम के सामने लिख गये है, जिसने ऑनर्स में पूरे नम्बर नही पाये है और इसलिए फेल हो गया है। उसके नम्बर मेरे नाम के सामने लिखे गये है ! प्रिन्सिपल ने अपनी भूल मान ली, खेद प्रकट किया और कहा कि उस लड़के से कह दीजिये कि भूल हो गई थी, अब उसको परीक्षा देने की इजाजत है।

मैं तो इन्तजार में खडा था ही। वहा से निकलते ही उन्होंने मुझसे सब बातें कही और कहकर क्लास में पढाने चले गए। इस गोलमाल का नतीजा यह हुआ कि मेरे दो दिन बेकार गये। जामतारा से कलकत्ते आने-जाने मे खर्च पड़ा और कुछ देर तक बड़ी चिन्ता रही। दूसरा नतीजा यह भी हुआ कि मेरे दूसरे साथी, जिनके नाम के सामने मेरे नम्बर लिखे गये थे, ऑनर्स मे परीक्षा देने पाये। भूल सुधारने के पहले ही उनकी दर्खास्त, फार्म भरकर प्रिन्सिपल के हस्ताक्षर के साथ, युनिवर्सिटी मे भेजी जा चुकी थी। वह इजाजत वापस लेना अब सम्भव नही था। उन्होंने परिश्रम से पढा और युनिवर्सिटी की परीक्षा मे वह भी ऑनर्स के साथ पास कर गये। जैसा मैं ऊपर कह चुका हूं, एण्ट्रेस, एफ० ए० और बी० ए० तीनों की परीक्षाओ मे मुझे इजाजत मिलने मे कुछ दिक्कत हुई, यद्यपि मैं तीनो में पहले भी और युनिवर्सिटी की परीक्षा में भी बराबर अव्वल रहा।

जब परीक्षा के दिन नजदीक आये तो मैं कुछ घबराया। कुछ ख्याल पैदा हुआ कि इस बार भी अगर अव्वल न हुआ तो शिकायत होगी। पर इस बार इच्छा कुछ तीव्र नही थी और अब समय भी नही रह गया था कि एफ० ए० परीक्षा की तरह तैयारी की जाय। परीक्षाफल मे स्थान केवल ऑनर्स के नम्बर से ही मिलता था। इसलिए मैंने ऑनर्स के विषयों पर ही ध्यान दिया। फिलासफी, जिसमें केवल पास ही करना था, एक तरह से छोड ही दिया। पहले भी डाक्टर पी० के० राय के लेक्चरो को ही ध्यान से सुना करता था। किताबे कम पढ़ी थीं। इसमें एक बार एक घटना से प्रोत्साहन भी मिला था। एक दिन डाक्टर राय बीमार पड गये। उन्होंने उस दिन पढ़ाया नही। कुछ सवाल दे दिये और सबको उन सवालों का

उत्तर लिखकर देने को कहा। सबने उत्तर लिखे। मैंने किताबें तो पढी नहीं थी। केवल लेक्चर में जो उन्होंने कहा था, उसे ही, जहांतक हो सका, लिख दिया। डाक्टर ने सब उत्तरो को घर ले जाकर पढा और दूसरे दिन उस तात्कालिक परीक्षा का फल यह सुनाया कि मैं ही सबसे ऊपर हूं और जिन लोगों ने उस विषय मे ऑनर्स किया है, उनमे भी अधिक नम्बर मुझे मिले हैं। इसके बाद से मुझे और भी विश्वास हो गया कि फिलासफी के लिए बहुत पढ़ने की जरूरत नही है।

युनिवर्सिटी परीक्षा के पहले कालेज की परीक्षा मे भी मुझे उन परचो मे ऑनर्स के लड़कों के मुकाबले ज्यादा नम्बर मिले। इसलिए जामतारा में भी इसपर ध्यान नही दिया। परीक्षा का दिन निकट आ गया। अगरेजी की परीक्षा हो गई। उसके बाद फिलासफी की परीक्षा थी। प्रायः दो महीनो से मैंने शायद ही फिलासफी की कोई पुस्तक देखी थी। उस दिन सध्या को अचानक एक भय पैदा हो गया कि फिलासफी मे मैं दूसरे दिन कुछ भी उत्तर नही दे सकूगा। इस प्रकार जब सोचने लगा तो मालूम पड़ने लगा कि कुछ भी याद नही है। मैंने सोचा कि पुस्तक पढ़ने का तो समय है नही। रात-भर मे जो कुछ नोट वगैरह थे, उनको एक बार दुहरा जाऊ तो शायद पास करने लायक लिख सकू। फिलासफी मे साइकलॉजी (मनोविज्ञान), एथिक्स (आचारशास्त्र) और लॉजिक तीन विषय पढ़ने थे। साइकलॉजी पढना शुरू किया। आदत के मुताबिक सही शाम ही नीद आ गई। कुछ देर के बाद फिर घबराकर उठा तो सोचा कि अच्छा होगा कि अभी सो जाऊं और रात मे दो-तीन बजे से उठकर सबकुछ एक बार दुहरा लूगा। एक बूढा नौकर था। उसको कह दिया कि ठीक दो बजे जगा देना। दो-तीन दिनों से परीक्षा मे बहुत मेहनत पडी थी। बहुत थक गया था। नीद खूब जोर से आ गई। नौकर बेचारा रातभर बैठा रहा। जैसे दो का घंटा बजा, जगाना शुरू किया। पर उसके हजार कोशिश करने पर भी मेरी नीद नही टूटी! करीब साढे चार बजे के नीद खुली और घडी देखी। बहुत घबराया। नौकर पर गुस्सा हुआ, पर उसने कहा कि वह तो बराबर जगाता ही रहा, मैं न उठा तो उसका क्या दोष। जल्दी-जल्दी नोट उलटने लगा। साइकलॉजी और एथिक्स तो उलटकर देख गया। इन विषयो को डाक्टर राय ने पढ़ाया भी था। पर लॉजिक देखने का समय नही मिला। घबराकर एक साथी के पास गया। सब हाल कहा। उसने लॉजिक के सभी अध्यायों के शीर्षक कह दिये और प्रत्येक शीर्षक के सम्बन्ध में कुछ बाते कह दीं। उस समय मालूम होता था कि मैं एक नई चीज पहले-पहल पढ रहा हूं। इतने में जाने का समय हो गया। दौड़कर दस-पन्द्रह मिनटों मे

मुंह धोकर स्नान करके कुछ भात निगलकर दौड़ता हुआ युनिवर्सिटी में पहुंचा। पहुंचने के पहले ही पहली घंटी बज चुकी थी। दौड़कर स्थान पर बैठ गया और परचा हाथ में आ गया। इतना घबराया था कि कुछ पता नहीं चलता था कि एक प्रश्न का भी उत्तर लिख सकूगा या नहीं। डर यह होता था कि और विषयों मे ऑनर्स पाकर ही क्या होगा—अगर इस विषय में फेल कर गया। किसी एक भी विषय मे फेल करने पर सारी परीक्षा में आदमी फेल हो जाता था।

परचा मिलने पर कुछ शान्ति लाने की कोशिश की। आहिस्ता-आहिस्ता प्रश्नों को पढा। कुछ ऐसा मालूम हुआ कि पहले प्रश्न का उत्तर दे सकूगा। लिखना शुरू किया। जब खतम किया तो ऐसा समझा कि उत्तर कुछ बुरा नही हुआ। इसी प्रकार दूसरे प्रश्न और उसके बाद तीसरे प्रश्न इत्यादि सबका उत्तर लिख गया। उधर समय भी पूरा हो गया। अब मन में विश्वास हो गया कि फेल नही करूगा। सारी घबराहट कम हो गई। आध घंटे की छुट्टी के बाद दूसरा परचा मिला। उसमें भी वैसा ही हुआ। प्रायः सभी प्रश्नों का उत्तर लिख दिया, केवल एक बाकी रह गया था। उसका भी उत्तर कुछ तो दे सकता था, पर पूरा नही; क्योंकि उसका सम्बन्ध उस अध्याय के साथ था, जिसका शीर्षक तो मैंने देखा था और साथी ने संक्षेप मे कुछ कहना भी शुरू किया था। पर उसे वह पूरा नही कर पाया था, और मै घड़ी देखकर जल्दी में होस्टल मे चला आया था। मैंने उसका उत्तर नहीं दिया और समय से पहले ही चला आया। मुझे विश्वास हो गया था कि अब फेल होने का तो कोई डर ही नही है। जब नतीजा निकला तो हिस्ट्री ऑनर्स मे मैं अव्वल आया। अंग्रेजी मे भी ऑनर्स तो मिला, पर अव्वल स्थान नहीं मिला। फिलासफी मे बहुत अच्छे नम्बर आये थे। सब विषयों को मिलाकर मैं ही सबसे ऊपर था और वह दोनो छात्रवृत्तियां, एक पचास की और दूसरी चालीस मासिक की, मुझे फिर मिल गई। इस बार का फल किसी प्रयत्न का नतीजा नही था, क्योंकि मैंने कोई प्रयत्न किया ही नही था ।

: ११ :

समुद्रयात्रा-सम्बन्धी आन्दोलन

जब मैं एफ० ए० की परीक्षा देकर, सन् १९०४ की गर्मी की छुट्टियों में, जीरादेई आया था, भाई भी घर पर ही थे। परीक्षा-फल की प्रतीक्षा थी। अखबारों में हम लोगों ने देखा कि विदेश से शिक्षा पाकर डाक्टर गणेश-प्रसाद वापस आ रहे हैं। वह बलिया के, जो हमारे जिले छपरा (-सारन) से लगा हुआ है, रहनेवाले थे। उनकी ननिहाल छपरे मे थी। जाति के वह भी कायस्थ थे। इलाहाबाद से डी० एस-सी० की उपाधि पाकर वह पढने के लिए इंगलैंड गये और वहां से फिर जर्मनी गये। गणित-शास्त्र मे उन्होंने बड़ा नाम किया था। देश मे उनके पहुंचने के पहले से ही एक आन्दोलन उठ खड़ा हो गया था कि उनको जाति मे ले लेना चाहिए। छपरे मे दो दल हो गये थे। सुधारक दल के नेता बाबू ब्रजकिशोरप्रसाद थे, जो अभी नये उठते हुए वकील थे और विरोधी दल के नेता दो सबसे प्रतिष्ठित और नामी बूढ़े वकील थे। ब्रजकिशोरबाबू हमारे घर पर आये। भाई से सलाह करके उन्होंने बाबूजी से कहा कि डाक्टर गणेश को जाति में ले लेना चाहिए और उनके यहां जो बिरादरी का भोज हो, उसमे बाबूजी को चलना चाहिए।

उस समय तक बिहार-भर में केवल मि० सच्चिदानन्द सिन्हा ही विलायत से लौटे कायस्थ थे। उनको लौटे ग्यारह-बारह बरस बीत चुके थे। उनके लौटने के समय भी कुछ आन्दोलन हुआ था, पर उन्होंने प्राय-श्चित्त करके फिर पुराने तरीके से जाति के बन्धन को मानना स्वीकार नहीं किया था। इसलिए बाजाब्ता वह जाति मे नही लिये गए थे। डाक्टर गणेशप्रसाद से, पहुंचने के पहले ही लिखा-पढी करके तय हो चुका था कि वह जाति-बन्धन को मानेंगे। उन्होने विदेश मे भी बहुत सादा जीवन बिताया था और कभी मांस-मछली-मद्य का व्यवहार नहीं किया था। उनका और सुधारकों का विचार था कि इस तरह से ही उस समय समुद्र-यात्रा का रास्ता खुल सकेगा। मि० सिन्हा के लौटने के बाद दस बरसों तक किसीकी हिम्मत उस बन्धन को तोड़कर विदेश जाने की नही हुई थी। इसलिए अब इस शर्त को मानकर भी रास्ता खोलना चाहिए।

बाबू व्रजकिशोर ने कुछ लोगो को तैयार किया था कि डाक्टर गणेश के घर चलकर भोज मे शरीक होना चाहिए। बाबूजी से उन्होंने बहुत आग्रह किया कि वह भी चलें। बाबूजी ने खुद तो जाना मंजूर नही किया, मगर यह कह दिया कि वह हम दोनों भाइयों को भेज देगे।

डाक्टर गणेश लौटे। बलिया मे भोज का दिन मुकर्रर हुआ। बाहर से बाबू व्रजकिशोर की प्रेरणा से हम बीस-इक्कीस आदमी छपरे से बलिया गये। इनमें दो भाई हम और हमारे दोनो साथी जमुनाभाई और गंगा-भाई भी थे। गांव के पटवारी भी थे। डाक्टर गणेश से भेंट हुई। बलिया के कायस्थों में बड़ी हलचल थी।

मैं लिख चुका हूं कि हम लोगों का घर पहले बलिया मे ही था। वहां हमारे गोतिया लोग रहते थे। हमारे ब्राह्मण-पुरोहित आज तक बलिया से ही शादी और श्राद्ध मे आया करते है। मेरी ससुराल के लोग भी बलिया मे रहते थे। उस घर के कई आदमी वहां वकालत करते थे। कुछ लोग दूसरे कामों मे भी थे। हम लोगो के पहुंचने की खबर वहा फैल गई। इसको छिपाना भी तो मंजूर नही था। हमारे एक गोतिया भी वकील थे। वह रिश्ते मे हम लोगो के भाई लगते थे। उन्होने हम लोगों से भेंट की और हम लोगों का उस भोज मे शरीक होना पसन्द नही किया। उनका खयाल था कि हम लोग बाबूजी की आज्ञा के बिना ही चुपचाप चले आये हैं। जब हम लोगो ने विश्वास दिलाया कि ऐसी बात नही है, तो उनको और भी दुःख हुआ। उन्होने कहा कि चचासाहब को हमसे पूछ लेना चाहिए था, जब हम सब यही रहते हैं।

इसी प्रकार मेरी ससुराल के लोगों को भी यह बात बहुत पसन्द नहीं थी; पर उनकी ओर से कुछ अधिक जोर नही डाला गया। रात को भोज हुआ। भात खाकर हम सब अपने स्थान के लिए वापस हुए। डाक्टर गणेश पहले इलाहाबाद मे और फिर हिन्दू-युनिवर्सिटी मे गणित-विभाग के सर्वोच्च स्थान पर रहकर कई बरसो के बाद गुजर गये। हम लोगों से उस पहली मुलाकात को वह कभी भूले नही और मुझसे बहुत प्रेम रखते रहे।

बलिया से लौटकर मैं अपनी दूसरी बहन के घर, जो छपरे से कुछ दूर पर ब्याही थी, बाहर-ही-बाहर चला गया। वहां जाने का कोई खास विचार नहीं था। पहले से ही उसकी इच्छा थी कि मैं दो-चार दिन उसके साथ रहूं। छपरे से ही वहां जाने में सुविधा थी। इसलिए घर वापस न जाकर वहां चला गया।

जिन लोगों ने भोज में शिरकत की थी, उनके नाम अखबारों में छपे और छपरे में बड़ा हल्ला हुआ। वहां तैयारियां होने लगी कि वे लोग जाति-

च्युत कर दिये जायं। काशी से महामहोपाध्याय शिवकुमार शास्त्री को, समुद्र-यात्रा के विरुद्ध, व्यवस्था मंगाई गई। जिला-भर के कायस्थो की एक बड़ी सभा करने का आयोजन होने लगा। मुझे इसकी कुछ भी खबर न थी। मैं तो बहन के गांव मे था। इसी बीच परीक्षा-फल भी निकल गया। बाबू व्रजकिशोर ने गजट देखकर जीरादेई खबर दे दी। भाई को बात मालूम हो गई। बाबूजी को बड़ी खुशी हुई। उन्होंने तुरन्त सत्य-नारायण की कथा सुनी; ब्राह्मण-भोजन और बिरादरी-भोज का प्रबन्ध कराया। यह सब मेरी गैरहाजिरी मे ही हुआ।

मैं अपने बहनोई के घर से जीरादेई के लिए रवाना होकर छपरे पहुंचा। बहनोई भी साथ छपरे आये। छपरे मे जो आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था, उसकी उनको खबर ही नही थी। हम लोग रात को छपरे पहुंचे और वहां पहुंचकर सो गये। इसलिए, उस रात को कुछ पता न मिला। मेरे परीक्षा-फल की भी खबर न मिली। खूब सवेरे रेल जाती थी, जिससे हम जीरा-देई जा सकते थे। सवेरे ही मैं स्टेशन पहुच गया। बाबू व्रजकिशोर का डेरा स्टेशन के नजदीक ही था। मैंने नौकर को भेजा कि जाकर पूछ आओ—परीक्षा-फल अभी निकला कि नही। उन्होंने खबर दिलवाई कि परीक्षा-फल निकल चुका है और मुझको उनसे मुलाकात किये बिना उस गाडी से नही जाना चाहिए। मैं उनके डेरे पर गया, क्योंकि परीक्षा-फल जानने की उत्सुकता थी। वहां उन्होने रोक लिया। कचहरी सवेरे सात बजे से हुआ करती थी। उनके साथ मैं भी कचहरी गया। इसकी खबर मेरे बहनोई को नही मिली कि मैं वहा रुक गया हू। मैं जब बाबू व्रजकिशोर के साथ लाइब्रेरी में पहुंचा तो बहुतेरे वकीलों ने मुझे घेर लिया। कुछ तो परीक्षा-फल से खुश होकर बधाई देने लगे और कुछ डाक्टर गणेश के भोज का हाल पूछने लगे। वे यह जानना चाहते थे कि भोज मे कौन-कौन शरीक थे और मै कहा से आया हू। मैंने सब बातें कह दी। यह भी कह दिया कि कई दिनो से मैं 'पैगा' मे अपने बहनोई के साथ था और वहा से ही लौटा हूं। मुझे इसका पता नही था कि मैंने जो इस तरह सच्ची बाते बता दी उसका कुछ बुरा परिणाम होनेवाला है।

बात यह थी कि कुछ लोगों ने, जो भोज में शरीक थे, आन्दोलन को देख सहमकर, अपने घरवालों के जोर देने से, शरीक होना इन्कार कर दिया था और अखबार में छपी खबर को गलत बता दिया था। मेरे बह-नोई से भी, ज्योंही वह बार-लाइब्रेरी में पहुंचे, सवाल हुए। उनको यह मालूम नही था कि मैं डाक्टर गणेश के भोज में शरीक हुआ था। उनको यह भी नही मालूम था कि मैं जीरादेई न जाकर छपरे में रुक गया था

और उसी जगह बार-लाइब्रेरी में कहीं औरों से बातें कर रहा था। बड़े प्रतिष्ठित वकीलों की बात सुनकर वह भी कुछ सहम गये। उन्होंने मेरी ओर से इन्कार कर दिया और कह दिया कि मैं अगर भोज में गया होता तो उनको जरूर मालूम हो गया होता। तब लोगों ने उनसे कहा कि मैं वही हूं और मैंने ही भोज का हाल खुद कहा है। अब नौबत आई कि मुकाबला कराया जाय, पर मैं वहां से बाबू ब्रजकिशोर के डेरे पर चला आया। जब मै गांव पहुंचा तो मैंने सुना, एक दिन पहले पूजा वगैरह होकर ब्राह्मण-भोजन और बिरादरी का भोज भी हो चुका है, जिसमे केवल गांव के ही नही, बल्कि आसपास के गावों के कायस्थ भी—जो बराबर बिरादरी-भोज मे शरीक हुआ करते थे—शरीक हो चुके थे। गाव मे तो कोई दिक्कत थी ही नही, क्योंकि हम तीन ही घर कायस्थ थे, और तीनों घरों के लोगो ने बलिया के भोज मे शिरकत की थी। मैंने छपरे का हाल भाई से कहा। बाबू ब्रजकिशोर का सन्देश भी कहा कि छपरे मे होनेवाली सभा में अपने मनवाले लोगो को पहुचाना चाहिए और उस सभा मे समुद्र-यात्रा के पक्ष में प्रस्ताव भी पास कराना चाहिए।

छपरे में सभा की बड़ी तैयारिया हुई। सारे जिले से कायस्थ बुलाये गए। काशी से महामहोपाध्याय शिवकुमार शास्त्री व्यवस्था देने आये। साथ ही, इस बात की कोशिश होने लगी कि उन लोगो से, जिन्होंने भोज में खाना खाया था, या तो इन्कार कराया जाय या प्रायश्चित्त। हम लोग सभा के दिन छपरे नही गये। पर सुना कि बहुत कायस्थ जमा हुए। जिला दो भागो मे बंट गया था। पूरब छपरा दोनों विरोधी बड़े वकील साहबों के साथ में था, और पच्छिम छपरा का—जहा के हम लोग रहनेवाले थे—यह दावा था कि हम पक्ष मे है। बात यह है कि अधिक बिरादरी के लोग विरोधी थे। कुछ थोड़े लोग जो पक्ष में थे, अधिकांश पच्छिम छपरा के थे, जिनमें हमारा घर प्रतिष्ठित समझा जाता था। छपरे मे, पंचमन्दिर मे, जो एक कायस्थ का ही बनवाया हुआ सबसे बडा और बहुत सुन्दर मन्दिर उस शहर में है, सभा हुई। वयोवृद्ध और प्रसिद्ध वकील साहब सभापति होने वाले थे। जब लोग पहुचे तो हमारे दल के एक आदमी ने उठकर प्रस्ताव कर दिया कि सभापति बाबू सरस्वतीप्रसाद वकील बनाये जायं। यह सज्जन भोज में शरीक हो चुके थे, पच्छिम छपरा के रहनेवाले थे; पर गोरखपुर में वकालत किया करते थे। कुछ लोगों ने प्रस्ताव का समर्थन कर दिया। जिन्होने सभा बुलाई थी, वे कुछ भौंचक-से हो गये। उन्होंने तो बड़े वकीलसाहब का नाम सभापति होने के लिए नोटिस में छाप दिया था। सुधारक दल के जो लोग मौजद थे, उन्होंने शोर किया कि बाब

सरस्वतीप्रसाद सभापति बनाये जायं। दूसरे लोगों को इस विरोध की आशा नहीं थी। वह समझते थे कि सब लोग उनके साथ हैं। वास्तविक अधिकांश क्या, बहुमत जोरों से उस सभा में भी उनके साथ था। पर वह बहुत-कुछ डर गये। इधर से जोर होने लगा कि सभापति के चुनाव के बारे मे मत लिया जाय। इससे वह और भी घबराये। उन्होंने मत लेने से इन्कार कर दिया और कहा कि जिनका नाम प्रकाशित किया गया है, वही सभापति होगे। वह सभापति के स्थान पर बैठने के लिए चले। इधर से बाबू सरस्वतीप्रसाद भी चले और उन्होंने कहा—वकीलसाहब, सभा ने तो मेरा नाम सभापति के लिए प्रस्तावित किया है, मै सभापति हू, आप कैसे यहां बैठ सकते है। इससे और घबराहट फैली। उन्होंने कह दिया कि ये लोग सभा नही होने देगे, इसलिए सभा बर्खास्त की जाती है।

सुधारक दल तुरन्त उठ खडा हुआ और खुशियां मनाता और यह घोषित करता हुआ कि उसकी जीत हो गई, वहा से चल पड़ा। सुधारकों को तो यही कराना था, क्योंकि वे जानते थे कि सचमुच अगर मत लिया जाता तो वे जरूर हार जाते। उस दिन की सभा बर्खास्त हुई। दूसरे दिन फिर सभा की गई। वहां प्रस्ताव पास किया गया कि जितने लोगो ने भोज खाया था, वे जातिच्युत किये गए। उनके साथ खान-पान, शादी-विवाह, सब बन्द कर दिया गया। उनके नाम भी प्रस्ताव मे दे दिये गए। उस प्रस्ताव को छपवाकर जिला-भर मे बाटने का प्रबन्ध किया गया। सुधारकों की ओर से कहा गया कि यह सभा तो पूरी बिरादरी की थी नही और हमारे (सुधारकों के) चले जाने के बाद दूसरे दिन की गई थी; इसलिए इस प्रस्ताव को हम नही मानते और जिला-भर की बिरादरी उसे स्वीकार नही करती। अगर सब लोग सचमुच इस प्रस्ताव को मानते हैं तो फिर सभा करके जिला-भर की बिरादरी बुलाई जाय और प्रस्ताव पास कराया जाय। इस प्रकार की गड़बड़ी मच गई और अखबारो मे दोनो पक्षो के बयान भी शायद निकले। फलतः जाति-बहिष्कार बहुत बलवान न हो सका।

जहांतक हम लोगों का सरोकार था, जाति-बहिष्कार का कोई प्रश्न उठा ही नहीं; क्योंकि हमारे आस-पास के सब लोग हमारे साथ खाते-पीते रहे और ब्राह्मण-पुरोहित ने कभी कोई दिक्कत न होने दी। हां, बाबूजी को एक बार कुछ दुःख हुआ। मैं कह चुका हूं कि हमारे बहनोई छपरे के नजदीक के रहनेवाले थे। उनके यहा इस बहिष्कार-आन्दोलन का कुछ जोर रहा। छपरे के लोगों ने उनपर बहुत जोर डालकर एक मरतबा एक बहुत बुरा पत्र बाबूजी के पास उनसे लिखवाया। एक आदमी पत्र लेकर आया,

हम लोगो से मुलाकात हुई। उसने कहा कि बाबूजी को ही पत्र देने का हुक्म है, हम लोगो को नही। हम लोग समझ गये कि उस पत्र में कुछ इसी सम्बन्ध की बातें होंगी। बाबूजी ने पत्र पढ़ा, और कुछ सहम गये। हमारे वही एक बहनोई जीते थे। दूसरी बहन तो बहुत पहले ही विधवा हो चुकी थीं। इनके भी कोई सन्तान नही थी, अपने घर में अकेले थे। न कोई दूसरा भाई, न सगा-सम्बन्धी। जो कुछ सम्बन्ध था, हम लोगो के साथ ही था। इन्होंने पत्र मे लिखा था कि इनका कोई दूसरा सम्बन्धी तो था ही नही, अब हम लोगों से भी सम्बन्ध टूट जायगा! अगर हम सम्बन्ध कायम रखना चाहते हैं तो या तो भोज मे शरीक होना इन्कार करके घोषणा कर दे या प्रायश्चित्त करे।

बाबूजी घबराये, पर उनका यह विचार नही हुआ कि हम लोगों ने कोई गलती की है। उन्होने इतना ही कहा कि हम लोग अगर खुद भोज मे शरीक होकर इस झगडे मे न पडे होते तो वह शायद दूसरो पर असर डालकर इस काम मे अधिक मदद कर सकते। मां ने जब खबर सुनी कि ऐसा पत्र आया है तो उन्होने साफ-साफ कहा—"इन्कार की बात तो हो ही नही सकती है—वह तो बिलकुल झूठी बात होगी और ऐसा करने से भला नही होगा। हां, प्रायश्चित्त की बात होगी तो समय आने पर देखा जायगा।"

इसी मजमून का उत्तर भेज दिया गया। उन दिनो मेरी बहन के आने की भी कोई बात नही थी, इसलिए यह बात आगे नही बढी। बाबूजी छपरे गये। एक मुकदमा चल रहा था। उसमें हमारे वकील वही वयोवृद्ध वकील थे, जो इस आन्दोलन के नेता थे। उन्होने प्रायश्चित्त पर बहुत जोर दिया। बाबूजी ने यह कहकर बात टाल दी कि हम लोग कलकत्ते मे हैं, जब आवेंगे तो सलाह करेंगे।

उन लोगो ने इस तरह, जहांतक हो सका, परोक्ष रीति से जोर डाला। सार्वजनिक सभा करने का प्रयत्न भी किया। सीवान मे, जो हम लोगो के नजदीक का शहर है, एक सभा की गई, जिसमें छपरे की सभा के निश्चय को घोषित करना था। एक सज्जन छपरे से भेजे गये कि सीवान के जिन लोगों ने भोज खाया था, उनके जाति-बहिष्कार का फैसला बाजाब्ता सभा में सुना दें। इस सभा में हम लोग भी गये। परन्तु सीवान की बिरादरी में बहुत लोग हम लोगों के साथ थे; क्योकि बाबू ब्रजकिशोर, बाबू सरस्वतीप्रसाद और हम लोग—सब इसी (सीवान) सब-डिवीजन के रहनेवाले थे। उस सभा में हम लोगों ने प्रस्ताव कर दिया कि छपरे की सभा को हम लोग नहीं मानते—सीवान की बिरादरी हम लोगों के साथ है।

हमारे गांव के दो आदमी, जमुनाप्रसाद, और गंगाप्रसाद, जो हम लोगों के साथ बलिया भोज मे शरीक हुए थे, छपरे मे पढ़ते थे। वे लोग, कुछ और लडकों के साथ, एक मकान मे रहते थे। उनको कुछ कष्ट उठाना पड़ा। उस 'मेम' के लड़के उनका छुआ नही लेते थे—उनके साथ खान-पान भी नही करते थे। ब्राह्मण रसोई बनाकर उनके बर्तन मे अलग से भोजन दे देता। उन्होने इस अपमान को खुशी-खुशी बर्दाश्त किया। कुछ महीनो तक यही सिलसिला चला। पर आहिस्ता-आहिस्ता जोर कम पड गया। सब एक साथ हो गये। छपरे मे विरोधियो के मुखिया लोगो का भी सम्बन्ध ऐसे घरो मे हो गया, जो समुद्रयात्रा के पक्ष मे थे। उनके अपने घर के भी कुछ लोग उनके विरुद्ध हो गये। उन लोगो ने अपने जीवन में तो इस बात को निबाह दिया, पर बधन जो टूटा वह फिर जुटा नही। समुद्रयात्रा के लिए कायस्थो का रास्ता खुल गया।

: १२ :

छात्र-सम्मेलन और कांग्रेस

बी० ए० पास करके मैं कलकत्ते में एम० ए० और बी० एल० पढ़ने लगा। स्वदेशी आन्दोलन उन दिनों बहुत जोरों से चल रहा था। हम कुछ बिहारी छात्रों पर भी, जो कलकत्ते मे पढ़ते थे, उसका असर पड़ता ही था। हम लोग बिहारी क्लब में अक्सर बैठते, मिलते-जुलते और विचार-विनिमय किया करते थे। हम लोगों के दिल मे जोश आया कि बंगाल के विद्यार्थी इस प्रकार स्वदेशी का प्रचार कर रहे है, अगर हमारे बिहार मे भी छात्रों का कोई संगठन होता तो उसके द्वारा स्वदेशी का प्रचार हो सकता। हमने एक गीत भी बनवाया, जिसकी कुछ प्रतियां छपवाकर जहां-तहां बटवाई। इसीके बटवाने में सगठन का अभाव और भी मालूम हुआ।

हम लोगों ने सोचा कि बिहार के छात्रों का एक सम्मेलन किया जाय। बिहारी क्लब के सामने इस प्रकार का प्रस्ताव रखा गया। उसे केवल छात्रों ने ही नही, बड़ों ने भी बहुत उत्साहपूर्वक स्वीकार किया। मैं पटने भेजा गया। वहा पहले छात्रों से और फिर बड़े लोगों से मैं मिला। उनमे प्रमुख थे मिस्टर सच्चिदानन्द सिन्हा और (स्वर्गीय) बाबू महेशनारायण, जो उन दिनों 'बिहार-टाइम्स' का सम्पादन करते थे। इन सब लोगों ने सहानुभूति दिखलाई। निश्चय हुआ कि पटने में ही पहला सम्मेलन किया जाय और नामी बैरिस्टर मिस्टर शर्फुद्दीन सभापति बनाये जाय। पटने के छात्रों ने एक स्वागत-समिति बनाकर सब प्रबन्ध भी किया।

पहला सम्मेलन पटना-कालेज के बड़े हाल मे हुआ। बिहार के सभी कालेजो और अनेक स्कूलों के छात्र उस सम्मेलन में बड़े उत्साह के साथ शरीक हुए। सम्मेलन के उद्देश्य बतलाने का भार मेरे ऊपर दिया गया। मैंने एक लम्बा भाषण अंगरेजी में लिखकर तैयार किया था, उसे पढ़ सुनाया। औरों के भाषण भी अंगरेजी मे ही हुए। सम्मेलन में निश्चय हुआ कि पहले उन शहरों में, जहां कालेज हैं और फिर जहां-जहा स्कूल हैं, छात्र-समितियां कायम की जायं, जो सम्मेलन से सम्बद्ध रहें। एक बड़ी नियमावली तैयार की गई। उसके अनुसार सारे बिहार के छात्रों की प्रतिनिधि-स्वरूप एक

स्थायी समिति पटने में कायम हुई। इसमें सभी जगहों के छात्रों के प्रतिनिधि लिये गए। यही सब छात्र-समितियों पर नियन्त्रण और सम्मेलन का काम साल-भर जारी रखती थी।

मुझे याद है कि नियम बनने के समय दो प्रश्नों पर आपस में बहुत बहस हुई। एक प्रश्न था कि सम्मेलन राजनीति में भाग लेगा या नहीं। इसपर छात्रों में ही बहुत मतभेद था। बड़े लोगों में तो सभी इसके विरोधी थे। अन्त में यह तय हो गया कि सम्मेलन किसी प्रकार के राजनैतिक आन्दोलन में भाग नहीं लेगा, चाहे वह राष्ट्रवादी हो अथवा राजभक्ति-प्रचारक या और किसी प्रकार का। हमने यह निश्चय करके, अब मालूम होता है, बुद्धिमानी दिखलाई। बिहार कभी बंगाल का ही हिस्सा था। सूबा अलग नहीं हुआ था। बिहार शिक्षा में बहुत पिछड़ा हुआ था। सार्वजनिक जीवन तो प्रायः नहीं के बराबर था। विशेषकर छात्र तो बाहर का कुछ जानते ही नहीं थे। कांग्रेस के पक्षपाती थोड़े ही लोग थे। अभी तक बिहार का कोई राजनैतिक संगठन भी अलग नहीं था, न बिहार की अलग कांग्रेस-कमिटी थी और न बिहार-राजनैतिक-सम्मेलन की स्थापना हुई थी। यह पहला ही संगठन था, जिसमें सारे बिहार के लोग, चाहे वे नववयस्क छात्र ही क्यों न हों, अलग एकत्र होकर अपने प्रश्नों पर विचार करने बैठे थे। ऐसी अवस्था में अगर हम सभलकर न चलते तो शायद यह संगठन होने ही नहीं पाता।

उस समय तक भारतवर्ष में कहीं भी दूसरा छात्र-सम्मेलन नहीं हुआ था। एक प्रकार से हम लोगों को एक नया संगठन, जिसका कोई नमूना सामने नहीं था, बनाना था। और, दूसरा प्रश्न, जिसपर मतभेद था, यह था कि इस सम्मेलन में केवल बिहारी छात्रों का ही संगठन रहे या इसमें बंगाली छात्र भी शामिल किये जायं। इस सम्बन्ध में भी बहुत मतभेद रहा। मुझे याद है कि कई बरसों तक वार्षिक सम्मेलन में प्रस्ताव आता रहा कि बिहारी छात्र-सम्मेलन में बंगाली भी लिये जायं, पर वह कभी स्वीकार नहीं हुआ। सम्मेलन का नाम तो शुरू से ही बिहारी-छात्र-सम्मेलन था। कई बरसों के बाद नियमावली में जोड़ दिया गया कि 'बिहारी-छात्र' से बिहार में शिक्षा पानेवाले सभी छात्र समझे जायं। हम जो कलकत्ते के विद्यार्थी थे, शुरू से ही इसके पक्ष में थे; पर दूसरे इसका विरोध करते थे।

छात्रों का संगठन बहुत अच्छा हो गया। प्रायः सभी शहरों में इसकी शाखाएं हो गईं। कलकत्ते में तो बिहारी-क्लब इसकी शाखा बन ही गया, हिन्दू-युनिवर्सिटी की स्थापना के बाद वहां के बिहारी छात्रों ने भी एक शाखा बना ली। सभी शाखाओं में प्रायः प्रति सप्ताह सभा होती, जिसमें

छात्र विविध विषयों पर लेख पढ़ते, भाषण करते और खेल-कूद में भाग लेते। इसके लिए जहा-तहां क्लब कायम किये गए। सालाना जल्से में निबन्धों और भाषणों की प्रतियोगिता होती। सबसे अच्छे लेखो, भाषणों और खेल-कूद के लिए इनाम दिये जाते। कालेज के लड़कों की अलग प्रतियोगिता होती, स्कूल के छात्रो की और लडकियो की अलग। लड़कियो को लेख और भाषण के अलावा सीना-पिरोना इत्यादि में प्रोत्साहन देने के लिए अलग इनाम दिये जाते। इस प्रकार साल-भर काम चलता। सम्मेलन, दशहरे की हरेक छुट्टी मे, कही-न-कही बिहार के किसी शहर में होता। इस सालाना सम्मेलन के सभापति-पद को बिहार और बाहर के बहुत बडे-बड़े लोगों ने सुशोभित किया है। जैसे बिहार के मिस्टर शर्फुद्दीन, मिस्टर हसन इमाम, डाक्टर सच्चिदानन्द सिन्हा, बाबू परमेश्वरलाल, बाबू दीपनारायणसिंह, बाबू व्रजकिशोर प्रसाद प्रभृति। बाहर के लोगों में श्रीमती एनी बेसेण्ट, श्रीमती सरोजिनी नायडू, महात्मा गाधी, मिस्टर एण्ड्रूज प्रभृति।

यह सम्मेलन १९०६ में कायम हुआ और प्रतिवर्ष अपना सालाना जलसा १९२० तक, जब असहयोग-आन्दोलन शुरू हुआ, करता रहा। उसके बाद यह कुछ शिथिल पड गया; क्योंकि इसके सभी उत्साही काम करनेवाले उस महान आन्दोलन में लग गये। फिर भी इसे पुनर्जीवित करने के प्रयत्न किये गए हैं। पर इसमे वह पुराना जीवन और तेज फिर नही आ सका। अब जो संगठन है, वह एक प्रकार से नया सगठन है, जिसके कार्यकर्त्ता शायद संगठन का हाल जानते भी न होंगे। जितने दिनो तक यह काम करता रहा, बड़े उत्साह और लगन के साथ सारे सूबे के छात्र इसमें शरीक होते रहे। इसीके द्वारा छात्रो ने संगठन को क्रियात्मक रूप से सीखा, बहुतों ने भाषण करना सीखा। उन पन्द्रह बरसो मे जितने भी जानदार और उत्साही युवक बिहार में हुए, सब इससे ही अनुप्राणित हुए। सबने अपने निजी स्वार्थ के अलावा देश-विदेशकी कुछ बाते सीखी और उनके लिए कुछ थोड़ी-बहुत त्याग की प्रवृत्ति भी पाई। जो कुछ उन्होने सीखा या पाया उससे देश को लाभ भी पहुंचा। जब महात्मा गांधी बिहार में आये, इस छात्र-सम्मेलन के भूतपूर्व कार्यकर्त्ता ही उनके साथ हुए और असहयोग-आन्दोलन में जितने आगे बढे, इसीके उत्पादित फल थे। आज प्रायः वे ही लोग सूबे के नेतृत्व का भार वहन कर रहे हैं, जिन्होंने छात्र-सम्मेलन में ही दीक्षा पाई थी।

असहयोग-आन्दोलन ने छात्रों से बहुत बड़े त्याग की मांग की। छात्र-सम्मेलन इसके लिए तैयार नही था। प्रस्ताव तो पास हो गया, पर थोड़े

ही छात्र अन्त तक उस आन्दोलन मे ठहर सके। जो ठहरे वे अधिकतर सम्मेलन के ही कार्यकर्त्ता थे। दूसरे जो वकील-वर्ग में से आये, उनमें भी अधिक सम्मेलन के ही कार्यकर्त्ताओ मे से थे। १९२० तक अपना काम इस प्रकार से पूरा करके सम्मेलन मरता-जीता जीवन बिताने लगा। इसने एक प्रकार से अपना काम पूरा कर लिया था। नई जागृति, नया जीवन सारे सूबे में पैदा कर दिया था और भविष्य के लिए खेत तैयार करके बीज भी बो दिया था, जिसका फल असहयोग-आन्दोलन को मिला और आज तक सूबे को मिल रहा है।

१९०६ के दिसम्बर में कांग्रेस कलकत्ते मे होनेवाली थी। मैं काग्रेस की खबर तो कुछ पहले से ही पढ़ा करता था, पर अभी तक काग्रेस देखने का सौभाग्य और सुअवसर मुझे नही मिला था। जब १९०५ के दिसम्बर में काग्रेस बनारस मे हुई, मै बी० ए० परीक्षा के फेर मे था और नजदीक होने पर भी वहा नही जा सका था। १९०६ की काग्रेस मे पहले-पहल स्वयं-सेवक (वालंटियर) की हैसियत मे मैं शरीक हुआ। काग्रेस का अधिवेशन बड़े जोश का हुआ। गरमदल और नरमदल का आविर्भाव हो चुका था। गरमदल के नेता समझे जाते थे लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, विपिनचन्द्र पाल, अरविन्द घोष प्रभृति। नरमदल के नेता थे सर फीरोज-शाह मेहता, गोखले प्रभृति। जहातक मैं समझ सकता था सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और पडित मदनमोहन मालवीय बीच का स्थान रखते थे। आपस के झगडे को मिटाने या कम करने के लिए दादाभाई नौरोजी विलायत से बुलाकर सभापति बनाये गए थे। सौभाग्य से मुझे काग्रेस-पडाल की ड्यूटी मिली थी। इसलिए मैं विषयनिर्धारिणी समिति मे सब बहसे सुन सका था। कांग्रेस-पंडाल मे अधिवेशन के समय पहले दिन मै कुछ दूर पर रखा गया था, जिससे सभापति का भाषण नही सुन सका। मैंने देखा कि अधिकाश स्वयसेवक अपने स्थान को छोडकर भीतर चले गए। मैंने ऐसा करना उचित नही समझा और अपने नियुक्त स्थान पर ही डटा रहा। सरोजिनीदेवी, मालवीयजी और मिस्टर जिन्ना के भाषण पहले-पहल इसी कांग्रेस में सुने। काग्रेस के साथ प्रदर्शनी भी बहुत जबरदस्त हुई थी। अधिवेशन देख करके काग्रेस के बारे मे श्रद्धा अधिक बढ गई, पर अभी कई बरसो तक मुझे इसमें बाजाब्ता शरीक होने का अवसर नही मिला। यह अवसर मिला पहले-पहल १९११ मे, जब काग्रेस फिर कलकत्ते मे हुई, उसी समय से आज तक मैं अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी का मेम्बर रहा हू और थोड़ा-बहुत काग्रेस का काम करता आया हू।

उन दिनों कांग्रेस का सगठन कुछ ढीला ही था। बिहार में तो बहुत

थोड़े ही लोग इससे सम्बन्ध रखते थे। वह भी अधिकतर वकील लोग ही हुआ करते थे। एक प्रान्तीय काग्रेस कमिटी १९०७ या १९०८ में ही अलग बन गई थी, जो बंगाल की प्रान्तीय कमिटी से जुदा थी। सूबा तो १९१२ में अलग हुआ। पर यह प्रान्तीय कमिटी कुछ बहुत नियमित रूप मे नही बनती थी। जो प्रतिनिधि होते थे, वे भी कोई नियमित रूप से चुने नही जाते थे। एक सभा होती थी, जिसमें कुछ लोग चुन लिये जाते थे। अधिवेशन मे पहुंच जाते तो ठीक, अगर नहीं पहुच पाते, तो जो लोग पहुच जाते, उनको ही मन्त्री प्रतिनिधि मान लेते और उनके नाम से प्रमाणपत्र दे देते! इस तरह से बिहार कभी खाली नहीं जाता। हर साल कुछ लोग अधिवेशन मे शरीक जरूर हो जाते। जो प्रतिनिधि जाते वही उन दिनो के नियमानुकूल अखिल भारतीय काग्रेस कमिटी के मेम्बर चुन लेते। मैं १९११ में अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी का मेम्बर इसी तरह से चुना गया; कांग्रेस की कोई खास सेवा नही की थी। उसी साल मैं पहले-पहल प्रतिनिधि बना था। पर छात्र-सम्मेलन के कारण और युनिवर्सिटी की परीक्षाओ में अच्छा फल होने के कारण बिहार के सभी लोग मुझे जानते थे। सबने एक छलाग में ही मुझे अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी मे पहुचा दिया। यह सब बाते १९२० के बाद बहुत-कुछ बदल गईं। पर इसका जिक्र आगे आवेगा।

१३

विदेश-यात्रा का निष्फल प्रयत्न

डॉन सोसाइटी और स्वदेशी आन्दोलन का असर मेरे ऊपर यह पड़ा कि मेरे मन मे आया, देश के लिए किसी तरह कुछ करना चाहिए। भाई के साथ का भी असर कुछ वैसा ही पड़ता रहता था। पर अभी तक यह स्पष्ट नही हुआ था कि यह इच्छा किस प्रकार पूरी होगी और न यही साफ सूझता था कि कौन-सी सेवा की जाय और इसके लिए क्या करना चाहिए। यह एक इच्छा मात्र थी, जो कभी-कभी उठा करती और फिर इधर-उधर की झंझटो मे विलीन हो जाती। छात्र-सम्मेलन का संगठन एक रास्ता मिला था, पर वह भी स्थायी होगा या उसमें भी परिवर्तन आ जायगा, कुछ समझता न था और न कह सकता था। हा, एक बात जी मे आ गई थी, वह यह थी—सरकारी नौकरी नही करनी चाहिए। इसलिए बी० ए० पास करने के बाद डिप्टी-मजिस्ट्रेटी के लिए दरखास्त नही दी। भाई भी नहीं चाहते थे कि यह मैं करू। बाबूजी की इच्छा थी, कि मै वकालत करू। भाई दुर्भाग्यवश एम० ए० नही दे सके। घर मे अधिक खर्च लाकर कलकत्ते में या और कही अब रहना नही चाहते थे। वह डुमरांव-राज-स्कूल में शिक्षक का काम करने लगे। मै डिप्टीगरी का खयाल छोड़कर कलकत्ते में एम० ए०, बी० एल० पढने लगा था।

छात्र-सम्मेलन हो जाने के बाद मुझपर यह एक धुन सवार हो गई। यह नही कह सकता कि यह विचार कैसे उठा और किसके प्रोत्साहन से; पर यह खयाल हुआ कि अब किसी प्रकार विलायत जाकर आई० सी० एस० की परीक्षा पास करनी चाहिए। सरकारी नौकरी की इच्छा नही थी, तो भी न मालूम मन को कैसे सन्तोष हो गया कि यह करने योग्य है। इसमें भाई ने भी प्रोत्साहन दिया। घर से इतने रुपये मिल नहीं सकते थे कि विलायत का खर्च जुट सके, इसलिए कोई दूसरा ही प्रबन्ध होना चाहिए। मि० सच्चिदानन्द सिन्हा ने जब यह सुना कि मेरी ऐसी इच्छा है तो खुश हुए और बाबू ब्रजकिशोर तो इसके लिए हमेशा तैयार ही रहते थे। डाक्टर गणेश के भोज के बाद बाबू अम्बिकाचरण को उन्होंने जापान जाने में बहुत प्रोत्साहन दिया था। मेरे लिए विलायत जाना उन्होने एक प्रकार से अनि-

वार्य समझा और लग गये रुपये जुटाने की धुन में। मुंशी ईश्वरशरण भी इसमें दिलचस्पी लेने लगे। आरा के रायबहादुर हरिहरप्रसाद ने कुछ रुपये दिये। सोचा गया कि मेरे चले जाने के बाद और रुपये भाई इन लोगों की मदद से अथवा घर मे किसी प्रकार भिजवाते रहेग। इस बात का डर हम लोगो को था कि बाबूजी और मा इस बात को पसन्द नही करेगी और घर में बहुत बावेला मचेगा। मैं इस सिलसिले मे पटने और इलाहाबाद भी गया। भाई भी साथ थे। बाबूजी से यह बात गुप्त रखी गई, क्योंकि उनकी आज्ञा मिलने की कोई आशा नही थी। हमने जाने के लिए दिन भी मुकर्रर कर लिया। कलकत्ते मे कपडे भी बनवा लिये।

उस समय तक अंगरेजी ढंग का कोई कपड़ा मैंने कभी नही पहना था। पर विलायत मे दूसरे कपडे तो पहने नही जा सकते, यही धारणा थी। इसलिए अगरेजी ढग के कपडे एक अगरेजी दूकान मे ही बनवाये गए। यही एक अवसर था जब मैंने विदेशी कपड़े, १८९८ के बाद से आजतक, खरीदे हैं। पासपोर्ट के लिए दर्खास्त दी गई। कारंवाई हो रही थी। हम लोग समझते थे कि यह बात पूरी हो जायगी, जाने के पहले बाबूजी को खबर नहीं मिलेगी और घर की ओर से कोई बाधा नही आवेगी। इस षड्यत्र मे कालेज के साथियों मे से तीन-चार और थे, जिनमे एक मेरे बिहारी मित्र शुकदेवप्रसाद वर्मा थे और बाकी बगाली लोग थे। मेरे अपने लोगों में भाई, बाबू व्रजकिशोर, मिस्टर सिन्हा, मुंशी ईश्वरशरण और रायबहादुर हरि-हरप्रसाद सिह थे।

भाई और बाबू व्रजकिशोर के साथ मै इलाहाबाद गया। मुंशी ईश्वर-शरण के साथ ठहरा। वहा मेरी ससुराल के लड़के कालेज में पढ रहे थे। उनमें किसीसे मुलाकात तो नही हुई, पर उनको किसी-न-किसी तरह खबर लग गई। वे खोजते-ढूढते मुंशी ईश्वरशरण के यहा पहुच गये। वहापर लोगो ने कह दिया कि मै नही हू। उन्होने घर पर तार दे दिया कि मैं छुप-कर विदेश जा रहा हू और उस दिन प्रयाग मे हू! तार पाते ही बाबूजी और घर के सब लोग बहुत घबराये। बाबूजी अस्वस्थ थे, इसलिए वह नही निकल सकते थे, पर मेरी मा और बहन सीधे इलाहाबाद चली गई। उन लोगों की यह गलत धारणा थी कि मै इलाहाबाद से ही चला जानेवाला था। मैं तो अभी सलाह-बात करने और रुपये के जुगाड़ में गया था। वहा एक दिन रहकर वहां से सीधे फिर कलकत्ते चला आया था।

जब मा इलाहाबाद पहुंची तो मैं वहा नही था। मुंशी ईश्वरशरण के यहां तलाश करने पर उनको खबर मिल गई कि मैं कलकत्ते वापस चला गया। मुझे कलकत्ते में इन बातों की खबर नही थी। वहां तार पहुंचा कि

बाबूजी बीमार है। मैं वहां से उनसे मिलने घर आया तो सब बाते मालूम हो गई। वह सचमुच बीमार थे, पर अभी बीमारी कुछ कडी नही थी; दुःखित जरूर थे। घर में तो रोना-पीटना हो रहा था। भाई भी आये। बाबूजी उनसे बहुत दुखी थे कि मुझे विदेश भेजने का षड्यंत्र वही कर रहे थे। मेरे पहुचते ही सबकी करुणा उमड़ पड़ी। खूब जोरो मे रोना-पीटना होने लगा। उन्होंने मुझे जाने से साफ-साफ मना कर दिया। कह दिया कि मैं अगर विलायत गया तो वह नही बचेंगे। जो बाते हुई थी, मैंने सब साफ-साफ कह दी। वादा भी कर दिया कि नही जाऊंगा। जब बाबूजी को मेरी बात पर विश्वास हो गया तब फिर उन्होने कलकत्ते जाने की इजाजत दे दी।

कलकत्ते मे, जब एक प्रकार से सब तैयारिया हो गई थी, एक छोटी घटना घटी जिसका उल्लेख करना प्रासगिक होगा। इस विलायत-यात्रा के जनून मे हमारे वे सब साथी शरीक थे, जिनको यह खबर मालूम थी। सबकी इच्छा थी कि वे भी जाय, पर उनका सुयोग अभी जुटा नही था। हम सब यही सोचते थे कि मेरे जाने के बाद वे भी किसी-न-किसी उपाय से कुछ दिनों बाद वहा पहुचने का प्रयत्न करेंगे। एक दिन लॉ कालेज से निकलने पर एक साथी ने राय दी कि चलो एक ज्योतिषी से इस विषय मे परामर्श कर ले। वह एक ज्योतिषी को जानता भी था। वहा हम लोग चले गए। वह एक बूढे ब्राह्मण थे। उनकी अवस्था प्राय साठ बरस की होगी। अपने घर मे बैठे थे। हम लोगो के जाते ही थोडी देर के बाद उन्होने कहा, "मै समझ गया, तुम लोग किस काम के लिए आये हो।" तब हममे से किसीने प्रश्न पूछना शुरू किया। प्रश्न तो एक ही था—विलायत-यात्रा सफल होगी? प्रश्न हमने कहा नही, अपने मन मे ही रखा। मुझको उन्होने उत्तर दिया कि अभी नही, बहुत दिनो के बाद तुम्हारी इच्छा पूरी होगी। शुकदेव को उन्होने उत्तर दिया, तुम्हारी इच्छा अभी बहुत जल्दी पूरी होगी। तीसरे भाई से कहा कि तुम्हारी इच्छा भी कुछ देर बाद पूरी होगी। चौथे साथी से कहा कि तुम्हारी यह इच्छा पूरी नही होगी।

हम लोगो ने एक रुपया दिया। प्रणाम करके वापस चले। रास्ता-भर इसीका मजाक उड़ाते आये कि यह बूढा बिलकुल कुछ जानता नही। मेरी तो सब तैयारी हो चुकी है और मै नही जाऊगा, और शुकदेव जिनके सम्बन्ध मे अभी कोई बात नही हुई है, बहुत जल्द चन्द दिनों के अन्दर ही चले जायंगे—यह कैसे हो सकता है! हम लोग हँसते-हँसते मजाक उडाते वापस आये। उसके बाद ही घर से तार आ गया। मेरा जाना एकबारगी रुक गया। जब मैं घर से वापस आया और यह बात तय हो गई कि मैं नही

जाऊंगा तब शुकदेव के जाने की बात उठी। मेरे कपड़े और मेरे रुपये लेकर एक दिन वह चले ही गये ! कपड़े और रुपये इतने गुप्त तरीके से होस्टल में रखे गये थे कि हम लोगो के किसी साथी को भी इसकी खबर तक न थी। शुकदेव के बारे मे भी डर था कि कही उनके पिताजी भी इसी तरह रोक न दें। इसलिए वह भी गुप्त रखा गया। उनको कही जाना नही था। इसलिए उनकी बात एकबारगी गुप्त रही। जाने के दिन साथियो से कह दिया कि घर जा रहे हैं। हम दो-तीन साथी स्टेशन पर आ गये। उन्हें रेल पर चढ़ाकर बम्बई के लिए रवाना कर दिया। जबतक बम्बई से जहाज रवाना हो जाने की खबर नही आई तबतक हम लोगो के दिल मे शक बना ही रहा कि शायद वह भी कही पकड़कर वापस न बुला लिये जाय। पर जहाज खुल जाने के बाद ही उनके घर के लोगो को खबर मिली। यहांतक कि कलकत्ते में निकट सम्बन्धी लोगो को भी, जिनसे बहुत घनिष्ठता थी, पता नही चला।

: १४ :

विद्यार्थी-जीवन की समाप्ति

शुकदेव को रवाना करके मैं तो कांग्रेस की वालंटियरी में बझ गया और कांग्रेस के बाद फिर पढ़ने मे लग गया। बाबूजी की बीमारी बढ़ती गई। कुछ दिनों मे उनकी हालत खराब होने लगी। खबर मिलने पर मैं कलकत्ते से और भाई डुमरांव से जीरादेई पहुचे। कुछ दिनों में वह जाते रहे। मरने के पहले हम सबसे भेट हो गई। उस वक्त तक भाई के दो लड़कियो और एक लड़का जनार्दन के जन्म हो चुके थे। मेरे भी मृत्युञ्जय का जन्म उसी साल हुआ था। पोता देखकर वह बहुत सन्तुष्ट रहते थे। जब बीमारी बढ गई तब सबको इकट्ठा करके आशीर्वाद दिया।

बाबूजी की मृत्यु से घर मे गड़बड़ी तो मची, हम सब दुःखी हुए; पर मुझे एक बात की खुशी भी रही। वह यह कि अच्छा ही हुआ, मैं विलायत नही गया। अगर गया होता और उनकी इस प्रकार मृत्यु हो जाती तो मैं न मालूम कितना दुःखी होता। मै फिर कलकत्ते चला गया। भाई डुमराव चले गए। घर का इन्तजाम तो भाई कुछ पहले से ही देखा करते थे। अब सारा भार उनपर ही आ गया और वह डुमराव से आकर जब-तब घर देख जाया करते। मेरे लिए खर्च वगैरह का भी इन्तजाम वही करते। उनको पढ़ने के समय जब-तब खर्चे के लिए कुछ कष्ट भी उठाना पडा। घर से रुपये जाने मे देर हो जाया करती। पर मुझे उन्होंने बाबूजी के रहने के समय, और उनकी मृत्यु के बाद भी, खर्च की चिन्ता में कभी पडने नहीं दिया। उनकी अभिलाषा थी कि जब मै पढ़ने मे तेज हूं और सब परीक्षाएं इस प्रकार सफलतापूर्वक पास करता हूं, तो मुझे केवल पढ़ने में ही मन लगाने का पूरा मौका देना चाहिए और किसी तरह की दूसरी चिन्ता नही होने देनी चाहिए।

छात्रवृत्ति मुझे बराबर काफी मिलती गई। उसको बाबूजी या भाई खर्चे में कभी नही जोड़ते थे। खर्च के रुपये तो हमेशा अलग से ही भेजते रहे। उन रुपयों में से मैं कालेज की फीस दिया करता। बाकी रुपया किताब खरीदने में ही लगता। बी० ए० पास करने पर दो छात्रवृत्तियां मिलीं, एक पचास रुपया मासिक की, जो हर महीने मिला करती। यह तो मैं खर्च करता

गया। दूसरी चालीस रुपया मासिक की, जिसकी शर्त थी कि एम० ए० पास करने पर एक साथ जोड़कर मिलेगी। जब एम० ए० पास करने के बाद एक साथ चार सौ अस्सी रुपये मिले, तो विलायत-यात्रा के जनून में जो-कुछ कर्ज लिया था, उसको अदा कर दिया।

पहले कह चुका हूं कि एफ० ए० पास करने के बाद ही परीक्षा की ओर से कुछ उदासीनता-सी हो गई। बी० ए० मे न मालूम कैसे फिर अव्वल हो गया। एम० ए० के समय यह उदासीनता और भी बढ गई। इस बरस विलायत-यात्रा के जनून और बाबूजी की मृत्यु के कारण समय दूसरे कामों मे लगा। मन भी विचलित रहा। बाबूजी की मृत्यु १९०७ के फरवरी या मार्च महीने मे हुई थी। परीक्षा अगले नवम्बर या दिसम्बर मे होनेवाली थी। गर्मी की छुट्टियो मे कुछ दिनों के लिए मै साथियों के साथ खरसान (करसियाग Kurseong चला गया। वही परीक्षा के लिए तैयारी की। एम० ए० की परीक्षा मे मेरा स्थान अव्वल नही हुआ। मेरे ऊपर कई साथी आ गये। मुझे इसका कुछ अफसोस नही रहा; क्योंकि मैंने कोई आशा भी नही की थी और न कोई विशेष प्रयत्न ही किया था।

इसके बाद प्रश्न हुआ कि क्या किया जाय। परीक्षा देकर मै भाई के पास डुमराव चला गया। कुछ दिनो तक वही रहा। सोचता रहा कि वकालत की परीक्षा दू या नही। उस ओर जी नही जाता था। यह भी महसूस होने लगा कि मैं वकालत कर भी नही सकूगा। कुछ अपनी शक्ति मे अविश्वास-सा हो गया था। सरकारी नौकरी न करने की तो पहले ही ठान ली थी।

इसी बीच मे एक मित्र बाबू वैद्यनाथनारायणसिह ने लिखा कि मैं मुजफ्फरपुर-कालेज मे प्रोफेसर हो जाऊ तो बहुत अच्छा होगा। वह उस कालेज मे प्रोफेसरी कर रहे थे। उनके कहने से मैंने दर्खास्त भेज दी। मेरी नियुक्ति हो गई। १९०८ की जुलाई में कालेज खुलने पर, मैं वहां चला गया। उस काम मे जी भी लगता था। वहा के लोगों से जान-पहचान भी हो गई। पर भाई इससे सन्तुष्ट नही थे। आहिस्ता-आहिस्ता कालेज की आर्थिक स्थिति खराब होती जाती थी। अन्त मे निश्चय हुआ कि मैं फिर वकालत की तैयारी करू। लॉ कालेज की पढ़ाई तो मैंने खतम कर ली थी; पर परीक्षा नही दी थी। भाई की राय हुई कि मै फिर कलकत्ते जाऊं और वहां परीक्षा देकर वकालत शुरू करू।

इस प्रकार विद्यार्थी-जीवन समाप्त हुआ। संसार मे प्रविष्ट होने का समय आ गया। जब उन दिनो का स्मरण आता है तो मालूम होता है, मानो वह सुख का युग था। कभी-कभी अफसोस होता है तो इसीका कि उसका जितना अच्छा उपयोग हो सकता था, नही किया गया। मुझे इस बात की

सुविधा तो मिली थी कि भाई पथप्रदर्शक रहे। जितने अच्छे विचार या अच्छी प्रवृत्तिया दिल मे उठी, सबके बीज उन्होंने ही बोये थे। पढ़ने के समय किसी प्रकार का कष्ट मैं अनुभव न करूं, इसका प्रबन्ध वह बराबर करते रहते। उन्होने कभी यह नही महसूस करने दिया कि घर मे कोई आर्थिक कठिनाई है। कलकत्ते मे और उसके पहले छपरे मे अपने साथियों के साथ मेरा बराबर प्रेम रहा। जहातक मुझे स्मरण है, किसीके साथ कभी किसी प्रकार की खटखट तक नही हुई, झगडे का तो कोई सवाल ही नही है; बल्कि सबके साथ प्रेम का ही व्यवहार रहा। थोडे लोगो मे तो बडी घनिष्ठता हो गई, जो बराबर कायम रही। यद्यपि पढने मे स्पर्धा और प्रतियोगिता काफी रही, तथापि कभी किसीने मेरे साथ न तो चालाकी की, न धूर्तता ही की, न कभी किसीके साथ अन्यमनस्कता ही हुई। जहां-कही किसीको कोई दिक्कत या कठिनाई होती, हम बराबर एक-दूसरे की मदद करते; बल्कि जो मेरे प्रतिस्पर्धी साथी थे, उनके साथ मिलकर परीक्षा की तैयारी की गई। जब मै एफ० ए० की परीक्षा के लिए तैयारी कर रहा था तो वह मित्र (जिसे मेरे साथ एण्ट्रेन्स मे दूसरा स्थान मिला था) और मैं, दोनो एक साथ ही, परीक्षा की तैयारी करते रहे। इसी प्रकार और परीक्षाओ मे भी सब मिलजुलकर पढते रहे।

कलकत्ते जाना और इडेन-हिन्दू-होस्टल का जीवन मेरे लिए बहुत लाभदायक हुआ। कलकत्ते जाने से ही आखें खुली। यह सोचना बेकार है कि वहां अगर नही गया होता तो क्या होता। पर मेरा विश्वास है कि अन्यत्र कही मुझे इतना लाभ नही पहुचता। इडेन-हिन्दू-होस्टल मे रहने से बगाली साथियो मे हिल-मिल जाने का जैसा सुअवसर मिला शायद दूसरी जगह रहने से नही मिलता। बगाली साथियों की स्मृति अत्यन्त सुखकर है। मुझे किसीके भी खिलाफ कोई भावना हुई ही नही और न उनमें से किसीने मेरे साथ कभी कोई बुरा बर्ताव किया। कभी किसीने कटु शब्द भी नही कहे। मैं मानता हूं कि उनके साथ जो दिन बीते, वे अत्यन्त सुखद और लाभप्रद हुए। उनके साथ रहते-रहते, बिना प्रयास के ही, मैंने बंगला बोलना सीख लिया। आज भी मेरे बहुतेरे मित्र सारे बंगाल में भरे पडे हैं। बहुत दिनो के बाद जब मैं असहयोग के दिनो मे बगाल का दौरा करने गया तो जहां जाता वहीं कुछ पुराने जाने-पहचाने मित्र मिल जाते और पुरानी स्मृतियां जाग उठती।

जब मैं कांग्रेस-प्रेसीडेट हुआ, बिहार में फिर १९३८ में बंगाली-बिहारी प्रश्न उठा। उसके बाद कांग्रेस मे मुझे कुछ ऐसे काम करने पड़े, जो बगाल के कुछ लोगों को नापसन्द आये। मेरे ऊपर बहुत बौछारें हुईं। कटु लेख लिखे

गये। गाली-गलौज भी काफी मात्रा में हुई। पर मैं अभी तक यह नहीं महसूस करता हूं कि उनके साथ मेरा कोई द्वेष है या उनके प्रति कमी किसी दूसरे प्रकार की भावना दिल मे उठी भी हो। यह हो भी कैसे सकता है? इतने दिनों का सुन्दर सुहावना साथ, प्रेम का आदान-प्रदान, पुरानी सुखकर स्मृतियां, क्या यह सब मनुष्य भूल सकता है? कर्तव्य के वश अगर कभी किसीके साथ कोई ऐसा काम करना भी पड़ा, जो उसको पसन्द न हुआ, तो मै अपने दिल से जब पूछता हूं, हमेशा यही उत्तर मिलता है कि मैंने कभी किसीका अनिष्ट, जान-बूझकर अनिष्ट करने की नीयत से, नहीं किया। जो हो, यह सब बाते तो भूल जायगी, पर मेरे हृदय-पट से वे चित्र, जो लड़कपन मे ही वहां खिचे थे, कभी न मिटेंगे। वे सारी स्मृतियां कभी विलीन नही हो सकती और न मैं उस देन को भूल सकता हूं, जो बंगाल में पन्द्रह बरसों के जीवन ने मुझे दी है।

कलकत्ते में मेरी घनिष्ठता बहुत बिहारियों से भी हुई। जब मैं कलकत्ते पढने के लिए गया तो थोडे ही बिहारी छात्र वहा थे। आहस्ता-आहिस्ता उनकी सख्या बढने लगी। पीछे तो वे खासी तादाद में वहां पहुंच गये। हम लोगों ने अपना बिहारी-क्लब बना लिया था, जिसमें हर सप्ताह सब मिला करते थे। जाति-पाति का झगड़ा इतना साथ लेते गये थे कि हिन्दू-होस्टल में हमने अपने लिए अलग चौका रखा था, जिसमे बिहारी ब्राह्मण रसोई बनाता था। यद्यपि मैं डाक्टर गणेशप्रसाद के साथ भोज मे शरीक हुआ था, तथापि जाति का बन्धन बहुत मानता था। वह तो मेरी अपनी जाति के आदमी (कायस्थ) थे; किसी भी दूसरी जाति के आदमी का छुआ हुआ कोई अन्न, जो अपने देश (बिहार) मे नहीं खाया जाता है, वहां नही खाया। इतने दिनों तक वहा रहा, मगर बंगाली 'मेस' मे कच्ची रसोई एक दिन भी नही खाई।

बिहारी साथियो में बहुतेरों से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया, जो आज कई जिलों में बिखरे हुए अपने-अपने स्थान पर कुछ-न-कुछ कर रहे है। इसलिए जहां जाता हूं, कोई-न-कोई कलकत्ते का साथी मिल ही जाता है। घनिष्ठ मित्रों मे चम्पारन जिले के शिकारपुर के श्री अवधेशप्रसाद और जगन्नाथप्रसाद; शाहाबाद के श्री शुकदेवप्रसाद वर्मा; भागलपुर के श्री कृष्णप्रसाद; रांची के बदरीनाथ वर्मा, बलभद्रप्रसाद ज्योतिषी, डाक्टर साधुसिंह, डाक्टर राजेश्वरप्रसाद, बटुकदेवप्रसाद वर्मा, विन्ध्यवासिनीप्रसाद वर्मा प्रभृति थे। इनमें कितने चले गये और कितने आज भी मौजूद हैं। अवधेशबाबू की मित्रता बहुत फलदायक हुई और उससे लाभ हुआ। पीछे उनके साथ शादी का सम्बन्ध भी हो गया।

: १५ :

वकालत की तैयारी

मुजफ्फरपुर-कालेज में नौ-दस महीनो तक काम करके १९०९ के मार्च में मैं कलकत्ते फिर वापस चला गया। उन दिनो बी० एल० की दो परीक्षाएं होती थी। एक परीक्षा मैंने तुरत पास कर ली और दूसरी की तैयारी करनी थी। हाईकोर्ट मे वकालत करने के लिए किसी वकील के साथ दो बरसों तक काम करना चाहिए था। एक छोटी-सी परीक्षा भी पास करनी पड़ती थी, जिसमें जज लोग स्वय कुछ पूछताछ कर लिया करते थे। अगर मैं चाहता, तो बी० ए० पास करने के बाद, किसी वकील के दफ्तर में नाम लिखाकर, १९०८ में ही ये दो साल पूरे कर सकता था। पर उस समय इस ओर ध्यान नही गया। इसलिए अब मैं १९०९ में कलकत्ते गया तो उस समय से दो बरस की उम्मीदवारी करनी थी। इच्छा हुई कि किसी अच्छे वकील के साथ काम सीखू। खाबहादुर सैयद शमसुलहुदा के पास मैं एक मित्र द्वारा पहुचाया गया। उस समय उनके साथ दो उम्मीदवार थे और नियम के अनुसार दो ही हो सकते थे। उन्होंने कहा कि जगह खाली होते ही तुमको अपने साथ उम्मीदवार (आर्टिक्ल-क्लर्क) रख लूगा, तबतक दूसरे मित्र के साथ तुम्हें रखा देता हू। उन्होने मुझे जहादुर रहीम जाहिद के साथ रखा दिया। ये सज्जन भी अच्छे वकील थे। कुछ दिनो के बाद विलायत गये और बैरिस्टर होकर आये। पीछे हाइकोर्ट के जज भी हुए। बाद में अपने नाम मे उन्होंने 'साहोवर्दी' जोड़ दिया था, इसलिए जस्टिस साहोवर्दी के नाम से ही मशहूर हुए।

मेरा विचार था कि जब दो बरसों तक और कुछ काम नही है तो खूब परिश्रम करके कानून अच्छी तरह पढ लूगा, जिससे मैं पहले बहुत डरता था, और वकील के यहां काम भी सीख लूगा। मैं भाई पर खर्च का भार नही डालना चाहता था। इसलिए शुरू मे कुछ दिनों के लिए वहां सिटी-कालेज में प्रोफेसरी भी की; पर वह भी थोड़े ही दिनो के लिए। बाद मे कुछ विद्यार्थियों को घर पर पढ़ाया करता और उससे वहां का खर्च निकाल लेता। वह लड़का, जिसको मैं पढ़ाता था, जस्टिस दिगम्बर चटर्जी का पुत्र था। इस तरीके से, वकालत शुरू करने के पहले ही, एक जज से भी

परिचय हो गया।

जब शमसुलहुदा साहब के यहां जगह खाली हुई, मैं उनके साथ काम करने लगा। मैंने उस समय का अच्छा उपयोग किया। मामूली तौर से जो लोग इस प्रकार काम सिखा देते थे, बहुत थोड़ा ही काम किया करते थे और अन्त में दो साल बिताकर नाम-निहादी परीक्षा पास करके वकील हो जाते थे। मैंने ऐसा नहीं किया। मैं रोज सवेरे शमसुलहुदा साहब के घर पहुंच जाता। वहा दस बजे तक उनके हाथ के मुकदमों के कागजों को पढ़ता। उनपर अपना नोट, जैसा उन्होंने बता दिया था, तैयार करता। कानून की नजीरें वगैरह पढ़कर उनके लिए सबकुछ तैयार कर देता। थोड़े ही दिनों में उन्होंने देख लिया कि मैं उनके लिए अच्छा नोट तैयार कर देता हूं, जिससे उनको पूरी मदद मिल जाती है, और 'जूनियर' वकील की बहुत जरूरत नहीं होती है।

मैं एक 'मेस' मे रहा करता था, जो उनके घर से बहुत दूर था। वहां कुछ दूर तक ट्राम पर जाना होता। ट्राम से उतरकर प्रायः एक मील पैदल जाना होता। वह स्वयं बहुत सवेरे उठकर कागज वगैरह पढ़ा करते थे। मैं सात बजे पहुंच जाता और दस बजे तक उनके साथ काम करता। फिर उसी तरह अपने 'मेस' में आता। भोजन करके एक बजे हाइकोर्ट जाता। वहां मुकदमों की बहस सुनता। खास करके उन मुकदमो मे बहुत जी लगता जिनके लिए मैं उनको नोट तैयार करके देता। सध्या को हाइकोर्ट से लौटकर फिर मवानीपुर, जो हमारे 'मेस' से प्रायः चार मील पर था, जाकर रात में लड़के को पढ़ाता और नौ-दस बजे लौटकर सोता। इस तरह काफी परिश्रम करता। काम भी मैं अच्छी तरह सीख गया। पीछे शमसुलहुदा साहब ने कहा कि तुमको आने-जाने मे बहुत तकलीफ होती है और समय भी लगता है, तुम मेरे ही मकान में आ जाओ, तुम्हारे लिए—जो बन्दोबस्त कहो—कर दूंगा। उन्होंने एक कमरा रहने के लिए और एक अलग रसोई के लिए मुझे दे दिया। मैं वहां रहने लगा। तब रात को भी और सवेरे भी, जब चार-पांच बजे उठते और जरूरत समझते तो, मुझे पुकार लेते। अपने साथ ही मुझे रोज अपनी गाड़ी में कचहरी ले जाते। उनसे घनिष्ठता इतनी बढ़ गई कि घर के लड़के की तरह मुझे मानने लगे।

आज-कल, जब हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्न बहुत जोरों से खड़े होते हैं, एक छोटी घटना का उल्लेख कर देना अच्छा होगा। शमसुलहुदा साहब नामी वकील थे। मुसलमानों के एक नेता समझे जाते थे, मुस्लिम लीग के प्रेसिडेण्ट भी हुए थे। युनिवर्सिटी-सिनेट के और लेजिसलेटिव-कौंसिल के मेम्बर भी थे। पीछे तो बंगाल के गवर्नर की एग्जिक्युटिव (कार्यकारिणी) कौंसिल

के मेम्बर हो गये। हाइकोर्ट के जज तक हो गये। लेजिसलेटिव कौंसिल के प्रेसिडेण्ट भी हो गये थे। 'सर' का खिताब भी मिला था। उस समय वह अभी खां बहादुर मात्र थे, पर हाइकोर्ट में मवक्किल और जज दोनों ही उनकी बड़ी प्रतिष्ठा करते थे। उनके हाथ मे मुकदमे भी बहुत रहा करते थे। मिजाज भी उनका बहुत अच्छा था। धार्मिक प्रवृत्ति के आदमी थे। मुसलमान छात्रो को कुछ छात्र-वृत्तियां भी दिया करते थे। कुछ विद्यार्थी केवल खाने के समय आकर वहां भोजन कर जाया करते थे।

मैं उनके मकान मे ठहरा था। बकरीद का दिन आ गया। मुहल्ला भी मुसलमानी मुहल्ला था, जिसमें बहुत बडी आबादी मुसलमानों की ही थी। मैंने सोचा कि शायद इस मौके पर गाय की कुर्बानी उनके घर मे या आस-पास के घरों में हो। मैं एक सनातनी हिन्दू था। मैंने सोचा, अच्छा होगा कि इस मौके पर दो-चार दिनों के लिए कही हट जाऊ। मै चुपचाप, उनको बगैर कुछ कहे ही, वहा से चला गया। 'मेस' मे जाकर मित्रों के साथ ठहर गया। तीन-चार दिनों के बाद लौटकर आया। उन्होने पूछा कि कहा चले गये थे। मैने सब बातें साफ नहीं कही। इतना ही कहा कि कुछ मित्रो के पास दो-तीन दिनों के लिए चला गया था।

उन्होंने कहा—"मैं समझ गया, तुम बकरीद के कारण चले गए थे। तुमने सोचा होगा कि यहां गाय की कुर्बानी होगी, इसलिए यहां रहना नहीं चाहिए। क्या तुमने मेरे साथ बेइन्साफी नही की? तुमने समझ लिया कि तुम्हारी भावना का मैं कुछ भी खयाल नही करूगा? तुम तो तुम हो, मेरे घर में कई नौकर हिन्दू है। फुलवारी का माली हिन्दू है, गायों को खिलाने के लिए नौकर हिन्दू है; क्या उनकी भावना का मै खयाल नही रखता हूं? उनका दिल क्या नहीं दुखता? तुमको मुझसे पूछ लेना चाहिए था। मेरे घर में अपने घर के हिन्दू नौकरों के खयाल से गाय की कुर्बानी नही होती है।"

मुझे बहुत शर्मिन्दा होना पड़ा। मैं समझ गया कि मैंने उनके साथ बेइन्साफी की थी। उस समय बगभंग का आन्दोलन चल ही रहा था। बंगाली मुसलमान इस आन्दोलन का विरोध कर रहे थे। पूरब बंगाल में, जहां के रहनेवाले शमसुलहुदा साहब थे, हिन्दू-मुस्लिम दंगे भी बहुत हुए थे। वह स्वयं बंगभंग के पक्ष मे थे। यह सब होते हुए भी उनकी ऐसी भावनाएं थी, इस प्रकार का हमारे साथ व्यवहार था!

इसी बीच मैंने बी० एल० की परीक्षा भी पास कर ली थी। उसपर मैंने कभी ध्यान ही नही दिया, किसी तरह केवल पास कर गया। जब मेरे दो बरस उम्मीदवारी के खतम होने पर आये, उसी समय उनके बंगाल के

गवर्नर की एग्जिक्युटिव कौंसिल के मेम्बर होने की खबर आने लगी। उनको इसका पता चल गया। उन्होंने मुझसे कहा कि अब तो वह बहुत दिनों तक वकालत नही कर सकेंगे और इस तरह मुझको वकालत शुरू करने के बाद उनसे मदद नही मिलेगी। मगर मैंने सोचा, काफी काम सीख लिया है और मैं खुद सब कर लूंगा।

१९११ के अगस्त महीने में मैंने वकालत शुरू की। जिस दिन नाम लिखा गया उस दिन एक मुकदमा इन्होंने मुझे दिलवाया। स्वयं मेरे साथ जाकर जजों के सामने बैठे और मुझे बहस करने दी। हाइकोर्ट में वकालत शुरू करने के बाद केवल चन्द दिनो के लिए हाइकोर्ट खुला रहा। उसके बाद दुर्गापूजा की लम्बी छुट्टी हो गई। छुट्टी के पहले ही मैं बिहार चला गया। वहां पूज्य मालवीयजी हिन्दू-विश्वविद्यालय के लिए चन्दा जमा करने के सिलसिले मे बिहार का दौरा कर रहे थे। चन्द दिनो तक उसी काम मे लगा रहा। जिस समय हाइकोर्ट खुला और मैं कलकत्ते पहुचा, उस समय शमसुलहुदा साहब की नियुक्ति की खबर बहुत गर्म थी। मवक्किल भी समझने लगे थे कि अब यह वकालत नही करेंगे। हाइकोर्ट ढाई-तीन महीने बन्द रहने के बाद जब खुलता है तो इन तीन महीनो में जमा हुए बहुत मुकदमे नये दायर होते हैं। शमसुलहुदा साहब के पास जो मुकदमे आये, उनमे से कई में उन्होंने मुझे मुकर्रर करा दिया। रुपये तो कम मिले या नही भी मिले; पर उन्होंने कहा कि अब तो मैं नही रहूंगा, ये मुकदमे तुम्हारे ही हाथ में रहेंगे, अगर ठीक काम करोगे तो मवक्किल तुमसे ही काम लेते रह जायंगे। इस बात का जिक्र केवल उनकी मुहब्बत दिखाने के लिए ही नही, पर एक दूसरे उद्देश्य से भी जरूरी था।

कुछ दिनों के बाद इन्ही मुकदमो मे से एक पेश हुआ। मवक्किल ने मुझे बाजाब्ता फीस देकर तो रखा नही था, पर चूकि वकालतनामा पर मेरा भी दस्तखत था, फिहरिस्त मे मेरा नाम भी आया। एक दूसरे वकील को उसने पीछे मुकर्रर कर लिया। पर ऐसे जितने मुकदमे थे, जिनमे शमसुलहुदा साहब ने मेरा नाम भी लिखवा दिया था, जब पेश होते, मैं उनके कागजों को खूब पढ़ लेता और कानून वगैरह देखकर तैयार हो जाता। उस दिन भी उसी तरह तैयार होकर गया। कानूनी सवाल उसमे बहुत उठते थे। मेरे सीनियर वकील साहब उतनी गहराई तक नहीं उतरे थ। मुकदमा जस्टिस सर आशुतोष के इजलास मे था। मैं वकीलसाहब को मदद दे रहा था और नजीर पर नजीर पेश करने के लिए उनके हाथ में देता जा रहा था। सर आशुतोष सब देख रहे थे। कुछ देर के बाद उन्होंने मुझसे ही पूछा कि और कौन नजीर वहां है, बता दो तो किताबें मंगा लू।

पीछे एक अच्छा फैसला लिखवाया जो रिपोर्टों में प्रकाशित हुआ।

यह बात तो हो गई। मैं उन मुकदमे की बात भूलना ही चाहता था कि दो दिनों के बाद एक दूसरे वकील ने, जिनके साथ मैं अक्सर काम किया करता था और जो युनिवर्सिटी-सिण्डिकेट के मेम्बर थे, मुझसे पूछा कि तुमको अगर लॉ-कालेज में प्रोफेसर की जगह मिले तो मंजूर करोगे? मुझे आश्चर्य हुआ, क्योकि मैंने इसके लिए किसीसे कहा नहीं था। सर आशुतोष से भी, जो वाइस-चान्सलर थे और जिनके यहा वकीलों का दरबार-सा लगा रहता था, मैने न मुलाकात की थी और न कुछ कहा ही था। मै यह भी नही जानता था कि मेरे ऐसे अभी दो बरस के वकील को भी यह जगह मिल सकती है। मैंने आश्चर्य से उनसे पूछा कि यह जगह मुझे कैसे मिल सकती है, मैंने न तो किसीसे मुलाकात की है और न दर्खास्त ही दी है। उसपर उन्होने कहा कि किसी मुकदमे मे तुमने सर आशुतोष के इजलास में काम किया है और वह बहुत खुश हुए है, तुम उनसे जाकर मिलो। मैं गया और चन्द दिनो के बाद ला-कालेज मे जगह मिल गई। केस में रुपये तो ज्यादा नही मिलते थे; पर पढाने के लिए कानून घर पर खूब पढना पड़ता था, जिससे पूरा लाभ हुआ। इस प्रकार एक अनजान और बिना रुपये के मुकदमे ने मुझे यह इज्जत दी।

वकालत शुरू करने के पहले की बात और लिख दूं। ऊपर कह चुका हू कि मै जस्टिस दिगम्बर चटर्जी के लड़के को घर पर कुछ पढाया करता था। उनमे जान-पहचान हो गई थी, पर कोई घनिष्ठता नही थी। वह जानते थे कि मैंने युनिवर्सिटी की परीक्षाए अच्छी तरह पास की है और इसीलिए उन्होने अपने लडके को पढाने के लिए मुझे रखा भी था। जब उनको मालूम हुआ कि मै अब वकालत शुरू करनेवाला हू तो एक दिन वह मुझसे कुछ बात करने लगे। उन्होने पूछा, "तुम्हारा सम्बन्धी कोई वकील है?" मैने कहा, "कोई नही है।" वास्तव मे मेरी ससुराल के लोगो मे तो कई वकील थे, पर वे लोग बलिया मे—जो युक्तप्रान्त मे है—वकालत करते थे। बिहार मे मेरा कोई भी सम्बन्धी इस पेशे में नही था। यह सुनकर उन्होंने कहा कि यह बहुत अच्छी बात है। मुझे आश्चर्य हुआ, क्योकि मेरी धारणा थी कि अगर कोई सगा-सम्बन्धी वकील होता तो शुरू में वह मदद करता और उससे मुकदमे मिलते; इस तरह मुकदमे हाथ में आते।

मैंने अपना अभिप्राय बतलाया। तब वह कहने लगे, "तुम अपना सौभाग्य समझो कि तुम्हारा कोई सम्बन्धी वकील नही है और खास करके बहुत नामी वकील नही है। अगर कोई वकील होता तो शायद कुछ मुकदमे उसके सम्बन्ध से तुमको मिलते; पर मवक्किल तुमको वकील नही रखता।

वह तो यह समझता कि बड़े वकीलसाहब की खातिर से किसी एक निकम्मे आदमी को भी रख लेता हूं। उसका तुमपर न कभी विश्वास होता और न तुम्हारे लिए उसके दिल मे कोई प्रतिष्ठा होती। इसलिए वह भी वकील जरूर रखता। तुम भी यह समझकर कि दूसरे को बहस करना है, अपनी ओर से विशेष कोई तैयारी नहीं करते। इस तरह तुम काम मे ढिलाई करते। तुमको बहस करने का भी कम मौका मिलता। जब तुम आगे चलकर अपने परिश्रम से अगर अच्छे वकील भी हो जाते और वह मवक्किल आता तो वह तुमको याद दिलाता कि शुरू मे उसने ही तुमको वकील रक्खा था। इसलिए तुमको भी लिहाज होता और तुम उससे रुपये नही ले सकते। धनी मवक्किल तो इस तरह के होते है। गरीब तुम्हारे पास शायद कोई आ जाता तो तुम अपनी आदत से उसपर अधिक ध्यान नही देते; क्योकि तुम्हारे पास तो धनी मवक्किल—चाहे वे रुपये देते हों या नही और चाहे तुम्हे उनके मुकदमे मे स्वयं जवाबदेही लेकर काम करने का मौका मिलता हो या नही—आ ही चुके होते और तुमको इसका गर्व भी होता। जब कोई मदद करनेवाले सम्बन्धी वकील नही है तो इस प्रकार का कोई मवक्किल तुमको नही मिलेगा। गरीब मवक्किल यह जानकर कि तुम अच्छे पढ़ेलिखे हो, आवेगा, रुपये कम देगा, पर अपना सर्वस्व तुमको ही समझेगा, उसका दूसरा कोई वकील नहीं होगा; तुमको ही उसके मुकदमे मे सबकुछ करना होगा। इसलिए जहांतक हो सकेगा तुम अपनेको अच्छी तरह तैयार करोगे। इस तरह काम करने का सुयोग मिलेगा। जब मुकदमे जीत जाओगे, वह दस और-और गरीबों से तुम्हारी तारीफ करेगा। वह विज्ञापन का काम करेगा। दूसरे गरीब मुवक्किल आवेंगे। इस तरह तुम्हारा नाम होगा। इसमे न किसीकी मदद रहेगी, न एहसान। जब इस प्रकार वकालत चल निकलेगी, बड़े मवक्किल खुद आवेंगे। वे तुम्हारी खुशामद करेंगे, पुराना एहसान नही जता सकेंगे और तुम उनसे इज्जत के साथ रुपये ले सकोगे। इसलिए मेहनत करके काम करना सीखो। वकालत अच्छी चल निकलेगी।"

उनकी बातो से मेरे दिल में बहुत हिम्मत बंधी। उन्होने जितनी बाते कही थी, अक्षरशः सत्य निकली। शुरू में केवल गरीब मवक्किल मिले। मुझे शुरू से ही, बिना किसी वकील की मदद के, काम करने का सुअसवर मिला। इससे मेहनत भी करनी पड़ती और अपनी बुद्धि भी खुलती। एक ही दो ऐसे मुवक्किल मिले, जो धनी कहे जा सकते हैं। उनसे पुराना सम्बन्ध था। इसीलिए वे मेरे पास आये; नही तो और सब गरीब ही थे।

जिस समय मैं वकालत की तैयारी कर रहा था, एक और घटना घटी, जिसका उल्लेख जरूरी है। अगर उस घटना की बात पूरी हो जाती तो जीवन का प्रवाह आज दूसरा ही हो गया होता, पर वह नहीं हुई। शायद अच्छा ही हुआ कि उस समय अधपका सपना न छेड़ा गया। यह घटना थी माननीय श्री गोखले से मुलाकात।

: १६ :

माननीय गोखले से मुलाकात

१९१० ई० मे वकालत की परीक्षा के लिए मैं पढ़ रहा था। कलकत्ते में एक 'मेस' मे रहता था। वहां दो-चार बिहारी साथी भी थे। मेरे भाई भी वहा गये हुए थे। एक दिन हाइकोर्ट में, जहां मैं प्रायः प्रतिदिन जाया करता था, मिस्टर परमेश्वरलाल बैरिस्टर ने मुझसे कहा कि तुम और श्रीकृष्ण जाकर माननीय गोखले से मिलो, उन्होंने तुम दोनो को बुलाया है। मुझे यह सुनकर आश्चर्य हुआ, क्योकि मुझे माननीय गोखले से मिलने का सौभाग्य पहले कभी प्राप्त नहीं हुआ था। उनको भी मुझे जानने का कोई कारण नही था। मिस्टर परमेश्वरलाल ने कहा कि वह बिहार के दो-चार अच्छे होनहार विद्यार्थियो से मिलना चाहते है और मैंने तुम लोगो का नाम उनको बता दिया है। बात यह थी कि श्रीकृष्णप्रसाद—जो दुर्भाग्य-वश, कम अवस्था मे ही, कुछ दिन हुए, इस लोक से चले गए—और मैं, दोनों ही, छात्र-सम्मेलन मे प्रमुख भाग लिया करते थे। इसलिए हम दोनों को बहुत लोग जानते थे। मिस्टर परमेश्वरलाल ने भी इसी कारण हम दोनो के नाम बता दिये थे।

हम दोनों, माननीय गोखले से, जहा वह ठहरे थे, जाकर मिले। उन्होंने थोड़े दिन पहले 'सर्वेण्ट्स आफ इडिया सोसाइटी' की स्थापना की थी। वह चाहते थे कि बिहार के कुछ अच्छे नवयुवक उसमे शरीक हो जायं। उन्होंने देश की सेवा पर जोर देकर हम लोगों से उसमे शरीक होने को कहा। वह जानते थे कि हम दोनो ने युनिवर्सिटी-परीक्षाए अच्छी तरह पास की है और अब वकालत की तैयारी कर रहे हैं। उन्होंने कहा—"हो सकता है कि तुम्हारी वकालत खूब चले, बहुत रुपये तुम पैदा कर सको, बहुत आराम और ऐश-इशरत में दिन बिताओ। बड़ी कोठी, घोडा-गाडी, नौकर इत्यादि दिखावट के सामान, जो अमीरो को हुआ करते हैं, तुमको सब मयस्सर हों। पर मुल्क का भी दावा कुछ लडकों पर होता है, और चूकि तुम पढ़ने में अच्छे हो, इसलिए तुमपर वह दावा और भी अधिक है।" अपने बारे में उन्होंने कहा, "मेरे सामने भी यही प्रश्न आया था। मैं गरीब घर का आदमी था। मेरे घर के लोग बहुत आशा रखते थे कि जब मैं पढ़कर तैयार

हो जाऊंगा तो रुपये कमाऊंगा और सबको सुखी बना सकूंगा। जब मैंने उनकी सब आशाओं पर पानी फेरकर देशसेवा का व्रत लिया तो मेरे भाई इतने दुखी हुए कि कुछ दिनों तक वह मुझसे बोले तक नहीं; पर कुछ दिनों के बाद वह सब बातें समझ गये और फिर मेरे साथ खूब प्रेम करने लगे। हो सकता है कि यह सब तुम्हारे साथ भी हो, पर इसका विश्वास रखो, सब लोग अन्त में तुम्हारी पूजा करने लगेंगे। लोगों की सब उम्मीदें तुम पर बंधी है, पर कौन जानता है, अगर तुम्हारी मृत्यु हो गई, तो उसे तो वे लोग बर्दाश्त कर ही लेंगे।"

इसी प्रकार उन्होंने प्रायः डेढ़-दो घंटे तक हम लोगों से बातें की। बातें करने का तरीका भी ऐसा था कि हम लोगों के दिल पर उसका बहुत गहरा असर हुआ। अन्त में उन्होंने कहा, "ठीक इसी समय उत्तर देना जरूरी नहीं है, क्योंकि सवाल गहन है, विचार करके हममें एक दिन फिर मिलो और तब अपनी राय दो।" हम लोग वहां से एक प्रकार से खोये हुए-से होकर निकले। अपने 'मेस' में वापस आये। उनकी बातों का इतना असर पड़ा था कि कोई दूसरी बात सूझती ही न थी।

हम दोनों उनकी बातों पर विचार करने लगे। मुझे तो कई दिनों तक नींद नहीं आई। खाना-पीना सबकुछ बरायनाम रह गया। स्वदेशी के दिनों में देश की बातें सामने आती थीं। देशसेवा की भावना भी जब-तब जाग्रत होती थी। पर इसके पहले कभी इस तरह से यह प्रश्न सामने नहीं आया था और न कभी ऐसे बड़े आदमी से मिलकर इस प्रकार के मार्मिक शब्दों के सुनने का ही सौभाग्य हुआ था। एक ओर उनकी बताई देश के लिए हम जैसे लोगों की सेवा की जरूरत; दूसरी ओर भाई पर घर का सारा बोझ लादना! मेरे भी दो पुत्र हो चुके थे और उनके भी तीन पुत्रियां थीं और एक लड़का। मां अबतक जीवित थी। वह क्या कहेगी, घर के दूसरे लोगों को कैसा दुःख होगा, इत्यादि भावनाएं इतनी सताती रहीं कि जैसा ऊपर कहा है—खाना-पीना तक प्रायः छूट गया। हम दोनों के सिवा इन बातों को दूसरा कोई जानता नहीं था। भाई साथ में ही थे, पर उनसे भी नहीं कहा। किसी दूसरे साथी से भी नहीं कहा। हाइकोर्ट जाना भी बन्द रहा। टहलना-घूमना छूट गया। कहीं-न-कहीं एकान्त ढूंढकर बैठना और चिन्ता करना, यही एक काम रह गया। प्रायः दस-बारह दिनों तक यही सिलसिला चला। भाई को कुछ शक हुआ कि तबीयत ठीक नहीं है। उनको कुछ कहकर टाल दिया। अभी अपना जी नहीं भरता था तो उनसे क्या कहूं।

कई दिनों की इस प्रकार की चिन्ता के बाद मैंने एक दिन निश्चय

किया कि मुझे माननीय गोखले की बात मानकर उनकी सोसाइटी में शरीक हो जाना चाहिए। मेरी हिम्मत नहीं होती थी कि भाई से मैं खुलकर कहूं, क्योंकि मुझे डर था कि उनको इससे बहुत दुःख होगा। मैंने एक लम्बा पत्र लिखा, जिसमे सब बातें खोलकर लिख दीं और उनसे आज्ञा मागी कि मुझे जाने दें। एक दिन संध्या को वह पत्र उनके बिस्तर पर, जब वह कही टहलने गये थे, मैंने रख दिया। मै खुद कालेज-स्क्वायर मे, जो नजदीक ही था, जाकर बैठ गया। उन्होंने पत्र पढ़ा, और मेरी तलाश करने लगे। मुलाकात नही हुई। जब मैं लौटा तो उनका हाल बेहाल देखा। वह उस रात तो कुछ बोल न सके। मैने देखा कि जो विचार मुझे सता रहे थे, वही उनको भी सता रहे है। उनका जी चाहता है कि मुझे न रोकें, पर अपनेको परिवार का इतना बड़ा बोझ उठाने में असमर्थ पाते है। वह मुझसे मिलकर फूट-फूटकर रोने लगे। मैं भी अपनेको रोक न सका। मैं भी रोने लगा।

मैं तो उनके उस रोने से ही उनके मन का भाव ताड़ गया। अधिक कुछ कहने की मेरी हिम्मत ही न हुई। राय हुई कि घर चलकर मां-चाची और बहन से भी सलाह करनी चाहिए। मैने माननीय गोखले से जाकर यह हाल कह दिया। मै समझ गया था कि अब मुझसे इन सबके प्रेम के बन्धन को काटना नही हो सकेगा। ऐसा ही उनसे कह भी दिया। उन्होंने भी आशा छोड़ दी। मेरे साथी श्रीकृष्ण ने अन्तिम निश्चय करने के पहले कुछ दिनो तक पूना जाकर वहा का सब हालचाल देखना चाहा। माननीय गोखले ने इस बात को पसन्द किया। पूना जाकर श्रीकृष्ण कुछ दिनो तक रहे भी। पर अन्त मे उनका भी निश्चय हुआ कि वह सोसाइटी मे शरीक न हो सकेंगे।

हम दोनों भाई जीरादेई पहुंचे। वहा जब घर की औरतों ने सब बातें सुनी तो सब परेशान हो गई। मां का तो प्रेम इतना रहता था कि वह कभी कुछ बोलती ही नही थी। पर मेरी बहन, जो हमेशा से कुछ तेज बोलनेवाली हैं, कहने लगी कि तुमने विलायत जाने की बात उठाकर बाबूजी को रुलाया और अब इस उम्र मे साधु बनना चाहकर भाई को रुलाते हो। बस इतना कह वह स्वयं भी रोने लगी। घर-भर में कोलाहल मच गया। उस कोलाहल मे मेरी बची-खुची हिम्मत, जो कलकत्ते मे ही कमजोर पड़ गई थी, अब बिलकुल टूट गई।

घर पर कुछ दिनों तक ठहरकर मैं फिर कलकत्ते चला गया। घर के लोगों को विश्वास हो गया कि मैं उन सबकी मर्जी के खिलाफ ऐसा काम नहीं करूंगा। इसी पसोपेश में प्रायः चार-पांच सप्ताह बीत गये। मैंने विचार तो छोड़ दिया, पर दिल में व्यथा बनी रही। कई हफ्तों तक कुछ

परेशान-सा ही रहा। आहिस्ता-आहिस्ता वह परेशानी दूर हुई। एक नतीजा इसका यह हुआ कि बी० एल० की परीक्षा, जो उसके थोड़े ही दिनों के बाद होनेवाली थी, मेरे लिए कठिन समस्या हो गई। पढ़ने में जी नही लगता। परीक्षा के दिन निकट आ गये। किसी प्रकार परीक्षा पास कर ली। ऊंचा स्थान मिलने का तो सवाल ही नहीं था, क्योंकि पढ़ा ही नहीं था। पास करने में भी जी मे डर लगता था, पर किसी तरह पास कर गया। उसके एक बरस के बाद वकालत शुरू की; क्योंकि उम्मीदवारी का समय अभी पूरा नहीं हुआ था। शुरू वकालत का हाल ऊपर लिख चुका हूं।

: १७ :

तिलक-दहेज की प्रथा

उपरोक्त घटना के थोड़े ही दिनों के बाद मां की मृत्यु हो गई। दशहरे की लम्बी छुट्टी में मैं घर आया था। कार्तिक के महीने में उनकी आदत थी कि संध्या के समय भी स्नान करके तुलसीपूजन करती और दिया जलातीं। इसीमें एक दिन ठंड लग गई। ज्वर और कफ की बीमारी हो गई। हम दोनों भाई घर पर ही थे। बहुत दवा-इलाज किया गया, पर वह बच न सकी। चार-पांच दिनो की बीमारी के बाद ही जाती रहीं। उस समय भाई के पैरों मे कुछ दर्द हुआ था। कुछ ऐसी भावना लोगो मे थी कि पिता का श्राद्ध बड़े लड़के को और माता का श्राद्ध छोटे लड़के को करना चाहिए। इसलिए सब क्रिया मैने ही की।

भाई की बड़ी लड़की अब इतनी बड़ी हो चुकी थी कि उसका विवाह कर देना जरूरी था। मा के जीवन-काल से ही बातचीत चल रही थी। हमारे समाज में लड़की का विवाह एक भारी हंगामा है। पहले तो पसन्द के लायक लड़का मिलना कठिन होता है। इसमे जाति-पाति का बखेडा तो रहता ही है। इसके अलावा यह भी देखना पडता है कि उसके घर में कुछ सम्पत्ति भी होनी चाहिए ताकि लड़की को वहा जाकर कष्ट न हो। छुट-पन मे शादी होने के कारण लड़का अभी स्वावलम्बी हुआ नही रहता। इसलिए घरवालों पर ही लड़की के पालन-पोषण का भार पड जाता है और यह देखना जरूरी हो जाता है कि घरवाले इस योग्य है या नही। मेरी अपनी शादी शायद ग्यारह बरस की उम्र में हुई थी। मैं पचीस-छब्बीस बरसो का हो चुका था। अभी तक पढता ही रहा। उन चन्द महीनों के सिवा, जब मुजफ्फरपुर-कालेज में प्रोफेसरी करता रहा, अभी तक कुछ कमाया नही था। भाई ने भी कुछ उपार्जन नही किया था। स्कूल की मास्टरी में उन्हे जो थोड़ा मिलता था, वह वही पर खर्च हो जाता था। इसलिए घर मे जो जमीदारी थी, उसीसे सब काम चलता था। भाई ने इन्तजाम अच्छा कर लिया था। इसलिए अब वैसा कष्ट नहीं अनुभव होता था जैसा बाबूजी के मरने के समय हुआ था। तो भी लड़की की शादी में तो बहुत खर्च होता ही।

लड़की की शादी के लिए अगर अच्छा घर और अच्छा लड़का मिल भी गया तो लड़के के घरवालों को राजी करना कुछ आसान काम नही होता। उन दिनो लड़के को राजी करने की बात नही होती थी, क्योंकि लड़का प्रायः कम उम्र का ही होता था और मां-बाप की रज़ामंदी ही उसकी रजामन्दी समझी जाती थी। तबसे आज तक बहुत अन्तर पड़ गया है। अब लड़कों की शादी कुछ उम्र बढ जाने पर ही होती है, विशेष करके उन कायस्थो मे, जो कुछ शिक्षित है। लड़के के पिता-माता की रज़ामन्दी हासिल करना आसान नही होता था। उनको भी लड़कीवालो के घर और खानदान के बारे में पता लगाकर अपनेको सन्तुष्ट करना पड़ता था कि उनकी प्रतिष्ठा के योग्य कन्या-पक्ष के लोग है या नही। यह सब ठीक जंच जाने पर तिलक-दहेज की बात उठती थी।

लडकीवाले को वर-पूजा के समय—जिसे हमारे समाज में 'तिलक' कहते है—रुपये, बर्त्तन, कपड़े इत्यादि देने पड़ते हैं। फिर शादी के समय बरात आने पर भी सब चीजे और नकद रुपये देने पड़ते हैं। लड़की को रुपये देना पिता का धर्म हो सकता है। पर हमारे समाज मे पिता के—अपने दिल से और प्रेम से—देने की बात नही रहती है। शादी के पहले ही बातचीत करके तय कर लिया जाता है कि तिलक के समय इतना देना होगा और शादी के समय बरात जाने पर इतना दहेज देना होगा। यह प्रथा हजार कोशिश करने पर अभीतक जारी है! सभी जातीय सभाओ में प्रस्ताव पास होते है कि इसे उठा देना चाहिए, पर घटने की जगह यह प्रथा बढ़ ही रही है। जिन जातियो मे यह प्रथा नही थी, उनमे भी प्रचलित होती जा रही है। जिनमे पहले से चलती थी, उनमे तिलक-दहेज की रकम अब बहुत बढती जा रही है।

अगर आज मेरी शादी होने को होती और मैं उस प्रथा से तिलक-दहेज लेकर शादी करना चाहता, तो मुझ-जैसे युनिवर्सिटी-परीक्षा में सफल विद्यार्थी के लिए, जहा मेरी शादी मे डेढ-दो हजार के लगभग मिले थे, आज की दर से दस-पन्द्रह हजार की रकम भी बड़ी रकम नही समझी जाती। इस समय की दर तो इतनी बढ गई है, और बढती जा रही है कि कुछ ठिकाना ही नही मालूम होता। जिसके घर मे कुछ नही है, पर जो कुछ पढ़ने मे तेज है, वह मामूली तौर से तीन-चार हजार की फरमाइश तो कर ही देता है।

हा, एक फर्क हुआ है। मेरी शादी के समय लड़के को खुश करने की बात नही होती थी, क्योकि दस-बारह बरसों का लड़का तो खिलौनों से भी खुश किया जा सकता था, और लड़के से शादी की बातें करना या लड़के

का खुद अपने विवाह-सम्बन्ध की बातें करना बहुत बुरा माना जाता था। इसलिए अगर माता-पिता राजी हो गये तो वही काफी होता था। पर आजकल के पढ़े-लिखे लड़कों को अलग से राजी करना पड़ता है। वे अपनी फरमाइश अलग कर देते हैं और इस तरह मांग, या कीमत बहुत बढ़ जाती है।

भाई की लड़की की शादी जाने हुए घर में होने की बात थी, क्योंकि वर के बड़ भाई लोग हम लोगों के साथ कलकत्ते में पढ़ते थे और लड़का भी वहां पड़ा करता था। इसलिए आशा थी कि सब बातें आसानी से तय हो जायंगी। पर पुरानी रूढि जल्दी छूटती नही, इसलिए हम लोगों को भी दिक्कत तो उठानी ही पड़ी। ईश्वर की दया से सम्बन्ध बहुत अच्छा हो गया, और दोनों पक्ष बहुत सन्तुष्ट है। सब-कुछ होने पर भी घर में रुपये तो थे नहीं। अन्न तो खेतों मे पैदा होता था, इसलिए उसकी बहुत चिन्ता नही थी; पर नकद खर्च के लिए हम दोनो भाइयो को कर्ज लेना पड़ा।

: १८ :

वकालत का आरंभ : एम० एल० की परीक्षा

भतीजी की शादी के थोड़े दिनों के बाद मैंने कलकत्ते में वकालत शुरू कर दी। शुरू का कुछ हाल तो पहले लिख चुका हूं। काम शुरू करते ही मुझे मुकदमे मिलने लगे। मैंने जिस दिन से वकालत शुरू की, घर से अपने खर्च के लिए कभी कुछ नहीं लिया। मुझे इस बात की चिन्ता थी कि घर से कुछ मंगाना पड़ेगा तो भाई पर बड़ा बोझ पड़ेगा और विशेषकर लड़की की शादी के खर्चे के बाद उनकी कठिनाई अब और भी अधिक हो जायगी। पर कुछ इत्तफाक ऐसा हुआ कि हर महीने थोड़ी-बहुत आय हो जाती और वह खर्च के लिए काफी होती। कलकत्ते मे खर्च तो छोटे शहरों के मुकाबले अधिक पडता ही है तो भी काम चल निकला। जैसा जस्टिस चटर्जी ने कहा था, मेरे पास धनी मवक्किल नहीं आये। केवल एक आदमी—रायबहादुर हरिहरप्रसाद सिंह ने, मैंने जिस दिन से वकालत शुरू की उसी दिन से, अपनी जमीदारी के सब छोटे-बडे मुकदमे मेरे सुपुर्द किये। वह मुझे जानते थे और विलायत जाने के समय उन्होंने कुछ रुपये भी दिये थे। ऐसा इत्तफाक हुआ कि उनका ही मुकदमा मेरी वकालत का आखिरी मुकदमा भी हुआ, क्योंकि वकालत छोड़ने के समय उनके ही बहुत बडे मुकदमे मे मै काम कर रहा था।

गरीब मवक्किलों के मुकदमों मे कोई दूसरा वकील भी नहीं होता था और अक्सर मुझे ही बहस करनी पड़ती थी। परिश्रम करके काम करता; इसलिए बहुत जल्द जज लोग भी मुझे पहचानने लगे। बहुत लोगों की आदत होती है कि जजों से बहुत मिला करते हैं; मैंने ऐसा कभी नहीं किया। उनसे मेरी मुलाकात इजलास की ही रही। उनमे बहुतेरे, जिनके सामने मुझे काम करने का मौका मिला, मुझसे खुश रहे। सर लौरेन्स जेन्किन्स चीफ जस्टिस थे। मेरे वकालत शुरू करने के एक-डेढ साल बाद ही वह चले गए, पर इतने थोड़े दिनों की वकालत से ही मुझसे इतने प्रसन्न थे कि जाने के समय अपने हस्ताक्षर के साथ अपनी एक तस्वीर मुझे दे गये। सर आशुतोष की बात ऊपर लिख ही चुका हूं कि उन्होने एक मुकदमे मे जूनियर वकील की हैसियत से मुझे काम करते हुए देखकर लॉ-कालेज की प्रोफे-

सरी मुझे दे दी। इस तरह मै अपनी कामयाबी से खूब खुश था।

मुजफ्फरपुर-कालेज के मेरे पुराने साथी बाबू वैद्यनाथनारायणसिंह ने भी कलकत्ते में आकर हाइकोर्ट मे मेरे साथ ही वकालत शुरू कर दी थी। हम दोनों में घनिष्ट मित्रता हो गई थी। इसी बीच में बिहार सूबे के भी, १९११ के दिसम्बर मे शाही दरबार के वक्त, बगाल से अलग होने की घोषणा हुई और १९१२ के एप्रिल से बिहार एक नया सूबा हो गया। अभी तक हाइकोर्ट और युनिवर्सिटी अलग कायम नही हुई थी। बिहार के मुकदमे कलकत्ते मे ही हुआ करते थे और बिहार के विद्यार्थी कलकत्ता-युनिवर्सिटी की ही परीक्षाओ मे बैठते थे। पर सूबा अलग होने के थोड़े ही दिनों बाद हाइकोर्ट अलग करने की बात होने लगी। जर्मनी के साथ लड़ाई शुरू हो जाने से कुछ विलम्ब होने की सम्भावना हो गई, पर ऐसा हुआ नही, और मालूम हुआ कि मकान वगैरह तैयार हो जाने पर हाइकोर्ट भी खुल जायगा।

वैद्यनाथबाबू ने मुझसे कहा कि एम० एल० की परीक्षा देनी चाहिए। मै उस समय वकालत में बहुत दिलोजान से लग गया था और खूब कामयाब भी होना चाहता था। मैंने उनकी बात मान ली। हम दोनों एक साथ एम० एल० की परीक्षा के लिए तैयारी करने लगे। कलकत्ता युनिवर्सिटी की परीक्षाओ मे यह सबसे कठिन परीक्षा समझी जाती थी। हम दोनो को कचहरी मे काम भी काफी रहता था, इसलिए पढ़ने का समय कम मिलता था। फिर लॉ-कालेज में प्रोफेसरी हो जाने के बाद तो मैं और भी अधिक समय का अभाव अनुभव करने लगा। कभी-कभी इस परीक्षा की झंझट से बच जाने का भी जी चाहता था; पर वैद्यनाथबाबू छोडना नही चाहते थे। वह बार-बार जोर देकर मुझको पढने के लिए कहते रहते। कभी-कभी तो जिस तरह मास्टर लड़को को पढाते है उस तरह मुझे पढाते। वह मुझसे बार-बार कहते—"आपने एण्ट्रेन्स से बी० ए० तक सब परीक्षाओ मे अव्वल स्थान पाया, एम० ए० में कुछ नीचे हुए और बी० एल० तो किसी प्रकार पास किया। इन अन्तिम परीक्षाओं का फल आपके विद्यार्थी-जीवन का कलंक है। उसको धो देना चाहिए और वह एम० एल० पास करके ही आप धो सकते है।" इन सब दलीलो का और उनकी मास्टरी का नतीजा यह हुआ कि हम दोनों खूब परिश्रम करने लगे। विचार हुआ कि १९१५ के दिसम्बर में होनेवाली परीक्षा मे हम दोनों बैठेंगे और ऐसा सोचकर इसकी तैयारी की गई।

जितना परिश्रम मैंने इस परीक्षा के लिए किया उतना परिश्रम कभी किसी परीक्षा के लिए नहीं किया था। एण्ट्रेन्स मे तो मानो बिना जाने मैं

सफल हो गया। एफ० ए० मे अव्वल होने के लिए जान-बूझकर प्रयत्न किया, पर तो भी उसमें इतना परिश्रम तो कभी किया ही नही। बी० ए० में तो कुछ भी परिश्रम नही किया था। एम० ए० और बी० एल० के समय दूसरे विचारों मे फंस गया था। किन्तु एम० एल० की परीक्षा के समय मैं अन्तिम दो-तीन महीनो मे पन्द्रह-सोलह घटा तक पढा करता था। कचहरी, लॉ-कालेज तथा परीक्षा की तैयारी मिलाकर इतनी मेहनत पड़ी कि एक बार सख्त बीमार पड़ गया और भय हुआ कि सब मामला अब खतम हो जायगा।

१९१६ के मार्च से पटने मे हाइकोर्ट खुलनेवाला था। हम दोनों समझ गये थे कि कलकत्ते मे रहते हुए अगर हमने पास नही किया तो पटना जाकर हमसे यह काम नहीं होगा, १९१५ की परीक्षा ही हम लोगों के लिए प्रथम और अन्तिम परीक्षा होगी, इसलिए हमको जरूर पास करना चाहिए। परीक्षा के समय जजो से कहकर कुछ दिनो के लिए छुट्टी ले ली; अपने मुकदमो को मुलतवी करा दिया। हम लोगो के मुकदमे प्राय: बिहार के ही होते थे; इसलिए कुछ दिनो से वे वहा भी उन्ही जजों के यहा पेश होते थे जिनके पटना आने की खबर थी। कहने से उन्होंने खुशी से मुकदमे मुलतवी कर दिये।

परीक्षा देकर हम लोग हाइकोर्ट के साथ पटने चले आये। परीक्षा का फल पटने आने के बाद मालूम हुआ। हम ही दोनो पास हुए। मै फर्स्ट क्लास में पास हुआ और वैद्यनाथबाबू सेकेण्ड क्लास मे। हम ही दो बिहारी थे, जिन्होंने पहले-पहल यह परीक्षा पास की। पीछे मालूम हुआ कि मुझे बहुत अधिक नम्बर मिले थे। यूनिवर्सिटी के नियम के अनुसार एम० एल० परीक्षा पास करने के बाद मौलिक निबन्ध लिखकर देने पर डी० एल० की उपाधि मिल सकती है और इस तरह आदमी कानून का डाक्टर हो सकता है। हम दोनो पटने मे विचार करने लगे कि किसी अच्छे विषय पर निबन्ध लिखा जाय। इस सबध मे सर गुरुदास बनर्जी से भी हम मिले थे और राय ली थी।

कलकत्ते की वकालत के कुछ चुटकुले मनोरजक है। वकालत शुरू करने के थोड़े ही दिनो के बाद एक मवक्किल के मुख्तार मेरे पास एक अपील दायर करने के लिए आये। उनकी राय थी कि एक सीनियर वकील भी रखे। एक सीनियर वकील का नाम, जिनकी वकालत बहुत जोरो से चली थी और जिनके हाथ मे बिहार के बहुत मुकदमे रहा करते थे, उन्होंने मुझसे कहा। मुझे खुशी हुई कि बडे वकील के साथ काम करने का मौका मिलेगा। उनसे मेरी मुलाकात नही थी।

हम दोनों उनके घर पर गये। मैंने कागज पढ़कर बुद्धि के अनुसार

अपील की दर्खास्त लिख ली थी। संध्या के समय हम दोनों पहुंचे। वह काम कर रहे थे। उनकी आदत थी कि रात को काम नहीं करते थे। संध्या होते ही काम बन्द कर देते और फिर दूसरे दिन सवेरे काम करते। वह कागज-पत्र समेट ही रहे थे कि हम लोग पहुचे। मुख्तार को वह पहले से जानते थे—उनसे पूछा कि क्या काम है। मुख्तार ने कहा कि एक दोयम अपील दायर करनी है। उन्होने दूसरे दिन मुख्तार को बुलाया और पूछा कि किसी जूनियर से दर्खास्त वगैरह लिखवाई है या नही। मुख्तार ने कहा कि सबकुछ तैयार है। इसपर उन्होने जूनियर का नाम पूछा। मेरा नाम मुख्तार ने बता दिया। मैं तो वही चुप बैठा था। उन्होंने मुझे देखा भी या नही, मै नही कह सकता। वह बिगड़कर बोले—"न मालूम कैसा उजबक वकील तुमने रखा है, जिसको मै जानता भी नही हूं। सब काम मुझे ही करने होगे। वह न कुछ जानता होगा और न कुछ समझेगा।" मवक्किल ने कहा—वह नये है, मगर बहुत तेज है। इसपर उन्होने फिर उजबक वगैरह कह दिया। मैं चुप बैठा रहा। मवक्किल ने तब मेरी तरफ इशारा करके कहा कि यही तो है। यह सुनते ही उनके वदन पर मानो उस सर्दी के जमाने में हजारो घड़े पानी पड गया और बहुत घबराकर मुझसे कहने लगे—"तुमको आते ही मुझसे जान-पहचान कर लेनी चाहिए थी। मैं तुमको जानता नहीं हूं। मेरा मतलब कुछ तुम्हारी शिकायत करने का नही था। मैं तो तुमको जानता नहीं हूं, इसलिए कहा कि कोई नया वकील काम ठीक नही जानता होगा।" और, इस प्रकार की बाते कहते-कहते वह माफी मांगने लगे।

मैंने कहा कि आपका कहना स्वाभाविक था; आप मुझे जानते नहीं हैं, और मैं तो अभी बिलकुल नया हूं। तब वह सब हालचाल पूछने लगे, और दूसरे दिन कचहरी मे ही कागज दिखलाने को कहकर हम दोनों को विदा किया। दूसरे दिन जब कचहरी में ही मैने अपनी लिखी दर्खास्त उन्हें दिखलाई, तब बहुत खुश हुए और मवक्किल तथा दूसरे वकीलो के सामने मेरी तारीफ का पुल बांध दिया। उसके बाद मुझे उनके साथ बहुत काम करने का मौका मिला और मुझे वह बहुत मानते रहे। मेरे साथ उनकी शिकायत एक बात की रहती। कपड़े पहनने में मैं लड़कपन से ही कुछ उलूल-जलूल रहा हूं। वह इसे नापसन्द करते थे और कपड़े के बारे में शौकीन होने की शिक्षा जब-तब दिया करते थे।

इसके विपरीत एक दूसरी घटना घटी। मैं अपनी आदत से मजबूर हू। जिससे कोई काम नहीं पड़ता, उससे कभी आगे बढ़कर जान-पहचान करने की शक्ति मुझमें नहीं थी और न आज भी है। यद्यपि डेढ़-दो बरसों

से मै वकालत करता था; फिर भी डाक्टर रासबिहारी घोष से मेरी मुलाकात नहीं थी। उनके खिलाफ मे बहस करके एक बड़ा मुकदमा तो मैंने जीत लिया था; पर उनके साथ काम करने का मौका नही मिला था। एक मुकदमे में वह मौका आया। दूसरी ओर से 'सर' एस० पी० सिन्हा थे। हमारी ओर से सर रासबिहारी घोष और बाबू कुलवतसहाय थे, जो पीछे पटना-हाइकोर्ट के जज हुए। गया का मुकदमा था और गया के एक वकील भी आये थे।

बड़े वकीलो और बैरिस्टरों की चाल थी कि जब दूसरे पक्ष की बहस होती, तब वे किसी दूसरे इजलास मे बहस करते और जवाब देने के वक्त आ जाते। बहुत मुकदमे हाथ मे ले लेने का यही नतीजा होता था। कभी-कभी वे नही भी पहुच पाते थे। वैसी हालत में जूनियर को ही काम कर देना पड़ता था। जो मुकदमा मैने सर रासविहारी घोष के खिलाफ बहस करके जीत लिया था, उसमें ऐसा ही हुआ था। मेरे सीनियर साहब दूसरे इजलास मे फंसे थे, मुझे ही बहस करनी पड़ी। जब दूसरे पक्ष की बहस होती और सीनियर गैरहाजिर रहते तो जूनियर को बहस के नोट लेकर सीनियर को दिखलाना पडता। उसी नोट को पढकर दूसरी ओर की बहस को वह समझते और जवाब देते। यह कुछ बड़ा मुकदमा था, जिसमे तीन-चार दिनों तक बहस होती रही। सर सिन्हा की बहस के नोट करने का काम मेरा था; क्योकि सबसे जूनियर मै ही था। सर सिन्हा आहिस्ता-आहिस्ता और बहुत अच्छी तरह से बहस किया करते थे। इसलिए नोट लिखने मे मुझे कोई विशेष तकलीफ नही हुई। मै कुछ तेज लिखने का आदी शुरू से ही रहा हूं। कालेज मे मिस्टर पर्सिवल बहुत तेज पढ़ाया करते थे और मैं प्राय. सबकुछ नोट कर लिया करता था। इस तरह यह आदत और भी बढ़ गई थी। इसमें काफी प्रोत्साहन 'डॉन सोसाइटी' के क्लासों मे भी मिला था।

मैने सर सिन्हा को बहस का अच्छा नोट लिख लिया। दिन-भर की बहस खतम हुई। संध्या को हम सब सर रासविहारी घोष के घर गये। उन्होंने बहस का सारा नोट बहुत ध्यान से पढ़ लिया। मैं कुछ डरता भी था, कुछ उत्सुक भी था कि देखें क्या कहते है। वह गुस्सेवर (क्रोधी) थे और जूनियर से गलती होती तो बहुत बिगड़ जाते थे। जज लोग भी यह खूब जानते थे। कभी-कभी इजलास पर ही कागज और किताब पटक दिया करते थे। इससे जूनियर बहुत डरा करते थे। मेरा तो यह पहला ही मौका था। पढ़कर उन्होंने सिर उठाया और पूछा कि नोट किसने तैयार किया है। मैंने समझा, अब शायद बिगड़ेगे; उनके मन के मुताबिक नोट तैयार

नही हुआ है। बाबू कुलवंतसहाय के मन में भी शायद कुछ ऐसा ही शक हुआ। उन्होंने मेरी तरफ इशारा कर दिया। इसपर सर रासविहारी ने मुझसे पूछा—"कितने दिनों से काम करते हो? मैं तो तुमको जानता नही हू।" यह सब बातें होती जातीं और मन-ही-मन मै कांपता जाता था कि अब कुछ होगा। बाबू कुलवंतसहाय ने कहा—"थोड़े ही दिनों से।" गुस्सा करने के बदले उन्होंने मेरी पीठ ठोकना शुरू कर दिया और कहा कि नोट बहुत अच्छा तैयार हुआ है। बाबू कुलवतसहाय की हिम्मत बढ़ी और उन्होंने मेरी युनिवर्सिटी-परीक्षाओं का हाल कह दिया। वह बहुत खुश हुए और मुझसे कहा—"ऐसे ही परिश्रम से काम करो, तुम बहुत अच्छे हो जाओगे।"

मुझे बडा सन्तोष हुआ। उसके बाद जब कभी उनके साथ काम करने का मौका होता, तब वह मेरे नोट पर बहुत विश्वास करते और उसको ठीक समझकर उसका पूरा उपयोग कर लेते। उसी मुकदमे मे एक दूसरा दृश्य भी मैने देखा। उन्होने एक बात पूछी और जानना चाहा कि इस बात पर कोई सबूत है या नही। मै तो चुप रहा, पर गया के वकील ने कहा कि कोई सबूत नही है। इसपर उन्होने कहा कि जब सिन्हा ने कहा है कि सबूत है, तब जरूर कुछ होगा—ध्यान से आज रात को सब कागज देख लो, और तब कल सवेरे मुझे उत्तर देना। दूसरे दिन सवेरे उन्होने फिर सवाल किया और वकील ने वही उत्तर दिया। रात को कागज उन्होने पढा था और निशान लगाकर रखा था। वकील के जवाब पर बिगड़ गये—कागज और उनका बनाया नोट फेक दिया—"मै तुम्हारे नोट पर भरोसा करके बहस करता हूं। अब मै कैसे भरोसा कर सकता हूं?" और अपना निशान लगाया हुआ हिस्सा दिखलाकर बहुत भला-बुरा कह दिया। मैने एक ही मुकदमे मे दोनों चीजे देख लीं, और अपना भाग्य सराहा कि मुझसे गलती नही हुई थी।

एम० एल० की परीक्षा दे चुका था। फल मालूम नहीं हुआ था। पटने आने के चन्द दिन ही बाकी रह गये थे। एक छोटा, मगर पेचीदा मुकदमा मेरे हाथ में था। उसकी बहस दो जजों के सामने करनी पड़ी, जो दोनो पटने आनेवाले थे। एक अभी मुस्तकिल जज नही हुए थे—थोड़े दिनों के लिए ही हाइकोर्ट मे गये थे और फिर चन्द दिनों के लिए पटने चले आये। यह बहस दो-तीन दिनों तक चली थी। हम जीत गये थे, और उनपर मेरी बहस का अच्छा प्रभाव पड़ा था। उनको मालूम हो गया था कि मैंने एम० एल० की परीक्षा भी दी है। पटने हाइकोर्ट खुलने के पहले ही उन्होंने आकर दूसरों से मेरी तारीफ की कि कलकत्ता हाइकोर्ट से आनेवाले वकील

अच्छे हैं और यहां के बड़ों का मुकाबला कर सकेंगे। जब हाइकोर्ट खुला तब मुझे इसका अनुभव भी हुआ।

दोयम अपील में केवल कानूनी बहस हो सकती है। वाकयाती बातों पर नीचे की अदालत का फैसला मान लिया जाता है। दोयम अपील छोटे-छोटे मुकदमों में ही होती है। मेरे मवक्किल गरीब हुआ करते थे। कलकत्ते मे ज्यादातर दोयम अपीलें ही मेरे हाथ मे आई थी। इसलिए उनकी बहस मे कानूनी बहस ही करने के लिए मुझे अधिक कानून पढ़ना पड़ता था। मैंने नियम कर लिया था कि ऐसा मुकदमा मै दायर ही नही करूंगा, जिसमें अच्छी तरह मै खुद यह न समझ लू कि फैसला कानूनी तौर पर गलत है और मै उसे बहस मे जीत सकूगा। इसलिए दोयम अपील के मुकदमे मै अक्सर जीता करता था। पटने में आकर मैंने यही नियम रखा।

दोयम अपील मे मंजूरी के लिए बहस होती है। जब जज समझते है कि कुछ गलती है या कम-से-कम बहस की गुजाइश है, तभी मंजूर करते हैं और दूसरे पक्ष को हाजिर होने की नोटिस देते है। पटने के रजिस्ट्रार, जो कुछ कम कानून जानते थे, सभी दोयम अपीलो को नामजूर कर देते थे। मेरी अपील भी नामंजूर कर देते। पर नियमानुसार उनका अधिकार इतना ही था कि अगर वह किसी अपील को मजूर करने योग्य न समझे तो उसे जजो के सामने भेज दे। मेरी बहुतेरी अपीले इस प्रकार जजो के सामने उन्होंने भेजी और प्रायः सब-की-सब वहा मंजूर हो गई। वह जज तो, जिसका मैंने जिक्र किया है, शायद कागज भी नहीं पढ़ता; मेरे खड़े होते ही मंजूर कर लेता। जब रजिस्ट्रार को भी विश्वास हो गया कि मै रुपये लेने के लिए अण्टसण्ट मुकदमे नही दायर करता, तब उन्होने भी वैसा करना शुरू कर दिया। मेरा यह भी अनुभव हुआ कि जिस मुकदमे को मै यह समझकर कि उसमे कुछ जान नही है, नही दाखिल करता, मवक्किल दूसरे वकील की मार्फत दाखिल कराता और अन्त मे हार जाता।

: १९ :

पटना आना और पटना-युनिवर्सिटी बिल

सन् १९१६ के मार्च में पटने में हाइकोर्ट खुला। सभी बिहारी वकील, जो कलकत्ता-हाइकोर्ट मे काम करते थे, और बहुतेरे बंगाली वकील भी—जिनको बिहार के मुकदमे मिला करते थे—पटने चले आये। मैं भी पटने चला आया। उन दिनों पटने मे मकान मिलना कठिन हो गया। भाडे का एक मकान लेकर मै रहने लगा। कलकत्ते मे ही मेरे हाथ में मुकदमे बहुत रहा करते थे। पटने मे आने पर वकालत और भी चल निकली। मैं भी बहुत जी लगाकर काम करने लगा। पर यह हाल थोड़े ही दिनों तक रहा।

उसी समय, कुछ महीनो के बाद, पटने मे युनिवर्सिटी कायम करने के लिए दिल्ली की कौन्सिल मे एक बिल पेश हुआ। हम लोगो ने उस बिल को बहुत खराब समझा। इसलिए उसके विरुद्ध आन्दोलन खडा किया गया। इसके पहले ही एक कमिटी बनी थी, जिसने एक रिपोर्ट पेश की थी। उसकी मुख्य सिफारिशो मे एक यह भी थी कि शहर से तीन-चार मील की दूरी पर, फुलवारी शरीफ के नजदीक, युनिवर्सिटी कायम की जाय। उसकी इमारतों का खर्च भी प्रायः एक करोड़ के लगभग बताया गया। कलकत्ते से ही मैंने उसका विरोध किया था। फिर जब मै बिहारी छात्र-सम्मेलन का सभापति हुआ तो उस हैसियत से भी उसका जबरदस्त खण्डन किया। हम लोग समझते थे कि ऐसा होने से गरीब लड़को के लिए युनिवर्सिटी-शिक्षा असंभव नही तो कठिन जरूर हो जायगी। वहा खर्च भी अधिक पडेगा और शहर से दूर होने के कारण सभी लड़को को अधिक खर्च देकर होस्टल में रहना होगा। वहां उनको कोई आजादी भी नही रहेगी। इत्यादि।

उस विरोध को साधारण जनता से बहुत मदद मिली थी। वह योजना एक प्रकार से स्थगित हो गई। नये बिल के सम्बन्ध में दूसरे प्रकार की बाधा थी। हम समझते थे कि सिनेट और सिण्डिकेट जैसा बनने जा रहे है वैसा बनने से तो उनमें जनता के सेवकों को स्थान ही नही मिल सकेगा—सब सरकारी आदमी ही, सारी युनिवर्सिटी को अपने हाथों में रखकर, सरकारी आज्ञा के अनुसार, मनमाने ढंग से चलावेंगे।

हमारे सामने कलकत्ता-युनिवर्सिटी थी। वहा के वाइस-चान्सलर लोगों ने शिक्षा के प्रचार मे बड़ी निर्भीकता से काम किया था। विशेष करके सर आशुतोष हमारी आंखो के सामने थे। पर वहां के सिण्डिकेट और सिनेट सर आशुतोष का साथ न देते तो वह बहुत-कुछ न कर पाते। हम समझते थे कि हमारे यहां पहले तो उनके ऐसा आदमी जल्दी नही मिलेगा और अगर मिला भी तो वह सिनेट और सिण्डिकेट के विरोध के सामने कुछ कर न सकेगा। इसलिए हम चाहते थे कि सिनेट और सिण्डिकेट मे शिक्षकों के अलावा दूसरे लोगों को, जनता के प्रतिनिधि के रूप मे, काफी जगहे दी जायं।

युनिवर्सिटी-बिल के विरुद्ध बहुत बड़ा आन्दोलन हमने खड़ा किया। इस आन्दोलन में मेरे मित्र बाबू वैद्यनाथनारायणसिंह और मैंने बहुत बडा भाग लिया। एक प्रकार से इसके सगठनकर्त्ता हम ही दोनो थे। प्रत्येक जिले मे सभा की गई। हम दोनो ने अखबारो मे कई लेख लिखे। चूंकि बिल दिल्ली की कौन्सिल मे पेश हुआ था, इसलिए हमने जरूरी समझा कि और-और सूबों के मेम्बरो को भी बिहार के लोकमत से अवगत कर दें। सभी राष्ट्रवादी समाचारपत्रो ने विरोध किया। हमने पाच या छः छोटी-छोटी पुस्तिकाए इस सम्बन्ध मे लिखी और छपवाई। अन्त मे बिहार प्रान्तीय कान्फ्रेन्स का विशेष अधिवेशन करके इसपर विचार किया गया और सख्त विरोध हुआ। इस अधिवेशन के सभापति हुए थे पटने के नामी वकील रायबहादुर पूर्णेन्दुनारायणसिंह। उन्होने बड़ी समालोचनात्मक वक्तृता दी और उसीके अनुरूप प्रस्ताव भी स्वीकृत हुआ।

इसी बीच लखनऊ मे, १९१६ के दिसम्बर मे, कांग्रेस हुई। वहां हम सब बड़ी सख्या में गये। यद्यपि यह बिल एक खास प्रान्त (बिहार) से सम्बन्ध रखता था, और कांग्रेस ऐसे ही विषयो पर विचार किया करती थी, जिनका सार्वदेशिक प्रभाव होता था, तथापि मैंने श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, श्री पराजपे प्रभृति नेताओ से कहकर इस बिल के विरुद्ध प्रस्ताव उपस्थित करने का आयोजन किया। श्री परांजपे ने प्रस्ताव पेश किया और वह सर्व-सम्मति से पास हुआ। इस तरह बिल के विरुद्ध एक प्रकार का सार्वदेशिक आन्दोलन हो गया।

बिल के उपस्थित करनेवाले मेम्बर सर शंकर नायर थे। उन्होंने बिहार के मेम्बरों से सलाह की। बिल मे काफी संशोधन किया गया। जिन-जिन बातों का अधिक विरोध हुआ था, उनमें परिवर्तन कर दिया गया। मजहरुलहक साहब बिहार के प्रतिनिधि थे। वह लोगों से बराबर राय लेते गये। अन्त में हमारी सम्मति लेकर बहुत परिवर्तित रूप में बिल

स्वीकृत हुआ।

यह पहला ही मौका था जब मैने बिहार में सरकार के विरुद्ध एक इतना बड़ा आन्दोलन खड़ा कर दिया था और इसमें सफलता भी मिली थी। इसी समय से मैं कांग्रेस के काम में अधिक भाग लेने लगा। यों तो मैं १९११ से ही बराबर अखिल भारतीय काग्रेस-कमेटी का मेम्बर होता रहता; पर जबतक कलकत्ते में था, कुछ विशेष काम न कर सका। जब बिहार आया तो लोगों का ध्यान भी मेरी तरफ गया और मैने भी महसूस किया कि सार्वजनिक कामो में कुछ अधिक दिलचस्पी लेना जरूरी है। थोडे ही दिनों में मैं बिहार प्रान्तीय काग्रेस-कमिटी का सहकारी मन्त्री भी बना दिया गया। इस पद पर मैं कई वर्षो तक रहा। जब असहयोग-आन्दोलन शुरू हुआ और पुराने कांग्रेसी लोग अलग हो गये तब मै मन्त्री हो गया। जब युनिवर्सिटी बनी तो गवर्नर ने मुझे सिनेट का मेम्बर बना दिया।

१९१६ की कांग्रेस मे बिहार-सम्बन्धी एक दूसरा प्रस्ताव भी पास हुआ था, चम्पारन के निलहे गोरो के विरुद्ध। इसका विस्तृत वर्णन अन्यत्र दिया जायगा।

: २० :

हिन्दी तथा सेवा-कार्य

कलकत्ते से पटने आने के पहले एक-दो बातें और हुई, जिनका जिक्र कर देना उचित जान पड़ता है। छात्र-सम्मेलन का जिक्र तो आ ही चुका है। छात्रावस्था समाप्त हो जाने के बाद भी, जब मैं वकालत करता था, छात्र-सम्मेलन के साथ मेरा सम्बन्ध कायम रहा। छात्र लोग भी मेरा बहुत विश्वास करते और मै भी अपनेको उनमे से ही एक समझता।

छात्र-सम्मेलन के मुंगेरवाले अधिवेशन का मै सभापति बनाया गया। उसीमे युनिवर्सिटी-सम्बन्धी नेथन-कमिटी की रिपोर्ट का विरोध किया गया था। इसके अलावा जहां-जहां अधिवेशन होता, मैं जाता और दूसरे प्रकार से भी संगठन को सहायता देता।

उन्ही दिनो हिन्दी के साथ भी प्रेम बढा। स्कूल में, एक या दो वर्षों तक, नीचे के वर्ग मे, मैने संस्कृत पढी। उसके बाद फारसी पढ़ने लगा। सस्कृत छोड़ने का मुख्य कारण यह था कि बाबूजी चाहते थे, मैं वकील बनू। उनका खयाल था कि मुकदमे के कागज-पत्र फारसी मे लिखे मिलते हैं, इसलिए फारसी पढने मे वकालत मे मदद मिलेगी। पीछे मैंने घर पर कुछ संस्कृत पढ़ने की कोशिश भी की थी, पर वह बहुत दिन न चल सकी। इसलिए स्कूल और कालेज मे मैने बराबर फारसी ही पढ़ी। फारसी में नम्बर भी खूब आता था। अगर फारसी का नम्बर न होता तो मै एण्ट्रेन्स में अव्वल नही होता ; क्योकि गणित मे मुझे कम नम्बर आये थे। हिन्दी पढने का तो कभी मौका ही नहीं आया। हिन्दी का अक्षर मात्र जानता था। घर मे मां आदि रामायण पढा करती थी। इसलिए मुझे भी रामायण पढ़ने की चाह हो गई थी। बहुत दिनों तक तो सवेरे रामायण का पाठ करके कुछ खाता-पीता। यह नियम कुछ दिनों तक चला था। हिन्दी के दूसरे ग्रथों को देखने का कभी मौका नही मिला था।

परीक्षा में एक पर्चा आता था, जिसमे अंगरेजी से किसी देशी भाषा में और देशी भाषा से अंगरेजी में उलथा करने को कुछ दिया जाता था। एण्ट्रेन्स और एफ० ए० की परीक्षा मे मैने देशी भाषा के रूप मे उर्दू ही ली थी। बी० ए० में पहुंचकर इच्छा हुई कि हिन्दी ले लूं। बी० ए० में एक

निबंध भी लिखना पड़ता था। मैने हिन्दी ले ली। हिन्दी मे पास भी कर गया। हिन्दी से सम्बन्ध इसी प्रकार आरम्भ हुआ।

कलकत्ते में हिन्दी के लेखक, विद्वान्, साहित्यिक और सेवक कई सज्जन रहते थे। उनमें से पडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी बिहार के रहने-वाले थे। बिहारी-क्लब में वह अक्सर आया-जाया करते थे। विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय के प्रिंसिपल पंडित उमापतिदत्त शर्मा भी बिहारी थे। उनसे भी क्लब में मुलाकात हो गई। इन लोगो के जरिये दूसरे लोगो से भी परिचय हो गया। कलकत्ते मे हिन्दी-साहित्य-परिषद् की स्थापना हुई। उसमे मै काफी दिलचस्पी लेने लगा। उसके जन्म का साल तो याद नही है, पर इतना याद है कि उसके अधिवेशनों मे मैने भी कभी-कभी लेख पढे थे, जिनको विद्वानो ने पसन्द किया था। हममे से कुछ के दिल में खयाल उठा कि अखिल-भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन भी होना चाहिए; और इस विषय के लेख लिखे गये। हिन्दी-साहित्य-सेवियों ने इस प्रस्ताव का स्वागत किया और काशी मे पहला अधिवेशन हुआ। मै भी उसीमे उप-स्थित था और पूज्य मालवीयजी सभापति हुए थे। इस प्रकार सम्मेलन के साथ मेरा सबध उसके आरम्भ से ही हुआ।

जब तीसरा सम्मेलन कलकत्ते मे होनेवाला था तो मै स्वागतकारिणी समिति का प्रधान मन्त्री बनाया गया। अभी एक साल भी पूरा नही हुआ था कि मैने वकालत शुरू की थी। बहुत लोगों से जान-पहचान भी नही थी। तथापि लोगो की ऐसी इच्छा हुई और मुझे यह भार उठाना पडा। इस सिलसिले में सम्मेलन के प्रमुख नेताओ से परिचय हो गया। कलकत्ते के बड़ाबाजार के लोगों से तो विशेष परिचय हुआ। १९१२ के दिसम्बर मे, कलकत्ते में सम्मेलन बडी सफलता से, पडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की अध्यक्षता मे, हो गया। यह पहला अवसर था कि मुझे किसी अखिल भारतीय संस्था के अधिवेशन के प्रबध का भार उठाना पडा। कड़ा परिश्रम करना पड़ा, पर ईश्वर की दया से सब ठीक हो गया।

ठीक उसी समय पटने मे कांग्रेस होनेवाली थी। बिहारी होने की हैसि-यत से मुझे उसमे शरीक होना जरूरी मालूम पड़ता था और मैं चाहता भी था। सम्मेलन की तिथियां भी ऐसी रखी गई थी कि कोई चाहे तो सम्मेलन का काम समाप्त करके पटने की कांग्रेस मे शरीक हो सकता था। पर स्वागत-समिति का प्रधान मंत्री होने के कारण मुझपर इतनी जवाबदेही थी कि मैं कलकत्ते से न हट सका। इसलिए पटने की कांग्रेस मे शरीक न हो सका।

पटने में पहुंचकर हम चन्द मित्रों ने गरीब विद्यार्थियों के सहायतार्थ

एक कोष जमा किया, जिससे कुछ छात्रों को मदद दी जाती थी। यह काम छात्र-सम्मेलन ने ही आरम्भ किया था। पर पीछे मैंने इसको अपने हाथ में ले लिया था।

१९१४ में बंगाल और बिहार में बड़ी भयंकर बाढ़ आई। पहली बाढ बर्दवान जिले में थी। कलकत्ते मे बाढ़-पीड़ितों की सहायता के लिए रुपये जमा किये गए। बहुत-से स्वयसेवक वहां गये। इसकी खबरे अखबारो में खूब छपी। थोड़े ही दिनो के बाद वैसी ही भयकर बाढ 'पुनपुन' नदी में पटने मे भी आ गई। हमने सोचा कि बाढ़पीडितों की कुछ मदद करनी चाहिए। कलकत्ते मे ही कुछ रुपये जमा किये। साथियो के साथ पटने पहुंचा। छात्र-सम्मेलन का दफ्तर तो पटने मे था ही। वहा मे उत्साही छात्रो की मदद लेकर एक स्वयंसेवक-दल कायम किया। बाढपीड़ित जगहो में अन्न लेकर लोगो के सहायतार्थ पहुचा। दशा भयकर थी। कई गाव ऐसे थे, जिनके भीतर घरो मे भी पानी पहुंच गया था। जब हम लोग पहुंचे तो घरो मे जो अन्न था वह सड़ रहा था। इसलिए हम लोग तैयार भोजन—जैसे सत्तू, चिउरा, भूने हुए चने—अधिक बाटते थे। नाव पर चढकर दूर तक निकल जाते थे। संध्या तक गाव-गाव मे घूमकर, नजदीक पड़नेवाले रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर जाकर सो रहते। मुझे याद है कि कई रात हमने प्लेटफार्म पर सोकर बिताई होगी। बिहार मे सेवा-समिति का पहला सगठन शायद यही था। यह कोई बाजाब्ता संगठन नही था। वक्ती तौर पर लोकसेवा के लिए यह सगठन कर लिया गया था। पर सेवा-समिति का जन्म तो इसी प्रकार मे हो ही गया। जब हम लोग पटने आये तो सोनपुर के मेले मे यात्रियो की मदद करने के लिए उसका बाजाब्ता संगठन कर लिया गया। सेवा-समिति मे मेरे भाई बहुत दिलचस्पी लेते थे। हर साल सोनपुर के मेले मे वह स्वय बहुत सेवा करते थे। मरने के समय तक कई बरसों से उसके अध्यक्ष वही थे।

बाढ़-पीड़ितों की सेवा करते समय स्टेशन के प्लेटफार्म पर की एक स्मृति बहुत ही सुखद है। मै दिन-भर काम करके सो गया था। कुछ देर के बाद नीद टूटी। अनुभव हुआ कि कोई आदमी बड़े प्रेम से मेरे पैर और बदन दबा रहा है और मेरी थकावट दूर करने का प्रयत्न कर रहा है। देखा तो मेरे मित्र शम्भूशरण थे। वह भी दिन-भर मेरे साथ ही काम करके थके थे। पर उन्होंने अपनी थकावट की परवा न करके मुझे आराम पहुंचाया।

: २१ :

गांधीजी से भेंट

१९१६ मे लखनऊ की काग्रेस बड़े समारोह के साथ हुई थी। १९०७ से जब काग्रेस में दो दल हो गये, और गरम पार्टी काग्रेस से अलग हो गई, तबसे कांग्रेस की लोकप्रियता कम हो गई थी। उसके सालाना जल्सो में भी कम लोग आया करते थे। यहांतक कि १९१२ मे जब पटने मे कांग्रेस हुई, प्रतिनिधियों की संख्या बहुत कम थी। देश-हितैषियो की कोशिश थी कि दोनो दल मिला दिये जायं, जिससे काग्रेस में फिर से जान आ जाय। यह प्रयत्न चलता रहा, पर यह सफल हुआ १९१६ की कांग्रेस मे ही। इसमे सभी विचार के लोग उपस्थित थे। एक तरफ लोकमान्य तिलक दल-बल के साथ आये थे। दूसरी ओर नरम दल के प्रायः सभी नेता उपस्थित थे। मिसेज बेसेण्ट भी आई थी। उसी साल मुस्लिम लीग के साथ समझौता भी हुआ। मुसलमान भी बडी सख्या में उपस्थित थे। महात्मा गांधी भी इस काग्रेस मे आये थे। वह १९१५ में ही दक्खिन अफ्रिका से लौटकर सारे देश मे भ्रमण करते रहे। पर इस काग्रेस में वह किसी प्रस्ताव पर बोले नही।

बिहार के भी प्रतिनिधि अच्छी संख्या में लखनऊ पहुंचे थे। उनमे कुछ लोग चम्पारन के थे, जिनमे एक देहाती किसान राजकुमार शुक्ल थे। वह थोडी हिन्दी जानते थे, पर और कोई भाषा नही। वह उन लोगो मे थे जिन्होने खुद नीलवरों (निलहे गोरो) के हाथ से दुःख पाया था। चम्पारन जिले की सताई हुई प्रजा की ओर से वह काग्रेस मे पहुंचे थे। उनसे मेरी मुलाकात कुछ पहले से ही थी, क्योंकि जब कभी कोई मुकदमा हाइकोर्ट तक पहुंच पाता था तो मैं फीस का खयाल न करके उन लोगो के वकील की हैसियत से काम कर दिया करता था। पर इस काम मे बाबू ब्रजकिशोरप्रसाद उन लोगों की बहुत मदद किया करते थे। इसलिए उन लोगों का विशेष परिचय उन्हीसे था। चम्पारन जिले की परिस्थिति से वह बहुत ज्यादा परिचित थे।

उस समय बिहार के प्रतिनिधि दो विषयों में विशेष दिलचस्पी रखते और कांग्रेस में उनपर प्रस्ताव पास कराना चाहते थे—एक पटना युनि-

वर्सिटी बिल और दूसरा चम्पारन का नीलवर-प्रश्न। राजकुमार शुक्ल, बाबू ब्रजकिशोर प्रभृति बहुत चाहते थे कि कांग्रेस इस सवाल पर भी प्रस्ताव करे। बिहार-प्रान्तीय कान्फ्रेंस के सभापति की हैसियत से बाबू ब्रजकिशोर इस प्रश्न पर कड़ी आलोचना कर चुके थे। उस कान्फ्रेंस में एक प्रस्ताव भी पास हो चुका था। कौन्सिल के वह मेम्बर थे। उन्होंने वहां भी इस समस्या पर प्रश्न पूछे थे और एक प्रस्ताव भी रखा था। कौन्सिल मे और बाहर भी, एक प्रकार से इस विषय को अपना लक्ष्य बनाकर, विधान के अन्दर इसपर जो काम हो सकता था, वह कर रहे थे। जहांतक हो सकता था, मुकदमो में भी वहां की रियाया की मदद किया करते थे।

यह बात बिहार के लोगो को मालूम थी कि कर्मवीर गाधी दक्षिण अफ्रिका में बहुत-कुछ करके हिन्दुस्तान आये है, इसलिए उनसे इस काम मे मदद लेनी चाहिए। राजकुमार शुक्ल आदि उनसे मिले और चम्पारन का कुछ हाल कह सुनाया। उन्होने कुछ दिलचस्पी जाहिर की। इधर से कहा गया कि काग्रेस में वह एक प्रस्ताव उपस्थित करे। उन्होने इन्कार कर दिया; कहा कि जबतक वहां की स्थिति वह स्वय देखकर और जाचकर अपनेको सतुष्ट नही कर लेगे, प्रस्ताव उपस्थित नही कर सकते। जोर देने पर उन्होने कहा कि वहा जाकर स्थिति देखने के लिए वह तैयार है और कुछ दिनो के बाद वहा जायगे भी। काग्रेस में प्रस्ताव बाबू ब्रजकिशोर ने उपस्थित किया। राजकुमार शुक्ल भी उसपर कुछ बोले। यह शायद पहला ही मौका था जब एक निरा देहाती किसान काग्रेस के मंच से किसी प्रस्ताव पर बोला हो। काग्रेस ने प्रस्ताव स्वीकृत किया।

जब बिहार के प्रतिनिधि, बाबू ब्रजकिशोर के साथ, गांधीजी के पास गये थे तब मै उनके साथ नही था। यह किस्सा मैंने पीछे सुना। मै गांधीजी के बारे मे बहुत जानकारी नही रखता था। दक्षिण अफ्रिका मे उन्होने जो कुछ किया था, उसकी जानकारी भी बहुत थोड़ी रखता था। केवल इतना ही जानता था कि उन्होने दक्षिण अफ्रिका में कोई बड़ा और अच्छा काम किया है। यह नही जानता था कि वह देश के नामी नेताओ की तरह एक बड़े नेता है। राजकुमार शुक्ल ने न मालूम क्यों उनपर इतना विश्वास किया और उनके पास पहुंचकर उनको चम्पारन आने के लिए राजी किया।

लखनऊ-काग्रेस के कुछ दिनों बाद गांधीजी कलकत्ते आये। उन्होंने राजकुमार शुक्ल को पत्र लिखा कि कलकत्ते में मुझसे मिलो—वहां से हम दोनो साथ ही चम्पारन चलेगे। देहात में पत्र देर करके पहुंचा। राजकुमार शुक्ल के पास पत्र पहुंचने के पहले ही गांधीजी कलकत्ते से वापस चले गये थे। राजकुमार शुक्ल ने फिर पत्र लिखा। गांधीजी ने उत्तर दिया कि

अखिल भारतीय काग्रेस-कमिटी की बैठक कलकत्ते में होगी, वह उस बैठक में उपस्थित होंगे, राजकुमार शुक्ल को वही उनसे भेंट करनी चाहिए। मैं भी उस बैठक में उपस्थित था। इत्तफाक से मैं गाधीजी की बगल में ही एक कुर्सी पर बैठा था। पर मुझे यह मालूम नही था कि राजकुमार शुक्ल से उनका पत्र-व्यवहार हुआ है और वह वहा से बिहार आनेवाले हैं। अपनी आदत से मजबूर मैं किसीसे जबरदस्ती या आगे बढ़कर जानपहचान करना नहीं जानता। मैंने गांधीजी से न कुछ पूछा, और न एक शब्द भी मैं बोला। उस कमिटी मे लोगों ने, और विशेष करके प्रेसिडेण्ट श्रीअम्बिकाचरण मजुमदार ने, बहुत जोर दिया कि गांधीजी कांग्रेस-मन्त्री हो जायं। पर गांधीजी ने इन्कार कर दिया। मै बैठे-बैठे सब देखता रहा। कभी-कभी मैं यह सोचता था कि जब लोगों का इतना आग्रह है तो उनका इन्कार करना मुनासिब नही है। पर मै कुछ बोल नही सकता था।

कमिटी का काम खतम होने पर गांधीजी बाहर निकले। राजकुमार शुक्ल उनका इन्तजार कर रहे थे। उसी रात को वह राजकुमार शुक्ल के साथ सीधे पटने चले आये। मै कुछ देर करके बाहर आया। इसलिए उन लोगों से मुलाकात नही हुई। गांधीजी भी नही जानते थे कि मैं बिहार का ही रहनेवाला हूं और राजकुमार शुक्ल पटने में मेरे ही घर पर उनको ले जानेवाले है। इसलिए वह भी मुझसे कुछ नही बोले।

यह बैठक ईस्टर की छुट्टियों मे हुई थी। मै कलकत्ते से जगन्नाथपुरी चला गया। गांधीजी पटने आ गये। राजकुमार शुक्ल उनको मेरे घर पर ले गये। पर वहा एक नौकर के सिवा और कोई था ही नही। नौकर ने समझा कि ये कोई देहाती मवक्किल आये है। इसलिए उसने उनको किसी बाहर के कमरे मे ठहरा दिया और किसी किस्म का आदर-सत्कार करने के बदले कुछ तिरस्कार का ही भाव दिखलाया। गांधीजी कुछ देर ठहरे। इतने में मुजहरुलहक साहब को खबर हुई। वह खुद आकर उनको अपने घर पर ले गये। संध्या को गांधीजी मुजफ्फरपुर पहुचे। वहां आचार्य कृपालानी के पास ठहरे। वहां कुछ लोगों से भेंट-मुलाकात करके उनका इरादा था कि चम्पारन जायं। बाबू ब्रजकिशोर, जो दरभंगा मे वकालत किया करते थे, तार देकर बुला लिये गए थे।

गांधीजी का इरादा था कि वह चम्पारन में जाकर वहां के रैयतों से मिलें और उनका दुःख उन्हींके मुंह से सुनें। पर वहां की ग्रामीण बोली वह समझ नहीं सकते थे। इसलिए वह चाहते थे कि कोई दु-भाषिया का काम करने के लिए उनके साथ जाय। उनका विचार था कि दो-चार दिनों में सब बातें मालूम हो जायंगी। राजकुमार शुक्ल ने भी ऐसा ही कहा था।

इसलिए वह दो-चार दिनों के लिए ही तैयार होकर आये थे। बाबू ब्रज-किशोर को ठीक उसी वक्त कलकत्ते में कुछ काम था। वह खुद गांधीजी के साथ न जा सके। पर उन्होंने दो मित्रों को गांधीजी के साथ कर दिया, जो वकील थे। उन्होंने यह भी सोच लिया कि कलकत्ते से लौटने पर वह खुद चम्पारन जायंगे और जरूरत होगी तो मुझे भी साथ ले जायगे।

चम्पारन जिले का सदर शहर मोतीहारी है। गांधीजी वहां पहुचे। पहुचने के बाद उन्होंने देहात में जाने का इरादा कर लिया। एक गाव से एक प्रतिष्ठित रैयत आये, जिनका घर दो-चार ही दिन पहले नीलवर की ओर से लूट लिया गया था। उस लूट-खसोट के निशान अभी तक मौजूद थे। उन्होंने आकर सारा किस्सा कहा। गांधीजी वहीं जाना चाहते थे। रास्ते में ही कलक्टर का हुक्म पहुंचा कि आप जिला छोड़कर चले जाइये। उन्होंने जिला छोड़ने से इन्कार कर दिया। वह उदूल-हुक्मी के मुकदमे का इन्तजार करने लगे। उसी दिन यह भी मालूम हो गया कि मुकदमा चलेगा। मैं उसी दिन पुरी से पटना लौटा था। कचहरी मे मेरे पास यह सारी बातें उन्होंने तार द्वारा लिख भेजी।

यह पहला ही अवसर था जब गांधीजी से मेरा किसी प्रकार का सम्पर्क हुआ। मैंने कलकत्ते तार देकर बाबू ब्रजकिशोर को बुला लिया। दूसरे दिन सवेरे की गाड़ी से मिस्टर मजहरुलहक और मिस्टर पोलक—जो उस समय हिन्दुस्तान मे ही थे—उसी रात को, गांधीजी का तार पाकर पटने पहुंच गये थे। बाबू ब्रजकिशोर, अनुग्रहनारायण और शम्भूशरण के साथ मैं मोतीहारी के लिए रवाना हो गया। हम लोग दिन में तीन बजे के करीब वहां पहुंचे। उस समय तक मामला अदालत में पेश हो चुका था, बल्कि सुनवाई के बाद हुक्म के लिए तीन-चार दिनो के वास्ते मुलतवी कर दिया गया था।

बाबू गोरखप्रसाद के मकान पर गांधीजी ठहरे थे। हम लोग जब वहां पहुंचे तो गांधीजी एक कुर्ता पहने हुए बैठे थे। हम लोगो से उनका परिचय पहले से नही था। जब परिचय कराया गया तो मुझसे हँसते हुए उन्होंने कहा—"आप आ गये? आपके घर पर तो मैं गया था।" मैंने कुछ किस्सा तो सुन लिया था, इसलिए कुछ शर्मिंदा भी हुआ। उन्होंने, जो-कुछ कचहरी में हुआ था, सब कह सुनाया।

'चम्पारन में महात्मा गांधी' नामक पुस्तक में, जो उस आन्दोलन के सफलतापूर्वक समाप्त होने के थोड़े ही दिनो बाद लिखी और प्रकाशित की गई थी, मैंने चम्पारन का सारा किस्सा विस्तारपूर्वक दे दिया है। यहां केवल अपने सम्बन्ध का ही जिक्र करना चाहता हूं।

गांधीजी को पहले-पहल देखकर मेरे ऊपर कोई खास असर नही पड़ा। मैं चम्पारन का हाल थोड़ा-बहुत जानता था। पर अधिकतर बाबू ब्रजकिशोर की आज्ञा मानने के लिए ही शुरू में वहां गया था। सोचा था, जो-कुछ काम होगा वह कर दिया जायगा। स्वप्न में भी यह मन मे नही आया था कि वहां पहुंचते ही जेल जाने का जटिल प्रश्न हमारे सामने आयगा।

गाधीजी ने सब बातें कहकर हमसे कहा कि अपने साथी बाबू धरनीधर और बाबू रामनौमी से और सब बातें सुन लीजिये। इतना कह वह मि० पोलक से बाते करने लगे। हम लोगों ने उन दोनों भाइयों से विस्तारपूर्वक सारा हाल सुना। मालूम हुआ कि गांधीजी प्राय: रात-भर जागकर वायसराय तथा नेताओ के पास भेजने के लिए पत्र लिखते रहे है और कचहरी के लिए अपना बयान भी उन्होने रात मे ही तैयार कर लिया था। उन दोनो से, जो दुभाषिया का काम करने के लिए ही आये थे, गाधीजी ने पूछा था कि मेरे कैद हो जाने के बाद आप लोग क्या करेंगे। वे लोग प्रश्न की गूढता को शायद पूरा समझ न सके थे। बाबू धरनीधर ने मजाक मे कह दिया था कि आपके (गाधीजी के) कैद हो जाने के बाद दुभाषिया का काम नही रह जायगा—हम लोग अपने-अपने घर चले जायगे। यह सुनकर गांधीजी ने प्रश्न किया—और इस काम को ऐसे ही छोड़ देगे? इसपर उन लोगो को कुछ सोचना पड़ा। बाबू धरनीधर ने, जो बड़े थे, उत्तर दिया कि वह जाच का काम जारी रखेगे, और जब उनपर भी सरकार की ओर से नोटिस हो जायगी, तो वह चूकि जेल जाने के लिए तैयार नही है, खुद तो चले जायगे और दूसरे वकील को भेजेगे, जो जाच का काम करेगे, और अगर उनपर भी नोटिस हुई, तो वह भी चले जायंगे और उनके पीछे तीसरी टोली आयगी—इस प्रकार काम जारी रखा जायगा।

यह सुनकर गांधीजी को कुछ सन्तोष हुआ, पर पूरा नही। उन लोगों को भी सन्तोष न हुआ। वे लोग रात को सोचते रहे कि यह आदमी न मालूम कहां से आकर यहां के रैयतो के कष्ट दूर करने के लिए जेल जा रहा है और हम लोग—जो यहां के रहनेवाले होकर रैयतो की मदद का दम भरा करते है—इस तरह घर चले जाय, यह अच्छा नही मालूम होता।

पर जेल की बात अभी हममे से किसीने कभी सोची ही न थी। जेल तो एक भयंकर जगह समझी जाती थी, जहां से गिरफ्तारी के बाद भी बचने के लिए लोग हजारों खर्च करके जमानत पर छुट्टी लिया करते थे। अगर कोई मजबूरी से जेल गया भी तो वहां रुपये खर्च करके आराम पाने का प्रबन्ध करता था। और, यहां यह आदमी, जो दक्षिण अफ्रिका में इतना काम कर आया है, इन अनजान किसानों की खातिर सब कष्ट सहने के

लिए तैयार है। ऐसी दशा मे भी हम घर चले जायं, यह कैसे हो सकता है? इधर बाल-बच्चों की भी फिक्र थी!

रात-भर सोच-विचार करने के बाद, दूसरे दिन सवेरे, जब गांधीजी के साथ ये लोग कचहरी जा रहे थे, इनकी भावनाएं उमड़ पड़ी। इन्होने साफ-साफ कह दिया, आपके जेल जाने के बाद अगर जरूरत पड़ी तो हम लोग भी जेल जायंगे।

यह सुनते ही गाधीजी का चेहरा खिल उठा। वह बहुत ही खुश होकर बोल उठे—अब मामला फतह हो जायगा।

वहा पहुचते ही ये सारी बाते हम लोगों ने उन दोनों भाइयों से सुनी। अब तो हमारे सामने भी जेल जाने का प्रश्न आ गया। हम लोगों ने तय कर लिया कि जरूरत पडने पर हम भी जेल जायंगे। यह निश्चय गाधीजी को हमने सुना दिया। उन्होने कागज-कलम लेकर सबके नाम लिख लिये। हम लोगो को कई टोलियो मे उन्होने बाट दिया। यह भी तय कर दिया कि ये टोलिया किस क्रम से जेल जायंगी। पहली टोली के सरदार मजहरुल-हक साहब थे, दूसरी के बाबू ब्रजकिशोर। एक टोली का सरदार मै भी बनाया गया। ये सारी बाते, वहां पहुंचने के तीन-चार घंटों के अन्दर ही तय हो गई।

मुकदमे मे, तीन या चार दिनों के बाद हुकुम सुनाया जाने को था। उस दिन गांधीजी जेल जानेवाले थे। मजहरुलहक साहब के हाथ मे कोई मुकदमा गोरखपुर मे था। वह वहा चले गए, ताकि मामला खतम करके उस दिन के पहले ही वापस आकर नेतृत्व करेंगे।

बाबू ब्रजकिशोर भी अपने घर का प्रबन्ध करने के लिए दरभंगा चले गये। हम लोग मोतीहारी मे ही ठहरकर किसानो के बयान सुनने और लिखने लगे। विचार था कि जब ये दोनो सज्जन वापस आ जायगे तब हम लोग भी एक-एक करके घर जायंगे और घर के लोगों से मिल-जुलकर जेल-यात्रा की तैयारी करके लौट आयंगे।

गांधीजी ने अपनी 'आत्मकथा' में लिखा है कि इससे वह सन्तुष्ट हुए थे, और उसी दिन से बिहार के प्रति उनका बहुत प्रेम हो गया और हम लोग उनके विश्वासपात्र बन गये।

चम्पारन की जाच शुरू हो गई। हजारों की तादाद में किसानों ने बयान लिखवाये। शायद बीस-पच्चीस हजार बयान हम लोगों ने लिखे होंगे। तारीख के पहले ही मजिस्ट्रेट ने लिख भेजा कि सरकार के हुकुम से गांधीजी पर से मुकदमा उठा लिया गया और उनको जिले में जांच करने की इजाज़त दे दी गई। जांच से पता चला कि जो कुछ जुल्म हमने सुना

था, वहां की परिस्थिति उससे कहीं अधिक बुरी थी। अगले अध्याय में इसका हाल संक्षेप में बताऊंगा। यहांपर इतना ही कह देना काफी है कि पहली मुलाकात में ही हम लोग अपनी इच्छा से गांधीजी के फांस में फंस गये। ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, उनके साथ केवल प्रेम ही नहीं बढ़ा, उनकी कार्य-पद्धति पर विश्वास भी बढ़ता गया। चम्पारन का काण्ड समाप्त होते-होते हम सब-के-सब उनके अनन्य भक्त और उनकी कार्यप्रणाली के पक्के हामी बन चुके थे।

: २२ :

चम्पारन

चम्पारन-जिले मे अंगरेज प्रायः एक सौ बरसों से नील की खेती करते और कराते थे। प्रायः सारे जिले-भर में जहां-जहां नील हो सकती थी, उन्होंने अपने नील बनाने के कारखाने खोल दिये थे और बहुत जमीन भी अपने कब्जे मे कर ली थी, जिसमे वे खुद अपने हल-बैल से नील की खेती कराते थे। जिले का बहुत बड़ा हिस्सा बेतिया-राज की जमीदारी में है। उन्होने बहुत-से गांवो की जमीदारी मालगुजारी वसूल करने का ठेका राज से ले लिया था और इस जरिये से उन गावो पर उनका कब्जा हो गया था। उन गांवों में रहनेवाली रैयत को भी वे मजबूर करते कि वह अपनी जमीन में भी इन नीलवरों के लिए नील बोया करे। आहिस्ता-आहिस्ता उन्होंने इसको एक कानूनी जामा भी पहना दिया, और यह दावा भी करने लगे कि उनको इस बात का हक है कि रैयत को वे मजबूर कर सकते है कि अपने खेत के फी बीघे में पाच कट्ठे या तीन कट्ठे जमीन में वह जरूर नील बोवे। इस प्रथा को वे पंच-कठिया या तीन-कठिया कहते थे। किसी रैयत की हिम्मत नही पडती थी कि वह नील बोने से इन्कार करे। अगर कोई हिम्मत करता तो उसपर हजार तरह के जुल्म करके उसको मजबूर कर दिया जाता। घर और खेत लूट लिये जाते। खेत मवेशियों से चरा दिया जाता। झूठे मुकदमे लगा दिये जाते। जुर्माना वसूल किया जाता। पीटा भी जाता। इस डर के मारे प्रायः सभी रैयत तीन कठिया मानकर बीघा पीछे तीन कट्ठा नील बो दिया करते। उनके खेतों में जो सबसे बेहतर खेत होते, नीलवर उन्हीको चुनकर नील बोने के लिए कहते। नील बोने का काम काश्तकारी के और सब कामों से पहले पूरा करना होता। जब नील तैयार हो जाती तब उसे काटकर कोठी पर पहुंचा देना होता। इसके लिए रैयत को वे कुछ बीघा पीछे दिया करते थे, जो कभी खर्चे के लिए भी पूरा नहीं होता। गवर्नमेण्ट के अफसर उन लोगों की ही मदद करते। अगर कोई अफसर हिम्मत करके इंसाफ करना चाहता तो नीलवरो का असर ऊपर के अफसरों पर इतना होता कि उस मातहत अफसर की आफत आ जाती। जो अफसर सच्चे होते, नीलवरों के जुल्म और तीन कठिया के खिलाफ

गवर्नमेण्ट के पास रिपोर्ट भेजा करते; पर इससे कुछ होता-जाता नहीं। कभी-कभी घबराकर रैयत बलवा कर देती, किसी नीलवर को मार देती या ऐसा आपस में मिलकर कुछ दूसरे प्रकार का तहलका मचा देती। पर तब भी वे नीलवरों का मुकाबला कैसे कर सकते थे! नतीजा यह होता कि गांव-के-गांव लूट लिये जाते। पुलिस और कचहरी के अमलों की मदद से बेचारी रैयत हर तरह से जेर कर दी जाती।

गवर्नमेण्ट पर निलहे गोरों का इतना असर था कि लगान-कानून (Tenancy Act) मे उन्होंने एक दफा बनवा दी कि जमीदार की मर्जी के मुताबिक जहां रैयत कोई खास फसल बोने के लिए मजबूर की जा सकती है, वहा अगर वह इस शर्त से अपनी रिहाई चाहे, तो जमीदार को हक है कि इस रिहाई के बदले में जितना चाहे उतना लगान बढ़ा दे सकता है। मामूली तौर से जमीदार को यह हक नही था कि मनमाना लगान बढा सके। वह बाजाब्ता रजिस्ट्री पट्टे से रुपये मे दो आने से ज्यादा लगान नही बढा सकता था और एक बार बढ़ा देने पर एक लम्बी मुद्दत तक लगान मे फिर इजाफा नही किया जा सकता था। नीलवरों के फायदे के लिए यह हद हटा दी गई थी।

बेतिया-राज को रुपये की जरूरत पड़ी। उसने कुछ कर्ज लिया। यह कर्ज नीलवरो की मदद मे इगलैंड से मिला। सूद और असल की वसूली के लिए नीलवरो को गावो पर कब्जा दिया गया और बहुतेरे गांवों मे उन्हें मुकर्री हक मिल गया। मुकर्री हक का मतलब यह कि वे एक तरह से गावों के जमीदार हो गये। केवल एक मुकर्रर (निश्चित) रकम उनको हर साल मालगुजारी के रूप मे राज को देनी पड़ती। उस गाव से वे जो चाहें और जितना चाहें, पैदा कर सकते थे; राज का उसपर कोई हक नही था। उसे केवल वह मुकर्रर रकम ही मिल सकती थी। ऐसे मुकर्री गावो मे लगान बढ़ाया जाय, और एक के बदले दो की आमदनी हो जाय, तो मुकर्रीदार की आमदनी बढेगी—राज को जो पहले मिलता था, वही मिलेगा। जिन गावो में उन निलहो का मुकर्री हक नही था, उन गावो का उनको केवल नियत मीयाद के लिए ठेका मिला था। वहां भी नियत रकम राज को देनी पड़ती; पर मीयाद पूरी हो जाने पर राज को अख्तियार था कि फिर ठेका दे या न दे और अगर दे तो नई शर्तों पर दे, और ठेकेदार जो मालगुजारी राज को देता था, उसे राज चाहे तो बढा दे। यद्यपि ऐसा शायद ही कभी होता था कि कोई ठेके का गांव नीलवर के हाथ से मीयाद पुरने पर निकाला जाता हो या उसकी मालगुजारी बढ़ाई जाती हो, तथापि राज को अधिकार तो ऐसा करने का था ही।

बेतिया के महाराजा मर गये। महारानी को पागल करार देकर सारा राज कोर्ट आफ वार्ड्स मे आ गया। कोर्ट का एक मैनेजर उन्ही नीलवरों मे से मुकर्रर किया गया। इस प्रकार प्रायः बीस बरसों तक नीलवरों के कब्जे में ही राज रहा। जिस समय गांधीजी चम्पारन पहुचे थे, उस समय एक सिविलियन मैनेजर था। उसके बाद कोई नीलवर फिर मैनेजर नही हुआ। इस तरह अपने खेत मे और रैयतो के खेतो मे तीन-कठिया के जरिये नील आबाद कराकर पौधे से नील तैयार कराई जाती थी। यह नील बोने की प्रथा बिहार के दूसरे जिलों मे भी फैली थी। पर इसका जितना जोर चम्पारन मे था उतना और कही नही। अगर नील की खेती वे खुद करते और रैयतो से जबरदस्ती इस तरह नील न बुवाते तो उनको इसमे कोई लाभ न होता। इसलिए यह जबरदस्ती की प्रथा कायम रखना जरूरी हो गया और वह चलती रही।

इस बीच मे जर्मनी मे दूसरे प्रकार के रग बनाने के तरीके का आविष्कार किया गया, जो नील के रग से सस्ता पड़ता था। नील की कीमत घट गई। जुल्म और जबरदस्ती से नील पैदा कराये जाने के बावजूद नील मे नफा नही रह गया। नीलवरो ने अपने इस नुकसान को गरीब रैयत के सिर पर डालकर अपना नफा कायम रखना चाहा। इसलिए उन्होने कानून के उस दफे की शरण ली, जिसमे रैयत को नील की खेती से रिहाई देकर उनको लगान मे मनमाना इजाफा करने का हक दिया गया था। रैयत से उन्होने कहा कि वे नील बोने से उसे रिहाई दे देगे, अगर वह इजाफा के पट्टे तामील कर दे। रैयत यह जानती थी कि नील से नीलवरो को अब नफा नही रहा, इसलिए अब वे इस कारोबार को खुद छोड़ देगे; इसलिए उनको लगान मे बढती कबूल करके यह रिहाई लेने की जरूरत नही है। जबतक नील मे मुनाफा था तबतक तो नीलवरो ने उनकी हजार कोशिश पर भी रिहाई दी नही; अब अपने मतलब से जबरदस्ती रिहाई देना उन्होंने शुरू कर दिया। हजारों हजार की तादाद मे उन्होने अपने मुकर्री गावों के रैयतो से, जहां लगान की बढ़ती का नफा उनको मिलता था और बेतिया-राज का उसपर हक नही पहुचता था, इजाफा के पट्टे तामील करा लिये। ये पट्टे मार-पीट, झूठ-फरेब और जबरदस्ती से तामील कराये गए थे। इस प्रकार उन्होने उन गांवो में लाखो की आमदनी बढा ली। जहां उनका हक केवल ठेकेदार का था और मीयाद पूरी होने पर इजाफे का नफा बेतिया-राज को मिलता था, वहां पर लगान मे बढती न कराकर उन्होंने नगद रुपये वसूल किये। जिस रैयत के पास रुपये नही थे उससे हैंडनोट लिखवाया और दूसरे तरीकों से भी रुपये लिये। इस प्रकार प्रायः बीस-पच्चीस

लाख नगद वसूल किया।

चम्पारन का कुछ हिस्सा ऐसा भी है, जहां नील की खेती हो ही नहीं सकती। वहां के गावों में नीलवर नील की खेती न कराकर किसी दूसरे तरीके से ही रुपये लिया करते थे। उन गांवों में पचासों प्रकार के अबवाब (टैक्स), जो कानूनन मना थे, वसूल किया करते थे। जब जिले के नील-वाले हिस्से मे इजाफा या नगद सलामी वसूल होने लगी तब गैर-नील हिस्से से भी उन्होंने कुछ वसूल करना चाहा और वहां भी एक-न-एक बहाना लगाकर या तो लगान बढा दिया या नगद वसूल किया। एक तरीका लगान बढ़ाने का यह था कि किसी रैयत को पट्टा दे दिया जाता, जिसमें ऐसी जमीन उसके साथ बंदोबस्त की जाती थी जो वास्तव मे थी ही नही—यों ही फरजी नाम-निहादी चौहद्दी जमीन की दे दी जाती और उसके लिए वे जितना इजाफा करना चाहते थे उतना लगान रख दिया जाता था। कानून के अनुसार लगान बढ़ाने की हद रुपये मे दो आने की मुकर्री थी, पर नई जमीन की मालगुजारी जमीदार जो चाहे, ले सकता था। इसलिए इजाफा की हदवन्दी से नाम-निहादी नई जमीन बन्दोबस्त करके वे अपनेको बचाना चाहते थे और उन्हें उम्मीद थी कि कुछ दिनो मे पुरानी जमीन और नाम-निहादी जमीन दोनों के लगान इकट्ठा कर दिये जायगे। इस तरह, नील चाहे कोई बोता हो या न बोता हो, गाव मुकर्री हो या केवल मियादी ठेके में, सब गांवों से उन्होंने या तो लगान लगाकर अपनी आदमनी बढ़ा ली या नगद रुपये वसूल कर लिये। गवर्नमेण्ट ने उनकी पूरी मदद की। जब इजाफा के पट्टे लिखवाये जा रहे थे, गवर्नमेण्ट ने उन पट्टो को रजिस्ट्री करने के लिए खास रजिस्ट्रार मुकर्रर कर दिये, ताकि रजिस्ट्री मे सहूलियत हो जाय।

यह सब अभी पूरा हुआ ही था कि १९१४-१८ का जर्मन-युद्ध छिड गया। विदेश से रंग आना बंद हो गया। नील की खेती मे फिर मुनाफे की उम्मीद मालूम हुई। नीलवरो ने, अपनी दी हुई रिहाई की परवा न करके, फिर जबरदस्ती तीनकठिया नील बोने पर रैयतों को मजबूर किया। बहुत जगहों पर इसमें वे कामयाब भी होने लगे। इसी समय गवर्नमेण्ट ने उस जिले का दोबारा सर्वे (पैमाइश) कराना शुरू किया। यह काम प्रायः पूरा होने पर था, जब गांधीजी चम्पारन में पहुंचे। सर्वे में रैयतों ने शरहबेशी के पट्टों के बारे में बयान किया कि जबरदस्ती उनसे पट्टे लिखवाये गए हैं। सर्वे-सेटेलमेण्ट-अफसर ने फैसला दिया कि पट्टे जबरदस्ती नहीं लिखाये गए हैं, इसलिए सब इजाफे कानूनन जायज हैं। रैयत में बडी खलबली थी। उधर जर्मन लड़ाई चल रही थी। रैयत की सुनवाई यों भी नहीं हुआ

करती, उस समय जब लड़ाई में नीलवर शरीक हो रहे थे, सुनवाई का और भी कम मौका था। रैयत ऊबी हुई थी। उसको कही कोई उपाय नहीं नजर आता था। तब वे लोग गांधीजी के पास पहुंचे थे। इसी मौके पर गांधीजी वहां आ गये।

गांधीजी से जब राजकुमार शुक्ल ने चम्पारन में रैयत पर हो रहे जुल्मों का बयान किया तो गाधीजी को विश्वास नही हुआ कि यह सब सच है। इसलिए वह जांच करने के लिए चम्पारन आये। उनके चम्पारन पहुंचने के पहले ही लोगों मे एक अजीब जागृति पैदा हो गई। वहां की रैयत इस प्रकार दबाई गई थी कि उसकी यह भी हिम्मत नही होती थी कि वह कचहरी मे जाकर नालिश करे। अगर कोई बहुत हिम्मत करके ऐसा करता भी तो कोठी का सिपाही इजलास पर से उसको पकड़कर खीच लाता और खूब पीटता। जब गांधीजी चम्पारन के रास्ते में मुजफ्फरपुर पहुंचे, बहुतेरे लोग मुजफ्फरपुर तक आ गये। उन लोगों ने अपना दुखड़ा कह सुनाया। वहां नीलवरो की सस्था (प्लाण्टर्स एसोसिएशन) के मंत्री तथा तिरहुत-डिवीजन के कमिश्नर ने गाधीजी को चम्पारन जाने से मना किया। कहा कि गवर्नमेण्ट खुद रैयतों की शिकायत पर विचार कर रही है—वह सर्वे-सेटलमेण्ट की रिपोर्ट की प्रतीक्षा कर रही है। उन्होंने इसपर भी जोर दिया कि इस लड़ाई के जमाने मे आप वहां जाकर हलचल शुरू करेंगे तो अच्छा न होगा—बलवा-फसाद होगा। हमारे अपने देशी लोगों ने भी तो बताया कि लडाई का नाजुक समय है, फसाद पैदा होना किसी तरह अच्छा नहीं है। पर जो कुछ गांधीजी ने सुना, उससे उनकी इच्छा और भी प्रबल हो गई। उन्होंने निश्चय कर लिया कि चम्पारन जाना ही चाहिए।

गाधीजी के चम्पारन पहुचते ही रैयतों के दिल से डर न मालूम कहां भाग गया। जो अदालत में भी जाने से डरते थे वे गांधी जी के पास बहुत बड़ी संख्या में आकर अपना दुःख बताने लगे। उन लोगो के सीधे-सादे हृदय पर न मालूम कहा से यह अमिट छाप पड़ गई कि उनका उद्धारक आ गया, अब उनका दुःख दूर हो जायगा।

जिस दिन गाधीजी पर मुकदमा चला और वह अदालत में गये, गांवों से हजारों की तायदाद में रैयत वहां आये थे। इतनी भीड हो गई कि अदालत के दरवाजे टूट गये। अदालत में गांधीजी ने बयान दे दिया। मुकदमा खतम हो गया। तीन-चार दिनों के बाद गांधीजी की रिहाई हो गई। उनको यह इजाजत हो गई कि वह जांच कर सकते हैं। अब हजारों की तायदाद में रैयत आये। सबने अपना-अपना बयान लिखाया। हम लोग बयान लिखने मे लग गये। गाधीजी ने हम लोगों को हियादत की थी कि

तुम लोग वकील हो, खूब जांच-बूझकर और जिरह करके बयान लिखना। जो बातें लिखी जायं, वे सच्ची हों।

हम लोग सवेरे छः बजे स्नानादि से निवृत्त होकर बयान लिखने लगते। दिन के ग्यारह बजे तक लिखते। फिर भोजन और कुछ आराम के बाद एक या डेढ़ बजे से पाच बजे शाम तक। फिर संध्या का भोजन करते और गांधीजी के साथ टहलने जाते। बीच में जब कोई ऐसा बयान आता, जिसे गांधीजी को तुरन्त बतला देना जरूरी समझा जाता तो उनसे वह तुरन्त कह दिया जाता। नही तो बयान लिख-लिखकर उनको देते जाते और वह पढ़ते जाते। इस प्रकार हम लोग कई दलो में बंटकर बहुत दिनो तक बयान लिखते रहे। प्रायः बाईस या पच्चीस हजार रैयतो के बयान लिखे गये। इससे सारे जिले मे हलचल मच गई। हम लोग कभी बेतिया मे रहते और कभी मोतीहारी में। कुछ दिनों के बाद दो दलो मे विभक्त होकर मोतीहारी और बेतिया दोनों जगहों में बयान लिखे जाने लगे। कभी-कभी महात्माजी गांवो में भी जाते या हम लोगो मे से किसीको कोई विशेष बात दरियाफ्त करने के लिए गांवो मे भेजते। हम सबको गाधीजी का हुकुम था कि कहीं कोई सभा करके व्याख्यान न दे। हम लोगो में से किसीने उन दिनों चम्पारन में एक भी सभा में व्याख्यान नही दिया और न गांधीजी ने स्वयं ऐसा किया।

उन दिनों देश में होमरूल (स्वराज्य) का आन्दोलन खूब चल रहा था। गाधीजी हम लोगो से कहा करते, तुम लोग होमरूल का सबसे बड़ा काम कर रहे हो। अगर तुम लोग उस आन्दोलन मे शरीक न होगे तो कोई हर्ज नही है।

हम लोगों की जांच का नतीजा यह हुआ कि चम्पारन के मुकामी अफसर बहुत घबराने लगे। उनमे से कितनो के दिल पर यह असर हुआ कि चम्पारन से अंगरेजी राज उठा जा रहा है—लोग यह समझने लगे है कि गांधीजी ही सबसे बड़े अफसर है, जिसके सामने जिला-कलक्टर और मजिस्ट्रेट के खिलाफ भी शिकायत की जा सकती है—नीलवरों का रोब तो उठ ही गया, हम अफसरों का रोब भी उठा जा रहा है। इसलिए घबराकर उन लोगों ने प्रान्तीय सरकार के पास रिपोर्ट भेजी। प्रान्तीय सरकार ने गांधीजी को अपने एक मेम्बर से भेंट करने के लिए लिखा। वह पटने में आकर उनसे मिले। उस वक्त तक जितनी शिकायतें आ गई थी, सबका एक खुलासा ब्योरा बनाकर उनको दिया। सरकारी मेम्बर ने उसे गवर्नमेण्ट के पास पेश किया। उसपर विचार होने लगा। इधर हमारा जांच का काम चलता रहा। अबतक बयान बहुत लिखे जा चुके थे। इसलिए बयान

लिखना कुछ मुख्तसर कर दिया गया। मगर देहातों में जाकर देखना-सुनना ज्यादा हो गया। गांधीजी से नीलवरों की भी कुछ राय-बात हो गई थी। वे भी उनको कहीं-कहीं ले जाते, अपनी बातें कहते, या जो कुछ दिखलाना होता, दिखलाते थे।

हम लोगों के लिए गांधीजी का तरीका एक बिलकुल नया तरीका था। उस तरह का काम हमने पहले कभी किया ही न था। हम समझते थे कि कांग्रेस में अथवा किसी सभा में किसी विषय पर व्याख्यान दे देना, अदालत में जाने लायक बात को वहां पेश कर देना, या जो कौन्सिल में प्रश्न कर सकता हो उसका किसी बात पर वहां प्रश्न कर देना या प्रस्ताव उपस्थित कर देना ही काफी है। इससे अधिक हो ही क्या सकता है! गांधीजी ने इनमें से एक बात भी न की। उन्होंने रैयतों के बयान लिये। इस तरह उन्होंने पहले सब बातों की ठीक-ठीक जानकारी हासिल कर ली। इस तरह बयान लेने से ही रैयतों का डर छूटता गया। हम लोगों को भी ऐसी-ऐसी बातें मालूम होने लगीं, जिनका होना हमने स्वप्न में भी मुमकिन नहीं समझा था। हम लोग भी निडर होते गये। एक-दो विशेष घटनाएं यहां बता देने से ही यह साफ हो जायगा।

ऊपर कहा गया है कि हम लोग कई दलों में बटकर बयान लिखा करते थे। पुलिस के आदमी आस-पास में लगे रहते थे। वे रैयत के नाम इत्यादि नोट कर लिया करते थे। इसी तरह नीलवरों के आदमी भी रैयत के नाम इत्यादि जानकर अपने मालिक के पास सब बातों की रिपोर्ट पहुंचा देते। काम शुरू करने के दो-तीन दिनों के अन्दर ही एक घटना हो गई। जहां हममें से एक आदमी बयान लिख रहे थे, पुलिस का सब-इन्सपेक्टर आकर बैठ गया। तब वह उस जगह से उठकर, रैयत को साथ लेकर, कुछ दूर पर दूसरी जगह जाकर, बयान लिखने लगे। पुलिस सब-इन्सपेक्टर वहां भी पहुंच गया। उनको कुछ गुस्सा आ गया। उन्होंने डाटकर सब-इन्सपेक्टर को कहा—आपको जो कुछ देखना-सुनना हो, दूर से ही देखें-सुनें, इतना नजदीक न आवें। सब-इन्सपेक्टर ने महात्माजी से इस बात की शिकायत की। कहा—"हम लोगों को ऊपर का हुकुम है कि जो कुछ हो रहा है उसकी हम खबर रखें। जब आपके आदमी नजदीक आने ही नहीं देंगे तब हम कैसे इस हुकुम को बजा लावें।"

गांधीजी ने बयान लिखनेवाले सज्जन को बुलाया और पूछा कि क्या बात है। उन्होंने जो कुछ सब-इन्सपेक्टर ने कहा था, उसे कबूल किया। तब गांधीजी ने पूछा—आप अकेले थे या आपके साथ और लोग भी थे? उन्होंने कहा कि बहुतेरे लोग घेरे बैठे थे और एक-एक करके बयान लिखा रहे थे।

गांधीजी ने फिर पूछा कि आप कोई गुप्त काम तो नही कर रहे थे। उन्होंने कहा कि नही। गाधीजी ने फिर पूछा, "तब सब-इन्सपेक्टर से क्यों छिपाने की कोशिश कर रहे थे?" उन्होंने कहा, "छिपाने की कोई बात नहीं थी; मगर यह आकर पास में ही बैठ जाते थे। मैने इनको कुछ दूर रहकर देखने-सुनने को कहा।" गाधीजी ने कहा, "रैयत के इतने लोग जब आपको घेरे हुए थे और उनसे आपके काम मे कोई बाधा नहीं पड़ती थी, तब एक आदमी और भी अगर वहां आ बैठा तो आपने क्यों बाधा महसूस की। आपने इनको भी उन रैयतों-जैसा ही क्यो नहीं समझा?"

यह सुनते ही सब-इन्सपेक्टर पर मानो घडों पानी पड़ गया। पर वह कुछ कह भी नही सकता था। वह तो अपना रोब बढाने के लिए आया था। यहां गाधीजी ने कह दिया कि उसका दर्जा किसी रैयत से ज्यादा नही है और उसके साथ भी रैयतों जैसा ही व्यवहार होना चाहिए। इसके बाद हममें से कोई किसी पुलिस-अफसर के पास आने से न घबराता और न कोई पुलिस-अफसर अधिक नजदीक आने की कोशिश करता।

जिस समय गांधीजी पर मुकदमा चलकर फैसले के लिए मुलतवी हो चुका था, उसी समय दीनबन्धु एण्डरूज आये। वह स्टेशन से एक एक्के पर आये। उनको एक्के पर चढ़ने का तरीका मालूम नही था, इससे उनके जूते पहिये मे लगकर घिस गये। इस तरह का अगरेज, जो ऊल-जुलूल कपड़े पहने हो, जो एक्के पर चढता हो और जो हिन्दुस्तानियों से खुलकर मिलता-जुलता हो, हमने अपने होश मे नही देखा था। यह भी सुना कि वह एक बहुत प्रतिष्ठित आदमी है, जिनकी पहुंच वायसराय तक है और जो दुनिया भर में चक्कर लगाया करते है। उस समय जो उनसे मुलाकात हुई, उनकी सादगी और सचाई की जो छाप पड़ी, वह दिन-दिन गहरी होती गई। मेरे साथ तो उनका मानो एक प्रकार का बन्धुत्व स्थापित हो गया, जो उनके मरने के समय तक बना रहा। उनके फीजीद्वीप जाने की बात थी। वहां से उनकी बुलाहट आई थी। वह महात्माजी से भेट करके वहां जानेवाले थे। इसी बीच मे चम्पारन में महात्माजी पर मुकदमा चल गया। उन्हीसे मिलने वह चले आये। हम लोगो से उनकी बाते हुईं। हम लोग चाहते थे कि वह वहा ठहर जायं। अभी गाधीजी के मुकदमे का फैसला नही हुआ था। पता भी न था कि क्या होगा। हम लोग समझते थे कि सजा हो जायगी। इसलिए अगर एण्डरूज जैसा एक अनुभवी आदमी रह जाय तो आगे के काम मे मदद मिलेगी। ये सब बाते हम लोगों ने उनसे कही और जोर दिया कि वह रह जायं। वह कुछ राजी भी हुए कि फीजी कुछ दिनों के बाद जायंगे। मगर इसके लिए गांधीजी की अनुमति चाहिए थी। उनकी

अनुमति के बिना वह नही ठहर सकते थे। इसलिए यह बात गांधीजी से कही गई, उनपर बहुत जोर डाला गया।

सब बातें सुनकर गांधीजी ने कहा, "आप लोग जितना जोर डाल रहे हैं कि एण्डरूज को रहना चाहिए उतना ही मेरा निश्चय दृढ़ होता जा रहा है कि उनको नही रहना चाहिए, उन्हे जरूर चला जाना चाहिए। आप लोगों के दिल मे गवर्नमेण्ट और अंगरेज नीलवरों का डर है। आप समझते हैं कि एक अंगरेज रहेगा तो आपका सहारा होगा। आप इसी कारण से एण्डरूज को रोकना चाहते हैं। मैं चाहता हूं कि यह डर आपके दिल से निकल जाय और यह भाव भी निकल जाय कि अंगरेज में और आप लोगो मे कोई फर्क है। आपको अपने ऊपर भरोसा करना होगा। इसलिए एण्डरूज को कल ही यहां से जाना चाहिए।"

एण्डरूज से भी उन्होंने कहा कि फीजी का काम भी जरूरी है, वह किसी तरह रोका नही जा सकता। इसलिए एण्डरूज दूसरे दिन सुबह जाने के लिए तैयार हो गये। हम लोगो ने भी समझ लिया कि महात्माजी बात ठीक कह रहे है; हमारे दिल की जो बात है, उन्होंने ठीक पकड़ ली है।

दूसरे दिन एण्डरूज, जाने के पहले, डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट से मिलने गये। उसने कहा, "गवर्नमेण्ट का हुकुम आ गया है कि मुकदमा उठा लिया जाय, मैं कुछ देर के बाद बाजाब्ता सूचना भेज दूगा।" एण्डरूज ने रवाना होने के पहले यह खबर हम लोगों को सुना दी। हम लोगों का उत्साह और भी बढ़ गया।

एक बार एक नीलवर ने महात्माजी से अपनी तारीफ की। कहने लगा कि उसके इलाके मे रैयत खुश हैं, उनको कोई शिकायत नही है। उसने महात्माजी को वहां खुद जाकर देखने के लिए निमंत्रित किया। महात्माजी के साथ मै भी गया। उसने इन्तजाम किया था कि कुछ लोग आकर ऐसा ही कहेंगे। हम लोग पैदल ही जा रहे थे। कुछ चार-पांच मील की दूरी पर वह गांव था, जहा उसने बुलाया था। रास्ते मे ही बहुतेरे लोग मिले। उन्होंने कहा कि साहब ने कुछ लोगो को जमा कर रखा है, जो उसकी तारीफ करेंगे। महात्माजी ने कहा, "अगर तुम लोगों को तकलीफ या शिकायत हो तो तुम भी वहां साहब के मुकाबले मे ही कहना।" हम लोगो ने उस इलाके की रैयत के बयानों को देख लिया था और महात्माजी को बता दिया था कि शिकायतें क्या हैं। वहा दो-तीन सौ आदमियो की एक सभा हो गई। उस नीलवर के अलावा वहां के सब-डिवीजन का मजिस्ट्रेट भी हाजिर था। दो-चार लोगों ने कहा कि उनको बहुत सुख है, उन्हें कोई शिकायत नही है। उनके बोलते ही दूसरे शोर करने लगे कि ये सिखाकर लाये गए है, झूठ

कह रहे है। महात्माजी ने उनको रोका और अपनी बातें पीछे कहने को कहा। जब उनकी बारी आई तो उन्होंने वही शिकायतें की, जो हम लोगों के पास बयान में लिखाई थी। मजिस्ट्रेट की भी शिकायत एक आदमी करने लगा। कहने लगा कि ये सब लोग मिले हुए है, इनके पास कोई इन्साफ नही हो सकता। उसने एक खास घटना का जिक्र करके मजिस्ट्रेट से ही सवाल कर दिया। मजिस्ट्रेट तुरंत उठकर चला गया। दूसरे ही दिन साहब ने अपने एक छोटे बंगले मे आग लगवा दी। चाहा कि सब रैयतों को आग-लगी के मुकदमे मे फंसावे और गाव लुटवा दे। यह आग रात को लगाई गई। वह खुद इन्तजार मे बैठा रहा कि जब खवर मिले, पुलिस की मदद लेकर लूट-पाट किया जाय। पर जिस आदमी के जिम्मे खबर देने का काम सौपा था, उसने जान-बूझकर खबर नही दी, बहाना करके दूसरे दिन खबर देने गया। इस बीच मे हम लोगों को खबर मिल गई। महात्माजी ने सब बाते गवर्नमेण्ट के पास लिख भेजी। उधर मजिस्ट्रेट ने भी एक लम्बी रिपोर्ट भेजी। उसमे लिखा कि अराजकता फैल रही है—जान पड़ता है, ब्रिटिश राज् मानो उठ गया। इस तरह की घटनाए प्राय. होती रही।

गवर्नमेण्ट ने इस रिपोर्ट पर कार्रवाई की। बिहार के गवर्नर ने गाधीजी को राची बुलाया। उसके पत्र का आशय यह था कि चम्पारन में गांधीजी के रहने से बहुत अराजकता फैल रही है, इसलिए गवर्नमेण्ट उनको वहां से हटा देना चाहती है; मगर कोई हुकुम देने के पहले गवर्नर एक बार उनसे मिल लेना चाहते है। गाधीजी के रांची जाने के पहले हम लोगों ने सोच लिया कि अब या तो वह गिरफ्तार कर लिये जायगे या सूबे से बाहर निकाल दिये जायंगे और शायद हम लोग भी अब बाहर रहने न पावेंगे। महात्माजी ने हम लोगो को बेतिया और मोतीहारी मे दो टोलियों मे रख छोड़ा। गिरफ्तारी होने पर किस तरह से क्या करना होगा, इसके सम्बन्ध में उन्होने पूरी व्यवस्था दे दी। हम लोगो के पास इतने रैयतो के बयान आ गये थे, इतने कागज-पत्र जमा हो गये थे कि रैयतो की शिकायतो के लिए पूरा सबूत हाथ में आ गया था। उसको सुरक्षित रखना था। हम लोगो ने पहले से ही सबकी नकल करा ली थी। नकलों को सुरक्षित रखने का प्रबंध कर दिया गया। अपने-अपने स्थान पर हम लोग खबर का इन्तजार करने लगे। बेतिया-आफिस मेरे चार्ज में रखा गया था। बहुत इन्तजारी के बाद रांची से तार आया कि गवर्नर से बातें अभी चल रही हैं। दो-तीन दिनों तक बातें होती रही। अन्त मे गवर्नर ने एक कमीशन मुकर्रर किया। गांधीजी को भी उसका मेम्बर बनाया। रैयत की शिकायतों की जांच करने का काम उसीके सुपुर्द किया। कमीशन ने सरकारी अफसरों, नीलवरों

और रैयत के इजहार लिये। दूसरे जो कागज-पत्र पेश किये गए, उन्हें देखा। बहुतेरी कोठियो में जाकर उनके कागज-पत्र देखे। रैयतों से भी मिला।

कमीशन की नियुक्ति हो जाने पर, महात्माजी की आज्ञानुसार, रैयतों की तरफ से जो कागज पेश हुए थे, उनको खूब देखकर और दूसरे सबूत इकट्ठे करके, हम लोगों ने कमीशन के लिए एक बयान तैयार किया। कमीशन में सरकारी अफसर थे। नीलवरों का प्रतिनिधि था। जमीदारों का प्रतिनिधि था। रैयत की तरफ से प्रतिनिधि-स्वरूप गाधीजी थे। जब रिपोर्ट लिखने का समय आया, तब एक भारी अड़चन आ पड़ी। गाधीजी की और कमीशन के अध्यक्ष सर फ्रैंक स्लाई की बहुत इच्छा थी कि सर्वसम्मति से रिपोर्ट दी जाय। गवर्नर ने भी कहा था जब सर्वमान्य रिपोर्ट होगी तभी उसपर वह कुछ कर सकेगा, नही तो कुछ करने में कठिनाई होगी।

किसानों की शिकायतो का कुछ वर्णन ऊपर दिया गया है। अन्त में महात्माजी और नीलवरो के दरमियान बहुत बातचीत के बाद यह तय हुआ कि जो लगान बढा दिया गया है, उसका थोडा-सा हिस्सा छोड दिया जाय, जो एक-चौथाई से कुछ कम था, बाकी तीन-चौथाई इजाफा ज्यो-का-त्यों रह जाय। जो नगद रुपये वसूल किये गये थे, उनमे से भी फी सैकड़ा पच्चीस रुपये वापस किये जायं और बाकी को रैयत छोड दे। मुख्य शिकायतें यही दो और तीनकठिया प्रथा थी। दूसरी शिकायतें ऐसी थी, जिनका दूर करना अफसरो के ठीक काम और इन्साफ करने ही पर निर्भर था। ये सिफारिशे रिपोर्ट मे सर्व-सम्मति से मान ली गई। पिछली शिकायतो के सम्बन्ध मे रिपोर्ट मे विशेष नही लिखा गया। केवल शिकायतों का उल्लेख करके उनके दूर करने का उपाय बतलाया गया। शरह-बेशी कम करने और नगद तावान के रुपये पच्चीस फी सैकडा वापस करने के अलावा तीनकठिया प्रथा-कानून बन्द कर देने की भी सिफारिश हुई।

हम लोग आपस मे इसपर बहस किया करते कि शरह-बेशी और तावान अगर नाजायज है तो पूरे इजाफे से रैयतो को छुटकारा मिलना चाहिए और तावान का सब रुपया वापस होना चाहिए। नीलवरो ने कानूनी अड़चने भी पैदा कर रखी थीं। जिसने तावान के रुपये वसूल किये उसने कोठी किसी दूसरे के हाथ बेच डाली थी और खुद रुपये लेकर चलता बना था! अब तावान के रुपये नये मालिक से, जिसने रुपये लिये नहीं और जिसने दाम देकर कोठी नई खरीदी थी, किस तरह वसूल किये जायं! इसी तरह, इजाफे का छुड़ाना कोई आसान काम नहीं था। अगर कानून बनाकर उसे न हटाया जाय तो वह शायद हट नही सकता था। कानून के अनुसार प्रत्येक रैयत को दीवानी मुकदमा दायर करना होगा। साथ ही, यह साबित

भी करना होगा कि उससे शरह-बेशी की कबूलियत जबरदस्ती लिखाई गई है, उसपर नील बोने की पाबन्दी नही थी, इत्यादि। इन बातों का सबूत गरीब सीधे-सादे निरीह रैयत कहां से देते ?

महात्माजी के चम्पारन जाने के पहले एक जगह के ग्यारह रैयतों ने मुकदमे भी दायर किये थे। नीलवरों ने अपनी ओर से वहुत बड़ा बैरिस्टर रखा था। मुकदमा महीनों पेशी में रहा था। अन्त में पाँच में रैयत जीते थे और छः में नीलवर। अपील में थोड़ा-बहुत हेर-फेर भी हुआ था। वहां लाखों नही तो हजारों पट्टो के बारे में इस प्रकार के मुकदमे करने होते। यह असम्भव था। इन दिक्कतों को ध्यान में रखकर सुलह से ही कुछ तय करना मुनासिब समझा गया। इसलिए सर्वसम्मति से रिपोर्ट तैयार हुई। गवर्नमेण्ट ने रिपोर्ट की सिफारिशो को मंजूर कर लिया। एक कानून बनाकर तीन-कठिया उठा दिया। सब रैयतों का इजाफा भी घटा दिया। बेतिया-राज्य (कोर्ट आफ वार्ड्स) ने नीलवरो से रुपये वसूल करके, निश्चय के अनुसार, रैयतों को तावान के रुपये लौटा दिये।

: २३ :

चम्पारन की विजय का व्यापक प्रभाव

चम्पारन के इस काण्ड मे हमने गांधीजी के काम के तर्ज को पहले-पहल देखा। हम लोगो को सार्वजनिक जीवन का एक प्रकार से एक अद्‌भुत पाठ पढ़ने का मौका मिला। होमरूल के आन्दोलन में भाग न लेना कभी-कभी हममे से कुछको बहुत अखरता था; पर हमने बड़ी सावधानी और सयम के साथ गांधीजी के आदेश का पालन किया—जिस काम मे लगे थे, लगे रहे। हमने यह भी देखा कि गांधीजी किस तरह नीलवरो को बहुत बड़ी हानि पहुंचाकर भी उनके मित्र बने रहे। उनमे से कितनो ही के साथ गांधीजी का व्यवहार बहुत अच्छा रहा। वे लोग उनको अपने बगले पर बुलाया भी करते थे। हां, कुछ ऐसे अवश्य थे, जिन्होने उनका जबरदस्त विरोध किया। पर यह कहना अत्युक्ति नही है कि अन्त मे गांधीजी से उनका सम्बन्ध कड़वा नही हुआ। जब कमीशन का काम पूरा हो गया, गांधीजी ने जगह-जगह स्कूल खोलने का विचार किया, नीलवरो से मदद भी मागी। नीलवरो ने, एक के सिवा, किसी प्रकार की बाधा नही डाली।

कमीशन मे जो बाते सुलह से तय हुईं वह रैयतों की माग से बहुत कम थी। मगर इस सारे आन्दोलन का यह नतीजा हुआ कि चम्पारन से नील-वरों का रोब उठ गया। अब उनमें वह शक्ति नही रह गई कि जुल्म कर सकें। रैयतो मे हिम्मत और जान आ गई। अब वे चुपचाप जुल्म बर्दाश्त करने के लिए तैयार नही थे। और, जुल्म के बिना चम्पारन का कारबार मुनाफा नही दे सकता था। वह जुल्म अब बन्द हो गया। नीलवरों ने यह बात जल्द समझ ली। तीन-चार बरसो के अन्दर सबने अपनी जमीन और कोठी बेच डाली। जो कुछ मिला, लेकर चले गये। उनकी जमीन रैयतों के हाथ आ गई। अब वे उसको आबाद कर रहे है। जहां नीलवरो के सुन्दर बगीचे और बंगले थे, वहां आज रैयतों के मवेशी बांधे जा रहे है। उन सत्तर-पचहत्तर कोठियों में से इक्की-दुक्की आज भी खड़ी हैं। वहां अब जुल्म नहीं हो सकता। वे उस सांप की तरह अपने दिन बिता रही हैं, जिसके दात तोड़ दिये गए हैं, जो अब भी कुछ फुफकार तो सकता है, पर किसीको काट नही सकता!

चम्पारन में सत्याग्रह का हमने वही रूप देखा, जो गांधीजी ने, थोड़े ही दिनों के बाद, देशव्यापी रूप में, बहुत बड़े पैमाने पर, जारी किया। एक जिले के दुःख दूर करने में प्रायः एक बरस लग गया था। सारे हिन्दुस्तान को स्वतन्त्रता प्राप्त करने में उसी अनुपात से जो समय लगना चाहिए, वह शायद अभी तक पूरा नही हुआ है।

चम्पारन के आन्दोलन मे कोई मतभेद नही था। गांधीजी की बाते सबने मानी। उनके विरुद्ध किसीने, चाहे वह रैयत हो या हमारे-जैसा कार्यकर्त्ता, कोई आचरण नही किया। गांधीजी नीलवरो का जुल्म रोकना चाहते थे; पर उनसे किसी प्रकार का द्वेष-भाव नही रखते थे। हम लोगों के मन मे कोई ऐसा भाव नही था। एक प्रकार से सत्याग्रह का एक अच्छा नमूना वहा पेश हुआ। इसीलिए नतीजा भी बहुत ही सतोषप्रद हुआ। मेरा विश्वास है कि भारतवर्ष के स्वराज्य का मामला भी इसी तरह हल हो जायगा। बहुत-कुछ छोड़कर सुलह करने पर भी हम सोलह आने जल्द ही ले सकेंगे। कुछ हद तक ऐसा ही हुआ भी है। देर की कई वजहे है। क्षेत्र बहुत विस्तृत है। सारी जनता में वह अटल विश्वास नही है, जो चम्पारन के रैयतों में था। निःसंकोच वफादार काम करनेवाले भी काफी नही है। देश ने अहिंसा को उस हदतक नही पाला है, जिस हदतक चम्पारन मे उसका पालन किया गया था, तथापि जो पिछले पच्चीस बरसों मे हुआ है वह कुछ कम नही है। गाधीजी का चमत्कार भारतवर्ष मे लोग तब समझेंगे जब हमारा काम पूरा हो जायगा। चम्पारन मे भी हम पूरे सन्तुष्ट नही थे। पर जब तीन-चार बरसों के भीतर ही नीलवर चले गये तब उस चमत्कार का पूरा फल हम देख सके। भारत में काम तो हुआ है। ब्रिटिश का रोब तो बहुत अंशों में खतम हो गया है। पर अभी पूरा फल हम नही देख सके है। इसलिए उस चमत्कारकी महिमा का अनुभव नहीं कर सके हैं।

चम्पारन में हमारे जीवन पर भी बहुत बड़ा असर पड़ा। वही हम लोगों ने जाति-पाति का भेद छोड़ा। उस समय तक मै जाति-भेद को बहुत मानता और बर्तता था। ब्राह्मण को छोड़कर किसी दूसरी जाति के आदमी का छुआ हुआ दाल-भात इत्यादि, जिसे यहा कच्ची रसोई कहते है, कभी नही खाया था। गांधीजी ने कहा कि यहां अलग-अलग चौका करते रहोगे तो कैसे काम चलेगा—जो लोग एक काम मे लगे है मान लो कि वे सब एक जाति के हैं। बस हम सब लोग एक-दूसरे की बनाई रसोई खाने लगे—यद्यपि हममें कई जातियों के लोग थे। जिन्दगी में सादगी भी बहुत आ गई। हम लोगों के साथ नौकर थे। वे सब एक-एक करके हटा दिये गए।

केवल बर्तन साफ करने के लिए एक नौकर रह गया। अपने हाथों कुएं से पानी भर लेना, नहाना, कपड़े साफ कर लेना, अपने जूठे बर्तन धो लेना, रसोई-घर मे तरकारी बनाना, चावल धोना इत्यादि सब काम खुद किया करते। कही जाना हो तो रेल के तीसरे दर्जे में सफर करना और जहातक हो सके, पैदल ही चलना—सब कुछ वहा हमने गांधीजी से सीखा। आराम का जीवन छोड़ देना पड़ा। जबतक हम चम्पारन में रहे, इसी तरहसे रहे।

यह काम पूरा हो जाने पर गांधीजी ने चम्पारन के तीन हिस्सों मे तीन स्कूल खोले। मैं उन स्कूलों मे से किसी मे न रह सका। पटने वापस आकर मैं फिर अपनी वकालत मे लग गया। बराबर उन स्कूलों को देखने के लिए साल मे एक या दो बार जाया करता था।

चम्पारन मे अन्य प्रान्तो के कुछ अच्छे त्यागी कार्यकर्त्ताओ से भी हम लोगो का परिचय हो गया। कुछ तो ऐसे आये, जो आज तक देश के काम मे उत्साहपूर्वक लगे हुए है। उस समय की मुलाकाते और सब अनुभव बहुत कीमती निकले, जिनमे आज भी हम बहुत-कुछ सीख सकते हैं।

चम्पारन मे जो विजय मिली, उसका असर बिहार पर बहुत पड़ा। बिहार एक पिछड़ा हुआ सूबा था, जहा सार्वजनिक जीवन का स्रोत बहुत पतला बहा करता था। शिक्षा का भी पूरा अभाव था। सभी बातो मे बिहार के लोग अन्य सूबो के लोगों की अपेक्षा बहुत पिछड़े समझे जाते थे। बिहार, अंग्रेजी शासन मे, आरम्भ से ही, बगाल के साथ था। वह बरसो बगाल का एक हिस्सा बना रहा। यहांतक कि बिहार का अलग नाम तक लोग भूल गये थे। बगाल उन्नत सूबा था, पर उस उन्नति का प्रभाव बिहार तक नही पहुच पाया था। अंगरेजी शिक्षा मे भी बिहार इतना पिछड़ा था कि बिहारी लोग सरकारी दफ्तरो तक नही पहुंच पाते थे, ऊंचे ओहदो की कौन कहे।

बीसवी शताब्दी के शुरू से ही कुछ बिहारियों के हृदय में बिहार की शोचनीय दशा देखकर ग्लानि पैदा हुई। फलतः बिहार को बंगाल से अलग करने का आन्दोलन आरम्भ हुआ। इस आन्दोलन के प्रमुख नेता बाबू महेश-नारायण (स्वर्गीय) और डाक्टर सच्चिदानन्द सिनहा थे। डाक्टर सिनहा के प्रयत्न से ही बिहार काग्रेस का एक अलग सूबा माना गया। सन् १९११ मे जब सम्राट् पंचम जार्ज दिल्ली दरबार के लिए आये तो बिहार को एक अलग सूबा बनने की घोषणा कर गये। यह घोषणा बंग-विच्छेद के फलस्वरूप हुई थी। पूरब और पच्छिम का बंगाल फिर एक कर दिया गया। बिहार और उड़ीसा को मिलाकर एक अलग सूबा कायम कर दिया गया। अलग सूबे की बात उठते ही कुछ नवजीवन का संचार हुआ था। उसके

चिह्न देखने में आ रहे थे। बिहारी छात्र-सम्मेलन का जिक्र ऊपर आ चुका है। बिहार-प्रान्तीय राजनैतिक कान्फ्रेंस भी हर साल होने लगी थी। बिहार के कालेजों और स्कूलों मे विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने लगी थी। उच्च शिक्षा के अभिलाषी छात्र अधिकाधिक संख्या में कलकत्ते में जाने लगे थे। नया सूबा हो जाने के बाद सब प्रकार से सूबा (बिहार) आगे बढ़ने लगा था। पर इतना होते हुए भी १९१७ तक देश-सेवा का कोई संगठित काम नियमित रूप से नही चलता था। उन दिनो की कांग्रेस-कमिटी, आज की कमिटी के मुकाबले मे, एक खेल-तमाशे की चीज थी। मैं उन दिनों प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी का मंत्री था। जो प्रतिनिधि चुने जाते थे—विशेष करके जो अखिल भारतीय काग्रेस-कमिटी के सदस्य चुने जाते थे—वे ही कुछ चन्दा देते थे, जिससे प्रान्तीय कमिटी का काम चला करता था और ऑल इण्डिया कमिटी का सालाना चन्दा दिया जाया करता था। वह सालाना चन्दा हमेशा बाकी पड़ा रहता था। मुझे स्मरण है कि उन दिनो के कांग्रेस-मंत्री श्रीयुत सुब्बाराव पटने कभी-कभी आया करते। उनके आने पर प्रमुख लोग आपस मे मिलकर कुछ जमा करके दे दिया करते। नवाब सरफराज हुसेन खा बहुत दिनों तक प्रान्तीय कमिटी के सेक्रेटरी थे। मै भी उनके साथ सेक्रेटरी था। आफिस का खर्च बहुत करके हम दोनो अपने पास से ही चला लेते थे। इससे यह न समझना चाहिए कि आफिस का खर्च कुछ बड़ी रकम का था। केवल डाक और तार मे ही खर्च पड़ता था, जो हम लोग आसानी से कर सकते थे।

ऐसा ही सार्वजनिक संगठन बिहार मे उस समय था, जब महात्मा गांधी चम्पारन में पहुंचे। उन दिनो शायद एक भी ऐसा आदमी न था, जो अपना सारा समय देकर देश का काम करता हो। जो लोग काग्रेस के सदस्य थे, अथवा दूसरे प्रकार से सार्वजनिक जीवन के नेता थे, वे अपने-अपने काम करते हुए देशसेवा का काम भी करते थे। बहुत करके ऐसी ही अवस्था दूसरे सूबों की भी रही होगी। पर दूसरे सूबो मे कुछ कार्यकर्ता तो ऐसे जरूर थे, जो देशसेवा में अपना सारा समय देते रहे। महात्माजी के साथ जितने लोग यहा पहुंचे, प्राय. सभी वकालत-पेशे के लोग थे। इनमे से एक ने भी पेशा छोड़ने का इरादा करके उनके साथ काम शुरू नही किया था। हम तो यह सोचकर गये थे कि चन्द दिनों में फुर्सत हो जायगी। पर वहां पहुंचने पर देखा कि काम बढ़ता ही जाता है। उसको पूरा किये बिना वहां से हटना भी कठिन था। इसलिए दस-पांच दिनों के इरादा से गये हुए लोग प्रायः दस महीनो तक चम्पारन मे रह गये। काम पूरा होने पर जब हम अपने-अपने स्थान को वापस गये, तो अपने साथ नये विचार, नई स्फूर्ति

और नये कार्यक्रम लेते गये। सारे सूबे मे एक नया जीवन आ गया, जिसका प्रभाव थोड़े ही दिनों मे देखने में आया। हम लोगों की आंखे बहुत करके खुल गईं। अब हम समझने लगे कि जबतक हममें से कुछ लोग ऐसे न निकलेगे, जो अपना सारा समय देश के काम मे लगावे, तबतक बिहार का सार्वजनिक जीवन ढीला ही रहेगा।

एक दिन गांधीजी के साथ मैं एक गांव से वापस आ रहा था। रास्ते में बाते होने लगी। मैंने पूछा कि आप सारे देश मे घूमते-फिरते रहते है—किस जगह को देशसेवा की दृष्टि से आप सबसे ऊपर स्थान देते है। उन्होंने प्रायः सभी सूबो की बाते कही। अन्त में कहा कि देश-सेवक के लिए 'पूना' तीर्थ-स्थान है। वहा एक शहर के अन्दर इतने त्यागी लोग है, जितने और किसी स्थान में नही। वहा की सस्थाएं, त्याग की दृष्टि से, देश के लिए आदर्श उपस्थित करती है—नई सस्थाएं भी बराबर कायम होती जा रही है।

हमने पहले भी फर्गुसन-कालेज का नाम सुना था। महात्माजी से बातें करने के बाद कौतूहल और भी बढ़ गया कि एक बार पूना जाना चाहिए। हम लोग चम्पारन मे ही बैठकर विचार करने लगे कि वहा का काम खतम करके एक ऐसी सस्था कायम करनी चाहिए, जिसमे त्यागी लोग केवल निर्वाह-व्यय लेकर देश-सेवा मे लगे रहे। विचार हुआ कि फर्गुसन-कालेज के ढग का एक कालेज स्थापित किया जाय। बाबू ब्रजकिशोर ही हम सबके नेता और उत्साह दिलानेवाले थे। उन्होंने इस बात को इतनी दूर तक बढ़ाया कि हम लोगो ने अपने-अपने नाम भी लिखा दिये कि जब यह संस्था स्थापित होगी तो हम भी इसीमे निर्वाह-व्ययमात्र लेकर शरीक होगे। कालेज के लिए रुपये जमा करने की भी बात हुई। कुछ लोगो से वादा भी लिया गया।

महात्माजी से बातें करने पर उन्होंने संस्था की बात तो पसन्द की, पर उसको कालेज का रूप देना उतना पसन्द नही किया। हम लोग इस विषय पर विचार करते रहे। जब १९१८ मे काग्रेस का विशेष अधिवेशन बम्बई मे हुआ, मैं वहा गया। वहा से मै पूना भी चला गया। वहां की सब सस्थाओं को अच्छी तरह देखा। उनके संबंध में काफी जानकारी भी हासिल की।

: २४ .

१९१७ की कलकत्ता-कांग्रेस से दिल्ली-कांग्रेस तक

१९१७ में, जब हम लोग चम्पारन में काम कर रहे थे, देश में होमरूल का आन्दोलन जोरो से चल रहा था। मैं ऊपर कह चुका हू कि महात्माजी ने हम लोगों को किसी भी आन्दोलन मे भाग लेने से रोक रखा था और कहा था कि चम्पारन का काम ही होमरूल का सबसे बड़ा काम है। इसी बीच में श्रीमती एनी बेसेण्ट नजरबंद की गई। इससे आन्दोलन मे अधिक जोर पहुचा। हम लोग ये सब बाते अखबारो मे पढ़ते, पर मन चम्पारन मे ही था। किसी और चीज की ओर हम ध्यान ही नही बटाते थे। चम्पारन छोडकर बिहार के और जिलों मे होमरूल का आन्दोलन चला। मैं समझता हूं कि बिहार में यह पहला ही अवसर था जब पढे-लिखे लोग गांवो मे जाकर सभाएं करने लगे, जनसाधारण से राजनीति की बाते कहने लगे। इसका असर अच्छा पड़ा था।

इसी साल बिहार के शाहाबाद-जिले मे एक बहुत बड़ी दुर्घटना हो गई। बकरीद के अवसर पर, गाय की कुर्बानी के कारण, हिन्दुओं और मुसलमानों मे झगड़ा हुआ। बात बहुत बढ गई। जिले के बहुत बड़े हिस्से में, आसपास के गया और पलामू जिलो मे भी, बहुत बड़ा फसाद हो गया। कुछ दिनो तक तो ऐसा मालूम होता रहा कि मानो अगरेजी राज है ही नही। कुछ हिन्दू पिटे; पर मुसलमानो के साथ बड़ी क्रूरता हुई। बहुतेरे मारे गये। बहुतेरों के घर लूटे गये। अन्त मे जब मिलिटरी (फोज) पहुची तो हजारों हिन्दू गिरफ्तार हुए। उन लोगो पर मुकदमे चलाये गए, जो बहुत दिनो तक चलते रहे। हजारो को कड़ी सजाएं हुई। नतीजा यह निकला कि पहले तो मुसलमान तबाह हुए और पीछे हिन्दू भी तबाह हुए। उस समय की दुर्घटनाओ की याद आजतक दोनों सम्प्रदायों को है। उन दिनों सार्वजनिक जीवन इतना उन्नत नही था कि दोनों के बीच मेल कराने का या फसाद रोकने का कोई प्रयत्न किया जाय। जब मुकदमे चलने लगे तब वकीलों ने मुजरिमों की थोड़ी-बहुत सहायता की। पर इससे अधिक कुछ नही हुआ। मेरा इस दुर्घटना से कोई सीधा संबंध न रहा। पर वहां की बातों का दिल पर असर जरूर पड़ा।

कलकत्ते की कांग्रेस में बिहार से—विशेष करके चम्पारन से—प्रतिनिधियों की बड़ी टोली गई। मैं एक बड़ी टोली के साथ वहां पहुंचा। सेठ जमनालाल बजाज ने महात्मा गांधी के ठहरने का प्रबंध किया था। चम्पारन की टोली भी वहीं जा जुटी। सेठजी से पहली मुलाकात शायद वहीं हुई। जहांतक मुझे याद है, महात्माजी ने इस कांग्रेस में कोई विशेष भाग नहीं लिया।

जब हम चम्पारन में थे तभी भारत-सचिव मिस्टर माण्टेग्यू का वह वक्तव्य निकला, जिसमें ब्रिटिश गवर्नमेण्ट की ओर से उन्होंने भारत में आहिस्ता-आहिस्ता करके प्रजातंत्र स्थापित करने का वादा किया था। उसके बाद वह भारत में आये। कुछ दिनों के बाद उनकी और लार्ड चेम्सफोर्ड की भारत में राजनैतिक सुधार-सम्बन्धी रिपोर्ट निकली। इस रिपोर्ट के निकलने पर सारे देश में इसपर विचार होने लगा। सभी राजनैतिक व्यक्ति और दल अपना-अपना मत प्रकाशित करने लगे। बिहार में भी इसकी चर्चा होने लगी। हम लोग चम्पारन के काम से मुक्त हो चुके थे। इसलिए इसपर ध्यान देने का अवसर था। मेरा अपना स्वभाव शुरू से ही नरम है। उग्र विचार जल्दी हृदय में उठते ही नहीं है। इस विषय पर विचार करने में मैं नरम-दल के पक्ष का ही समर्थक था। बिहार में इसपर विचार करने के लिए प्रान्तीय कान्फ्रेंस की बैठक हुई। उसमें मैंने भाग लिया; पर हमेशा उग्र विचारों के विरोध में ही मैं रहा। मैं समझता था कि इसमें अभी इतनी शक्ति नहीं आई है कि गवर्नमेण्ट पर जोर देकर हम कुछ भी करा सकते है। इस बात का भी मुझे पूरा विश्वास न था कि देश के शासन का सब भार अगर हमारे ऊपर आ जाय तो हम उसका सुचारु रूप से वहन कर सकेंगे। इसलिए मैं उस रिपोर्ट को ठीक मानता था। उसके आधार पर जो कुछ भी हो सकता था, मैं उसे स्वीकार करने के लिए तैयार था। मैं यह पसन्द नहीं करता था कि उसकी टीका-टिप्पणी ऐसी हो कि जिससे हमारी अनिच्छा या नामंजूरी समझी जाय। प्रान्तीय कान्फ्रेंस में मतभेद रहा। जहातक मुझे स्मरण है, यही विचार स्वीकृत भी हुए। हां, जहा-तहा कुछ सुधार सुझाये गए।

इसी रिपोर्ट पर विचार करने के लिए बम्बई में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ। मै वहां भी गया। अपनी आदत और स्वभाव के अनुसार मैंने बहस में कोई भाग नहीं लिया। पर विषयनिर्धारिणी समिति और कांग्रेस की बहसों को खूब गौर से सुनता रहा। पटना के नामी बैरिस्टर सैयद हसन इमाम ही सभापति थे। उनका भाषण बहुत जबरदस्त हुआ था। कांग्रेस की कार्रवाई उन्होंने बड़ी योग्यता से चलाई। बम्बई में उनका

स्वागत भी बड़ी शान के साथ हुआ। मैने विषय-निर्धारिणी समिति में देखा कि कई बार ऐसा मौका आया जब दो दलों के बीच झगड़ा होता दीख पड़ा। एक ओर से लोकमान्य तिलक गर्म विचारों के समर्थक थे, दूसरी ओर से अन्य नेता बहस किया करते थे। इन बड़ो के झगड़े का निपटारा बीच-बीच में अपने दो-चार शब्दों से अथवा भाव-भंगी से सभापति करते रहे।

१९१८ में एक और महत्त्व की घटना हुई। जब महात्माजी चम्पारन में थे तभी गुजरात के 'खेड़ा' जिला के किसानों में लगान के सम्बन्ध मे आन्दोलन खड़ा हुआ। महात्माजी चम्पारन जाने के पहले ही साबरमती में, झोपड़ों मे, सत्याग्रह-आश्रम एक प्रकार से स्थापित कर चुके थे। उनका विचार था कि चम्पारन से दस-पांच दिनो मे लौटकर उसका बाजाब्ता उद्-घाटन करेगे। पर जब चम्पारन मे रुक जाना पड़ा तो उन्होने खबर दे दी कि आश्रमी लोग वहां का काम आरम्भ कर दे। मेरी बहुत लालसा थी कि मैं भी जाकर आश्रम देखू।

१९१८ के अप्रैल में अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन इन्दौर मे हुआ। महात्मा गांधी उसके सभापति हुए। हम लोग बिहार से कुछ प्रतिनिधि गये। चम्पारन के बाद हम यह समझ बैठे थे कि महात्माजी पर हमारा विशेष अधिकार हो गया है। इस खयाल से इन्दौर मे हम लोग सभापति के साथ ही ठहरे। उस सम्मेलन मे बडे मार्के की बात यह हुई कि दक्षिण भारत मे हिन्दी-प्रचार का काम आरम्भ करने का निश्चय हुआ। महात्माजी के लिए यह कोई नई बात नही थी। उन्होने चम्पारन से ही उस काम को शुरू कर दिया था। एक बार स्वामी सत्य-देवजी वहा उनसे मिलने आये। महात्माजी ने उनको राय दी कि कुछ दिनों तक साबरमती-आश्रम मे ठहरने के बाद वह दक्षिण भारत में हिन्दी-प्रचार करने का काम अपने हाथ में लें। इन्दौर-सम्मेलन के कुछ पहले से ही दक्षिण में यह काम शुरू हो गया था। स्वामी सत्यदेव के साथ उन्होंने अपने कनिष्ठ पुत्र देवदास गाधी को इस काम के लिए भेज दिया। इन्दौर-सम्मेलन में जो काम आरम्भ हुआ, उसका विस्तार आज सारे दक्षिण भारत में हो गया है। वहां लाखों स्त्रियो और पुरुषों ने हिन्दी सीख ली है।

सम्मेलन से महात्माजी के साथ मैं सीधे साबरमती चला गया। अभी आश्रम के मकान नही बने थे। बांस की चटाइयों की झोपड़िया थी। उन्ही-में आश्रमवासी रहा करते थे। मुझे आश्रम में अधिक ठहरने का मौका नहीं मिला। महात्माजी तुरन्त 'खेड़ा' के गावों में चले गये। वहां लगान-बन्दी का काम शुरू हो गया था। सरदार वल्लभभाई, श्री शंकरलाल बैंकर, श्रीमती अनुसूयाबाई, साराभाई और दूसरे कार्यकर्त्ता गांधीजी के नेतृत्व में

वहां प्रचार-कार्य कर रहे थे। मुझे महात्माजी के साथ दो-तीन दिनों तक वहां के गांवों मे सफर करने का मुअवसर मिला। गुजरात के लोगो के साथ वह घनिष्ठ सम्बन्ध आरम्भ हुआ, जिसका सूत्रपात चम्पारन में गांधीजी के साथ गये हुए और उनके भेजे हुए लोगों से मुलाकात होने ही पर हो गया था। महात्माजी पैदल ही सफर करते थे। मुझे भी वैसा ही करना पड़ा। उन दिनों वह जूते नही पहनते थे। अप्रैल के अन्त में गर्मी काफी पड़ रही थी। एक दिन, प्रायः दो पहर हो चुके थे, हम लोगों को रेतीले रास्ते से जाना था। बालू गर्म हो गई थी। पैर जल रहे थे। पर गांधीजी ने परवा नहीं की। जहा जाना था, हम लोग चले ही गये। खेड़ा का सत्याग्रह सफल हुआ। चम्पारन और खेड़ा, दोनों का काम प्रायः एक बरस के भीतर ही खतम हो गया।

मैं फिर अपनी वकालत मे लग गया। बीच-बीच मे कान्फ्रेन्सों और कांग्रेस मे शरीक होना इन दिनों वकील अपना फर्ज समझते थे। मैं भी उन्ही-मे एक था। चम्पारन के बाद विचारों मे बहुत परिवर्तन आ गया था। इस प्रकार के काम को छुट्टियों के दिनों मे केवल मनोरंजन का विषय न मान-कर इसमें अधिक समय देने की जरूरत महसूस करने लगा था। पर अभी कोई रास्ता निर्धारित नही था। इसलिए अभी पुराने ढर्रे पर ही काम होता रहा। इन्दौर के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, बम्बई मे कांग्रेस के विशेष अधि-वेशन और फिर दिल्ली मे उसके दिसम्बरवाले साधारण अधिवेशन में शरीक हुआ। बस इतने ही से अपना कर्त्तव्य पूरा समझा।

गांधीजी के चम्पारन जाने के बाद बिहार का नाम जहां-तहां सुना जाने लगा था; पर अभी उसको कोई विशेष स्थान नहीं मिला था। इसी लिए कलकत्ते की कांग्रेस मे कोई अलग स्थान न रहने के कारण हम लोगों को अधिकतर गांधीजी की ही छावनी मे ठहरना पड़ा।

दिल्ली-कांग्रेस मे एक बड़ी पुर-मजाक घटना हुई। हम लोग वहां पहुंचे। स्टेशन पर वालण्टियर मिले। पर उनमे से कोई यह न बता सका कि बिहार के प्रतिनिधियों के ठहरने का स्थान कहां है। नायक ने कहा कि आप लोग पटौदी-हाउस मे चले जाइये। वहां भी हम लोग पहुंचे। अभी प्रायः सवेरे के पांच बजे थे। कुछ रात थी। सर्दी काफी थी। एक छोटे कमरे मे जाकर हम पन्द्रह बीस आदमी बैठे रहे। जब सवेरा हो गया और दरियाफ्त किया तो वहां भी कोई हम लोगों के लिए स्थान नही बता सका। हम लोगों ने सोचा कि बस अब यहीं ठहरना चाहिए। दो-मंजिले पर एक अच्छा कमरा था। उसे भी हम लोगों ने दखल कर लिया। कुछ देर के बाद स्वागत-समिति के कोई साहब आये। उन्होने हुकुम दिया कि हम लोगों को

मकान खाली कर देना चाहिए। यह पूछने पर कि आखिर हम लोग कहां ठहरें, उन्होंने इतना ही उत्तर देना काफी समझा कि वह मकान बंगाल के डेलिगेटों के लिए है—ऊपर का कमरा श्रीयुत बी० चक्रवर्ती और श्रीयुत सी० आर० दास के लिए है, इसलिए हम कही दूसरी जगह जाकर ठहरें। बहुत कहने पर भी उन्होने हमारे लिए कोई दूसरी जगह ठीक कर देने का भार अपने ऊपर लेना या किसी दूसरे को सुपुर्द करना जरूरी नहीं समझा। हम लोगो ने भी निश्चय कर लिया कि जबतक दूसरी जगह ठीक न हो जाय, हम भी हटेंगे नही। कुछ देर के बाद हम लोगो को फिर हुकुम मिला कि यहा से चले जाइये। हमने साफ इन्कार कर दिया। गुस्से मे आकर उस सज्जन ने हुकुम दिया कि हम अगर उनकी बात नही मानेंगे, तो हम लोगों के लिए स्वागत-समिनि के चौके मे भोजन का प्रबन्ध नहीं किया जायगा। यह धमकी हम लोगो को पसन्द आई। स्वागत-समिति मे प्रायः दो रुपये रोजाना देना होता। हमने तुरन्त कुछ हाडिया मंगा ली और ईटो के चूल्हे बनाकर खिचड़ी पका ली, जिसमे खर्च शायद चार-छ आने से अधिक न पडा। बस वही हम लोग जम गये। बहुत जोर लगाया गया, पर जब अपना खास चूल्हा जल चुका था, तो हटना कौन है। अन्त में लोग आजिज आकर हम लोगो को छोड़कर चले गये।

श्री सी० आर० दास मुझे कलकत्ते की वकालत के जमाने से ही जानते थे। कुछ मुकदमों मे हमे एक साथ काम करने का मौका मिला था। उनसे कांग्रेस में भेंट हुई। हँसते-हँसते उन्होने कहा—"सुना है कि मेरे लिए जो कमरा था, उसे तुम लोगों ने जबरदस्ती अपने कब्जे मे कर लिया है।" मुझे बहुत शर्म मालूम हुई। मैने सब बाते कही। यह भी कहा कि आप अगर चाहें तो हम लोग तुरन्त कमरा खाली कर दें। उन्होने कहा कि तुमने ठीक ही किया। जब तुम्हारे लिए कोई जगह नही थी तो तुम दूसरा कर ही क्या सकते थे। अपने बारे मे उन्होने कहा कि मेरे लिए चिन्ता मत करो, मैं बहुत आराम से होटल में ठहर गया हूं।

इस प्रकार १९१८ समाप्त हुआ। फिर हम पटने वापस आकर वकालत करने लगे।

: २५ :

प्रिय मित्र की मृत्यु

रायबहादुर हरिहरप्रसादसिंह पढने के समय से ही मुझे जानते थे। जब मै विलायत जाने की बात सोच रहा था, तब उन्होंने कुछ सहायता भी की थी। मैंने जब वकालत शुरू की तो उन्होंने मुझे अपना वकील बना लिया। हाइकोर्ट मे उनके जितने मुकदमे जाते थे, उनमे मै ही वकील हुआ करता था। उनकी एक बहुत बडी सम्पत्ति बरमा मे थी। उस सम्पत्ति के सम्बन्ध में डुमराव के महाराजा बहादुर ने अदालत मे दावा कर दिया। उनकी जो-कुछ सम्पत्ति बिहार मे थी, उसे भी उस दावे मे शामिल कर लिया। दोनों ओर से कई बडे-बडे और नामी वकील रखे गये। मुझे भी बाबू हरिजी ने काम करने के लिए कहा। १९१८ की दुर्गापूजा की छुट्टियों मे प्रयाग मे, जहा वह उन दिनो रहा करते थे, कागजो को पढने के लिए मुझे बुलाया। मै छुट्टियो मे प्रयाग मे ही कागज पढता रहा। मेरे मित्र बाबू वैद्यनाथनारायणसिंह भी छुट्टियो मे प्रयाग मे ही, दारागंज मे किराये पर एक मकान लेकर, अपने कुटुम्ब के साथ दिन बिता रहे थे। हम दोनों अक्सर सुबह-शाम टहलने के समय मिला करते थे।

एक दिन दोपहर को ही वह मेरे यहा चले आये। बहुत तरह की बातें करने लगे। प्राय: सन्ध्या तक मै मुकदमे का कुछ काम न कर सका। चलने के समय फिर दूसरे दिन आने को कह गये। दूसरे दिन पहले दिन से भी पहले ही चले आये। फिर बहुत-सी बेतुकी बाते करते रहे। मुझे सन्देह हुआ कि इनका मिजाज ठीक नही है। मैंने एक मित्र के उन्माद-रोग का आरम्भ देखा था। वैसे ही लक्षण इनमें भी दिखाई देने लगे। जाते समय मैं भी उनके साथ हो लिया। उनके घर तक साथ गया। वहां पूछने से मालूम हुआ कि कई दिनो से रात को वह सोते बहुत कम है और इसी प्रकार दिन-रात कुछ बोलते रहते है। मेरा भय और भी अधिक बढ़ गया। तीसरे दिन तो यह देखा कि वह एकदम पागल हो गये हैं। मैं उनके ही साथ रहने लगा। उनके भाई को तार देकर बुला लिया। दिन-दिन उनकी हालत बिगड़ती गई।

एक दिन उन्होने बक्स खोलकर वकालत का 'गाउन' निकाला। उसे टुकड़े-टुकड़े करके फाड़ डाला। युनिवर्सिटी की किसी परीक्षा में उनको

सोने का एक पदक मिला था। उसे उन्होने इसी तरह निकालकर फेंक दिया। अपनी छोटी बच्ची को, जो उनकी सबसे छोटी सन्तान थी, एक दिन मार डालने पर उतारू हो गये।

हम लोग बहुत घबराये। वहां जो कुछ चिकित्सा हो सकी, की गई, पर राय ठहरी कि इन्हे पटने ले चलना ही अच्छा होगा। दो-चार दिनो मे कुछ अच्छे होते मालूम हुए। एक दिन यह निश्चय हुआ कि मैं उनके साथ पटने चला जाऊं और उनके छोटे भाई जगन्नाथजी परिवार को लेकर पटने पहुंचे। हाइकोर्ट की छुट्टिया समाप्त हो गई थी। पटने पहुचना हम दोनो के लिए आवश्यक हो गया था। छुट्टियो में बराबर प्रयाग मे ही रहने के कारण घर के लोगो से मै मिला भी न था; क्योकि मेरे परिवार के लोग छपरे मे या मेरे गाव जीरादेई मे ही रहा करते थे, मेरे साथ पटने में नही। मैं सोचता था कि दो-चार दिनो के लिए, छुट्टी के अन्त मे, घर जाकर उनसे मिल आऊंगा; पर वैद्यनाथबाबू की अस्वस्थता के कारण यह विचार छोड देना पड़ा था।

जब हम दोनो प्रयाग से पटने के लिए रवाना हुए तब वैद्यनाथबाबू बिल्कुल स्वस्थ-से मालूम पडते थे। कपड़े इत्यादि ठीक तरह से पहनकर होश की बाते करते-करते मेरे साथ रेल पर सवार हुए। रास्ते में उन्होने मुझसे पूछा कि मैं घर जाना चाहता था, तो उस विचार को क्यो छोड दिया और कहा कि अब उनकी तबीयत बिल्कुल ठीक हो गई है, कोई चिन्ता की बात नहीं है। जो कुछ हुआ था, उसका स्मरण करके उन्होंने अफसोस और लज्जा का भाव जाहिर किया तथा मुझसे कहा कि मैं सीधा घर चला जाऊं और वह पटने चले जायगे, इसमे कोई हर्ज नही है।

मैं उनकी बाते सुनकर बहुत खुश हुआ। मुझे विश्वास हो गया कि उनकी तबीयत ठीक हो गई। मैं उस समय तक lucid moment (पागलपन के बीच कुछ चेतन क्षण[1]) का अर्थ नही जानता था। काशी स्टेशन पर उनको पटने की गाडी मे सवार कराकर मैं छपरे की गाड़ी से छपरे चला गया। वह दूसरे दिन सवेरे जब पटने पहुचे तो उनकी हालत पहले की तरह बिलकुल पागल-जैसी हो गई थी। स्टेशन के कर्मचारियो ने उन्हें पहचाना। ऐसी अवस्था में उनको अकेला देखकर कुछ मित्रों को खबर दी। वे लोग आये और उनको किसी तरह घर ले गये। दूसरे दिन जब मैं पटने वापस आया तो मैंने उनको बुरी दशा मे पाया। मुझे बहुत अफसोस हुआ कि मैंने

[1] वे क्षण जब पागलपन के बीच-बीच में पागल की दशा कभी-कभी बिलकुल अच्छे आदमी की-सी हो जाती है।

बड़ी गलती की थी। उनसे मुलाकात हुई तो उन्होंने बड़ी हँसी उड़ाई। कहा कि आप अपनेको बड़ा होशियार समझते हैं, मुझे पहरे में रखने के लिए—जगन्नाथजी के साथ षड्यंत्र करके—मेरे साथ आये थे; कैसा चकमा देकर बेवकूफ बनाया! इतना कहकर हँसने लगे। फिर वही बेतुकी बक-झक आरम्भ कर दी।

पटने मे भी हम लोग बराबर देख-रेख करते रहे; पर वह कभी पूरी तरह स्वस्थ नहीं हुए। कभी-कभी अच्छे हो जाते, यहांतक कि वह हाइकोर्ट जाने लगते। 'पटना-लॉ-वीकली', जिसको मैं और वह साथ मिलकर निकाला करते थे, निकालने भी लगते। पर बीमारी ज्यों-की-त्यों बनी रहती। कुछ दिनों के बाद उनकी आकस्मिक मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु का सदमा मेरे दिल पर बहुत पड़ा। पर वह जिस अवस्था में थे, उसमे रहने से कहीं अच्छा देहान्त हो जाना था। उनके लिए यह मृत्यु एक प्रकार की मुक्ति ही थी। उनका जितना मेरे साथ प्रेम था और जितना उपकार उन्होंने मेरे साथ किया था, वह जब स्मरण हो आता है तो आज भी दुःख होता है; और इस बात का पश्चात्ताप होता रहता है कि उनके लिए अथवा उनके कुटुम्ब के लिए मैं कुछ भी न कर सका।

: २६ :

प्रथम महायुद्ध के बाद

सन् १९१८ के नवम्बर मे यूरोप का महायुद्ध समाप्त हो गया। १९१७ से ही भारतवर्ष मे राजनीतिक जागृति की लहर उठने लगी थी। चम्पारन में गांधीजी के पधारने और रैयत की सेवा करने का असर चारो ओर पड़ रहा था—यद्यपि समाचार-पत्रो में बहुत कम खबरे छपने के लिए दी जाती थी और कही भी सभाओ मे व्याख्यान देने की हम लोगो को मनाही थी। श्रीमती एनी बेसेण्ट ने 'होमरूल-लीग' कायम करके सारे देश मे १९१७ मे ही बड़ी हलचल मचा दी थी। प्रायः सभी प्रान्तो मे उसकी शाखाएं कायम हो गई थी। लोग खूब जोरो से प्रचार के काम मे लग गये थे। सरकार इससे कुछ घबरा-सी गई। उसने श्रीमती एनी बेसेण्ट को, उनके दो साथियो के साथ नजरबन्द कर दिया था। इसपर आन्दोलन ने और जोर पकडा। ब्रिटिश सरकार अपनी दु-धारी नीति को १९१७ मे भी चला रही थी। एक ओर उसने इस तरह आन्दोलन की मुख्य अधिष्ठात्री को नजरबन्द किया, दूसरी ओर पार्लामेण्ट मे नये नियुक्त भारत-मत्री श्री माटेग्यू ने एलान किया, जिसमें वादा किया गया कि भारत को आहिस्ता-आहिस्ता करके शासन का अधिकार दिया जायगा; पर कब और कितना अधिकार भारतीयो के हाथ मे आवेगा, इसका निर्णय पार्लामेण्ट ही कर सकेगी! इसके बाद श्री माटेग्यू भारतवर्ष मे आये। यहा के वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड के साथ भारतीय नेताओ से मिले। दोनों ने मिलकर एक रिपोर्ट तैयार की, जिसके आधार पर पार्लामेण्ट ने १९२० मे एक कानून पास किया। श्रीमती एनी बेसेण्ट भी कुछ दिनों बाद छोड दी गई। वह १९१७ मे कलकत्ते मे होनेवाले काग्रेस-अधिवेशन की सभानेत्री चुनी गई। उत्साह बहुत था। हम लोग भी चम्पारन से गांधीजी के साथ ही काग्रेस में गये थे। सेठ जमनालालजी से वही प्रथम परिचय हुआ। उन्होने ही गांधीजी के रहने इत्यादि का प्रबन्ध किया था। उसी मकान में गांधीजी के साथ काम करनेवाले हम बहुतेरे बिहार-निवासी सेठजी के ही मेहमान बने। बहुतेरे दूसरे बिहारी भी हम लोगों के साथ ही आकर ठहरे और वे हम मेहमानों के भी मेहमान हो गये। जमनालालजी के आतिथ्य को ग्रहण करने का पहला अवसर वहीं मिला।

जर्मन-युद्ध के समय भारतवर्ष ने गवर्नमेण्ट की सहायता की थी। इसकी

प्रशंसा सभी सरकारी कर्मचारी बहुत जोरों से किया करते थे। पर जो कुछ सहायता लोगों ने अथवा उन दिनों की कौन्सिल ने अपनी खुशी से की थी, उसके अलावा जोर-जबरदस्ती से भी बहुत सहायता ली गई थी, जिसके कारण देश में बहुत असन्तोष भी फैला था। पंजाब में उन दिनों लेफ्टेनेण्ट गवर्नर थे सर माइकेल ओडायर। वह एक बड़े जबरदस्त सिविलियन थे। उन्होंने रंगरूट भरती कराने में और चन्दा जमा करने में बड़ी सख्ती से काम लिया था। इसका असर पंजाब पर बहुत बुरा पड़ा था। वहां के लोग —हिन्दू, मुसलमान और सिख—बहुत ही दुःखी थे। सरकार भी जानती थी कि पंजाब के अतिरिक्त और जगहों में भी असन्तोष काफी है। लड़ाई शुरू होते ही, कुछ भारतीय, जो विदेशों में थे, इस प्रयत्न में लग गये कि हिन्दुस्तान में इस मौके से फायदा उठाकर क्रान्ति की जाय। उन्होंने इस दिशा में कुछ काम किया भी था। मुसलमानों में इस बात से बहुत खलबली मची थी कि उनके खलीफा—तुर्की के बादशाह—लड़ाई में जर्मनी की तरफ हो गये थे और तुर्क सेना से मुकाबला करने के लिए हिन्दुस्तानी फौज भेजी गई थी, जिसमें मुसलमान भी अच्छी संख्या में थे। ब्रिटिश गवर्नमेण्ट इन सब कारणों से प्रभावित होकर अपनी दुहरी नीति चलाती रही। मुसलमानों को सन्तुष्ट करने के लिए उन्होंने कई वादे किये, जिनमें उनके धार्मिक स्थानों को सुरक्षित रखने और तुर्कों की ताकत और उनके राज्य को अधिक नुकसान न पहुचाने की बातें भी थीं। दूसरी ओर सरकार यह भी सोच रही थी कि भारत-रक्षा-कानून की (जो लड़ाई का अन्त होने के छः महीने बाद तक ही जारी रह सकता था) जरूरत बाद में भी पड़ेगी, क्योंकि वह अगर न रहा तो जितने लोग नजरबंद हैं, उनको छोड़ना पड़ेगा, और अगर असन्तोष ने कुछ विकट रूप धारण किया तो उसे सभालने के लिए कुछ ऐसी व्यवस्था करनी होगी, जिससे अदालत में मुकदमे की पेशी होने पर गवाही जुटाने की झंझट से वह बची रहे। इसलिए एक कमिटी मुकर्रर की गई थी, जिसके प्रधान थे सर सिडनी रौलट, जो लन्दन के हाइकोर्ट के एक जज थे। इस कमिटी ने एक रिपोर्ट तैयार की, जिसमें भारतीय षड्यन्त्रों का इतिहास होते हुए भी इस बात की सिफारिश की गई कि एक ऐसे कानून की जरूरत है, जिसके द्वारा सरकार के हाथ में, षड्यंत्रकारियों को उपद्रव करने से रोकने और क्रान्ति से हिन्दुस्तान की रक्षा करने के लिए, पूरा कानूनी अख्तियार रहे—अर्थात् प्रायः वे सब अधिकार रहें, जो लड़ाई की नाजुक स्थिति संभालने के लिए भारत-रक्षा कानून के द्वारा दिये गए थे। इस प्रकार एक तरफ मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड-रिफार्मस्कीम १९१८ के बीच में और दूसरी ओर रौलट-रिपोर्ट भी १९१८ के अन्त में निकली।

: २७ :

रौलट-बिल-विरोधी आन्दोलन

रौलट-रिपोर्ट के निकलते ही सारे देश मे बड़ा असन्तोष उत्पन्न हुआ, जिसने पहले ही सुलगती हुई असन्तोष की आग मे घी का काम करके उसे जोरो से प्रज्वलित कर दिया। चम्पारन से लौटने के बाद मैं अपनी वकालत मे लग गया था। छ.-आठ महीनो की गैरहाजिरी के बाद भी उसमे किसी तरह की कमी नही आई थी। १९१८ और १९१९ मे जोरो से हाइकोर्ट मे काम करता रहा। मुकदमे और रुपये भी खूब मिलते रहे। गाधीजी ने चम्पारन मे ही हम लोगो से एक बार कहा था कि हम लोग अगर चम्पारन मे सचाई के साथ काम करेगे तो एक प्रकार की पूजी कमा लेगे, जिससे आगे बहुत लाभ उठा सकेंगे। वहापर पूरी सचाई के साथ काम हुआ। आज भी जब मै पिछले पच्चीस वरसों के अपने जीवन पर विचार करता हू तो मुझे जान पड़ता है कि वहां की कमाई पूजी दिन-दिन बढ़ती गई है। कभी-कभी यह जानकर बडा सन्तोष होता है कि जो सबक सचाई का गाधीजी ने वहा सिखाया था उसीका यह एक फल है कि अपने जीवन मे जिसका मै कर्तव्य-वश घोर से भी घोर विरोध करता हू, वह भी मेरे कहने पर विश्वास रखता है। पर इस प्रकार सार्वजनिक जीवन मे सचाई से जो लाभ हुआ है, उसके अलावा वकालत के काम मे भी उससे हमेशा लाभ ही हुआ है—कुछ लाभ अपने पेशे मे सफलता के रूप मे और उसके फलस्वरूप पैसे कमाने के रूप मे हुआ। मुझे इस बात का गर्व रहता है कि वकालत के जमाने में जजों ने मुझपर विश्वास किया। एक अंगरेज जज तो कभी-कभी ऐसा मजाक किया करता था कि प्रतिपक्षी वकील अगर कमजोर जान पड़ता तो वह मुझसे ही कहता कि तुम ही अपने विरुद्ध जो सबसे खराब नजीर हो, उसे बता दो। मैं इसके लिए तैयार भी रहा करता था। उस नजीर को पेश करके उसके काट में जो नजीर पेश करनी होती थी, वह भी पेश कर देता था। मै कभी भी लचर दलील नही पेश करता था। जिस मुकदमे में बहस की गुंजाइश न रहती उसे कभी लेता ही न था। मवक्किल को साफ-साफ कह देता कि इसमें कुछ होने-जाने का नही, इसलिए इसे दाखिल करके पैसे बरबाद मत करो। कोई-कोई मवक्किल दूसरे के पास जाकर अपील दायर कराता और

पैसे खर्च करके हार जाता। मैंने ऐसे लोगों को, जिनको मैंने अपील दायर करने से मना करके उनके कागज और पैसे लौटा दिये थे, दूसरो की मार्फत अपील दायर करते और हारते भी देखा है। एक ऐसा भी मुकदमा मैंने देखा, जिसे वापस कर दिया था, पर दूसरे वकील ने उसे दायर किया और हाइकोर्ट मे जीत भी लिया। ऐसा होना आश्चर्य की बात नहीं है; क्योंकि मुकदमेबाजी एक प्रकार का जुआ तो है ही। हो सकता है कि मैं उस मुकदमे की बारीक बातें न समझ सका होऊं, अथवा जज किसी धोखे में आ गया हो और उसने गलत फैसला दे दिया हो। अस्तु।

मै वकालत तो जोरो से करता रहा; पर अब गाधीजी का सम्पर्क भी छूटनेवाला नही था। रौलट-रिपोर्ट के निकलने के बाद देश मे बड़ा आन्दोलन उठ खडा हुआ। गाधीजी ने उसका नेतृत्व अपने हाथो मे लिया। बिहार से लौटने के बाद गांधीजी ने 'खेडा' के किसानो का, जिनपर मालगुजारी का इजाफा हो रहा था, नेतृत्व करके इजाफा छुड़वाया। इसके लिए वहा सत्याग्रह का प्रबन्ध करना पडा था। पर अन्त मे बात तय हो गई। जब गाधीजी 'खेड़ा' में दौरा कर रहे थे, मै भी उनके साथ गुजरात के किसानो के उस जिले मे (सन् १९१८) मे दो-तीन दिनो तक घूमा था। अप्रैल का महीना था। गर्मी काफी पड रही थी। धूप खूब कडी हुआ करती थी। उस गर्मी मे भी गाधीजी गावो मे घूमते रहते। उन दिनो वह जूता नही पहना करते थे। इसलिए बालू तप जाने पर खाली पैरो से चलने मे उन्हे तकलीफ बहुत होती थी। एक दिन ऐसा दृश्य मुझे देखने को मिला। गर्मी के मारे पैर जले जाते थे। बालू कुछ दूर तक थी। मै तो जूता पहने हुए था। मुझे कोई कष्ट नही हुआ। पर गाधीजी को बहुत कष्ट हुआ। एक स्थान पर मैंने चादर बिछा देनी चाही जिसमे उनको थोडा आराम मिल जाय। पर उन्होंने ऐसा नही करने दिया। उसी यात्रा मे सरदार वल्लभभाई के गांव 'करमसद' में भी जाने का सुअवसर मिला था। मैंने उनका पैतृक मकान देखा था। उस सत्याग्रह के नेता एक प्रकार से सरदार वल्लभभाई ही थे। उसी सत्याग्रह के कारण उनका गाधीजी के साथ वह सम्बन्ध स्थापित हुआ, जो आज तक अटूट बना हुआ है और जो दिन-दिन इन दोनो शक्तियो के संगम का अच्छा फल देश को देता आ रहा है।

खेड़ा-सत्याग्रह के बाद गांधीजी, सरकार की मदद के लिए, खेडा जिले के लोगों को फौज में भरती होने के लिए सलाह देते हुए, दौरा करने लगे। उस समय तक ब्रिटिश गवर्नमेण्ट पर उनका पूरा विश्वास था। वह मानते थे कि सरकार अक्सर भूल कर दिया करती है और कही-कहीं उसने जुल्म भी किया है। परन्तु सभी बातों पर विचार के बाद वह इस नतीजे पर पहुंचते

थे कि ब्रिटिश-नीति न्याय-संगत है, उससे न्याय की आशा रखी जानी चाहिए। इसीलिए वह सरकार की मदद करने के लिए लोगों को फौज में भरती होने का मशविरा देने लगे। अपनी आदत के मुताबिक इस काम में भी वह बहुत जोरों से लग गये। खेड़ा के दौरे के कारण उनके स्वास्थ्य को बहुत बड़ा धक्का पहुंचा। वह बहुत जोरों से बीमार पड़ गये। उसी नीति के अनुसार मैं भी बिहार में बने उस सरकारी बोर्ड का मेम्बर हो गया, जो फौजी रंगरूटों की भरती में मदद करने के लिए बना था। उसके मंत्री उन दिनों श्री रसल थे, जो आज बिहार के गवर्नर के सलाहकार (adviser) हैं। जहांतक मैं जानता हूँ, गांधीजी के जी-तोड़ परिश्रम के बाद भी भरती में बहुत सफलता नहीं हुई। बिहार में भी मैं कुछ विशेष न कर सका।

गांधीजी की बीमारी इतनी बढ़ गई कि वह बम्बई में कांग्रेस के उस विशेष अधिवेशन में, जो माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड-रिपोर्ट पर विचार करने के लिए श्री सैयद हसन इमाम के सभापतित्व में हुआ था, शरीक न हो सके थे। पर मैं उसमें शरीक हुआ था। वहां से लौटते समय मैं अहमदाबाद और साबरमती में कई दिनों तक गांधीजी के साथ ठहरा भी। जहांतक मैं उनके विचारों को समझ सका था, मैं कह सकता हूं कि वह यदि कांग्रेस में रहते तो नरम दल के लोगों का ही साथ देते। कांग्रेस का काम समाप्त तो हो गया पर दोनों दलों का मतभेद बहुत स्पष्ट हो गया। कुछ लोगों के कांग्रेस से हटने और लिबरल दल के अलग संगठन करने का सूत्रपात वहीं हो गया। तीन महीनों के बाद, दिल्ली के अपने सालाना अधिवेशन में, प्रायः बम्बई के फैसलों को ही कांग्रेस ने कायम रखा।

जब मैं बम्बई से अहमदाबाद पहुंचा तो देखा कि गांधीजी अहमदाबाद शहर के मिर्जापुर मुहल्ले में सेठ अम्बालाल साराभाई के बहुत बड़े महल में ठहरे हुए हैं। सेठजी उन दिनों अपने एक दूसरे नये मकान में रहा करते थे और यह मकान खाली था। गांधीजी की तबीयत बहुत खराब थी। डाक्टर लोग देखा तो करते थे, पर वह कोई दवा नहीं खाते थे। मल का प्रकोप था। ज्वर का भी जोर था। साबरमती में आश्रम स्थापित हो चुका था, पर अभी तक मकान कम बने थे। किन्तु वहां रहनेवालों की संख्या बढ़ती जा रही थी। एक दिन गांधीजी का ज्वर बहुत बढ़ गया, पर उसका विचार न करके उन्होंने कहा कि अब यहां नहीं ठहरना चाहिए, तुरन्त साबरमती आश्रम में चले चलो। साथियों ने बहुत रोका; पर उन्होंने किसीकी एक न सुनी। उसी हालत में आश्रम में चले गये। जिस समय ऐसा हुआ, मैं अहमदाबाद शहर की मशहूर चीजों को देखने गया था! जब मैं लौटा तो

मैंने सुना कि सब लोग आश्रम चले गये। फिर मैं भी संध्या को वहां चला गया।

दूसरे दिन सवेरे जब मैं गांधीजी के पास बैठा हुआ था, मुझे वह दृश्य देखने को मिला और वह बात सुनने में आई, जिसको मैं कभी भी भूल नहीं सकता। गांधीजी का ज्वर कुछ कम हो गया था; पर वह बहुत कमजोर थे। एक छोटे-से कमरे में चारपाई पर पड़े हुए थे। मैं नीचे पड़ी हुई चटाई पर बैठा था। वह श्री छगनलाल गांधी को बुलवाकर उनसे बातें करने लगे। उन्होंने इतने आवेश में बातें की कि उसका असर पड़े बिना रह नहीं सकता था। यद्यपि मैं गुजराती कम समझ पाता था फिर भी मैंने साराश तो पा ही लिया। उन्होंने कहा, "कल जब ज्वर का बहुत वेग था, मैंने जिद्द करके यहां चले आने को कहा। मैं समझता था कि यहां पहुंचने पर ही ज्वर का वेग कम होगा। यह ज्वर तो शरीर में था, पर वहां उस बड़े महल में पड़े-पड़े मेरे हृदय के भीतर बड़ी ज्वाला जल रही थी। मैं सोच रहा था—'गांधी! तुझे इतने बड़े महल से क्या काम? तू यहां क्यों ठहरा हुआ है? तेरी जगह तो गरीबों के झोंपड़ों में है—आश्रम में है। यहां से तुरन्त चला जा। तू जबतक ऐसा नहीं करता, तुझे चैन नहीं मिल सकता।' इसी कारण मैंने इतनी जिद्द की, जो तुममें से कुछको बुरी भी लगी होगी। वहां से यहां आने पर भी मैं रात को सोया नहीं हूं। बराबर सोचता ही रहा हूं। मैं अपने से पूछता रहा हूं कि क्या तेरी जिन्दगी इसी तरह बिना कुछ सफलता पाये ही बीत जायगी। जबसे दक्षिण अफ्रिका से हिन्दुस्तान आया, एक-पर-एक काम मैंने हाथ में लिये; पर किसीको भी पूरा न कर सका। सबको अधूरा ही छोड़ता गया। मिल-मजदूरों में हड़ताल का काम हुआ। हड़ताल इस मानी में तो सफलतापूर्वक समाप्त हुई कि उनकी मांगें मंजूर हो गईं; पर मजदूरों में अभी बहुत-सी ऐसी त्रुटियां हैं, जिनको दूर करना चाहिए। मेरी इच्छा थी कि उनके बीच काम करके उन त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न करूंगा। पर वह न कर सका, चम्पारन चला गया। चम्पारन में भी, जहांतक नीलवरों का प्रश्न है वह तो एक प्रकार से समाप्त हुआ; पर वहां के किसानों के बीच बहुत काम करने की जरूरत है। इसीलिए वहांपर कुछ पाठशालाएं खोली गईं। मेरी इच्छा थी कि मैं इस प्रकार के काम में योगदान करता रहूंगा और उस जिले में इस प्रकार के काम का सूत्रपात करके उसे खूब जोरों से चलाऊंगा। इस काम के लिए सच्ची लगनवाले त्यागी लोग भी मिले थे और दूसरे मिलनेवाले थे; पर उसको भी अधूरा ही छोड़कर मुझे खेड़े के सत्याग्रह में लग जाना पड़ा। फिर खेड़े के किसानों का काम पूरा होते ही फौज की

भरती के काम में लग गया। खेड़े में भी जनता में काम करने की जरूरत है; पर वह भी पूरा न हो सका। इतने में मैं बीमार पड़ गया। मालूम नहीं, इस बीमारी से बचकर फिर खड़ा होऊंगा या नही। अगर हो भी सकूंगा तो कुछ ठीक नही कि कबतक। तुम लोग, जो दक्षिण अफ्रिका से ही मेरे साथ काम करते आ रहे हो, मेरी इस दशा के कारण किसी काम को जमकर नहीं कर पाते। तुम्हारा स्वास्थ्य भी खराब ही है। इस आश्रम को ही मैंने बहुत आशा और मनसूबा लेकर स्थापित किया था। पर इसको भी मैं अबतक समय नही दे सका हूं। चम्पारन से ही मुझे इसके उद्घाटन का संदेश भेजना पडा, स्वयं उस समय आ भी न सका था। तबसे अबतक मैं किसी-न-किसी काम मे बझकर बाहर रहा। अब मेरी यह हालत है। न मालूम ईश्वर को क्या मंजूर है।"

इस प्रकार बातें करते-करते वह फूट-फूटकर रोने लगे। कुछ देर तक रोते रहे। हम ही दोनो वहां थे। उनको कौई चुप करावे तो कैसे करावे। हम जानते थे कि उनके हृदय की ज्वाला अब आसुओं के रूप मे भाप का पानी बनकर निकल रही है। कुछ देर के बाद वह खुद चुप हुए। उन्होंने कहा, "यह ज्वाला बहुत जला रही थी, रात-भर सोया नही, कुछ आसू बह जाने के बाद वह कुछ शान्त हुई है।" इसके बाद कुछ देर तक चुप रहे। मैं भी चुप बैठा रहा और सोचता रहा कि ईश्वर ने हमारे लिए बड़ा सौभाग्य प्रदान किया कि ऐसे महापुरुष का सम्पर्क मुझे मिला। छुट्टी लेकर दो-एक दिन के बाद मैं अपने काम पर वापस आया।

इस बीमारी से उठने के बाद, जिसमे वह शायद कभी-कभी मृत्यु का भी दर्शन करते थे, उन्होने रौलट-रिपोर्ट के विरुद्ध आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण किया। रिपोर्ट निकलने के कुछ दिनों बाद, गवर्नमेण्ट ने उसकी सिफारिश के मुताबिक दो बिल दिल्ली की इम्पीरियल कौन्सिल मे पेश किये, जिनके द्वारा सरकार को बहुत व्यापक और जुल्मी अख्तियार मिलते थे। वह जिसको चाहे, बिना अदालत मे गये ही, नजरबन्द कर दे सकती थी। जनता ने यह देखा कि लड़ाई के दिनों में जो स्वराज्य-सम्बन्धी वादे ब्रिटिश सरकार की ओर से किये गए थे, उनके पूरा होने का तो कुछ करीना नजर नही आता; पर ये 'काले कानून' हमारे सिर पर लादे जा रहे हैं। सारे देश में बड़ा क्षोभ पैदा हुआ। सभी जगहों में विरोधी सभाएं होने लगी। कौन्सिल में गैर-सरकारी मेम्बरों ने इन बिलों का प्रबल विरोध किया; पर उनकी सुनता कौन था। अन्त में एक बिल पास हो गया। सभी चुने हुए हिन्दुस्तानियों ने उनका विरोध किया था। पर सरकारी कर्मचारियों और सरकार द्वारा नियुक्त कुछ मेम्बरों की सम्मति से वह बहुमत से पास हो गया।

गांधीजी ने पहले ही घोषणा कर दी थी कि ये कानून यदि पास हुए तो हम लोग इन्हें नहीं मानेंगे—सत्याग्रह करेंगे।

उस समय की वे विरोधी सभाएं, जो देश के कोने-कोने में हुईं, एक नई जागृति और नवजीवन की द्योतक थी। इतनी बड़ी-बड़ी सभाए, जिनमें सब वर्ग, जाति तथा धर्म के लोग इतनी अधिक संख्या में शामिल होते हों, शायद ही पहले कभी देखी गई थीं। गांधीजी ने एक बिल के पास होते ही, अपने वादे के मुताबिक, सत्याग्रह का प्रश्न उठाया। देश की हवा का रुख देखकर सरकार ने दूसरे बिल को आगे नही बढ़ाया। उसे वापस भी नहीं लिया। इस प्रकार वह लटकता पड़ा रहा। न पास हुआ, न मंजूर। शायद, कायदे के मुताबिक, कुछ दिनों के बाद, गिर गया होगा। पर जो बिल पास हो चुका था, वह भी कुछ कम न था। उससे सरकार का काम निकल आता था। जो आन्दोलन उठ खडा हुआ, उसका यह फल हुआ कि वह कानून पास तो हो गया; पर काम मे नही लाया गया। कुछ बरसों के बाद वह रद्द भी कर दिया गया।

: २८ :

छः अप्रैल और जंगी कानून

गांधीजी ने उसी समय 'यंग इंडिया' का सम्पादन अपने हाथ में लिया। प्रति सप्ताह उसमे लेख निकलने लगे, जो सारे देश मे सनसनी पैदा करने-वाले होते थे। उन्होंने अहिंसात्मक सत्याग्रह की घोषणा कर दी। एक दिन भी निश्चित कर दिया कि उस दिन सारे देश में लोग उपवास करें, अपने-अपने धार्मिक मन्दिरों और मसजिदो मे प्रार्थना करे, जलूस निकालकर सध्या समय सभा करें, जिसमे सब लोग 'काले कानून' का विरोध करे। विरोधी सभाएं तो बराबर हो ही रही थीं। किन्तु इस दिन का बहुत बड़ा महत्व था। पहले के आन्दोलन से जमीन खूब तैयार हो गई थी। उस दिन की हड़ताल इतनी जबरदस्त हुई कि शायद ही कभी पहले वैसी हड़ताल देखी गई हो। शहरों मे सभी दूकाने बन्द थी, सवारियों का चलना बन्द हो गया था। गावों मे लोगो ने उस दिन बैलगाडी और हल जोतना तक बन्द कर दिया था। न मालूम यह सन्देश किस प्रकार सभी जगहों मे पहुंच गया। अभी काग्रेस का संगठन इतना न तो फैला था और न इतना मजबूत ही था कि वह उस सन्देश को सभी सुदूरवर्ती गावो तक पहुचा सकता; पर तब भी यह अद्‌भुत घटना हुई!

पटने मे विरोधी सभाओं के संगठन इत्यादि का काम मै तत्परता से करता रहा। गांधीजी के पत्र भी जब-तब मिल जाया करते थे। पर विशेष सभी बाते 'यग इंडिया' से मिलती थी। श्री मजहरुल हक साहब और श्री सैयद हसन इमाम काफी दिलचस्पी लेते थे। मजहरुल हक साहब तो उन दिनों दिल्ली-कौन्सिल में गये थे; पर हसन इमाम साहब सभाओं में जाते थे। उस दिन की हड़ताल के सम्बन्ध मे पहले से सभी दूकानदारों से कहा गया था। सभी राजी हो गये थे; पर एक बड़ी दूकानवाले राजी नही होते थे। यह बात हसन इमाम साहब तक पहुंचाई गई। मेरे साथ ही वह उस दूकानदार की दूकान तक गये। वहां पहुंचते ही बूढे दूकानदार के पैरो पर उन्होंने अपनी टोपी उतारकर रख दी। वह तो भौंचक-सा हो गया। कहने लगा, आपने यह क्या किया, आपका हुकुम ही हमारे लिए काफी होता। नतीजा यह हुआ कि सारे शहर में एक भी दूकान न खुली, चाहे वह हिन्दू की हो

या मुसलमान की। शहर की तमाम दूकानें, चाहे वह सोने-चादी की हों या साग-सब्जी की, बन्द रही। उस दिन जो जलूस निकला, वह भी अद्भुत था। गुलजार बाग से लेकर प्रायः शहर के किले तक, जहां सभा होनेवाली थी, लम्बा जलूस फैला हुआ था, जिसमें सबसे आगे नगे पैर हसन इमाम साहब थे और पीछे-पीछे हम सब लोग। जो सभा किले के छोटे मैदान मे होनेवाली थी वह वहां न हो सकी; क्योंकि जगह कम थी। गगा के किनारे रेत मे सभा करनी पड़ी। हम सब डरते थे कि कहीं इतने बड़े मजमे की पुलिस से मुठभेड न हो जाय; पर कुछ भी न हुआ। बडी शान्ति और उत्साह के साथ उस दिन का काम समाप्त हुआ।

गांधीजी ने कुछ दिन पहले ही लिख भेजा था कि ऐसे सत्याग्रहियो मे एक प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर लिये जाय, जो इस बात के लिए तैयार हो कि वे अहिंसा का पालन करते हुए सरकार के ऐसे कानून को न मानेंगे, जिन्हे तोड़ने की आज्ञा एक मनोनीत कमिटी देगी, और इसके लिए जो सजा होगी, उसे खुशी के साथ भोगने को तैयार होगे। अभी तक कमिटी ने कानूनो को नहीं बताया था। इसपर देश मे कुछ नरम दल के लोगों और अखबारो की ओर से बडी टीका-टिप्पणी भी हुई। पर गांधीजी विचलित न हुए। बिहार मे वह प्रतिज्ञा-पत्र मेरे पास ही आया। उसपर हसन इमाम साहब ने हस्ताक्षर किये। मैंने तथा कुछ और लोगों ने भी।

छः अप्रैल की हडताल और सभाएं सारे देश में बडी सफलता और समारोह के साथ हुईं। दिल्ली मे जो सभा हुई थी, वह बडे मार्के की थी। हिन्दू-मुस्लिम एकता इतनी बढ़ गई कि दोनों ने साथ-ही-साथ सरकारी गोली खाई। जलूस के नेता स्वामी श्रद्धानन्दजी ने अपना सीना खोल दिया था कि सरकार अगर चाहे तो उन्हे गोली मार दे। मुसलमानों पर इतना असर पडा कि उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्द को ले जाकर जुमा मसजिद में उनका भाषण करवाया। वहापर जो छोटा-मोटा बलवा हो गया, उसे शान्त करने के लिए गांधीजी दिल्ली के लिए रवाना हुए। मगर रास्ते मे ही, दिल्ली के नजदीक 'पलवल' स्टेशन पर, सरकारी हुक्म से, रेल से उतार दिये गए और एक अनजान स्थान को भेज दिये गए। श्री महादेवभाई देसाई उनके साथ थे, जो वहा से अकेले बम्बई की ओर वापस हुए। रास्ते से उन्होंने मेरे पास तार भेजा कि गांधीजी गिरफ्तार होकर अनजान स्थान को भेज दिये गए है और मुझे तुरत बम्बई पहुंचकर उनसे (महादेवभाई से) मिलना चाहिए। तार पाते ही मैं बम्बई के लिए रवाना हो गया। रास्ते ही में जो अखबार मिले, उनसे मालूम हुआ कि कई स्थानों में इस खबर के पहुंचते ही बलवा शुरू हो गया है, जिनमें पंजाब के कई शहर, अहमदाबाद

और बम्बई थे। मैं जब दो दिनों के बाद बम्बई पहुंचा तो वहां उस समय तक शान्ति हो गई थी। गांधीजी पलवल से बम्बई ले जाये गए। वहां ले जाकर छोड़ दिये गए। गांधीजी के बम्बई पहुंच जाने से बलवा जोर न पकड़ सका, शीघ्र ही शान्त हो गया। पर अहमदाबाद से खराब खबर मिली थी। गांधीजी वहां के लिए रवाना हो चुके थे। महादेवभाई भी बम्बई पहुंचकर उनके साथ हो लिये थे। जब मै पहुंचा तो मैने सुना कि वे दोनों अहमदाबाद चले गए है। मै भी उसी दिन संध्या की गाड़ी से अहमदाबाद के लिए रवाना हुआ। जब दूसरे दिन सवेरे स्टेशन से बाहर निकला तो देखा कि गोरे सिपाहियों का पहरा पड़ रहा है और शहर में जंगी कानून जारी है। किसी तरह साबरमती-आश्रम मे एक टागे पर पहुंचा। वहा भी गांधीजी के पहुंचने से लोगों में शान्ति हो गई थी। बलवा-फसाद कम हो गया था। जंगी कानून भी मेरे पहुंचने के कुछ ही घंटो के अन्दर उठा लिया गया, या शायद पहले ही उठा लिया जा चुका था। वहा शान्ति कायम रखने का प्रबन्ध करके गांधीजी उसी दिन या दूसरे दिन रात की गाड़ी से बम्बई के लिए रवाना हुए। मैं भी साथ था।

इसी बीच पंजाब से बलवा हो जाने की खबरे आती रही, जिससे गाधीजी बहुत सोच में पड़ गये। जलियांवाला बाग का हत्याकाड इसी बीच मे हो चुका था। कुछ थोडी खबर मिली थी, पर पूरा हाल कुछ महीनों तक ठीक-ठीक न मिला। इतना अवश्य मालूम हो गया कि पजाब की स्थिति बहुत भयंकर हो गई है। गांधीजी सोचने लगे कि ऐसी अवस्था मे सत्याग्रह चलाना ठीक न होगा। उन्होंने उस रात को अहमदाबाद और बम्बई के रास्ते मे रेलगाड़ी में ही अपना वह वक्तव्य लिखा, जिसमें उन्होंने लोगो में अहिंसा के अभाव के कारण सत्याग्रह स्थगित करने का विचार प्रकट किया। हम लोगों ने उसे रेल में ही पढ़ लिया। बम्बई पहुंचने पर वह अखबारों में प्रकाशन के लिए दे दिया गया।

बम्बई में कुछ देर तक मैं ठहर गया। वहां अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन मे, जो उन्ही दिनों वहां हो रहा था, शामिल हुआ। उसके बाद मैं पटने चला आया। सत्याग्रह स्थगित हो जाने पर फिर मैं अपनी वकालत में लग गया।

: २९ :

पंजाब-हत्याकांड, खिलाफत और असहयोग

सत्याग्रह बन्द तो हो गया, पर देश में असन्तोष बढ़ता ही गया। उधर पंजाब मे जगी कानून के नाम पर जुल्म-ज्यादतियां हुईं। जनता की बेइज्जतियां की गईं। हजारो आदमियो को कड़ी-कडी सजाएं मिली। सबकी खबर कुछ-कुछ बाहर आती गई; पर पूरी खबर किसीको न मिलती थी। आपस का मेल इतना था कि हिन्दू, मुसलमान और सिक्ख सब बातो में पूरी तरह शरीक होते थे। साथ ही गोलिया खाते, लाठियां सहते, पानी पीते, जमीन पर रेंगते अथवा हवाई जहाज के गोलो के शिकार बनते। इस हत्याकाड का पूरा वर्णन यहां नही दिया जा सकता। उसको तो कांग्रेस द्वारा नियुक्त कमिटी की रिपोर्ट मे ही पढना चाहिए। बहादुर पजाबियों पर होनेवाले जुल्मो की खबरें पंजाब से बाहर नही आ पाती थी। न कोई पंजाब जाने पाता था, न कोई वहा से बाहर आने पाता था, और न वहां तार या चिट्ठियां ही जा पाती थीं। जब जगी कानून उठा लिया गया तब सब बाते मालूम हुई। देश मे भयंकर रोषाग्नि पैदा हुई।

उस साल काग्रेस का अधिवेश अमृतसर मे होनेवाला था, जहां जलियांवाला बाग मे हत्याकाड हो चुका था। सारा पंजाब जंगी कानून से बहुत ही परेशान किया जा चुका था। भय होने लगा कि शायद वहा की जनता काग्रेस का आयोजन न कर सके। पर निश्चय हुआ कि चाहे जिस तरह हो, काग्रेस का अधिवेशन अमृतसर में ही होना चाहिए। वैसा ही हुआ भी। पडित मोतीलाल नेहरू सभापति चुने गये। मै इस काग्रेस में शरीक नही हुआ। काग्रेस दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह मे हुआ करती थी और दूसरी जनवरी से ही बाबू हरिजी का मुकदमा खुलनेवाला था। उन्होंने मुझे रोक लिया। पंडितजी भी उस मुकदमे मे काम करनेवाले थे; पर वह कुछ देर करके—कई दिनों के बाद—पहुंचे। तबतक श्री नृपेन्द्रनाथ सरकार (सर एन० एन० सरकार) ने ही कई दूसरे वकीलों और बैरिस्टरों के साथ काम शुरू कर दिया था। १९२० की जनवरी से अक्तूबर तक मैं आरा में उसी मुकदमे के लिए रहा। कभी-कभी एक-दो दिनो के लिए छुट्टी मिलने पर पटने आ जाया करता था—विशेषकरके अपने बड़े लड़के मृत्युञ्जय

को देखने के लिए, क्योकि उसको उस समय काला आजार की बीमारी हो गई थी और उसकी चिकित्सा पटने में हो रही थी। कभी-कभी किसी मवक्किल के काम से भी आ जाता। पर प्रायः इन दस महीनों का समय बरमा के मुकदमे मे ही लगा।

गवर्नमेण्ट ने पंजाब मे जंगी कानून उठ जाने के बाद, एक कमिटी मुकर्रर कर दी थी, जिसके जिम्मे वहा की घटनाओ के सम्बन्ध में जाच करने का काम दिया गया था। लार्ड हण्टर, जो विलायत के एक जज थे, इसके सभापति बनाये गये थे। काग्रेस की ओर से पहले इस कमिटी के सामने अत्याचार-सम्बन्धी गवाही पेश करने का निश्चय हुआ था। कुछ दिनो तक यह काम हुआ भी। पर कुछ मतभेद हो जाने पर काग्रेस इस जाच से हट गई। उसने अपनी एक अलग कमिटी बना दी, जिसको वही काम सौप दिया, जो गवर्नमेण्ट की ओर से हण्टर-कमिटी कर रही थी। हण्टर-कमिटी के सामने जब बातें आने लगी और सब अखबारो मे छपने लगी तब पहले-पहल इसका पता चला कि पजाब में कितना जुल्म हुआ है। पंजाब मे हुए अत्याचारो की खबरे बाहर जिस अनुपात में फैली, देश मे उसी मात्रा मे रोष भी बढता गया। कांग्रेस कमिटी की जाच भी प्रायः उसी समय हुई। इसके लिए गांधीजी, देशबन्धु दास, श्री जयकर, श्री अब्बास तैयबजी प्रभृति पंजाब के गांवों और जिलों में खूब चक्कर लगाते फिरे। दोनों कमिटियों की रिपोर्टें १९२० में प्रकाशित हुई।

उधर तुर्की के साथ अंगरेजों के व्यवहार से मुसलमानों मे खास खलबली मची हुई थी। अमृतसर-काग्रेस के समय ही मौलाना शौकतअली, मौलाना मुहम्मदअली, मौलाना अबुलकलाम आजाद प्रभृति मुसलमान नेता—जो लड़ाई के कारण नजरबन्द थे—छोड दिये गए थे। इन लोगो ने खिलाफत-सम्बन्धी सगठन और आन्दोलन के लिए खिलाफत-कमिटिया सारे देश में स्थापित की। मुसलमान इतने रुष्ट थे कि वे चाहते थे, सरकार के खिलाफ कुछ किया जाय; पर यह निश्चय नही कर पाते थे क्या और किस तरह किया जाय। इधर पंजाब के हत्याकांड से दूसरो मे भी रोष था। रौलट कानून को भी लोग भूले नही थे। इन सभीके मिल जाने से देश मे एक भयंकर स्थिति उत्पन्न हो गई थी। खिलाफत-कमिटिया और काग्रेस-कमिटियां एक दूसरे के निकटतर आती जा रही थी। बहुतेरे हिन्दुओं ने भी खिलाफत-कमिटियों की मेम्बरी स्वीकार की और पैसे से भी उनकी मदद की। उधर मुसलमान भी बडी संख्या में कांग्रेस में शरीक होने लगे। जब हण्टर-कमिटी और काग्रेस-कमिटी की रिपोर्टें निकली तब अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी की एक बैठक बनारस में उन पर विचार करने के लिए हुई।

मैं भी मेम्बर की हैसियत से उसमे शरीक हुआ।

गांधीजी का अली-बन्धुओ से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। खिलाफत-कमिटी मे वह शरीक हुआ करते थे। बनारस की सभा के थोड़े ही पहले, प्रयाग में खिलाफत-कमिटी की बैठक में, उन्होंने अहिंसात्मक असहयोग का कार्य-क्रम, पहले-पहल १९२० के अप्रैल मे पेश किया। खिलाफत-कमिटी ने उसे मजूर किया और निश्चय किया कि उसे वह काम मे लायेगी। साथ ही, मौलाना लोगो ने भी धार्मिक रीति से इसका जोरों से समर्थन किया और एक फतवा निकाला, जिसके द्वारा सरकार के साथ किसी प्रकार के सहयोग को हराम करार दिया। बनारस मे कांग्रेस-कमिटी ने निश्चय किया कि सारी बातों पर विचार करके देश को क्या करना चाहिए, इसका निर्णय करने के लिए कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन किया जाय। उस अधिवेशन का कलकत्ते मे होना तय हुआ। लाला लाजपतरायजी, जो बहुत दिनों के बाद हाल ही विदेश से वापस आये थे, सभापति चुने गये। सारे देश मे असहयोग की चर्चा होने लगी। गांधीजी कुछ दौरा भी करते और कुछ लिखते भी। यह तैयारी हो ही रही थी कि १ अगस्त (१९२०) को लोकमान्य तिलक का देहावसान हो गया।

मौलाना शौकतअली अप्रैल १९२० मे ही पटने आये थे, जब एक बड़ी सभा हुई। उस दिन पटने मे रहने के कारण मै भी इस सभा में शरीक हो गया। गांधीजी की राय और कार्रवाइयों से मै परिचित था ही। आरा में पडित मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु दास दोनों ही डुमराव-राज्य और हरिजी और 'बरमावाले' मुकदमे मे दोनो ओर से काम कर रहे थे। मै पंडित-जी के साथ काम तो कर ही रहा था, उनमे राजनैतिक स्थिति के सम्बन्ध मे भी बाते हुआ करती। वह कभी-कभी देशबन्धु से भी बाते करते। इसलिए मै सब बातों से अवगत था। जब पटने मे मौलाना शौकतअली ने असहयोग का कार्यक्रम बताया, लोगों से पूछा कि लोग इसके लिए कहांतक तैयार है और मुझे इस सम्बन्ध मे कुछ कहने के लिए कहा गया, तो मैने उसी सभा मे पहले-पहल असहयोग मे शरीक होने का वचन दे दिया। अभी तक कांग्रेस ने कुछ फैसला नही किया था और न ही कार्यक्रम ही पूरी तरह से निश्चित था; पर मैने कह दिया कि देश अगर असहयोग करने का निश्चय करेगा और इस निश्चय के अनुसार जब असहयोग आरम्भ किया जायगा, तो मैं भी पीछे नही रहूगा। उस समय तक यह जाहिर हो चुका था कि असहयोग मे वकालत छोडनी पड़ेगी और कौन्सिलों में नही जाना होगा। मैं वकील तो था ही। मेरी इच्छा यह भी थी कि १९२० के नवम्बर में, नये माण्टेगू-चेम्सफोर्ड विधान के अनुसार होनेवाले चुनाव में, चम्पारन से प्रान्तीय

कौन्सिल के लिए उम्मीदवार खड़ा होऊं। इस विचार के अनुसार मैं चम्पारन में एक-दो बार कुछ जगहों का दौरा भी कर चुका था। एक जगह तो मजहरुल हक साहब मेरी उम्मीदवारी के समर्थन मे जा भी चुके थे। असहयोग आरम्भ होने पर दोनों ही छोड़ना पड़ेगा! मैने उस सभा में यह घोषणा करके बता दिया कि मै दोनों ही छोड़ूगा। मौलाना शौकतअली से मेरी पहले की मुलाकात नही थी; पर शायद गाधीजी ने उनसे मेरे सम्बन्ध में कुछ कहा था। सभा समाप्त होते ही मै चला आया। वहां उनसे मुलाकात नही हुई। पर उन्होने मेरी तलाश की थी। जब वह रवाना होनेवाले थे, मै स्टेशन पर गया। वही उनसे पहले-पहल बाते हुई। सभा की बात और गांधीजी की कही हुई बाते उनको याद थी। इसलिए उन्होने बहुत प्रेम-पूर्वक बाते की। मेरा उत्साह भी बढाया। इस तरह मेरे लिए असहयोग का सूत्रपात अचानक इस सभा में हुआ, जहा मै उस दिन पटने में इत्तफाक से आने के कारण जा सका था।

काग्रेस का विशेष अधिवेशन सितम्बर मे होनेवाला था। बिहार-प्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन भी अगस्त मे होनेवाला था। असहयोग की बाते जोरों से चल रही थी। बिहार मे यह प्रश्न उठा कि प्रान्तीय सम्मेलन का सभापति कौन बनाया जाय। लोगो ने मुझे ही चुना। मै असहयोग का पक्षपाती था; पर यह नही कह सकता था कि प्रान्त के लोग इसे मंजूर करेगे या नही। अगर मंजूर करेगे भी, तो समय आने पर कितने इसमे शरीक होंगे। इसलिए मैने श्री सच्चिदानन्द सिनहा से पूछा कि ऐसी स्थिति मे क्या यह मेरे लिए उचित होगा कि मै अपनी राय सभापति के भाषण मे खोलकर कहूं और यदि सम्मेलन मेरी बात स्वीकार न करे तो एक सकट उपस्थित कर द। उन्होने कहा कि मुझे पूरा अधिकार है कि मै अपनी राय दे दू और सम्मेलन को भी अधिकार है कि उसे वह स्वीकार करे या न करे; इसलिए मेरे सभापतित्व स्वीकार करने मे कोई बाधा नही है।

मै आरा मे मुकदमे मे फसा हुआ था। वहा मैने अपना भाषण हिन्दी मे लिखना शुरू किया। प्रान्तीय सम्मेलन-जैसी सभा या संस्था मे उन दिनो हिन्दी मे भाषण नही हुआ करते थे; प्रायः अगरेजी में ही सब कार्रवाई हुआ करती थी। एक ओर मुकदमे की भीड़, दूसरी ओर सम्मेलन का भाषण लिखना और स्थिति की चिन्ता, सब मिल-मिलाकर मै ज्वर-ग्रस्त हो गया। भय होने लगा कि प्रान्तीय सम्मेलनके लिए मैं भागलपुर न जा सकूगा। पर समय आते-आते इतना अच्छा हो गया कि किसी तरह अपने लिखे भाषण के साथ यथासमय भागलपुर पहुंच गया। वहा सम्मेलन में भाग ले सका। पर सम्मेलन के सम्मुख उपस्थित कठिन समस्या ऐसी थी कि वह

किसी भी काम करनेवाले को डरा सकती थी। मेरा अपना विचार साफ और दृढ़ था कि असहयोग आवश्यक हो गया है। पर मैं यह जानता था कि सूबे के सभी पुराने और अनुभवी राजनीतिज्ञ नेता उसके विरोधी थे। यद्यपि रौलट-बिल-विरोधी आन्दोलन के समय से ही सभाओं मे जनता बहुत बड़ी संख्या मे आया करती थी, पर यह कहना कठिन था कि वह असहयोग मे कहातक साथ देगी। सम्मेलन मे बड़े-बड़े नेताओं मे से बहुतेरे गये भी नही। इसलिए यदि सम्मेलन मेरे कहने से असहयोग की नीति स्वीकार कर ले, तो इसका अर्थ यह होगा कि उसको कार्यान्वित करने का भार अधिकतर हम लोगो के ही ऊपर पड़ेगा—हम कहांतक इसे निबाह सकेगे? इस तरह के अनेकानेक प्रश्न दिल को दहला देते थे। पर मै जानता था कि नये लोग अधिकाश में मेरे साथ थे।

बाबू ब्रजकिशोरप्रसाद, बाबू धरणीधर प्रभृति जोरों से असहयोग का समर्थन कर रहे थे। इनके अतिरिक्त मुसलमान तो प्रायः बड़ी उमग से इसमें आनेवाले थे। मजहरुल हक साहब के अलावा शाह मुहम्मद जुबैर, मौलवी मुहम्मद शफी, मौलाना नूरुलहसन प्रभृति भी साथ देनेवाले थे ही। पर मुसलमानो में भी हसन इमाम साहब, नवाब सर फराज हुसेन खा प्रभृति—जो बराबर सार्वजनिक कामों मे भाग लिया करते थे—विरोधियो मे ही थे। एक ओर अधिक अनुभव तथा बहुत दिनो की सार्वजनिक सेवा थी तो दूसरी ओर उत्साह, देश की परिस्थिति से उत्पन्न असह्य बेचैनी और आग मे कूदने की तत्परता थी। ईश्वर का नाम लेकर मैने इस सेवा को उठाया और खुलकर असहयोग का समर्थन किया।

सम्मेलन ने मेरी बात मान ली, बहुत बडे बहुमत से असहयोग के सिद्धान्त का समर्थन किया और बिहार की स्थिति पर ध्यान रखते हुए कार्यक्रम बनाने के लिए एक कमिटी बना दी। वहापर बाबू ब्रजकिशोरप्रसादजी ही नेता थे। उनकी यह जबरदस्त राय थी कि यह असहयोग, खिलाफत-सम्बन्धी अन्याय को दूर और पजाब-हत्याकांड-सम्बन्धी काग्रेस की मांगों को पूरा कराने के अलावा स्वराज्य के लिए भी किया जाय। उस समय तक जितनी सभाएं होती थी अथवा जो लेख पत्रों मे लिखे जाते थे उनमे खिलाफत और पंजाब-हत्याकाड ही असहयोग के कारण बताये जाते थे। बाबू ब्रजकिशोर उसमे 'स्वराज' को जोड़ करके (जबतक स्वराज प्राप्त न हो) उसे एक प्रकार से स्थायित्व देना चाहते थे। ऐसा ही हुआ भी। गुजरात में प्रान्तीय (राजनैतिक) सम्मेलन हुआ और वहां भागलपुर-सम्मेलन के दो-चार दिन पहले ही असहयोग का समर्थन हुआ। जहांतक मुझे याद है, बिहार और गुजरात ही दो प्रान्त थे, जिनके प्रान्तीय सम्मेलनों

में कलकत्ते के कांग्रेस के विशेष अधिवेशन के पहले असहयोग का समर्थन किया था। भागलपुर-सम्मेलन के अवसर पर गांधीजी ने तार दिया था कि सम्मेलन असहयोग का समर्थन करे।

कलकत्ता-कांग्रेस मे मै नही जा सका था। देशबन्धु दास और पडित मोतीलालजी गये थे। पर ठीक उसी समय श्री एन० एन० सरकार हम लोगो की ओर से बहस कर रहे थे और उनकी सहायता के लिए मेरा आरा मे रहना आवश्यक था। कांग्रेस बडे समारोह से हुई। पंडितजी ने अन्त में असहयोग का समर्थन किया था और वह बहुत बड़े बहुमत से स्वीकृत हुआ था। वहा खिलाफत और पजाब-हत्याकाण्ड के अलावा स्वराज्य को भी असहयोग का कारण बताया गया था।

इन्ही दिनो बेतिया मे बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन हुआ। मुरुजपुरा (सूर्यपुरा) के राजा राधिकारमणप्रसादसिहजी, जो उन दिनो हिन्दी के एक होनहार प्रभावशाली गद्य-लेखक थे, सभापति हुए। उन्होने जो भाषण वहा किया था, वह इतना मनोहर और सुन्दर था तथा उसमे भाषा और भाव दोनो का ऐसा अच्छा सम्मिश्रण था कि उसका असर मेरे दिल पर आज तक है। बेतिया मे ही मुझे मलेरिया ने पकड लिया। छपरे मे पहुचकर मै बहुत बीमार पड गया।

कलकत्ता-कांग्रेस के कुछ ही दिनो के बाद बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की एक बैठक हुई, जिसमे असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के सम्बन्ध में विचार हुआ। असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव के पास हो जाने पर मेरे सामने अब वकालत छोड देने का प्रश्न वास्तविक रूप से उठ खडा हुआ। मै तथा पंडितजी जिस मुकदमे मे काम कर रहे थे, वह भी प्राय समाप्त हो रहा था—थोडे ही दिनो के बाद समाप्त हो गया। उसमे उस समय तो फुरसत मिल गई, पर वह मुकदमा वही तक रहनेवाला नही था। उसकी अपील हाइकोर्ट और प्रिवी कौंसिल तक जरूर जानेवाली थी, चाहे जो भी हारे। बाबू हरिजी चाहते थे कि मै कम-से-कम उनके इस मुकदमे मे, जब जरूरत पडे, उनका काम कर दिया करू। उसमे मैंने काफी दिनों तक काम किया था और उनसे रुपये भी मिले थे, अत मै उनके अनुरोध को टाल न सका। पर उसी समय यह निश्चय कर लिया कि इसके अलावा नये मुकदमे हाथ में न लूगा। हां, जो पुराने मुकदमे हाथ मे थे—विशेष करके जिनके लिए कुछ रुपये ले लिये थे—उनके सम्बन्ध में अभी कुछ निश्चय नही कर पाया था।

भाई से मैंने कोई राय नहीं ली। पर वह समझ गये थे कि अब मैं वकालत छोड़ दूगा। उनको आशा थी कि मैं कुछ पैसे पैदा करके घर की

स्थिति, जो बहुत अच्छी नहीं थी, कुछ उन्नत करूंगा। पर उन्होंने मेरे निश्चय के सम्बन्ध मे उस समय कुछ भी नही कहा। बहुतेरे दूसरे लोगों ने भी वकालत छोड़ी। साधारणत: लोग समझते थे कि एक बरस के बाद सब अपने-अपने काम पर वापस आ सकेंगे। इस विचार से लोगों को और भी एक प्रकार का ढाढ़स बना रहा। जबसे भागलपुर-कान्फ्रेंस में, और उसके बाद कलकत्ता-कांग्रेस मे, असहयोग के कारणो म स्वराज्य की बात भी जोड़ दी गई थी, तबसे मैंने समझ लिया था कि अब असहयोग लम्बा चलेगा; क्योंकि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट स्वराज्य पर जल्दी राजी होनेवाली नही है। महात्माजी कहा करते थे कि यदि खिलाफत और पजाब के सम्बन्ध मे गवर्नमेण्ट हमारी मागे मान लेने पर मजबूर की जा सकेगी, तो वही स्वराज्य का सूचक हो जायगा, और इसीलिए उन्होंने पहले स्वराज्य की बात प्रस्ताव मे नही रखी थी। इसलिए उनकी नजर मे आन्दोलन की अवधि या विकटता 'स्वराज्य' जोड़ देने से बढ़ी नही।

बम्बई मे लौटने के बाद, मेरे ही घर पर पटने मे, कुछ ऐसे मित्रों की सभा हुई, जो असहयोग कर रहे थे। वहापर वकालत छोड़ने की बात हुई। मैंने कहा कि जो मुकदमे हाथ मे है, उनके सम्बन्ध मे दिक्कत हो सकती है; क्योंकि हम मवक्किल से वचन-बद्ध हो चुके है, और विशेषकर जहा पैसे ले चुके है वहा तो हम छोड़ ही नही सकते। कुछ भाइयों ने इसे एक प्रकार से वकालत जारी रखने के लिए बहाना समझा। मैंने यह केवल अपने लिए नही कहा था, पर उन्होंने समझा कि मै अपने ही बारे मे यह सुविधा दूसरों के नाम पर लेना चाहता हू। बात तो यह थी कि एक बरस आरा चले जाने के कारण हाइकोर्ट से मै प्राय गैर-हाजिर रहा था। इसलिए इतने दिनो मे बहुत-से पहले के मुकदमे खतम हो चुके थे और नये तो हाथ मे आये ही नही थे। इसी तरह मेरे हाथ मे जितने मुकदमे रहा करते थे, उनकी सख्या बहुत कम हो गई थी, तो भी चूंकि उनकी सख्या बहुत रहा करती थी, इसलिए घटने पर भी वह काफी थी। मैं अपनी बात पर अड़ा रहा; पर वास्तव मे उस बरमा (Burma) के मुकदमे के सिवा और किसी मुकदमे मे मेरे हाइकोर्ट जाने की नौबत नही आई। या तो मवक्किल ने मुझे छोड़ दिया, या मैंने अगर रुपये ले लिये थे तो वापस करके छुट्टी ले ली, या किसी दूसरे मित्र को अपनी जगह पर काम करने को कह दिया, जिसपर मवक्किल भी राजी हो गया।

दूसरी बात सरकारी और सरकार से सम्बद्ध स्कूलों और कालेजो के बहिष्कार की थी। मेरा अनुभव बताता था कि इसमें बहुत सफलता नहीं मिलेगी। मैंने बंगाल-विच्छेद के समय कलकत्ते में उस आन्दोलन को अच्छी

तरह देखा था, जो सरकारी स्कूलों के विरुद्ध चला था। वहां भी यह प्रयत्न हुआ था कि राष्ट्रीय विद्यालय खोला जाय। उस 'नैशनल कौन्सिल आफ एजुकेशन' को ऐसे-ऐसे व्यक्तियों की सहायता तथा सहानुभूति मिली थी, जो केवल राजनैतिक पुरुष ही नहीं थे। सर गुरुदास बनर्जी, जो हाइकोर्ट की जजी से पेन्शन पा चुके थे और जो पहले कलकत्ता-युनिवर्सिटी के वाइस-चान्सलर रह चुके थे, इसके बड़े पक्षपाती और सहायक थे। इसलिए उसे गवर्नमेण्ट के विरोध का भी विशेष भय नहीं था। काग्रेस तथा आन्दोलन के प्रोग्राम मे भी बहिष्कार की बात नहीं थी। उसमें अच्छे-अच्छे कुछ उत्साही युवक, जिन्होंने युनिवर्सिटी में बड़ा नाम पाया था, शरीक हुए थे। उनमें से विख्यात लेखक श्री विनयकुमार सरकार है, जिन्होंने एम० ए० की परीक्षा मे स्वर्णपदक और सर्वप्रथम स्थान पाया था। इतने पर भी उनमे उतना उत्साह नहीं देखा गया; क्योंकि वहां से शिक्षा पाये हुए विद्यार्थियों को किसी प्रकार जीविका-निर्वाह का रास्ता नहीं मिलता था। इससे मैं डरता था कि यहां भी यदि हम इसपर जोर देंगे तो विद्यार्थियों में, और विशेष करके उनके अभिभावकों मे, बहुत उत्साह नहीं आवेगा, और तब यह कार्यक्रम जोरों से चल नहीं सकेगा। मैंने बैठक मे अपने इस विचार को रखा था; पर कुछ भाइयों को मेरी बात नहीं जंची; क्योंकि वे समझते थे कि मैं बहुत डरपोक हूं और यों ही अपने सामने अनावश्यक भय खड़ा कर लेता हूं।

बात यह है कि हमारे देश में विद्या अर्थकरी है। जो पढ़ता है, उसे कुछ कमाना चाहिए। उसकी जिन्दगी ऐसी बन जाती है कि वह पुराने तरीके से रह नहीं सकता। उसके अपने रहन-सहन मे भी अधिक खर्च पड़ने लगता है। घरवाले आधुनिक शिक्षा दिलाने मे खर्च काफी करते है और आशा रखते हैं कि उस शिक्षा से वह उस पूंजी को अगर बढ़ा न सकेगा तो कम-से-कम कायम रख सकेगा। वह शिक्षा भी ऐसी हुआ करती है कि शिक्षा समाप्त होने के बाद सरकारी नौकरी या वकालत की तरह के पेशे को छोड़कर दूसरा कोई काम भी नहीं मिलता। आरम्भ में, जब ऐसी विद्या-प्राप्ति किये हुए लोगों की संख्या कम थी, लोगों ने पैसे भी खूब कमाये थे। पर जैसे-जैसे अंगरेजी-शिक्षा का प्रचार बढ़ता गया, शिक्षितों की संख्या बढ़ती गई, पैसे कमाने का मौका कम होने लगा; क्योंकि इन नौकरियों और पेशो मे जानेवालों की सख्या बढ़ने लगी, फलतः आपस की होड़ से कठिनाई भी बढ़ने लगी। इसलिए, यद्यपि सरकारी अंगरेजी-शिक्षा से भी उतनी आशा नहीं की जा सकती थी, तथापि राष्ट्रीय शिक्षा के मुकाबले अर्थकरी होने में वह अब भी बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। इसलिए मेरा विचार

था कि हम पहले कार्यक्रम के अनुसार लड़कों को स्कूल-कालेज छोड़ने के लिए कहें, और जब देखें कि उनकी संख्या काफी होती जा रही है तब अपनी ओर से विद्यालय इत्यादि का प्रबन्ध करें। मैं यह भी सोचता था कि विद्यालय खोल देने के बाद उसको चलाते रहना चाहिए। यदि हम ऐसा न कर सकेंगे तो इसका असर अच्छा न होगा। इसलिए मैं विद्यालय खोलने अथवा परीक्षा लेने के पक्ष में शुरू में नहीं था।

मैंने जो कुछ ऊपर कहा है, उसका यह अर्थ नहीं है कि मैं आधुनिक शिक्षा की त्रुटियों को नहीं समझता था। मैं समझ गया था कि आधुनिक शिक्षा बिलकुल निकम्मी है। विदेशी भाषा द्वारा दी जाने के कारण इसमें समय और शक्ति की बहुत बरबादी है। इसमें वह स्वाभाविक मानसिक विकास नहीं हो पाता, जो अपनी भाषा द्वारा दी गई शिक्षा में होता है। स्पष्ट है कि जहां शब्दों के अर्थ स्मरण रखने में ही सारा समय लग जाता है, वहां उसके समझने और चिन्तन के लिए कैसे समय मिल सकता है। इसलिए, यदि और कुछ नहीं तो केवल इस एक ही दोष के कारण वह शिक्षा सर्वथा अनिष्टकर है। विदेशी भाषा सीखने और जानने में दोष नहीं है। जानना अच्छा है। आज की दुनिया में, कम-से-कम किसी एक यूरोपीय भाषा का परिचय एक प्रकार से अनिवार्य-सा हो गया है। तो भी भाषा जान लेना और उससे अपना काम निकालना एक बात है, और विदेशी भाषा को सारी शिक्षा का माध्यम बनाना बिलकुल दूसरी बात है। हम उसे माध्यम बनाने के विरोधी हैं, सीखने के नहीं। मैं यह भी समझता था कि इस शिक्षा की नींव पड़ी थी अंगरेज हाकिमों की आवश्यकता की पूर्ति के कारण। वह आवश्यकता थी अंगरेजी पढ़े-लिखे देशी लोगों की, जिनका सहयोग वे अपना कारबार चलाने में अनिवार्य समझते थे। वे कुछ ऐसे हिन्दुस्तानियों को चाहते थे, जो रूप-रेखा में तो हिन्दुस्तानी हों, पर विचार और मानसिक वृत्ति में अंगरेज ही हों। उन्होंने यह भी चाहा था कि उनके दफ्तरों के काम चलाने के लिए ऐसे सस्ते हिन्दुस्तानी पैदा किये जायं, जो अंगरेजी सीखकर उनका सब काम अंगरेजी में ही कर दें। इस तरह, अंगरेजों को हिन्दुस्तान में भ्रमण करने तथा हिन्दुस्तानियों पर राज करने के लिए भी हिन्दुस्तानी भाषा से परिचित होने की आवश्यकता नहीं होगी। इसलिए शिक्षा की पद्धति भी कुछ ऐसी बनी थी कि विशेषतः उसी जरूरत के मुताबिक लोग तैयार किये जा सकें। हां, ऐसे तैयार होनेवालों में कुछ तो ऐसे जरूर निकल आवेंगे जो स्वतन्त्र रूप से कुछ विचार करने की शक्ति भी प्राप्त कर लेंगे और जो बिलकुल सरकार पर ही भरोसा न रखेंगे। ऐसे अगर कुछ निकलें तो निकलें; पर शिक्षा-पद्धति का मुख्य उद्देश्य दफ्तरी लोगों को तैयार करना

ही था। ऐसा ही उसका फल भी हुआ। इसलिए मैं इस शिक्षा का पक्षपाती तो किसी तरह भी न था; पर राष्ट्रीय शिक्षा मे जो दिक्कते मै देखता था, उनसे कुछ डरकर आहिस्ता-आहिस्ता कदम बढ़ाना चाहता था। सबसे ज्यादा मुझे इस बात की चिन्ता थी कि शुरू होकर किसी काम का शीघ्र ही बन्द हो जाना और किसी नतीजे तक न पहुंचना लोगो को हतोत्साह करेगा। इसलिए, यदि हम काम थोड़ा भी करें तो हर्ज नही, पर जो करें वह ठोस होना चाहिए।

पहले कह चुका हू कि हम लोग बिहार मे पूना के फरगुसन-कालेज के ढग का एक कालेज खोलने का विचार चम्पारन मे ही कर रहे थे। कुछ रुपये भी जमा कर लिये थे। पर वह विचार स्थगित कर दिया गया था; क्योकि गाधीजी ने कहा था कि सरकार से सम्बद्ध शिक्षालय खोलने से कोई फायदा नही है—यदि ऐसा करना ही चाहते हो तो बिलकुल नई पद्धति मे पढानेवाली राष्ट्रीय सस्था खोलो। उनकी वह बात भी हम लोग भूले नही थे। इसलिए हृदय के अन्दर एक तरफ राष्ट्रीय शिक्षा के पक्ष मे विचारो की धारा बह रही थी, दूसरी ओर कठिनाइयो की चट्टानो को देखकर मन मे सन्देह हो रहा था। इसीलिए मैं कुछ ठहरकर यह देख लेना मुनासिब समझता था कि देश और विशेषकर विद्यार्थी-समुदाय असहयोग के मैदान मे किस तरह आता है। कुछ भाइयो का विचार था कि असहयोग को सफल बनाने के लिए जबतक हम विद्यार्थियो के सामने कोई दूसरी शिक्षा-सस्था नही प्रस्तुत कर देगे तबतक वे सरकारी विद्यालयो को छोड़कर नही आवेगे। इसलिए विद्यार्थियो को सरकारी विद्यालयो से हटाने—असहयोग कराने—के लिए राष्ट्रीय विद्यालय का होना आवश्यक है। मै इस प्रकार प्रलोभन देकर असहयोग कराना पसन्द नही करता था। मै चाहता था कि विद्यार्थियो को देश के नाम पर और सरकारी शिक्षा की त्रुटियो को बताकर हटाना अच्छा होगा। जब वे इस तरह सबकुछ समझ-बूझकर असहयोग करेगे तभी उनका असहयोग टिकाऊ हो सकेगा। अगर वे यह समझकर असहयोग करेगे कि वहा भी उनको नौकरी दिलानेवाली शिक्षा मिलेगी और इस तरह उन्हे कोई नुकसान नही उठाना पडेगा, तो उनका निश्चय टिकाऊ न होगा। हमारे विद्यालय में आकर जब वे यह देखेगे कि उनको उतनी सुविधा नही है जितनी सरकारी विद्यालयों मे थी, तो वे हताश होकर फिर वापस चले जायगे। मैं चाहता था कि केवल ऐसे ही लोग आये, जो यह समझ ले कि यह रास्ता कंटकाकीर्ण है—इसमें कष्ट है और उसे झेलने के ही लिए हम जा रहे हैं, न कि उन कुछ सुविधाओं के लिए, जो सहयोग करनेवालों को प्राप्त हैं।

यह सब बहस चल ही रही थी और हम लोग सोच ही रहे थे कि मज-हरुल हक साहब ने एक राष्ट्रीय स्कूल खोल दिया, जिसके प्रधान अध्यापक हुए लाट बाबू (श्रीरामकिशोरलाल नन्दक्युलियार), जो हाल ही में विला-यत से एम० ए० और बैरिस्ट्री पास करके लौटे थे। दिसम्बर के आरम्भ मे गांधीजी, मौलाना मुहम्मद अली और मौलाना आजाद के साथ दौरे पर निकले। वह बिहार में भी आये। उन्होंने काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय और अलीगढ-मुस्लिम-विश्वविद्यालय पर भी चढ़ाई की थी। थोडी सफलता भी मिली थी, पर पूरी नही। उसी चढाई के फलस्वरूप काशी-विद्यापीठ और जामे-मिल्लिया (दिल्ली) का जन्म हुआ था। बिहार मे उन लोगों के आने से बड़ा उत्साह उमड़ा। बिहार के विद्यार्थी भी उस लहर में बह चले।

: ३० :

पटना-विश्वविद्यालय से असहयोग

सरकारी शिक्षा से असहयोग का अर्थ था किसी भी शिक्षा-सम्बन्धी संस्था से सम्बन्ध न रखना। मै पटना-युनिवर्सिटी के सिनेट और सिण्डिकेट का मेम्बर था। युनिवर्सिटी के कामो मे काफी दिलचस्पी भी लिया करता था। युनिवर्सिटी ने एक कमिटी मुकर्रर की थी। कलकत्ता-युनिवर्सिटी की स्थिति पर विचार करने के लिए नियुक्त सेडलर-कमिटी की रिपोर्ट पर विचार करके पटना-युनिवर्सिटी मे आवश्यक सुधार की सिफारिश करने का भार उस कमिटी को दिया गया था। मैं भी उस कमिटी का एक सदस्य था। उसमें मैंने काफी परिश्रम किया था। मेरा विशेष प्रयत्न यह था कि युनिवर्सिटी कम-से-कम मैट्रिकुलेशन की परीक्षा तक के लिए मातृभाषा को ही शिक्षा का माध्यम मान ले। इसपर कमिटी के अन्दर काफी वाद-विवाद रहा। यह प्रश्न सिनेट के सामने आनेवाला था। सिनेट की बैठक नवम्बर के महीने में होनेवाली थी। मैंने यह सोचा कि इस प्रस्ताव को यदि मैं सिनेट में स्वीकार करा सकूगा तो यह भी राष्ट्रीय शिक्षा का ही एक काम होगा। इसलिए मैंने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि यद्यपि असहयोगी होने का निश्चय कर लिया है तथापि मैं सिनेट की बैठक तक सिनेट और सिण्डिकेट से नही हटूंगा। मै जानता था कि सिनेट मे इसके विरुद्ध प्रान्त के बड़े-बड़े लोग थे। अभी तक लोगो के मन मे अंगरेजी भाषा के लिए यह मोह था कि बचपन से ही अगर वह नही पढी जायगी तो इसका पूरा ज्ञान नहीं हो सकेगा और हमारे युवक संसार की होड़ मे पीछे रह जायंगे। यद्यपि सेडलर-कमिटी ने भी मातृभाषा द्वारा शिक्षा देने पर जोर दिया था तथापि हमारे अपने देश के लोग इसके विरोधी थे।

सिनेट के सामने, प्रस्ताव के समर्थन मे, मैंने एक बहुत जबरदस्त भाषण किया, जिसमें दलीलों के अतिरिक्त भावुकता की मात्रा भी काफी थी। जहातक मैं समझ सका, उसका असर लोगो पर काफी पड़ा। हमारे विरोधियो मे मिस्टर सुलतान अहमद, मिस्टर खाजा मुहम्मद नूर, जस्टिस ज्वालाप्रसाद, प्रोफेसर यदुनाथ सरकार प्रभृति थे। कुछने अपने भाषणों से विरोध किया, कुछ चुप रहे; पर सम्मति विरोध में दी। हमारे समर्थक दो

अंगरेज निकले—प्रोफेसर हामिल्टन और प्रोफेसर ड्यूक। इनसे मैंने कुछ कहा नहीं था और न इनसे इस विषय मे कभी विचार-विनियम ही हुआ था। पर दोनों ने, केवल शिक्षा की उपयोगिता की दृष्टि से, मेरे प्रस्ताव का जोरो से समर्थन किया। प्रस्ताव बहुमत से स्वीकृत हुआ। सिनेट की यह सिफारिश हुई कि युनिवर्सिटी के नियमों मे ऐसा परिवर्तन किया जाय, जिससे मैट्रिक-परीक्षा तक की शिक्षा मातृभाषा द्वारा दी जा सके। इस प्रस्ताव को पास कराकर मैं बहुत खुश हुआ। किन्तु सिनेट की बैठक समाप्त होते ही मैंने सिनेट और सिण्डीकेट से इस्तीफा दे दिया।

उन दिनो 'सर हविलैंड लिमेजरर' गवर्नर की कौन्सिल के एक मेम्बर थे। वह सिनेट के भी मेम्बर थे। सुना कि उनको मेरे इस्तीफा देने से रज हुआ; क्योंकि वह जानते थे कि मैं युनिवर्सिटी मे अच्छा काम कर रहा था। मुझे किसी तरह युनिवर्सिटी से असहयोग न करने देने के लिए ही, उन्हींकी अनुमति से, बहुत-से सरकारी लोगों ने मेरे उस प्रस्ताव के पक्ष मे सम्मति देकर उसे पास कराया था। यह बात मुझे इस्तीफा भेजने के बाद मालूम हुई। मुझपर जोर भी डाला गया कि मैं इस्तीफा वापस ले लू, पर मैंने वैसा नही किया। मैंने सोचा कि एक ओर राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार करना—सरकारी शिक्षा के दोष बताना और विद्यार्थियो को सरकारी विद्यालयो से निकल आने को प्रोत्साहित करना, और दूसरी ओर सरकारी शिक्षा से सम्बन्ध रखनेवाली सर्वोच्च सस्था (युनिवर्सिटी) मे बने रहना परस्पर-विरोधी बाते है। यह बिलकुल गलत रास्ता होगा। इसलिए मैं इस्तीफा वापस लेने पर राजी नही हुआ।

अगर मैं युनिवर्सिटी मे रह गया होता तो जिस प्रस्ताव को इतने परिश्रम से मैंने सिनेट मे पास कराया था, उसको कार्यान्वित करने में भी शायद सफल होता। निश्चित रूप से कुछ भी आज कहना सम्भव नही है; पर यह दुःख की बात है कि सिनेट के निश्चय के बाद भी उसके अनुसार काम नही किया गया। अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा प्रायः बीस बरसो तक बनी रही। हाल में मैट्रिक तक के लिए, अंगरेजी और हिसाब छोड़कर, और विषयों की शिक्षा और परीक्षा का माध्यम मातृभाषा बनी है। इन बीस बरसों में देश की स्थिति मे कितना अन्तर हो गया है, यह वही जानता है जिसने बीस बरसो के पूर्व सार्वजनिक हित के कार्यो मे भाग लिया हो और जो आज भी लेता हो। युनिवर्सिटी भी आखिर इस आवश्यक सुधार को ज्यादा दिन न रोक सकी। बीस बरसों के बाद उसने भी इसे स्वीकार कर ही लिया है।

: ३१ :

बिहार विद्यापीठ और सदाकत आश्रम

कलकत्ते में असहयोग का प्रस्ताव पास होने के बाद ही मैं कौन्सिल की अपनी उम्मीदवारी से हट गया। चुनाव नवम्बर के महीने मे ही होनेवाला था। इसलिए सबसे पहले इसी कार्यक्रम पर जोर देना जरूरी समझा गया। हम लोगों ने बिहार मे बहुत परचे छपवाये। उसमे जनता से अपील की गई थी कि जो लोग इस चुनाव मे खड़े हो रहे है, उनको कोई भी वोट न दे। कुछ लोग दौरे पर भी निकले। जगह-जगह सभाए करके लोगों को वही बात बताई गई। मैने भी कुछ दौरा किया। स्मरण है कि कार्तिक-पूर्णिमा के मेले के अवसर पर मैं 'दरौली' (जिला सारन) गया था। वहा सभा हुई थी, जिसमें मैने भाषण किया था। हम लोगो की इच्छा और कोशिश थी कि कोई उम्मीदवार ही न खड़ा हो; पर इसमे हम सफल नही हुए। सभी स्थानो के लिए उम्मीदवार खड़े हो गये। कुछ तो बिना विरोध चुने गये; पर जहा वोट देने का मौका मिला, वहां जनता ने बहुत कम सख्या मे वोट दिया। मेरा खयाल है कि बिहार मे शायद प्रतिशत बीस-पच्चीस से अधिक वोटरो ने वोट नही दिया था।

जब महात्माजी दिसम्बर में बिहार के दौरे पर आये, प्राय: उसके थोडे ही दिन पहले, एक घटना बिहार मे हुई थी, जिसका जिक्र जरूरी है। ऊपर कहा जा चुका है कि चम्पारन मे नील-सम्बन्धी जाच समाप्त हो जाने पर गाधीजी ने कई जगहो पर पाठशालाए खोली थी। इसके अलावा उस जागृति का नतीजा सूबे की कई जगहो मे किसी-न-किसी रूप मे देखने मे आया। इस जागृति मे होमरूल-आन्दोलन ने भी काफी मदद पहुंचाई थी। एक रूप इसका यह हुआ कि जहां-तहां किसान सभाएं कायम हुई, जो जमीदारो के विरुद्ध किसानों की शिकायतों को जाहिर करने लगीं। चम्पारन में भी एक किसान-सभा बन गई, जो किसानों की मदद करना अपना कर्तव्य समझती थी। उधर नये विधान के कारण यह भी स्पष्ट होने लगा कि जनता को कुछ हद तक मताधिकार मिलेगा और कौन्सिल के चुनाव में किसानों को हिस्सा लेना पड़ेगा। किसान-सभाओं को इससे भी प्रोत्साहन मिला। जमींदार भी कुछ घबराये। वे सोचने लगे कि हम लोग ऐसा संगठन

करें कि नये विधान के चुनाव में सफलतापूर्वक भाग ले सकें। उन्होंने नीलवरों के साथ एक समझौता किया और नीलवर-जमीदार-संस्था कायम की। इससे किसानों और शिक्षित-वर्ग में कुछ खलबली मची और रोष पैदा हुआ। उस समय के समाचार-पत्रों को देखने से पता चलेगा कि इस संगठन के विरोध में शिक्षित वर्ग ने भी आवाज उठाई। बिहार-प्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन में खुल्लम-खुल्ला मुकाबला करने की बात कही गई। इस संस्था का जन्म मुजफ्फरपुर में हुआ था। इसकी शाखाएं और-और जगहों में भी बनती गईं। दरभंगा के महाराजाधिराज इसके सभापति थे।

इन्हीं दिनों श्री रामरक्ष ब्रह्मचारी ने चम्पारन जिले के बेतिया-सब-डिवीजन के 'मछरगावा' गाव में जाकर काम शुरू किया। वह स्थायी रूप से ग्राम-संगठन का काम करना चाहते थे। वहां के लोगों ने भी उत्साहपूर्वक साथ दिया था। बहुतेरे स्वयंसेवक काम करने के लिए तैयार थे। वहां वह जो कुछ कर रहे थे, मेरे परामर्श से कर रहे थे। जब एक बार मैं वहां गया तो वहां का संगठन देखकर मुझे बहुत आनन्द हुआ। लोगों में ऐसी पंचायतें कायम करना जो आपस के झगड़े मिटा दें, बच्चों की शिक्षा के लिए पाठशालाएं खोलना, गावों की सफाई, किसानों की शिकायतें दूर करने का प्रयत्न करना—यही मुख्य कार्यक्रम थे। वहां एक आश्रम बना, जिसका खर्च जनता 'मुठिया' (घर-घर से एक-एक मुट्ठी अन्न) द्वारा जुटाती थी। संगठन का काम अच्छा चल रहा था। लोगों में उत्साह भी काफी था। पुलिस और निलहे गोरे इस प्रकार के संगठन को पसन्द नहीं करते थे—विशेष करके पुलिसवाले; क्योंकि उनकी धांधली वहां नहीं चल सकती थी। उसी इलाके में पुलिस ने एक बड़ा काण्ड कर डाला।

एक आदमी ने किसीके विरुद्ध पुलिस-दारोगा के पास नालिश कर दी। जहां यह वाकया हुआ था, उसके पास के ही गाव में दारोगा किसी दूसरे मुकदमे की तहकीकात कर रहे थे। उन्होंने पुलिस के सिपाहियों और गाव के दफादार को भेजा कि जिसके विरुद्ध नालिश की गई थी, उसे, और कुछ दूसरे लोगों को भी पकड़ लाओ। उन्होंने इस तरह जाने से इन्कार कर दिया। जोर लगाने पर भी वे नहीं गये। दारोगाजी को गुस्सा आया। तफसील की सारी बातें यहां देना अनावश्यक है। दारोगा ने जिले के सदर मुकाम से मिलटरी-पुलिस बुलवा ली। कई गावों को पुरानी रीति से लुटवा लिया। लोगों के साथ बड़ी सख्तियां हुईं। यहांतक कि स्त्रियां भी सुरक्षित न रहने पाईं। ब्रह्मचारी रामरक्ष के साथी सर्वश्री ध्वजाप्रसाद, रामविनोद-सिंह और मनोरंजनप्रसाद ने वहां की धांधली की खबरें अखबारों में छपवा दीं। रामरक्ष गिरफ्तार कर लिये गये। बिहार प्रान्तीय काग्रेस कमिटी ने,

जांच के लिए, श्री मजहरुल हक साहब की प्रधानता में, एक कमिटी बनाई। उस कमिटी ने जनता की शिकायतों को ही ठीक बताया और गवर्नमेंट की लीपा-पोती को गलत ठहराया।

यह आन्दोलन जोरों से चल ही रहा था जब गांधीजी बिहार में पहुंचे। वह चम्पारन जाने पर घटनास्थल पर भी गये। उन गावों के लोगो से भी उनकी भेट हुई। इसी यात्रा में गांधीजी ने अहिंसा की एक ऐसी व्याख्या दी, जो अभी तक जहां-तहां लोगों को समझानी पड़ती है। उन्होंने कहा था—"पुरुषों ने, स्त्रियो और घर-बार को छोड़, भागकर बड़ी कायरता दिखलाई थी। उनका धर्म था कि अपनी जान देकर उनकी रक्षा करते। पर यदि उनमें इस प्रकार बिना हाथ उठाये मरने की शक्ति नही थी तो उनको, चाहे जिस तरह हो सकता, मुकाबला करना चाहिए था। अपने धर्म मे स्थित रहकर, बिना हाथ उठाये, मर जाना ही सच्ची अहिंसा है; पर डर से भाग जाना बडी हिंसा है। भागने से बेहतर है कि जो कुछ मिले उसे हाथ में लेकर मुकाबला किया जाय।" मैंने यह महात्माजी के शब्दों मे नही कहा है। यह साराश मात्र है। ब्रह्मचारी रामरक्ष और दूसरों पर जो मुकदमे चले, वे कई महीनों तक पेशी मे रहे। अन्त मे सब झूठ साबित हुए। सब लोगों की रिहाई हो गई।

महात्माजी की यात्रा से आन्दोलन ने अधिक जोर पकडा। कौन्सिल का चुनाव खतम हो चुका था। अब अधिक जोर स्कूल-कालेजो के खाली करने पर था। हम लोगो ने भी निश्चय किया कि एक राष्ट्रीय महाविद्यालय (कालेज) खोला जाय। पटना-गया-रोड पर भाडे पर एक मकान लेकर कालेज खोला गया। मैं जिस मकान मे रहा करता था, उसके पास ही यह मकान भी था। जब मैंने सोच लिया कि भाड़े पर अपने लिए मकान रखना, जब वकालत छोड ही दी है, अनावश्यक है—१५०) मासिक का यह खर्च बन्द कर देना चाहिए। इसलिए मैंने अपना मकान छोड दिया। महाविद्यालय मे ही जाकर रहने लगा। कानून की पुस्तको को अपने मित्र श्री शम्भुशरण वर्मा के पास रख दिया। वे पुस्तकें उनके ही साथ उनके जीवन-भर रही। उनकी असामयिक मृत्यु के बाद फिर दूसरे मित्र के पास चली गईं, जहां आज तक उनके काम आ रही है।

पटने के इजीनियरिंग स्कूल के विद्यार्थियो का वहां के प्रिंसिपल से किसी विषय मे मतभेद हो गया। विद्यार्थियो ने हड़ताल कर दी। एक साथ जलूस बनाकर श्री मजहरुल हक साहब के पास, जो उन दिनों सिकन्दर-मंजिल मे फ्रेजर रोड पर रहा करते थे, गये। उनसे कहा कि हम लोगों ने स्कूल छोड़ दिया है, हमको स्थान दीजिये। मजहरुल हक साहब बड़े भावुक

और निर्भीक व्यक्ति थे। उनके त्याग की शक्ति भी अपूर्व थी। उस समय वह बहुत ही ऐश-आराम से उस बड़ी कोठी में रहा करते थे। अपने लिए एक बड़ी कोठी और भी बनवा रहे थे। सबकुछ छोड़कर, उन लड़कों को साथ लेकर पटना-दानापुर-सड़क पर एक बगीचे मे चले गये। वहां उनके एक परिचित सज्जन का छोटा-सा मकान था। वहीं रहने लगे। जाडे के दिन थे। खूब सर्दी पड़ रही थी। वह स्थान गंगा के किनारे होने के कारण कुछ अधिक ठण्डा था। घने बगीचों से घिरे रहने के कारण वहां की जमीन में कुछ सील भी थी। तब भी मजहरुल हक साहब वहां कुछ दिनों तक उसी छोटे बंगले मे रहे। आहिस्ता-आहिस्ता वहां ताड़ की चटाइयों के कुछ झोपड़े भी बन गये। लड़के भी बड़े उत्साही थे, कष्ट का खयाल न करके उनके साथ आनन्द मे रहने लगे। उसी स्थान का नाम उन्होंने 'सदाकत आश्रम' रखा। कुछ दिनों मे वही बीहड स्थान, जहां से रात में नौ बजे के बाद किसी राही का गुजरना खतरनाक समझा जाता था, गुलजार हो गया। वहां चर्खों का एक कारखाना खोल दिया गया। सभी लडके चर्खे बनाने मे लग गये। आहिस्ता-आहिस्ता हक साहब ने अपने पैसों से ही मकान बनवाना शुरू कर दिया। कुछ दूसरे लड़के भी जाकर उनके साथ रहने लगे। वह स्वय वही रहते, लडकों को पढ़ाते और वही मोटा खाना खाते जो लडके खाते। लडके अधिकाश हिन्दू ही थे। हक साहब का खयाल था कि कोई लड़का यह न समझे कि वह अपने हृदय में हिन्दू-मुसलमान का भेद, किसी प्रकार से भी रखते है। इसलिए वह सबको एक तरह से मानते थे। लड़के भी उनको पिता की तरह पूज्य समझते थे। वैसा ही उन-पर विश्वास भी रखते थे।

इस सम्बन्ध मे यहां एक बात उल्लेख कर देना आवश्यक है। इसी बात से उस महान व्यक्ति के सच्चे भावों का पता चलेगा। हक साहब के साथ एक बहुत गरीब घर का मुसलमान लडका रहा करता था। उन्होंने देखा कि लड़का पढ़ने मे तेज है। उनके दिल पर इसका भी असर पड़ा था कि मुसलमान होकर भी उसने हिन्दी और सस्कृत पढी थी। वह कालेज के फर्स्ट या सेकेण्ड इयर में पढ़ता था। नाम था मुहम्मद खलील। हक साहब उसे बहुत मानते थे। असहयोग का आरम्भ होने पर उसने भी कालेज छोड़ दिया। हक साहब के साथ ही उनकी कोठी छोडकर सदाकत आश्रम में जाकर रहने लगा। एक-डेढ़ साल के बाद मैंने सुना कि हक साहब ने उसको आश्रम से निकाल दिया। मुहम्मद खलील ने भी आकर मुझसे कहा कि वह गुस्सा हो गये हैं, आप सिफारिश करके उनको शान्त कर दीजिये। हक साहब की मेहरबानी मेरे ऊपर बराबर रहा करती थी। वह दिल से

मुझे प्यार किया करते थे। इसलिए मैंने मुहम्मद खलील के बारे में उनसे कहा। उस समय तक मुहम्मद खलील सारे बिहार मे विख्यात हो गये थे। उन्होंने असहयोग का आरम्भ होते ही एक राष्ट्रीय भजन बनाया था, जो उन दिनों बहुत प्रचलित हो गया था। वह वास्तव में बहुत सुन्दर, हृदय-ग्राही और मर्मस्पर्शी गान था। उसका टेक था—'भारत जननि, तेरी जय तेरी जय हो।' उन दिनों शायद ही ऐसी कोई सभा होती, जिसमें यह गीत बड़े उत्साह से न गाया जाता।

जब मैंने हक साहब से कहा कि मुहम्मद खलील की कोई गलती हो तो माफ कीजिये, तो उन्होने बहुत ही दुःख के साथ मुझसे कहा—"मैं तुम्हारी बात कभी नही टालता, पर इस समय मजबूर हूं। तुम नही जानते कि खलील ने कितना बुरा काम किया है। इसीलिए तुम सिफारिश कर रहे हो। मैंने जिस चीज को अपने सारे जीवन का मुख्य उद्देश्य बना लिया है, जिसके लिए आज तक सबकुछ करता आया हूं और आज फकीर बन गया हूं, उसपर इसने ठेस लगाई है। मैंने अबतक की सारी जिन्दगी मे हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए काम किया है। उसीमें आज भी लगा हुआ हूं। आश्रम में रहकर इसने हिन्दू लड़को के साथ ऐसा बर्ताव किया है, जिससे वे लड़के, जो मुझपर विश्वास करके प्रेमवश मेरे पास आ गये है, हिन्दू-मुस्लिम भेद-भाव समझने लगे। इसने मेरे सारे जीवन के बने-बनाये काम को बिगाड़ने का प्रयत्न किया है। इसने इस बात की कोशिश की है कि लड़कों को मुसलमान बनावे। मै सबकुछ माफ कर सकता हू; पर इस तरह इसलाम के नाम पर विश्वासी लडकों के साथ विश्वासघात करना बरदाश्त नही कर सकता। अब मै जान गया हूं कि हिन्दी और संस्कृत भी इसने ढोंग के लिए पढी है। एक दिन यह हिन्दू-मुस्लिम फसाद भी करा देगा। मैं इसे आश्रम में हरगिज न रहने दूगा।"

यह वही मुहम्मद खलील थे, जो कुछ दिनो बाद 'खलील दास' के नाम से विख्यात हुए। इनके सम्बन्ध मे जनता समझती है कि इन्होंने कई स्थानों मे हिन्दू-मुस्लिम नाइत्तफाकी का संगठन किया। इसके बहुत बुरे फल, दंगा-फसाद के रूप मे देखने में आये। इन दंगों में बहुत-से हिन्दुओं और मुसलमानों ने अपनी जाने गंवाई। जब मैंने कई बरसो के बाद इनके सम्बन्ध में इस तरह की शिकायतें सुनी तब मुझे हक साहब की भविष्यवाणी याद आई। उनके वे उद्‌गार—वे मर्मभरे शब्द—कानों मे एक बार फिर गूंज उठे।

राष्ट्रीय महाविद्यालय खोल दिया गया। मैं उसका प्रिंसिपल बनाया गया। उसके अध्यापकों में श्री बदरीनाथ वर्मा—जो उस समय बिहार-

नेशनल (बी० एन०) कालेज (पटना) मे अंगरेजी के प्रोफेसर थे, श्री जगन्नाथप्रसाद एम० ए० काव्यतीर्थ—जो पटना-कालेज मे संस्कृत के प्रोफेसर थे, श्री प्रेममुन्दर बोस—जो भागलपुर के टी० एन० जुबली-कालेज मे फिलासफी के प्रोफेसर थे, अपने-अपने पदों से इस्तीफा देकर, आ जुटे। इसके अलावा श्री जगतनारायणलाल, श्री रामचरित्रसिंह, श्री अब्दुलबारी प्रभृति भी आ गये। हमने कालेजो के उन लडकों को, जो पढ़ना चाहते थे, पढाना शुरू कर दिया। अभी प्रायः वही विषय पढाये जाते, जो सरकारी कालेजो मे पढाये जाते थे। जो रुपया चम्पारन-यात्रा के समय महाविद्यालय के लिए जमा किया गया, इसीमें खर्च किया जाने लगा।

उधर युनिवर्सिटी की परीक्षाओं का समय नजदीक आ रहा था। कुछ भाइयों का, विशेषकर मौलवी शफी दाऊदी का, विचार था कि हम लोगों को उन लडको की परीक्षा भी लेनी चाहिए, जो सरकारी परीक्षाओं मे शरीक होना नही चाहते। इसलिए यह भी आवश्यक हो गया कि परीक्षाओं का सगठन किया जाय। महात्मा गाधी ने भी बिहार से जाने के समय कहा था कि बिहार मे भी विद्यापीठ होना चाहिए। मेरे यह कहने पर कि हमारे पास रुपये नही है, उन्होंने कहा था कि चिन्ता न करो, अगर काम ठीक तरह से होगा तो रुपयो की कमी न होगी। जब नागपुर-काग्रेस के बाद वह दुबारा बिहार के दौरे पर आये तो झरिया मे पचास-साठ हजार रुपये जमा करके मेरे पास तार दिया कि पटने आ रहा हूं—विद्यापीठ के उद्घाटन का प्रबन्ध करो। उसी मकान मे, जहा हमने महाविद्यालय खोल रखा था, उन्होंने आकर विद्यापीठ का उद्घाटन किया। श्री मजहरुल हक साहब उसके चासलर मुकर्रर किये गए। हमने बाजाब्ता सिनेट वगैरह भी बना लिया। हम लोग पाठ्यक्रम निर्धारित करने के काम मे लग गये।

यह सब देखकर सरकारी कालेज में पढनेवाले लडको मे भी बहुत उत्साह उमडा। एक दिन पचास-साठ लडके जलूस बनाकर पटना-कालेज और साइंस-कालेज छोड़कर, सीधे पटना-गया-रोड पर हमारे महाविद्यालय मे आ गये। इनमें पटना-युनिवर्सिटी के अच्छे-से-अच्छे विद्यार्थी भी थे। कुछ तो रह गये, जो आज सारे प्रान्त मे फैले हुए है और आज भी सूबे के प्रमुख लोगों मे हैं। कुछने कुछ दिनो तक तो काम किया; पर जब आन्दोलन ढीला पडा तो फिर सरकारी कालेज मे वापस चले गये। वहां से वे अच्छी तरह पास करके सरकारी नौकरी मे चले गये। आज वे ऊंचे ओहदे तक पहुचकर सरकारी काम कर रहे हैं। कुछ तो शीघ्र ही वापस चले गये और फिर अपनी पुरानी रीति से काम करने लगे।

: ३२ :

पूर्णतः असहयोग में

असहयोग के मुख्य अंग चार बहिष्कार थे—(१) सरकारी उपाधियों और खिताबो को छोड़ देना, (२) सरकारी शिक्षा-संस्थाओं से सम्बन्ध-विच्छेद, जिसका अर्थ था कि न उनमे खुद शिक्षा ग्रहण करना और न अपने बाल-बच्चो को वहा शिक्षा पाने देना, (३) कौन्सिल में न जाना और उनसे किसी प्रकार का लाभ न उठाना, (४) सरकारी अदालतो से सबध छोड़ना, अर्थात् न उनमे मुकदमे दायर करना और न उनमे वकालत या मुख्तारकारी या नौकरी करना। आशा की जाती थी कि हममे से प्रत्येक इन चारों बहिष्कारो को, जहातक जो उससे सम्बन्ध रखता हो, पूरा करेगा। मुझे तो कोई खिताब या उपाधि नही मिली थी; पर मेरे भाईसाहब को को-आपरेटिव सोसाइटी कायम करने और उसमे दिलचस्पी लेने के लिए 'रायसाहब' का खिताब मिला था। मैने उनसे कभी खिताब छोड़ने के लिए नही कहा, पर उन्होने खुद ही नागपुर-कांग्रेस के कुछ बाद उसे वापस कर दिया। इसका संयोग इस तरह घटा। जब असहयोग-आन्दोलन जोर पकडने लगा तो बिहार-उड़ीसा की सरकार के मन्त्री मिस्टर हैलेट ने (जिन्होने अभी युक्त-प्रान्त के गवर्नर के पद से अवकाश ग्रहण किया है) एक गश्ती चिट्ठी निकाली, जिसमे उन्होने कहा कि म्युनिसिपैलिटी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड भी एक प्रकार से सरकार के अंग हैं, इसलिए उनके सदस्य और कर्मचारी किसी तरह असहयोग में भाग नही ले सकते। इससे लोगो में और भी रोष पैदा हुआ। और मेरे भाई उस समय छपरा-म्युनिसिपैलिटी के वाइस-चेयरमैन और ऑनररी-मजिस्ट्रेट थे। उन्होने अपने खिताब को वापस कर दिया, मजिस्ट्रेटी से भी इस्तीफा दे दिया। साथ ही उन्होने यह भी साफ कह दिया कि वह जनता द्वारा चुने गये हैं, इसलिए वह वाइस-चेयरमैनी से नहीं हटेंगे—अपना वह काम करते रहेंगे।

भाईसाहब के लड़के जनार्दन ने हाल ही में मैट्रिक पास करके हिन्दू-युनिवर्सिटी के इंजीनियरिंग कालेज मे नाम लिखाया था। मेरे दो लड़को में मृत्युजय, जो हाल ही कालाआजार से बचकर अब अच्छा हो गया था, मैट्रिक में पढ़ता था; पर कम उमर होनेके कारण युनिवर्सिटी

के नियमानुसार परीक्षा में बैठने से रोक लिया गया था। दूसरा लड़का धनञ्जय स्कूल के किसी निचले दर्जे में पढता था। तीनों लडके कालेज और स्कूल से हटा लिये गए। तीनों मे कोई भी फिर सरकारी स्कूल या कालेज में नही गया। जनार्दन कीर्त्यानन्द-आयरन-स्टील वर्क्स के लोहे के कारखाने मे कुछ दिनो के बाद काम सीखने लगा। वहां एक-डेढ़ साल काम सीखने के बाद वह विलायत चला गया। उसको विदेश में लोहे का काम सीखने के लिए एक छात्रवृत्ति मिल गई। उसीसे वह अपना सब काम चला लेता, घर से भाईसाहब को थोडा-बहुत ही खर्च करना पड़ा। मृत्युंजय बिहार-विद्यापीठ मे पढने लगा और वहा का स्नातक हुआ। छपरे मे राष्ट्रीय स्कूल जबतक चलता रहा, वहू पढ़ता रहा। उसके बाद उसने घर ही पर जो कुछ शिक्षा मिल सकी, प्राप्त की। मैं ऊपर कह चुका हूं कि मैंने किस तरह युनिवर्सिटी से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया था। वकालत मैंने छोड ही दी थी। इस तरह ईश्वर की दया से हम लोगों ने अपने शरीर से और व्यक्तिगत रूप से असहयोग का कार्यक्रम यथासाध्य पूरा किया।

उस समय तक बिहार मे कांग्रेस का सगठन नही के बराबर था। प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी थी। उसके मन्त्री नवाब सरफराज हुसेन खा थे। मैं भी उनका सहायक था। इसी तरह जिलों मे भी कही-कही किसी जिला कमिटी का कोई मन्त्री था। पर उन दिनो बाजाब्ता मेम्बर बनने की प्रथा न थी। जो चाहता था अपनेको मेम्बर समझ लेता था। प्रतिनिधियो का चुनाव भी बाजाब्ता नही हुआ करता था। जो कांग्रेस के जलसे के समय पहुच जाते थे, प्रतिनिधि बन जाते थे। जिले या प्रान्त के नामधारी मंत्री उनको प्रमाण-पत्र दे देते थे। वे १०) फीस दाखिल करके प्रतिनिधि हो जाते थे। ऐसे ही प्रतिनिधि कांग्रेस के सालाना जलसे के समय अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी के मेम्बर चुन देते। उस चुनाव मे अधिक होड नहीं होती थी। अक्सर प्रान्त के कुछ प्रमुख लोग, जो कांग्रेस में दिलचस्पी लिया करते थे, चुन दिये जाते थे। अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी के नियमानुसार बिहार-प्रान्त को उसे १५००) वार्षिक चन्दा देना पडता था। एक प्रकार से यह बात मान ली गई थी कि जो लोग १००) देगे, वे ही अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी के मेम्बर चुने जायगे। इसलिए, बहुतेरे ऐसे लोग, जो यह शर्त पूरी नही कर सकते थे, कभी उम्मीदवार होने की हिम्मत नही करते थे। इससे यह न समझना चाहिए कि सभी चुने गये सदस्य यह १००) अदा कर देते थे। उन दिनों अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के मंत्री थे राजमहेन्द्री के सुविख्यात कांग्रेसकर्मी श्री सुब्बाराव पान्तलु। मुझे याद है कि वह अक्सर पटने में यह चन्दा जमा करते। तो भी यह हर साल अदा नही होता! १९२० में कई

हजार रुपये बिहार के नाम पर बाकी पड़े थे !

नागपुर-कांग्रेस ने कांग्रेस की नियमावली बदल दी। उसने सभी जगहों में कांग्रेस का मेम्बर बनाना अनिवार्य कर दिया। प्रत्येक सूबे को उसकी आबादी के प्रतिलाख पर एक प्रतिनिधि चुनने का ही अधिकार दिया। इस प्रकार प्रतिनिधियों की सख्या परिमित हो गई। उसने यह भी अनिवार्य कर दिया कि प्रतिनिधियों का चुनाव केवल कांग्रेस के मेम्बर ही कर सकते हैं। वह भी किसी कांग्रेस-कमिटी की बाजाब्ता बैठक में ही। चुने हुए प्रतिनिधियो की सूची अधिवेशन के कई दिन पहले ही अखिल भारतीय कमिटी के दफ्तर मे पहुच जानी चाहिए। उस सूची मे जिनके नाम दिये गए होते थे, उन्हे छोड, बिना विशेष कारण के, कोई दूसरा प्रतिनिधि नही हो सकता था। सूची के नामो मे हेरफेर तभी हो सकता था, जब कोई चुना हुआ प्रतिनिधि इस्तीफा दे देता और उसकी खाली जगह पर नया चुनाव हो जाता। इसका प्रमाण प्रान्तीय मत्री को देना होता।

इन नियमों के कारण अब कांग्रेस के चुनाव में काफी सख्ती आ जानेवाली थी, अब पुरानी नीति चलनेवाली न थी। इसलिए नये सिरे से संगठन करके बाजाब्ता चुनाव कर लेना आवश्यक हो गया था। कांग्रेस ने इसके लिए समय भी निर्धारित कर दिया था। प्रान्तीय कमिटी को नये नियमों के अनुसार अपने नियम भी बना लेने का अधिकार दिया गया था। इसलिए सोचा गया कि जबतक नया संगठन न हो जाय, एक छोटी कमिटी बना दी जाय, जो सब काम करेगी। पुराने बहुतेरे कांग्रेसी नेता अब कांग्रेससे अलग हो गये थे। कुछ तो कांग्रेस के सिद्धान्त बदलने के कारण और कुछ वे, जिनको सिद्धान्त (Creed) अगर मजूर भी था तो असहयोग के कार्यक्रम से विरोध था। इसलिए भी पुनः संगठन आवश्यक था। इस कमिटी का मंत्री मैं बनाया गया। सभापति हुए मौलाना मजहरुल हक साहब। इसको पुनस्सघटन-समिति (Reorganisation Committee) का नाम दिया गया। कमिटी ने अपना काम बड़े उत्साह के साथ किया। हम जहा जाते, कांग्रेस के मेम्बर बनाने की बात करते और असहयोग का प्रचार तो करते ही।

बहुतेरे वकील, मुख्तार और विद्यार्थी—जिन्होंने अपने-अपने काम छोड़ दिये थे—सारे प्रान्त में फैल गये। वे सभी जगहों में कांग्रेस का सन्देश पहुंचाने लगे। प्रायः सभी जिलों में राष्ट्रीय पाठशालाएं खुल गई; कुछ तो मैट्रिक कक्षा तक के लिए और कुछ नीचे के दर्जे तक। सबका सम्बन्ध बिहार-विद्यापीठ के साथ हो गया। मैं समझता हूं कि मैट्रिक पाठशालाओ की संख्या पचास के लगभग होगी और प्राइमरी शालाएं प्रायः दो-ढाई सौ। सब पाठ-

शालाओं मे, जो बिहार-विद्यापीठ से सम्बद्ध थीं, बीस से पच्चीस हजार तक विद्यार्थी शिक्षा पाने लगे। बहुतेरे लोग, जिन्होंने दूसरा काम छोड़ा था, इन पाठशालाओ मे शिक्षक बन गये।

उन दिनो प्रान्त-भर में अनगिनत सभाएं हुई होंगी। किसी भी जिले का शायद ही कोई हिस्सा बचा होगा, जहा कार्यकर्ता न पहुंचे हों और जहां सभा करके काग्रेस का कार्यक्रम और सदेश लोगों को न बताया गया हो। मैंने सारे सूबे का चक्कर लगाया। १९२१ में ही पहले-पहल सारे सूबे का परिचय हुआ। असंख्य कार्यकर्ताओं से जान-पहचान भी हो गई।

मैं वकालत तो किया करता था, पर बड़ी सभाओं में बहुत बोलने का अभ्यास नही था, यद्यपि मैं लड़कपन से ही सभाओ में भाग लिया करता था। असहयोग के प्रचार में असख्य सभाओ मे भाषण करने पडे। नतीजा यह हुआ कि सभाओं मे बोलते समय जो थोड़ा सकोच हुआ करता था, वह निकल गया। मै अब धडल्ले से भाषण कर सकता था। जिन जिलो मे लोग भोजपुरी बोला करते है, उनमे जाता तो भोजपुरी मे ही भाषण करता। दूसरी जगहो मे शुद्ध हिन्दी मे। मुझे स्मरण नही है कि पुरुलिया मे मैंने कभी बगला मे उस साल भाषण किया या नही, यद्यपि यह याद है कि पुरुलिया मे मैंने कभी बगला मे भी भाषण किया है। सभाए भी कुछ छोटी-मोटी नही होती थी। पाच-दस हजार का जमाव होना तो कोई बड़ी बात नही थी। दस हजार लोगो की सभा मे आसानी से मैं सब लोगो तक अपनी आवाज पहुचा सकता था। उससे अधिक सख्या होने पर परिश्रम पड़ता था। मेरा अनुमान है कि पन्द्रह हजार तक की सभा मे यदि लोग शान्त रहते तो मैं अपनी आवाज पहुचा सकता, पर बहुत अधिक परिश्रम पड़ता और पेट मे दर्द हो जाता। मुझे यह भी याद है कि बीस-पच्चीस हजार के मजमे में भी मैंने उस साल मे भाषण किये थे। एक सभा छपरा जिले मे हथुआ मे हुई थी। वहा न मालूम किस तरह खबर उड़ गई थी कि सभा मे महात्मा गांधी आनेवाले है। इसलिए वहां प्राय पचास हजार का जमाव हो गया। हजार कोशिश करने पर भी सभा ठीक नही जम सकी। यद्यपि मैंने अपनी पूरी शक्ति-भर जोर लगाकर एक छोटा-सा भाषण किया तथापि मुझे शक है कि थोड़े ही लोगो ने उसे सुना या समझा।

मैं भाषण करते समय देखा करता था कि सभा में उपस्थित लोगों पर उसका कैसा प्रभाव पड़ रहा है। जहा अच्छा प्रभाव पड़ता नजर आता और जनता सुनने के लिए उत्सुक और समझदार मालूम पड़ती वहा का भाषण भी मैं खुद समझ सकता था कि अच्छा हो जाया करता था। जहां ये बातें नही होती वहां भाषण भी ऐसा-वैसा ही होता। भाषण भी कुछ छोटे

नहीं होते। कांग्रेस का इतिहास, खिलाफत-आन्दोलन और पंजाब-सम्बन्धी जुल्म तथा स्वराज्य की आवश्यकता के अलावा असहयोग का कार्यक्रम मैं सभी सभाओं में बहुत विस्तार के साथ बताता। इसमें प्रायः एक-डेढ घंटे लग जाते। जहां दस हजार तक का जमाव होता वहां तो पूरे विस्तार के साथ डेढ़ घंटे या इससे अधिक देर तक भी बोल लेता। जहां इससे अधिक जनता एकत्र होती वहा कुछ संक्षेप करना पड़ता। बीस हजार से अधिक लोगो की सभा में आध घटे से ज्यादा नही बोल सकता था। इस तरह मैं सारे सूबे में दौरा करता रहा। दूसरे साथी भी यही कर रहे थे।

: ३३ :

'देश' और 'सर्चलाइट' का प्रकाशन

असहयोग-आन्दोलन में सभी नेता शरीक नहीं हुए। कांग्रेस के पुराने और वयोवृद्ध नेताओं ने, जो असहयोग में शरीक नहीं हुए, एक दूसरी संस्था 'बिहार-प्रान्तीय लीग' के नाम से कायम की। देश के नरमदल के समाचार-पत्रों में इसकी चर्चा बहुत चली; पर यह संस्था कुछ कर न सकी। इसके सम्बन्ध में पीछे कुछ सुनने में नहीं आया। हमारे सूबे में एक बात की खूबी थी। मतभेद होते हुए भी आपस में संघर्ष नहीं हुआ। हम लोगों का आपस का व्यवहार भी ज्यों-का-त्यों बना रहा। पर इतने लोगों के अलग हो जाने के कारण, विशेष करके नागपुर में कांग्रेस की नियमावली और उसके विधान में बहुत अदल-बदल हो जाने के कारण, कांग्रेस कमिटियों का पुनः संगठन आवश्यक हो गया। यह संगठन कई महीनों में जाकर पूरा हुआ। जून के अन्त तक जिला-कमिटियां बाजाब्ता बनकर प्रान्तीय कमिटी का चुनाव कर सकीं। तब फिर अखिल भारतीय कमिटी के नये सदस्य चुने गये।

कांग्रेस के पुनः संगठन के प्रश्न के साथ-साथ कुछ और भी प्रश्न उपस्थित हो गये। समाचार-पत्रों के लिए बिहार अच्छा सूबा नहीं है। पहले बहुत परिश्रम और त्याग से 'बिहार-टाइम्स' और 'बिहारी' निकाले गये थे; पर आर्थिक कठिनाइयों के कारण दोनों बन्द हो चुके थे। 'बिहार-टाइम्स' के जन्मदाता और मुख्य कार्यकर्ता बाबू महेशनारायण (अब स्वर्गीय) थे। उन्होंने उसे अपनी जिन्दगी में चलाया था। श्री सच्चिदानन्दसिंह (अब डाक्टर) की भी अखबार-नवीसी में बहुत दिलचस्पी रही है। इन्होंने अपने निजी 'हिन्दुस्तान रिव्यू' के अलावा इन अखबारों को भी धन और कलम से पूरी सहायता की थी। 'बिहारी' को बनैली-राज से बहुत मदद मिली थी। एक प्रकार से वही उसके बन्द होने का कारण भी हुआ। दूसरा अखबार हथुआ के महाराजा की ओर से 'एक्सप्रेस' नाम से निकलता था। घाटे पर बहुत दिनों तक चलकर वह भी बन्द हो गया। १९१८ में पटने के सभी नेताओं ने, विशेष करके श्री सच्चिदानन्दसिंह और श्री हसन इमाम ने, एक अखबार की जरूरत बहुत महसूस करके निश्चय किया कि एक पत्र

निकाला जाय। उसका नाम श्री सिंह के कहने के अनुसार 'सर्चलाइट' रख दिया गया। वह सप्ताह मे दो बार निकला करता था। उसके डाइरेक्टरों मे श्री सिंह, श्री हसन इमाम प्रभृति थे। नये लोगों मे श्री व्रजकिशोरप्रसाद थे और मैं भी था। आन्दोलन आरम्भ होने पर 'सर्चलाइट' के सामने यह प्रश्न आया कि वह असहयोग का समर्थन करे या नही। पैसा खर्च करनेवालो मे मुख्य श्री हसन इमाम और श्री सिंह थे। वे असहयोग के पक्षपाती नही थे। इधर सारे सूबे मे असहयोग की लहर इस तरह उमड़ रही थी कि उसके खिलाफ जाने का अर्थ था 'सर्चलाइट' का हमेशा के लिए लोकप्रियता खो देना। इसके अलावा डाइरेक्टरों मे भी हम लोग थे, जो असहयोग मे शरीक थे। उसके सम्पादक श्री मुरलीमनोहर प्रसाद भी असहयोग के पूरे पक्षपाती थे। ऐसी अवस्था मे, आपस के इस मतभेद के कारण, नीति निर्धारित कर देना आवश्यक हो गया।

१९२० से, सर्चलाइट प्रेस से ही, हिन्दी-साप्ताहिक 'देश' भी निकला करता था, जिसका नाम-निहादी सम्पादक मै समझा जाता था। असहयोग ने राजनीति को, अगरेजी पढे कुछ वकील-बैरिस्टरों और बड़े-बड़े व्यापारियों के अंगरेजी तरीके से सजे कमरो मे बाहर निकालकर, गावों के बरगदों के साये के नीचे और गावों के खेत-खलिहानो तक पहुचा दिया था। वहा अंगरेजी का गुजर नहीं था। जो जनता तक पहुचना चाहता था, उसे देशी भाषा की शरण लेनी पड़ती थी। इसलिए हम लोगो ने सोचा कि 'सर्चलाइट' मे ज्यादा उपयोगी 'देश' होगा। हमने श्री हसन इमाम और श्री सिंह से 'सर्चलाइट' और 'देश' के सम्बन्ध मे यह समझौता कर लिया कि 'सर्चलाइट' अपने सम्पादकीय लेखो मे असहयोग का न तो विरोध करेगा और न समर्थन। पर दूसरो के लेख, लेखक के नाम के साथ, चाहे वे पक्ष मे हो अथवा विपक्ष में, छाप सकेगा। 'देश' हम लोगों का पत्र हो जायगा। अब से उसका घाटा और नफा हम लोगो का होगा। उसकी नीति हम जैसी चाहेगे वैसी ही होगी; पर वह सर्चलाइट प्रेस में छपाई देकर छपा करेगा।

इस तरह एक हिन्दी-साप्ताहिक हमारे हाथ मे आ गया। अगरेजी 'सर्चलाइट' भी अगर सहायक नही तो विरोधी भी न रहा। हम यह भी समझते थे कि हम लोग उसमे लेख लिखा करेंगे पर यह आशा पूरी नहीं हुई; क्योंकि आन्दोलन मे इतना काम बढ गया कि लेख लिखने का समय ही न मिला। 'देश' ने प्रचार-कार्य में बहुत सहायता पहुंचाई। ग्राहकों की संख्या भी बहुत बढ़ गई। विज्ञापन भी बहुत मिलने लगे। हम लोग तो आन्दोलन में लगे थे। 'देश' के प्रबन्ध पर ध्यान नही दे सके। जैसे-जैसे ग्राहकों की संख्या बढती गई, प्रबन्धक की गलती से घाटे की मात्रा

भी वैसे ही बढ़ती गई। कुछ दिनों के बाद जब हमने हिसाब देखा तो मालूम हुआ कि विज्ञापन की दर इतनी कम कर दी गई थी कि उसमे जितना खर्च पड़ता था उतना भी विज्ञापनों मे नही मिलता था। इसलिए जैसे-जैसे बिकनेवाली प्रतियों की संख्या बढ़ी, घाटा भी बढ़ता गया। हमने यह देखा कि बहुतेरों के माल का प्रचार हम अपने खर्च मे सारे प्रान्त मे जोरों से कर रहे थे; पर यह ज्ञान बहुत नुकसान उठा लेने के बाद हुआ। इस प्रकार उस समय 'देश' पर जो बोझ पड़ा, वह उसके गले मे हमेशा के लिए एक भारी पत्थर-सा बंध गया।

जन-आन्दोलन कुछ दिनों बाद ढीला पड़ा। 'देश' की बिक्री भी कुछ कम हो गई। अन्त मे आर्थिक कठिनाइयों के कारण उसे बन्द करना पडा। जितने दिनो तक आन्दोलन का जोर रहा, वह खूब काम करता रहा और बहुत लोकप्रिय भी हो गया था।

'सर्चलाइट' निर्धारित नीति पर चल रहा था। कुछ दिनों के बाद श्री हसन इमाम और श्री सिह उसमे अलग हो गये। वह हम लोगों के अधिकार मे पूरी तरह से आ गया। यहा हम यह कहे बिना नही रह सकते कि उन दोनो ने यद्यपि पैसे और परिश्रम से इसे शुरू मे बहुत सहायता पहुचाई थी तथापि उसे बड़ी उदारता से हम लोगो के हाथों मे आने दिया। जबसे यह स्थिति हो गई, 'सर्चलाइट' पूरा-पूरा कांग्रेसी पत्र हो गया। उसके सम्पादक श्री मुरलीमनोहरप्रसाद के मिजाज के अनुकूल यही था। जब १९३०-३४ का सत्याग्रह चला और कांग्रेस की आज्ञा निकली कि जो समाचार-पत्र स्वतन्त्रता-पूर्वक सच्ची घटनाएं न छाप सके और अपने स्वतन्त्र विचार न प्रकट कर सकें, वे सरकारी हुक्म मानने के बजाय अपना प्रकाशन ही बद कर दे, तो 'सर्चलाइट' उन बहुत ही अल्प-सख्यक पत्रों मे से एक था, जिसने कांग्रेस की आज्ञा का पूरी तरह से पालन किया। यह सब होते हुए भी 'सर्चलाइट' कभी आर्थिक कठिनाइयो से मुक्त नही हुआ। अन्त मे हम लोगो को उसका स्वत्व श्री बिडला-ब्रदर्स को इस शर्त पर दे देना पडा कि उसकी आर्थिक व्यवस्था वह करेंगे; पर उसकी सम्पादकीय-नीति मे हम लोगो का ही अधिकार रहेगा। यह निश्चय १९४१ के अन्त मे हुआ। तबसे बिडला-बन्धु बहुत-कुछ खर्च कर चुके है। अभी वह अर्थ-सकट से बाहर हो ही रहा था कि १९४२ के आन्दोलन मे सरकार ने उसे बन्द कर देने का हुक्म निकाल दिया। सम्पादक भी हम लोगो के साथ नजरबन्द कर दिये गए। जहां आज मैं इन पंक्तियो को लिख रहा हूं, वह भी साथ हैं।

: ३४ :

आन्दोलन का जोर और सरकारी दमन

ऊपर कहा जा चुका है कि कांग्रेस का सालाना जलसा १९२० के दिसम्बर मे नागपुर में हुआ था। मै इस अधिवेशन मे भी अपनी अस्वस्थता के कारण शरीक न हो सका था; पर सुना कि अधिवेशन मे इतने प्रतिनिधि आये थे जितने शायद कभी किसी अधिवेशन मे नही आये थे। इसका एक कारण भी था। कुछ लोग समझते थे कि असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव पर नागपुर मे फिर विचार किया जायगा। अत दोनो पक्षो के लोग अपने-अपने पक्ष को बल पहुंचाने के लिए अधिक-से-अधिक संख्या मे वहां आये थे। पर दोनो पक्षो मे समझौता हो गया। अन्त मे कुछ हेर-फेर के साथ असहयोग का निश्चय कायम रह गया। इस प्रस्ताव के द्वारा देश को क्रमशः असहयोग का आदेश दिया गया। सरकारी खिताबों को छोडना, कौन्सिल से अलग रहना, जो कांग्रेस के निश्चय के विरुद्ध कौन्सिल मे गये है उनसे किसी प्रकार की सेवा न लेना, गवर्नमेण्ट से सम्बद्ध शिक्षालयो से अलग रहना और अदालतों का बहिष्कार—आरम्भ मे यही मुख्य कार्यक्रम था। फिर क्रमशः सरकारी नौकरी छोडना और कर-बन्दी का आदेश मिलने पर उसे भी करने का निश्चय हुआ। साथ ही, शिक्षा के लिए गैर-सरकारी राष्ट्रीय शिक्षालयों की स्थापना, आपस के झगडों को सुलझाने के लिए पंचायत की स्थापना, चर्खा-प्रचार और विदेशी वस्त्र-बहिष्कार, ये आवश्यक बतलाये गए थे। हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य और अहिंसा पर भी जोर दिया गया था।

नागपुर के निश्चय के बाद वे सभी लोग, जो पहले कुछ दुविधा में थे, अब दृढ होकर असहयोग में लग गये। महात्माजी ने यह भी कह दिया कि कांग्रेस के कार्यक्रम को यदि लोग पूरा कर दे, तो स्वराज्य एक बरस के भीतर ही हो जायगा। लोगों ने एक बरस की बात मन मे धर ली। शर्तों को पूरा करने के प्रयत्न मे जी-जान से सब लग गये। ऊपर कही हुई सभाओं मे प्रचार का यही मुख्य उद्देश्य था।

ऊपर कहा जा चुका है कि सारे सूबे (बिहार) में असंख्य कार्यकर्ता काम करने लगे और स्वराज्य तथा असहयोग का सन्देश गांव-गांव में पहुं-

चाने लगे। थोड़े ही दिनों में अद्भुत जागृति देखने में आने लगी। सरकार भी अपनी ओर से चुप न रही। वह देखती थी कि इस प्रचार का फल यह हो रहा है कि जनता मे उसका रोब एकबारगी उठता जा रहा है, लोग निर्भीक होते जा रहे है। हम भी कांग्रेस की ओर से इस बात का पूरा खयाल रखते थे कि उत्साह मे जनता की ओर से कही ज्यादती न हो जाय। इसलिए नागपुर के बाद प्रान्तीय कमिटी ने जो आदेश निकाला, उसमें शांति और अहिंसा पर पूरा जोर दिया गया—साफ-साफ कहा गया कि किसीके साथ किसी प्रकार की जबरदस्ती न की जाय। हम समझते थे, और कार्यकर्ताओं को भी यही समझाने का प्रयत्न किया गया, कि हम बल-प्रयोग में सरकार से हार जायगे; क्योंकि उसके पास इसके साधन है, हमारे पास नही। इसके अलावा असहयोग की मुख्य शर्त अहिंसा है। उसके द्वारा जनता को भी हम अपनी ओर खीच सकते है। यदि हमारी ओर से जोर-जबरदस्ती हुई तो इसका नतीजा उलटा होगा, हमे एक दिन पछताना पडेगा। इसलिए जहा कही भाषण किया जाता, इसपर जोर दिया जाता। जो पर्चा निकाला जाता, उसमे भी इसीपर जोर दिया जाता। गवर्नमेण्ट इसकी खोज मे रहती कि कही भी कुछ अशान्ति हो तो घर दबाया जाय। उसे इसका मौका ही न मिलता!

मुजफ्फरपुर-जिले मे महगी के कारण कई जगहो मे हाटो की लूट हो गई। दरभगा-जिले और चम्पारन-जिले मे भी ऐसा ही हुआ। सरकार को वह बहाना मिल गया जो वह खोज रही थी। हम लोग शराबबन्दी का भी प्रचार किया करते थे। इसका असर भी काफी पड रहा था। आबकारी की दूकानो का ठेका मार्च के महीने मे दिया जाता है। बिक्री कम होती जा रही थी। सरकार को डर हो गया कि यह एक आमदनी का बड़ा जरिया खतरे मे पड गया। इन दोनो बातो को लेकर दमन जारी हो गया। दमन मुजफ्फरपुर-जिले से ही आरम्भ हुआ। और जिलो मे भी जल्द ही फैल गया। चम्पारन मे लोरिया-काण्ड के समय से ही कुछ दमन चल रहा था। वहा अब और भी जोर लगाया जाने लगा। दमन का आरम्भिक रूप यह हुआ कि कार्यकर्ताओं पर दफा १०७ जाब्ता फौजदारी के अनुसार, मुचलका देने के मुकदमे चलाये गए। दफा १४४ जाब्ता फौजदारी के अनुसार कार्यकर्ताओं को सभा मे भाषण करने और जलूस वगैरह मे शरीक होने मे मना किया गया। इतने दिनो के बाद यह कहना तो मुश्किल है कि कितने आदमियो पर इस तरह के मुकदमे चलाये गए; पर इतना निश्चय ही कहा जा सकता है कि लोगों ने जमानत नही दी। जिनपर मुकदमा चलाया जाता वे जेल चले जाते। हा, मुकदमे मे जहा-तहां लोगो ने पैरवी की। कही-कहीं

मुकदमा अन्त में खारिज करना पड़ा; क्योंकि कोई सबूत न मिला। बात तो यह थी कि सभा करने के सिवा, जिसमे असहयोग का कार्यक्रम समझाया जाता, हमारे आदमी दूसरा कोई काम कर भी नहीं रहे थे। जो हाट-लूट की लहर चली थी उसके रोकने मे हमारे आदमियों ने बहुत मदद की थी। जहां कहीं से खबर आ गई, वहां दौडकर पहुंच जाते और जनता को समझा-बुझाकर सभाल लेते। लुटेरो से मुकाबला करने के लिए जनता को तैयार भी कर देते। पर सरकार तो आन्दोलन को रोकना चाहती थी। इसलिए उसने लुटरो के बदले काग्रेसी कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारी को ही अधिक जरूरी और मुनासिब समझा।

थोडे ही दिनों में सैकड़ो कार्यकर्ता इस प्रकार के मुकदमों के शिकार हो गए। प्रान्तीय सरकार के प्रधान सेक्रेटरी मिस्टर रेनी ने एक सर्कुलर निकाला, जिसमे जिले के अधिकारियो को प्रोत्साहन दिया गया कि वे आन्दोलन को दबावे। स्वायत्तशासन-विभाग के मन्त्री मिस्टर हैलेट ने दूसरा सर्कुलर निकाला, जिसमे बताया गया कि म्युनिसिपैलिटिया और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड सरकार के अंग हैं, अत. उनके सदस्यो और कर्मचारियों को असहयोग मे भाग नही लेना चाहिए। 'हाके भीम होहिं चौगूना'—जिले के अधिकारी तो यह चाहते ही थे। उन्होने १०७ और १४४ की नोटिसों की झडी लगा दी। सैकड़ों आदमी गिरफ्तार कर जेल भेज दिये गए।

मैं मजहरुल हक साहब के साथ आरा जानेवाला था। हक साहब किसी कारण से वहा न जा सके। मै अकेला ही गया। आरा-स्टेशन पर उतरते ही मुझे १४४ की नोटिस मिली कि ९ बजे से ५ बजे तक किसी जलूस और सभा में शहर के अन्दर मै शरीक नही हो सकता। मेरे सामने एक सकट आकर उपस्थित हो गया। नोटिस भी पुरमजाक थी। उन दिनो मैट्रिक-परीक्षा हो रही थी। आरा भी उसका केन्द्र था। नोटिस मे मनाही का कारण बतलाया गया था कि जलूस और सभा से परीक्षार्थियो के काम में हर्ज होगा और वे रुष्ट होंगे।

नागपुर-काग्रेस ने निश्चय किया था कि अखिल भारतीय कमिटी की आज्ञा जबतक न हो, सत्याग्रह न किया जाय। जब इस प्रकार की कार्रवाई सरकार की ओर से होने लगी अथवा इसकी सम्भावना मालूम हुई, तो हमने प्रान्तीय कमिटी की ओर से आदेश निकाल दिया था कि इस तरह के हुक्मों को मान लेना चाहिए; क्योकि कांग्रेस ने अभी सत्याग्रह का आदेश नहीं दिया है। हां, जहां कही आत्म-प्रतिष्ठा की बात आ जाय, वहां दूसरी बात है।

मैंने नोटिस पाकर निश्चय किया कि मुझे इसे मान लेना चाहिए।

इसलिए स्टेशन से मैं शहर के अन्दर नही गया। मैं प्रायः दोपहर को पहुंचा था। स्टेशन से म्युनिसिपैलिटी के बाहर, नजदीक के ही एक गाव मे चला गया। वहा दोपहर के समय ठहर गया। वही एक बड़ी सभा हो गई, जिसमें देहात के अलावा शहर के भी काफी लोग आ गये। फिर शाम को ५ बजे के बाद शहर में गया। वहा भी एक बडी सभा हो गई, जहा मैने अपने कार्यक्रम को पूरा किया। इस तरह इस नोटिस का नतीजा यह हुआ कि एक सभा के बदले दो सभाए हो गई। जनता का उत्साह भी बहुत बढ गया। मैं भभुआ जानेवाला था। वहा भी हमारे जाने के पहले ही कुछ मनाही की नोटिस निकल गई। मैं वहा गया तो जरूर था; पर याद नही है कि नोटिस का क्या हुआ।

उस समय प्रान्तीय कौसिल की बैठक हो रही थी। जो लोग कौसिल मे शरीक हुए थे, वे कांग्रेस के आदेश के विरुद्ध वहा गये थे। पर सरकारी सरकुलरो को लेकर और मुझपर जो नोटिस निकाली थी, उसे लेकर उन्होने वहा बहस छेड दी। साथ ही, जो आमनौर पर दमन चल रहा था, उसकी भी कडी समालोचना हुई। अखबारो मे इनमब बातो के छपने पर सूबे के बाहर के पत्रो ने भी बिहार-सरकार की कार्रवाइयो—विशेष करके उसके सरकुलरों और दमन-नीति—की कडी समालोचना की। बात बहुत बढ़ गई। मुजफ्फरपुर-जिले के सीतामढी-सबडिवीजन के सबडिवीजनल अफसर मिस्टर ली, जिन्होने इस तरह की कार्रवाइयो मे बहुत ख्याति पाई थी, कुछ दिनो के बाद वहा से बदल दिये गए। मालूम नही कि इस देशव्यापी आन्दोलन के कारण उनकी बदली हुई अथवा और किसी कारण से; पर लोगो मे यह धारणा हुई कि आन्दोलन ही उनकी बदली का कारण था।

शराब-बन्दी के कारण कही-कही सरकारी अफसरो ने धाधली मचाई। हजारीबाग-जिले के 'चतरा' मे खेतो मे शराब बिकने लगी। जनता मे शराब का प्रचार तो बहुतेरे अफसर कर ही रहे थे। कही-कही कार्यकर्ता और स्वयंसेवको पर शराबबन्दी मे भाग लेने के कारण मुकदमे भी चलाये गए।

हमारे कार्यक्रम मे पचायत कायम करना भी एक मुख्य कार्य था। बहुत जगहो मे पचायतें कायम हुईं। बहुतेरे मुकदमे फैसल होने लगे। कही-कही लोगों ने पंचायती फैसले को मनवाने के लिए जातीय बहिष्कार का सहारा लिया। हमने इसे प्रान्तीय कमिटी की ओर से रोका, तो भी जहां-तहां कुछ हो ही गया। एक जगह तो पचायत का इतना रोब हो गया था कि वह सरकारी अदालतों की तरह काम कर रही थी। लोग बाजाब्ता मुकदमे दायर करने और उन्हें फैसल कराने के लिए फीस देते थे। अधिकांश

फैसले लोग मान लेते; पर कहीं-कही दिक्कत पैदा होती। एक कमजोरी यह हुई कि पुराने-पुराने सड़े-गले मुकदमे भी कुछ लोग पंचायत में लाने लगे, जिसका नतीजा यह होता कि पचायत अगर बहुत पुराना कहकर उसे न सुने तो उसकी शिकायत हो कि यह भी सरकारी अदालत की तरह इन्साफ न देखकर तमादी की बात करती है और यदि फैसला करना चाहे तो उसके फैसले को मनवाने का साधन नही था।

पंचायत को ही लेकर गिरिडीह मे एक बड़ा वाकया हो गया। वहां पंचायत का फैसला न मानने के कारण एक आदमी का बहिष्कार किया गया। बहिष्कृत आदमी को कुए से पानी नही भरने दिया गया। उसका घडा तोड़ दिया गया। पुलिस ने घड़ा तोडनेवाले को गिरफ्तार किया। उसके साथ बहुत लोग थाने तक आये। वहा तथा जेल के सामने वाकया हो गया। पुलिस का कहना था कि जनता ने ढेले फेके और पुलिस पर हमला किया। दारोगा ने अपनी पिस्तौल से गोली मारी। बहुत लोग घायल हुए। जेल और थाने का कुछ नुकसान हुआ। कुछ लोगो पर मुकदमे चलाये गए। इसकी खबर पाते ही डाक्टर महमूद के साथ मै वहां गया। लोग शान्त किये गए। मुकदमे मे शहर के बहुतेरे धनी लोग फाम लिये गए थे। ऐसे लोगो में से कुछने तो माफी माग ली; पर दूसरो पर मुकदमे चले। अन्त मे क्या हुआ, मुझे याद नही।

: ३५ :

एक मनोरंजक घटना

थोड़े ही दिनों बाद, मार्च १९२१ में, बेजवाड़ा में अखिल-भारतीय कांग्रेस कमिटी की बैठक हुई। वहां निश्चय हुआ कि लोकमान्य तिलक के स्मारक-रूप में एक करोड़ रुपये स्वराज्य के काम के लिए, तिलक-स्वराज्य-फण्ड के नाम से, ३० जून तक जमा कर लिये जायं—बीस लाख चर्खे जारी हो जाय और कांग्रेस के एक करोड़ मेम्बर बना लिये जाय। बेजवाड़ा पहुंचने के पहले महात्माजी दौरा कर रहे थे। मैं कलकत्ते से ही महात्माजी के साथ उड़ीसा गया। वहां उन दिनों अकाल था। महात्माजी को इसकी खबर पहले से थी। उन्होंने कुछ मदद भी करवाई थी। अकाल-पीड़ितों को महात्माजी के आगमन की खबर मिली थी। बहुतेरे दूर-दूर से आये थे। महात्माजी ने उनके अस्थि-पंजरों को देखा। वह बहुत ही दुःखी हुए। उन्होंने एक लेख में उड़ीसा के नंगे-भूखे ककालों का जबरदस्त जिक्र किया। मैंने कई बार उन गरीबों की याद करके उन्हें आह भरते भी देखा है। एक बड़े मकान में वह ठहराये गए थे। एक ओर थी जगन्नाथजी का विशाल मन्दिर, पंडों और धनी-मानी लोगों का सुखमय जीवन, महात्माजी के स्वागत के लिए धूमधाम, और दूसरी ओर ये नंगे-भूखे ककाल!

उड़ीसा की ही किसी सभा में महात्माजी ने बहुत मार्के का भाषण किया था, जिसका असर आज तक मेरे दिल पर है। सभा में किसीने महात्माजी से प्रश्न किया कि आप अंगरेजी-शिक्षा के विरुद्ध क्यों हैं—अंगरेजी-शिक्षा ने ही तो राजा राममोहन राय, लोकमान्य तिलक और आपको पैदा किया है? महात्माजी ने उत्तर में कहा—"मैं तो कुछ नहीं हूं; पर लोकमान्य तिलक भी जो हैं, उससे कहीं अधिक बड़े हुए होते यदि उनको अंगरेजी द्वारा शिक्षा का बोझ ढोना न पड़ा होता। राजा राममोहन राय और लोकमान्य तिलक श्री शंकराचार्य, गुरु नानक, गुरु गोविन्दसिंह और कबीरदास के मुकाबले में क्या हैं? आज तो सफर के और प्रचार के इतने साधन मौजूद हैं। उन लोगों के समय में तो कुछ नहीं था, तो भी उन्होंने विचार की दुनिया में कितनी बड़ी क्रान्ति मचाई थी।" अंगरेजी राज्य के सम्बन्ध में भी उन्होंने कहा कि मुगलराज्य में अकबर के समय में राणा प्रताप

और औरंगजेब के दिनों में शिवाजी-जैसे वीरों के लिए सुअवसर था, आज वह कहा हैं ? इस प्रकार एक बड़े प्रभावशाली भाषण में उन्होंने यह दिखला दिया कि यह हम लोगों का मोह है, जो अगरेजी शिक्षा को ही देशोन्नति का कारण बताते हैं। हा, अंगरेजी जानना बुरा नही है। उसे हममे से बहुतेरों को जानना होगा। हम उसे सीखेगे भी; पर आज की तरह वह शिक्षा का माध्यम और साधन नही रह सकती।

उडीसा से महात्माजी के साथ मै बेजवाड़ा गया। रास्ते के दृश्य अवर्णनीय है। जैसा उत्साह अपने सूबे मे देखा था वैसा ही आन्ध्र देश मे भी देखने मे आया। वही जनता की भीड़, वही दसो दिशाओं को गुजानेवाले नारे ! स्टेशनो पर वही जन-समूह, चलती रेलगाड़ी के किनारे लाइन पर लोगो का वही जमघट और वही विराट् सभाए। मुझे याद है कि विजय-नगर में हम लोग रात को प्राय. तीन बजे रेल से उतरे। सारे शहर मे लोगो ने दीवाली मनाई थी।

हम बिहार के प्रतिनिधि बेजवाडा से लौटते समय रेल मे कार्यक्रम पूरा करने के सम्बन्ध मे परस्पर बाते करने लगे। एक प्रकार से पटना पहुचते-पहुंचते यह निश्चय कर लिया गया कि यह काम कैसे पूरा किया जायगा। रुपये जमा करने और चर्खा चलवाने की ओर लोगो का विशेष ध्यान गया। मैं भी दिन-रात सारे सूबे मे दौडता और रुपये जमा करने मे लगा रहा। सब जिलो में कार्यकर्ता इस काम मे दिलोजान से लग गए। रुपये जैसे-जैसे जमा होते, बैंक मे जमा होते। हम लोगों ने कई प्रकार की रसीदे छपवा ली थी, जिनसे यह सुविधा होती कि प्रत्येक आदमी को रसीद लिखकर देने की जरूरत नही होती। कम-से-कम चार आने की रसीद थी। बडी रकमो के लिए लिखकर रसीद दे दी जाती। इसके पहले बिहार मे सार्वजनिक काम के लिए जन-साधारण से इस प्रकार कभी रुपये नही मागे गये थे। हम भी नही जानते थे कि हम कहांतक सफल होंगे। पर लोगो मे उत्साह देखकर आशा बढ़ती जाती थी। हमको बहुत बडे और धनी लोगों से बहुत ज्यादा नही मिला। पर हर जिले मे मझोले दर्जे के लोगों ने बहुत उत्साहपूर्वक चन्दा दिया। अन्त मे ३० जून तक हमने सात-आठ लाख के लगभग जमा कर लिया। ३० जून को गाधीजी को तार द्वारा इसकी सूचना दे दी गई। इस काम मे सबसे ज्यादा उत्साह तिरहुत डिवीजन के जिलों ने दिखाया—यद्यपि और जिले भी कुछ बहुत पीछे नही थे।

बिहार के कई जिलो में घूमते-घूमते काफी अनुभव हुआ। कही-कहीं कुछ दिलचस्प घटनाएं भी हुई। मनोविनोद के लिए एक घटना का वर्णन कर देता हूं।

जून का महीना था। मैं राची जिले मे तिलक-स्वराज्य-कोष के लिए रुपया जमा करने गया। वहां के कार्यकर्ताओं ने मेरे लिए दो दिनों का कार्यक्रम, जिले के विभिन्न स्थानो में जाने के लिए, बना लिया। पहले दिन राची से मोटर पर चलकर दस बजे तक 'बुण्डू' पहुच वहां का काम समाप्त करना था। दोपहर का भोजन राची ही वापस आकर करना था। दोपहर को 'खूटी' जाना था। रात तक फिर राची वापस आना था। दूसरे दिन सवेरे लोहरदग्गा जाना था। वहा से दोपहर तक वापस आकर तीसरे पहर की गाडी से पटने के लिए रवाना होना था।

हम लोग राची मे सवेरे ही नहा-धोकर तैयार हो गये। टैक्सी के आने मे कुछ देर हो गई। हम सात आदमी, जिनमे एक ड्राइवर और दूसरा क्लीनर था, उसपर सवार होकर रवाना हुए। यह सोचा गया था कि दोपहर को राची मे ही आकर भोजन करना होगा। इसलिए हमने साथ मे कुछ भी न लिया। जो कुर्ते पहने और चादर लिये हुए थे वही सारा सामान था। डाक्टर पूर्ण मित्र ने, जो वहा के नेता थे, साथ मे एक छोटा-सा बैग रख लिया था, जिसकी खबर हम लोगो को उस समय नही थी। कुछ दूर जाने पर, एक जगल मे पहुचने पर, मोटर मे कुछ टूट गया। ड्राइवर ने मरम्मत शुरू की और कहा कि बस दस-पाच मिनट मे तैयार कर लूगा। मरम्मत मे देर होने लगी। ज्यो-ज्यो हम घबराते, वह आश्वासन देता जाता। दो-तीन घंटो के बाद उसने कहा कि लोहार की जरूरत होगी। तलाश करने पर एक गाव मिला, जहां लोहार के घर जाकर उसने कुछ पीट-पाटकर दुरुस्त कराया। जगल मे कुछ भी खाने-पीने का सामान नजर नही आता था। इमली के वृक्ष थे। उनमे इमली के फल के गुच्छे लटक रहे थे। हम लोग उन्हे तोड-तोड़कर जबान और दात खट्टे करते रहे। दोपहर के बाद प्यास ने जोर किया। फिर गांव तलाश करके लोटा-बाल्टी मगनी मागी गई। बहुत दूर से पानी लाकर प्यास बुझाई गई।

जब मरम्मत का काम जारी था, एक दूसरी मोटर पर सवार पुलिसवाले जाते हुए नजर आये। हम लोगो को देखकर उन्होने अपनी गाडी रोक ली। हमने उनसे कहा कि हम 'बुण्डू' शीघ्र ही पहुंचते हैं, आप वहा कह देगे कि मोटर बिगडने के कारण हम लोगो के आने मे कुछ विलम्ब हो रहा है। उन्होने मोटर रोककर हम लोगो का हाल जान लेने की शिष्टता तो की थी; पर यह सवाद वहां पहुंचाने की भद्रता नही की! वहा जो जनता कुछ दूर-दूर के गावो से भी आई थी, हम लोगों का तीन-चार बजे तक इन्तजार करके जहां-तहां चली गई।

अन्त मे मोटर की मरम्मत हो गई। हम लोग पांच-छः बजे शाम तक

'बुण्डू' पहुंचे। जो लोग गावों से आये थे, वे तो चले गये थे। पर खास 'बुण्डू' के लोगों में हमारे पहुंचने की खबर बात-की-बात में पहुंच गई। सभा जुट गई। हस्ब-मामूल वहां भी भाषण हुआ। रुपये जमा किये गए। जहांतक मुझे याद है, वहा सात-आठ सौ रुपये के लगभग धन एकत्र हुआ।

काम खत्म करके हम लोग तुरत चलने के लिए तैयार हुए। पर दिन-भर केवल इमलियों पर ही बीता था, इसलिए वहा के लोगों ने भोजन कर लेने का आग्रह किया। हमने भी उसे मान लिया। रसोई होते-हवाते नौ-दस बज गये। अन्त मे भोजन करके यह विचार होने लगा कि अब क्या किया जाय। उस दिन 'खूटी' का प्रोग्राम छूट चुका था। दूसरे दिन लोहर-दग्गा का प्रोग्राम किसी तरह छूटना न चाहिए। तीसरे पहर की गाड़ी से पटने के लिए रवाना होना भी अत्यन्त आवश्यक था। कुछ लोगों का विचार हुआ—विशेषकर मोटरवाला इसपर जोर देने लगा—कि रात को चलना ठीक नहीं है, रास्ते मे जगल है, खतरा है, मोटर भी न मालूम कहीं बिगड गई तो रात का समय बडा भयानक होगा। मै समझता था कि वह बहाना कर रहा है—इतनी देर तक मोटर की मरम्मत की गई थी, और वह ठीक चली भी थी, अब क्या बिगडेगी। विशेषकर दूसरे दिन के कार्यक्रम की मुझे चिन्ता थी। मैने बहुत जोर लगाया कि नहीं, जरूर चला ही जाय।

अन्त मे प्राय: ग्यारह-बारह बजे रात मे उसी टूटी मोटर पर हम सात आदमी सवार होकर रवाना हुए। बीच मे, थोडी ही दूर पर, एक घाट है, जहा कुछ ऊची चढाई है। उस चढाई पर चढते समय मोटर फिर टूट गई। जहा मोटर टूटी, वहा से प्राय दो-ढाई सौ गज और ऊपर चढना था। उसके बाद उतार था। उतार मे यदि इजिन न भी काम करे, तो मोटर आसानी से चली जायगी, ऐसा ड्राइवर ने कहा। हम लोगों ने भी ऐसा ही अनुमान किया। घाट से उतरकर ही एक डाक-बगला था। हमने सोचा कि डाक-बंगले तक अगर हम किसी तरह पहुच जाय तो वहा रात आराम से कटेगी, हम सो सकेगे। अपनी बेवकूफी से और उत्साह मे हमने यह निश्चय किया कि जो थोडी चढाई है, उसे हम लोग मोटर ढकेल करके ही पार कर लेंगे। इसलिए हमने मोटर को आगे ढकेलना शुरू किया। बीस-तीस गज तक मोटर ढकेल ले गये। वहा ढाल बहुत कम थी और ऊंचाई अधिक। मोटर का ऊपर चढना कठिन था; पर हम लोगों ने जोर लगाया। नतीजा यह हुआ कि चन्द गज ऊपर ढकेलने के बाद मोटर उलटे पीछे की ओर झुकी। हम अपनी सारी शक्ति लगाकर उसे रोकने लगे। किसी तरह उसे एक खड्ड में गिरने से हम बचा सके। इसके बाद अब फिर हिम्मत न हुई कि मोटर ढकेलने की कोशिश की जाय।

रात के शायद बारह-एक बजे होंगे। मध्य जंगल में हम सात आदमी किसी तरह मोटर में बैठकर आये थे। दिन-भर की थकान के बाद रात को सोना भी आवश्यक था। ड्राइवर, उस निर्जन स्थान की भयानक बातें कह-कर, हम लोगों को डराता भी जाता था। उसने कहा कि यहां हिंसक जान-वरों और चोर-डाकुओं दोनों का डर था। हमने कहा कि चोर-डाकू हमसे लेंगे ही क्या, हमारे पास तो कुछ नहीं है। हां, यदि जंगली जानवर आ जाय तो उसका भय अवश्य है। मैंने यह कह तो दिया; पर मुझे यह नहीं मालूम था कि डाक्टर ने बुण्डू में मिले रुपयों को अपने बेग में रख लिया था। वह बेग साथ ही था। उस समय मेरी बात सुनकर डाक्टर भी कुछ न बोले। मैं भी दूसरे दिन सुबह तक इसी भूल में था कि हमारे हाथ बिलकुल खाली हैं।

हम सलाह कर ही रहे थे कि जंगल के भीतर से गरगराहट सुन पड़ी। ड्राइवर तो बहुत डर गया। कहने लगा, यह भयानक आवाज बनैले जानवर की है। कुछ ही देर में आवाज बन्द हो गई। हम सब शान्त होकर किसी तरह मोटर में बैठ गये। कुछ देर बाद जब फिर कुछ चित्त शान्त हुआ तो हमने सोचा कि मोटर वहीं छोड़ दी जाय और हम लोग डाक-बंगले तक पैदल चलकर वहां सोवें, फिर सवेरे मोटर का कुछ प्रबन्ध किया जायगा। मगर ड्राइवर इसपर राजी न हुआ। जब हम लोगों ने कहा कि हम लोग चले जाते हैं, तुम मोटर के साथ यहीं ठहरो, तो वह रोने-चिल्लाने लगा।

अन्त में यह निश्चय हुआ कि तीन आदमी मोटर के साथ ठहर जायं, बाकी चार आदमी डाक-बंगले पर चले जाय। रात चांदनी थी, यही एक चीज थी, जिससे कुछ हिम्मत बनी रहती थी। डाक-बंगला पहुंचते-पहुंचते हम लोग प्यास के मारे परेशान थे। डाक-बंगले में कोई था नहीं; दरवाजे बन्द थे। हमने सोचा कि दरवाजा किसी तरह खोला जाय। इसमें हम सफल भी हो गये। अन्दर से टटोलकर एक बाल्टी निकाली गई। दो चारपाइयां और दो मेजें थीं। वे भी बाहर निकाली गईं। पर बाल्टी से तो प्यास बुझती न थी, कुएं और डोरी की आवश्यकता रह ही गई। हम लोग एक बार फिर डाक-बंगले के आसपास चौकीदार की खोज में निकले। कुछ दूर पर देखा कि एक आदमी एक बच्चे को बगल में लेकर गाढ़ी नींद में सोया हुआ है। उस घोर जंगल में बच्चे के साथ उस आदमी को इस प्रकार निश्चिन्त सोते देखकर हम अचम्भे में आ गये। वह बहुत पुकारने पर जगा। ऊंघते-ऊंघते ही उसने कहा कि डोरी तो नहीं है, पर कुआ जंगल में थोड़ी ही दूर घुसने पर मिलेगा।

प्यास से हम लोग परेशान थे। इसलिए फिर कुएं की तलाश में निकले।

वह मिला भी। अपनी चादरो को जोड़कर डोरी बनाई गई। उसीसे बाल्टी में पानी निकाला गया। पानी पीकर हम लोगो मे से कुछ तो चारपाई पर और कुछ टेबुल पर सो रहे। सोने का समय थोड़ा ही मिला। सवेरे उठकर, मुह-हाथ धोकर, हम लोगो ने सोचा कि यहा तो कोई सवारी मिलनेवाली नही है, इसलिए राची की ओर हम लोग पैदल ही बढे; कोई गाव मिल जायगा तो वहा कुछ खाने-पीने का भी प्रबन्ध हो सकेगा।

सब लोग चलने पर राजी नही थे। इसलिए मै तथा एक आदमी और, दोनों चल पडे। यहां से तीन-चार मील जाने पर एक गाव मिला, जहा कुछ चने मिले। प्रायः नौ बजे चले। चने चबाकर हम लोग कुछ विश्राम करने लगे। धूप कडी हो गई थी। शीतल हवा चल रही थी। तुरन्त नीद आ गई। प्रायः एक-डेढ घटे के बाद किसीने आकर जगाया। मालूम हुआ कि राची के भाइयो ने कल दोपहर तक हमारी बाट जोही। जब हम नही पहुचे तो दूसरी टैक्सी करके हमारी खोज मे कुछ लोगो को भेजा। उन्होने भूल यह की कि इस टैक्सी पर भी प्रायः पूरा बोझ लेकर तीन-चार आदमी आये। हम लोग पांच आदमी तो, मोटरवालो को छोडकर, एक गाडी का बोझ पहले से थे ही। हमने कहा कि हममे से जो लोग अभी पीछे छूटे थे, उनको पहले रांची पहुंचाओ, फिर दुबारा मोटर ले आओ तो हम दोनों चलेंगे। उन्होंने भी इसे पसन्द किया। हम लोग प्राय. डेढ-दो घटे और आराम से सोये। फिर जब मोटर प्रायः एक बजे के करीब आई तो रांची गये। वहा कुछ भोजन करके, दोपहर की गाड़ी से, सीधे पटने के लिए रवाना हो गये।

इतनी दिलचस्प तो नही, पर इस प्रकार की कई घटनाए उन दिनो के सफर मे होती रही।

: ३६ :

हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और खादी-प्रचार

जुलाई १९२१ मे बम्बई मे अखिल भारतीय काग्रेस-कमिटी का अधिवेशन हुआ। वहा बिहार के और लोगो के साथ मैं भी गया। अधिवेशन मे काफी उत्साह था, क्योकि तुरन्त एक करोड रुपये जमा करने का कार्यक्रम सफलतापूर्वक देश ने पूरा कर लिया था। चर्खे के सम्बन्ध मे भी काफी प्रचार हुआ था। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य तो मानो पूर्णरूपेण स्थापित जान पड़ता था। हम लोग यह नही समझ सकते थे कि यह कभी फिर टूटेगा। इन कारणो से उस अधिवेशन मे कुछ लोगो ने इस बात पर बहुत जोर दिया कि सत्याग्रह शुरू करना चाहिए।

उधर गवर्नमेण्ट की ओर से भी कुछ कार्रवाइया हो रही थी, जिनसे बहुत लोग क्षुब्ध थे। यद्यपि बहुत बड़ा आन्दोलन सारे देश मे चला था, तथापि वह वैध था। कानून तोडा नही गया था—तथापि भाषणो मे काफी आजादी बरती जाती थी। काग्रेसी लोगो के रहन-सहन और चाल-ढाल मे साहस, उत्साह और सबसे अधिक निडरपन टपका करता था। गवर्नमेण्ट जहा-तहा कार्यकर्ताओ को गिरफ्तार कर लिया करती थी। देश मे इस प्रकार कई सौ आदमी जेलखानो मे थे। बिहार मे हुई गिरफ्तारियो और दमन का जिक्र ऊपर किया गया है। इन कारणो से भी लोगों ने बहुत जोर दिया कि सत्याग्रह शुरू कर देना चाहिए।

महात्मा गाधी ने अभी सब्र करने की सलाह दी। चर्खा-प्रचार और उसके द्वारा विदेशी वस्त्र-बहिष्कार ३० सितम्बर तक पूरा करने का निश्चय हुआ। उन्होने कहा कि जो कार्यक्रम काग्रेस ने निर्धारित कर दिया है, उसको पूरा करना चाहिए। तभी सत्याग्रह मे सफलता की आशा की जा सकेगी। इसलिए अभी तैयारी पर जोर देते हुए सत्याग्रह का निश्चय स्थगित रहा। पर एक दूसरी चीज ऐसी आ गई जिसने सत्याग्रह का बीज बो दिया।

गवर्नमेण्ट की ओर से घोषणा की गई कि जाड़ों में प्रिंस आफ वेल्स (इंगलैंड के युवराज) हिन्दुस्तान की यात्रा करेंगे। उसने शायद सोचा था कि जनता में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध इतना प्रचार हो रहा है, लोगों में इतना उत्साह और जोश बढ़ रहा है, इसके रोकने में यह यात्रा सहायक

होगी। वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड ने एक बार आन्दोलन के सम्बन्ध में कहा था कि इससे मैं घबरा गया हूं, चक्कर मे पड़ गया हूं (Puzzled and perplexed)। अब लार्ड रीडिंग यहां वायसराय बनकर आ गये थे। वह इंगलैंड के चतुर-से-चतुर नीतिज्ञों में समझे जाते थे। उन्होने कुछ ही दिन पहले अमेरिका मे राजदूत के पद पर रहकर अमेरिका को लड़ाई मे इंगलेंड के पक्ष में ले आने का कौशल दिखलाया था और अब इंगलेंड के चीफ जस्टिस के पद पर नियुक्त थे। हो सकता है कि यह (युवराज-यात्रा) उनकी चातुरी का नतीजा हो। हो सकता है, नीतिज्ञो ने समझा हो कि जैसे बगविच्छेद के बाद बंगाल में बहुत असन्तोष फैल गया था और जब वह किसी प्रकार दमन-नीति से दबाया नही जा सका तब सम्राट् पंचम जार्ज हिन्दुस्तान में अपना अभिषेक कराने आये और यहा की जनता तथा सभी लोगो ने बड़े उत्साह के साथ उनका स्वागत किया, वैसे ही इस बार भी युवराज के आगमन से हिन्दुस्तान की जनता मे राजभक्ति उमड़ पड़ेगी और आन्दोलन खुद-ब-खुद कमजोर पड जायगा। युवराज के इस समय हिन्दुस्तान मे आने का कोई भी दूसरा कारण देखने मे नही आता था।

अखिल भारतीय काग्रेस ने एक प्रस्ताव स्वीकार किया, जिसमे यह अनुरोध किया गया कि गवर्नमेण्ट यहा युवराज के लाने का निश्चय छोड दे। उसमे साफ-साफ कहा गया कि गवर्नमेण्ट के लिए, अपनी गिरती हुई लोकप्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने के हेतु, सम्राट् के पुत्र और भावी सम्राट् का इस प्रकार इस्तेमाल करना मुनासिब नही है। यह भी बतला दिया गया कि देश की यह बात यदि गवर्नमेण्ट स्वीकार नही करेगी तो मजबूरन हमको इस यात्रा का बहिष्कार करना पड़ेगा—यद्यपि युवराज के साथ हमारा कोई व्यक्तिगत झगडा नही है, वरन् उनके लिए हम लोगो के हृदय मे आदर ही है, तथापि उनका बहिष्कार भी अनिवार्य हो जायगा। इस प्रस्ताव द्वारा साफ-साफ चेतावनी दे दी गई कि गवर्नमेण्ट की इस चालबाजी का नतीजा अच्छा न होगा और देश को सत्याग्रह के लिए तैयारी करने का आदेश दिया जायगा।

बकरीद का समय भी निकट आ गया था। बिहार और संयुक्त प्रान्त मे यह समय हमेशा नाजुक समझा जाता है; क्योंकि जहा-तहा गाय की कुरबानी के लिए हिन्दू-मुस्लिम दगा-फसाद हो जाया करते हैं। इस बार सोचा गया कि इस हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के जमाने मे भी यदि बलवा-फसाद हुआ तो इसका बहुत बुरा असर पड़ेगा। सोचा गया कि इस अवसर का उपयोग हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के बढ़ाने में करना चाहिए। इस सम्बन्ध में बहुत प्रचार हुआ। महात्माजी का रास्ता यह था कि हम मुसलमानों के

खिलाफ लड़कर उनसे गाय की रक्षा नहीं करा सकते और उनको मारकर हम गोरक्षा का फल भी अच्छा नहीं पा सकते। इसलिए यह उनपर ही छोड़ना चाहिए कि वे, अपने हिन्दू-भाइयों की भावना को ठेस न लगाकर, भाई-चारे के व्यवहार से खुद गोवध बन्द करें—हिन्दुओं की जोर-जबरदस्ती से नहीं, बल्कि अपने प्रेम-भाव और उदार विचार से।

इस सिलसिले मे अली-बन्धुओं के साथ महात्माजी ने कुछ स्थानों का दौरा भी किया। इसी दौरे के सिलसिले मे वह बिहार मे भी आये। इस दौरे मे महात्माजी शाहाबाद, गया और पटना जिलों मे ही गये, जहा बकरीद के अवसर पर कुछ गड़बड़ी का भय था। मौलाना मुहम्मदअली और मौलाना आजाद सुभानी उनके साथ थे। महात्माजी का कार्यक्रम बहुत ही सगीन था—एक दिन मे कई जगहो मे सभाए और बहुत दूर तक मोटर से सफर। मुझे याद है कि एक दिन वह सन्ध्या को भोजन भी नही कर पाये, क्योंकि सूर्यास्त के बाद वह भोजन नहीं करते और सूर्यास्त के पहले इसके लिए समय नही मिला। मै सफर मे साथ रहा। सभी जगहो में आपस के मेल-जोल की बाते ही कही गई। साथ-ही-साथ, खादी-चर्खा के प्रचार की बाते भी की गई। बड़े सन्तोष और गौरव की बात है कि मुसलमान नेताओं ने—यद्यपि वे कुर्बानी करने के अपने स्वत्व को नहीं छोड़ना चाहते थे तथापि—जनता मे प्रचार किया कि आदमी स्वत्व रखकर भी उसके व्यवहार करने या न करने का फैसला खुद कर सकता है; इसलिए मुसलमानों को चाहिए कि भाई-चारा और रवादारी के खयाल से, जहातक हो सके कुछ ऐसा न करे जिससे हिन्दुओ का दिल दुखे।

इसी वक्त हकीम अजमलखा तथा दूसरे नेताओ ने भी बड़ी करामात दिखलाई। फलस्वरूप उस साल की बकरीद केवल शान्ति के साथ ही नही बीती, बल्कि गायों की कुर्बानी भी इतनी कम हुई जितनी शायद कभी पहले भी न हुई थी। इससे हिन्दू और मुसलमान दोनो ने एक-दूसरे की भावनाओं की प्रतिष्ठा की। किसी तरफ जोर-आजमायिश की कोशिश नही हुई। दोनो ने एक-दूसरे की रवादारी और भाई-चारे पर भरोसा किया। उनका यह भरोसा निष्फल नही गया।

बिहार के कुछ भागो मे, विशेष करके उत्तर बिहार के जिलो मे, चर्खे का चलना कभी एकबारगी बन्द नही हुआ था—यद्यपि वह बहुत कम हो गया था। इस आन्दोलन से उसको नवजीवन मिला। चर्खा-प्रचार के लिए तिलक-स्वराज्य-कोष से, रुपये भी मिले। हमारे प्रान्त मे भी काम शुरू किया गया। काम तो हमने शुरू किया; पर शास्त्रीय ज्ञान हमको कुछ भी न था। उत्साह था, पर व्यापार-बुद्धि नही थी। इसलिए जो काम उस समय हुआ

उसका केवल यह फल हुआ कि खादी का प्रचार तो हुआ, पर पैसा भी काफी नुकसान हुआ। जब मैं गांधीजी के उस कथन पर अब विचार करता हूं, जिसको उन्होंने आन्दोलन के आरम्भ में ही कहा था, तो मुझे उनकी दूरदर्शिता और कार्य-कौशल का एक और भी ज्वलन्त दृष्टान्त मिल जाता है। उन्होंने कहा था कि हमारे राष्ट्रीय स्कूल चर्खा-शाला होने चाहिए और इसीके ज्ञान को प्राप्त करने और बढ़ाने में राष्ट्रीय शालाओं को लग जाना चाहिए—चर्खा द्वारा ही हम युवकों को सहस्रों की संख्या में काम दे सकेंगे और जनता की धनवृद्धि में सहायक हो सकेंगे। उन्होंने साबरमती-आश्रम में उद्योग-शाला खोलकर चर्खा-सम्बन्धी खोज का काम भी जारी करा दिया। पर राष्ट्रीय शिक्षा के अधिकारी इस मर्म को पूरी तरह नहीं समझ सके; उन्होंने विद्यापीठों और उनके अधीन पाठशालाओं को चर्खा-शाला नहीं बनाया—यद्यपि सभी जगहों में चर्खा चलाना एक अनिवार्य विषय बना दिया गया था।

चर्खे चलने लगे, पर शास्त्र का ज्ञान शिक्षकों को तो था ही नहीं, बच्चों को वे कहां से देते। इस तरह अन्धों का नेतृत्व अन्धे करने लगे! अतः चर्खा ठीक रास्ते पर कुछ दिनों तक नहीं आ सका। आज हम इस अदूरदर्शिता के लिए किसीको दोष नहीं दे सकते; क्योंकि ऐसा होना स्वाभाविक-सा था। सब लोगों की आंखें भावी स्वराज्य की ओर, जो एक राजनैतिक परिवर्तन की सीमित चीज समझी जाती थी, लगी हुई थीं। कांग्रेस के अन्दर भी कुछ लोग, विशेष करके महाराष्ट्रवाले, खादी-चर्खे का विरोध करते ही रहे। पर इन त्रुटियों के रहते हुए भी खादी का प्रचार खूब हुआ। अभी शुद्ध और अशुद्ध खादी का भेद लोग इतना नहीं समझते थे। जो मोटा कपड़ा हाथ-कर्घे पर का बुना हुआ होता उसे ही खादी समझकर खरीदते। महात्माजी ने कहा था कि सत्याग्रह के लिए खादी का प्रचार अत्यन्त आवश्यक है और प्रचार का सबूत आंखों को ही मिलना चाहिए। अर्थात् जब चारों ओर लोगों को खादी पहने हम देखेंगे तो हम समझ लेंगे कि इसका प्रचार हो गया—इसके लिए पुस्तकों और लेखों तथा अखबारों में छपे आंकड़ों में, अथवा किसीसे पूछ करके, सबूत ढूंढने की जरूरत नहीं होगी।

बिहार के इस दौरे में गांधीजी ने खादी पर काफी जोर दिया। कोकटी का कपड़ा, जो दरभंगा-जिले के मधुबनी इलाके में बनता था, काफी महीन और सुन्दर तथा मुलायम होता है। उसको देखकर लोग चकित हो जाते थे। इसका व्यापार अभी तक मरा नहीं था। इसका विशेष कारण यह था कि इस कपड़े का खर्च नेपाल-दरबार में और वहां की संभ्रांत जनता में काफी था। वहां के लिए ही यह कपड़ा, विशेष करके उस इलाके में जो

नेपाल की सरहद पर ही है, बहुत बना करता था। उस इलाके की बनी हुई कुछ धोतिया भी पेश की गईं, जिनको देखकर, विशेषकर, मुझे याद है कि मौलाना मुहम्मदअली, बहुत ही सन्तुष्ट हुए थे। बिहार-शरीफ-जैसे मोमिनों के एक बड़े मुख्य स्थान पर गाधी जी गये और उन लोगो ने मदद करने का वचन भी दिया।

बिहार-यात्रा समाप्त करने के पहले गाधीजी अपने साथियों के साथ पटने आये। सदाकत-आश्रम मे ठहरे। अखिल भारतीय कांग्रेस की नई बनी हुई कार्यकारिणी की बैठक वही हुई। बम्बई की अखिल भारतीय कमिटी मे वर्किंग कमिटी का चुनाव हुआ था। मैं भी सदस्य चुना गया था। इसलिए मैं भी इस बैठक मे शरीक हुआ। इस बैठक मे विशेषकर इसी बात पर जोर दिया गया कि विदेशी वस्त्र-बहिष्कार का कार्यक्रम पूरा होना चाहिए और इसके लिए चर्खा-प्रचार आवश्यक है।

बिहार से गाधीजी कलकत्ते होते हुए आसाम चले गये। मैं बिहार मे खादी-संगठन और चर्खा-प्रचार के लिए घूमने लगा। प्रान्तीय कमिटी ने इस काम के लिए कुछ लोगो की एक समिति बना दी। सभी जिलो मे इस काम के लिए कुछ लोग नियुक्त कर दिये गए। काम खूब जोरो से चलने लगा। सरकार अपनी ओर से चुप नही रही। उसको भय हो गया कि विदेशी कपडो की दूकान पर पहरा बैठाया जायगा। काग्रेस ने कपड़े के व्यापारियों से अनुरोध किया था कि वे विदेशी कपडे का व्यापार छोड दे और जो विदेशी माल उनके पास मौजूद है, उसे विदेशो मे ही बेचने का प्रबन्ध करे—भारतवर्ष मे यही के बने कपडे ही बेचे। इसी निश्चय से डरकर बिहार-सरकार के नये प्रधान मत्री (चीफ सेक्रेटरी) मिस्टर सिफ्टन ने एक दूसरी विज्ञप्ति निकाली, जिसमे जिला-अफसरो को प्रोत्साहन दिया गया कि वे विदेशी वस्त्र-सम्बन्धी प्रचार करे और जनता को यह बतावे कि विदेशी वस्त्र के बिना लोगो को बहुत कष्ट होगा—कपडा बहुत मंहगा हो जायगा। और, जहा कही काग्रेसी लोग जोर लगावे, गिरफ्तार किये जाय। पहले इस प्रकार की एक विज्ञप्ति चीफ सेक्रेटरी रेनी ने असहयोग के सम्बन्ध मे निकाली ही थी। अब विदेशी वस्त्र को लेकर और भी जोरदार नीति की घोषणा सरकार ने कर दी। मालूम होने लगा कि एक-न-एक दिन मुठभेड़ हो ही जायगी। पर हम अपना काम दृढ़ता—किन्तु सहिष्णुता—के साथ करते गये। काम खूब जोरों से आगे बढ़ता गया।

गाधीजी आसाम का दौरा समाप्त करके कलकत्ता वापस आये। वहां फिर वर्किंग कमिटी की बैठक हुई, जिसमे शरीक होने के लिए मैं वहां गया।

: ३७ :

मोपला-विद्रोह और हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न

गाँधीजी कलकत्ते से मद्रास की ओर चले गये। इसी यात्रा मे उन्होंने कही पर लंगोटी पहनने की घोषणा कर दी। मौलाना मुहम्मदअली, जो यात्रा में साथ थे, वाल्टेयर स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिये गए। वह दूसरे कई नेताओं के साथ—जिनमें मौलाना शौकतअली, डाक्टर किचलू, मौलाना हुसैन अहमद, मौलाना निसार अहमद, पीर गुलाम मजुद्दिद और श्री भारती कृष्ण तीर्थ शंकराचार्य भी थे—कराची में, खिलाफत-कान्फ्रेंस के भाषण तथा एक फतवे के प्रचार के लिए, कचहरी मे पेश किये गए। इस मुकदमे ने भी देश मे खलबली पैदा कर दी। मौलाना मुहम्मदअली ने अपने बचाव में जो बयान दिया, उसके कारण, तथा उन व्यक्तियो के व्यक्तित्व के कारण, जो इसमें मुजरिम थे, यह एक बड़ा महत्त्वपूर्ण मुकदमा हो गया। अन्त में श्री शंकराचार्य को छोड़कर सबको सजा हुई।

इसपर वर्किंग कमिटी की बैठक बम्बई मे हुई और उसने आज्ञा दे दी कि जिस फतवे के लिए इन नेताओं को सजा मिली है, वह सभी जगहों पर बड़ी-बड़ी सभाओं में दुहराया जाय। बम्बई में एकत्र वर्किंग कमिटी के मेम्बरों और दूसरे नेताओ ने अपने हस्ताक्षर से एक एलान निकाला, जिसमें वही बातें दुहराई गई थी, जिनके लिए कराची का मुकदमा चला था। इस एलान पर मैंने भी दस्तखत किया था। सारे देश मे अनिगिनत सभाएं हुईं। उनमें अनगिनत लोगों ने उक्त फतवे को दुहराया। सरकार ने कुछ नहीं किया, हक्का-बक्का होकर रह गई! जिस फतवे को केवल मुसलमान जानते थे, वही फतवा इस प्रकार न मालूम कितने हिन्दुओं ने भी दुहराया और यह दिखला दिया कि वही काम, जिसे अगर थोड़े लोग करें तो कानूनी जुर्म हो जाता है और यदि सारा देश संगठित रूप से करे तो जुर्म नही रह जाता। सत्याग्रह का यह एक सुन्दर नमूना देश के सामने पेश हो गया!

ठीक इसी समय बिहार-प्रान्तीय राजनैतिक कान्फ्रेन्स की बैठक, बहुत धूमधाम से आरा में, मौलवी महम्मद शफी के सभापतित्व में हुई। मैं उसमें एक ही दिन शामिल हो सका; क्योंकि मुझे वर्किंग कमिटी में भाग लेने के लिए बम्बई चला जाना पड़ा। फिर भी आरा में बहुत उत्साह रहा। साथ

ही वहां प्रान्तीय खिलाफत-कान्फ्रेंस भी हुई, जिसमें बहुतेरे हिन्दुओं ने खिलाफत-फंड और सुमिरना-फंड के लिए रुपये जमा करने का वचन दिया और रुपये जमा भी हुए।

जब महात्माजी इसी सफर में थे, खबर मिली कि मालावार में मोपलों ने सरकार के खिलाफ बगावत कर दी है। शुरू में इस तरफ पूरी खबर नहीं पहुंच पाई, पर आहिस्ता-आहिस्ता खबर मिलने लगी। मौलाना मुहम्मद-अली का वहा जाने का इरादा था जब वह गिरफ्तार कर लिये गए। महात्मा-जी जाना चाहते थे, पर उन्हें भी इजाजत नहीं मिली और वह रोक दिये गए। यदि वे लोग वहां जा पाते तो शायद इस आन्दोलन का वह रूप नही होता, जो हो गया अथवा जिसका इतना प्रचार किया गया। शुरू मे मोपलों ने सरकारी कर्मचारियों और रेल तथा कचहरियों इत्यादि पर ही हमला किया; पर कुछ बाद खबर फैलने लगी कि उन्होंने हिन्दुओं पर भी आक्रमण करना शुरू कर दिया—उनको मारने तथा जबरदस्ती मुसलमान बनाने लगे! इस खबर से हिन्दुओ मे काफी खलबली फैली। एक प्रकार से आपस के मनमुटाव का बीज-वपन भी हो गया। जो हिन्दू-मुस्लिम एकता एक प्रकार से स्थापित दीखती थी, वह इस एक घटना से ही हिलती हुई नजर आने लगी। कुछ हिन्दुओं के, और विशेष करके सरकार के, प्रचार से इसका काफी असर पडने लगा। अभी तक बात बहुत बिगडी नही थी। यदि कुछ महीनों के बाद दूसरी घटनाए, जिन्होंने हिन्दू-मुस्लिम दगे का रूप धारण कर लिया, न हुई होती तो १९२१ के ऐक्य का दृश्य हमारे सामने आता ही रहता। पर होना कुछ और ही था!

गाधीजी का विचार है कि उन्होंने खिलाफत के सम्बन्ध में मुसलमानों की जो-कुछ मदद की, वह ठीक ही किया। इसके लिए उनको आज तक तनिक भी पश्चात्ताप नही है। उन्होंने जो कुछ किया अथवा हिन्दुओ ने जो कुछ उनकी प्रेरणा से किया, वह उचित और न्याय्य था। जब एक घर में दो भाई रहते हो तो एक पर यदि किसी प्रकार की आपत्ति-विपत्ति आवे तो दूसरे का धर्म है कि उसकी सहायता करे। इसमे यह विचार करना नही चाहिए कि इस सहायता के बदले विपद्ग्रस्त भाई सहायता देनेवाले के साथ क्या बर्ताव करेगा या इस उपकार को भूल जायगा। अपना कर्तव्य करना ही मनुष्य के लिए काफी होना चाहिए। उसकी जज़ा या बदले की आशा बेकार है। इसके अतिरिक्त मैं समझता हूं कि उन्होंने मुसलमानों की मदद कुछ देश के लिए स्वार्थबुद्धि से भी की थी; क्योंकि वह मानते थे कि हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य देशोद्धार के लिए आवश्यक है और इस सेवा द्वारा वह हिन्दुओं के लिए मुसलमानों से गोरक्षा की भी आशा रखते थे।

दूसरी ओर, कुछ लोगों का विचार है कि खिलाफत के आन्दोलन को, जो एक धार्मिक आन्दोलन था, इस प्रकार मदद देकर धार्मिक कट्टरपन को ही सहायता पहुंचाई गई, जिसका नतीजा यह हुआ कि आम मुसलमान जनता मे कट्टरता बढ़ी, जो समय पाकर इतनी भयकर हो गई कि सारे देश मे—जैसे ही यह आन्दोलन कुछ कमजोर पड़ा—हिन्दू-मुस्लिम दंगे और फसाद शुरू हो गए। इतना ही नही, मुसलमानों मे इतनी और जागृति आ गई कि वह धार्मिक विषयो के अलावा राजनीति मे भी अपना कट्टरपन दिखाने लगे। और, जब कुछ दिनो के बाद तुर्कों ने ही खलीफा को निकाल दिया, और इस प्रकार खिलाफत की जड़ ही कट गई, तो यह जागृति पूरी तरह से भारतीय राजनीति मे मुसलमानो को कट्टरपंथी बनाने मे समर्थ हुई। यदि इतना ही होता तो कोई हर्ज नही था, पर यह कट्टरपन धार्मिक होने के कारण मुसलमानों मे अपना राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित करने की भावना पैदा करने लगा।

कोई भी क्रिया अपनी प्रतिक्रिया के बिना नही रहती। कट्टरपन हिन्दुओं मे भी आने लगा। एक ओर से मुसलमानो ने तबलीग—धर्म-परिवर्तन—के लिए जनता मे प्रचार करना शुरू किया, तो दूसरी ओर हिन्दुओ ने शुद्धि और सगठन का बिगुल बजाया। सबका नतीजा यह हुआ कि आहिस्ता-आहिस्ता मनमुटाव बढता गया। आज दोनो के बीच मे एक बहुत चौड़ी और गहरी खाई-सी पैदा हो गई है, जिसका इस समय किसी तरह पटना या पार करना बहुत मुश्किल हो रहा है। ब्रिटिश सरकार इस मौके पर कैसे चूक सकती थी। वह समय-समय पर अपनी कूटनीति से काम लेने से बाज नही आई। वह छोटी चिनगारी को चतुरता से बराबर फूकती गई। अब भी, जब वह एक ज्वाला का रूप धारण कर चुकी है, वह उसमे घी डालने से बाज नही आती!

यहांपर मैंने थोड़े शब्दों मे एक लम्बी कहानी कह डाली। ऐसा न समझा जाय कि मैंने जो कुछ लिखा है वह सब कुछ १९२१ मे ही हो गया। उस समय किसी तरह जमीन पर बीज गिर गया, जिसको शायद बहुतेरो ने गिरते देखा भी नही, अगर देखा भी तो उसने इतना महत्त्व नही दिया, क्योंकि बावजूद मोपला-विद्रोह के सारे देश मे अभी तक ऐक्य-ही-ऐक्य देखने मे आता था, जिसका सबसे उज्ज्वल प्रमाण उन सभाओ मे मिला, जो फतवा दुहराने के लिए सारे देश मे की गई तथा जिसकी पुष्टि युवराज के आने पर देश ने सर्वव्यापी बहिष्कार द्वारा की।

यहा इन दो विचार-धाराओं के सम्बन्ध मे इतना ही कह देना चाहता हूं कि दोनों के दृष्टिकोण मे बड़ा अन्तर है। मुसलमान चाहे जिस तरह से

भारत में आये हों और चाहे जिस तरह उनकी संख्या बढ़ी हो, आज वे हिन्दुस्तान के वैसे ही निवासी है जैसे हिन्दू। उनके लिए भी कोई दूसरा देश नही है। उनकी सहानुभूति दूसरे देशों के मुसलमानों के साथ भले ही हो, और बहस के लिए यह भी मान लिया जाय कि उनको यदि इस बात के चुनने का मौका मिले कि वे किसी विपत्ति-काल मे अपने पडोसी गैर-मुस्लिमो को छोडकर दूरवर्ती विदेशी मुसलमानो के साथ ही अपनी सहानुभूति रखेगे और अधिक करके दिखलायगे, तो भी इससे इन्कार नही किया जा सकता कि इसी देश के अन्दर उनको भी मरना-जीना, सुख-दुःख पाना और जिन्दगी के सभी अरमान पूरे करना तथा मुसीबते झेलना है। मरने के बाद भी वे देश के कुछ हिस्से पर कब्जा जमाये रखते है। हिन्दू मरने के बाद जला दिया जाता है और उसके पाचभौतिक शरीर का निशान कहीं नही रह जाता, जो थोडी-बहुत राख के रूप मे रह जाता है उसे भी वायु उडा ले जाती है अथवा पानी बहा ले जाता है! पर मुसलमान तीन-चार हाथ जमीन लेकर स्थायी रूप से यहां की धरती पर पड़ा रहता है। यह बात कौन नही जानता कि इन कब्रों के कारण कितने झगडे हुआ करते है। इसलिए हमको यह मान लेना ही पडेगा कि हम मुसलमानो को देश मे गैर नही समझ सकते।

अब प्रश्न यह होता है कि मुसलमान यदि गैर नही है तो उनका भी इस देश के साथ वही सम्बन्ध है जो और किसीका; इसलिए उनको भी यहा की सभी चीजो मे हिस्सा मिलना चाहिए। राजनैतिक अधिकार के बटवारे मे भी उनका हिस्सा न्याय्य है। उससे इन्कार करने का एक ही अर्थ है, और हो सकता है, वह अर्थ यह है कि उनको दबाकर उन अधिकारो से वचित रखा जाय।

जो बाते मुसलमानो के सम्बन्ध मे कही गई है, वही बाते सभी मत, धर्म और विचारवालो के लिए लाग है। जिस देश मे इतनी जातिया, इतने धर्मवाले, इतनी भाषाओ के बोलनेवाले, इतने मत-मतान्तर के माननेवाले बसते हों, वहा आपस की एकता मे यदि स्थायित्व न हो, तो पारस्परिक विश्वास और प्रेम की नीव पर शान्ति कभी स्थायी नही हो सकती। जो जब चाहेगा, दूसरो को दबा सकेगा, अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेगा; पर दबे हुए लोग फिर उठ खड़े होने के प्रयत्न मे ही लगे रहेगे—न खुद शान्त रहेगे और न दूसरो को शान्त रहने देगे। आज जो दृश्य इस पृथ्वीव्यापी महायुद्ध मे हम टकराती हुई शक्तियो में देख रहे है, वही दृश्य कुछ छोटे पैमाने पर हिन्दुस्तान में बराबर ही बना रहेगा। यह कोई बुद्धिमत्ता अथवा दूरदर्शिता का परिचायक नही है। हम आज के इस भयंकर संहार को देखते

हुए भी यदि इस रहस्य को न समझें, और इस देश को उसी प्रकार के संहार से बचाने के उपाय न सोचें, तो यह हमारे लिए लज्जा और दुःख तथा हँसी की बात होगी। गांधीजी ने इसी विचार-धारा के अनुसार शुरू से ही अहिंसा पर जोर दिया है, जिसकी आवश्यकता भारत-जैसे देश के लिए सबसे ज्यादा है।

: ३८ :

अहिंसा का तत्त्व

अहिंसा का तत्त्व बहुत गहन है। इसको जीवन में उतारना बड़ा ही कठिन है। इसको ठीक न समझने के कारण ही कुछ लोग इसकी शक्ति और मर्यादा की हँसी उड़ाते है। वे कहते है कि इसके द्वारा आदमी कायर हो जाता है—आज तक संसार में किसी देश ने इसे अपने राष्ट्रीय कार्यक्रम में स्वीकार नही किया है। लोग कहते हैं कि इसके द्वारा देश की स्वतन्त्रता की रक्षा नही हो सकती। मामूली जन-साधारण की कौन कहे, बड़े-बड़े समझदार और संयमी पुरुष भी क्रोध को नही रोक सकते। क्रोध ही तो हिंसा का जन्मदाता अथवा दूसरा स्वरूप है। इसलिए यह नीति कभी प्रचलित नही हो सकती। यह अव्यवहार्य है। इत्यादि।

इस विषय पर विचार करते समय पहली बात मान लेनी चाहिए कि हिंसा मे कायरता है, अहिंसा में नही। जहा कायरता आ गई वहां अहिंसा रह नही सकती। हम यदि अपने प्रतिपक्षी से डरते है और उस डर से उसका नुकसान नही करना चाहते हैं तो इसमे अहिंसा कैसे हो सकती है? प्रतिपक्षी को क्षति न पहुचाने की प्रवृत्ति डर के कारण है न कि इसलिए कि नुकसान पहुंचाना बुरा है। जो मनुष्य इस तरह डर के मारे नुकसान नही पहुचाता, उसको यदि आज मौका मिल जाय, किसी तरह दूसरे के बल का सहारा भी मिल जाय और उसका भय दूर हो जाय, तो वह निःसंकोच और अविलम्ब प्रतिपक्षी पर वार कर देगा; उससे जहातक हो सकेगा उसकी क्षति करेगा। यह अहिंसा कदापि नहीं है। अहिंसा उसीमे रह सकती है जो यह महसूस करता है कि क्षति पहुंचाना ही बुरा है, दूसरे को दुःख देना अन्याय है और इसी विश्वास से वह दुःख पहुंचाने से हिचकता है। उसकी यह प्रवृत्ति उसकी क्षति पहुचाने की शक्ति पर निर्भर नहीं रहती। उसकी यदि शक्ति न भी हो और वह इस भावना से प्रेरित होकर क्षति पहुंचाने का विचार तक न करे, तो भी उसकी प्रवृत्ति अहिंसात्मक होगी। और, यदि शक्ति होते हुए भी वह क्षति पहुंचाने मे प्रवृत्त नही होता, तो उसके अहिंसात्मक होने में किसीको सन्देह ही नही हो सकता। जब मनुष्य इस प्रकार और इस भावना से प्रेरित होकर दूसरे को कष्ट नहीं देना चाहता, तो इसके साथ-

साथ उसपर यदि प्रतिपक्षी कुछ ज्यादती और जुल्म भी करता हो, तो उसे सहने की शक्ति उसमें होनी ही चाहिए। यदि कोई किसी अन्याय को इसलिए सह लेता है कि ऐसा यदि न किया जाय तो अन्यायी और भी अधिक कष्ट पहुंचा सकता है और इसलिए मन मारकर उसे सह लेना ही ठीक है, तो यह अहिंसात्मक प्रवृत्ति नही है, यह कायरता है। अहिंसात्मक प्रवृत्ति वह है कि हम जो ठीक और न्याय-संगत समझते हैं उसको करते ही जायंगे—निर्भय होकर अपने कर्त्तव्य पर डटे रहेंगे और अन्यायी चाहे जितना भी जुल्म करना चाहे, कर ले, पर हम कर्तव्य-च्युत नही होंगे और अन्यायी से बदला लेने की भावना से उत्तेजित होकर उसके साथ कोई बलप्रयोग न करेंगे। जहां इस प्रकार अपने निर्धारित पथ से हम नही हटते, अपने पथ पर डटे रहने के कारण जो भी जुल्म अन्यायी करता है, उसे सह लेते है और साथ ही उसे कष्ट नही पहुचाते, तो सच्चे अहिंसात्मक मनुष्य का-सा हमारा बर्ताव होता है। इससे स्पष्ट है कि अहिंसात्मक क्रिया मे कायरता नहीं है। उसमें कष्ट सहने से डर नहीं है। यह तभी हो सकता है जब अपने पक्ष के न्याययुक्त होने मे पूरा विश्वास हो, उसके समर्थन के लिए दृढ़ संकल्प हो और विपक्षी को कष्ट न पहुंचाने का पक्का विचार हो। अन्त मे अहिंसात्मक व्यक्ति की ही विजय होती है।

यदि यह कहा जाय कि इस प्रकार की सहनशक्ति मनुष्य में, विशेष करके जन-साधारण मे पैदा करना मुश्किल है तो इतना ही कहना काफी होगा कि जो लोग लडाई मे अस्त्र-शस्त्र से लडते है, उनमे भी तो साधारण श्रेणी के ही लोग रहते है, जिनको अगर यों ही छोड दिया जाय तो उतनी बहादुरी नही दिखला सकते, जो वे रणभूमि मे दिखलाते है। केवल अभ्यास और अध्यवसाय की जरूरत है। फौज के सिपाही की बहादुरी भी अभ्यास द्वारा ही पैदा की जाती है। पर वह बहादुरी भय पर अवलम्बित है—प्रतिपक्षी को मारना ही चाहिए, नहीं तो वह मार डालेगा! प्रतिपक्षी द्वारा मारे जाने का भय ही एक अत्यन्त जबरदस्त कारण बहादुरी का होता है। और इनके अलावा, सभी संगठित सेनाओं मे अनुशासन का भी भय तो रहता ही है। जो बात तुलसीदासजी ने मारीच के सम्बन्ध मे कही है वह यहा भी लागू होती है—"उभय भांति देखा निज मरना!" तब मनुष्य एक प्रकार से स्वभावतः बहादुरी करने लगता है। यह बहादुरी बहुत अभ्यास से आती है। अहिंसात्मक बहादुरी भी इसी तरह अभ्यास चाहती है।

अहिंसात्मक अभ्यास दूसरे प्रकार का होता है। फौज मे दिन-प्रतिदिन कवायद, कसरत, क्रूरतापूर्ण शिकार इत्यादि कराये जाते है। अहिंसात्मक

अभ्यास इससे बिलकुल भिन्न है। उसका साधन यदि एक शब्द में कहना चाहें तो, बस संयम है। यहां संयम व्यापक अर्थ में उन तमाम नियमों के लिए व्यवहृत किया गया है जिनका जिक्र हिन्दुओं के तथा दूसरे धर्मों के धर्मग्रन्थों में पाया जाता है। वे साधारण सदाचार के नियम सन्नी से पालन करके सीखे जाते हैं। इन नियमों का झुकाव अहिंसा और सत्य की ओर ही होता है। गांधीजी ने बार-बार लिखा है कि ईश्वर पर विश्वास इसका एक बहुत बड़ा सहायक होता है। यदि इस अहिंसात्मक प्रवृत्ति को जाग्रत और पुष्ट करने में समय लगाया जाय, बचपन में ही अभ्यास कराया जाय और इसपर पूरा ध्यान दिया जाय, तो निर्भयता इत्यादि जो इसके मुख्य बाह्य रूप देखने में आते हैं, अवश्य ही प्राप्त किये जा सकते हैं। यह कहना कि यह मनुष्य के लिए सम्भव नहीं, बे-बुनियाद बात है।

एक समय था जब सभी देशों में जनता में से थोड़े ही लोग लड़ने का पेशा किया करते थे अथवा अपना धर्म समझा करते थे और साधारण जन-समूह फौज और लड़ाई से अलग रहा करता था। भारत में युद्ध क्षत्रियों का ही धर्म समझा जाता था। ब्रिटिश गवर्नमेण्ट भी भारतवर्ष में कुछ विशेष जाति व प्रदेश के लोगों को ही लड़ाकुओं में गिना करती थी और उनमें से ही फौज में लोग भर्ती हुआ करते थे। पर आजकल के विध्वंसकारी महा-युद्ध ने यह साबित कर दिया, कि युद्ध के लिए सभी लोग तैयार किये जा सकते हैं और जिस देश ने इस मर्म को जितना जल्द समझा और लोगों को युद्ध-शिक्षा देने का जितना अच्छा सुप्रबन्ध किया, वह उतना ही शीघ्र और अधिक तैयार हो गया। हिन्दुस्तान में भी इस महायुद्ध में वह बन्धन नहीं रहे जो पहले रहा करते थे और उन जातियों तथा प्रदेशों में भी काफी भर्ती हुई है, जो पहले लड़ाकू नहीं समझे जाते थे। यह स्पष्ट है कि जिस तरह आज की सेना सभी श्रेणियों और विभागों के लोगों से बनी है और बहादुरी के साथ लड़ी है उसी तरह अहिंसात्मक सेना भी जन-साधारण से तैयार की जा सकती है, बल्कि इस अहिंसात्मक सेना की भर्ती के लिए क्षेत्र और भी अधिक विस्तृत हो सकता है। सशस्त्र सेना में शारीरिक ताकत आवश्यक होती है और इसलिए बूढ़े, कम उम्र के बच्चे और बहुत अंश में स्त्रियां उसके योग्य नहीं समझी जाती। अहिंसात्मक सेना में बूढ़े, बच्चे, स्त्रियां और यहांतक कि अन्धे, लूले, लंगड़े भी शरीक हो सकते हैं; क्योंकि इसमें शारीरिक शक्ति इतनी आवश्यक नहीं है—मानसिक दृढ़ता और आत्मबल ही काफी है।

अहिंसात्मक क्रिया का एक बहुत बड़ा महत्वपूर्ण फल यह है कि इसमें जो शरीक होता है, वही अपने ऊपर आपत्ति बुलाता है। दूसरे कष्ट और

मुसीबत के भागी नहीं होते, क्योंकि दूसरों को कष्ट पहुंचाना प्रतिपक्षी को भी इष्ट नहीं होता और न उस कष्ट द्वारा यह अपना कार्य-साधन ही करना चाहता है। इसका उद्देश्य तो प्रतिपक्षी को भी अपने वश में कर लेना होता है, और वह भी बल-प्रयोग से नही, अपने प्रेम के प्रयोग से और प्रतिपक्षी में भी उसी प्रकार की भावनाओं को जाग्रत करके। इसलिए अहिंसात्मक क्रिया में कम-से-कम कष्ट होता है। जहां बल-प्रयोग है, वहां दोनो पक्षो पर मुसीबत होती है। इसमें केवल एक पक्ष अपने ऊपर मुसीबत लेता है। कष्ट की मात्रा इस तरह यों ही आधी हो जाती है। पर यह मात्रा आधी से भी कही अधिक कम होती है; क्योकि जहां विपक्षी बल-प्रयोग से कष्ट नही पहुंचाता वहां दूसरे के भी हाथ कमजोर पड़ जाते है और हथियार मोथरे हो जाते हैं। बाहु में बल-प्रयोग की शक्ति आन्तरिक क्रोध से बढती है और वह क्रोध बल-प्रयोग द्वारा प्रतिकार से जितना जाग्रत होता है, उतना अहिंसात्मक प्रतिकार से नही होता है। इसलिए यदि दोनो पक्षो के कष्टो और मुसीबतों का लेखा लिया जाय तो इसमे सन्देह नही कि अहिंसात्मक क्रिया में कष्ट की मात्रा बहुत ही कम हो जाती है।

अहिंसात्मक क्रिया में किसी विशेष साधन की आवश्यकता नही होती। आज के युद्ध में नित्य नये अस्त्र-शस्त्रों का आविष्कार और प्रयोग होता रहता है। आज जितना धन खर्च हो रहा है उसके आंकड़े बुद्धि को चकरा देते हैं। अमेरिका ने इस युद्ध मे प्रायः पचपन करोड़ रुपये प्रतिदिन खर्च किये है और इंगलैंड ने प्रायः पन्द्रह-सोलह करोड़ रुपये। गरीब भारतवर्ष ने भी एक करोड़ प्रतिदिन खर्च किया है। दूसरे देशो का पता नहीं। पर रूस और चीन के खर्च का भी कुछ इन्ही आकड़ो से अन्दाज लगाया जा सकता है। इन राष्ट्रो के प्रतिद्वन्द्वी जर्मनी, इटली और जापान कितना रोजाना खर्च करते रहे, उसका भी हम इसीसे अनुमान कर सकते है। इन आकड़ों मे जो खर्च हुआ है वही बताया गया है। दुश्मन की कार्रवाई से जो प्रतिदिन नुकसान पहुंचाया गया है, उसका हिसाब शायद इसमें नही है। इसी प्रकार मनुष्यों की हत्या भी बेहिसाब हुई है। और, युद्ध से पैदा हुई उन मुसीबतों और कष्टों का तो कोई हिसाब ही आकड़ों के रूप मे नही कहा जा सकता जो उन देशों की जनता को सहने पड़े हैं, जो लड़ाई मे शरीक थे, और कुछ हद तक उन देशों को भी, जो लड़ाई में शरीक नही थे। इसके विपरीत अहिंसात्मक क्रिया में बाह्य पदार्थों की कोई विशेष आवश्यकता नही है और जन-साधारण के जीवन-क्रम में कोई विशेष गड़बड़ी भी आवश्यक नही है। इस तरह ये कष्ट, धन का खर्च, मानव-रक्त का खर्च और जन-समूह की मुसीबतें—सभी बातें अहिंसात्मक क्रिया में बहुत ही कम,

नहीं के बराबर, हो जाती हैं, जहां बल-प्रयोग में वे इतना ज्यादा होती हैं कि उनका हिसाब ही नहीं लगाया जा सकता है। इसलिए गरीब देश भी इसका प्रयोग आसानी से कर सकता है और बड़े-से-बड़े शक्तिशाली देश का मुकाबला कर सकता है।

यह तो हुआ अन्तर्राष्ट्रीय कामों में अहिंसा का महत्व। जहां एक ही देश मे विभिन्न धर्मों के माननेवाले, विभिन्न भाषाएं बोलनेवाले और विभिन्न विचार रखनेवाले बसते हैं,वहां तो यदि हिंसा की शरण ली गई तो वहा की जनता एक दिन भी चैन से नही रह सकती। अगर भारतवर्ष के लोग आपस में भाई-चारे का वर्ताव न करें, एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता न बरतें और अपने स्वत्वों को ही मुख्य समझकर दूसरों से उनको मनवाने मे संलग्न रहे तथा दूसरो के प्रति अपने कर्तव्यो को गौण समझकर उनके पालन के सतत प्रयत्न में न लगे रहे, तो इसका नतीजा दिन-दिन खून-खराबी बढ़ने के सिवा दूसरा हो ही नही सकता। जहांतक एक व्यक्ति की हिंसात्मक प्रवृत्ति का सम्बन्ध दूसरे एक व्यक्ति से होता है वहांतक तो देश की स्थापित राष्ट्र-शक्ति अपनी पुलिस और अदालतों द्वारा उसका नियंत्रण कर सकती है। पर जब वह प्रवृत्ति जन-समूह तक पहुंच जाती है और देश के विभिन्न विभाग एक-दूसरे से टकराने लगते हैं, तो पुलिस और कचहरियां बेकार हो जाती है। और इस झगडे का रूप गृह-युद्ध का हो जाता है। इसमे बचने के लिए अहिंसात्मक क्रिया पर भरोसा करने के सिवा दूसरा कोई रास्ता भारतवर्ष-जैसे देश के लिए नही हो सकता।

इस सम्बन्ध मे एक और बात स्मरण रखने योग्य है। जब हिंसा-अहिंसा की बात हम करने लगते हैं और यह कह बैठते हैं कि हिंसा तो हमारी नस-नस मे भरी है, हम कैसे आशा करें कि उत्तेजन के समय साधारण मनुष्य और विशेष करके साधारण जन-समूह अहिंसात्मक रह सकेंगे, तो ऐसा कहते समय हम भूल जाते है कि यदि किसी व्यक्ति या समूह के जीवन की रोजाना कार्रवाइयो को देखा जाय, तो हम पावेंगे कि इन सबमे शायद ही एक-दो ऐसे काम होते होंगे, जिनमें हिंसा का प्रयोग किया जाता होगा। सौ में प्रायः निन्यानवे काम ऐसे ही बिना बल-प्रयोग और बिना हिंसात्मक क्रिया के होते हैं, और उन एक या दो प्रतिशत परिस्थितियों पर भी काबू कर लेना तथा हमेशा अहिंसात्मक क्रिया को ही बर्तना कुछ असम्भव नहीं होना चाहिए। हा, प्रयत्न के बिना हमारी जिन्दगी जंगली जानवरों से भी बुरी हो सकती है।

चम्पारन में गांधीजी ने कहा था कि नीलवरों का मैं बुरा नहीं चाहता

हूं; पर साथ ही उनके द्वारा जो जुल्म, ज्यादती और अन्याय रैयतों पर होते हैं, उनको बन्द कराऊंगा और दोनों का मित्र बना रहूंगा। कुछ ऐसा ही हुआ भी। कारण, सबकुछ हो जाने के बाद उन्ही नीलवरों ने गाधीजी को पाठशाला खोलने और दूसरे प्रकार से रैयतों की उन्नति के कामो में सहायता देने का वचन भी दिया था। थोड़े दिनों तक तीन पाठशालाएं चली। एक के सिवा दो पाठशालाओं का नीलवरो के साथ अच्छा और मीठा अनुभव रहा।

यही बात अंगरेजी सल्तनत के साथ भी बड़े पैमाने पर हो सकती है, यदि देश ने अहिंसा के रास्ते को मजबूती मे पकड़े रखा। पर आज ससार में प्रलयंकर युद्ध के बाद भी, जिसने बलप्रयोग को पराकाष्ठा तक पहुंचा दिया है और यह साबित कर दिया है कि मनुष्यमात्र को यदि जीवित रहना है और सभ्यता को कायम रहना है, तो कोई-न-कोई ऐसा रास्ता निकालना चाहिए, जिसमे राष्ट्रो को हर बीस-तीस वर्ष पर अपने युवको को कटवाना न पडे, माताओं को केवल मारे जाने के लिए ही बच्चे न जनने पड़े और धन-राशि केवल अग्नि द्वारा जलाये जाने अथवा समुद्र के पेट मे डुबाये जाने के लिए ही पैदा न की जाय। मै देखता हूं कि हमारे देश का, कांग्रेसियों का और उन कार्यकर्ताओं का भी—जिन्होंने अहिंसा के सहारे से ही आज तक काम किया है और राष्ट्रीय काम मे सफलता भी पाई है—उस अहिंसा पर विश्वास कम होता जा रहा है।

हिन्दू-मुस्लिम एकता के विषय में भी बहुतेरे कह बैठते है कि यह केवल शक्ति मे ही स्थापित हो सकती है, भाई-चारे से नही—अर्थात् जोर-आजमाई करके एक को दबा रखना जरूरी है। कुछ मुसलमान सोचते है कि आज मे कहीं कम संख्या मे रहते हुए भी हमने प्रायः सारे हिन्दुस्तान पर सैकडो बरसो तक राज किया है, तो फिर आज भी कर सकते है। उसी तरह हिन्दू भी कुछ ऐसे जरूर हैं जो कहते हैं कि हमारी समस्या इतनी अधिक है; हम विद्या, धन और बल मे किसी तरह मुसलमानों से कम नही है, बल्कि बढे हुए हैं, और अब वे दिन लद गये जब थोडे-से मुसलमानो ने—हिन्दुओं में जागृति न होने के कारण—राज किया था; अब हिन्दू-जाति जाग्रत है और संगठित होती जा रही है, देश हिन्दुओं का था, दूसरे लोग तो केवल एक अल्प-संख्यक जाति-मात्र है; इसलिए यहां अधिकार हिन्दुओं का ही होना चाहिए—हां, मुसलमान तथा सभी दूसरे अल्प-संख्यक लोगों के साथ पूरा-पूरा न्याय होना चाहिए।

ये दोनों दल अपने बल पर ही भरोसा रखते हैं। अहिंसा की बात, जो एक-मात्र इस कठिन समस्या के सुलझाने का साधन है, ये बिलकुल भूल

जाते हैं। क्रिया और उसकी प्रतिक्रिया साधारण नैसर्गिक नियम है। हिंसात्मक क्रिया की प्रतिक्रिया हिंसात्मक होती है और अहिंसात्मक क्रिया की प्रतिक्रिया अहिंसात्मक। इसलिए इस हिन्दू-मुस्लिम-समस्या के सुलझाने में यदि हम हिंसात्मक भावना से काम लेकर हिंसात्मक क्रिया पर उतरें, तो सुलझाने के बदले यह अधिक उलझती जायगी। हां, हमारी क्रिया सच्चे अर्थ में अहिंसात्मक होनी चाहिए। उसमें न क्रोध होना चाहिए, न बल-प्रयोग—न डर होना चाहिए, न कायरता। सत्य और न्याय पर भरोसा और निष्ठा तथा सच्ची अहिंसात्मक-क्रिया का ही प्रयोग। हो सकता है कि इस प्रकार की अहिंसात्मक-क्रिया का फल शीघ्र और सभी स्थानों पर देखने में न आवे; पर यदि हमारी क्रिया आत्मविश्वास और सचाई और बहादुरी पर अवलम्बित होगी—आत्मलाघव और डर तथा कायरता पर नहीं, तो इसकी विजय अवश्यम्भावी है।

मैं हिन्दू-मुस्लिम समस्या की बात लेकर अहिंसा-सम्बन्धी बातें बहुत-कुछ लिख गया। यह विवेचन कहीं-न-कहीं आनेवाला था ही। यदि यहीं आ गया, तो ठीक ही हुआ।

: ३९ :

छपरे की भयंकर बाढ़

उस साल आश्विन के महीने मे छपरा-जिले में एक दिन बहुत पानी बरसा। चौबीस घंटों में प्राय: छत्तीस इंच वर्षा हुई। इसका नतीजा यह हुआ कि सारा जिला जलप्लावित हो गया और भयकर बाढ़ आ गई। मेरे भाईसाहब जन-सेवा मे बराबर लगे रहते थे। इस मौके पर उन्होने लोगों के सहायतार्थ बहुत परिश्रम से काम किया।

छपरा नगर में इस बाढ़ से लोगों को बहुत कष्ट उठाना पड़ा। पर इसके साथ-ही-साथ एक बात और देखने में आई, जिसका उल्लेख अनुचित न होगा। स्थानीय सरकारी कर्मचारियों ने जनता की मुसीबत मे बड़ी उदासीनता और उपेक्षा से काम लिया, जिससे लोगो मे बड़ा रोष पैदा हुआ। अखबारों में खबर छपी कि जिस समय लोग पानी के मारे त्राहि-त्राहि कर रहे थे, कुछ अफसर नावो पर चढकर झिरझिरी खेल रहे थे। डूबते और परेशान लोगों की, यहातक कि स्त्रियो और बच्चो को भी बचाने मे, उनमें से बहुतेरो ने कुछ भी सहायता नही की; बल्कि वहां के अंगरेज जज और बंगाली सबजज ने मदद की, पर कलक्टर और पुलिस के अफसर तथा डिप्टी मजिस्ट्रेट टस-से-मस नही हुए। इस बात को लेकर छपरे में सार्वजनिक सभा हुई, जिसमें खुलेआम उनकी निन्दा की गई और मदद करनेवालो की—विशेष करके बाबू महेन्द्रप्रसाद और कांग्रेस कार्यकर्ताओं की—बड़ी प्रशंसा की गई तथा उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की गई।

देहातों का भी हाल यही था। एक जगह एक बात मजाक की भी हो गई। छपरे मे मशरक से जो रेल की लाइन आती है, उसे काटने के लिए लोगों ने कलक्टर से बहुत कहा; पर उन्होने एक न सुनी। पीछे वह लाइन टूट गई। अथवा, जैसा मैंने पीछे सुना, किसीने उसे थोड़ा-सा काट डाला और पीछे पानी के जोर ने ज्यादा काटकर एक बहुत लम्बा-चौड़ा खंदक बना दिया। इसी सिलसिले में दो घटनाएं उल्लेखनीय हैं। सीवान से पच्छिम एक जगह पानी बहुत जमा हो गया था। गांववालों ने रेलवे-लाइन को काट डालना चाहा; पर सशस्त्र पुलिस का पहरा था। पहले उनकी हिम्मत नहीं पड़ी, कष्ट सहते ही गये। पर जब वह बर्दाश्त के बाहर हो गया तो एक

गांव के दो-चार आदमी कंधे पर कुदाल रखकर पानी में तैरते हुए लाइन की ओर आये। पुलिसवालों ने देखा और उनको धमकाया। उन्होंने जवाब दिया—"पानी में डूबकर हम मर रहे हैं और तुम लाइन नहीं काटने देते। अबतक हमने बर्दाश्त किया, अब नहीं बर्दाश्त कर सकते। मरना दोनों हालत मे है, डूब करके मरें या गोली खाकर मरें। हमने निश्चय कर लिया है कि गोली खाकर मरना बेहतर है। इसलिए हम लाइन काटेंगे, तुम गोली मारो।"

यह कहकर वे लाइन काटने लगे। पुलिस की हिम्मत नहीं पड़ी कि वह गोली चलावे। लाइन कट गई। पानी वह निकला और कितने ही गांव बच गये। सुना कि पुलिसवालों ने रिपोर्ट कर दी कि पानी से लाइन वह गई, किसीने काटा नहीं। वहां अब एक बड़ा पुल बन गया है। तबसे लाइन के उत्तर के गांवों मे पानी रुक जाने के कारण अब बाढ़ नहीं आती।

दूसरी घटना दरौली थाने के अन्दर के किसी गांव की है। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सड़क ऊंची है। इसलिए सड़क पानी को रोक देती है, जैसे रेलवे-लाइन रोक देती है। गाववालो ने थाने के दारोगा से जाकर कहा कि सड़क कटवा दीजिये तो बहुतेरे गाव बच जाय। उन दिनों गाव-गाव मे काग्रेस-कमिटिया बन गई थी। थाना-भर के सब गांवो को मिलाकर थाना-कमिटी बनी थी। थाना-कमिटी के मुख्य कार्यकर्ता, चाहे वे थाना-कमिटी के सभापति हों अथवा मंत्री, 'स्वराजी दारोगा' कहलाया करते थे। लोगों ने यह नाम न मालूम कैसे दे दिया था; पर यह बहुत जगहो में प्रचलित हो गया था। सरकारी दारोगा ने मजाक मे कहा—"मेरे पास क्यो आये हो, 'स्वराजी दारोगा' के पास क्यों नही जाते।" छपरे में भी किसी उच्चपदाधिकारी ने ऐसा ही कहा था कि मदद के लिए मेरे पास क्यों आते हो, गाधीजी के पास जाओ। छपरावालो ने भी गाधी—अर्थात् काग्रेसवालो—से मदद पाई थी। दरौली थाने के देहाती लोग भी थाना-मत्री के पास गये और दारोगा के साथ हुई बात कह-सुनाई। उन्होने सुनकर कहा—"अच्छा, अगर दारोगा ने ऐसा कहा है और मेरे पास भेजा है, तो मै कहता हूं, जहा तुम जरूरी समझो, सड़क काट डालो, जिसमें पानी बह जाय; पर इसका ध्यान रखना कि बिना जरूरत सड़क न बिगाड़ना।" लोगो ने वैसा ही किया। सड़क काटकर पानी बहा दिया।

मैं भी सहायता के काम मे जुट गया। पर मैं जब पहुंचा, छपरा शहर से पानी हट गया था। गोलेदारों के गोलो में जो अन्न पानी में पड़कर सड़ गया था, उसकी दुर्गन्ध से उन मुहल्लों में चलना मुश्किल हो रहा था। मैंने पैसे जमा करने में और दूसरी तरह से सहायता के काम मे कुछ भाग लिया। वह प्रवृत्ति पहले से ही थी। १९१४ की बाढ़ में मैंने कलकत्ते

से ही सहायता देने का काम संगठित रूप से आरम्भ किया था। यह प्रवृत्ति गाधीजी के ससर्ग से और भी कुछ दृढ़ हो गई थी। जब कभी अपने प्रान्त में कही भी बाढ़ आई, तो मैं कुछ-न-कुछ सहायता का प्रबन्ध करने का प्रयत्न करता था। १९२३ में शाहाबाद में सोन की भयंकर बाढ़ आई। मै उस समय झण्डा-सत्याग्रह के काम से नागपुर गया था। खबर पाते ही वहा से चला आया। इसी तरह दरभगा जिले के मधुवनी-सबडिवीजन मे भयंकर बाढ आई। वहा भी सहायता के लिए जाना पड़ा था। इन सभी जगहों मे बडी कठिनाइयो का भी सामना करना पड़ता था। आरे मे बहुत मुश्किल से पहुच पाया था, क्योकि कोइलवर और आरे के बीच में रेल की लाइन—जो बहुत ऊची बनी है—एकदम टूट गई थी, उसके बाध मे एक-एक जगह डेढ़ सौ-दो सौ फुट चौडी कई खाइया बन गई थी। नीचे का रास्ता तो बिलकुल जलमग्न था ही। रेल की पटरी के नीचे का बाध तो कट गया था; पर ऊपर लोहे की पटरी और कही-कही काठ की पटरिया भी, जिनपर लोहे की रेल जडी रहती है, लटकती थीं। नीचे कही जोरो मे पानी वह रहा था, तो कही कुण्ड बन गया था, जिसमे बहुत गहरा पानी जमा था। इन खाइयो को पार करने का एक ही साधन था—उन पटरियो पर किसी तरह चलकर या लटककर पार करना। मेरे साथ प्रोफेसर अब्दुलबारी थे। हम दोनो इन पटरियो पर कही लम्बे होकर चीपाये की तरह, कही हाथो से इन्हे पकडकर नीचे लटकते हुए बन्दरो की तरह खाइयो को पार करके आरा पहुचे। वहां जाकर सहायता का काम सगठित किया। इन अवसरो पर रुपयो की कमी नही होती थी। अपील करने से लोग पैसे भेज देते। विशेष करके गाधीजी के सम्पर्क के कारण गुजराती भाइयो की कृपा रहती थी। बम्बई और गुजरात से पैसे आजाया करते थे। सेठ जमनालालजी बजाज का भी हमेशा खयाल रहा करता था। प्राय: सभी जगहो मे नावो पर चढ़कर दूर-दूर तक जाना पड़ता था; क्योकि दूसरी कोई सवारी जा नही सकती थी। मधुवनी के इलाके मे एक जगह 'कमला' नदी को नाव पर पार करना पड़ता था। धारा का वेग बहुत तेज था। बहुत मुश्किल से नाव उस पार पहुच सकी थी।

सभी जगहों में, चाहे छपरा मे, चाहे शाहाबाद मे, चाहे दरभंगा मे एक ही दृश्य हमेशा देखने को मिलता था। देहातो मे घर विशेषकर मिट्टी के ही होते है, जो गिरे हुए नजर आते। घरो मे जो कुछ अनाज होता सब सड़ता हुआ मिलता। माल-मवेशी बहकर मरे हुए और लोग भूख से परेशान दीख पड़ते। गाव के कुत्ते भूखों परेशान भूंकते हुए! मवेशी भी उसी तरह भूखो मूक खड़े हुए! बाढ़ के हट जाने के बाद बीमारी—विशेषकर

मलेरिया का प्रकोप ! कुछ दिनों बाद, रबी (बैसाखी) बोने के समय बीज की कमी और चारो ओर से उसकी मांग ! मुझे याद है कि छपरे मे बाढ़ के बाद जब मलेरिया का प्रकोप बढ़ा तो हमने छपरे के डाक्टरों को इकट्ठा किया। सबने मिलकर एक नुस्खा तैयार किया, जिसमें मलेरिया के अलावा कुछ पेट साफ रखने और मामूली खासी रोकने की भी दवा थी। इसीको हमने बहुत बड़े पैमाने पर इकट्ठे तैयार कराया और बोतलों मे भर-भरकर सारे जिले में बटवाया। इसका फल बहुत अच्छा हुआ। बिना डाक्टर के ही हमने अपने कांग्रेसी कार्यकर्ताओं द्वारा दवा बाट करके बहुतेरे रोगियों को आराम किया। दवा बहुत कामयाब साबित हुई। पीछे जहां-कही मलेरिया का प्रकोप होता, उसी नुस्खे को हम लोग बहुत दिनों तक काम मे लाते रहे।

शाहाबाद मे, गगा के दियारे के इलाके मे जहा बाढ का बहुत प्रकोप था, रबी (बैसाखी) की फसल ही होती है। वहा बीज की बहुत आवश्यकता थी। मुझे याद है कि मै हफ्तो तक गावों मे घूम-घूमकर बीज के लिए रुपये बाटता रहा। कार्यकर्ता पहले से ऐसे लोगो की फिहरिस्त बना रखते थे, जो बीज चाहते थे। हम दो-तीन आदमी रुपये लेकर एक दिन गांव मे पहुंचते थे। सब लोग वहा जमा रहते थे। फिहरिस्त की जाच खुली सभा में करके रुपये बाट देते थे। जिस समय आरा मे बाढ आई थी, उसका असर छपरा जिले पर भी पडा था; क्योंकि गगा मे भी बाढ थी और सोन का पानी गंगा खीच नहीं सकती थी। नतीजा यह हुआ कि संगम के नजदीक कई कोसो तक दोनो नदियो का पानी इकट्ठा हो गया और गगा-पार मे भी भयकर स्थिति पैदा हो गई। वहा पर भी सहायता का प्रबन्ध किया गया। जो रुपये जमा हुए उनका एक हिस्सा छपरा मे भी खर्च हुआ; पर मैं वहा खुद जाकर आरा मे कार्यव्यस्त रहने के कारण काम नही कर सका। वहा के स्थानीय लोगो ने ही, जिनमे मुख्य मेरे भाईसाहब थे, काम संभाल लिया।

ऊपर कहा जा चुका है कि रेलवे-लाइनों के कारण बाढो की भयकरता बढ जाती है। अपने सूबे मे पिछले तीस बरसों मे, जितनी बड़ी और भयंकर बाढें आई है, सबका मुझे काफी अनुभव है। मेरा यह दृढ विचार है कि रेलवे-लाइन और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की तथा दूसरी ऊंची सड़कें बाढ के कारणों मे प्रमुख कारण है। यदि इनमे जगह-जगह काफी और चौडे पुल बने रहते तो ऐसी हालत न होती। मैने अपनी आंखों देखा है कि लाइन के एक ओर सात-आठ फुट गहरा पानी है और दूसरी ओर एक-दो फुट भी मुश्किल से है। पानी को यदि मौका मिले और दूर तक फैल जाय तो स्वभावतः उसकी गहराई कम हो जाती है और बहाव भी कमजोर पड़

जाता है। पर जब उसी पानी को तग रास्ते से निकलना पड़ता है और वह सामने के बांध को तोडकर नही निकल सकता, तो स्वभावतः वह जमा हो जाता है और जब कही निकल पाता है तो वहा बहुत जोर का होता है इसलिए यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, जिसपर गवर्नमेंट को ध्यान देना उचित है। पर यहां तो रेल की कम्पनियो के मुनाफे पर ही अधिक ध्यान रखा जाता है, उनको पुल बनवाने के लिए मजबूर नही किया जाता, लाइन काटना तो दूर की बात है। कई बार बाढ़ से जनता को भयकर कष्ट सहने पडे है। ईस्ट-इण्डियन रेलवे ने तो शाहाबाद की बड़ी बाढ के बाद कोइलवर से आरा के बीच में बहुतेरे बड़े पुल बनवा दिये। इस तरह यहा के लोगों का भय बहुत हद तक दूर हो गया। सरकारी सड़क मे भी, जो अब बन गई है, उसी तरह पानी बहने के लिए कई पुल और लचक बना दिये गए है। पर बी० एन० डब्लू० रेलवे ने इस मामले मे बहुत कंजूसपन दिखलाया है। यद्यपि अब उसमे कई जगह पुल बने है, तथापि अब भी बहुत ऐसे स्थान हैं, जहा पुल की जरूरत है। उसने जो पुल बनवाये है, वे जनता के कष्ट दूर करने के खयाल से नही—अपने मुनाफे के खयाल से; क्योकि जबतक केवल जनता के कष्ट की बात रही, एक न सुनी गई; पर जब प्रकृति ने लाइन को इस तरह तोड़ा कि महीनो रेल चलना बन्द हो गया तो उसने मजबूरन कई पुल बनवा दिये। अब, जब वह लाइन गवर्नमेंट की हो गई है, आशा की जा सकती है कि शायद इसपर अधिक ध्यान दिया जाय। हमने सुना है कि सरकारी कर्मचारी भी कहा करते थे कि इस लाइन के मालिक जबरदस्त हैं—उनकी एक नही सुनते। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और पी० डब्लू० डी० को भी इस बात पर ध्यान देने की जरूरत है।

इन सब घटनाओ का मैंने एक ही स्थान पर जिक्र कर दिया, यद्यपि ये कई बरसों में घटी थी।

: ४० :

सत्याग्रह की तैयारी

एक ओर देश मे जोरो मे असहयोग का आन्दोलन चल रहा था। दूसरी ओर गवर्नमेण्ट और उसके अनुयायी युवराज के स्वागत की तैयारिया कर रहे थे। ऐसा जान पडता था कि इस मौके पर मुठभेड़ हुए बिना न रहेगी।

बम्बई मे, शुरू अक्तूबर मे, वर्किंग कमिटी की बैठक हुई। उसीमें निश्चय हुआ कि नवम्बर के शुरू मे दिल्ली मे अखिल भारतीय कमिटी की बैठक की जायगी। यह बैठक विशेष करके सत्याग्रह शुरू करने के प्रश्न पर विचार करने के लिए होनेवाली थी। कांग्रेस के सभापति श्री विजय-राघवाचारी तथा मत्री पडित मोतीलालजी मे कुछ मतभेद हो गया। सभापति ने घोषणा निकाल दी कि दिल्ली मे होनेवाली बैठक नही होगी। मत्री ने घोषणा की कि वर्किंग कमिटी के निश्चय को रद करने का अधिकार सभापति को नही है; और चूकि महत्वपूर्ण विषय पर विचार करने के लिए यह बैठक होनेवाली है, इसलिए यह स्थगित नही की जा सकती। महात्माजी भी पडित जी से सहमत थे। आखिर बैठक दिल्ली मे हुई। श्री-विजय राघवाचारीजी नही आये। उनकी गैरहाजिरी मे लाला लाजपत-रायने सभापति की जगह ली। मै छपरे मे बीमार पड गया था, इसलिए नही जा सका।

बम्बई मे जमा हुए लोगो ने, एक प्रकार से फतवे के सम्बन्ध में घोषणा निकालकर, व्यक्तिगत रूप से सत्याग्रह कर ही दिया था। वह बहुत जगहों पर बड़ी-बड़ी सभाओ मे, जैसा कहा जा चुका है, दुहराया गया था। वर्किंग कमिटी ने यह भी निश्चय कर दिया था कि जहा कही विदेशी वस्त्र-बहि-स्कार और खादी-प्रचार के काम मे सरकार की ओर से रुकावट डाली जाय, कांग्रेसी कार्यकर्ता—यदि वह चर्खा चलाते हो और खादी पहनते हो—अपने प्रान्त की प्रान्तीय कमिटी की आज्ञा से सरकारी प्रतिबन्ध की अवहेलना कर सकते हैं। दिल्ली की अखिल भारतीय कमिटी ने निश्चय किया कि सूबा-कमिटियां अपने-अपने सूबे में, जहा और जिसको वह मुना-सिब समझें, सत्याग्रह की—जिसमें करबन्दी भी शामिल है—अनुमति दे

सकती हैं। अनुमति की शर्तें व्यक्ति के लिए थी —असहयोग की सभी बातों का उस व्यक्ति के द्वारा पूरा होना—अर्थात् उसे खादी पहनना चाहिए, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य मानना चाहिए, अछूतपन छोड़ना चाहिए, इत्यादि। इसी तरह किसी इलाके को अनुमति मिलने की शर्त थी—उस इलाके में विदेशी वस्त्र का पूरा बहिष्कार, वहा की जनता द्वारा स्वदेशी वस्त्र और खादी का धारण करना, अछूतपन का दूर होना, राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार, इत्यादि। इन शर्तों मे किसीको छोड़ देने का अधिकार वर्किंग कमिटी को दिया गया। यह घोषणा कर दी गई कि किसी सत्याग्रही के परिवार के भरण-पोषण का भार काग्रेस पर नही होगा और अहिंसा मे विश्वास सबके लिए अनिवार्य है तथा जबतक इस बात का पूरा प्रबन्ध न हो जाय कि सत्याग्रह होने पर बलवा-फसाद न होगा तबतक सत्याग्रह की इजाजत न दी जाय। इस तरह प्रान्तीय कमिटियों को अधिकार तो मिला; पर सत्याग्रह की शर्तें इतनी कड़ी थी कि किसी भी व्यक्ति या इलाके के लिए उनको पूरा करना बहुत कठिन था। साथ ही, यह भी समझा गया था कि सत्याग्रह आरम्भ करने में जल्दी नही की जायगी, और यद्यपि सभी सूबे तैयारी मे लग जायगे तथापि वे गुजरात का इन्तजार करेंगे, जहा बहुत तैयारी हो रही थी। इसके अनुसार बिहार में भी तैयारियां हो रही थी। छपरा-जिले के लोग चाहते थे कि बसन्तपुर-थाना को सत्याग्रह की अनुमति मिले। खादी-प्रचार द्वारा और दूसरे साधनो द्वारा लोगो की तैयारी भी बताई जाती थी। काग्रेस-कमिटी ने कुछ लोगो को, जिनमे मुख्य मौलवी मुहम्मद शफी साहब थे, जाच के लिए भेजा भी। उन्होंने इलाके को तैयार पाया।

इस तरह की बाते चल रही थी कि नवम्बर महीने के मध्य मे युवराज बम्बई पहुच गये। सरकार की ओर से स्वागत की तैयारी थी, जनता की ओर से बहिष्कार की। हिन्दू और मुसलमान तो एक राय थे। वे मिलकर बहिष्कार मे लगे थे। पर कुछ पारसी स्वागत में शरीक हुए। बहिष्कार काफी कामयाब रहा। पर जब कुछ पारसी स्वागत से लौट रहे थे, काग्रेसियों मे उनका झगड़ा हो गया। काग्रेसियों मे विशेष भाग मुसलमानो ने ही लिया था। बड़ा बलवा आरम्भ हो गया। आरम्भ तो किया हिन्दू-मुसलमानों ने, पीछे पारसियों और क्रिस्तानो ने इसे जारी रखा। भाग्यवश गाधीजी उन दिनों बम्बई में ही थे। उन्होने पहले श्रीमती सरोजिनी नायडू, सेठ उमर सुभानी, सेठ छोटानी तथा शंकरलाल बैंकर प्रभृति को दंगा शान्त करने के लिए भेजा। पीछे स्वयं जहां मारपीट हो रही थी, पहुंच गये। बलवा कई दिनों के बाद किसी तरह शान्त हुआ। इसके लिए गांधीजी को उपवास भी करना पड़ा था। इस बलवे में प्रायः पचास-साठ

आदमी मारे गये और तीन सौ से अधिक घायल हुए। मरे हुओं और घायलों में तीन-चौथाई से अधिक कांग्रेसी थे। इस बलवे का असर उनके दिल पर पड़ा। वर्किंग-कमिटी की बैठक बम्बई में हुई। वहांपर उन्होंने जोर दिया कि सभी जगहों में सत्याग्रह करना खतरनाक होगा; क्योंकि अभी तक लोगों ने अहिंसात्मक लड़ाई के ढग और नीति को पूरी तरह से नहीं समझा है। इसलिए वर्किंग-कमिटी ने निश्चय किया और प्रान्तीय कमिटियों को आदेश दिया कि शान्ति-रक्षा के लिए और जनता के जमाव को संभालने के लिए संगठित सेवकों की जरूरत है, इसलिए सभी कमिटियां सेवक-दल कायम करें—वे ही लोग सेवक हो सकेंगे जो शपथ करेंगे कि वे मनसा, वाचा, कर्मणा अहिंसक रहेंगे और कांग्रेस के अनुशासन को मानेंगे। विचार था कि यदि ऐसे संगठित सेवक-दल तैयार रहेंगे तो बम्बई-जैसी दुर्घटनाएं नहीं होंगी। बम्बई मे गांधीजी के उपवास का फल केवल यही नहीं हुआ कि बलवा शान्त हो गया, वहां के सभी जातियों के लोगों ने आपस में मेल बढ़ाने की एक प्रकार से प्रतिज्ञा भी की। इस तरह देश-भर मे शान्ति के पक्ष में भावना फैली।

श्रीमती एनी बेसेण्ट शुरू से ही असहयोग-आन्दोलन का बहुत जोरों से विरोध कर रही थीं। उन्होंने एक बार यहातक लिख दिया था कि गांधीजी अंधकार की शक्तियों के प्रतिनिधि हैं (Represents the forces of darkness)! बम्बई के दंगे के बाद उन्होंने बहुत कड़े लेख लिखे। किसी बलवे के सम्बन्ध मे उन्होंने तो यह भी लिखा था कि गवर्नमेंट ईंट-पत्थरों के ढेलों का जवाब गोलियों से ही दे सकती है। वर्किंग कमिटी के समय भी उनका एक लेख कुछ ऐसा ही निकला। मुझे याद है कि देशबन्धु दास अखबार की उस सख्या को अपने हाथ में लेते आये। महात्माजी से वह बोले, "हम आशा करते है कि 'यंग इण्डिया' के अगले अक मे इसकी गूजती हुई तीव्र आलोचना हमको पढने को मिलेगी।" महात्माजी ने उत्तर दिया, "ऐसी आशा आप न रखें। हमने देखा है कि गांधीजी इस तरह के 'तू-तू-मैं-मैं' में नहीं पड़ते। इस प्रकार के लेखों को शायद वह पढ़ते भी नहीं। इसमे उनके लेखो मे कटुता नहीं आती। कड़ी-से-कड़ी बात भी वह चुस्त—पर संयत—भाषा में कह डालते है।" उनके सम्पर्क की ही कृपा है कि मैं भी अपने उस स्वभाव को, जो बचपन से ही झगडे से बचने का है, अधिक दृढ कर सका हूं—अपने लेखों और भाषणों में यथासाध्य कटुता न आने देने का प्रयत्न करता हूं।

: ४१ :

गिरफ्तारियां और समझौते का प्रयत्न

बम्बई मे युवराज के उतरने के समय की घटनाओं से सारे देश मे खलबली मच गई। गवर्नमेण्ट ने भी निश्चय कर लिया कि दमन-नीति से काम लेना चाहिए। इसलिए अब जहां-तहां गिरफ्तारियां होने लगी। चन्द दिनों के अन्दर ही, दिसम्बर में, प्रायः सभी जगहो में, एक साथ ही बहुत-से कांग्रेसी लोगों की—विशेषकर बडे-बड़े नेताओ की—गिरफ्तारिया शुरू हो गई। इन गिरफ्तारियो का विशेष कारण यह हुआ कि गवर्नमेण्ट ने सेवक-दलों को गैरकानूनी बना दिया।

१९०८ में दो कानून बने थे। उस समय कई जगहों में, विशेषकर बंगाल में, क्रान्तिकारी दल काम कर रहे थे, जिनके सम्बन्ध मे गवर्नमेण्ट कहा करती थी कि वे बम बनाया करते है—सरकारी कर्मचारियो को बम तथा गोली से मारा करते है, इत्यादि, उन्हीको दबाने के लिए 'क्रिमिनल लॉ अमेडमेंट ऐक्ट' (Criminal law Amendment Act) पास हुआ था। एक दूसरा कानून 'सेडीशस मीटिंग ऐक्ट' (Seditious meetings Act), विद्रोही सभाओं के नियंत्रण और रोकथाम के लिए बना हुआ था। दोनों कानूनो का कारण, गवर्नमेण्ट के कहने के अनुसार, हिंसात्मक दलों की प्रवृत्तिया था। पर इस समय यद्यपि कांग्रेस पूर्णरूपेण अहिंसात्मक दल था, तथापि गवर्नमेण्ट ने उन पुराने कानूनो को सभी सूबो मे—जहा वे पहले से जारी नही थे—जारी कर दिया। एक-एक करके पंजाब, दिल्ली, बिहार, बगाल, युक्तप्रदेश प्रभृति सूबों की सरकारों ने सेवक-दलों को—जो विभिन्न नाम से सूबे-सूबे मे कायम हो रहे थे—गैरकानूनी करार दे दिया। इस तरह खिलाफत-सेवक-दल और काग्रेस-सेवक-दल में शरीक होना जुर्म हो गया। सभाएं करना भी कठिन हो गया।

कांग्रेस-कमिटियों ने निश्चय किया कि हम इन जुल्मी कानूनों को नही मानेंगे। वह सेवक-दल संगठित करने के लिए विशेष जोर लगाकर काम करने लगी। इसलिए, जो भी सेवक-दलों में शरीक होता अथवा उसे संगठित करने का काम करता, वह गिरफ्तार कर लिया जाता। देश के सामने सरकार ने एक नया प्रश्न खड़ा कर दिया। अब हमारे सामने इस समय खिलाफत-

सम्बन्धी, पंजाब-सम्बन्धी तथा स्वराज्य-प्राप्ति की भी बात न रही। अब प्रश्न यह हो गया कि हमें अपने देश में संगठन करने का—आपस में मिल-जुलकर काम करने का—भी हक रहेगा या नहीं। सरकार ने इस स्वत्व का भी कानूनों के द्वारा हरण कर लिया। अब कांग्रेस को सबसे पहले इनके लिए लड़ना आवश्यक हो गया। गांधीजी ने कहा था कि इस लड़ाई में हम सत्याग्रह जो करना चाहते थे, वह नहीं कर रहे हैं—इस समय हम केवल भाषण-स्वतंत्रता और सम्मेलन-स्वतंत्रता के लिए ही लड़ रहे हैं—यह स्वतंत्रता हम केवल कांग्रेस-कमिटियों के लिए नहीं चाहते हैं—हम सभी संस्थाओं और व्यक्तियों के लिए ये स्वत्व चाहते हैं और इसलिए यह लड़ाई सबके लिए और सबकी ओर से है। पर सरकार कब सुननेवाली थी! उसने दबाने का इरादा कर लिया था।

अली-बन्धु प्रभृति कराची के मुकदमे के समय से ही गिरफ्तार होकर सजा पा चुके थे। चन्द दिनों में ही देशबन्धु दास, पंडित मोतीलाल नेहरू, पंडित जवाहरलाल, लाला जालपतराय, मौलाना आज़ाद, श्री राजगोपालाचारी इत्यादि सार्वदेशिक नेता गिरफ्तार हो गये। हजारों की संख्या में दूसरे कांग्रेसी लोग भी गिरफ्तार कर लिये गए। पर जहां-जहां युवराज गये, बहिष्कार और भी अधिक संगठित होता गया। उनके कलकत्ते जाने के दिन नजदीक आ रहे थे। लार्ड रीडिंग चिन्तित तो थे ही, उनके लॉ-मेम्बर थे सर तेज बहादुर सप्रू। इस बात का प्रयत्न होने लगा कि किसी तरह से समझौता हो जाय, जिसमें कलकत्ते में युवराज का ठीक स्वागत हो सके। इस प्रयत्न में मुख्य भाग लेनेवाले थे पंडित मदनमोहन मालवीय। उन्होंने कलकत्ते में जाकर वहां के गवर्नर लार्ड रोनल्डशे से भेंट की; देशबन्धु-दास से भी मिले; देश के कतिपय कांग्रेसी और खिलाफती नेताओं से भी—जो बाहर थे—बातचीत की। वाइसराय लार्ड रीडिंग के पास एक डेपुटेशन ले जाने की बात हुई। देशबन्धु दास कलकत्ता-जेल में थे। उनसे बातचीत शुरू हुई। कुछ ऐसा मालूम होने लगा कि बात तय हो जायगी।

बिहार में भी गिरफ्तारियां होने लगीं। प्रान्तीय कमिटी की बैठक छपरे में हुई। बैठक के समय ही पुलिस ने वहां की कमिटी के दफ्तर की तलाशी ली। जब हम लोग एक सार्वजनिक सभा में भाग ले रहे थे, तो पुलिस की तैयारियों से मालूम होता था कि हम लोग वहीं गिरफ्तार कर लिये जायंगे। पर ऐसा हुआ नहीं। एक आदमी ने सभा में, पुलिस-सुपरिण्टेंडेण्ट की ओर हाथों से इशारा कर-करके, तुलसीदास की एक चौपाई को जोरों से बार-बार दुहराना शुरू किया; तो भी पुलिस ने कुछ नहीं किया। चौपाई यह थी—"गाधि-सुवन मन चिन्ता व्यापी, कब मरिहहिं ये निसिचर पापी।"

सब लोग बैठक और सभा के बाद अपने-अपने स्थान को गये। सभी जिलों में कांग्रेस-कमिटियों की तलाशी होने लगी। लोग गिरफ्तार किये जाने लगे। मैं भी पटने आया। हम सब गिरफ्तारी का इन्तजार कर रहे थे। सभी जिलों में अनेक प्रमुख कांग्रेसी गिरफ्तार कर लिये गए। पटने मे मौलवी खुरशैद हसनैन, बाबू जगतनारायणलाल और कृष्णप्रकाश सेन सिह गिरफ्तार हो गये। और जगहो में मौलवी मुहम्मद शफी, बाबू श्रीकृष्णसिंह, बाबू विन्ध्येश्वरीप्रसाद वर्मा, बाबू रामनारायण सिंह इत्यादि कई काग्रेसी लोग जेल भेज दिये गए। मै नही गिरफ्तार किया गया। हकसाहब, व्रजकिशोरबाबू और मैंने कई साथियों के साथ एक बयान छपवाया, जिसमें हमने जनता को सेवक-दल मे शरीक होने के लिए उत्साहित किया, गवर्नमेण्ट की नीति की निन्दा की और अपनेको सेवक-दल का मेम्बर बतलाया। पर तो भी हम गिरफ्तार नही किये गए। इस तरह सभी जगहो में जिला-मजिस्ट्रेटो तथा दूसरे हाकिमों के पास लोग अपने-अपने हस्ताक्षर करके लम्बी-लम्बी फ़हरिस्तें भेजने लगे, जिनमें सेवकों के नाम रहते। पटने में मैं इसका इन्तजार कर ही रहा था कि मालूम हुआ, सुलह होने जा रही है।

गिरफ्तारियां बन्द हो गई। लार्ड सिंह ने बिहार की गवर्नरी से इस्तीफा दे दिया था। उनकी जगह पर मिस्टर लीमेजरर गवर्नर हो गये थे। बिहार-कौसिल के कुछ प्रमुख व्यक्तियों ने—जिनमें मुख्य मिस्टर हसन इमाम, राय बहादुर द्वारकानाथ प्रभृति थे—गवर्नर के पास डेपुटेशन ले जाकर कहा कि बिहार में पूरी शान्ति है; यहां सेवक-दल को गैर-कानूनी करार देने से ही ज्यादा गड़बड़ी होने की सम्भावना है, इसलिए गिरफ्तारियां बन्द हो जानी चाहिए। गवर्नर ने उनसे कुछ ऐसी बातें की, जिनसे मालूम हुआ कि गवर्नमेण्ट की सारी कार्रवाई गलत बुनियाद पर हुई है। हम लोगों ने उसका प्रतिवाद प्रकाशित किया। पर उसके प्रकाशित होने से पहले ही गिरफ्तारियां बन्द करने का हुक्म उन्होंने निकाल दिया। यद्यपि सेवा-दल के विरुद्ध प्रचारित हुक्म रद नहीं किया गया तथापि जिला-मजिस्ट्रेटों को गिरफ्तारियां बन्द करने का हुक्म हो गया।

सर तेजबहादुर सप्रू, लार्ड रीडिंग के पास, वाइसराय की कौन्सिल की बैठक के लिए, कलकत्ते जा रहे थे। वह पटना होते हुए गुजरे। कुछ लोगो से उनकी मुलाकात हुई, जिससे यह बात फैल गई कि अब सुलह हो जायगी। बिहार में गिरफ्तारियों के रुक जाने से इसकी और भी पुष्टि हुई। उधर गवर्नमेण्ट ने भी जो बातें देशबन्धुदास से जेलखाने में की, उनसे मालूम पड़ा कि देशबन्धुदास उन शर्तों पर राजी हो गये थे, जो सरकार

की ओर से पेश की गई थी। महात्माजी से राय पूछी गई थी और उन्होंने कुछ शर्तें पेश कीं। इस सम्बन्ध की सब बातें उस समय जाहिर नहीं हुईं। इतना ही मालूम हुआ कि गांधीजी ने देशबन्धु दास की यह सिफारिश कि शर्तें मान ली जाय, नामंजूर कर दी है। सब बातों को विस्तार से जानने के लिए श्री कृष्णदास की पुस्तक 'महात्मा गांधी के साथ सात मास' देखना चाहिए।

शर्तें कुछ इस तरह की थी—कांग्रेस युवराज के बहिष्कार को बन्द कर दे। गवर्नमेण्ट एक कान्फ्रेंस करेगी, जिसमें सब बातों पर विचार किया जायगा। राजनैतिक कैदी छोड़ दिये जायंगे। पर कराची के फतवावाले कैदी, जिनमें अलीबन्धु भी थे, नहीं छोड़े जायंगे।

गांधीजी चाहते थे कि कान्फ्रेंस की तिथि और कार्यक्रम (Terms of reference) निश्चित हो जाना चाहिए और कराचीवाले कैदियों को भी जरूर छूटना चाहिए। मुमकिन था कि दो-एक दिन का और समय यदि मिलता तो इन विषयों पर भी विचार करके कुछ तय हो जाता। पर उधर युवराज के कलकत्ते पहुंचने का दिन पहुच गया और बात तय न हो सकी। गवर्नमेण्ट ने देखा कि जब स्वागत के काम मे उसे सफलता नहीं मिली तो फिर ये सुलह की बातें भी बेकार थी। उसने दमन-नीति को और जोरों से चलाने का निश्चय कर लिया। जो डेपुटेशन गया उसे भी कोरा उत्तर दे दिया। साथ ही, कुछ ऐसी गोलमटोल बातें की, जिनसे कुछ लोगों पर, विशेष करके पंडित मालवीयजी पर, यह असर पड़ा कि यद्यपि अभी कुछ नहीं हुआ तथापि राउण्ड टेबुल कान्फ्रेंस करने का प्रयत्न जारी रखना उचित होगा और जो शर्तें वाइसराय ने पेश की है, वे ऐसी है जो पूरी की जा सकती है।

देशबन्धु दास महात्माजी के इस निश्चय से बहुत क्षुब्ध हुए। उन्होंने सोचा था कि उस समय ब्रिटिश गवर्नमेण्ट का इतना झुकना ही बड़ी बात थी और इसको मान लेना चाहिए था। यदि कांग्रेस मान लेती तो कांग्रेस की शक्ति बढती और काम अधिक जोरो से चलता। गवर्नमेण्ट उसे दबा नहीं सकती। महात्माजी ने सोचा कि लार्ड रीडिंग की इच्छा थी कि किसी प्रकार कलकत्ते जैसे शहर में युवराज का अच्छा स्वागत हो जाय तो बम्बई आदि की घटनाएं कुछ महत्व नहीं रखेंगी और वह भारत की राजभक्ति की घोषणा कर सकेंगे। कान्फ्रेंस की नीति और तिथि दोनों ही अनिश्चित थी। न मालूम वह कब होगी और क्या करेगी। उसपर भरोसा करना बेकार है और कांग्रेस की शक्ति बढ़ने के बदले घटेगी, जब देश यह देखेगा कि हम किस तरह से ठग लिये गए। इसके अलावा अली-बन्धुओं को हम

जेल में कैसे छोड़ सकते हैं। जिन लोगों ने सब बातों में साथ दिया है, जिनका जनता पर इतना प्रभाव है और जो हमारे साथी हैं, उनको जेल मे छोड़ देना उनके साथ अन्याय होगा। इसलिए लार्ड रीडिंग की शर्तें हमे केवल धोखा देगी, कोई काम नहीं निकलेगा।

इसमें कोई शक नही कि देशबन्धु दास बहुत क्षुब्ध हो गये। जब म्याद खतम होने पर वह छूटे तो उन्होंने अपने एक भाषण मे कहा कि महात्माजी ने बहुत भारी और भद्दी भूल की थी (Bungled and blundered)। इस विषय पर, तटस्थता के साथ, तो कोई भावी इतिहास-लेखक ही विचार कर सकेगा। मैं इतना ही कह सकता हूं कि उस समय से आज तक जो अनुभव ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट के साथ समझौते के हमें हुए है, वे बहुत कड़वे है। शब्दाडम्बर मे असली बाते अक्सर छिप जाती है। समझौते अंगरेजी भाषा मे ही लिखे जाते है और उनके अर्थ मे अनर्थ की काफी गुजाइश रहती है। १९३१ के मार्च मे लार्ड इर्विन के साथ जो समझौता हुआ, उसकी शर्तो के पूरा करने मे लार्ड विलिंगडन की गवर्नमेंट ने और सिविल-सर्विस ने जो-जो दिक्कते पेश की, उन्हे वही जान सकता है, जिसको उस सम्बन्ध में उनसे बातें अथवा पत्र-व्यवहार करने का मौका मिला हो। महात्माजी अपने अनुभव से जानते थे कि किसी शर्त को गोलमटोल छोड़ देना अथवा उसमें किसी प्रकार की अनिश्चितता रहने देना अन्त मे घातक होगा। उनको ब्रिटिश सरकार की खुश नीयत पर भी विश्वास नही था। इसलिए उन्होंने ऐसी शर्तों को मानना ठीक नही समझा और काग्रेस की निश्चित नीति को तथा अपने साथियो को इन निश्चित शर्तो के भरोसे जेलखाने मे छोडने से इन्कार कर दिया। किसी भी देश को स्वतंत्रता यदि सस्ती दर से मिल जाय तो उसकी उतनी कदर नही रह जाती। विशेषकर भारतवर्ष को तो इसे वाजिब मूल्य देकर ही लेना चाहिए; क्योंकि हम इतने दिनो की दासता के कारण इसका उचित मूल्य आंकना भी भूल-से गये हैं।

: ४२ :

अहमदाबाद-कांग्रेस और सत्याग्रह

इधर ये बातें चल रही थी, उधर काग्रेस के सालाना जलसे के दिन भी आ गये। देशवन्धु दास ही सभापति मनोनीत हुए थे। वह थे जेलखाने मे। काग्रेस का अधिवेशन अहमदाबाद मे होनेवाला था। वहा सरदार वल्लभ-भाई स्वागताध्यक्ष थे। वड़े पैमाने पर तैयारिया की गई थी। जब बिहार में गिरफ्तारिया वन्द हुई, हम लोग जो बाहर थे, अहमदाबाद के लिए रवाना हो गये।

अहमदाबाद की काग्रेस वहुत बातो में अनूठी थी। पहले-पहल कांग्रेस से कुर्सिया उठा दी गई। प्रतिनिधियो को फर्श पर बैठाने का प्रवन्ध किया गया था। इस तरह उतने ही स्थान मे बहुत अधिक प्रतिनिधि और दर्शक वैठ सकते थे। प्रतिनिधियो का चुनाव पहली वार नागपुर के परिवर्तित नियमो के अनुसार हुआ था। अब हम कह सकते थे कि काग्रेस चुने हुए प्रतिनिधियो की सभा है। बहुतेरे चुने हुए प्रतिनिधि जेलखानो मे थे, जिनमे प्रमुख तो मनोनीत सभापति देशवन्धु चितरंजन दास थे ही। बहुतेरे नेता—जिन्होने साल-भर वडे परिश्रम, लगन और उत्साह से देश को जगाया और संगठित किया था—इस अधिवेशन मे, गवर्नमेण्ट की नीति के कारण, आने से वचित थे। जो लोग आये थे, उनमें और सारे देश में उत्साह उमड़ा पड़ रहा था, मानो भरी नदी के किनारो को पार करके जल-प्रवाह चारों ओर फैल रहा है। इतनी गिरफ्तारियों के कारण कही भी मुर्दनी नही थी। दमन-नीति ने दवाने के बदले लोगों को अधिक उभाड़ने का ही काम किया था। गाधीजी भी आशा और उत्साह से भरे थे। सब लोग सत्या-ग्रह का स्वप्न देख रहे थे। लोग इस आशा मे थे कि कांग्रेस सत्याग्रह का आदेश देगी और आयोजन करेगी। कांग्रेस के साथ एक बड़े महत्व की प्रदर्शनी भी हुई थी, जिसमें नवजात—बल्कि पुनर्जीवित—खादी का बड़ा महत्त्व था। प्रतिनिधियों के रहने के लिए काग्रेस-पंडाल के नजदीक ही एक छोटा-मोटा नगर 'खादी नगर' नाम का बस गया था, जिसमें सभी ठहराये गये थे। ये सब बाते कांग्रेस के लिए नई थी। पास ही में उसी तरह खिला-फत-कान्फ्रेंस के लिए पंडाल इत्यादि बने थे।

कांग्रेस का अधिवेशन भी निराला ही था। पुरानी प्रथा के विरुद्ध स्वागताध्यक्ष का भाषण बहुत छोटा था। उसमें देश की परिस्थिति और कांग्रेस के कार्यक्रम पर विचार नही किया गया था। केवल उपस्थित प्रतिनिधियों का स्वागतमात्र था, और था गुजरात मे हुए काम का छोटा-सा विवरण। मनोनीत सभापति गैरहाजिर थे, इसलिए उनके स्थान पर हकीम अजमल खां सभापति चुन लिये गए। स्वागताध्यक्ष और सभापति दोनों के ही भाषण राष्ट्रभाषा हिन्दी या उर्दू में ही हुए।

सबसे महत्व का प्रश्न सत्याग्रह का था। अधिवेशन में एक ही प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, जिसमें परिस्थिति का सिंहावलोकन करते हुए सत्याग्रह का निश्चय प्रकट किया गया। इस काम के लिए गांधीजी सर्वसर्वा (Dictator) बनाये गए। इस बात का अन्देशा था कि जैसे और नेता गिरफ्तार किये जा चुके है, गाधीजी भी गिरफ्तार कर लिये जायंगे; इसलिए प्रस्ताव में उनको उसी अधिकार के साथ अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करने का भी अधिकार दिया गया। पर यह साफ कह दिया गया कि कांग्रेस के ध्येय को बदलने का अधिकार उनको नही होगा। हां, यदि गवर्नमेण्ट से कुछ सुलह हो तो उसकी मंजूरी कांग्रेस से लेनी पडेगी। सेवक-दल के संगठन पर जोर दिया गया और जिस प्रतिज्ञा-पत्र पर उनके हस्ताक्षर होनेवाले थे, वह और भी कुछ सख्त बनाया गया।

इस अधिवेशन मे एक विशेष बात यह हुई कि मौलाना हसरत मोहानी ने यह प्रस्ताव पेश किया कि कांग्रेस का ध्येय स्वराज्य के बदले स्वतंत्रता (Independence) बना दिया जाय। गाधीजी ने इसका विरोध किया। अतः प्रस्ताव स्वीकृत नही हुआ। उसके बाद प्रायः हर अधिवेशन में इस प्रकार का प्रस्ताव आता रहा। पर गांधीजी के विरोध से तबतक नामंजूर होता रहा जबतक यह कई बरसों के बाद गाधीजी के विरोध हटा लेने पर स्वीकृत न हो गया। दूसरी बात यह हुई कि पंडित मालवीयजी का गोलमेज-कांफ्रेंस-सम्बन्धी प्रस्ताव नामंजूर कर दिया गया। पंडितजी कलकत्ते से सीधे अहमदाबाद आये थे। वहां उनका प्रयत्न असफल हो गया था, पर वह बहुत बड़े आशावादी थे। उन्होंने कांग्रेस को सलाह दी और प्रस्ताव पेश किया कि यदि गोलमेज-कान्फ्रेंन्स गवर्नमेण्ट करे तो कांग्रेस उसमें शरीक हो। ऊपर कहा जा चुका है कि इस समय इसका कोई मौका ही नहीं था। इसलिए कांग्रेस ने उस बात को नही माना। पीछे यह मालूम हुआ कि पडित मोतीलालजी भी किसी प्रकार के समझौते के विरुद्ध थे।

कांग्रेस के बाद सभी लोग अपने-अपने स्थान को रवाना हुए। वहीं पर मालूम हो गया कि महात्मा गांधी एक जगह सत्याग्रह करेंगे और वह

स्थान होगा बारडोली। औरों को भी आदेश मिला कि अपने-अपने स्थान पर जनता में प्रचार और संगठन करें। सबसे अधिक कांग्रेस के कार्यक्रम की पूर्ति के लिए, विशेषकर सेवक-दल के संगठन के लिए, जी-तोड़ परिश्रम करके प्रयत्न करें।

पंडित मालवीयजी और कुछ दूसरे नेताओं ने निश्चय किया कि एक ऐसी कान्फ्रेंस की जाय, जिसमें कांग्रेस और गवर्नमेण्ट के बीच का झगड़ा मिटाने का प्रयत्न किया जाय। उन्होंने अहमदाबाद-कांग्रेस समाप्त होते ही इसकी घोषणा की। देश के मुख्य-मुख्य लोग, जिनमें मुख्य मुख्य कांग्रेसी और खिलाफती भी शामिल थे, बम्बई में आमंत्रित हुए। यह सभा जनवरी के मध्य में बम्बई में हुई। सर शंकर नायर इसके सभापति हुए। मैं भी, और कांग्रेसियों की तरह, वहा गया। गांधीजी ही हमारी ओर से बोलने-वाले थे। हम लोगों ने निश्चय कर लिया था कि सबकी ओर से जो कुछ कहना होगा, वही कहेंगे। महात्माजी ने साफ-साफ बता दिया कि हम कांग्रेसियों को इस गोलमेज-कान्फ्रेंस से, जिसके आयोजन का प्रस्ताव गवर्न-मेण्ट से किया जा रहा था, कोई आशा नहीं है; तो भी अगर वह हो, और गांधीजी बुलाये जाय, तो वह बिना शर्त के उसमें शरीक होंगे; पर व्यक्तिगत हैसियत से। हां, यदि कांग्रेस को आमंत्रित किया जाय, तो वह तभी शरीक हो सकेंगे जब कान्फ्रेंस का कार्यक्रम और तिथि निश्चित कर ली जाय। साथ ही, वह घोषणा वापस कर ली जाय, जिसके द्वारा सेवक-दल गैर-कानूनी करार दिये गए है तथा जिसे न मानने के कारण जिन लोगों को सजा दी गई है, वे छोड़ दिये जायं। फतवावाले कैदियों को जरूर छोडना चाहिए। खिलाफत, पंजाब और स्वराजवाली कांग्रेस की मांगे जाहिर थी; कांग्रेस उन्हींको वहा पेश करके उन्हें मनवाने का प्रयत्न करेगी। अपनी ओर से हम सत्याग्रह स्थगित कर देंगे।

कान्फ्रेंस करनेवालों की तरफ से एक प्रस्ताव पेश किया गया; पर गांधीजी को वह मंजूर न हुआ। इस कारण उसपर विचार करके उसे रद-बदल कर फिर उपस्थित करने के लिए एक उपसमिति बना दी गई। उस दिन जो लोग उपस्थित थे, उनके भाषण हुए। मेरे दिल पर एक भाषण का बहुत असर पड़ा था। वह था सर हरमुसजी वाडिया का भाषण। यह थे एक वयोवृद्ध बड़े व्यापारी—लिबरल-दल के विचार रखनेवाले पारसी। इन्होंने गवर्नमेण्ट की सारी नीति की तीव्र शब्दों में निन्दा की। वह यद्यपि सत्याग्रह के विरोधी थे, तथापि उन्होंने साफ-साफ बता दिया कि इस अवस्था की सारी जवाबदेही सरकार पर है।

दूसरे दिन उपसमिति की बैठक हुई। उसमें गांधीजी शरीक रहे।

सबकी राय से एक प्रस्ताव तैयार हुआ। पर सर शंकर नायर बहुत बिगड़ गये। दोपहर को वह कान्फ्रेन्स से चले गये। उनके साथ कोई दूसरा नहीं गया। तब कान्फ्रेंस के सभापति सर विश्वेश्वरैया हुए। उन्होने उस प्रस्ताव को मंजूर कर लिया। गाधीजी ने फिर अपनी वही बाते दुहरा दी। उन्होंने यह भी कह दिया कि काग्रेस की वर्किंग-कमिटी द्वारा वह ३१ जनवरी तक के लिए सत्याग्रह स्थगित करा देने का प्रयत्न करेगे।

बम्बई मे वर्किंग-कमिटी के लोग प्राय. सभी थे ही। बैठक मे तय हुआ कि ३१ जनवरी तक और यदि गोलमेज-कान्फ्रेस की बात तथा प्रस्ताव की दूसरी शर्तें गवर्नमेण्ट ने मंजूर न कर ली, तो जबतक उसका कुछ फैसला न हो जाय तबतक सामूहिक सत्याग्रह बन्द रहेगा और व्यक्तिगत सत्याग्रह केवल बचाव के लिए ही जहां मजबूरी होगी, वही किया जायगा; पर सेवक-दल के सगठन का काम जारी रहेगा। कान्फ्रेस के प्रस्ताव को तार द्वारा कान्फ्रेन्स-कमिटी ने वाइसराय के पास भेजा। एक लम्बे तार द्वारा यह सूचित किया गया कि कलकत्तेवाले डेपुटेशन के उत्तर मे जो शर्तें लार्ड रीडिग ने दी थी, प्राय: वे सभी मजूर कर ली गई हैं और अब गवर्नमेण्ट को गोलमेज-कान्फ्रेन्स मंजूर कर लेनी चाहिए। उधर से नामजूरी का जवाब आ गया! इसपर फिर तार द्वारा लिखा-पढी की जा रही थी कि ३१ जनवरी का दिन पहुंच गया। अब कांग्रेस के लिए कुछ निश्चय करना अनिवार्य हो गया।

काग्रेस से लौटने के बाद मैने अपने सूबे मे दौरा शुरू किया। यह ३१ जनवरीवाली अवधि बीतने के बाद, बारडोली की एक सभा मे, जिसमें महात्माजी और हकीम अजमलखा शरीक थे, बारडोली मे सत्याग्रह शुरू करने का निश्चय हुआ। यह बात घोषित भी कर दी गई। श्री बिट्ठलभाई पटेल और सरदार वल्लभभाई अब वही रहने लगे थे। महात्माजी भी पहुंच ही गये थे। वहां जनता की सभा में महात्माजी ने सत्याग्रह के अर्थ को और उसमें होनेवाले कष्टों को लोगो को बताया। उनसे शपथ ली कि वे सत्य और अहिसा पर डटे रहकर देश के लिए स्वतत्रता प्राप्त करने मे अपनेको भस्मीभूत कर देंगे। सूरत में वर्किंग-कमिटी की बैठक हुई। उसने वहां सत्याग्रह करने की मंजूरी दे दी। इसके बाद ही गांधीजी ने वाइसराय को पत्र लिखा, जिसमें उन्होने सत्याग्रह के निश्चय की सूचना देते हुए सत्याग्रह आरम्भ करने के लिए तिथि भी ठीक कर दी।

: ४३ :

सत्याग्रह स्थगित और गांधीजी की गिरफ्तारी

मै सूबे के दौरे मे, मुजफ्फरपुर-जिले के गांवों मे घूमता-घूमता, 'पुपरी' गांव की सभा मे भाषण कर रहा था। उसी समय तार मिला कि वर्किंग-कमिटी की बैठक बारडोली में होनेवाली है और मुझे वहां तुरंत पहुंचना चाहिए। मै वहां से तुरंत रवाना हुआ। पहली गाडी जो मिली उससे पटना होता हुआ वहां चला गया। इस बीच मे एक बहुत दुःखद और महत्वपूर्ण घटना हो गई। गोरखपुर-जिले के 'चौरीचौरा' गाव मे जनता और पुलिस मे मुठभेड हो गई। जनता ने आवेश मे आकर पुलिस-थाने को जला दिया। कितने ही पुलिस-कर्मचारियो को भी मार डाला।

महात्माजी के दिल पर इसका बहुत गहरा असर पड़ा। उन्होंने देख लिया कि देश ने अभी तक अहिंसा के तत्व और महत्व को नही समझा है; इसलिए यदि सत्याग्रह आरम्भ हुआ तो इस प्रकार की घटनाए अनेक स्थानो मे होने लगेगी; इसके फलस्वरूप सरकार की ओर से भी दमन-नीति जोरो से बरती जायगी और जनता उसको बर्दाश्त नही कर सकेगी; इसलिए यद्यपि वाइसराय को सत्याग्रह आरम्भ करने की सूचना दे दी गई है तथापि सत्याग्रह को स्थगित ही कर देना चाहिए।

देश की नाडी पहचानकर महात्माजी इस निश्चय पर पहुंच गये। इसी पर विचार करने के लिए उन्होंने वर्किंग-कमिटी की बैठक की।

यद्यपि मैं जल्द-से-जल्द रवाना हुआ था तथापि जब मै बारडोली स्टेशन पर पहुचा तो उसी ट्रेन से वापसी के लिए रवाना होते हुए पंडित मदनमोहन मालवीयजी से वही भेट हो गई। उन्होने बता दिया कि वर्किंग-कमिटी का काम समाप्त हो चुका है और सत्याग्रह स्थगित करने का निश्चय कर लिया गया है। जब मैंने यह सुना तो मेरे दिल पर भी एक धक्का-सा लगा। मैं वहां पहुंचा जहां गांधीजी ठहरे थे। उन्होने आते ही पूछा कि निश्चय सुन लिया है न? मैंने कहा, हां! इसपर पूछा कि इस विषय में तुम्हारी राय क्या है? मैं अभी कुछ उत्तर नहीं दे सका था कि वह समझ गये, मेरे दिल में कुछ सन्देह मालूम हो रहा है! उन्होंने उसी

क्षण सब बातें समझा दीं। मैं सुनता गया, पर अभी किसी निश्चय पर नही पहुंचा था कि अन्त में उन्होने कहा, जो कुछ मैंने कहा है, उसपर विचार करो।

संध्या हो गई थी। मैने रात को सब बातों पर और सब पहलुओं पर, महात्माजी की बताई बातों की रोशनी में, विचार किया। मेरी भी दृढ राय हो गई कि निश्चय ठीक ही हुआ है। दूसरे दिन गांधीजी ने फिर पूछा, क्या विचार किया? मैने उत्तर दिया कि मैं सब बातें समझ गया और निश्चय ठीक ही हुआ है। इससे वह कुछ प्रसन्न मालूम हुए।

इस निश्चय के प्रकाशित होते ही सारे देश में एक अजीब परिस्थिति उत्पन्न हो गई। मामूली कार्यकर्ताओ की बात कौन कहे, बड़े-बडे धुरंधर नेता—पडित मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपतराय प्रभृति, जो सभी जेल मे थे—इससे बहुत असन्तुष्ट हुए। अखबारों में भी विरोध की आवाज उठी। हां, हकीम अजमल खा और डाक्टर अन्सारी भी बारडोली की उस बैठक में नही पहुच सके थे। इन लोगों ने सत्याग्रह स्थगित करने की राय वहा भेज दी थी। साधारण जनता में एक प्रकार की मुर्दनी-सी दिखाई देने लगी, मानो दौड़ता हुआ मनुष्य ठेस लग जानेसे गिर पड़ा हो।

बारडोली मे ही गांधीजी ने पहले-पहल उस रचनात्मक कार्यक्रम को निश्चित और परिष्कृत रूप दिया, जो आज तक कांग्रेस का मुख्य कार्यक्रम है। वह प्रस्ताव इतने महत्व का है कि उसका उद्धरण आवश्यक है। नीचे उसका हिन्दी-रूपान्तर दिया जाता है—

"चूकि गोरखपुर (चौरीचौरा) का भयानक काण्ड इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि देश की जनता अबतक यह अच्छी तरह नही समझ सकी है कि 'अहिंसा' भद्र अवज्ञा या सिविल नाफरमानी का एक जरूरी क्रियात्मक और प्रमुख अश है; और चूकि स्वयंसेवको की भर्ती मे बिना छानबीन किये ही—और कांग्रेस की बताई हुई हिदायतों के खिलाफ भी—लोग ले लिये गए हैं, जिससे लोगों में सत्याग्रह के मूल तत्व की समझ की कमी जाहिर होती है; और चूकि इस कार्यकारिणी कमिटी की राय मे राष्ट्रीयता तक पहुंचने में देरी होने का एक प्रधान कारण कांग्रेस के शासन-को व्यवहार मे लाने में अपूर्णता और दुर्बलता ही है, इसलिए कांग्रेस के अन्दरूनी संगठन को सुदृढ बनाने के खयाल से यह वर्किंग-कमिटी कांग्रेस के सभी संगठित अंगों को सलाह देती है कि वे नीचे लिखे कार्यक्रम को अंजाम देने में संलग्न हो जायं—

१. कम-से-कम एक करोड़ कांग्रेस के मेम्बरों की भर्ती। चूकि शान्ति (अहिंसा और वैधता) और सत्य कांग्रेस की नीति के मूल तत्व या सार है,

इसलिए ऐसे व्यक्ति की भर्ती न की जाय, जो स्वराज्य-प्राप्ति के लिए सत्य और अहिंसा को अनिवार्य न समझता हो। इस खयाल से कांग्रेस की नीति को खूब अच्छी तरह हर ऐसे शख्स या व्यक्ति को समझा देना चाहिए जिससे कांग्रेस का मेम्बर बनने का अनुरोध किया जाय। मेम्बर बनानेवाले कार्यकर्ता को खयाल रखना चाहिए कि सालाना चन्दा न अदा करनेवाला कांग्रेस का मेम्बर नही समझा जायगा। इसलिए पुराने मेम्बरों को फिर से नये साल के लिए अपना-अपना नाम दर्ज करा लेना चाहिए।

२. चर्खे को लोकप्रिय बनाना और हाथ के कते हुए सूत से हाथ की बुनी हुई खादी तैयार करने का संगठन (यानी प्रबन्ध) करना। इस कार्य की सफलता के लिए कुल कार्यकर्ताओं तथा कांग्रेस के पदाधिकारियों को खद्दर की ही पोशाक पहननी चाहिए और यह भी अच्छा रहेगा कि दूसरों के हौसले बढ़ाने के लिए उन्हें खुद चर्खे पर सूत कातना सीखना चाहिए।

३. *नेशनल स्कूल यानी राष्ट्रीय विद्यालय कायम करना। गवर्नमेण्ट* स्कूलों पर धरना नहीं देना चाहिए। राष्ट्रीय स्कूलों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ाने मे इन स्कूलो की अच्छी पढ़ाई पर ही भरोसा करना चाहिए।

४. गिरी हुई दलित जातियों के रहन-सहन को बेहतर बनाने के लिए तथा उनकी सामाजिक, मानसिक एवं नैतिक हालत को सुधारने के लिए उनका संगठन करना। उनको समझा-बुझाकर उनके बच्चों को स्कूलों मे पढ़ने के लिए भेजना और जो सुविधाए सबको मिलती है, वे इन लोगों को भी दिलवाना। जहा कही अछूत जातियो से लोग ज्यादातर अलग रहते है और छूत-छात का भाव जबरदस्त है, वहापर इनके बालकों के लिए कांग्रेस के पैसे से अलग स्कूल-पाठशालाएं चलाई जानी चाहिए और लोगों को समझा-बुझाकर अछूतों को भी सार्वजनिक कुओ से पानी भरने देने का प्रबन्ध कराना चाहिए।

५. मादकद्रव्य-निषेध के लिए शराबियों की बस्ती मे घर-घर जाकर, उन लोगो को समझा-बुझाकर, नशाखोरी बन्द करने का संगठित कार्य करना। इस कार्य के लिए धरना (पिकेटिंग) से काम न लिया जाय, बल्कि समझाने-बुझाने से, आरजू-मिन्नत से ही काम निकालना चाहिए।

६. आपस के झगड़ो और मुकदमो को खानगी तौर पर ही तय-तस-फिया करा देने की गरज से शहरो और गांवों में पंचायते कायम करना। पंचायती फैसलों को लोगों से मनवाने की शक्ति पंचायत की सचाई और ईमानदारी, इन्साफ और लोकप्रियता से ही पैदा होनी चाहिए। किसी तरह की जोर-जबरदस्ती की परछाईं भी न पड़ने पावे। इसलिए ऐसा न होना

चाहिए कि जो कोई पंचायत-फैसला न माने वह समाज या जाति से खारिज किया जाय।

७. हर जाति या वर्ग के लोगों में मेलजोल बढ़ाने और आपस के ऐसे मेल-मिलाप की आवश्यकता पर सबका ध्यान खींचने की गरज से मेल-मुआफकत का बढ़ाना असहयोग-आन्दोलन का एक ध्येय है। ऐसे सामाजिक सेवा-विभाग का संगठन करना, जो बगैर किसी भेद-भाव के, सबकी सेवा, रोग-शोक या आपत्ति-विपत्ति-काल में, एक तरह से, एक भाव से करे। असहयोगी को, अपनी नीति पर दृढता से कायम रहते हुए भी, बीमारी में या किसी विपद के समय, अंगरेजों या हिन्दुस्तानियों की, यानी सबकी, बराबर सेवा करना, अपनी बड़ाई या सौभाग्य की बात समझना चाहिए।

८. तिलक-स्वराज्य-फण्ड को इकट्ठा करने का काम जारी रखना और हरेक काग्रेसी या कांग्रेस से सहानुभूति रखनेवालों से मांग पेश करना कि वे अपनी सन् १९२१ की आमदनी का एक प्रतिशत (सौ हिस्से में एक हिस्सा) तिलक-स्वराज्य-कोष में दान कर दे। हरेक सूबा-कांग्रेस-कमिटी अपने इस जमा किये हुए धन का चौथाई हिस्सा हर महीने अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी के पास भेज दिया करे।

९. वर्किंग कमिटी का यह प्रस्ताव, अगर जरूरी समझा जायगा तो, संशोधन (तरमीम) के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी की अगली बैठक में पेश किया जायगा।

१०. वर्किंग कमिटी की राय में किसी ऐसे प्रबन्ध की जरूरत मालूम पड़ती है, जिसके जरिये सरकारी नौकरियों को छोड़कर आये हुए लोगों के लिए कुछ रोजगार-धन्धा दिया जा सके। इस गरज से यह कमिटी सर्वश्री मियां मुहम्मद हाजीजान, मुहम्मद छोट्टानी, सेठ जमनालाल बजाज तथा बी० जे० पटेल को मुकर्रर करती है कि ये लोग एक योजना उस तरह की तैयार करके आगामी अखिल भारतीय कमिटी की विशेष बैठक मे विचारार्थ पेश करें।

बारडोली में ही यह निश्चय कर लिया गया कि अखिल भारतीय कमिटी की बैठक शीघ्र ही की जाय। तिथि निश्चित करके दिल्ली में बैठक की घोषणा कर दी गई। इसी बैठक में बारडोली के निश्चय पर विचार होने को था।

गांधीजी ने पांच दिनों का उपवास किया। वहां की जनता की सभा में उन्होंने अपने निश्चय को बतलाया। मैं भी उस सभा में उपस्थित था। लोगों ने बात तो मान ली, पर यहां भी निराशा मालूम होती थी।

दिल्ली में, वर्किंग कमिटी की बैठक में, जो अखिल भारतीय कमिटी की बैठक के पहले हुई, लालाजी और पडित मोतीलालजी तथा औरों की रोषपूर्ण सम्मतिया मिली—'यह निश्चय देश के लिए बड़ा हानिकर हुआ है, इससे केवल जनता हतोत्साह ही नही होगी, बल्कि देश की प्रतिष्ठा को भी ठेस लगेगी।' कुछ नेताओ के पत्र भी, इसी आशय के गांधीजी के पास, जेल से आ गये थे। ऐसा मालूम होता था कि मानो सभी नेता, यदि वे बाहर होते तो, गाधीजी को पदच्युत कर देते और सत्याग्रह जारी करते। किन्तु गांधीजी टस-से-मस नही हुए। उन्होने साफ-साफ बता दिया कि जो लोग जेल में बन्द हैं, उनको परिस्थिति का पूरा ज्ञान नही हो सकता, इसलिए उनको राय देने का कोई अधिकार नही है, और यदि वे राय देते हैं तो उसका बहुत वजन नही हो सकता। वर्किंग कमिटी में ही मैंने देखा कि गाधीजी जब निश्चय पर पहुच जाते है तो किस प्रकार अटल रह सकते है—और अटल रह सकते है तीव्र-से-तीव्र विरोध के बावजूद!

हकीम अजमलखा कांग्रेस के सभापति थे। अखिल भारतीय कमिटी का जल्सा शुरू हुआ। गाधीजी ने बारडोली के निश्चय के समर्थन और मंजूरी का प्रस्ताव पेश किया। इसपर डाक्टर मुजे ने उसके सुधार (सशोधन) के रूप मे एक प्रस्ताव पेश किया, जिसमे कहा गया कि एक कमिटी बनाई जाय, जो असहयोग के कार्यक्रम और उसके अनुसार हर काम की जाच करे तथा देश को उचित परामर्श दे। इस प्रस्ताव ने, और इसके समर्थन मे किये गए उनके भाषण ने, गाधीजी पर अविश्वास (No Confidence या Censure) का रूप धारण कर लिया। गरमागरम बहस चलने लगी। इसी समय हकीमसाहब की तबीयत अचानक खराब हो गई। वह सभा मे बैठने से मजबूर हो गये। उन्होने गाधीजी को अपने स्थान पर सभापति बना दिया। यह कहकर वह चले गये कि दर्द कम होते ही मैं हाजिर हो जाऊगा, तबतक महात्माजी सभा का काम चलावेंगे। हम लोगों के देखने में यह ठीक नही मालूम होता था कि जिसपर अविश्वास का प्रस्ताव पेश है और उसपर बहस हो रही है, वह सभापति के पद पर बैठा रहे। पर गाधीजी ने निःसंकोच भाव से काम आरम्भ कर दिया। उनके चेहरे-मोहरे से कुछ भी संकोच नही झलका। हमने सोच लिया कि वह मानते हैं कि सभापति का काम इतना ही है कि सभी सदस्यो का वह विश्वास-भाजन बना रहे और अपनी किसी कार्रवाई से प्रतिपक्षी के दिल में यह भाव न आने दे कि वह अपने सहायकों का पक्षपाती है। गाधीजी ने वहां नीति भी अजीब बरती। जब कोई बोलने उठता तो उससे पूछते कि आप डाक्टर मुंजे के पक्ष में बोलेंगे अथवा विरोध में। यदि वह कहता कि

विरोध में तो कहते कि आप ठहरें। यदि वह कहता कि पक्ष में तो उसे कहते कि आपको जो कहना हो, आप कहें। इस प्रकार कितने ही भाषण डाक्टर मुंजे के पक्ष में हुए और एक भी भाषण उन्होंने अपने पक्ष में होने नहीं दिया। हम लोग कुछ शंकित भी होने लगे। सोचने लगे कि गांधीजी इस प्रकार क्यो अपने पक्ष को कुछ कहने का मौका ही नही दे रहे हैं? अन्त में उन्होंने प्रस्ताव को सम्मति के लिए सभा के सामने पेश कर दिया। हाथ उठने पर मालूम हुआ कि प्रायः उतने ही हाथ डाक्टर मुंजे के पक्ष में उठे, जितने भाषण उनके पक्ष मे हुए थे! अविश्वास का प्रस्ताव बड़े बहुमत से नामंजूर हो गया। बारडोली का निश्चय निम्नलिखित प्रकार से पेश किया गया:

१. अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी की यह बैठक बारडोली के—११ और १२ फरवरी १९२२ की वर्किंग कमिटी की बैठक में पास हुए—रचनात्मक कार्यक्रम के प्रस्ताव को पूर्ण विचार के बाद मजूर करती है और साथ-ही-साथ यह निश्चय करती है कि व्यक्तिगत या शख्सी भद्र अवज्ञा यानी सिविल नाफरमानी, चाहे वह रक्षार्थ हो, चाहे आक्रमणकारी या हमलेआवर, खास-खास जगहों मे या खास-खास कानूनों के बाबत, मुकामी सूबा कांग्रेस-कमिटी से इजाजत लेकर, की जा सकती है। पर खयाल यह रहे कि उसी हालत मे की जा सकती है जबकि अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी या उसकी वर्किंग कमिटी की बताई हुई सिविल नाफरमानी जारी करने के पहले की, कुल शर्तें ठीक-ठीक पूरी हो चुकी हों।

२. कई जगहो से रिपोर्ट आई है कि शराब की दूकानों पर जिस तरह से धरना या पिकेटिंग की जाती है, उसी तरह कपड़े की दूकानो पर भी पिकेटिंग की जरूरत है। इसलिए यह अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी ऐसी पिकेटिंग की इजाजत कपड़े की दूकानो के लिए भी देती है, जो नेकनीयती से और बारडोली के प्रस्ताव मे बतलाये हुए तरीको से तथा उन्ही शर्तों के साथ की जायगी।

३. अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी अपनी यह राय जाहिर कर देना चाहती है कि वर्किंग कमिटी के प्रस्ताव के यह माने नहीं हैं कि वह अपने पहले के असहयोग या सामूहिक भद्र अवज्ञा के प्रोग्राम को छोड़ देती है। उसका मतलब सिर्फ यह है कि बारडोली-प्रस्ताव में बतलाये हुए रचनात्मक कार्यक्रम पर कार्यकर्ताओ के पूरे दिल से लग जाने से और उसे सफल बनाने से ही सामूहिक भद्र अवज्ञा के लिए आवश्यक या अनुकूल वायु-मण्डल तैयार किया जा सकता है। अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी की यह तजवीज है

कि जनता को ऐसी हालत में सिविल नाफरमानी[1] वा भद्र अवज्ञा को काम में लाने का पूरा हक और कर्तव्य है जब कि शासनकर्ता व अधिकारीवर्ग जनता के निश्चय किये हुए विचारों का विरोध करने पर उतारू हो जायं।

यह कमिटी बारडोली के निश्चय को मंजूर करने के साथ-साथ केवल सामूहिक भद्र अवज्ञा को छोड़ लोगों को सभी जरूरी कार्यक्रम पूरा करने की हिदायत करती है, जो इस समय स्थगित हो गये हैं।

गांधीजी ने प्रस्ताव पेश करने के समय ही ऐसा भाषण कर दिया था कि उसका असर लोग नहीं मिटा सके। सत्याग्रह स्थगित रह गया।

इस बैठक के सम्बन्ध में दो बातें यद्यपि वे छोटी हैं, कह देना बेजा न होगा। दिल्ली की बैठक का दिन निश्चित करने के समय पंचाग नहीं देखा गया था। इत्तिफाक से जो दिन मुकर्रर किया गया, उसी दिन फाल्गुन की शिवरात्रि का पर्व था। हिन्दुओं की ओर से तार पहुंचने लगे कि दिन बदल दिया जाय। पर गांधीजी इसपर राजी नहीं हुए। मैंने उनसे कहा कि शिवरात्रि बड़ा भारी पर्व माना जाता है —बहुतेरे लोग उपवास और पूजा इत्यादि करते हैं; इसलिए दिन क्यों न बदल दिया जाय। इसपर उन्होंने कहा—"उपवास और बैठक में कोई विरोध नहीं हो सकता; क्योंकि लोग उपवास करके भी सभा में शरीक हो सकते हैं, और यह कहां, किस शास्त्र

---

[1]शख्सी या व्यक्तिगत अवज्ञा या नाफरमानी उसे कहते हैं, जो एक शख्स या एक निश्चित संख्या के (महदूद) लोगों के दल या जमायत के जरिये कानून के खिलाफ या गवर्नमेण्ट के हुक्म को न मानकर किया जाय। इसलिए ऐसी मीटिंग या सभा को, जिसमें टिकट के जरिये ही लोग जाने पाते हों और जिसमें कोई अनधिकारी दर्शक नहीं जा सकता है, यदि सरकार ने करने से मना कर दिया हो, कर लेना व्यक्तिगत अवज्ञा या शख्सी नाफरमानी है। और अगर सभा आम जनता की है, जिसमें चाहे जो कोई बिना रोक-टोक शरीक हो, तो वैसी सभा यदि सरकार की आज्ञा के विरुद्ध की जाय, तो वह सामूहिक भद्र अवज्ञा (Mass Civil Disobedience) है। अवज्ञा या नाफरमानी को बचाव के लिए या रक्षार्थ उस हालत में कहेंगे जब मीटिंग या सभा किसी कार्यक्रम को अंजाम देने के लिए की गई हो। आघातक या हमलावर उस हालत में कहेंगे जब सभा किसी काम के करने के लिए नहीं, बल्कि गवर्नमेण्ट की मनाही की आज्ञा को तोड़ने के लिए की जाय तथा गिरफ्तारी या जेल या दूसरे प्रकार के दमन को अपने ऊपर लाने के लिए करें।

में लिखा है कि व्रत के दिन कोई अच्छा काम नहीं करना चाहिए ? देशसेवा का यह महत्त्वपूर्ण काम है। यदि हिन्दू उसमें उस धार्मिक प्रवृत्ति के साथ शरीक होंगे, जो ऐसे पवित्र दिन में उनसे अपेक्षित है, तो इससे बढ़कर दूसरी बात और क्या बेहतर हो सकती है ?" तिथि उन्होंने नहीं बदली।

एसोसिएटेड प्रेस के संस्थापकों में एक सज्जन श्री केशवचन्द्र राय (के० सी० राय) थे, जिनको मैं कलकत्ते मे पढ़ने के समय से ही जानता था। वह उन दिनों कलकत्ते के एक अंगरेजी पत्र 'डेली न्यूज' के सम्पादकीय विभाग में काम किया करते थे। उन दिनों वह बहुत प्रसिद्ध व्यक्ति नही हुए थे। इसलिए मुझ-जैसे एक विद्यार्थी के साथ भी उनकी जान-पहचान हो गई थी। एसोसिएटेड प्रेस की स्थापना के बाद अखबारी दुनिया मे उनका बड़ा नाम हो गया था। उच्च-से-उच्च कोटि के लोगों तक वह आसानी से पहुच पाते थे। सरकारी हलकों मे उनकी धाक और पहुंच तो थी ही। उनसे दिल्ली में मुलाकात हो गई। बहुत प्रेम से उन्होंने मुझसे एकान्त में कहा कि अब तुम लोगों के साथ सरकार सख्ती बरतेगी—वह जान गई है कि तुम लोग अब कमजोर हो गये हो—तुम लोगों में आपस मे फूट आ गई है—एकमत नहीं रहा, इसलिए अब गांधीजी भी शीघ्र गिरफ्तार कर लिये जायगे। उनके कहने से मुझे कुछ ऐसा नही मालूम हुआ कि ये बाते उन्होने किसी मिली हुई खबर के आधार पर कही है। मैंने समझा कि परिस्थिति को देखते हुए यह उनका अनुमान-मात्र ही था। जो हो, दिल्ली की बैठक के बाद हम लोग अपने-अपने स्थान पर पहुंचे ही थे कि खबर आ गई—गांधीजी गिरफ्तार करके साबरमती-जेल मे ले जाये गए हैं। मैं तुरंत साबरमती के लिए रवाना हो गया। वहां जिस दिन मुकदमा दौरा-जज के यहां पेश होनेवाला था, मैं पहुंच गया।

कोर्ट के दृश्यों को मैं कभी भूल नही सकता। गांधीजी का बयान तो एक तारीखी बयान है ही। जज का तौर-तरीका भी उस महत्त्वपूर्ण समय के अनुकूल ही था। गांधीजी पर 'यंग इण्डिया' मे लिखे गये लेखों के सम्बन्ध में अभियोग था। गांधीजी ने अभियोग को तो अपने बयान में ही स्वीकार कर लिया था। यह भी कह दिया था कि यदि वह आजाद रहेगे तो वैसे ही आगके साथ खेलते रहेंगे, जैसे अब तक खेलते रहे है। जज के लिए भी दो रास्तों में से एक को स्वीकार करने के सिवा तीसरा रास्ता नही हो सकता। यदि वह गांधीजी के विचारों से सहमत हों तो उनको इस्तीफा दे देना चाहिए, और यदि सहमत न हों तो जितनी सख्त सजा वह दे सकते हों, उनको देना चाहिए; क्योंकि जो कुछ गांधीजी ने किया है, वह जानबूझकर किया है और मौका मिलने पर फिर करेंगे।

जज ने एक छोटे-से भाषण में, जिससे भी आवेश टपक रहा था, कहा कि अभियोग स्वीकार कर लेने से उनका काम एक प्रकार से तो हल्का हो गया है, पर दूसरे प्रकार से जो काम बाकी रह गया है अर्थात् सजा देने का, वह काम बहुत ही कठिन है। गाधीजी को उनके असंख्य देशवासी पूज्य मानते है। जज को किसी ऐसे पुरुष के मुकदमे के देखने-सुनने का मौका पहले कभी नहीं मिला है और शायद मिलेगा भी नहीं। जज को केवल कानून के अनुसार काम करने का ही अधिकार है। कानून एक मनुष्य और दूसरे मनुष्य में, व्यक्तित्व के कारण भेद नहीं करता। इसलिए उसे सजा तो देनी पडेगी ही। गांधीजी का स्थान लोकमान्य तिलक जैसा ही है। जो सजा उनको ऐसी ही परिस्थिति में मिली थी, वही अर्थात् छः साल कैद की सजा, गाधीजी को भी देना अनुचित न होगा।

यही हुक्म जज ने सुना दिया। गाधीजी ने उनको इस बात के लिए धन्यवाद दिया कि उन्होंने उनको लोकमान्य तिलक के समकक्ष माना। जज के उठ जाने के बाद, हम जितने थे सब, एक-एक करके, गाधीजी से मिलकर, प्रणाम करके बिदा हुए। वह दृश्य अत्यंत कारुणिक था। मैं दिल का कमजोर हूं। बच्चो का रोना भी मैं बर्दाश्त नही कर सकता। करुणा के मौके पर मैं अपनेको रोक नही सकता। मैं फूट-फूटकर रोने लगा। श्री-केलकर भी वहा उपस्थित थे। उन्होंने मुझे रोते हुए देखकर बहुत समझाया और कहा कि जब लोकमान्य को दण्ड मिला था, तो उन लोगों की भी वही दशा हुई थी। कुछ देर के बाद मैं भी सभल गया और गांधीजी से बिदा हुआ।

उसी मुकदमे मे श्री शंकरलाल बैंकर भी अभियुक्त थे। वही 'यंग-इण्डिया' के प्रिण्टर और प्रकाशक थे। उनको भी एक साल की सजा मिली। उनका सौभाग्य था कि वह गाधीजी के साथ ही सजा पाकर जेल गये और म्याद पूरी होने तक उनके साथ ही रहे।

: ४४ :

रचनात्मक कार्य का प्रारंभ और भद्र अवज्ञा कमिटी की नियुक्ति

जेल जाते समय महात्मा गांधी ने आदेश दिया था कि काग्रेस को रचनात्मक काम मे लग जाना चाहिए; उसीके द्वारा देश सत्याग्रह के लिए तैयार हो सकेगा। इस रचनात्मक कार्यक्रम मे खादी-प्रचार द्वारा विदेशी वस्त्र-बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा, अछूतोद्धार, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की स्थापना इत्यादि मुख्य थे। देश को सत्याग्रह के लिए तैयार न पाकर ही उन्होंने बारडोली में सत्याग्रह स्थगित कर दिया था। इससे स्पष्ट था कि अभी वह सत्याग्रह के लिए अनुमति देना नहीं चाहते थे। उनके जेल चले जाने के बाद देश में एक प्रकार की किंकर्तव्यविमूढ़ता आ गई। उत्साही और आवेश में आये हुए लोग चाहते थे कि सत्याग्रह आरम्भ कर ही दिया जाय। कुछ लोग यह कहने को भी तैयार हो गये थे कि गांधीजी ने सत्याग्रह रोककर देश का सत्यानाश कर दिया और अब यह सारा आन्दोलन खतम हो गया। कुछ लोग सोचने लगे कि जब सत्याग्रह नही करना है तो कौन्सिलों का बहिष्कार बेकार है—वहा जाने में जो प्रतिबन्ध है, उसे हटा देना चाहिए। कुछ लोग गाधीजी के बताये रचनात्मक कार्यक्रम पर जोर दे रहे थे और उसके लिए जोरों से काम करना चाहते थे।

जो फूट का बीजवपन दिसम्बर के महीने में लार्ड रीडिंग के साथ समझौता न करने के कारण हुआ था, और जो बारडोली-निश्चय के समय काफी अंकुरित हो चुका था, वह तीव्र गति से पल्लवित होता गया। बड़े-बड़े नेता भी जेल में थे। बारडोली और दिल्ली के निश्चय ऊपर दिये गए हैं। उनसे स्पष्ट है कि सामूहिक सत्याग्रह तो स्थगित कर दिया गया था, आक्रमणकारी व्यक्तिगत सत्याग्रह भी बन्द ही था; पर बचाव के लिए सत्याग्रह की इजाजत थी।

कुछ लोग, विशेष करके महाराष्ट्र के कुछ लोग, शुरू से ही असहयोग के और सत्याग्रह के कार्यक्रम से असन्तुष्ट थे। देश की परिस्थिति के प्रभाव से जो निश्चय कांग्रेस ने कर दिया, उसके अनुसार वे काम तो अवश्य करने लगे थे; पर उनका दिल कभी इस सारे कार्यक्रम में नहीं लगा। इसलिए

जब-जब उनको मौका मिलता, वे इसके किसी-न-किसी अंश के विरुद्ध आवाज उठाते। १९२१ की जुलाईवाली अखिल भारतीय कमिटी के बम्बई-अधिवेशन में ही उन्होंने आवाज उठाई थी। फिर वही बात अहमदाबाद-कांग्रेस के समय भी कही जाने लगी। जब बारडोली में वर्किंग कमिटी ने सत्याग्रह स्थगित करने का निश्चय किया, तो उनको और भी बहुत अच्छा मौका मिला। दिल्ली की अखिल भारतीय कमिटी में डाक्टर मुंजे ने उसी कारण से एक प्रस्ताव उपस्थित किया था, जिसका जिक्र ऊपर किया जा चुका है। वह चाहते थे कि सारे कार्यक्रम के सम्बन्ध मे जाच करने के लिए एक कमिटी बनाई जाय। वहा तो वह प्रस्ताव नामंजूर हो गया। पर मराठी मध्यप्रादेशिक काग्रेस-कमिटी मे डाक्टर मुंजे की इच्छा पूरी हुई। वहां एक कमिटी बनी। उसने एक रिपोर्ट तैयार की, जिसमे प्रायः सारे कार्य-क्रम को तोड़-मरोड़कर एक नया कार्यक्रम बनाया गया। वहा की प्रान्तीय कमिटी ने उसे अखिल भारतीय कमिटी के पास विचारार्थ भेजने का निश्चय किया। पर वहां की जनता इसमे सन्तुष्ट नही थी। नागपुर में एक बड़ी सभा हुई। उसमें प्रान्तीय कमिटी पर अविश्वास प्रकट किया गया। उस सभा मे आठ-नौ हजार लोग थे। श्री जमनालाल बजाज उसके सभापति थे। डाक्टर मुजे के विचारवाले लोग भी उसमे सम्मिलित थे। रिपोर्ट के समर्थन में जो कुछ कहा जा सकता था, उन्होंने कहा भी। पर सात घंटो की बहस के बाद सभा ने रिपोर्ट की निन्दा की। चन्द हाथ ही उसके पक्ष मे उठे। बाकी सबके-सब रिपोर्ट के विरोध में ही रहे।

इसके बरक्स (विपरीत) बिहार ने बारडोली और दिल्ली के निश्चयों का स्वागत किया। प्रान्तीय कमिटी ने रचनात्मक कार्यक्रम के सम्बन्ध में एक लम्बा प्रस्ताव पास किया। यद्यपि वहा भी सरकारी दमन चल ही रहा था, तथापि सत्याग्रह बन्द कर दिया गया और काग्रेस-कमिटियों को आदेश दिया गया कि वे रचनात्मक कार्यक्रम जोरों से चलावे। गुजरात ने भी ऐसा ही किया। बिहार में इसका यह असर हुआ कि दूसरे विचार के लोग, जो असहयोग और सत्याग्रह के कारण काग्रेस से अलग हो रहे थे, रचनात्मक काम में मदद देने के लिए तैयार हो गये। इनमें मुख्य थे बाबू गणेशदत्तसिंह। पटने में ऐसे लोगों की एक सार्वजनिक सभा हुई, जिसमें मैं भी दूसरे असह-योगियों के साथ शरीक हुआ था। वहांपर उन्होने निश्चय किया कि वे भी इसमें पूरी दिलचस्पी लेंगे और यथासाध्य मदद करेंगे।

हमने खादी का काम जोरों से हाथ में लिया। साथ ही, राष्ट्रीय शिक्षा-सम्बन्धी एक कान्फ्रेन्स की गई, जिसमें इसके नियम और पाठ्यक्रम इत्यादि पर विचार किया गया। उस समय जितनी पाठशालाएं चल रही थी, उनकी

आर्थिक सहायता इत्यादि का प्रबन्ध सोचा गया। हम लोग, सभी, इन्हीं विचारों को लेकर, जहा-तहां सफर भी करने लगे।

सरकार की दुहरी नीति चलती रही। कही-कही गिरफ्तारियां भी हो रही थीं। दूसरी ओर, जो जेल मे गये थे, उसके मुकदमों के कागजों को गवर्नमेण्ट ने हाइकोर्ट के एक जज सर वसन्तकुमार मल्लिक के पास भेजा। उनसे कहा गया कि वह कागजों को देखकर अपनी सम्मति दें कि सजा ठीक और उचित है या नही। उनकी सिफारिश से कुछ लोग छोड़ दिये गए और कुछकी सजा कम हुई। पर अधिकाश ज्यो-के-त्यों जेलों में पड़े रहे।

श्री सच्चिदानन्दसिंह १९२१ में ही, राय कृष्णसहाय बहादुर की मृत्यु के बाद, बिहार के गवर्नर की कौन्सिल के मेम्बर नियुक्त हो चुके थे। जेल का महकमा उन्हींके चार्ज मे था। उन्होंने राजबन्दियों के सम्बन्ध मे कुछ नियम बनाये, जिनसे जनता को कुछ सन्तोष हुआ। पर जेल के अधिकारी इससे बिलकुल सन्तुष्ट नही थे। कुछ दिनों के बाद, एक आदमी (सर हरमुसजी बनातवाला) जेलों का इन्सपेक्टर-जेनरल, बनकर, कही किसी दूसरे प्रान्त से, आया। वह बड़ी सख्ती बरतने लगा। नये कायदों के बावजूद, बिहार के जेलो में राजबन्दियो के साथ काफी सख्ती होती रही, जिसका जिक्र उन दिनो पत्रों मे अक्सर हुआ करता था। उनसे चक्की चलवाना और कोल्हू पेरवाना तो मामूली बात थी। अगर हुक्म के मुताबिक पूरा काम न हो तो उसके लिए सजा होती। पैरों मे बेड़ी, डडाबेड़ी, खड़ी हथकड़ी, चट्टी कपड़ा, जो जेल की सख्त सजाएं है, बहुतेरों को भोगनी पड़ी। कही-कहीं बेत भी लगाये गए। मुसलमानों की सख्या काफी थी। इसलिए उनसे अजान के मामले को लेकर मुठभेड़ हो गई। अधिकारियो ने इसे बन्द करने का हुकुम दिया। उन्होंने नही माना। इसके लिए बहुतों को सजा हुई।

मौलाना मजहरुल हक साहब ने १९२१ के सितम्बर से ही एक साप्ताहिक पत्र, 'मदरलैंड' के नाम से, निकालना शुरू किया था। उसमे वह खुद अधिक लिखा करते थे। वह पटने से प्रकाशित हुआ करता था। उसमे जेल-सम्बन्धी एक लेख छापने के लिए उनपर सर हरमुसजी बनातवाला ने मुकदमा चलाया, जिसमें उनको भी सजा हो गई। मुझे भी एक कड़ी टिप्पणी, श्री सच्चिदानन्दसिंह के जेल-सम्बन्धी शासन के विरुद्ध, लिखनी पड़ी थी।

महात्माजी के कैद हो जाने के बाद वर्किंग कमिटी की बैठक जहां-तहां होती रही। बैठकों में रचनात्मक काम पर जोर दिया जाता रहा। एक में खादी-प्रचार के काम को संगठित रूप से चलाने के लिए एक बोर्ड बनाने

का निश्चय हुआ। इस काम के लिए तिलक-स्वराज्य-फण्ड से रुपये देने की भी अनुमति दी गई। श्री विट्ठलभाई पटेल, जो अखिल भारतीय कमिटी के मंत्री थे, भाषणों और समाचारपत्रों में लेखों द्वारा, जनता को और कांग्रेस-कार्यकर्ताओं को बराबर उत्साहित करते रहे कि वे कांग्रेस के अधिक-से-अधिक मेम्बर बनाने में, तिलक-स्वराज्य-फण्ड के लिए पैसे जमा करने मे तथा खादी-प्रचार, अछूतोद्धार और राष्ट्रीय शिक्षा के कामों में जोर लगाते रहें। तो भी सुस्ती आती गई। लखनऊ में अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी की बैठक की गई। श्री विट्ठलभाई पटेल उस समय की परिस्थिति से बहुत असन्तुष्ट थे। मैं लखनऊ पहुंचा तो सही, पर वहां पहुंचकर ज्वरग्रस्त हो गया। इसलिए वहां की बैठक में प्रायः दर्शक-सा ही भाग ले सका, बहस-मुबाहसे मे बहुत भाग न ले सका। भाग्यवश पंडित मोतीलाल नेहरूजी उसी समय छूटे। दूसरे दिन वह उस बैठक मे शरीक हुए। पंडितजी के पहुचने के पहले ही उस बैठक मे श्री विट्ठलभाई पटेल और कतिपय दूसरे नेताओं की प्रेरणा से एक कमिटी मुकर्रर करने की बात हुई, जिसके जिम्मे यह काम दिया गया कि वह देश की परिस्थिति पर विचार करके और जहा जाकर जांच करने की जरूरत समझी जाय वहां जाकर जाच करके इस बात की रिपोर्ट करे कि देश सत्याग्रह के लिए तैयार है या नही। पंडितजी ने भी आने के बाद इसे मजूर कर लिया और सभापति से आग्रह किया गया कि वह एक कमिटी बनावे। गाधीजी, बगैर किसी कमिटी की जांच के ही, देश की नाड़ी पहचान लिया करते थे। जबसे वह भारत लौटे थे तथा सार्वजनिक कामो मे खुले तौर पर भाग लेने लगे थे, उन्होने अपनी इसी शक्ति से काम लिया था। उनके हटते ही कमिटी को इसकी जरूरत महसूस हुई। पर इसका परिणाम अच्छा नही हुआ। जैसे भारत में ब्रिटिश गवर्नमेण्ट जब किसी विषय को टाल देना चाहती है तो एक जाच-कमिटी मुकर्रर कर देती है, वैसे ही हमने भी किया! इससे एक प्रकार से सत्याग्रह स्थगित हो गया। रचनात्मक काम मे जो उत्तेजना मिलनी चाहिए थी और जिसपर गाधीजी जोर दे गये थे, वह भी एक प्रकार से गौण बन गया।

इसी बैठक मे एक दूसरा काम भी किया गया, जिसका फल कुछ दिनों के बाद बहुत अच्छा निकला। देश-भर में बढ़ते हुए खादी के काम की देख-रेख के लिए वर्किंग कमिटी ने जो बोर्ड बनाया था, उसे कमिटी ने मंजूर किया। १९२१ में जब स्वराज्य-फण्ड जमा हो चुका और खादी के काम पर जोर दिया गया, तो उस फण्ड में से सभी प्रान्तों को खादी-प्रचार के लिए रुपये दिये गए। किसीको अभी खादी का न तो बहुत ज्ञान था और न अनुभव। इसलिए महसूस किया गया कि रुपये बहुत नुकसान होंगे, और

काम ठीक तरह से आगे नही बढ़ेगा। इस बोर्ड के जिम्मे सभी सूबों में संगठित रूप से काम की देख-रेख करने का भार दिया गया। सेठ जमनालाल बजाज इसके सभापति नियुक्त हुए। सेठजी को रचनात्मक काम पर बहुत विश्वास था। उन्होंने खादी-प्रचार तथा अछूतोद्धार के काम को बहुत परिश्रम और दिलचस्पी से शुरू कर दिया।

: ४५ :

बिहार में कांग्रेस को निमंत्रण और उसकी तैयारी

अहमदाबाद-कांग्रेस में बिहार के जो प्रतिनिधि उपस्थित हुए, उन सबकी राय हुई कि इस बार कांग्रेस का अधिवेशन बिहार में करने के लिए निमंत्रण दिया जाय। बिहार में इसके पहले केवल एक ही बार काग्रेस हुई थी—१९११ मे, जब आपस के मतभेद के कारण कांग्रेस बहुत क्षीण हो चुकी थी और उसमे हाजिरी बहुत कम हुआ करती थी। उस बार के अधिवेशन के प्रबन्धको का अनुभव कुछ अच्छा नहीं, बल्कि कटु ही था, यहांतक कि कांग्रेस के समय मे जो खर्च हुआ, उसके कुछ रुपये बाकी पड़ गये। स्वागत-समिति के अध्यक्ष मजहरुल हक साहब, मंत्री श्री सच्चिदानन्दसिंह तथा अन्य सदस्यो पर उन बाकी रुपयों के लिए अदालत मे नालिश हुई। पर अब बिहार मे, चम्पारन मे महात्माजी के आगमन के बाद और विशेषकर १९२१ के आन्दोलन के कारण, काफी जागृति हो गई थी। हम लोगो ने महसूस किया कि इस बार वैसे कटु अनुभव नही होंगे। साहस करके हमने निमंत्रण तो दे दिया; पर वहां यह निश्चय न कर सके कि बिहार के किस नगर में अधिवेशन किया जाय। यह बिहार की प्रान्तीय कमिटी की बैठक मे निश्चय करने के लिए छोड दिया गया। कांग्रेस ने भी अहमदाबाद में निश्चय नही किया कि किस सूबे मे अगला अधिवेशन होगा। यह निश्चय कुछ दिनों के बाद वर्किंग कमिटी ने किया कि बिहार का निमंत्रण मंजूर किया जाय।

बिहार मे, प्रान्तीय कमिटी की बैठक के पहले, मैंने कुछ जगहों को जाकर खुद देखा। तब कमिटी की बैठक की गई। वहांपर निश्चय हुआ कि गया मे कांग्रेस का अधिवेशन किया जाय। उस जिले मे, रुपये जमा करने के लिए, मै श्री कृष्णप्रकाश सेन सिंह के साथ दौरा करने लगा। कुछ सफलता भी मिली। सारे जिले में, जहां मै पहले कभी नही गया था, जाने का अच्छा मौका मिला। उस जिले में बरसात में घूमना बहुत मुश्किल है। मिट्टी केवाल (चिकनी-कड़ी) है। जहां पक्की सड़क नही है, वहां किसी भी सवारी का गुजर नही है। इसलिए, बरसात के पहले ही, मैंने बहुतेरी जगहों में, जहां कुछ जमा हो सकता था, वहां जाकर, काम कर लिया।

पटने में १९११ की कांग्रेस के स्वागत-मंत्री पर मुकदमे की बात मुझे

याद थी। इसलिए निश्चय किया गया था कि अभी स्वागताध्यक्ष तथा अन्य पदाधिकारियों का पक्का चुनाव न किया जाय। जब काफी संख्या में स्वागत-समिति के सदस्य बन जायंगे तभी पदाधिकारियों का चुनाव ठीक होगा। तबतक काम चलाने के लिए मै ही अस्थायी मंत्री बना दिया गया। कुछ लोगों की, जिनमें अनुग्रहबाबू भी थे, मेरे सहायतार्थ, एक छोटी कार्य-कारिणी बना दी गई। मैंने निश्चय कर लिया और कमिटी को कह भी दिया था कि मैं एक पैसा भी उधार या कर्ज ले करके खर्च नही करूंगा—इतना ही नही, किसी काम को तबतक शुरू भी नही करूंगा जबतक उसके लिए पूरे रुपये पास में न आ जायगे। यही एकमात्र उपाय था, जिससे अपने ऊपर की आर्थिक जिम्मेदारी से मैं तथा कमिटी के मेम्बर अपनेको बचा सकते थे। सभी जिलों में पत्र लिखे गये कि सभी स्वागत-समिति के सदस्य बनावें और चन्दा जमा करे। पर कार्यकर्ताओ में कुछ सुस्ती-सी दीखने लगी, धनसंग्रह में भी कमी होने लगी। अहमदाबाद के बाद काग्रेस का रूप ही बदल गया था। हमको एक नया शहर-सा बसाना था, जो गया शहर से बाहर हो और जहां लोगो के ठहरने के लिए झोंपड़े तथा रोशनी और पानी का पूरा प्रबन्ध हो। इसके अतिरिक्त काग्रेस का पंडाल तैयार कराना था। कुछ कठिनाई जमीन मिलने में हुई। पर स्थानीय लोगों की कृपा से, गया शहर से प्रायः डेढ-दो मील दक्खिन, 'तेनुई' गाव में, पक्की सड़क के पूरब आम का बगीचा और पच्छिम मे खाली खेत मिल गये। खाली खेत में पंडाल और बगीचे में रहने के लिए झोंपड़े बनाने का निश्चय हुआ। कुछ दूर पर एक दूसरी फुलवारी मिल गई, जिसमें एक छोटा बंगला भी था। उसीमें खादी-प्रदर्शनी करने का निश्चय हुआ। कुछ समय तो नक्शा बनाने में और जहां-तहां रुपये तथा बास-बल्ली जमा करने में लगा। बरसात में काम हो ही नही सकता था। इसलिए बरसात के बाद ही काम शुरू करने का निश्चय हुआ।

अधिवेशन दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में हुआ करता था। इसलिए बरसात के बाद प्रायः तीन महीने मिलते थे। यदि रुपये और सामान तैयार रहें तो सबकुछ कर लेना ज्यादा मुश्किल न था। पर दुर्भाग्यवश अभी रुपये काफी नहीं आये थे। मैंने पत्रों द्वारा और आदमी भेजकर सभी जिलों को ताकीद किया, पर रुपये काफी नहीं आये। मेरी चिन्ता बढने लगी। मैंने तो निश्चय कर ही लिया था कि तबतक किसीके साथ कोई काण्ट्रैक्ट (ठेका) नहीं करूंगा जबतक काण्ट्राक्ट के लिए पूरे रुपये बैंक में जमा न हो चुके होगे। ज्यों-ज्यों समय नजदीक आने लगा, चिन्ता बढ़ने लगी। हम उस समय के नजदीक पहुंचने लगे जब कोई काण्ट्रैक्टर (ठेकेदार) समय

की कमी के कारण आवश्यक झोंपड़े, पंडाल इत्यादि तैयार कर देनेवाला न मिलता। कमिटी की बैठक हुई। सब बातों पर विचार किया गया। मैं अपने इस निश्चय पर डटा रहा कि जबतक किसी काम के लिए पूरे रुपये बैंक में जमा न हो जायंगे तबतक मैं मंत्री की हैसियत से किसी काण्ट्रैक्ट पर दस्तखत नहीं करूंगा। सब जिलों के कार्यकर्ताओं की सुस्ती से हम घबरा रहे थे। अन्त में यह निश्चय किया गया कि कमिटी के मेम्बरों की व्यक्तिगत जिम्मेदारी पर बैंक से रुपये कर्ज लिये जायं, ये रुपये बैंक में जमा कर दिये जायं और तब नगर-निर्माण इत्यादि का काण्ट्रैक्ट दिया जाय।

इस तरह पचास हजार रुपये कर्ज लेने की बात तय हुई। कुछ लोग चाहते थे कि यह बात गुप्त रखी जाय, क्योंकि इसका प्रकाशित होना सारे सूबे के लिए बेइज्जती की बात होगी और गवर्नमेण्ट के कर्मचारी तथा दूसरे लोग देखकर खुशियां मनायेंगे। मैंने कहा कि सूबे की जनता पर मेरा पूरा विश्वास है। लोगों को जब यह मालूम हो जायगा कि कांग्रेस को निमंत्रित करके हम इस असहाय अवस्था में हैं, तो वे जरूर आवश्यक रुपये दे देंगे। साथ ही, कांग्रेसी कार्यकर्ता भी परिस्थिति की विषमता समझेंगे और रुपये जमा करने में दिल से लग जायंगे।

प्रस्ताव अखबारों में छाप दिया गया। मैं रुपये जमा करने के लिए दौरे पर निकल गया। जैसे ही लोगों ने इस प्रस्ताव को अखबारों में पढ़ा, सारे सूबे के कांग्रेसी कार्यकर्ताओं के दिल में आग-सी लग गई। सभी खूब जोरों से स्वागतकारिणी के मेम्बर बनाने और रुपये जमा करने में लग गये। मैं जहां गया वहां काफी रुपये मिलने लगे। सभी लोग प्रान्त की बेइज्जती महसूस करने लगे। मैं प्रायः एक सप्ताह के दौरे के बाद कई हजार रुपये जमा करके लौटा। रुपये साथ में थे। हम लोग ठहरा करते थे उसी छोटे बंगले में, जो शहर से प्रायः डेढ़ मील दूर था और जिसमें खादी-प्रदर्शनी करने का निश्चय हुआ था। वहां इतने रुपये साथ में रखना ठीक नहीं था। रेल से मैं चार बजे के करीब दोपहर को उतरा। गया स्टेशन पर मुझे पुलिस का एक दारोगा मिला। उसने अखबारों में हमारे प्रस्ताव को पढ़ा था। वह यह स्वप्न देख रहा था कि शायद गया में कांग्रेस हो ही नहीं सकेगी। उसने ट्रेन से उतरते ही मुझसे प्रश्न किया, बैंक से रुपये कर्ज ले लिये गए? शायद वह समझता था कि कोई बैंक भी इतनी बड़ी रकम व्यक्तिगत जिम्मेदारी पर कर्ज न देगा। मैंने उत्तर दिया, कर्ज लेने की अब जरूरत नहीं रह गई। यह सुनकर वह बहुत आश्चर्य में पड़ गया। मैंने यह भी कह दिया कि अब काम के लिए काफी रुपये आ गये हैं और मैं खुद अपने साथ एक अच्छी रकम जमा करके ला रहा हूं। उसको मेरी बातों पर

विश्वास नहीं हुआ। मैं तो रुपयों के बोझ को बैंक में डाल देना चाहता ही था। इसलिए गाड़ी-भाड़ा करके सीधे बैंक की ओर चला। वह साइकिल पर गाड़ी के पीछे-पीछे चला। जब उसने देखा कि बैंक में सचमुच मैं एक बड़ी रकम गिनवाकर जमा कर रहा हूं तब उसको मेरी बात पर विश्वास हुआ। वह हमारा साथ छोड़कर अपने दूसरे काम पर चला गया। मैं जो कुछ जमा करके लाया था, उसके अलावा सभी जिलों से रोजाना रुपये पहुचने लगे। हम लोग भी इधर-उधर चक्कर लगाते ही रहे। इधर निर्माण का काम भी तेजी से चलने लगा।

भला गरीब बिहार धनी अहमदाबाद के ठाट-बाट की कहांतक नकल या मुकाबला कर सकता था। पर मेरा खयाल है कि हमने भी अच्छा ही प्रबन्ध कर लिया और खर्च भी गुजरात से बहुत कम ही किया।

प्रदर्शनी के सम्बन्ध में हमने निश्चय कर लिया था कि खादी बनाने की सभी प्रक्रियाओ का प्रदर्शन किया जाय। खादी में हमने केवल कपास के कपड़े को ही नही, बल्कि रेशम, ऊन, पाट इत्यादि उन सभी चीजो को शामिल कर लिया था, जिनसे सूत या रस्सी बट करके कोई भी चीज बुनकर बनाई जाती है। इनमे से प्रत्येक की, आरम्भ से लेकर जबतक चीज तैयार होकर इस्तेमाल के योग्य न बन जाती थी तबतक की, सभी प्रक्रियाएं दिखाने का प्रबन्ध किया गया। उदाहरणार्थ, कपास को लीजिये। कपास के पौधे से लेकर, कपास की ओटाई, धुनाई, कताई, ताना करना, पाई करना, बुनना, कपड़े की धुलाई-छपाई इत्यादि तक, सभी प्रक्रियाए दिखलाई जाती थी। इसी प्रकार से ऊन, रेशम, पाट इत्यादि की भी। अभी चर्खा-संघ कायम नही हुआ था। उसका काम खद्दर-बोर्ड करता था, पर वह अभी एक बरस का भी नही हुआ था। इसलिए खादी-कार्य का संगठन और अनुभव तथा जानकारी नही के बराबर थी। इन सब चीजों को और सबके लिए कारीगरो को जुटाना कुछ आसान काम न था। पर यह सब प्रबन्ध हो गया। खादी-प्रदर्शनी अपने ढग की अच्छी हुई। दर्शकों के टिकट से जो पैसे आये, वे प्रायः प्रदर्शनी के खर्च के लिए काफी साबित हुए।

: ४६ :

आसाम और संथाल-परगना में दमन

कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन और कार्रवाई के सम्बन्ध में कुछ कहने के पहले १९२२ वाली कांग्रेस के सम्बन्ध में कुछ कह देना आवश्यक है।

महात्मा गांधी की गिरफ्तारी के बाद भी सरकारी दमन किसी-किसी सूबे में जोरों से जारी रहा। बड़े नेताओं मे पंडित मदनमोहन मालवीयजी और श्री विट्ठलभाई पटेल को छोड दूसरे सभी प्रायः जेल मे थे। दमन के कारण जनता कुछ घबरा-सी रही थी। कांग्रेस को जीवित रखना आवश्यक था। जो थोडे लोग बाहर रह गये थे उनकी जिम्मेदारी और भी बढ़ गई थी। पंडित मालवीयजी का विचार हुआ कि आसाम मे, जहां से दमन की भयंकर खबरें आ रही थी, अवश्य जाना चाहिए। मै भी उनके साथ गया। वहा प्रायः सभी जिलो मे कांग्रेस-कमिटिया, केवल शहर मे ही नही बल्कि बहुतेरे गावों मे भी, स्थापित हो गई थी। आसाम मे मकान बहुधा फूस के ही हुआ करते है। कांग्रेस के घर भी फूस के ही थे। सरकारी कर्मचारियों ने प्रायः सभी जगहो के कांग्रेस के दफ्तरों को जला दिया था। सभी अच्छे-अच्छे कार्यकर्ता गिरफ्तार हो चुके थे। कांग्रेस के सेवक-दल के सदस्य, जहा कही मिलते, गिरफ्तार कर लिये जाते थे।

वहा की सरकार के क्रुद्ध होने का विशेष कारण यह था कि आसाम मे अफीम की बिक्री से सरकार को अच्छी आमदनी होती है। वहां के लोग अफीम खाते है, जिसके फलस्वरूप उनके शारीरिक और मानसिक बल का ह्रास हो जाता है। कम उम्र मे ही वे बूढ़े-जैसे जान पड़ते है। दिल और दिमाग की कमजोरी के कारण वे निकम्मे हो जाते है। यह हाल सुनकर गाधीजी ने वहा के कार्यकर्ताओं को आदेश दिया था कि अफीम-बन्दी का आन्दोलन करो। उस आन्दोलन के कारण अफीम की बिक्री बहुत घट गई थी और उसके साथ-साथ सरकारी आमदनी भी। इसलिए सरकारी कर्मचारियो का प्रयत्न था कि कांग्रेस को दबाना चाहिए। जैसा ऊपर कहा गया है, वे कड़ी दमन-नीति से काम ले रहे थे।

वहां पहुंचकर हमने सब हाल देखा और निश्चय किया कि सूबे का दौरा किया जाय। मेरे लिए और पूज्य मालवीयजी के लिए भी आसाम-

दर्शन का यह पहला अवसर था। अत्यन्त हरा-भरा, फूला-फला देश, जिसमें महानद ब्रह्मपुत्र और पहाड़ों की छटा अत्यन्त मनमोहक थी। घने विशाल वृक्षोंवाले तथा छोटी झाड़ियोंवाले जंगल जहां प्रदेश की शोभा बढ़ाते थे, वहां जंगली जानवरों के कारण—जिनमें हाथी और शेर मुख्य हैं—उसे खेती और सफर के लिए खतरनाक भी बना देते थे। हरियाली सुहावनी तो है; पर जमीन के हमेशा तर रहने के कारण प्रान्त का बहुत भाग मलेरिया-ग्रस्त भी है।

गोहाटी में पूज्य मालवीयजी ने बहुत ही जोशीला और उत्साहवर्धक भाषण किया। अफीमवन्दी के काम को जारी रखने के लिए सब लोगों से अपील भी की। मैंने भी कुछ कहा; पर पूज्य मालवीयजी के सभा मे रहते दूसरा कोई क्या बोल सकता है! जितना समय आसाम-भ्रमण के लिए हम दे सकते थे, उतने मे बहुत जगहो तक हम दोनो नही पहुंच सकते थे। इसलिए हम दोनों दो दलों में बट गये। कुछ स्वयंसेवक पूज्य मालवीयजी के साथ उन स्थलों पर गये, जहां रेल या स्टीमर से जाया जा सकता था। कुछ स्वयंसेवकों के साथ मेरा कुछ ऐसे स्थानो मे जाना निश्चित हुआ, जहां बैलगाड़ी पर जाना था। निश्चय ठीक और मेरे मन के अनुकूल था; क्योंकि इस प्रकार मैं गावों की परिस्थिति अधिक देख सकता था। साथ ही, पूज्य मालवीयजी अपनी वृद्धावस्था मे—उस समय वह साठ से अधिक के रहे होंगे—बैलगाड़ी के सफर से बच जाते थे। स्थान ऐसे ही चुने गये थे, जहां दमन का चक्र अधिक तीव्र गति से चला था।

मुझे एक बीहड़ स्थान पर जाना था, जहां कुछ दूर तक घोर जंगल में से होकर जाना पड़ता था। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि आसाम के गांवों में बिहारी मजदूर काम करते है। बिहार की बैलगाडियां बोझ ढोने का काम करती हैं। गोहाटी मे, ब्रह्मपुत्र मे, मैं स्नान करने गया। वहां इत्तिफाक से दो नावें लगी हुई थी। उनके मल्लाहो को आपस मे बातचीत करते सुना तो समझ गया कि वे छपरे की बोली बोल रहे हैं। पूछने से मालूम हुआ कि वे छपरा जिले के किसी गांव के रहनेवाले माझी है और बराबर नाव ले जाया करते हैं। स्टीमर पर जो हलवाई दूकान करता था वह भी छपरे का ही रहनेवाला था।

हम लोग गोहाटी से १५-१६ मील तक लारी पर गये। वहां से बैलगाड़ी पर प्रायः २० मील और जाना था। रास्ता जंगल से होकर जाता था। स्थानों का नाम आज स्मरण नहीं है। उस स्थान पर तो हम प्रायः १२ बजे दिन को ही पहुंच गये। मैंने सोचा था कि जंगल का रास्ता भी शीघ्रता से चलने पर दिन में ही अधिकांश कट जायगा। दो बैलगाड़ियां

भाड़े पर ली गई, पर गाड़ीवाले किसी-न-किसी बहाने से अबतब करते प्रायः ५ बजे तक रवाना नही हुए। दरियाफ्त करने से मालूम हुआ कि सख्त धूप के कारण बैलगाड़िया अधिकतर रात को ही चलती है। एक गाड़ी पर मैं और एक स्वयंसेवक बैठे। दूसरी पर दो या तीन दूसरे स्वयंसेवक। पास में खाने के लिए कुछ था नही। आठ बजे रात को किसी स्थान पर पहुचे, जो चट्टी-सी जान पड़ती थी। बहुतेरी गाड़िया वहां लगी थीं। खोजने पर केवल कुछ भुने चने मिले, जिनको हम लोगों ने ले लिया और गाड़ी को रवाना किया। उन्हे चबाकर मैं गाडी में सो गया। कुछ घंटों बाद बहुत शोर-गुल सुनकर मेरी नीद टूटी। मैंने देखा कि स्वयंसेवक किरासन तेल के दो टिनो को बहुत जोरो से पीट-पीटकर और जोरों से गा-गाकर शोर मचा रहे है। साथ ही, गाडीवाले भी बहुत जोरो से चिल्ला-चिल्लाकर बैलों को हाक रहे है। दोनो गाड़ियों के साथ लालटेने थी, जो जल रही थी। सड़क बहुत संकरी हो गई थी। दोनो ओर बड़े-बड़े वृक्षो का बहुत घना जगल था। वह घाटी थी, जहा दोनो ओर पहाड़ भी थे, पर वे रात को गाड़ी पर से नजर नही आते थे—उनको मैंने लौटती बार ही देखा। पूछने पर मालूम हुआ कि उस स्थान पर जगली जानवर, विशेषकर शेर, अक्सर आ जाया करते है। उन्हीको भगाने के लिए स्वयंसेवक और गाड़ीवान शोर मचा रहे थे। उन्होंने कहा कि जानवर उस आवाज के नजदीक नहीं आते। यदि सड़क पर भी होते है तो हट जाते है। पर कोई-कोई जानवर इतना शोख होता है कि बैलगाडी मे जुते हुए बैलो को भी खीच ले जाता है। मालूम हुआ कि एक ऐसी घटना हाल ही मे हो चुकी थी। इसके बाद मैं सो न सका।

जब हम घोर जंगल से बाहर निकल आये और जानवरों का डर कम हो गया तब शोर मचाने की प्रक्रिया बन्द हुई। हम अपने स्थान पर बहुत सवेरे ही पहुच गये। वहां की जनता बहुत आतकित थी। काग्रेस का छोटा-सा घर जला दिया गया था। सभी काग्रेसी काम करनेवाले गिरफ्तार हो चुके थे। थाना पास मे ही था। लोग डर के मारे अब काग्रेस के काम से विमुख हो गये थे। हम लोगो के पहुचने से उनमे साहस आ गया। सब जमा हो गये। आसपास के गावो मे खबर दी गई कि सभा होगी। इस बीच में गांव के लोगों से वहां के दमन का हाल हम सुनते रहे। अफीम-बन्दी-सम्बन्धी जानकारी भी हासिल करते रहे। दोपहर तक लोग जमा हो गये। दो-तीन सौ आदमियों की एक अच्छी सभा हो गई। देखा कि लोगों की हिम्मत बढ़ गई। फिर कांग्रेस-भवन बना लेने और अफीम-बन्दी का काम जारी करने का लोगों ने वचन दिया। पुलिस के मौजूद रहते भी लोगों ने

सभा में खुलेआम भाग लिया।

हम लोग तीन बजे के करीब वहां से वापस हुए। इरादा था कि उस दुर्गम स्थान को, जहां रात को टिन पीटना पड़ा था, रोशनी रहते ही पार कर जायं। ऐसा ही हुआ भी। उस स्थान पर पहुंचते-पहुंचते सूर्यास्त हो चुका था, पर अभी अंधेरा नही हुआ था। मैं साथियों के साथ पैदल ही चल रहा था। दोनों गाड़ियां भी साथ-ही-साथ चल रही थी। इसी बीच में पहाड़ियों की तरफ से बाघों की दहाड़ सुनने मे आने लगी। यह आवाज दोनो तरफ से मालूम पड़ती थी, पर हो सकता है कि एक ही ओर से आती रही हो और एक ही बाघ की हो तथा वह उस निर्जन जंगल-पहाड़ों में प्रतिध्वनित होकर कई बाघो की आवाज-सी मालूम पड़ रही हो। पर बाघ कहीं देखने को न मिला। आवाज भी बहुत नजदीक नही थी, शायद दो-तीन फर्लांग की दूरी से आ रही थी। मैंने चिड़ियाखाने के सिवा बाघों की ऐसी दहाड़ और कही नहीं सुनी है।

रातभर गाड़ी पर चलकर हम लोग कुछ रात रहते उस स्थान पर पहुंचे, जहां से मोटर-लारी जाती थी। प्राय दस बजे फिर गोहाटी पहुंचे। पूज्य मालवीयजी के साथ और जगहों की यात्रा समाप्त करके हम लोग वापस चले। लखनऊ मे होनेवाली अखिल भारतीय काग्रेस-कमिटी की बैठक मे शरीक हुए। मैंने देखा कि वैसी गिरी हुई अवस्था मे भी पूज्य मालवीयजी लोगों को जगाने और हिम्मत दिलाने मे कितने सफल हुए। उनकी वाणी मे शक्ति तो है ही, वहा की हालत देखकर उसमें और भी तेज आ गया था। उनकी वह यात्रा ऐसे विकट समय मे भी बहुत ही सफल रही।

हमारे अपने सूबे (बिहार) मे संथाल-परगना से दमन की खराब खबर आई—विशेषकर 'पाकुर' से। मैं वहां भी गया। वहां लोग इतने आतकित थे कि स्टेशन पर हम लोगों से मिलने कोई नही आया। हम रात-भर स्टेशन के प्लेटफार्म पर सोये रहे। सवेरे उठे तो देखा कि एक जूता कुत्ता उठा ले गया है। वहीं मुह-हाथ धोकर शहर मे जाने का विचार किया। कुछ ही दूर गये थे, जब वकालत के दिनो के एक परिचित मवक्किल मिले। उन्होंने सुना था कि मैं स्टेशन पर पड़ा हूं—कोई पूछनेवाला नही है, और यह सुनकर वह हमको अपने घर लाने के लिए जा रहे थे। उनके घर पर हम गये। स्नानादि से निवृत्त होकर जेलखाने पर गये, जहां हमारे पहुंचने के एक ही दो दिन पहले पाच-छः काम करनेवाले गिरफ्तार करके रखे गये थे। उनसे मुलाकात प्रायः १२ बजे दिन को हुई। जूता तो था ही नहीं। धूप कड़ाके

की थी। वहा की सड़क का मोटा 'मोरम'[1] बहुत गर्म हो गया था। वहा से खाली पैर वापस होते समय पैर इतना जला कि सारे तलवे में फफोले उठ आये। किसी प्रकार निवास-स्थान पर पहुंचकर एक रस्सी का तल्लावाला जूता मगवाया। दोपहर को एक सड़क की बगल में ही सभा हुई, जिसमे कुछ लोग आये; पर आतक काफी था। वहां भी हमारे जाने से लोगो मे कुछ साहस आया। गिरफ्तार कार्यकर्ताओं के घर जाकर उनके घरवालों को ढाढ़स दिलाया।

हम लोग दुमका भी गये, पर वहां कोई ठहरानेवाला नहीं मिला। हम लोग एक धर्मशाला मे जाकर ठहरे। वहा और कुछ लोग आकर मिले। उनमें वहा की पुलिस के दारोगा भी थे, जो भोजपुरी बोलते थे और हर मिनट मे 'जय शिव' या 'बम-बम' कहा करते थे। उन्होंने बहुत सज्जनता से बाते की, पर उनकी सलाह यह हुई कि हमारा वहा का काम तो खतम हो गया, अब वहां बहुत ठहरने की जरूरत नही रह गई। उन्होंने अन्त में यह भी कहा कि हम लोगो को वहा से चले जाने का हुकुम है। हुकुम मागने पर वह दिखा नही सके—उसे लाने चले गये, पर फिर लौटे नहीं! हम वहां उनका इन्तजार ही करते रह गये। मैने अपने प्रोग्राम के अनुसार वहा अधिक ठहरने का निश्चय नही किया था, अत. रात की गाड़ी से वापस चला आया।

उसी जिले (दुमका) मे एक दूसरे स्थान पर कुछ नेता गये थे। वहां के लोगो मे से एक आदमी ने अच्छा स्वागत किया था। जहां वे लोग ठहरे थे, एक आदमी उन लोगो को पखा झल रहा था। लोगो मे काफी आतक था; पर वह व्यक्ति निडर था। उन लोगो के चले आने के बाद सुना कि उस गरीब पंखा झलनेवाले की जमीन 'उच्छेद' कर ली गई। वहा की जमीन सरकारी समझी जाती थी। किसी किसान को अपनी जमीन से निकाल देने को वहा 'उच्छेद' कहा जाता है। पीछे हमने बहुत कोशिश की कि उसकी जमीन वापस हो जाय; पर असफल रहे।

संथाल-परगने मे जो जुल्म हुए थे, उनके सम्बन्ध मे मैने एक लम्बी रिपोर्ट तैयार की। वह सामयिक पत्रों में, विशेषकर 'सर्चलाईट' मे, छाप दी गई।

---

[1] एक किस्म का पत्थरों का महीन टुकड़ा अथवा मोटी बालू, जो लाल रंग की होती है और सड़क बनाने में इस्तेमाल की जाती है।

: ४७ :

कौन्सिल-प्रवेश-सम्बन्धी वाद-विवाद

ऊपर सत्याग्रह जांच-कमिटी का जिक्र आ चुका है। उस कमिटी ने प्रश्नावली तैयार की और सभी काग्रेस-कमिटियों से उत्तर मांगा। उसके बाद सभी सूबों में जाकर, वहा के कार्यकर्ताओं से मिलकर, बातचीत करने और इजहार लेने का निश्चय किया। मुझे यह अच्छा नही लगता था; क्योंकि यह सरकारी कमिटियों का तरीका है, जो प्रायः रिपोर्ट देने के सिवा—वह भी बहुत समय बिताकर—और कुछ करना नहीं चाहती। कमिटी का काम ज्यों-ज्यों आगे बढा, यह स्पष्ट होने लगा कि उसमें दो मत हैं। एक पक्ष गाधीजी के बताये हुए रचनात्मक काम पर जोर देकर देश को सत्याग्रह के लिए तैयार करना चाहता था और दूसरा पक्ष यह देख-कर कि देश सत्याग्रह के लिए तैयार नही है—यह राय रखता था कि कौन्सिलो मे जाना चाहिए और कौन्सिल-बहिष्कार का जो प्रस्ताव कल-कत्ते के विशेष अधिवेशन ने १९२० मे स्वीकार किया था, उसे बदल देना चाहिए। कांग्रेस-कार्यकर्ताओ मे भी बहुत मतभेद देखने मे आया—यद्यपि गांधीजी के कार्यक्रम को ज्यों-का-त्यो रखने के पक्ष मे अधिक लोग मालूम पड़ते थे। कमिटी ने सभी सूत्रों के उत्तरो को और खुद जाकर कार्यकर्ताओं के इजहारों को जमा कर लिया। इसी सिलसिले मे कमिटी के सदस्य पटने में भी आये। अन्य कांग्रेसियों के अलावा मुझे भी इजहार देना पड़ा। मैं गांधीजी के कार्यक्रम का पक्का पक्षपाती था। मैंने उसीका समर्थन अपने इजहार में जोरों से किया।

अन्त में कमिटी की रिपोर्ट जब निकली तो मालूम हुआ कि छः सदस्यो में तीन एक पक्ष में थे और तीन दूसरे पक्ष मे। इसलिए कौन्सिलों के सम्बन्ध में कमिटी कोई सिफारिश न कर सकी। सब मेम्बरों की राय ही देकर कमिटी सन्तुष्ट रही। रिपोर्ट निकलने के पहले से ही उग्र मतभेद प्रदर्शित हो रहा था। रिपोर्ट के बाद तो उसका रूप और भी उग्र हो गया। अख-बारों में तथा काग्रेसी हलकों में कौन्सिल में जाने या न जाने पर बहसें होने लगीं। जो लोग कौन्सिल-प्रवेश के पक्ष मे थे, वे परिवर्तनवादी (प्रो-चेंजर्स) कहलाने लगे, और जो पहले के कार्यक्रम में परिवर्तन नहीं चाहते थे—

अर्थात् जो कौन्सिल-प्रवेश के विरोधी थे—वे अपरिवर्तनवादी (नो-चेंजर्स) कहलाने लगे।

क्रमशः बड़े-बड़े नेता भी म्याद काटकर छूटने लगे। उनमें देशबन्धु दास का स्थान सबसे ऊंचा था। लालाजी की लम्बी म्याद थी। उनके छूटने की अभी सम्भावना नही थी। शुरू से पंडित मोतीलालजी के विचारों का ठीक पता मालूम न हुआ। ऐसा मालूम होता था कि वह गांधीजी के प्रोग्राम को ही मानते हैं। पर देशबन्धु दास के छूटने के बाद स्पष्ट हो गया कि पंडितजी का विचार भी कौन्सिलो मे जाने के पक्ष में ही था। पहले के प्रोग्राम के समर्थकों के नेताओ में श्री राजगोपालाचारी, डाक्टर अन्सारी श्री वल्लभभाई पटेल, सेठ जमनालाल बजाज प्रभृति थे। देशबन्धु दास ने कमिटी की रिपोर्ट के बाद अपनी राय जाहिर कर दी। वह थी कौंसिल-प्रवेश के पक्ष में। अहमदाबाद-काग्रेस के मनोनीत सभापति वही थे। इसलिए जब वह छूटे तो नियमानुकूल अखिल भारतीय काग्रेस-कमिटी के सभापति हो गये। चुने जाने पर भी वह अहमदाबाद में सभापति न हो सके थे। देश ने उनको फिर गया के अधिवेशन के लिए सभापति चुना।

अखिल भारतीय काग्रेस-कमिटी की एक बैठक कलकत्ते मे हुई। सत्याग्रह कमिटी की रिपोर्ट उसमे विचार करने के लिए पेश हुई। तीन-चार दिनों तक बहस चलती रही। श्री राजगोपालाचारी ने ही हम सब अपरिवर्तनवादियों का नेतृत्व किया। मुझे भी वहां के वाद-विवाद मे हिस्सा लेना पड़ा था। हम लोगो की कोशिश थी कि कुछ अदल-बदल करके और कौन्सिल के सिवा अन्य विषयों पर—जिनका जिक्र रिपोर्ट मे था—यदि कुछ समझौता हो जाय तो अच्छा होगा। पर ऐसा हो न सका। बहुत बहस के बाद यह विषय गया-कांग्रेस के लिए स्थगित कर दिया गया।

: ४८ :

गुरु का बाग और मुलतान

इस साल, अगस्त-सितम्बर मे, जहातक मुझे स्मरण है, दो बड़ी दुर्घटनाएं हुई, जिनका असर सारे हिन्दुस्तान की राजनीति के वातावरण पर पड़ा। पहली घटना वह थी, जो गुरु के बाग से सम्बन्ध रखती थी। कुछ समय पहले से सिक्खो मे उनके अपने गुरुद्वारों के सुधार के लिए आन्दोलन चल रहा था। उनके गुरुद्वारे धार्मिक स्थान है, जिनका सबध किसी धार्मिक घटना से हुआ करता है। मुख्य गुरुद्वारो का सम्बन्ध किसी-न-किसी गुरु के जीवन की किसी घटना से होता है। इतिहास साक्षी है, सिक्खो ने अपने धर्म के लिए बहुत कष्ट सहे है, बहुत जुल्म बर्दाश्त किये है। इसलिए गुरुद्वारों के प्रति उनकी बड़ी ममता और श्रद्धा है। इन गुरुद्वारो के पास जनता की दी हुई काफी जायदाद है। पंथ की सेवा के लिए वह दी गई थी। गुरुद्वारो के इन्तजाम के लिए जो सेवक नियुक्त किये गए थे, वे ही उस जायदाद के प्रबन्ध इत्यादि भी किया करते थे। जैसा अक्सर हुआ करता है, गुरुद्वारे महन्तो के कब्जे मे थे। बहुतेरे महन्त निकम्मे और दुराचारी थे। इसलिए सिक्खो मे एक दल, जिसे अकाली दल कहते है, इसपर जोर देने लगा कि गुरुद्वारो का सुधार करने के लिए महन्तों का नियन्त्रण किया जाय।

आहिस्ता-आहिस्ता यह आदोलन जोर पकड़ने लगा। गुरुद्वारो का प्रबन्ध अपने हाथ में लेने के लिए उन्होंने 'शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक-कमिटी' स्थापित की। कही-कही के महन्तो ने शिरोमणि-कमिटी की बात मान ली और अपना प्रबन्ध उसके हाथ सौंप दिया। गवर्नमेण्ट भी इस बात पर विचार करने लगी कि यह काम कानूनन किया जाय और कानून बनाकर गुरुद्वारों का प्रबन्ध कमिटियों को सौपा जाय। पर कोई बात अभी तय नही हुई थी। गवर्नमेण्ट पसोपेश मे थी। अकालियो से रुष्ट होकर कुछ महन्त जोर-जबरदस्ती करने लगे। एक गुरुद्वारे में वहां के महन्त ने बहुतेरे अकालियों को बड़ी क्रूरता से मरवा और जलवा डाला था। यह घटना कुछ पहले नानकाना-साहब-गुरुद्वारे में हो चुकी थी। इससे अकालियों में बहुत क्षोभ और रोष पैदा हुआ था। उन्होंने गांधीजी की बताई हुई अहिंसात्मक

नीति को स्वीकार किया। उन्होने यही निश्चय किया कि गुरुद्वारों को वे अहिंसात्मक तरीके से अपने कब्जे मे करेंगे। यह अहिंसात्मक नीति सिक्खो के लिए नई चीज नही थी। मुसलमानी काल में भी उन लोगो ने इस नीति को ग्रहण किया था और बहुत दुःख सहे थे।

'गुरु का बाग' नामक एक स्थान अमृतसर से कुछ दूर पर है। वहां एक गुरुद्वारा है, जो एक महन्त के कब्जे मे था। अकालियो ने इस गुरुद्वारे को अपने हाथ में लेना चाहा। पहले महन्त ने उसकी बात मान ली। आपस मे यह तय हो गया कि गुरुद्वारा अकालियो के हाथ मे रहे और मठ महन्त के कब्जे मे। वहा कुछ जमीन भी थी, जिसमे बबूल का जगल-सा था। आगे चलकर आपस मे फिर झगडा छिड गया। शिरोमणि-कमिटी की ओर से गुरुद्वारे का प्रबन्ध हो रहा था। ग्रन्थसाहब की सेवा के लिए सेवक नियुक्त थे। गुरुद्वारो मे और सिक्ख-सगतो मे अक्सर 'लगर' (भडारा) हुआ करता है। यहा भी वे लगर खोले हुए थे। उसमे जलाने के लिए कुछ बबूल के वृक्ष काट लाये। महन्त ने इसे रोका और पुलिस की मदद ली। सरकार की ओर से अकालियो को वहा जाने की मनाही हो गई। अकालियो ने सत्याग्रह करने का निश्चय कर लिया। वे उस जगल मे लकडी काटने के लिए जाते, पुलिस रोकती; न रुकने पर पहले तो उनको गिरफ्तार करती, पर पीछे केवल मारपीटकर हटाने लगी। जो अकाली वहा जाता, वह बुरी तरह से पीटा जाता। पीछे गवर्नमेंट ने वहा जाने के रास्ते पर, कुछ दूर से ही, रोक लगा दी। अकालियों मे बहुत जोश था। वे अमृतसर के अकाल-तख्त मे जाकर, अहिंसात्मक रहकर वहां पहुंचने की सौगन्द लेते। जबतक रास्ता खुला था, गुरुद्वारे मे आकर ठहरते। वहा से जगल मे जाते और पीटे जाते। जब रास्ता रोक दिया गया तो उनके जत्थे रास्ते मे ही रोके और पीटे जाते—इतनी बुरी तरहसे पीटे जाते कि बेहोश हो जाते। उस हालत मे लोग उनको वहां से उठाकर अस्पताल मे, जो कायम किये गए थे, ले जाते।

इसका शोर सारे देश मे फैल गया। दूर-दूर से लोग वहा का सत्याग्रह देखने आने लगे। पंडित मालवीयजी, हकीमसाहब और दूसरे लोग भी गये। मैं भी गया। अमृतसर में वर्किंग कमिटी की एक बैठक हुई। वहां से लोग 'गुरु का बाग' देखने गये। हमने जो दृश्य देखा, उसे कभी भूल नही सकते। कुछ अच्छे-तगड़े जवान सिक्ख हाथ जोडे हुए आगे बढे। उधर से, लोहे और पीतल से मढ़ी हुई लाठिया लिये, पुलिस के सिपाही एक अगरेज अफसर के साथ, आगे आये। उन लोगों को उन्होने रोका। वे लोग बैठ गये। इसपर उनको लाठियों से खूब पीटा। वे फिर उठकर खड़ा होना चाहते, पर मारकर गिरा दिये जाते। यह क्रम उस वक्त तक चलता रहता जब-

तक वे बेहोश नहीं हो जाते। बेहोश हो जाने पर चारपाई (अम्बुलेन्स) पर लादकर उनको दूसरे लोग उठा लाते। कभी-कभी उनका केश पकड़कर उन्हें घसीटा भी जाता। लोग यह देखने के लिए जमा होते, पर एक आदमी भी कभी हाथ न उठाता। जो पीटे जाते वे बेचारे भी कभी हाथ न उठाते। यह अहिंसात्मक सत्याग्रह का एक अत्यन्त ज्वलन्त उदाहरण सारे देश के सामने आ गया। सारे देश में, बड़ी उत्सुकता के साथ, 'गुरु का बाग' की खबरें पढ़ी जाने लगी। हजारो आदमी गिरफ्तार हुए। शिरोमणि-कमिटी के प्रमुख सदस्य भी गिरफ्तार हुए। बहुतेरे लोग तो यो ही पीटे गये। जो अकाली सत्याग्रह में शरीक होते उनमे बहुतेरे ऐसे थे, जो जर्मन-युद्ध में ब्रिटिश सरकार की ओर से बहादुरी से लड़े थे। गवर्नमेट का कहना था कि महन्त की जमीन को, जिस पर उसका कानूनी हक था, वह कैसे छीन ले और जब महन्त अपना कब्जा कायम रखने मे गवर्नमेट की मदद मागता है तो वह कैसे इन्कार कर सकती है। इसी कानूनी उधेड़-बुन मे बहुत-से लोग जेल गये। इसी कारण बहुत-से लोग बुरी तरह से पीटे जा रहे थे। पुलिस के एक सुपरिटेडेट ने लाठी चलाने की कला को भी वह रूप दे दिया था, जो फौज मे और-और हथियारो के चलाने को दिया जाता है। उसने इसके लिए कवायद के नियम बना दिये थे। किसी नायक या सरदार के हुकुम के अनुसार सभी सिपाही लाठियों से पीठ पर अथवा सिर पर वार करते थे। अथवा, दोनो जंघो के बीच मे लाठी लगाकर फोते पर चोट करते या पेट मे मारते थे। इस तरह अफसरो के हुक्म के मुताबिक ही चोट की जाती। सिक्खो की हिम्मत और बर्दाश्त की शक्ति भी अद्‌भुत थी!

हम लोग वहा गये और अपनी आखो सारा काण्ड देखकर हमें विश्वास हो गया कि सच्चा सत्याग्रह भी किया जा सकता है। उसके लिए बहादुरी, हिम्मत और दुःख सहने की शक्ति चाहिए। वह शक्ति यदि हट्टे-कट्टे जवा-मर्द भी बिना हाथ उठाये दिखला सके, तो कोई भी शक्ति उनको दबा नही सकती।

सरकार की ओर से कोशिश हुई कि कोई रास्ता निकाला जाय। एक रास्ता निकल भी गया। सर गंगाराम ने, जो एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे, महन्त से जमीन का बन्दोबस्त लेकर अकालियों को दे दिया। सरकार को अब जबरदस्ती रोकने की जरूरत नही रह गई। कुछ दिनों बाद एक कानून भी बना, जिसके अनुसार अब गुरुद्वारों का प्रबन्ध होता है। पर यह सब जल्दी नही हुआ। इसमें समय लगा। बहुतों को बहुत कष्ट भी सहना पड़ा। सत्याग्रह की उपयोगिता और उसमे निहित संभावना साबित हो गई। इसका श्रेय सिक्खों को है। उन्होने इसे अपनी सत्य-निष्ठा और शक्ति से

दिखला दिया।

दूसरी घटना भी पंजाब में ही हुई। हम लोग अमृतसर से ही मुलतान गये। वहां एक दूसरे प्रकार की घटना हुई थी। मुलतान में ताजिया का जलूस निकला। उसी जलूस के कारण बड़ा भारी हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो गया। मुसलमानों का कहना था कि हिन्दुओं में से किसीने ताजिया पर ढेला फेंका। हिन्दुओ का कहना था कि उनकी ओर से कुछ नही किया गया—मुसलमानों की ओर से हिन्दुओं को लूटने की तैयारी पहले मे थी, ताजिया तो सिर्फ बहाना था। जो भी कारण हो, मगर फसाद जो हुआ उसमें बहुत ही हृदय-विदारक घटनाए हुईं। खबर पाकर हकीम अजमल खां—जो कांग्रेस के सभापति का काम कर रहे थे—पडित मदनमोहन मालवीयजी, सेठ जमनालालजी, श्रीप्रकाशम् और मै वहां गये। आपस की खीचतान इतनी जबरदस्त थी कि हम लोगो के ठहरने-ठहराने के स्थान के सम्बन्ध में ही दोनों पक्षों में कोई बात तय न हो सकी। इसलिए, जब हम लोग स्टेशन पर उतरे, पहला सवाल ठहरने के स्थान का सामने आया। हमने अपने दल को दो हिस्सों में बांट दिया। कुछ लोग मुसलमानों के मेहमान होकर वहा के एक नवाब के यहां ठहरे। कुछ लोग हिन्दुओं के मेहमान होकर दूसरी जगह ठहरे। मै हकीमसाहब के साथ नवाब के यहां ठहरा।

हम लोगों ने बलवे के स्थानो को जाकर देखा। कितने ही हिन्दुओं के घर लूटे और जलाये गए थे। उन घरो का सारा सामान लूटा या जला दिया गया था। कितने ही आदमी मारे गये थे। जो लोग बचे थे, उनमें से विशेषकर स्त्रियों ने घटना का बहुत ही दर्दनाक वर्णन किया, जिसका असर हम लोगों के दिल पर काफी पडा। एक जगह मैंने देखा, हकीमसाहब साफ-साफ बहुत ही प्रभावित दीख रहे थे। एक स्त्री ने कहा कि सबकुछ लूट लेने और जला देने के बाद लुटेरों ने और कुछ नही पाया तो एक पिजडे को, जिसमे उसने तोता पाल रखा था, आग मे डाल दिया। राख की ढेर अभी ज्यों-की-त्यों थी। उसमें लोहे का पिंजड़ा भी पड़ा था। पर तोता जलकर खाक हो गया था। कई मन्दिरो तथा देवस्थानों की भी यही हालत हुई थी।

हम लोग वहां के डिपटी-कमिश्नर मिस्टर एमर्सन से भी मिले। यही बाद में गांधी-अर्विन-समझौते के समय गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया के होम-सेक्रेटरी थे। उसके बाद यह पंजाब के गवर्नर हुए। इनका रुख हमने कुछ ऐसा ही पाया कि आपस में मेल-मुहब्बत कायम हो। यह कानून की दुहाई देकर बलवाइयों की सजा की बात ही जोरों से कहते रहे। हम चाहते थे

कि इसके अलावा आपस में मेल-जोल कायम करने का भी प्रयत्न किया जाय। वहां दोनों पक्ष के मुख्य-मुख्य लोगों की एक छोटी सभा हुई। उनसे बातें करने के बाद हमने देखा कि यद्यपि लोगो मे मनमुटाव बहुत है, तो भी दोनों मिल-जुलकर रहने के लिए तैयार-से मालूम होते थे। मुसलमानों को बहुत फिक्र इस बात की थी कि उन्हींके आदमी गिरफ्तार हुए थे और हो रहे थे—सब मुकदमे उन्ही लोगो पर चलेगे और हो सकता है कि उनको लूट के लिए मुआवजा भी देना पड़े। पीछे एक बड़ी सभा हुई जिसमे हकीम-साहब और पंडित मालवीयजी के भाषण हुए। आपस मे मेल-जोल बढ़ाने के लिए हम लोगो ने एक गैर-सरकारी कमिटी कायम कर दी, और वहां से चले आये।

वहा के सारे दृश्य का मुझपर बहुत असर पड़ा। मैने देखा कि पंडित मालवीयजी भी बहुत ही प्रभावित हुए थे। उन्होने वहापर हिन्दुओ से कहा—तुमको भी सगठित हो जाना चाहिए, तुम्हे अपने जान-माल और इज्जत पर हमला करनेवाले का मुकाबला करना चाहिए। सरकार से भी उन्होने अनुरोध किया कि बलवाइयों को सजा देनी चाहिए।

हमारे वहा जाने का इतना असर मालूम हुआ कि खीचतान कम हो गई। जहां वे लोग आपस मे एकसाथ बैठकर यह तय नही कर पाते थे कि हम लोग कहां ठहराये जायगे, वहा अब वे एक साथ कमिटी के मेम्बर बनने को तैयार हो गये। सब लोग मेल-जोल बढाने के प्रयत्न मे लग गये। हकीम-साहब ने एक बयान प्रकाशित किया, जिसमे उन्होने मुसलमानो की कार्र-वाइयो की निन्दा की और हिन्दुओ को सान्त्वना दी।

गया-काग्रेस के समय कुछ लोगों का यह भी विचार हुआ कि जैसे वहां खिलाफत-कान्फ्रेन्स होगी वैसे हिन्दू-सभा भी होनी चाहिए। प्रबन्धकों ने पंडित मालवीयजी को सभापति बनाने का आग्रह किया। मुझपर बहुत जोर डाला गया कि मैं भी यदि आग्रह कर दू तो पडित मालवीयजी स्वीकार कर लेगे। मुझसे यह भी आग्रह किया गया कि मैं स्वागताध्यक्ष बन जाऊं। उस समय तक हिन्दू-सभा ने यदि उसका अस्तित्व हो भी तो, कोई वैसा महत्त्व नहीं पाया था जैसा अब प्राप्त है और न उसकी नीति ही काग्रेस-विरोधी थी। साथ ही, खिलाफत-कमिटी काग्रेस के साथ-साथ हुआ करती थी। इसलिए काग्रेस के साथ हिन्दू-सभा का कोई विरोध नही था और न होने की कोई सम्भावना दीखती थी। मैने स्वागताध्यक्ष होना स्वीकार कर लिया। पूज्य मालवीयजी भी सभापति बन गये। गया मे कोई ऐसी कार्र-वाई भी नही हुई, जिससे किसीको आपत्ति हो सकती थी। पर पंडित मालवीयजी ने अपने भाषण में मुलतान की घटना का वर्णन किया। उन्होंने

हिन्दुओं को भी आत्म-रक्षा के लिए तैयार होने का आदेश दिया। यहां इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि यद्यपि वहां कोई बड़ी बात नहीं हुई, तथापि भविष्य में हिन्दू-महासभा के अलग हो जाने की स्थिति की नीव पड़ गई। इसमें मेरा भी भाग रहा। पीछे जब हिन्दू-सभा और कांग्रेस मे मत-भेद स्पष्ट हो गया, तो पंडित मालवीयजी ने मुझसे कहा भी कि मैंने, तुम्हारे कहने से ही गया के अधिवेशन का समापतित्व स्वीकार किया था और सभा की स्थायी नीव डाली थी। मैं इसको इन्कार नही कर सका और न आज भी कर सकता हूं। उस समय, जहातक मैं समझ सका, गया मे मुसल-मानों ने भी महासभा के सगठन मे कोई खास बुराई नही देखी। और अगर देखी भी हो, तो हम लोगो को बताया नही।

जैसा मैं ऊपर कह आया हू, मुलतान के दंगे के बाद से हिन्दू-मुसलमानों के बीच कशीदगी बढती गई। अनेक स्थानो मे हिन्दू-मुस्लिम दंगो के होने की खबरे आने लगी। कांग्रेसी हिन्दू और मुसलमान परिस्थिति पर काबू करने के प्रयत्न मे लगे रहते, पर किसी-न-किसी कारण बलवे हो ही जाते। इन दंगोंमे, अधिकतर स्थानों मे, प्राय हिन्दू ही अधिक पिटते। इसी कारण हिन्दू-संगठन का जन्म हुआ। शुद्धि का जन्म तो धार्मिक प्रवृत्ति से हुआ था। यदि शुद्धि भी कट्टरता का रूप धारण न करती तो शायद उससे अधिक चिढ़ भी पैदा न होती। पर १९२३ से—लगातार तीन-चार बरसों तक—हिन्दुओं मे शुद्धि और संगठन का तथा मुसलमानो मे तबलीग और तनजीम का हो-हल्ला रहा, जिसका नतीजा यह हुआ कि आहिस्ता-आहिस्ता कांग्रेस से बहुतेरे मुसलमान और बहुतेरे हिन्दू भी अलग होने लगे।

: ४९ :

गया-कांग्रेस

गया-काग्रेस के अधिवेशन के कुछ पहले स्वागत-समिति में एक घटना हुई, जिसका जिक्र कर देना जरूरी है। एक सज्जन ने स्वागत-समिति को ५०००) देने का वचन कुछ महीने पहले दिया था। रुपये की जब जरूरत महसूस होने लगी तब उनसे तकाजा किया गया, पर वह अब-तब करते गये। जब स्वागताध्यक्ष के चुनाव का दिन निश्चित हो गया और स्वागत-समिति की बैठक की गई तो उसी दिन उन्होंने स्वागत-समिति की सदस्यता के लिए दो सौ दर्खास्तों पर दस्तखत कराकर, फी दर्खास्त पचीस रुपये के हिसाब से ५०००) रुपये भेजे। उनकी इच्छा थी कि वह इस तरह से स्वागताध्यक्ष चुन लिये जायगे; क्योकि और किसीकी तरफ से कोई चुने जाने की कोशिश नही की गई थी। यद्यपि सदस्यो की संख्या काफी थी तथापि सब सदस्य उस सभा मे, जो कांग्रेस के चन्द दिन ही पहले हो रही थी, आये नही थे। हमको यह बात बहुत बुरी मालूम हुई। हमने समझा कि यह एक प्रकार का कुचक्र है और वह सज्जन सारे सूबे की आखो मे धूल डालकर, सारे प्रान्त के प्रतिनिधि-रूप से, आगन्तुक नेताओ के स्वागत करने का श्रेय लेना चाहते है। यदि उन्होंने कांग्रेस की कुछ सेवा की होती, तो शायद मुझे इतना क्षोभ न होता। पर ऐसी कोई सेवा भी उनकी नही थी। उन्होंने इस प्रयत्न को सब लोगों से गुप्त रखा था। इससे वह क्षोभ और भी अधिक हो गया। हमने उनके रुपये, कारणों के साथ, वापस कर दिये। यद्यपि रुपयों की जरूरत थी तथापि हमने यही ठीक समझा कि इस प्रकार के फरेब को रोकना ही उचित है। सबकी इच्छा थी कि स्वागताध्यक्ष का पद श्री व्रजकिशोरप्रसाद को दिया जाय। स्वागत-समिति ने सर्व-सम्मति से उनको ही स्वागताध्यक्ष चुना।

कांग्रेस के अधिवेशन के दिन निकट आ गये, पर अभी काफी झोंपड़े तैयार नही हुए थे और न पंडाल ही तैयार हुआ था। गया मे सर्दी काफी पड़ती है। उस साल कुछ विशेष सर्दी थी। झोपड़ों के लिए कुछ और भी नये कण्ट्रैक्टर मुकर्रर किये गए, पर पंडाल का काम पूरा होता नजर नही आता था। उन दिनों कांग्रेस एक बड़े शामियाने के अन्दर ही हुआ करती थी,

आजकल की तरह खुले मैदान में नही। लोगों के बैठने के लिए जमीन ऊंची-नीची ढालू बनानी पड़ती थी। आशा थी कि और सब काम तो पूरा हो जायगा, पर मिट्टी भरने का काम पूरा न हो सकेगा।

कांग्रेस के अधिवेशन के दो दिन पहले, राची-जिला और उसके आस-पास के आदिवासी लोग, प्रायः तीन-चार सौ की सख्या मे, पैदल चलकर गया में पहुंच गये। वे लोग अपने साथ हांड़ी और लकड़ी भी वहंगियों पर लादकर आये थे। प्रायः डेढ़-दो सौ मील की दूरी से, लगातार कई दिन चलकर, गया पहुंचे थे। कांग्रेस मे उन लोगों की श्रद्धा इतनी बढ़ गई थी कि उसके नाम पर सबकुछ करने को तैयार रहते थे। कभी-कभी नाममझी का काम भी कर दिया करते थे। जब असहयोग का आन्दोलन जोरो से चल रहा था, उनको अहिसा का अर्थ किसीने यह बता दिया था कि बकरियां मास के लिए ही पाली जाती है, इसलिए उनका पालना भी ठीक नही है। मालूम नही, यह प्रचार किसकी ओर से किया गया; पर नतीजा यह हुआ कि हजारो बकरियो को उन्होंने योही जंगलो मे छोड़ दिया! मैं जब एक बार सफर में उधर गया था तो इन बकरियो को देखा भी था और वहीं मुझे यह बात मालूम हुई थी। उन्ही लोगों की एक जमात उसी श्रद्धा के साथ गया मे पहुंची। उन्होने स्वागत-समिति से केवल इतनी ही फरमाइश की कि हम लोगों के लिए किसी बगीचे मे कुछ खाली जमीन बतला दी जाय, हम वही ठहरेंगे और रसोई बनाकर खायेंगे। वे लोग काम करने मे भी खूब मेहनती थे। उनसे किसीने जाकर कहा कि कांग्रेस के पंडाल मे मिट्टी भरने का काम पूरा नही हो रहा है, जिसके कारण हम लोग बहुत चिन्तित हो रहे है। उन्होंने हमसे कुदाल और टोकरिया मागीं। उनको सब सामान दिये गए। बस वे सभी इस काम मे लग गये। दिन-रात काम करके, दो दिनों के भीतर, सब काम पूरा कर दिया। हम लोग उनके उत्साह और परिश्रम को देखकर चकित रह गये। स्वागत-समिति की ओर से उनमें से प्रत्येक को एक गाधी-टोपी और स्वागत-समिति की मेम्बरी का एक फूल दिया गया। वह फूल टोपी पर जड़ दिया गया। इससे वे बहुत खुश हुए। कई बरसों के बाद भी, जब मैं उस इलाके मे दौरे पर गया, उन्होंने बड़े गौरव के साथ फूल टकी टोपियां दिखलाईं। इस तरह मुझे याद दिलाया कि वे गया-कांग्रेस में गये थे।

अधिवेशन के चन्द दिन पहले मुझे दमे का दौरा हो गया। मूलतान की यात्रा मे मैंने पहले-पहल महसूस किया था कि सांस की कुछ दिक्कत हो रही है। उसके पहले जाड़ों में खांसी हो जाया करती थी; पर सांस की तकलीफ मैंने कभी महसूस नहीं की थी। खांसी के कारण ही मैं नागपुर-

कांग्रेस में शरीक न हो सका था। मुलतान की यात्रा में हकीम अजमलखां के साथ ही मैं था। उन्होने देखा और कहा कि दमा हो रहा है। उन्होंने एक दवा भी दी, जिससे उस समय मै अच्छा हो गया। जब दिसम्बर की सर्दी बढ़ी तो गया में फिर दौरा हो गया, पर वही के एक हकीम की दवा से मैं शीघ्र ही अच्छा हो गया। जिस दिन देशबन्धु दास सभापति होकर गया पहुचे और जलूस निकला, मै न तो स्टेशन पर स्वागत के लिए जा सका और न जलूस ही देख सका; पर अपनी कमजोरी की हालत में ही विषय-निर्धारिणी समिति में शरीक हुआ। कुछ प्रबन्ध के काम की देख-रेख भी करता रहा। प्रबन्ध के काम का भार विशेषकर श्री अनुग्रहनारायण सिंह पर पड़ा। भोजन-विभाग की जिम्मेदारी मेरे भाईसाहब ने ली। उन्होने बड़ी खूबी से उसे निबाहा। पडाल तैयार कराने और सजाने का काम गोरखबाबू, मथुराबाबू तथा मुजफ्फरपुर के जमीदार श्री वैद्यनाथप्रसाद-सिंह ने किया। स्वयंसेवक-दल के प्रधान श्री बदरीनाथ वर्मा रहे। प्रदर्शनी का भार श्री बनारसीप्रसाद झुनझुनूवाला ने संभाला।

स्वागत-समिति का प्रबन्ध अच्छा ही हुआ; पर मेरा विचार है कि यदि कुछ और अनुभव होता तो जितना खर्च पड़ा उतना न पडता। जिस समय अधिवेशन हो रहा था, मैं डर गया था कि अन्त मे कुछ घाटा रहेगा। इसलिए सभी विभागो मे खर्च कम करने पर मै बहुत जोर देता रहा। गया-स्टेशन से सभा-स्थान प्रायः तीन मील या इससे भी अधिक की दूरी पर था। वहां से लोगों को लाने के लिए हमने बहुत-सी लारिया भाडे पर मंगा ली थी। विचार था कि सभी लोगो से लारी का भाडा लिया जायगा। इसके लिए प्रत्येक लारी पर एक आदमी टिकट के साथ रखा गया था। पर यह प्रबन्ध नही चल सका। हम भाडे मे बहुत कम वसूल कर सके पर सब लारियों का भाडा तो देना ही पड़ा। इसमे कई हजार रुपयो का नुक-सान हुआ। इसीसे विशेष डर हो गया था कि घाटा पडेगा; पर अन्त मे हिसाब होने पर कुछ बच ही गया—घाटा नही हुआ।

गया मे कांग्रेस का अधिवेशन बड़े मार्के का हुआ। पहले से ही देश मे कौन्सिल-प्रवेश की चर्चा चल रही थी। सत्याग्रह-कमिटि की रिपोर्ट ने एक होहल्ला मचा रखा था। उसपर विचार करने की बात कांग्रेस के लिए स्थगित कर दी गई थी। पंडित मोतीलालजी, हकीम अजमल खा और देशबन्धु दास—इन तीन बडे नेताओं की राय पक्की थी कि जब सत्याग्रह नहीं हो सकता है तो कौन्सिलों में जाने की इजाजत मिलनी चाहिए। किन्तु अधिकांश कांग्रेसियों का विचार मालूम होता था कि गांधीजी के दिये हुए कार्यक्रम में परिवर्तन नही करना चाहिए। इसलिए दोनों पक्षों के लोग

अपने-अपने विचारवालों को ही प्रतिनिधि चुनकर गया में भेजने का यथा-साध्य प्रयत्न करने लगे। इसी कारण श्री जयकर तथा श्री नटराजन-जैसे प्रमुख व्यक्ति भी अपने सूबे से प्रतिनिधि नही चुने जा सके। यह कोई ऐसी बात नही थी, जो चुनावो में नही हुआ करती है। हम जानते हैं कि इंगलैंड में मिस्टर बालफोर कई बरसो तक प्रधान मंत्री रहने के बाद भी चुनाव में साधारण मेम्बर नहीं चुने गये। उनकी पार्टी बुरी तरह हार खाकर अपने नेता को भी कुछ दिनों तक पार्लमिण्ट में नही देख सकी। हमारे यहां यह चीज अभी नई थी। इसलिए ऐसे व्यक्तियों के हारने से कुछ लोगों के दिल में चोट-सी लगी। उन लोगो मे मैं भी एक था।

यद्यपि श्री जयकर का विचार कौंसिल-प्रवेश के पक्ष में था और मेरा विरुद्ध, तथापि मैंने सोचा कि विचार-विरोधी होनेपर भी ऐसे विशिष्ट व्यक्ति का कांग्रेस में न आना ठीक न होगा—कांग्रेस चाहे जो भी फैसला करे, ऐसे योग्य आदमी की राय, उसीके अपने शब्दो मे, सुन लेना कांग्रेस के लिए मुनासिब होगा। उन दिनों, कांग्रेस के विधान के अनुसार, कोई आदमी—यदि वह कांग्रेस का सदस्य है तो—किसी भी सूबे के किसी भी क्षेत्र से, प्रतिनिधि चुना जा सकता था। इसलिए मैंने प्रयत्न करके श्री जयकर और श्री नटराजन को बिहार से प्रतिनिधि चुनवा दिया। इसकी सूचना दोनों को दे दी। इससे वे बहुत सन्तुष्ट हुए। कांग्रेस मे वे आये भी।

इस छोटी-सी बात को यहा इतने विस्तार से मैंने इसलिए लिख दिया कि उन दिनो के वाद-विवाद के उत्साह मे पड़कर कुछ लोगों ने यह कह दिया कि अपरिवर्तनवादियों ने अन्यायपूर्वक गांधीजी के नाम का सहारा लेकर प्रचार किया और कांग्रेस मे वोट जुटाया। कुछने तो यहातक कह दिया कि देशबन्धु दास के परिवर्तनवादी होने के कारण, सभापति होने पर भी, उनका वैसा सम्मान नही किया गया जैसा होना चाहिए था—उनके स्वागत और सेवा में भी त्रुटि की गई, क्योकि बिहार-सूबा गांधी-भक्त अपरिवर्तनवादी सूबा था। ये सब बाते मर्म को चोट पहुचानेवाली थीं। जहातक हो सका, हमने सेवा-सम्मान का प्रबन्ध किया था। उनके निवास-स्थान के प्रबन्ध के लिए श्री दीपनारायणसिंह को भार दिया गया था। इन्होने अथक परिश्रम और उत्साह के साथ काम किया था। यह ठीक है कि अपनी अस्वस्थता के कारण मैं बहुत दौड़-धूप न कर सका; पर दूसरे सभी लोग दिन रात-काम करते रहे। सभापति की तथा उनकी पार्टी की पूरी खातिरदारी हुई। किसी तरह की त्रुटि नहीं होने पाई।

देशबन्धु दास का भाषण बहुत बड़ा और मार्के का था। पर उसमें कौंसिल-प्रवेश पर बहुत जोर दिया गया था। विषय-निर्वाचिनी समिति में

कौंसिल-प्रवेश पर बहस करने का प्रस्ताव पेश किया गया। सभापति ने कहा कि उनके विचार उनके भाषण में दिये गए हैं, इसलिए उनका भाषण हो जाने के बाद ही इस विषय पर विचार किया जाय, ताकि प्रतिनिधियो को उनके विचार जान लेने का मौका मिल जाय और तब वे अपनी राय कार्यकारिणी समिति मे दे। इसलिए शुरू मे सभापति ने इस बहस की इजाजत नही दी। पीछे तो कई दिनो तक बहस होती रही, जिसमे दोनो पक्षों के लोगों ने खूब भाग लिया। रात या सवेरे के समय, जब विषय-निर्वाचिनी की बैठक से फुर्सत रहती, प्रतिनिधियो की अलग-अलग सभाए हुआ करतीं, जिनमे लोग अपने-अपने विचारो की पुष्टि करते। बहस बहुत गरमागरम होती।

विषय-निर्वाचिनी समिति ने कौसिल-प्रवेश की बात को बहुमत से नामंजूर कर दिया। इसलिए यह बात एक संशोधन के रूप मे ही खुली कांग्रेस के सामने आई। कांग्रेस मे भी वैसी गरमागरम बहस कई दिनो तक चलती ही रही। कांग्रेस के लिए जो समय निर्धारित था, उससे दो-तीन दिन अधिक समय लगा। मैंने भी खुली सभा मे कौसिल-प्रवेश का जोरो से विरोध किया। हमारे विचार के नेता थे श्री राजगोपालाचारी। वह भी उन दिनो दमा से रोग-ग्रस्त थे; पर विषय-निर्वाचिनी समिति और कांग्रेस में उन्होंने अद्भुत परिश्रम और चमत्कार से अपने पक्ष का समर्थन किया। श्री श्रीनिवास अयगर ने समझौते के लिए एक संशोधन पेश किया। वह नामजूर हुआ। अन्त में जब मूल प्रस्ताव पर सम्मति ली गई, तो बहुत बड़े बहुमत से कौसिल-प्रवेश-सम्बन्धी प्रस्ताव नामजूर हो गया। शायद कौसिल-प्रवेश के पक्ष में एक-तिहाई और विपक्ष मे दो-तिहाई प्रतिनिधियों के मत आये।

यह समझना भूल होगी कि सिविल-डिस-ओबिडियन्स-एनक्वायरी-कमिटी ने अथवा गया-कांग्रेस ने केवल एक ही विषय पर विचार किया या प्रस्ताव पास किया था। कमिटी की रिपोर्ट ने असहयोग के पूरे कार्यक्रम पर, जिसमें सत्याग्रह और करबन्दी शामिल है, विचार किया था। सभी प्रस्तुत विषयों पर उसने राय दी थी। पर उन विषयो के सम्बन्ध मे इतना मतभेद नही था, इसलिए वे तह मे पड गये। गया-कांग्रेस ने भी उन विषयों पर प्रस्ताव स्वीकृति किया। सरकारी स्कूलो और अदालतो के बहिष्कार को कायम रक्खा। स्वदेशी-प्रचार और खादी-प्रचार पर जोर दिया गया। एक प्रस्ताव इस आशय का भी उपस्थित किया गया था कि सभी प्रकार के अंगरेजी मालों का बहिष्कार किया जाय, और इस विचार से, बहिष्कृत किय जानेवाले मालों की सूची बनाने के लिए, तथा बहिष्कार के उपाय निर्धारित करने के लिए, एक कमिटी बनाई जाय। यह प्रस्ताव विषय-निर्धारिणी

मे पास हो गया था; पर कांग्रेस ने इसे बहुमत से नामंजूर कर दिया; क्योंकि यह अव्यावहारिक बताया गया और इसमें हिंसात्मक वृत्ति के जाग्रत होने का भय था।

एक बहुत महत्त्व का दूसरा प्रस्ताव यह पास हुआ कि उस दिन के बाद ब्रिटिश गवर्नमेंट, स्वयं अथवा भारतीय व्यवस्थापिका सभा की मंजूरी से, जो कुछ कर्ज लेगी, उसका देनदार स्वतन्त्र भारत नहीं होगा; क्योंकि ब्रिटिश सरकार मनमाना खर्च करके भारत के नाम पर कर्ज लेती है और व्यवस्थापिका सभाएं भारत का प्रतिनिधित्व नहीं करतीं। इस प्रस्ताव में उस तिथि के पूर्व के कर्जों को स्वीकार कर लिया गया था। इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में भी मतभेद था; पर यह भी बहुमत से पास हुआ था—यद्यपि यह विषय नया था और प्रस्ताव उपस्थित होने के पहले इसपर देश में कोई चर्चा नहीं हुई थी।

गया-कांग्रेस ने सत्याग्रह जांच-कमिटी की रिपोर्ट पर एक प्रस्ताव और भी मंजूर किया कि व्यक्ति को अपने बचाव के लिए वह सभी अधिकार प्राप्त हैं, जो कानून से उसको मिले हैं—अर्थात् कानूनन हिंसात्मक बचाव जहांतक जायज है, कांग्रेस भी उसे मंजूर करती है। एक दूसरा प्रस्ताव इस आशय का भी स्वीकृत हुआ कि देश को सत्याग्रह के लिए तैयार किया जाय तथा इसके लिए पच्चीस लाख रुपये और पचास हजार स्वयंसेवक जुटाये जायं। इस तरह, गया-कांग्रेस में कई प्रस्ताव पास हुए। जहांतक मैं जानता हूं, कांग्रेस का इतना लम्बा अधिवेशन दूसरा नहीं हुआ है। पर कौंसिल-सम्बन्धी मतभेद के कारण और सब बातें गौण पड़ गईं।

कांग्रेस के अधिवेशन के साथ-साथ गया में खिलाफत-कान्फ्रेन्स और जमीअत-उल-उलेमा के अधिवेशन भी बड़े समारोह एवं उत्साह के साथ हुए। खिलाफत-कमिटी ने भी कांग्रेस-कमिटी के साथ ही एक सत्याग्रह-जांच-कमिटी बनाई थी। उसने भी देश में दौरा करके अपनी रिपोर्ट दी थी। वहां भी वही मतभेद था, जो कांग्रेस में—विशेषकर कौंसिलों के सम्बन्ध में। इन दोनों संस्थाओं ने भी कौंसिल का बहिष्कार जारी रक्खा। पर उस समय तक खलीफा और तुर्कों की हालत में बहुत परिवर्तन हो चुका था। तुर्कों ने ग्रीस को हराकर बड़ी फतह हासिल कर ली थी। उन्होंने यह भी निश्चय कर लिया था कि उनके सुलतान, जो खलीफा भी थे, तख्त से उतार दिये जायं। इस सम्बन्ध में भारत के मुसलमानों में बड़ी सनसनी थी। पर जहांतक मैं समझ सकता हूं उन्होंने तुर्कों की इस कार्रवाई का समर्थन ही किया; क्योंकि आशा यह की जाती थी कि ऐसे सुलतान का—जो दूसरों के हाथों में कठपुतली बनकर देश और इस्लाम को हानि पहुंचाता था—पदच्युत

होना ठीक ही है, और उसकी जगह नये और जबरदस्त खलीफा चुने जायंगे, जो इस्लाम के तीर्थों और पवित्र स्थानों की रक्षा करने की इच्छा तथा शक्ति दोनों रखते होंगे। तुर्कों ने अपनी शक्ति बता दी थी, इससे यह आशा होती थी कि नये खलीफा अपने कर्तव्यों का ठीक पालन करेंगे। पर पीछे कुछ दिनों के बाद तुर्कों ने खलीफा के पद को ही अपने यहां से उठा दिया और तुर्क प्रजातन्त्र कायम कर दिया। तुर्क प्रजातन्त्र में प्रधान चुना जाया करेगा और वही प्रथा अबतक जारी है।

मुसलमानों की दूसरी बात अरब की आजादी से सम्बन्ध रखती थी। अरब और तुर्क दोनों ही धर्म में मुसलमान हैं; पर दोनों एक जाति के नही हैं। तुर्कों ने अरब पर अपना राज्य-शासन कायम कर लिया था। चूंकि वे भी मुसलमान थे, इसलिए दूसरे मुसलमान उनके सुलतान को ही खलीफा मान लेते थे। जर्मन-युद्ध मे जब जर्मनी से मिलकर तुर्की लड़ने लगा, तो अगरेजो ने तुर्कों के खिलाफ अरबों को उभाड़ा और अरब देश के लोगों को तुर्कों के शासन से मुक्त कर दिया। पर वे एक बार ही स्वतन्त्र नही हुए। मुसलमान चाहते थे कि अरब स्वतन्त्र होकर रहे, पर खलीफा का चुनाव सबकी राय से हो। ऐसा नही हो सका। पीछे तो तुर्कों ने खलीफा का पद ही उठा दिया। अरब की देख-रेख का भार (mandate) इंगलैंड और फ्रास को मिल गया। इस तरह अरब लोग अभी तक पूरे स्वतन्त्र नही हुए है—यद्यपि दिखलाने के लिए कुछ अधिकार उनके अमीर के हाथों में है।

इन्हीं कारणों से, कुछ दिनों के बाद, भारत में खिलाफत का आन्दोलन ठण्डा पड़ गया। यद्यपि खिलाफत-कमिटी बहुत दिनों तक कायम रही, पर वह नाममात्र के लिए ही रह गई। गया में होनेवाले अधिवेशन के समय तक ये सब प्रश्न अभी इस तरह साफ नही हुए थे, इसलिए वहां भी बहुत उत्साह से खिलाफत-कान्फ्रेंस हुई और उसने कांग्रेस का साथ दिया। यदि यह कहा जाय कि उसने कांग्रेस से अधिक जोश और जीवट दिखलाया, तो अत्युक्ति न होगी। इसका विशेष कारण था उस समय तुर्कों के प्रति ब्रिटिश सरकार का रुख और उसकी कार्रवाई।

: ५० :

स्वराज्य-पार्टी का जन्म

पहले से ही दोनों दलों में (परिवर्तनवादियों और अपरिवर्तनवादियों मे) काफी खींचतान हो गई थी। कांग्रेस का अधिवेशन समाप्त होते ही अखिल भारतीय काग्रेस-कमिटी के सभापतित्व से देशबन्धु दास ने इस्तीफा दे दिया। जो लोग कौसिल-प्रवेश के पक्ष मे थे, उन्होने मिलकर स्वराज्य-पार्टी की स्थापना की घोषणा कर दी। उसके प्रमुख नेताओं मे देशबन्धु दास, पं० मोतीलाल नेहरू, हकीमसाहब, श्री विट्ठलभाई पटेल, श्री केलकर प्रभृति थे। देशबन्धु दास उसके प्रमुख नायक और पडित मोतीलाल नेहरू मन्त्री बने। जो अपरिवर्तनवादी थे, उन्होंने आग्रह किया कि देशबन्धु दास सभापति बने रहें; पर उन्होंने यह स्वीकार नही किया। उनका कहना था कि बहुमत उनके पक्ष में नही है, इसलिए वह सभापति नही रह सकते—स्वराज्य-पार्टी द्वारा वह काग्रेस का बहुमत अपने पक्ष मे लाने का प्रयत्न करेगे, इसलिए उनका सभापति रहना मुनासिब नही होगा, उनके काम मे भी बाधा होगी।

जो वर्किंग-कमिटी बनाई गई, वह भी अधिकाश अपरिवर्तनवादियों की ही थी। मैं प्रधान मन्त्री चुना गया। यह बोझ मेरे लिए बहुत भारी था, पर उसे वहन करना ही पड़ा; क्योंकि हम सभीने मिलकर सभापति की सम्मति नही मानी थी, और अब हमारा धर्म था कि प्रजातन्त्र की परिपाटी के अनुसार उसके चलाने का भार संभाले। जो हो, गया मे देशबन्धु दास का इस्तीफा मंजूर नही हुआ। उसपर पुनः विचार करने के लिए उनसे आग्रह करने का एक प्रस्ताव पास हुआ; पर उन्होने वहीपर साफ कह दिया कि वह पुनर्विचार के लिए तैयार नही है।

नई कौसिलों के चुनाव १९२३ के नवम्बर में होनेवाले थे। इसलिए स्वराज्य-पार्टी का निश्चय हुआ कि उसके पहले कांग्रेस में बहुमत प्राप्त कर लेना और तब कांग्रेस की ओर से चुनाव के लिए लड़ना चाहिए। हम जो अपरिवर्तनवादी थे, सोचते थे कि कांग्रेस ने इस बात का निपटारा कर दिया है, अब केवल रचनात्मक कार्यक्रम पर ही जोर देना चाहिए। पर ऐसा होता नही दिखाई पड़ता था; क्योकि कौसिल-प्रवेश-सम्बन्धी वाद-विवाद तो चलता ही रहा। अखिल भारतीय कमिटी की जो बैठक हुई, उसमें तय

हुआ कि रचनात्मक कार्यक्रम पर जोर लगाया जाय, काग्रेस के निश्चयानुसार सत्याग्रह के लिए पच्चीस लाख रुपये जमा किये जायं और पचास हजार स्वयसेवक भरती किये जाय, ताकि सत्याग्रह आरम्भ किया जा सके। पर यह शान्ति से होनेवाला कहां था! कांग्रेस के अधिवेशन के बाद ही कुछ प्रमुख काग्रेसी जेल से छूटे, जिनमे मौलाना अबुल कलाम आजाद भी थे। बिहार के नेताओं मे मौलवी मुहम्मद शफी और बाबू श्रीकृष्णसिंह भी इसी समय जेल से निकले। मौलाना आजाद जेल से निकलते ही इस फिक्र मे लग गये कि दोनो दलो मे किसी तरह समझौता कराया जाय। गया-काग्रेस के बाद वह वर्किंग कमिटी के मेम्बर चुने गये थे। उन्होंने वर्किंग कमिटी की बैठक में समझौते की बात पेश की। वर्किंग कमिटी ने उसे मंजूर कर लिया। स्वराज्य-पार्टी के सभी नेताओ मे अभी उनकी पूरी बाते नही हो पाई थी; पर जहांतक उनको मालूम हुआ था—पार्टीवालो को भी वे बाते मंजूर थी। इसलिए निश्चय हुआ कि फरवरी के अन्तिम सप्ताह मे वर्किंग कमिटी और भारतीय कमिटी की बैठक प्रयाग में करके इसपर विचार किया जाय। मौलानासाहब, चूकि वह इस समझौते को पूरा कराना चाहते थे, वर्किंग कमिटी से अलग हो गये, जिसमे वह निरपेक्ष भाव से इसके लिए काम कर सके।

फरवरी के अन्त मे प्रयाग मे सभा हुई। देशबन्धु दास ने सभापति का आसन ग्रहण किया। उस सभा मे समझौते का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। उसकी शर्तें ये थीं—१. कौसिल-सम्बन्धी प्रचार ३० अप्रैल तक बन्द रहे, २. दोनो पक्ष अपने-अपने कार्यक्रम के दूसरे मदो के सम्बन्ध मे जो काम करना चाहे करे और एक-दूसरे के काम मे बाधा न डाले, ३. अपरिवर्तनवादी गया-काग्रेस के निश्चय के अनुसार सत्याग्रह के लिए रुपये और स्वयसेवक जुटावे, ४. परिवर्तनवादी, अपरिवर्तनवादियो के साथ, रचनात्मक काम तथा दूसरे ऐसे काम के लिए, जिसे दोनो मानते है, रुपये जमा करने और कार्यकर्त्ता जुटाने में सहयोग करेगे, ५. ३० अप्रैल के बाद फिर दोनो पक्ष, जैसा मुनासिब समझे, अपने कार्यक्रम के अनुसार काम करे।

इसी निश्चय के अनुसार श्री राजगोपालाचारी के साथ मैंने भिन्न-भिन्न सूबों का दौरा किया। इसके पहले मै अपने सूबे मे ही घूमा था। दूसरे सूबो का बहुत ज्ञान नही था। इस दौरे से अनेक स्थानो मे जाने का और वहा के कार्यकर्त्ताओ से विशेष परिचित होने का सुअवसर मिला। रुपये भी जमा किये गए। रचनात्मक कार्यक्रम पर विशेष जोर दिया गया। राजाजी ही भाषण किया करते थे। राजाजी-जैसे चतुर, प्रतिभाशाली और कुशल वक्ता कम ही हैं। वह अपने भाषणों में शोरगुल नही मचाते, न हाथ-पैर पीटते है। आहिस्ता-

आहिस्ता नरम शब्दों में अपनी युक्तियों को अनूठी तरह से श्रोताओं के सामने रखते है और उनको मोह लेते है। मैने सोचा कि मै इनके बाद क्या भाषण कर सकूगा, चुप रहना ही अच्छा होगा। उनके भाषण के प्रभाव को मेरा भाषण कम कर देता। पर लोग चाहते थे कि मै भी कुछ कहूं। इससे बचने की एक अच्छी युक्ति भी निकल आई। राजाजी अगरेजी मे ही भाषण करते; क्योंकि वह हिन्दी नही बोल सकते थे। मैने उनके भाषणो का भाषान्तर करने का काम उठा लिया। ऐसा यदि न करता तो हर सभा मे भाषान्तरकार खोजना पडता और वह भी न मालूम ठीक भाषान्तर करता या नही। मै उनकी विचार-शैली से खूब परिचित हो गया था। उनके बोलने के तरीके को भी खूब समझ गया था। इसलिए मैने देखा कि एक पथ दो काज हो जाता है—उनके भाषण का भाषान्तर हो जाता है और मै भाषण करने से बच भी जाता हू। वह एक वाक्य कहते और मै उसका भाषान्तर कर देता। इस प्रकार मेरे काम मे भी सुविधा होती और लोग सब बाते ठीक-ठीक समझ लेते। प्राय सभी सभाओं मे, जहा हिन्दी मे भाषान्तर की जरूरत पड़ती, मैंने यही किया। भाषान्तर का काम कठिन है—विशेषकर तात्कालिक आशु भाषान्तर का—जब कोई वक्ता धारा-प्रवाह बोलता जाता हो। पर मै इसमे दक्ष हो गया। मैने कलकत्ता हाइकोर्ट मे देखा था कि एक भाषान्तरकार गवाहो के इजहार मे, बैरिस्टरो के प्रश्नो और गवाहो के उत्तरो का ऐसा चमत्कारपूर्ण भाषान्तर करता था कि केवल शब्दार्थ ही नही, बल्कि प्रश्नों के पूछने के लहजे को भी भाषान्तर मे ला देता था।

कई बरसो के बाद, जब मै यूरोप गया और वहा युद्ध-विरोधी एक अन्तरराष्ट्रीय कान्फ्रेन्स मे शरीक हुआ, तो वहा भी एक चमत्कारी भाषान्तर-कार देखा। वह जर्मन था। अभी उसकी अवस्था चौबीस-पच्चीस साल से अधिक नही थी। पर वह अगरेजी, फ्रेच, जर्मन और एस्परेण्टो खूब जानता था। जब कोई वक्ता इन चार मे से किसी भी भाषा मे भाषण करता तो वह शीघ्र लिपि से सारे भाषण को लिखता जाता था। जैसे ही भाषण समाप्त होता, वह खड़ा हो जाता और शीघ्र-लिपि द्वारा लिखित अपनी प्रति को अपने हाथो मे लेकर बाकी तीन भाषाओ मे भाषान्तर कर देता। मै यह तो नही कह सकता कि भाषान्तर कहातक ठीक होता, क्योंकि अगरेजी के सिवा मै दूसरी तीन भाषाओ मे से एक भी नही जानता था; पर जैसी शुद्ध अगरेजी मे वह भाषान्तर करता, उससे मैने अनुमान कर लिया कि अन्य भाषाओ मे भी वह शुद्ध ही बोलता होगा। और, जब चारो भाषाओ में वह धारा-प्रवाह शुद्ध भाषण कर सकता था, तो कोई कारण नही कि उसका भाषान्तर शुद्ध न होता हो। उससे परिचय हो जाने पर मैने दरियाफ्त

किया, तो मालूम हुआ कि वह संस्कृत भी जानता था और किसी संस्कृत ग्रन्थ का जर्मन में अनुवाद करने में उस समय लगा था। मैं यहां भाषान्तर के फेर में बहुत बहक गया!

उस दौरे से रचनात्मक कार्यक्रम की तरफ लोगों की कुछ अभिरुचि तो हुई; पर काम बहुत आगे न बढा। दो-तीन महीनों मे उसका परिणाम कुछ दिखाया भी नही जा सकता था। रुपये भी करीब तेरह लाख के जमा हुए, पर पूरे पच्चीस लाख नही हुए। स्वराज्य-पार्टी को मौका मिला। उसने हमारे हार मानने की बात पेश की—अपने कार्यक्रम को स्वीकृत कराने का प्रयत्न भी किया।

: ५१ :

स्वराज्य-पार्टी के साथ समझौते का निष्फल प्रयत्न

एक तरफ हम उक्त दौरे मे व्यस्त थे, दूसरी ओर हिन्दू-मुस्लिम झगड़े बढते जा रहे थे। मुलतान का जिक्र ऊपर आ चुका है। वहा अभी तक कुछ-न-कुछ मनोमालिन्य चला ही जा रहा था। इसलिए उसी वर्किंग कमिटी में, जिसमे मौलानासाहब जेल से छूटकर शरीक हुए थे, निश्चय किया गया था कि पडित मालवीयजी के साथ मौलाना मुलतान जायं और वहा के झगड़े को निपटाने का प्रयत्न करें। क्षतिग्रस्त लोगों की सहायता के लिए कांग्रेस की ओर से दस हजार रुपये भी मंजूर किये गए थे। पर अब झगड़ा केवल मुलतान में ही नही रह गया। अमृतसर में भी हालत खराब हो गई। हम अपने दौरे मे पंजाब की कई जगहो मे गये। देशबन्धु दास, पडित मोतीलाल नेहरू तथा हकीम अजमल खा भी बराबर कोशिश करते रहे। उन्होंने डाक्टर अंसारी प्रभृति के साथ मिलकर इस बात की कोशिश की कि कोई हिन्दू-मुस्लिम समझौता हो जाय, जो सारे देश की बिगड़ती फिजां को सुधार सके। पर इसमें वे कामयाब नही हुए।

पंजाब के दौरे के दरमियान लाहौर मे देशबन्धु दास से, राजाजी की और मेरी, मुलाकात हुई। वहापर देशबन्धु दास ने स्थायी समझौते के लिए यह प्रस्ताव पेश किया कि कांग्रेस के काम कई विभागो में बाट दिये जायं और प्रत्येक विभाग के चलाने का भार ऐसे व्यक्तियों पर दिया जाय, जो उसमें विशेष दिलचस्पी रखते हों—जैसे, राष्ट्रीय शिक्षा, खादी-प्रचार, कौसिल-विभाग, विदेशों में प्रचार, मजदूर-संगठन, अछूतोद्धार, सत्याग्रह इत्यादि। इसके लिए पांच-छः करोड़ की रकम भी जमा की जाय।

पंजाब से हम लोग दौरे में पूना गये। वहां वर्किंग कमिटी की बैठक हुई। उसे यह प्रस्ताव अव्यावहारिक मालूम पड़ा। उसने इसे नामंजूर किया। उसी समय देशबन्धु दास प्रभृति का तार आया कि पंजाब की स्थिति पर विचार करने के लिए वर्किंग कमिटी की बैठक प्रयाग में तुरन्त की जाय। ३० अप्रैल तक का हमने कार्यक्रम बना लिया था। इसलिए उस काम को स्थगित करके वर्किंग कमिटी की बैठक इतनी जल्दी में करना संभव न हुआ। पर राजाजी वहां भेज दिये गए कि जो कुछ मुनासिब हो,

वह करें और अगर आवश्यक समझे तो वर्किंग कमिटी की भी बैठक करें। राजाजी वहा गये। देशबन्धु दास प्रभृति से उनकी बाते हुई। पर बाते पूरी नही हो पाई; इसलिए कुछ बाते दिल्ली मे हकीम अजमल खा के साथ हुई। इस प्रकार जितनी बाते हुई, उनका नोट बनाकर राजाजी ने हकीम-साहब को दे दिया कि वह देशबन्धु दास और पडित मोतीलालजी की राय लें। राजाजी उस नोट की एक प्रति लेकर बम्बई में वर्किंग कमिटी के दूसरे लोगो से स्वय मिलने गये। यह प्रस्ताव न तो पंडित मोतीलालजी को मजूर हुआ, न सरदार वल्लभभाई और सेठ जमनालालजी को। पर इसके सम्बन्ध मे कुछ ऐसे बयान निकले और ऐसा प्रचार किया गया, मानो अपरिवर्तन-वादी लोगो ने ही इसे नामजूर कर दिया। श्रीमती सरोजिनी नायडू भी इसी कारण, अपरिवर्तनवादियो से, जिनमे वह भी एक थी, कुछ नाराज हो गई। उस समय के पत्रो ने भी कडी टिप्पणिया लिखी। पडित मोतीलालजी ने तो स्वराज्य-पार्टी की ओर से प्रचार का काम शुरू कर दिया। मई के अन्त मे होनेवाली अखिल भारतीय कमिटी की बैठक मे, जहा समझौते की बात पर विचार होनेवाला था, अपने न जाने की घोषणा भी कर दी तथा अपने अनुयायियो को भी जाने से मना कर दिया।

देश मे आपस के इस झगडे से लोग खिन्न हो रहे थे। कई प्रान्तीय कमिटियो ने भी राय दी कि कोई समझौता हो जाना अच्छा होगा। अपरि-वर्तनवादियो मे डाक्टर असारी और श्रीमती नायडू समझौते के पक्षपाती थे। पंडित जवाहरलाल नेहरू——जो गया-काग्रेस के समय मे जेल मे थे, पर अब छूट चुके थे——समझौता चाहते थे। इसलिए एक प्रकार से समझौते के पक्ष मे अनुकूल वायुमंडल तैयार हो गया। पीछे स्वराज्य-पार्टी के लोगो ने भी बम्बई मे होनेवाली अखिल भारतीय काग्रेस-कमिटी की बैठक मे शरीक होने का विचार प्रकट कर दिया और शरीक हुए भी। यह बैठक मई महीने के अन्त मे हुई। वर्किंग कमिटी की ओर से यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि काग्रेस का विशेष अधिवेशन किया जाय——यदि स्वराज्य-पार्टी के लोग उसके निश्चय को मानने के लिए तैयार हों। देशबन्धु दास ने, जो सभापतित्व कर रहे थे, कह दिया कि वह इसका वादा नही करेंगे कि स्वराज्य-पार्टी विशेष अधिवेशन के निश्चय के अनुसार ही काम करेगी। इसपर वर्किंग कमिटी ने अपना प्रस्ताव वापस ले लिया। उपस्थित सदस्यों की ओर से कई प्रस्ताव उपस्थित किये गए, जिनमे एक के प्रस्तावक और समर्थक श्री पुरुषोत्तमदास टडन और पडित जवाहरलालजी थे। उसका आशय यह था कि देश मे चूंकि ऐसे लोग भी है, जो चाहते है कि कौंसिलों के चुनाव मे भाग लिया जाय, इसलिए आपस के झगड़े को मिटाने के लए

गया-कांग्रेस के आदेशानुसार चुनाव के विरुद्ध प्रचार न किया जाय। कुछ लोगों ने यह प्रश्न उठाया कि गया-कांग्रेस के निश्चय के विरुद्ध होने के कारण यह प्रस्ताव अवैध है। पर सभापति देशबन्धु ने इसको नहीं माना और प्रस्ताव को वैध करार दिया। यह प्रस्ताव थोड़े बहुमत से स्वीकृत हो गया। हम लोग, जो गया मे वर्किंग कमिटी के मेम्बर चुने गये थे, इस्तीफा देकर अपने पद से हट गये। देशबन्धु दास की राय के मुताबिक एक नई वर्किंग कमिटी चुनी गई। उसमे ऐसे लोग थे, जो न तो कट्टर अपरिवर्तनवादी थे और न कट्टर परिवर्तनवादी अर्थात् जो समझौता चाहते थे। डाक्टर असारी सभापति बने। पडित जवाहरलालजी मत्री चुने गये।

राजाजी इस प्रस्ताव से बहुत असन्तुष्ट थे। उनका कहना था कि इस तरह कांग्रेस आत्महत्या कर लेगी। उसे या तो कौसिलो मे जाने की सीधे तौर पर अनुमति देनी चाहिए और चुनाव के लिए लड़ना चाहिए, नहीं तो चुनाव का बहिष्कार करना चाहिए और इस बहिष्कार के लिए जनता मे पूरा प्रचार करना चाहिए। अखिल भारतीय कमिटी इन दोनो मे से एक भी नही करती थी। वह स्वराज्य-पार्टी को प्रचार का हक देती, चुने जाने का भी मौका देती, उनपर किसी प्रकार का कांग्रेस का नियत्रण भी नही रखती, और दूसरी ओर चुनाव के विरुद्ध विरोधियो का मुह खोलना भी रोक देती है। इसलिए यह प्रस्ताव मान्य नही है—विशेष करके जब गया-कांग्रेस ने कौसिल-विरोधी प्रचार का आदेश दिया है। इसमे शक नही कि अधिकाश समाचार-पत्र कौसिल के पक्ष मे थे। कांग्रेस मे भी बहुतेरे लोग इस बहस से ऊब गये थे। बहुतेरो को यह समझौता अच्छा लगा। नई वर्किंग कमिटी ने घोषणा निकाली कि गया-कांग्रेस का प्रस्ताव, जिसके द्वारा कौसिलो का बहिष्कार किया गया था, कायम है—केवल उसका प्रचार ही इस प्रस्ताव द्वारा रोका गया है। यह राय हमने बिहार-प्रान्तीय कमिटी की ओर से भी दी। पर दूसरे प्रान्तो की कई कमिटियो ने इसके विरुद्ध प्रस्ताव स्वीकार किया। उन्होने इस प्रस्ताव को गया के निश्चय के विरुद्ध समझकर नही माना।

बम्बई की उक्त बैठक के बाद देश मे फिर इसपर जोरो से बहस चलने लगी। जिस वाद-विवाद को रोकने के लिए बम्बई का प्रस्ताव किया गया था, वह उसी तीव्रता के साथ जारी रहा। देशबन्धु दास बम्बई से मद्रास प्रान्त मे दौरा करने के लिए गये। कई स्थानों पर उन्होने बहुत ही कड़वे और उत्तेजक भाषण किये। इन्ही भाषणो मे से एक मे उन्होने लार्ड रीडिंग के साथ समझौते की बात का इशारा करते हुए, कहा था कि उस समय के सत्याग्रह से गवर्नमेण्ट दब गई थी—उसने झुक करके सुलह करनी चाही

थी—मेरे पास शर्तें भेजी थीं—मैंने 'हेडक्वार्टर्स' अर्थात् गांधीजी को भेज दी थीं; पर उन्होंने सब बातें गड़बड़ा दीं, और अब हमें केवल चर्खा चलाने को कहते हैं। इस विषय को लेकर फिर पुरानी बातें उभड़ीं। श्रीयुत कृष्णदास ने उस समय के उन तारों को—जो गांधीजी, पंडित मालवीयजी और देशबन्धु दास ने एक-दूसरे को भेजे थे—छाप दिया। पंडित श्यामसुन्दर चक्रवर्ती, पंडित मालवीयजी और मौलाना आजाद ने—जिन्होंने उस बात-चीत मे भाग लिया था—अपने-अपने बयान अखबारों में दिये।

सारे देश मे कटुतापूर्ण जोरदार वाद-विवाद नये सिरे से चल पड़ा। नतीजा यह हुआ कि वर्किंग कमिटी को कुछ लोगों ने फिर अखिल भारतीय कमिटी की बैठक करने के लिए मजबूर किया। एक बैठक नागपुर में जून के अन्त में हुई। वहांपर यह निश्चय हुआ कि कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन किया जाय, जहां इस कौंसिल के प्रश्न का निपटारा किया जा सके। वहां एक प्रस्ताव वर्किंग कमिटी की ओर से पेश किया गया, जिसका आशय यह था कि जिन कमिटियों ने बम्बई की अखिल भारतीय कमिटी के निश्चय के विरुद्ध आवाज उठाई है और कांग्रेस के अनुशासन को भंग किया है, उन-पर अनुशासन की कार्रवाई की जाय। इन कमिटियों में सबसे प्रमुख स्थान तामिलनाड कमिटी का था और इस प्रस्ताव का लक्ष्य विशेष करके श्रीराजगोपालाचारी थे। इसपर बहुत गरमागरम बहस हुई। कहा जाता था कि उन्होंने अखिल भारतीय कमिटी के प्रस्ताव के प्रतिकूल काम किया है। हम लोग अखिल भारतीय कमिटी के प्रस्ताव को स्वयं कांग्रेस के निश्चय के प्रतिकूल मानते थे। इसलिए हमारा कहना था कि उन्होंने कांग्रेस के आदेश का ही पालन किया है और अखिल भारतीय कमिटी ने निरंकुशता से काम लिया है। बहस रात तक चलती रही। मुझे राजाजी के बचाव में भाषण करना पड़ा। यद्यपि मैं १९११ से बराबर अखिल भारतीय कमिटी का सदस्य रहता आया था, तथापि मै बहुत कम अवसरों पर वहां बोला करता था। सत्याग्रह-कमिटी की रिपोर्ट पर बहस छिड़ने और गया-कांग्रेस के समय को छोड़कर मुझे याद नहीं है कि उसके पहले और कही काग्रेस में या अखिल भारतीय कमिटी में कभी भी मैं बोला हूं। गया मे मेरे भाषण हिन्दी में ही हुए थे। नागपुर में अंगरेजी में बोलना उपयोगी मालूम पड़ा; क्योंकि वहां दक्षिण भारत और दूसरे अहिन्दी-भाषी प्रतिनिधियों को ही अधिक समझाने की जरूरत थी। राजाजी स्वयं बहुत बोलना नहीं चाहते थे। मैंने शायद वहां पहली बार अंगरेजी में भाषण किया। लोगों पर प्रभाव अच्छा पड़ा। श्री सत्यमूर्ति, जो स्वराज्य-पार्टी के बड़े हिमायती और राजाजी के पक्ष के विरोधी थे, मेरे पास आये और मेरे भाषण के लिए

उन्होंने बधाई देते हुए कहा कि मैं नहीं जानता था कि आप अंगरेजी में इतना अच्छा बोल सकते है। नतीजा यह हुआ कि प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया। निन्दात्मक प्रस्ताव गिर जाने पर वर्किंग कमिटी ने इस्तीफा दे दिया। नई कमिटी बनी। हम लोग फिर वर्किंग कमिटी में आ गये। श्री वेंकटपय्या सभापति हुए। श्री गोपाल कृष्णय्या मन्त्री बने। वर्किंग कमिटी के जिम्मे विशेष अधिवेशन के स्थान चुनने का काम भी दिया गया। कुछ दिनों के बाद उन्होंने निश्चय किया कि वह दिल्ली मे हो। अखिल भारतीय कमिटी ने मौलाना अबुल कलाम आजाद को विशेष अधिवेशन का सभापति चुन लिया।

: ५२ :

झंडा-सत्याग्रह और गांधी-सेवा-संघ का जन्म

दिल्ली के विशेष अधिवेशन के सम्बन्ध मे कुछ कहने के पहले नागपुर-झण्डा-सत्याग्रह का जिक्र जरूरी है। राष्ट्रीय सप्ताह के उपलक्ष मे १९२३ की तेरहवी अप्रैल को राष्ट्रीय झण्डे के साथ वहा जलूस निकाला गया। उसे मध्यप्रान्त की सरकार ने जबलपुर और नागपुर मे सिविल लाइन्स में जाने से रोक दिया। हुक्म न मानने पर पडित सुन्दरलाल प्रभृति को जबलपुर मे गिरफ्तार भी कर लिया। इससे जनता मे बहुत रोष पैदा हुआ। सत्याग्रह करने का विचार होने लगा।

सभी बड़े-बडे नेता सत्याग्रह के प्रतिकूल थे। उनका विचार था कि यह कौसिल के कार्यक्रम को नीचा दिखलाने के लिए अपरिवर्तनवादियो का स्वाग है। जो हो, नागपुर मे पहली मई से सत्याग्रह आरम्भ हो गया। सेठ जमनालालजी ने उसका नेतृत्व करना आरम्भ कर दिया। सत्याग्रह का रूप यह हुआ कि कुछ सत्याग्रही राष्ट्रीय झण्डे लेकर, जलूस बनाकर, सिविल लाइन्स की ओर जाना चाहते। एक स्थान था, जहा सरकार की ओर से उन्हे रोक दिया जाता और उनके न मानने पर उनको गिरफ्तार कर लिया जाता। यही क्रम प्रतिदिन चलता। बहुतेरे लोग इस प्रकार गिरफ्तार होकर जेलखानो मे चले गये। सत्याग्रह की गोहरत सारे देश में फैली। सभी जगहो से सत्याग्रह करने के लिए स्वयंसेवक नागपुर पहुंचने लगे। कुछ दिनो के बाद सेठ जमनालालजी भी गिरफ्तार कर लिये गए। तब सरदार वल्लभभाई नागपुर आ गये। उन्होंने नेतृत्व ग्रहण किया। मैने बिहार में स्वयसेवकों का सगठन आरम्भ करके उनको नागपुर भेजना शुरू कर दिया। मैं भी उनके साथ कई बार नागपुर गया। सत्याग्रह के कारण देश-भर मे हलचल मच गई। अब अनुमान होने लगा कि सरदार वल्लभभाई भी गिरफ्तार कर लिये जायगे। इसी कारण मेरा वहा जाना और भी आवश्यक हो गया।

इस प्रकार सारे देश से हजारों सत्याग्रही वहां गये और गिरफ्तार हुए। परिस्थिति गरुआती गई। श्री विट्ठलभाई पटेल, जो स्वराजी थे, वहां आकर सरदार की मदद करने लगे। सरकार ने भी सोचा कि यह सत्याग्रह बढ़ने

देना उचित नहीं है। इसलिए श्री विट्ठलभाई पटेल से कुछ बातें हुईं। एक दिन झण्डे के साथ-साथ जलूस को सिविल लाइन्स की ओर से जाने देकर सत्याग्रह बन्द कर दिया गया। मैं उस समय नागपुर में था। आखिरी दिन का जलूस बड़ी शान से निकला। बहुत लोग झण्डे लेकर उसमें शरीक हुए। श्री विट्ठलभाई और सरदार के साथ मैं भी था। जलूस शान्तिपूर्वक सिविल-लाइन्स होकर चला आया। सत्याग्रह समाप्त कर दिया गया। उसके बाद कैदी भी छोड़ दिये गए। इस सत्याग्रह का असर और जगहों में भी अच्छा पड़ा।

बिहार से अनेक सत्याग्रही गये थे, जिनमें से एक हरदेवसिंह की मृत्यु नागपुर-जेल में हो गई। उस दिन मैं वहीं था। जेल से शव हम लोगों को मिल गया। उसका दाह-संस्कार हम सबने मिलकर वहां किया। यों तो सरदार से मुलाकात थी ही। पर नागपुर में ही उनसे वह घनिष्ठता हुई, जो मेरे जीवन की सुखद स्मृतियों में एक हमेशा बनी रहेगी। वहीं मेरे दिल में उनकी कार्य-कुशलता, गम्भीरता और नेतृत्व-शक्ति के प्रति महान् आदर उत्पन्न हुआ। उनके प्रति ऐसी श्रद्धा अंकुरित हुई, जो दिन-दिन बढ़ती गई। वहीं मैंने उनका प्रेम और विश्वास प्राप्त किया, जो उन्होंने उसी तरह से बराबर मेरे प्रति और बिहार-प्रान्त के प्रति दर्शाया है।

इन्हीं दिनों सेठ जमनालालजी की राय हुई कि परिवर्तनवादियों और अपरिवर्तनवादियों की आपस की बहस यदि चलती रहेगी तो रचनात्मक काम ढीला ही रहेगा; इसलिए एक ऐसी संस्था स्थापित की जाय, जो रचनात्मक काम पर ही अधिक ध्यान दे और उसमें ऐसे लोग ही विशेष करके रहें, जो गांधीजी के सिद्धान्तों को मानते हों। इस संस्था का नाम पड़ा 'गांधी-सेवा-संघ'। श्री राजगोपालाचारी, सरदार वल्लभभाई पटेल, श्री गंगाधरराव देशपाण्डे, सेठ जमनालाल बजाज प्रभृति उसके संचालक-मंडल के सदस्य हुए। मैं भी उसमें दाखिल हुआ। जबतक वह संस्था इस रूप में रही, मैं उसका सदस्य बना रहा। हम लोगों का बराबर यही प्रयत्न रहा कि उसे राजनैतिक झगड़ों से अलग रक्खें। ऐसा ही किया भी गया। उसके कार्यकर्त्ता विशेष करके रचनात्मक काम में—खादी-प्रचार, हरिजन-सेवा आदि में लगे रहते। पर तो भी गांधीवाद के विरोधी इस बात की शिकायत जब-तब पेश कर दिया करते कि यह एक राजनैतिक दल है और स्वराज्य-पार्टी तथा अग्रगामी दल (फारवर्ड-ब्लाक) के साथ उसका नाम जोड़ लेते।

जो हो, गांधी-सेवा-संघ ने रचनात्मक काम में बहुत दिलचस्पी ली। विशेषकर उसीके सदस्य इसको आगे बढ़ाने के प्रयत्न में लग रहे हैं। इसकी

शाखाएं प्रायः कई सूबों में कायम हुईं। बिहार में भी हुई। कई सदस्यों को, जिनकी संख्या घटती-बढ़ती गई और सदस्य भी अक्सर बदलते गये, कुछ निर्वाह-व्यय भी मिलता रहा। किन्तु यहापर उसका कोई एक केन्द्र स्थापित करके काम नहीं हुआ। इसका कुछ प्रयत्न, कई बरसों के बाद, सारन-जिले के 'मैरवा' गांव में आश्रम कायम करके किया गया। पर वह भी ठीक न चला। इसलिए इस (बिहार) सूबे में उसका कोई देखने लायक काम हम नही बतला सकते। पर उसके कुछ सदस्यों ने रचनात्मक काम किया और कुछ राजनैतिक क्षेत्र से अलग न हो सके।

: ५३ :

दिल्ली-कांग्रेस के विशेष अधिवेशन से कोकनाडा-कांग्रेस तक

दिल्ली के विशेष अधिवेशन के पहले मौलाना मुहम्मदअली जेल से छूटकर आये। हमारा अनुमान था कि वह भी कौंसिल-प्रवेश के विरोधी ही होंगे। राजाजी इस बहस से इतने ऊब गये थे कि वह दिल्ली के अधिवेशन मे आये ही नही। हमने मौलाना मुहम्मदअली को ही अपना नेता मान लिया। उनके ही हाथों मे सब बाते छोड़ दी। उन्होने निश्चय किया कि दोनो पक्षो मे समझौता हो जाय। वह निश्चय इस शर्त पर हुआ कि कांग्रेस की ओर से और कांग्रेस के नाम पर चुनाव न लडा जाय, पर यदि कोई कांग्रेस का आदमी चुनाव मे खड़ा होना चाहे तो उसपर से रोक उठा ली जाय। इस तरह स्वराज्य-पार्टी को, अपने बल पर कांग्रेसियों को खड़ा करके, चुनाव लडने का सुअवसर मिल गया। चुनाव के झगड़े से कांग्रेस अलग रह गई।

हम लोग इस झगडे से घबरा गये थे। हम देखते थे कि इससे रचनात्मक काम मे भी बाधा पड़ती है; क्योंकि कुछ लोग—जो कौंसिल के पक्ष मे है—कौंसिल-पक्ष के समर्थन के साथ-साथ रचनात्मक काम का प्रत्यक्ष वा परोक्ष रीति से चाहे विरोध न करे; पर उपेक्षा अवश्य करते थे। हम आशा करते थे कि इस समझौते के बाद दोनो पक्ष अपने-अपने काम मे लग जायंगे और हम रचनात्मक काम को आगे बढा सकेंगे। मौलाना मुहम्मदअली ने इस बात पर जोर दिया। पर उन्होने उस सिलसिले मे एक बात और कही थी, जिसका मर्म हम लोगो को पीछे मालूम हुआ। उन्होने कहा था कि समझौते के पक्ष में उनको बे-तार के तार से भी खबर मिली है, जिसका अर्थ हम लोगों ने यह लगाया था कि उनको किसी-न-किसी तरह गांधीजी की राय मालूम हो गई है। हम जानते थे कि गांधीजी जेल से कोई सदेश नही भेजेंगे; क्योंकि वह इसको सिद्धाततः गलत समझते थे। हम लोग यह भी जानते थे कि श्री शंकरलाल बैंकर, जो गया-कांग्रेस के झगडे के बाद जेल से छूटे थे और जहां वह गांधीजी के साथ ही थे, हमसे कह चुके थे कि गांधीजी के मत में कोई फर्क नही पड़ा है। पर तो भी हमने यह सोचा कि हो सकता है, जेल

से कोई कैदी छूटकर आया हो, वहां बातचीत मे गांधीजी की राय उसको मालूम हो गई हो और उसने मौलाना से वह बात कह दी हो। उन दिनों अक्सर कांग्रेसी लोग अपनी सजा की मीयाद पूरी करके छूटा करते थे; इसलिए यह असंभव भी नही था। पीछे मालूम हुआ कि गाधीजी से श्री देवदास गाधी मिले थे। देवदासजी से महात्माजी ने कहा था कि मौलाना मुहम्मदअली जो उचित समझे वही करें; किन्तु हमारे प्रति उनका जो विश्वास और प्रेम है, उससे प्रभावित न हों, बल्कि देश की जिसमें भलाई समझें वही करें। उसी बात को मौलाना ने अपने तरीके से 'वे-तार का तार' कहकर बताया था। इसका असर बहुतेरों पर काफी पड़ा था। ऐसे प्रभावित लोगों में सरदार वल्लभभाई पटेल, सेठ जमनालाल बजाज, डाक्टर अंसारी और मै, जो कौसिल-प्रवेश के विरोधी थे, मुख्य समझे जाते थे। हमने कोई चारा न देखकर समझौते को कबूल कर लिया।

हिन्दू-मुस्लिम झगड़े बहुत फैल रहे थे। इससे अन्देशा था कि स्वराज्य के काम में भारी अड़चन पड़ जायगी। सभी लोग चिन्तित थे। इसलिए दिल्ली-कांग्रेस ने इस विषय पर भी बहुत विचार किया। सभी जगहों में हुए झगड़ों के सम्बन्ध मे जांच करने के लिए उसने कमिटी बना दी। दूसरी कमिटी भी नियुक्त कर दी—हिन्दू-मुस्लिम समझौते का मसौदा तैयार करने के लिए। यह भी निश्चय किया गया कि कांग्रेस की ओर से सभी धर्मवालों को सम्मिलित कर रक्षा-दल कायम किये जाय—सभी जगहो में आपस की ऐसी पंचायते बनाई जायं, जो झगड़े को रोके और झगड़ा हो जाने पर उसके असर को यथासाध्य कम और सीमित करे।

एक दूसरा प्रश्न था, जो उस समय सारे देश में खलबली मचा रहा था। वह था हिन्दुस्तानियों का उपनिवेशो में—विशेषकर केनिया (अफ्रीका) में—स्थान। वहां हिन्दुस्तानियों ने ही जाकर उस देश को बसने लायक बनाया था। उन्होने ही वहां वाणिज्य-व्यापार शुरू किया था। वहां रेलवे बनाने में भी उन्होंने ही परिश्रम किया था। अब वहा गोरे लोग हिन्दुस्तानियों को उन स्थानों मे रहने देना नही चाहते थे, जो स्वस्थ, अच्छे उपजाऊ और ऊंचाई पर थे। ब्रिटिश गवर्नमेंट ने भी गोरो की ही बात मान ली थी। केनिया के गोरों को दक्षिण अफ्रिका के गोरों की भी सहानुभूति और मदद मिली थी। इसी तरह, फीजी में भी हिंदुस्तानियों के प्रति कई प्रकार के अत्याचार हो रहे थे। इसलिए कांग्रेस में इस आशय का प्रस्ताव आया कि हिन्दुस्तानियों के प्रति किये गए दुर्व्यवहार से स्पष्ट हो गया है कि ब्रिटिश साम्राज्य में हिन्दुस्तानियों के लिए स्थान नही है, अतः अब हिन्दुस्तानियों को उस साम्राज्य से बाहर जाने की बात पर विचार करना

चाहिए। बात ठीक थी। उस समय से आज तक जितनी कार्रवाई हुई है उससे यह बात और भी स्पष्ट होती गई है। पर उस समय कांग्रेस ने इस प्रस्ताव को, विशेषकर मौलाना मुहम्मदअली के जोर लगाने से नामजूर कर दिया। मेरी सहानुभूति प्रस्ताव के साथ थी, पर हम लोगो के इतने बड़े परिवर्तन के लिए—जब हम कमजोर पड़ गये थे और हमारा आन्दोलन भी कमजोर पड़ गया था—वह समय उपयुक्त नही समझा। एक दूसरा प्रस्ताव, जिसमें साम्राज्य से अलग होने की बात नही थी, स्वीकृत हुआ।

दिल्ली के अधिवेशन के बाद मै वहा से ही लाला लाजपतराय को देखने के लिए सोलन चला गया। वह जेल से बीमार निकले थे और वहां स्वास्थ्य लाभ के लिए ठहरे थे। उन्होंने भी समझौते को पसन्द किया। वह उससे खुश थे; क्योंकि उनका विचार भी स्वराज्य-पार्टी के साथ ही था। सोलन से लौटते समय मै लखनऊ मे उतरा। वहा मेडिकल कालेज के प्रिन्सिपल स्प्रासन से, जो फेफड़े की बीमारियो के विशेषज्ञ समझे जाते थे, अपनी जाच कराई। उन्होंने भी मेरी बीमारी को दमा करार दिया। उसके लिए स्वामिन् का इंजेक्शन बताया। पटना लौटने पर उनके आदेशानुसार मैने उसका इजेक्शन लिया। कुछ विशेष फल नही हुआ।

दिल्ली के अधिवेशन के बाद स्वराज्य-पार्टी ने चुनाव में भाग लिया। मध्यप्रान्त में स्वराज्य-पार्टी को अधिकांश स्थानों मे सफलता मिली। वहां की कौसिल मे उसका बहुमत हो गया। बगाल में भी अच्छी सफलता मिली, पर बहुमत नही हुआ। किसी और सूबे में सफलता नही हुई, पर सभी जगहो मे कुछ अच्छे आदमी कौसिलों मे जा सके। बिहार में भी स्वराज्य-पार्टी बनी, जिसके प्रमुख पक्षपातियो मे मौलवी मुहम्मद शफी, प्रोफेसर अब्दुलबारी, श्री कृष्णवल्लभ सहाय और बाबू जलेश्वरप्रसाद थे। यहां चुनाव मे हममे से किसीने भाग नही लिया। परोक्ष रीति से भी हमने मदद नही की। तो भी दस या बारह आदमी चुने गये। उन्होंने कौसिल में अच्छा ही काम किया। जलेश्वरबाबू ही पार्टी के नेता थे। युक्तप्रान्त में प० गोविन्दवल्लभ पन्त पार्टी के नेता हुए। बगाल मे स्वय देशबन्धु दास। बहुमत होने के कारण मध्यप्रान्त मे स्वराज्य-पार्टी ने मंत्रिमंडल नही बनने दिया। कुछ दिनो तक यह सिलसिला चला। पर कुछ प्रमुख व्यक्ति फूटकर अलग हो मंत्रिमंडल मे शरीक हो गये। बंगाल मे देशबन्धु दास ने कुछ दूसरो के साथ मिलकर वहां के मंत्रिमंडल को भी कुछ काल के लिए तोड़ डालने में सफलता पाई।

१९२३ इसी प्रकार समाप्ति पर आया। दिसम्बर में कांग्रेस का सालाना अधिवेशन कोकनाडा में हुआ। ठीक अधिवेशन के समय मै बीमार पड़ गया,

इसलिए कोकनाडा न जा सका। वहां राष्ट्रभाषा-प्रचार के लिए जो सभा होनेवाली थी, उसका मैं ही सभापति चुना गया था। मैंने एक लम्बा भाषण भी तैयार किया था, जो पुस्तकाकार मे छपा था। जब मैं ठीक रवाना होने के दिन ही बीमार पड़ गया तो केवल छपा भाषण ही वहां जा सका! मेरी जगह सेठ जमनालाल बजाज सभापति हुए। मैंने सुना कि उन्होंने मेरे भाषण को पढ़ सुनाया था।

कोकनाडा-कांग्रेस के सभापति मौलाना मुहम्मदअली हुए। उनका भाषण बहुत बड़ा और महत्वपूर्ण है। हिन्दुस्तान की राजनीति में, मुसलमानों के भाग और स्थान की उन्होंने ऐतिहासिक दृष्टि से आलोचना की है। आगे के लिए भी उन्होने बहुतेरी ऐसी बाते कही है जिनको शायद सभी लोग नहीं मानते। जो हो, कोकनाडा ने दिल्ली के विशेष अधिवेशन के निश्चय का ही समर्थन किया। जो इजाजत स्वराज्य-पार्टी को कौसिल-प्रवेश के लिए मिली थी, उसे फिर मजूर कर लिया। इसके अलावा, कांग्रेस ने, हिन्दू-मुस्लिम समझौते के मसविदे को, जनता और कमिटियों के विचार के साथ अखिल भारतीय कमिटी के सामने पेश करने का आदेश दिया। खादी-प्रचार के लिए खद्दर-बोर्ड का भी संगठन किया। उत्साह बहुत था। ऐसा मालूम होता था कि जनता में फिर जान आ गई। ठीक कांग्रेस के समय ही श्री कृष्णप्रकाश सेन सिह की दुःखद मृत्यु हो गई। हममे से एक होनहार त्यागी कार्यकर्त्ता चला गया!

: ५४ :

हाइकोर्ट में बरमा का मुकदमा

मै पटना में ठहर गया था। १९२४ ई० की दूसरी जनवरी से बाबू हरिजीवाला मुकदमा, अपील में, हाइकोर्ट मे खुलनेवाला था। मैं अस्वस्थ रहकर भी उसके लिए तैयारी करता रहा। उसमे मुझे काम करना था। जनवरी के आरम्भ से मई के अन्त तक उसकी पेशी रही। मेरा प्रायः सारा समय उसीमें लगता रहा। हाइकोर्ट मे हम लोगों की ओर से श्री हसन इमाम और मिस्टर मानुक ने बहस की। डुमरांव के महाराजा की ओर से सर आशुतोष मुकर्जी ने बहस की। वह हाइकोर्ट की जजी से पेन्शन पाकर हाल ही निकले थे। मुझे बहुत परिश्रम करना पड़ा। सवेरे ही स्नानादि से निवृत्त होकर श्री हसन इमाम साहब के पास सात बजे पहुंच जाता था। जबतक वह कचहरी जाने को तैयार होने के लिए उठ न जाते तबतक उनके साथ काम करता। फिर कचहरी मे दिन-भर काम करता। सन्ध्या को फिर उनके साथ! शनिवार, रविवार को खास करके, और कभी-कभी दूसरे दिन भी, अकेले लाइब्रेरी मे काम करता। कानूनी नजीर खोजकर निकालने का काम मुझे ही सौंपा गया था। यही काम मैंने आरा में भी किया था और यहा भी किया। एक विषय पर आरा में कोई नजीर नही मिली थी। यह बहुत जरूरी विषय था। सोचने से मालूम होता था कि इस प्रकार के मुकदमे जरूर आये होगे और हमारे पक्ष की नजीर जरूर मिलनी चाहिए। पर आरा मे पटने के समान पुस्तकों की विशेष सुविधा नही थी। इसलिए वहा यह नजीर नही मिली। पटने मे श्री हसन इमाम की लाइब्रेरी बहुत अच्छी थी। मैने उस प्रकार की नजीर खोजने में बहुत समय लगाया। अन्त मे मै सफल हुआ। एक नजीर मिल जाने पर उसके पहले और पीछे की अनेक नजीरे मिल गईं। मैने जब श्री हसन इमाम को दिखलाया तो वह इतने खुश हुए कि मेरे साथ वह श्री मानुक के घर गये और उनको भी तुरन्त वह नजीर दिखलाई। दोनों को पूरा विश्वास हो गया कि उस विषय पर वे जरूर जीतेगे। ऐसा ही हुआ भी।

इस मुकदमे की सुनवाई के बीच में ही सर आशुतोष की असामयिक मृत्यु पटने में ही हो गई। वह अपनी बहस खतम कर चुके थे। जजों के

लिए जब वह कुछ नोट तैयार कर रहे थे, एक ही दिन की बीमारी में अचानक चल बसे। मृत्यु के समय मै उनके पास ही था। पटने में कई महीनों तक प्रतिदिन उनसे भेंट होना भी मेरे लिए बड़ी बात थी। कलकत्ते में तो वह जज थे और मैं एक नया वकील। पटने में दोनों एक ही मुकदमे में काम करते थे—यद्यपि दो भिन्न पक्षों मे, तो भी सवेरे, दोपहर और इजलास उठने के बाद प्राय: रोज ही दो-चार बातें आपस मे हो ही जाया करती थीं। एक छोटी-सी घटना बता देना बुरा न होगा। श्री हसन इमाम उनको गुरुजी कहा करते थे। जब श्री हसन इमाम हलकत्ता-हाइकोर्ट के जज हुए थे तब सर आशुतोष उनसे सीनियर थे। शायद वहीं रिश्ता कायम हुआ था। अपनी बहाली के थोड़े ही दिन बाद श्री हसन इमाम फौजदारी-बेंच पर बैठे, जहां के सीनियर जज से, एक के बाद दूसरे, तीन मुकदमों में उनका मतभेद हो गया। तीनो मुकदमे सर आशुतोष के पास, तीसरे जज की हैसियत से, भेजे गये। तीनो में उन्होंने श्री हसन इमाम के फैसले का ही समर्थन किया था। इससे कलकत्ता-हाइकोर्ट मे जल्द ही श्री हसन इमाम का बड़ा नाम हो गया था। श्री हसन इमाम ने पटने मे उनको एक दिन चाय पीने के लिए निमन्त्रित किया। हाइकोर्ट मे ही उन्होंने कहा—गुरुजी, मेरे यहां आप चाय पीयेंगे? सर आशुतोष ने कहा—मैं कट्टर सनातनी (orthodox) जरूर हूं और आजतक इसी कारण कभी गवर्नमेण्ट-हाउस में चाय नहीं पी है; पर इसका अर्थ यह नही है कि हसन इमाम के घर मे भी चाय न पीऊं। चाय-पार्टी मे हम सब बुलाये गए और शरीक हुए।

: ५५ :

बेतिया का मीना-बाजार

महात्मा गांधी यरवदा-जेल मे थे। वहां वह बहुत बीमार पड़ गये। 'एपिंडिसाइटिस' का प्रकोप ऐसा हो गया कि एक दिन डाक्टरो का विचार हुआ—यदि तुरन्त चीरा नही लगाया जायगा तो इनकी जान नही बचेगी। यह निश्चय रात के समय हुआ। पूना के अस्पताल में वह ले जाये गए। वहा के अगरेज डाक्टर कर्नल मैडीक को चीरा लगाना पड़ा। महात्माजी से पूछा गया था कि आपके डाक्टर कौन है। उन्होने बम्बई के डाक्टर दलाल और डाक्टर जीवराज मेहता के नाम बताये थे। पर अब इतना समय नही था कि वे बुलाये जा सकते। गांधीजी ने भी साफ-साफ कह दिया कि उनको उस अंगरेज डाक्टर पर पूरा विश्वास और भरोसा है—वह निश्चिन्त होकर जो मुनासिब समझे करे। उस समय श्री श्रीनिवास शास्त्री अस्पताल में बुला लिये गए थे। वह तबतक वहा ठहरे रहे, जबतक नश्तर का काम समाप्त न हुआ। आधी रात के समय नश्तर लगाया गया। इसमें वह अगरेज डाक्टर बहुत कामयाब रहा। एक छोटी दुर्घटना ठीक नश्तर लगते समय हो गई। ठीक उसी समय, जब छुरी चल रही थी, बिजली की बत्ती अचानक बुझ गई। खैरियत हुई कि वह शीघ्र ही फिर बल गई, नश्तर के काम मे कोई बड़ी बाधा न पहुंची।

मैं उन दिनों बरमा के मुकदमे मे पटना-हाइकोर्ट मे काम कर रहा था। अखबारों मे बीमारी और नश्तर लगाये जाने की खबर छपी। पढ़कर सारे देश में चिन्ता व्याप गई। मैंने तीन-चार दिन की छुट्टी ली। सीधा पूना चला गया। अभी महात्माजी अस्पताल में ही थे और बहुत कमजोर थे। मैंने जाकर उसी हालत में उनके दर्शन किये। हालचाल जानकर पटना वापस चला आया। उस समय यह मालूम हो गया था कि अब जान का कोई खतरा नही है; पर कमजोरी इतनी ज्यादा थी कि कुछ दिनों तक अच्छी तरह आराम करना जरूरी था। मेरे पटने लौटने के बाद शीघ्र ही खबर मिली कि गवर्नमेण्ट ने महात्माजी को छोड़ दिया। खबर पहुचते ही पटने में एक सभा हुई, जिसमें मैने भी भाषण किया। गांधीजी से जो मेरी बाते पूना-अस्पताल में हुई थी, उन्हें सभा को बताया। सारांश यह था कि महात्माजी

बीमारी के कारण रिहाई से प्रसन्न न होंगे। यह तो देश के लिए भी शर्म की बात है कि हम अपनी शक्ति से नही, पर गवर्नमेंट की दया से उनको छुड़ा सके। रिहाई के बाद अपने वक्तव्य में गांधीजी ने यही कहा भी था।

कुछ दिनों तक अस्पताल मे रहकर, अच्छे होने पर, महात्माजी बाहर निकले। निश्चय हुआ कि आराम करने के लिए वह समुद्र के किनारे बम्बई के पास जुहू मे जाकर कुछ दिनों तक ठहरे। इसी निश्चय के अनुसार वह वहां जाकर कुछ दिनो तक ठहरे रहे।

इसी समय एक घटना बेतिया (चम्पारन) में हुई, जिसका जिक्र यहां आवश्यक जान पड़ता है। बेतिया राज बहुत दिनो से कोर्ट ऑव वार्ड्स के अधीन है। उन दिनों उसके मैनेजर मिस्टर रुथरफोर्ड थे। वह पहले नील-वर थे। गवर्नमेण्ट की नीति उन दिनो मे अक्सर यही होती कि जहां-कहीं कोई जमीदारी कोर्ट के कब्जे में आती और मैनेजर की जरूरत होती, उसके लिए कोई-न-कोई नीलवर ही मुकर्रर किया जाता। इसी नीति के अनुसार मिस्टर रुथरफोर्ड की नियुक्ति कई साल पहले हुई थी। उनके पहले भी उस राज के लिए जो मैनेजर नियुक्त किये गए थे, नीलवरो मे से ही थे। अस्तु, १९२२ में, बेतिया-म्युनिसिपैलिटी के मेम्बरो का चुनाव हुआ। उसमे कुछ कांग्रेसी लोग भी चुने गये। चेयरमैन और वाइस-चेयरमैन के चुनाव के लिए उम्मीदवार खड़े हुए। उनमें चेयरमैनी के लिए स्वयं मिस्टर रुथरफोर्ड खड़े हुए। उनके साथ वाइस-चेयरमैनी के लिए वहा के सब-रजिस्ट्रार खड़े किये गए। कांग्रेस की ओर से श्री विपिनविहारी वर्मा और श्री प्रजापति मिश्र खड़े हुए। राज के लिए, विशेषकर मिस्टर रुथरफोर्ड के लिए, किसीका उनके मुकाबले में खड़ा होना ही बहुत बुरी बात थी। उनको हराकर कांग्रेसी चेयरमैन और वाइस-चेयरमैन का चुना जाना तो असह्य था। फिर १९२४ में नया चुनाव हुआ। इस बार कांग्रेसी मेम्बरों का बड़ा बहुमत हो गया। इसलिए राज की ओर मे कोई चेयरमैनी के लिए नहीं खड़ा किया गया। वही श्री विपिनविहारी वर्मा और प० प्रजापति मिश्र चुने गये। यद्यपि राज के उम्मीदवार नही खड़े हुए तथापि राज के लोग मिस्टर रुथरफोर्ड की हार को भूले नही थे। इस बात की अफवाह अक्सर उठा करती थी कि राज की ओर से कुछ-न-कुछ करके दिखाया जायगा।

महात्माजी की बीमारी के कारण देश-भर में खलबली थी। मौलाना मुहम्मदअली ने कांग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से आदेश दिया कि देश में सब जगह सभाएं करके महात्माजी के आरोग्य-लाभ के लिए ईश्वर से प्रार्थना की जाय। बेतिया में भी सभा होनेवाली थी। वहां राज की ओर से एक मीना-बाजार बसाया गया है, जिसमें शहर के व्यापारी अपनी-अपनी दूकानें

भाड़े पर रखते हैं। उस दिन पं० प्रजापति मिश्र और एक दूसरे कांग्रेसी बाबू जयनारायण बाजारवालों को प्रार्थना-सभा में जाने के लिए कहने गये। राज के एक कर्मचारी ने बाबू जयनारायण को दो चपत लगाकर दोनो को बाजार से बाहर निकाल दिया। दूकानदारों मे बड़ी सनसनी फैली। यदि मिश्रजी लोगो को न रोकते तो झगड़ा बढ जाता। इसके बाद सभा हुई और बाजार के लोग काफी संख्या मे उसमें शरीक हुए। इतना ही नहीं, दूकानदारों ने निश्चय किया कि वे मीना-बाजार से अपनी दूकाने उठा लेंगे और म्युनिसिपैलिटी से जमीन मांगकर अन्यत्र कहीं दूकानें लगायंगे। दूसरे दिन से बाजार खाली होने लगा। एक तरफ कुछ हटकर दूकाने लग गईं। दो-चार दिनों में ही एक नया बाजार बस गया। मीना-बाजार प्रायः खाली हो गया। इससे राज को और भी धक्का लगा। अब खबर उड़ने लगी कि काग्रेसवाले पीटे जायंगे; पर कांग्रेसियो ने इस तरह की खबरो की परवा नही की।

एक दिन संध्या को पं० प्रजापति मिश्र एक टमटम पर कही जा रहे थे। किसीने उनके सिर पर बड़े जोर से लाठी मारी। वह बेहोश हो गये। वह आदमी मैनेजर की कोठी की ओर भाग गया। सुना गया कि उसको लेकर राज-कर्मचारी मजिस्ट्रेट के पास भी गये और कुछ कार्रवाई करके उसे वहां से हटा दिया। इससे सारे शहर के लोगों मे रोष छा गया। मेरे पास तार आया। मैं तुरन्त वहां गया। सब बातों की जानकारी प्राप्त की। मीना-बाजार में, इस मार के पहले, कुछ बड़ी-बड़ी दूकाने रह गई थी। अब वे दूकानदार भी निकल आये। एक सुन्दर बाजार बस गया। म्युनिसिपैलिटी की आमदनी बढने की तो आशा हो गई, पर राज को प्रायः पचास हजार सालाना घाटे की आशका हुई। प० प्रजापति मिश्र ने बहुत ही हिम्मत और शान्ति से काम लिया। उन्होंने खाट पर पड़े-पड़े ही लोगो को शान्त रहने का सन्देश भेजा। उस हमला करनेवाले पर किसी प्रकार की कार्रवाई न करने का भी निश्चय किया। मालूम हो गया कि यह सब राज के उच्च कर्मचारियो के इशारे पर ही हुआ है। काग्रेस के प्रति जनता की श्रद्धा का परिचय मिला। जो छोटे-बड़े दूकानदार मीना-बाजार के पक्के मकानों में दूकान रखते थे, वे सब-के-सब खुले मैदान मे अथवा टाट के झप्पर के नीचे दूकाने उठा लाये। नये बाजार में मिट्टी के बर्तनो की दूकान से लेकर सोने-चांदी की दूकाने तक उसी तरह आ गईं। इसका डर था कि इस तरह के बाजार में चोरी-डकैती न हो जाय। पुलिस से मदद की आशा थी नहीं। इसलिए बाजार की हिफाजत के लिए शहर में स्वयंसेवक-दल कायम हो गया। वह दिन-रात पहरा देता। लोगों में बड़ा उत्साह था। यह

झगड़ा बहुत दिनों तक चलता रहा। बहुत दिनों के बाद, यद्यपि मीना-बाजार में दूकानें खुल गईं तथापि नया बाजार भी रह ही गया।

इस घटना की खबर पाकर मैं बेतिया गया था। वहां से जांच करके लौटने के बाद एक बयान मैंने अखबारों में छपवाया था। उसमें सब बातें खोल करके कह दी थी। कुछ दिनों के बाद बेतिया में बिहार-प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी की बैठक हुई। प्रान्तीय कमिटी के सभापति मौलाना मजहरुल हक साहब और दूसरे नेता लोग भी पधारे थे। वहांपर निश्चय किया गया कि बेतिया की हालत यदि न सुधरी—और जैसी अफवाह फैल रही थी कि दूसरे काग्रेसी लोग भी, जिनमे विपिनबाबू मुख्य थे, पं० प्रजापति मिश्र की तरह लाठियों के शिकार बनाये गए—तो प्रान्तीय कमिटी को मजबूर होकर बेतिया के रैयतो से लगान देना बन्द करने को कहना पड़ेगा और इसके लिए जो बलिदान करना पड़ेगा उसके लिए जनता को तैयार होना होगा। एक सार्वजनिक सभा हुई, जिसमे यह निश्चय घोषित कर दिया गया। विहार-कौसिल मे भी यह प्रश्न छिड़ा। उस समय स्वराजी लोगो ने बहुत जोरदार बहस की। जलेश्वरबाबू उनके नेता थे। उन्होंने खुद इस मामले की जांच की थी। स्वय हमला करनेवाले ने ही उन्हें सारी सच्ची बातें बतला दी थी। उसीके आधार पर उन्होने सारी बातें खोलकर कौसिल में कह-सुनाई।

: ५६ :

जुहू की बातचीत और उसके बाद

महात्माजी आराम तो कर रहे थे, पर काम भी कर रहे थे। ज्योंही वह इस योग्य हुए कि कुछ बातचीत कर सकें, लोग उनसे मिलने के लिए वहां पहुंचने लगे। उनकी गैरहाजिरी मे जो कुछ हुआ था, विशेषकर कौसिल-प्रवेश-सम्बन्धी आन्दोलन, उसकी सब बातें लोगों ने उन्हे बताईं। देशबन्धु दास और पंडित मोतीलाल नेहरू भी वहा गये और कुछ दिनों तक ठहरे। वहा इस सम्बन्ध की बातें हुईं और इसका प्रयत्न किया गया कि आपस के समझौते का कोई रास्ता निकले। कौसिलों मे स्वराज्य-पार्टी की ओर से कुछ काग्रेसी लोग जा चुके थे। इसलिए इस प्रश्न का उतना महत्त्व अब नही था जितना गया और दिल्ली की काग्रेस के समय मे था। पर यह जानकर मुझ-जैसे लोगों को सन्तोष हुआ कि गाधीजी ने हमारी कौसिल-निषेध-सम्बन्धी कार्रवाई को पसन्द किया। सन्तोष का कारण यह था कि हमसे बराबर कहा जाता था कि गाधीजी यदि बाहर होते तो वह इस विषय मे इतनी जिद्द न करते, कोई-न-कोई समझौता कर लेते। पर वह उसके विरोधी अब भी उतनी ही सख्ती के साथ थे, जितनी दृढता से उस समय थे जब उन्होने इस कार्यक्रम को देश के सामने रक्खा था।

जुहू में बातचीत के बाद गाधीजी ने एक वक्तव्य निकाला, जिसमें उन्होने साफ कहा कि वह अब भी पच-बहिष्कारो के पक्ष मे है और उनकी राय में कौसिलो मे जाना असहयोग की नीति के विरुद्ध है, पर वह इस राय मे देशबन्धु दास, पं० मोतीलाल नेहरू तथा स्वराज्य-दल के दूसरे लोगों को न ला सके—वे लोग कौसिलों मे चले भी गये हैं; इसलिए अब इस सम्बन्ध के वाद-विवाद से कोई लाभ नही है; जो अपरिवर्तवादी हैं वे इस बहस को छोड़कर रचनात्मक काम में लग जायं। उन्होंने यह भी कहा कि कांग्रेस के संगठन के सम्बन्ध मे उनके बहुत सख्त विचार हैं, जिनको वह पीछे लिखेगे। उस समय देश में हिन्दू-मुस्लिम झगड़े बहुत हो रहे थे और वैमनस्य बहुत फैल रहा था। इसका भी बहुत विशद विश्लेषण उन्होने एक लम्बे लेख में किया। इसी लेख मे उन्होंने आर्यसमाज की टीका की थी, जिससे बहुत लोग क्षुब्ध हुए थे। इसीमें उन्होंने यह भी कहा था कि मुसल-

मान कलहप्रिय (bully) होते हैं और हिन्दू डरपोक (coward)। कांग्रेस के संगठन के सम्बन्ध में उन्होंने यह मत जाहिर किया कि काग्रेस के सभी चुने हुए स्थानों मे ऐसे लोगों को चुना जाना चाहिए, जो पांचों बहिष्कारों को सिद्धान्ततः मानते हैं और स्वयं अपने जीवन मे उनपर अमल करते है--अर्थात् कचहरियो का बहिष्कार करके न तो उनको मुकदमे लड़ने चाहिए और न वकालत करनी चाहिए, अपने नाबालिग बच्चो को सरकार से सम्बद्ध स्कूलों में नही भेजना चाहिए, सरकारी खिताव नही रखना चाहिए, कौसिलों में नही जाना चाहिए, विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार के लिए खादी ही पहनना और चर्खा चलाना चाहिए।

उन्ही दिनो, कलकत्ते मे, 'डे' नामक एक अंग्रेज को, एक युवक श्रीगोपीनाथ साहा ने, आम रास्ते पर, दिन-दहाड़े पिस्तौल से मार डाला था। वह पकड़े भी गये थे और उनको फासी की सजा हुई थी। बगाल प्रान्तीय राजनैतिक कांफ्रेंस में, जो उस साल सिराजगंज मे हुई थी, इस सम्बन्ध का एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था, जिसमे उनकी देशभक्ति की सराहना की गई थी— यद्यपि उनके इस काम को बुरा कहा गया था। महात्माजी को यह प्रस्ताव अच्छा नही लगा था, क्योंकि उनका विचार था कि इस प्रकार की हत्या कांग्रेस के सिद्धात के बिलकुल विरुद्ध है, इससे देश की बडी हानि होती है और स्वराज्य के रास्ते में रोडे पडते है। उन्होने इस प्रस्ताव पर कड़ी टिप्पणी की। काग्रेस के संगठन को दुरुस्त करने के लिए उन्होंने कई प्रस्तावों को अखिल भारतीय कमिटी के सामने रखने की इच्छा प्रकट की और 'डे' की हत्या के सम्बन्ध में भी एक प्रस्ताव पेश करने की बात लिखी। प्रस्तावों के मसविदे भी उन्होने छाप दिये। उनका आशय यह था कि कांग्रेस के चुने हुए सदस्यों को सब बहिष्कारो को मानना चाहिए और ऐसे ही लोगों को काग्रेस का पदाधिकारी होना चाहिए। इसका नतीजा यह होता था कि जो लोग कौसिलो में गये है, उनको नही चुनना चाहिए अथवा जो चुने गये है, उनको हट जाना चाहिए। इसी तरह, ऐसे चुने हुए सब लोगों के लिए कम-से-कम आधा घंटा प्रतिदिन चर्खा चलाना और प्रतिमास दो हजार गज सूत खद्दर-बोर्ड को देना अनिवार्य कर देना चाहिए। जो सूत न दें, उनकी जगहें खाली समझी जानी चाहिए और उनके रिक्त स्थान पर दूसरों को चुनना चाहिए। इसका नतीजा यह हुआ कि आपस के झगड़े मिटा देने की जो आशा पहले के वक्तव्य से हुई थी, वह बिलकुल जाती रही। सारे देश में इन प्रस्तावों और विचारो के सम्बन्ध मे बहुत जोरों से वाद-विवाद होने लगा। समाचारपत्रों ने पक्ष और विपक्ष मे लेख लिखना शुरू किया। आर्यसमाज की शाखाओं की ओर से उस लेख की निन्दा की जाने

लगी, जिसमें कुछ टीका की गई थी। गांधीजी ने अपने विचारों को, जैसा वह हमेशा करते आये हैं, बहुत संयत भाषा में—पर दृढ़तापूर्वक—देश के सामने रक्खा।

जून के अन्तिम सप्ताह में, अहमदाबाद में, अखिल भारतीय कमिटी की बैठक हुई। वहां उन प्रस्तावों का, जिनमें बहिष्कारों को न करने और चर्खा न चलाने के कारण पदाधिकारी बनने से लोगों को रोकने की बात थी, इस बुनियाद पर विरोध होने लगा कि वे प्रस्ताव कांग्रेस के नियम के विरुद्ध हैं; क्योंकि कांग्रेस की नियमावली कांग्रेस द्वारा बनाई गई है और उसमें हेरफेर करने का अधिकार कांग्रेस को ही है, अखिल भारतीय कमिटी को नहीं और इन प्रस्तावों का नतीजा उन नियमों में परिवर्तन करना होता है। महात्माजी का कहना था कि कांग्रेस का एक नियम होता है कि जब कांग्रेस का अधिवेशन न हो रहा हो तो उसके सारे अधिकार अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी को प्राप्त होते है और यदि इन प्रस्तावों द्वारा नियमावली का संशोधन होता हो तो भी वह अनियमित न होगा—विशेषकर उस समय जब इन प्रस्तावों का असर कांग्रेस के बहिष्कार-सम्बन्धी निश्चयों को कार्यान्वित करना ही होता है। मौलाना मुहम्मदअली सभापतित्व कर रहे थे। उन्होंने यह पूछे जाने पर कि ये प्रस्ताव नियम के प्रतिकूल हैं या नहीं, अपनी राय न देकर सदस्यों की राय ली, तो मालूम हुआ कि बहुमत इनको विधान के अनुकूल मानता था—यद्यपि बहुमत और अल्पमत में थोडे ही मतों का अन्तर था। इसपर देशबन्धु दास, पंडित मोतीलाल प्रभृति अपनी नाराजी जाहिर करने के लिए सभा छोड़कर चले गये। महात्माजी ने उनके चले जाने पर भी एक प्रस्ताव उपस्थित किया, जो थोड़े बहुमत से स्वीकृत हुआ। इसपर महात्माजी ने तुरन्त एक दूसरा प्रस्ताव भी उपस्थित कर दिया कि इस स्वीकृत प्रस्ताव का वह अंश हटा दिया जाय, जिसमें बहिष्कार न मानने का दण्ड पदों से वंचित रहना बताया गया था। उन्होंने कहा कि उपस्थित लोगों का बहुमत यद्यपि प्रस्ताव के पक्ष में था तो भी वह बहुमत सचमुच बहुमत नहीं था; क्योंकि गैरहाजिर लोग यदि मत देते तो उनका बहुमत हो जाता, और इसके अलावा, यदि प्रस्ताव के पक्ष में बहुमत रह भी जाता तो भी वह इतना कम होता कि वह नहीं के बराबर होता। इस तरह स्वीकृत प्रस्ताव बदल दिया गया और स्वराज्य-दल के लोगों को फिर मौका मिला कि वे वापस जायं।

उसी रात को महात्माजी और उन लोगों के बीच फिर बातचीत हुई, जिसके फलस्वरूप कांग्रेस के संगठन-सम्बन्धी प्रस्तावों का रूप ऐसा बना दिया गया कि दोनों दलों को स्वीकृत हो जाय। दूसरे दिन वे सभी प्रस्ताव

इसी समझौते के रूप में पास हुए। 'डे'-हत्या-सम्बन्धी प्रस्ताव महात्माजी ने उपस्थित किया। देशबन्धु दास ने सिराजगंज के प्रस्ताव को ही संशोधन के रूप में पेश किया। अन्त में महात्माजी का ही प्रस्ताव मंजूर हो गया; पर इसमें भी जो बहुमत मिला, वह बहुत थोड़े लोगों का था। इसका एक विशेष कारण यह था कि सिराजगंज के प्रस्ताव पर अंगरेजों और अंगरेजी पत्रों ने बहुत हो-हल्ला मचाया था। यह बात भी खुलेआम ही सुनी जाती थी कि उसके लिए देशबन्धु दास तथा दूसरे लोग गिरफ्तार किये जायगे। देशबन्धु ने उसे संशोधन के रूप मे उपस्थित करने का कारण भी यही बताया कि वह यदि ऐसा न करें तो लोग समझेंगे कि उन्होने गिरफ्तारी के भय से सिराजगंज के प्रस्ताव को छोड़ दिया। अब, कांग्रेस के संगठन-सम्बन्धी प्रस्तावों का नतीजा यह हुआ कि एक तरफ तो बहिष्कारो को कुछ सख्त बना दिया गया और दूसरी तरफ कौंसिल-बहिष्कार को और भी ढीला कर दिया गया।

महात्माजी से कुछ लोगो ने कहा था कि कचहरियो के बहिष्कार से नफा उठाकर कुछ बेईमान लोगो ने काग्रेसियो के प्रति भारी जुल्म किया है; क्योंकि काग्रेसी लोग कचहरियों मे न अपना दावा पेश कर सकते थे और न अपने ऊपर किये गए दावे का अपने बयान के सिवा दूसरा कोई उत्तर दे सकते थे। इसलिए उन लोगों का विचार था कि इस सम्बन्ध में ऐसे काग्रेसियो के दावे को सुरक्षित बनाने का कोई उपाय करना चाहिए। महात्माजी इसके सम्बन्ध मे राजी भी हुए थे कि ऐसे लोगो को अदालतों में अपना बचाव करने की छूट दी जाय। विशेषकर श्री गगाधरराव देशपाडे की बात पेश की थी, जो वर्किंग कमिटी के सदस्य थे। ऐसे लोगों को छूट देने के सम्बन्ध मे महात्माजी ने एक प्रस्ताव उपस्थित किया। इसपर डाक्टर चोइथराम गिडवानी ने प्रश्न कर दिया कि यह प्रस्ताव क्या नियम के प्रतिकूल नही है? मौलाना मुहम्मदअली ने महात्माजी की राय पूछी। महात्माजी ने भी कहा कि बहिष्कार-सम्बन्धी प्रस्तावो के प्रतिकूल अवश्य है। इसपर मौलानासाहब ने उसे नियम-विरुद्ध करार दिया। सभा की कार्रवाई समाप्त हुई। पर जो कुछ उस सभा मे हुआ था, उससे महात्माजी के दिल पर गहरी चोट लगी थी। उन्होंने एक बहुत ही मार्मिक भाषण किया। बोलते-बोलते वह एकाएक रुक गये। सभा मे स्तब्धता छा गई। गांधीजी की आंखों से अनवरत आंसू बहने लगे। कुछ देर में उन्होंने अपने को संभालकर अपना कथन समाप्त किया। बड़ी उदासी और निराशा का वायुमण्डल छा गया। उपस्थित सदस्यों ने अपने भाषणों द्वारा महात्माजी को सान्त्वना दी। उन्हें विश्वास भी दिलाया कि वे उनके पीछे-पीछे चलने को तैयार है। बहुतेरे तो खुलेआम महात्माजी के साथ और उनके बाद भी

रोते रहे। इसी उदासी की अवस्था मे सभा समाप्त हुई।

महात्माजी ने इस बैठक के सम्बन्ध में बहुत ही मर्मभेदी लेख लिखे। बहुमत होने पर भी महात्माजी ने जो अपने प्रस्ताव को बदलवा डाला था, देश के पत्रों ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। यह सब होते हुए भी ऐसा जान पड़ता था कि कांग्रेस मे मतभेद अधिक स्थायी और विकट हो जायगा। यह कोई नई बात नही थी; क्योंकि इसका कुछ पता तो चौरीचौरा-काण्ड के बाद ही लग गया था—जब प्रायः सभी नेताओं ने जेल से ही गाधीजी के सत्याग्रह स्थगित कर देने का बहुत विरोध किया था। उसीका प्रदर्शन 'डे'-हत्या-कांड-सम्बन्धी प्रस्ताव मे भी हुआ। सरकार तो हमेशा ही ऐसी चीजों की टोह मे रहा करती है। उसने आपस की इस फूट से नफा उठाना चाहा। कुछ दिनों के बाद बगाल के बहुतेरे भाई, जिनमे श्री सुभाषचन्द्र बोस भी थे, गिरफ्तार कर नजरबन्द कर दिये गए। गांधीजी अपनी ओर से झगडा सुलझाने के प्रयत्न मे बराबर लगे हुए थे। इस घटना के बाद उन्होने निश्चय कर लिया कि अब किसी-न-किसी तरह से इसको सुलझाना चाहिए। उन्होने अहमदाबाद में ही कहा था कि यद्यपि मुझे बहुमत मिल गया है तथापि मैं इसे अपनी हार समझता हू—दोनों पक्षों के वोटों में इतना कम अन्तर कोई चीज नहीं है और मैं मानता हूं कि मै हार गया। उसी समय से वह रास्ता ढूंढने में लग गये। वह केवल स्वराज्य-पार्टी के साथ समझौता करना नही चाहते थे, बल्कि उनकी इच्छा थी कि दूसरे विचार के लोग भी-जो असहयोग-आन्दोलन के कारण काग्रेस से अलग हो गये थे, फिर कांग्रेस मे आ जायं।

डाक्टर एनी बेसेण्ट उन दिनों स्वराज्य का मसविदा तैयार करके ब्रिटिश पार्लामेण्ट के सामने पेश करने की फिक्र में थी। ठीक इसी समय मजदूर-दल के लोग इंगलैंड की पार्लामेण्ट मे बहुमत पाकर मंत्रिमंडल बना पाये थे। श्री रैमसे मैकडोनल्ड प्रधान मंत्री हुए थे। आशा की जाती थी कि कर्नल वेजउड, जो हिन्दुस्तान के हिमायती समझे जाते थे, भारत मंत्री होगे। पर हिन्दुस्तान के अंगरेजों—विशेषकर सिविल-सर्विसवालों—के विरोध के कारण वह भारत-मंत्री नही बनाये गए। लार्ड ओलीवियर भारत-मत्री हुए। तो भी कुछ लोग मजदूर-दल के मत्रिमंडल से आशा रखते थे कि वह भारत को कुछ राजनैतिक अधिकार दे सकेगा। देश की परिस्थिति देखकर, विशेषकर हिन्दू-मुस्लिम दंगों को ध्यान में रखते हुए और कांग्रेस के अन्दर तथा देश में आपस के मतभेद के कारण बढ़ते हुए वैमनस्य को दूर करने की प्रबल आवश्यकता को महसूस करके, गांधीजी ने यह राय जाहिर की कि कांग्रेस को चाहिए कि असहयोग को स्थगित कर दे, ताकि सब लोगों

को उसमें आने का मौका मिल जाय।

महात्माजी के प्रस्ताव निम्नलिखित थे—(१) कांग्रेस विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार को छोड़कर अन्यान्य बहिष्कारों को स्थगित कर दे; (२) कांग्रेस वस्त्र के सिवा अन्य ब्रिटिश मालों का बहिष्कार छोड़ दे; (३) कांग्रेस खद्दर और चर्खे का प्रचार, हिन्दू-मुस्लिम एकता तथा हिन्दुओं मे अस्पृश्यता-निवारण का ही काम करे; (४) कांग्रेस मौजूदा राष्ट्रीय विद्यालयों को चलावे और आवश्यकतानुसार नये भी खोले; (५) चार आने की कांग्रेस मेम्बरी उठा दी जाय और उसके स्थान पर ऐसा नियम कर दिया जाय कि कांग्रेस का वही मेम्बर हो सके, जो कम-से-कम आधा घंटा रोज चर्खा चलावे और दो हजार गज अपने हाथ का कता सूत हर महीने कांग्रेस को दिया करे तथा इसके लिए गरीबी के कारण जो रूई न खरीद सकता हो उसे कांग्रेस की ओर से रूई दी जाय। इसका नतीजा यह होता था कि (१) कांग्रेस अथवा अपरिवर्तनवादियों की ओर से स्वराजियों का विरोध न किया जाय और उनको अपना संगठन करने का पूरा मौका दिया जाय; (२) दूसरे दलों के लोग कांग्रेस में शरीक होने के लिए आमंत्रित किये जायं; (३) अपरिवर्तनवादी लोग कौंसिल-प्रवेश के विरोध में परोक्ष या अपरोक्ष रीति से आन्दोलन करना छोड़ दे; (४) जो लोग बहिष्कारों मे विश्वास नही रखते, उनको इस बात की स्वतंत्रता दे दी जाय कि वे चाहे तो बहिष्कार छोड़ दे—अर्थात् वकील यदि चाहे तो वकालत करें और बहिष्कारो को न माननेवाले भी कांग्रेस में शरीक हो सके तथा पदाधिकारी भी बन सकें।

महात्माजी के इन प्रस्तावो पर सब लोग विचार करने लगे। श्रीमती एनी बेसेण्ट ने तो इनको एक प्रकार से मंजूर कर लिया। उनको कांग्रेस में शरीक होने का रास्ता खुलता दिखाई पड़ने लगा।

: ५७ :

गांधीजी का इक्कीस दिन का उपवास व एकता-सम्मेलन

यह चर्चा एक ओर चल रही थी और दूसरी ओर सारे देश में जहां-तहां हिन्दू-मुस्लिम दगे हो रहे थे। बिहार मे भी भागलपुर मे दंगा हो गया। वहा मुझे, दूसरे भाइयों के साथ, जाना पड़ा। कई दिनों तक वहा रहकर आपस के मेल-मिलाप के प्रयत्न मे लगा रहना पडा। और-और जगहो मे भी दगे हुए। इन बातो का असर गाधीजी के दिल पर बहुत हुआ। दिल्ली मे भारी दगा हो गया। वहा गाधीजी स्वय गये। वह कई दिनो तक वहा ठहरकर फिर किसी और काम से बम्बई की तरफ वापस गये। निजाम-राज्य के गुलबर्गा मे भी भारी फसाद हो गया। गाधीजी फिर दिल्ली गये। ठीक उसी समय सीमा-प्रान्त के कोहाट नगर मे बड़ा भारी दंगा हुआ। बहुतेरे लोग वहा मारे गये। बहुत-सा माल लूटा गया। बहुतेरे मकान भी जला दिये गए। गाधीजी इन घटनाओ से बहुत चिन्तित और परेशान थे। इन सबसे बहुत ऊबकर उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए इक्कीस दिनो का उपवास करने का निश्चय किया। यह निश्चय उन्होंने दिल्ली मे किया, जब वह मौलाना महम्मदअली के घर मे ठहरे हुए थे। वही उपवास का भी आरम्भ कर दिया।

महात्माजी के उपवास की खबर छपते ही सारे देश मे बड़ी चिन्ता व्याप गई। हाल ही मे वह बड़ी खतरनाक बीमारी से उठे थे। सब लोग, विशेषकर डाक्टर अंसारी—जो उनके स्वास्थ्य से अच्छी तरह परिचित थे—बहुत चिन्तित हो गये। उन्होंने इस निश्चय से गाधीजी को डिगाने का बहुत प्रयत्न किया। अपने प्रेम तथा अपनी डाक्टरी कला, दोनो का प्रयोग किया। पर गांधीजी अपने निश्चय से नही डिगे। अन्त में वह इतने सफल हुए कि उन्होंने गाधीजी से वचन ले लिया कि उनकी मृत्यु ही अगर इस उपवास का नतीजा होनेवाला हो, तो उस हालत मे वह उपवास तोड़ डालेंगे। उपवास आरम्भ हुआ। खबर पाते ही मैं भी दिल्ली पहुंच गया। गांधीजी, कुछ दिनों के बाद, मौलाना मुहम्मदअली के घर से हटाकर, शहर के बाहर, राय बहादुर सुलतानसिंह के एक बंगले में, ले जाकर ठहराये

गए। श्री एंडरूज उनकी सेवा के लिए आ गये। डाक्टर अंसारी तो दिन-रात देख-भाल करते ही रहते।

इधर लोगों पर इसका असर पड़े बिना न रह सका। मौलाना मुहम्मद-अली की प्रेरणा से एक सर्व-जाति-सम्मेलन दिल्ली में किया गया। इसमें हिन्दू, मुसलमान और सिक्ख नेताओं के अतिरिक्त ईसाई नेता भी शरीक हुए। कलकत्ते के लार्ड-बिशप डाक्टर कौस वेस्टकौट भी आये। कई दिनों तक बराबर बहस होती रही। जिन-जिन बातो को लेकर झगड़े हो जाया करते थे, उनके सम्बन्ध मे प्रस्ताव स्वीकार किये गए। मुख्य प्रस्ताव इस प्रकार थे—

१. देश में फैले हुए झगड़ों और फसादों पर—जो हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच हो रहे है तथा जिनसे जान-माल की बहुत हानि हुई है और मन्दिर भ्रष्ट किये गए है—यह सभा दुःख प्रकट करती है और इनको बर्बरता-सूचक और धर्म-विरुद्ध समझती है। इस सभा की राय में किसीका अपने हाथों में बदला लेने और सजा देने के अधिकार ले लेना केवल गैर-कानूनी ही नहीं, अधार्मिक भी है। सभी प्रकार के झगड़ों का निपटारा पंचायत द्वारा किया जाना चाहिए। जहां यह संभव न हो वहां कचहरियों द्वारा तय कराना चाहिए।

२. उपर्युक्त प्रस्ताव को कार्यान्वित कराने और आपस में रवादारी का बर्ताव कायम रखने के लिए इस सम्मेलन के मत में यह जरूरी है कि हरेक आदमी को पूरा अधिकार रहे कि वह जैसा चाहे अपना विश्वास रखे और उसे प्रकट कर सके तथा दूसरों के भावो का ध्यान रखते हुए और उनके अधिकार पर आघात न करते हुए अपने धार्मिक कामों को अदा कर सके। कोई व्यक्ति या समूह किसी दूसरे धर्म के प्रवर्तक पूज्य पुरुषों को गालियां न दे और सिद्धान्तो की निन्दा न करे। सभी धर्मों के पूजा-स्थान पवित्र और अक्षुण्ण समझे जायगे। किसी भी हालत मे, चाहे कितनी भी उत्तेजना क्यों न दी गई हो, बदला लेने के लिए भी उनपर कभी हमला न किया जाय और न उनको अपवित्र ही किया जाय। यदि कही इस तरह का काम हो तो उसकी निन्दा की जाय और सभी लोगों का यह कर्तव्य होगा कि अपनी शक्ति-भर वे इस तरह की कार्रवाई न होने दें।

३. हिन्दुओं को ऐसी आशा न करनी चाहिए कि मुसलमानों से गो-वध का हक, जबरदस्ती या किसी बोर्ड के प्रस्ताव से या व्यवस्थापिका सभा द्वारा कानून बनवाकर या अदालत के हुक्म से, छुड़वाया जा सकता है। पर मुसलमान उसे अपनी राय से छोड़ सकते हैं। इसलिए उसे उनकी ही सद्-बुद्धि पर छोड़ देकर आपस में मेल-जोल बढ़ाना चाहिए, जिसमें एक-दूसरे

के प्रति सद्भाव बढ़े। पर इसका यह अर्थ नही है कि कोई स्थानीय रवाज अथवा दोनो कौमो के बीच कायम हुआ आपस का समझौता बदल दिया जाय और न इसका यही अर्थ है कि, जहा गो-वध नही होता है, वहा गो-वध हो सके। जहां वस्तुस्थिति के सम्बन्ध मे मतभेद हो वहा उसकी जाच राष्ट्रीय पचायत करेगी। वध भी इस तरह किया जायगा कि हिन्दुओं को चोट न लगे।

४. इस सम्मेलन के मुसलमान सदस्य अपने सहधर्मियों से अनुरोध करते है कि जहातक हो सके, गो-वध कम करें। मुसलमानो को ऐसी आशा न करनी चाहिए कि वे मसजिद के नजदीक हिन्दुओं के बाजे को, जोर-जबरदस्ती या बोर्ड के प्रस्ताव से या व्यवस्थापिका सभा द्वारा कानून बनवाकर या अदालत के हुक्म से, रोकवा सकेंगे। वह हिन्दुओ की राय मे ही रुक सकता है। हिन्दुओ की सद्बुद्धि पर ही यह छोड़ देना चाहिए कि वे मुसलमानो की भावना का आदर करे। इसका अर्थ यह न समझा जायगा कि जहा-कही रवाज हो अथवा आपस का समझौता हो, वह इस प्रस्ताव द्वारा रद्द हो गया और न इसका अर्थ यह है कि जहा किसी मसजिद के सामने बाजा न बजता हो वहा बजने लगेगा। वस्तुस्थिति-सम्बन्धी मतभेद की जाच राष्ट्रीय पचायत करेगी। इस सम्मेलन के हिन्दू सदस्य हिन्दुओ से अनुरोध करते है कि वे मसजिदो के सामने इस तरह बाजा बजावे कि वहां जमायती नमाज मे खलल न पडे।

५. इस प्रकार के प्रस्ताव आरती और अजान के सम्बन्ध मे भी स्वीकृत किये गए।

६. जहा मांस की बिक्री और जानवरों के वध की इजाजत है, वहां वध के तरीके का—झटका या जिबह का—विरोध नही किया जायगा।

७. प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है कि वह चाहे जिस-किसी धर्म को माने और जब चाहे तब उसे बदल सके। धर्म बदलने के कारण वह दडनीय नही समझा जायगा और न उसको किसी तरह का कष्ट पहुंचाया जायगा।

८. प्रत्यक व्यक्ति अथवा समूह को अधिकार है कि बहस करके और समझा-बुझाकर दूसरो का धर्म-परिवर्तन करा सके अथवा जो उसके धर्म में से दूसरे धर्म मे चला गया हो उसे वापस ला सके। पर जबरदस्ती या धोखा देकर या दूसरे किसी नाजायज तरीके से—जैसे किसी चीज का लालच देकर—कोई किसीका धर्म-परिवर्तन न करावे।

९. धर्म-परिवर्तन के सम्बन्ध में कोई लुकी-छिपी बात न होनी चाहिए। किसीको यह अधिकार नही है कि दूसरे धर्मवाले को अपनी जगह मे पूजा-स्थान बनाने से रोके या उसमे बाधा डाले। नया पूजा-स्थान दूसरे धर्म के पूजा-स्थान से कुछ दूर बनाया जाय।

१०. पन्द्रह आदमियों की एक केन्द्रीय राष्ट्रीय पंचायत बनाई जाय और उसको अधिकार दिया जाय कि भिन्न धर्मों के स्थानीय प्रतिनिधियों की राय से वहां के लिए स्थानीय पंचायत कायम करे, जो इस प्रकार के सभी झगड़ों का निपटारा किया करे। पंचायत को अपने नियम बनाने का भी अधिकार होगा। इस पंचायत के सभापति महात्मा गांधी और सदस्य होंगे हकीम अजमल खा, श्री सी० के० नरीमन (पारसी), डाक्टर एस० के० दत्त (ईसाई), मास्टर सुन्दरसिंह लायलपुरी (सिख)। बाकी मेम्बरों को वे ही चुन लेंगे।

इस प्रयत्न से देश का वायुमंडल सुधरता दीख पड़ा। सभी धर्मों के लोग आपस में सद्व्यवहार और भाईचारे का बर्ताव करने का निश्चय करते जान पड़ने लगे। एकता-सम्मेलन का असर भी बहुत अच्छा हुआ। अगर वह स्थायी हो गया होता तो बड़ी बात हो जाती। पर वह स्थायी न हो सका। उस समय की सभी आशाएं आगे चलकर पूरी न हुईं!

मैं भी बराबर इस सम्मेलन में शरीक होता रहा। हर तरह से मैं उसकी सफलता चाहता था। पर बावजूद अच्छे वायुमंडल और सदिच्छाओं के, मेरे मन में हमेशा शक बना रहा; क्योंकि सारी बातों के पीछे उतनी जबरदस्त एकता की भावना नहीं थी जितनी इस शुभ प्रयत्न के फल को स्थायी बनाने के लिए आवश्यक थी। सभी मतवाले अपने हक और अधिकार पर ही अधिक जोर देते रहे, अपने कर्तव्यों पर उतना जोर नहीं देते थे। मैं तो यही मानता हूं कि इस प्रकार के झगड़े अपने-अपने कर्तव्यों पर ही जोर देने से सुलझ सकते हैं, हकों और अधिकारों पर जोर डालने से नहीं। पर उस समय जो कुछ हुआ, देखने में अच्छा ही लगा; इसलिए यह दिल की बात दिल के अन्दर ही रही।

उधर गांधीजी के उपवास के दिन बीतते चले जाते थे। डाक्टर अंसारी दिन में दो बार उनके पेशाब की जांच करते। एक दिन एक अद्भुत घटना हुई। मैंने डाक्टर अंसारी से ही सुनी। एक दिन पेशाब की जांच करने पर उन्होंने देखा, उसमें असिटोन की अधिक मात्रा निकली! यह अच्छा लक्षण नहीं है। यदि इसकी मात्रा बढ़ जाय तो आदमी बेहोश हो जाता है। उसके बाद उस आदमी को बचाना कठिन हो जाता है। इससे वह चिन्तित हुए। उन्होंने महात्माजी से कहा कि अब आप खतरे के निकट पहुंचने लगे हैं और हो सकता है कि इक्कीस दिन पूरे होने के पहले ही आपको अपने वादे के अनुसार उपवास तोड़ना पड़े।

असिटोन की मात्रा बढ़ती गई। डाक्टर अंसारी ने निश्चय किया कि अब अधिक ठहरना बहुत खतरनाक होगा। उन्होंने यह बात महात्माजी से

कही। आग्रह भी किया कि अब उपवास तोड़ना चाहिए। वह डरते थे कि कुछ ही घण्टो के बाद बेहोशी आ सकती है। उन्होने यह सब कहा और खिलाने पर जिद की। महात्माजी ने कहा कि आपने अपनी विद्या से सब-कुछ तो देख लिया है और सब हिसाब लगा लिया है; पर रात-भर मुझे छोड़ दीजिये। इसपर डाक्टरसाहब राजी नही होते थे। तब गांधीजी ने कहा कि आपने सबका हिसाब तो लगाया है, पर प्रार्थना के असर का हिसाब तो लगाया ही नही; आज मुझे छोड़ दीजिये। डाक्टरसाहब मान गये। दूसरे दिन पेशाब की जाच कर उन्होने कहा कि असिटोन का खतरा अब नही है और खिलाने का आग्रह छोड दिया। इसके बाद, उपवास की अवधि में, फिर कभी असिटोन का उपद्रव न हुआ। डाक्टर अंसारी की चिन्ता जाती रही। उन्होंने हम लोगो से कहा कि इस चमत्कार का कोई कारण हमारी चिकित्सा नही बतातीं—हम नही समझ सकते, यह कैसे हुआ!

महात्माजी, उपवास की पूरी अवधि में प्रत्येक दिन, अपने नियमानुसार चर्खा कातते रहे। उनको किसी तरह चारो ओर तकिया रखकर बिठा दिया जाता। उसी तरह बैठे-बैठे वह चर्खा चला लेते। अन्त में जब उपवास समाप्त करने का समय आया, तब प्रार्थना करके, चर्खा चलाकर और भजन गाकर, उन्होने नारगी का रस पीकर उपवास तोड़ा। मौलाना मुहम्मदअली ने इस अवसर पर बूचडखाने से एक गौ खरीदकर महात्माजी को भेट की। इसमे कितना प्रेम और सद्भाव भरा था!

: ५८ :

पटना-म्युनिसिपैलिटी में

जिस समय मैं बाबू हरिजी के मुकदमे में पटना में काम कर रहा था उसी समय पटना-म्युनिसिपैलिटी के सदस्यों का चुनाव हुआ। कांग्रेस ने यद्यपि कौसिलों में जाने का निषेध किया था, तथापि म्युनिसिपैलिटी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में जाना मना नहीं था। इस नीति के अनुसार सरदार वल्लभ-भाई पटेल अहमदाबाद-म्युनिसिपैलिटी में चुने गये और वहां के प्रेसिडेंट हुए। पंडित जवाहरलालजी इलाहाबाद-म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन हुए। पटना में भी राय हुई कि म्युनिसिपैलिटी के चुनाव में कांग्रेस की ओर से भाग लिया जाय। पटना के प्रमुख कांग्रेसी लोग खड़े भी हुए—जैसे मौलवी खुर-शेद हसनैन, सर्वश्री अनुग्रहनारायणसिंह, जगतनारायणलाल, बदरीनाथ वर्मा, अब्दुलबारी और मैं। हम लोगों की राय थी कि मौलवी खुरशेद हस-नैन चेयरमैन और अनुग्रहबाबू वाइस-चेयरमैन बनाये जायं। चुनाव में कठिनाई काफी थी, क्योंकि पटना में कुछ लोग बहुत दिनों से म्युनिसिपल कमिश्नर होते चले आये थे, उनको हटाना कठिन था। फिर भी कांग्रेस के बहुतेरे मेम्बर चुने गये, पर बहुमत नहीं हुआ। साथ ही, कांग्रेसी लोग ही संगठित थे और कार्यक्रम रखते थे। दूसरे लोग व्यक्तिगत रूप से ही चुने गये थे। मौलवी खुरशेद हसनैन के चुने जाने में काफी दिक्कत पड़ी; क्योंकि उनके विरुद्ध एक हिन्दू खड़े थे—उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम सवाल पेश कर दिया; अपने वोट के बक्स पर उन्होंने गाय की तस्वीर बना दी। यहांतक सुना गया कि वह एक बछिया लेकर दरवाजे-दरवाजे जाते और हिन्दुओं से बछिया के लिए वोट मांगते! हम लोग चिन्तित थे कि मौलवी खुरशेद हस-नैन साहब-जैसा चुस्त कांग्रेसी यदि न चुना जायगा, तो हमारे लिए बहुत शर्म की बात होगी। हम लोगों ने भी काफी जोर लगाया। वह काफी बहु-मत से चुने गये।

यह सब झगड़ा देखकर मौलवी खुरशेद हसनैन ने निश्चय किया कि वह चेयरमैनी के लिए उम्मीदवार नहीं होंगे, मुझे ही चेयरमैन होना चाहिए। मेरी इच्छा बिलकुल नहीं थी। समय भी मेरे पास नहीं था; क्योंकि उन दिनों मैं एक बड़े मुकदमे में काम कर रहा था। पर वह किसी तरह राजी

न हुए। मुझे चेयरमैन होना मंजूर करना पड़ा। अनुग्रहबाबू भी उसी बड़े मुकदमे में दूसरे पक्ष की ओर से काम कर रहे थे। वह वाइस-चेयरमैन हुए। इस चुनाव का नतीजा यह हुआ कि कुछ भाई, जो कांग्रेस के हामी समझे जाते थे और जिनसे हम मदद की आशा रखते थे, हमारे पक्के विरोधी हो गये। उन लोगों ने म्युनिसिपैलिटी के अन्दर हम लोगों का एक विरोधी दल संगठित कर लिया। कोई भी बात पेश हो, उसका विरोध उस दल का, विशेषकर दो-तीन भाइयों का, मुख्य काम हो गया। म्युनिसिपैलिटी के जल्सों मे बहुत समय लगता और काम कुछ भी आगे न बढता। यहातक कि किसी-किसी दिन पिछली बैठक की कार्रवाई की रिपोर्ट मंजूर करने में ही तीन-चार घंटे लग जाते।

खैर, हम लोगों ने काम शुरू किया। मुकदमे से फुर्सत हो जाने के बाद हम दोनों ने पूरा समय देना शुरू किया। हम दोनों म्युनिसिपल काम से पूरे नावाकिफ थे। हम दोनों को पहला ही अवसर ऐसे काम करने का मिला था। पर हमने शीघ्र ही सब बातों को जान लेने का प्रयत्न किया और काम चलने लगा। उसी समय गया के डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड का भी चुनाव हुआ। वहां के लोगों ने अनुग्रहबाबू को बोर्ड का केवल मेम्बर ही नहीं, चेयरमैन भी चुन लिया। दोनों जगहों का काम सभालना कठिन था। इसलिए कुछ दिनों के बाद अनुग्रहबाबू ने पटना की वाइस-चेयरमैनी से इस्तीफा दे दिया। अब वह गया का ही काम सभालने लगे। पटने मे मेरे साथ वाइस-चेयरमैन हो गये मिस्टर सैयद महम्मद, जो कांग्रेस टिकट पर तो नहीं चुने गये थे, पर हम लोगों को बहुत ही मुस्तैद और अच्छे सज्जन मालूम हुए। उन्होंने म्युनिसिपैलिटी मे काम भी अच्छा किया।

म्युनिसिपैलिटी की दिक्कतें बहुत थीं—आमदनी कम थी, खर्चा ज्यादा था। कोई भी काम बिना खर्च के नहीं हो सकता था। नये टैक्स के बिना आमदनी बढ नहीं सकती थी। उस समय सर गणेशदत्तसिंह बिहार-सरकार के मन्त्री थे। उन्होंने भी हम लोगों को वहां का अच्छा इन्तजाम करने मे प्रोत्साहन दिया। राची जाकर मैंने उनसे म्युनिसिपैलिटी के बारे में राय ली। जब मै राची मे उनके साथ ठहरा था, उसी समय तार मिला कि बाबू हरिजी हाइकोर्ट में अपील का मुकदमा जीत गये। यह जानकर बहुत खुशी हुई। इस प्रकार म्युनिसिपैलिटी का काम मै बहुत जी लगाकर करता रहा। प्रायः प्रतिदिन तीन-चार घटे आफिस मे काम करता। दो-तीन घंटे शहर में घूम-फिरकर मुहल्लो से परिचय प्राप्त करता और काम की निगरानी भी।

म्युनिसिपैलिटी की दिक्कतें कई प्रकार की थी। शहर लम्बाई में प्रायः

दस मील और औसत चौड़ाई मे केवल एक मील का था। इससे बहुत लम्बी सड़क की जरूरत थी। मेरे-जैसे आदमी के लिए, जो शहर के पश्चिमी हिस्से मे रहता था और जिसके पास एक्के के सिवा दूसरी सवारी नही हो सकती थी, पूर्वी हिस्से की निगरानी के लिए जाना कई घंटो का काम हो जाता था। यही हाल म्युनिसिपैलिटी के वेतन-भोगी कर्मचारी लोगो का भी था। हैल्थ-अफसर और इंजीनियर को घोडा-गाड़ी के लिए भत्ता मिलता। गाड़ी पर चलने में, एक्के के मुकाबले मे, इज्जत अधिक मिलती थी; पर जल्दी पहुंचने के काम मे कोई विशेष मदद नही मिलती थी, बल्कि तेज एक्का गाडी से ज्यादा जल्द पहुंच सकता था। यही सोचकर, और खर्च को भी कम करने के खयाल से, मैंने एक्के पर चलना ही पसन्द किया। चेयरमैन को, सवारी के लिए या और किसी भी खर्च के लिए, भत्ता नही मिलता। एक्के का भाड़ा भी अपने पास से ही देना होता। गाडी का भाड़ा कम-से-कम एक्के से दुगना या तिगुना पड़ता। मुझसे पहले वहा के चेयरमैन अधिकतर पटने के नवाब-घरानो के ही लोग हुआ करते थ, जिनको सवारी की दिक्कत नही थी और जो अपने खर्च से अच्छी-से-अच्छी सवारी रक्खा करते थे। मै ऐसा नही कर सकता था; क्योकि मेरे पास इसके लिए रुपये नही थे। जब मैंने एक्के पर सवार होकर म्युनिसिपल आफिस मे, जो मेरे ठहरने के स्थान, 'खद्दर-भंडार,' से प्राय. चार मील की दूरी पर था, जाना शुरू किया तो पटने के उच्चवर्ग के लोगो मे जहां-तहां इसकी टीका-टिप्पणी होने लगी, जिसमे कुछ पुराने खयाल के प्राचीन म्युनिसिपल कमिश्नर भी शरीक थे। पर मैंने इसकी परवा नही की। इसमें मुझे एक अंगरेज सिविलियन से प्रोत्साहन भी मिला। मिस्टर जौन्सटन पटने के अडिशनल मजिस्ट्रेट थे। वह शहर के पूर्वी हिस्से मे रहा करते थे। कचहरिया प्रायः पश्चिमी छोर पर है। वह भाड़े के एक्के पर ही कचहरी आया करते थे। इतना ही नही, कभी ऐसा भी देखा जाता कि पूरे एक्के को नही लेते—दूसरो के साथ साझे मे एक्का किराया करते, और जबतक दूसरा साथी न मिल जाता, एक्कावान एक्के को पड़ाव पर घुमाता रहता और दूसरे साझेदार के लिए चिल्लाता रहता! मैं इतनी दूर तक नही गया, क्योकि मुझे एक ही स्थान तक नही जाना होता। जब मै निकलता तो निगरानी का काम करता हुआ आफिस जाता और वहा से फिर शहर की निगरानी करता हुआ वापस आता। इस शर्त पर कोई साझेदार नही मिल सकता था। इसलिए मुझे अपने लिए अलग एक्का लेना पड़ता। हा, जबतक अनुग्रहबाबू वाइस-चेयरमैन थे, हम दोनो साथ जाते-आते।

शहर की लम्बाई की वजह से, निगरानी के अलावा, और कामों में भी

काफी अड़चन पड़ती थी, जिसका अनुमान आसानी से किया जा सकता है। पटना कोई नया बसता हुआ शहर नही है। वहां व्यापार विशेषकर स्थानीय काम के लिए ही है। पहले जब नदियों द्वारा ही माल का आयात-निर्यात हुआ करता था तब पटना विशेष महत्व रखता था; क्योंकि यहां गंगा बहती है। गंगा-गंडक-संगम तो यहा है ही, सोनभद्र तथा सरयू का सगम भी यहा से बीस-पच्चीस मील के अन्दर ही है। पर रेल हो जाने से वह बात अब न रही। इसलिए अब यह व्यापार का केन्द्र भी न रह गया। नये कल-कारखाने भी कम ही है, कोई विशेष वृद्धि उनकी अभी तक नही हुई है। १९२४ मे तो वे और भी कम थे। यहा प्रान्तीय राजनैतिक केन्द्र होने से कुछ लोग सरकारी दफ्तरों में और कुछ वकील-बैरिस्टर—हाइकोर्ट से सम्बन्ध रखनेवाले—अवश्य रहते है। इसलिए, जहां ये सब रहते है, उस पश्चिमी हिस्से मे कुछ रौनक है। पूर्वी हिस्सा पुराना मुहल्ला है, जो अब अपनी रौनक बहुत-कुछ खो चुका है। इसलिए शहर की म्युनिसिपैलिटी की आमदनी कुछ ज्यादा नही है।

आधुनिक समय के साधनो का भी प्रायः अभाव-सा ही यहा था। खुले पनाले होने के कारण मच्छरो की भरमार है। नाले भी साफ नही रखे जा सकते, क्योंकि पानी का कोई अच्छा निकास नही है। पहले यहां हर घर में कुएं की शक्ल के पाखाने हुआ करते थे, जो कभी साफ नही किये जाते थे। जब वे बहुत दिनो के बाद कभी पट जाते होंगे तो उनकी बगल मे दूसरे कुएं बना लिये जाते होंगे। इस कारण, शहर का स्वास्थ्य बहुत खराब रहा करता था। हम लोगो के समय के पहले से म्युनिसिपैलिटी ने इन कुएवाले पाखानो को बन्द कर दिया था। तो भी ये जहां-तहां रह गये थे। उनको हमने बन्द कराया। प्राय. ऐसे कुओ के निकट ही प्रत्येक घर मे पानी के कुएं भी हुआ करते थे। पानी प्राय. सभी जगहो खारा हुआ करता था। कहीं-कहीं मीठा पानी भी मिल जाता था। इसलिए लोग अधिकतर पीने के लिए गगाजल ही काम मे लाया करते थे। बरसात मे गगाजल भी गदला हो जाया करता है। तब लोगों की दिक्कते बढ जाती थी। इसलिए यहा पानी-कल की आवश्यकता लोग महसूस करते थे। हमारे ही पहले पानीकल और बन्द नालो की बात चली थी। खर्च का अनुमान-पत्र भी बना था। पर अर्थाभाव से वह जहा-का-तहां पड़ा रह गया।

हमने इन सब चीजो की ओर ध्यान दिया और खर्च का अन्दाजा लगाने लगे। एकबारगी इन सारे कामों के खर्च के लिए प्रान्तीय सरकार से मदद मांगी जा सकती थी। शायद कुछ मिल भी जाती। पर इनके चलाने और कायम रखने के लिए तो म्युनिसिपैलिटी को ही खर्च देना

पड़ता। उसके पास इसके लिए, बिना नया 'कर' लगाये, पैसे नहीं हो सकते थे। लोगों को शुद्ध और अच्छा दूध मिलना कठिन था। हमने इस-पर भी विचार किया कि म्युनिसिपैलिटी की ओर से गोशाला कायम की जाय, जो मुनासिब कीमत पर लोगों को शुद्ध दूध दे सके। पर यह सब-कुछ रुपयों पर ही निर्भर था। इसलिए, हमने आमदनी बढ़ाने का रास्ता ढूढ़ना शुरू किया। संयुक्त प्रान्त की म्युनिसिपैलिटियों को, शहर मे आने-वाले माल पर चुगी लगाने से, बहुत आमदनी होती है। हमने पटना शहर में भी चुगी लगाने की बात सोची। इसका अन्दाजा हमने लगाया कि चुगी द्वारा कितनी आमदनी बढ़ेगी। इस तरह के प्रस्ताव को पहले म्युनिसिपै-लिटी से मंजूर कराना होता और फिर प्रान्तीय सरकार से। जब म्युनिसि-पैलिटी मंजूर कर लेती तब बात आगे बढ़ती।

म्युनिसिपैलिटी के अन्दर घूसखोरी भी खूब चलती थी। जो खर्च होता था उसका भी पूरा नफा जनता को नही मिलता था। हमने इसको रोकने का प्रयत्न किया। फलत. कर्मचारी हमसे मन-ही-मन बिगड़ गये, यद्यपि, ऊपर से वे कुछ नही कर सकते थे। कुछ म्युनिसिपल कमिश्नर भी इस मामले में कर्मचारियों के साथ थे और उनसे सहानुभूति रखते थे, हमारे प्रयत्न उनको भी नापसन्द थे! वे उस दल मे बहुत उत्साह से शरीक हो गये, जो हमारे विरोध के लिए बना था। वे हर मौके पर विरोध-ही-विरोध किया करते। फिर भी, सब बातो को सोच-विचारकर हमने चुगी की बात उठाई और उसे पेश किया। म्युनिसिपैलिटी के अधिकांश मेम्बरो ने विरोध किया। प्रस्ताव नामजूर हो गया। उन लोगो का कहना था कि वे उन सभी सुवि-धाओं से, जो हम उन्हे देना चाहते थे और जिनका जिक्र ऊपर किया गया है, वंचित भले ही रहे, पर किसी तरह के नये कर को मंजूर नही करेंगे। हमने देखा कि शहर की सफाई, सड़क का सुधार और शिक्षा-सम्बन्धी कोई भी उन्नति हमारे किये न हो पायगी। बहुत समय लगाकर और काफी परिश्रम करके हम कोई भी बात पेश करते, विरोधी दल उसका विरोध करता। इस प्रकार कोई भी अच्छा काम करना कठिन हो जाता। इसलिए बारह-चौदह महीनों तक वहा रहकर हमने इस्तीफा दे दिया। इस्तीफा देने के सिवा दूसरा कोई रास्ता ही न था; क्योंकि समय की बरबादी केवल हाथ रहती। जनता को हमसे कोई लाभ नही पहुचता था।

हमारे समय में एक बात हो गई—बिजली-कल की स्थापना। म्युनि-सिपैलिटी को इसमें और कुछ नही करना था। केवल पुरानी बत्तियों की जगह, सड़को पर, बिजली-बत्ती लगा लेने की बात थी। किसी तरह लोगों ने यह मंजूर कर लिया। हमारे समय मे ही बिजली-कम्पनी से बातचीत

तय हो गई। हमारे हटने के कुछ ही दिनों बाद बिजली-बत्ती जलने लगी। दूसरी बात यह हुई कि हमने म्युनिसिपैलिटी के मेहतरों की हालत सुधारने का थोड़ा प्रयत्न किया। एक आदमी उनके मुहल्लों में जाकर उनसे मिलता। उनके घरों और बच्चों को साफ रखने की बातें उनसे करता। सप्ताह में एक दिन संकीर्तन या कथा का भी प्रबन्ध करता। इस अवसर पर प्रसाद के लिए कुछ मिठाई बाटी जाती। शुरू में इस लालच से वे लोग, विशेषकर बच्चे, संकीर्तन और कथा में शरीक होते। इसमें जो खर्च पड़ता, उसका प्रबन्ध बाहर से किया जाता। विशेष प्रयत्न इसका भी किया जाता कि वे शराब पीना छोड़ दें। कुछ सफलता होती दीख पड़ी। पर हम वहां काफी समय तक रह न सके। हम लोगों के हटने के बाद शायद यह काम बन्द हो गया।

एक तीसरा काम और भी किया गया। हमने देखा कि इन लोगों के पास पैसे तो आते हैं; पर उनका दुरुपयोग होता है। इससे उनकी हालत बहुत बुरी थी। मेहतर का मुशाहरा दस-बारह रुपये मासिक होता। स्त्रियों को पुरुषों से दो रुपये मासिक कम मिलता। छोटे लड़कों को पांच रुपये मासिक मिलता। इस तरह, यदि एक घर में एक पुरुष और उसकी स्त्री तथा दस-बारह बरस के दो बच्चे होते, तो उसकी मासिक आमदनी प्रायः तीस रुपये हो जाती, जो किसी भी सरकारी दफ्तर के क्लर्क का मुशाहरा है। पर जब हम देखते हैं कि क्लर्क को साफ-सुथरे कपड़े और जूते पहनकर कचहरी जाना पड़ता है, उसके घर के स्त्री-बच्चे स्वयं कुछ नहीं कमा सकते—क्लर्क की आमदनी पर ही निर्भर रहते हैं, तो स्पष्ट हो जाता है कि मेहतर का परिवार इस मुशाहरे के लिहाज से अधिक कमाता है। साथ ही, मेहतर को उन घरों से, जहां वह काम करता है, म्युनिसिपैलिटी के मुशाहरे के अलावा कुछ-न-कुछ मिल ही जाता है; पर्व-त्योहार के अवसर पर भी कुछ आमदनी हो ही जाती है, तो भी उनकी हालत इतनी खराब क्यों रहती है। हमने इसके दो कारण देखे, एक तो शराबखोरी और दूसरा—कर्ज पर सूद! जिस दिन मुशाहरा बटता उस दिन उनका महाजन वहां हाजिर रहता! जो मुशाहरा उन्हें मिलता, महाजन ही ले लेता! उसी रुपये को वह अपने पुराने कर्ज और सूद में सधा लेता। उसी दिन से फिर कर्ज लेकर ही मेहतर अपना काम चला सकता। कर्ज का सूद भी बहुत देना पड़ता। इसका नतीजा यह होता कि वह कभी कर्ज से बरी न हो पाता। हर महीने में एक अच्छी रकम सूद में चली जाती।

हमने इस अर्थ-संकट से उनको बचाना चाहा। दरियाफ्त करने से मालूम हुआ कि मुशाहरा महीने में एक दिन मिलता है। वे महीने में कई

बार करके कर्ज लेते है, जिसको महीने के अन्त में सूद के साथ अदा करना पड़ता है। हमने चाहा कि वे कर्ज लेना बन्द करें; पर वे इसपर राजी नहीं होते थे। हमने मुशाहरा बांटने के स्थान पर महाजनों को आने से रोकना चाहा, तो मेहतर बिगड़ गये और हड़ताल करने पर तैयार हो गये! उनका कहना था कि महाजनो से उनका काम बहुत आसानी से चलता है, इसलिए वे उनको छोड़ नही सकते। वे यह भी कहने लगे कि जबतक उनका कर्ज अदा न हो जाय, महाजन उनको छोड़ेंगे नही। हमने सारे कर्ज को अदा कर देने का वादा किया और समझाया कि महाजन से रुपये न लेने से उनको बहुत बचत होगी। वे यह जल्दी समझने को तैयार न थे। हमने महीने के अन्त के बदले बीच के पन्द्रहवे दिन मुशाहरा देने का प्रबन्ध कर दिया। यह भी कह दिया कि जब जरूरत होगी, इस शर्त पर पेशगी मुशाहरा भी मिल सकेगा और मुशाहरा मिलने के दिन पेशगी दी हुई रकम काट ली जायगी। बहुत मेहनत के बाद उन्होंने यह बात समझी, और राजी हुए। नतीजा यह हुआ कि कुछ दिनों के बाद, जब उन्होंने इस प्रबन्ध से लाभ देखा तो, वे बहुत प्रसन्न हुए। मालूम नही, हम लोगों के हट जाने के बाद यह प्रथा जारी रह सकी या नही। म्युनिसिपैलिटी से हटने मे, इसी एक बात का अफसोस रहा कि हरिजनो की थोड़ी-बहुत सेवा शायद की जा सकती, जो न की जा सकी।

जिस समय हम लोग पटना-म्युनिसिपैलिटी मे काम कर रहे थे, प्राय: उसी समय कई अन्य जिलो के डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड और म्युनिसिपैलिटियो में भी कांग्रेसी लोग चुने गये। पहले कहा जा चुका है कि गया के डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड मे अनुग्रहबाबू चेयरमैन हुए थे। मुंगेर-डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड के चेयरमैन शाह महम्मद जुबैर और वाइस-चेयरमैन श्री श्रीकृष्णसिह, छपरा-डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड के चेयरमैन मजहरुल हकसाहब, चम्पारन में पहले बेतिया-म्युनिसिपैलिटी और पीछे चम्पारन-जिला-बोर्ड के चेयरमैन श्री विपिनविहारी वर्मा, मुजफ्फरपुर-म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन श्री विन्ध्येश्वरीप्रसाद वर्मा और वहां के डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड के चेयरमैन श्री रामदयालुसिह हुए। भागलपुर-डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड के चेयरमैन श्री कैलाशविहारीलाल हुए। दरभगा मे चेयरमैन बाबू हरिनन्दनदास और वाइस-चेयरमैन मिस्टर मुहम्मद शफी (बैरिस्टर) हुए। छोटा नागपुर के डिस्ट्रिक्ट-बोर्डों मे चेयरमैन वहां के डिप्टी-कमिश्नर हो सकते थे और वाइस-चेयरमैन गैर-सरकारी आदमी। इसलिए वहां मानभूम मे श्री जीमूतवाहन सेन और हजारीबाग मे श्री रामनारायण सिह वाइस-चेयरमैन हुए। इस प्रकार हमारे सूबे के अनेक स्थानों मे, इन स्थानीय संस्थाओं में, कांग्रेसी लोगों के हाथों में अधिकार आया और वे काम करने

लगे। जिस तरह की दिक्कतें पटने मे थी वैसी और जगहों में नहीं थीं। केवल छोटा नागपुर में, अक्सर चेयरमैन और वाइस-चेयरमैन के बीच, उठा-पटक होती रहती थी। हमारे आदमियों ने, प्रायः सभी जगहों में, काम अच्छा किया। लोगों पर भी प्रभाव अच्छा ही पड़ा। पर मै इस काम से संतुष्ट न था।

चुनाव होने के पहले ही, कांग्रेसी लोगों मे, उम्मीदवार बनने के बारे मे, परस्पर बड़ी स्पर्धा होने लगी। कुछ लोग उम्मीदवार न बनाये जाने पर दुःखी होते। कुछ लोग समझने लगे, हमने देश की सेवा की है, इन बोर्डों मे स्थान मिलना एक प्रकार से उसी सेवा का इनाम है! अपना दावा पेश करने मे वे अपनी सेवाओं की बात पेश करते! इससे मेरे दिल पर यह असर पड़ा कि अभी तो एक बहुत छोटी बात सामने आई है और इतने ही में लोग उम्मीदवार बनाये जाने के लिए अपनी-अपनी सेवाओं की तालिका तैयार करा रहे है, तो आगे चलकर न मालूम क्या होगा। मैंने कुछ दिनों के अनुभव के बाद एक लेख कलकत्ते के 'माडर्न रिव्यु' में लिखा था। उसमे अपना नाम नहीं दिया था। पर उसमे उस समय के अपने विचारों को व्यक्त कर दिया था। बहुत जगहों मे, काम अच्छा होने पर भी, आपस मे कुछ मनोमालिन्य हो ही गया। इस बारे मे मुंगेर का जिला-बोर्ड बिलकुल अछूता रहा। वहा कभी आपस की वैसी स्पर्धा देखने मे न आई जैसी अन्य स्थानों मे। इसका श्रेय वहां के कार्यकर्ताओं और नेताओं को है। यद्यपि मेरा अपना विचार इन बोर्डों मे शरीक होने के खिलाफ हो गया, तथापि और सभी साथियों के विचार भिन्न थे। इसलिए मैंने अपने विचारों को दबा रक्खा। मैं हमेशा कांग्रेसी लोगों को चुनाव मे भाग लेने देता रहा। यथासाध्य उनकी मदद भी करता रहा।

जिस समय हम लोग म्युनिसिपैलिटियों और जिला-बोर्डों मे काम कर रहे थे, बिहार की सरकार ने एक बिल पेश किया। उसका आशय यह था कि बोर्डों के हिसाब जाच करनेवाले सरकारी निरीक्षक (ऑडीटर) को अधिकार होगा कि वह इस बात का फैसला कर सके कि कोई खर्च, जो बोर्ड या बोर्ड के किसी पदाधिकारी ने किया हो, गैरकानूनी है। और, यदि वह उचित समझे तो ऐसे गैरकानूनी खर्च की रकम उस पदाधिकारी से अथवा उन मेम्बरों से, जिन्होंने इस खर्च की मंजूरी दी हो, वसूल करने का निश्चय करे। १९२२ में म्युनिसिपैलिटी और जिला-बोर्ड के कानून संशोधित और परिवर्धित किये गए थे, इन बोर्डों को अपने चेयरमैन चुनने का अधिकार मिला था और अन्य प्रकार से भी जनता के प्रतिनिधियों को कुछ नये अधिकार मिले थे। इस नये बिल का आशय यह था कि जो नये अधिकार

दिये गए हैं वे दूसरे प्रकार से कम कर दिये जायं। सबसे बड़ी बात यह थी कि हिसाब-परीक्षक को कानूनी बातों पर फैसला देने का अधिकार दिया गया था। इससे हमारे सूबे के बोर्डों में नये चुने हुए मेम्बरों को ये बातें बहुत खटकी। दूसरे लोगों को भी ये पसन्द न आई। बोर्डों और जनता की ओर से बिल का जोरदार विरोध होने लगा।

इसी सिलसिले में, इसपर तथा बोर्ड-सम्बन्धी अन्य विषयो पर विचार करने के लिए, बोर्डों के प्रतिनिधियो की एक कांफ्रेस करने की राय ठहरी। यह काफ्रेस पटने मे की गई। मौलाना मजहरुल हकसाहब, जो सारन-जिला-बोर्ड के चेयरमैन थे, इसके सभापति होने को थे। मुगेर-जिला-बोर्ड के चेयरमैन शाह महम्मद जुबैर ने इसका उद्घाटन किया। मजहरुल हकसाहब के अकस्मात् अस्वस्थ हो जाने के कारण मुझे ही उसका सभापति बनना पड़ा। सारे सूबे के प्रायः सभी मुख्य-मुख्य जिला-बोर्डों और म्युनिसिपैलिटियों के प्रतिनिधि इसमे शरीक हुए। सर्व-सम्मति से आडिट बिल की निन्दा की गई। बोर्ड-सम्बन्धी दूसरे विषयो पर भी विचार किया गया। एक विषय, जो उन दिनों बड़े महत्व का हो गया था, यह था कि जिला-बोर्ड के इंजीनियर बोर्ड के नौकर न रहकर प्रान्तीय सरकार के नौकर हो। इसका भी विरोध किया गया। शिक्षा-सम्बन्धी प्रश्न पर भी विचार हुआ। कहा गया कि पाठ्य-पुस्तकों को चुनने के लिए जो कमिटी है, उसका संगठन हो और उसमे बोर्डों के प्रतिनिधियो को स्थान दिया जाय। कांफ्रेस ने एक छोटी स्थायी कमिटी कायम कर दी। और, इस प्रकार के सम्मेलन की आवश्यकता तथा उपयोगिता महसूस करके फिर समय पर मिलने का भी निश्चय किया। मैं समझता हूं कि बोर्ड से हमारे हट जाने के बाद भी यह कांफ्रेस जबतब होती और बोर्ड-सम्बन्धी विषयों पर विचार-विनिमय करती रही।

एक दुर्घटना इन बोर्डों के चुनावों को लेकर और भी हुई, जिसका असर बहुत बुरा पड़ा। १९२२ मे ही हिन्दू-मुस्लिम झगड़े जहा-तहां शुरू हो गये थे। अकसर बलवे की खबर किसी-न-किसी जगह से आती ही रहती थी। हम लोग बहुत बेचैन रहा करते थे। अपने सूबे में दंगा न होने देने के प्रयत्न में हम सतत लगे रहते थे। पर यहा भी कई जगहों मे दंगे हो ही गये। आज उन सब जगहों के न तो नाम ही याद है और न क्रम से उनकी तारीख ही मैं बतला सकता हूं। इसके लिए उन दिनो के समाचारपत्रों की फाइलें देखनी होंगी। पर ये दंगे इतने बढ़ गये थे और इतने स्थानों में होते रहे कि इनका असर पड़े बिना रह नही सकता था। शुद्धि और तबलीग संगठन और तंजीम के प्रचार ने लोगो में इस हिन्दू-मुस्लिम कशमकश को

और भी बढ़ा दिया। आपस का मनोमालिन्य बढ़ता ही गया। जहां बलवा न भी हुआ वहां भी दुर्भाग्यवश पारस्परिक विश्वास न रहा। उधर खिलाफत का मामला एक प्रकार से, जब तुर्कों ने खलीफा को हटा दिया तो, स्वभावतः कुछ ढीला पड़ गया। बहुत-से मुसलमान, जो कांग्रेस में खिलाफत के कारण ही शरीक हुए थे, आहिस्ता-आहिस्ता अलग होने लगे। यह साफ दीखने लगा कि १९२१-२२ की तरह सभी बातों में वे एकमत नहीं रह सकते। जनता पर दलों का विशेष प्रभाव पड़ता था। बिहार जैसे हिन्दू-प्रधान सूबे में मुसलमानों के चुने जाने में दिक्कत पड़ने लगी।

पटना-म्युनिसिपैलिटी में मौलवी खुरशैद हसनैन के चुनाव की दिक्कतों का जिक्र ऊपर कर चुका हूं। यहां हम लोगों ने खूब जोर लगाया। मौलवी-साहब को कुछ करने न दिया। वह बड़े बहुमत से चुने गये। इसी तरह छपरे में, मजहरुल हकसाहब की सेवा, त्याग तथा व्यक्तित्व का बहुत बड़ा प्रभाव था। तो भी कुछ लोगों ने दिक्कत पैदा करने का प्रयत्न किया। वहांपर मेरे भाईसाहब की बहुत धाक थी। उन्होंने वहां उठी हुई दिक्कतों को दबा दिया। हकसाहब आसानी से चुने गये। मुंगेर में जुबैरसाहब को लोग बहुत मानते थे। वहां कोई दिक्कत पेश न आई। मुजफ्फरपुर में मौलवी मुहम्मद शफी की सेवा और त्याग किसीसे कम न था। पर कांग्रेसी लोगों में उतना ऐक्य नहीं था अथवा जनता पर वे अपना उतना अच्छा प्रभाव न डाल सके। नतीजा इसका यह हुआ कि मौलवी शफी हार गये। हम सबको इसका बहुत अफसोस हुआ। पर हम लाचार हो गये। मौलवी शफीसाहब के दिल पर इसका असर पड़ा। पर उस समय उन्होंने उसे दबा रखा और काम करते रहे। किन्तु इसका बुरा परिणाम पीछे देखने को मिला, जब उन्होंने कांग्रेस छोड़कर मुस्लिम संस्था कायम करने में अपना समय लगाना शुरू कर दिया। यह कुछ दिनों के बाद हुआ; पर इसका सूत्रपात डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड के चुनाव की हार में ही हो गया था। यद्यपि इन चुनावों में यथासाध्य मुसलमानों के चुनवाने का प्रयत्न किया गया और वे अच्छी संख्या में चुने भी गये, तथापि बिहार के मुसलमानों ने महसूस किया कि वे काफी संख्या में नहीं चुने गये। ऐसे मामलों में विश्वास बड़ी चीज होती है। वह अकारण भी कमजोर पड़ सकता है। इन पंक्तियों के लिखने के समय मेरे सामने उन चुनावों के नतीजों के आंकड़े तो नहीं हैं; पर मैं समझता हूं कि मुसलमानों के साथ कोई अन्याय नहीं हुआ था। हां, जहां-तहां कुछ कमबेश चुने गये हों अथवा प्रमुख व्यक्ति न चुने गये हों; परन्तु

सारे सूबे पर दृष्टि डालने से मालूम होगा कि उस वक्त कांग्रेसी लोगों ने उनको चुनवाने में यथासाध्य खूब परिश्रम किया और वे सफल भी हुए। पर बहुतेरे मुसलमानों का विश्वास कम हो गया, जिसका बुरा परिणाम पीछे कुछ दिनों के बाद देखने मे आया।

: ५९ :

बंगाल में दमन : स्वराज्य पार्टी के साथ समझौता : बेलगांव-कांग्रेस

गांधीजी का उपवास समाप्त होने के बाद उनको कुछ समय स्वास्थ्य लाभ करने में लगा। वह कोहाट जाने के लिए बेचैन थे, पर गवर्नमेण्ट ने वहां जाने की इजाजत नहीं दी। इसी समय गवर्नमेण्ट ने एक और चक्र चलाया। उसने एक नया आर्डिनेन्स यह कहकर जारी किया कि बंगाल में विप्लववादी लोग फिर षड्यन्त्र कर रहे हैं और जहां-तहां उनके द्वारा हत्याएं की जा रही हैं। 'डे' की हत्या और चन्द दूसरी घटनाओं का हवाला देते हुए इसकी आवश्यकता बतलाई गई। साथ ही, श्री सुभाषचन्द्र बोस तथा बहुतेरे दूसरे कार्यकर्ता एक दिन बंगाल में गिरफ्तार कर लिये गए। यद्यपि इसकी अफवाह कुछ पहले से थी कि देशबन्धु दास भी गिरफ्तार किए जायंगे, तथापि वह पकड़े नहीं गये। इस आर्डिनेन्स और इन गिरफ्तारियों से सारे देश में सनसनी फैल गई। सब लोग क्षुब्ध हो उठे। इनसे नरम दलवाले भी काफी नाराज हुए। स्वराज्य पार्टी के लोगों के विचार में तो यह आर्डिनेन्स विशेषतः उनपर ही लागू करने के लिए बनाया गया था; क्योंकि उन्होंने बंगाल और मध्यप्रदेश में मन्त्रिमंडल तोड़ डाला था और वहां नई योजना एक प्रकार से काम नहीं कर रही थी। महात्माजी भी इससे बहुत रुष्ट हुए। उन्होंने देशबन्धु दास और पंडित मोतीलालजी के साथ तुरन्त समझौता कर लिया। सारे देश में सभाएं हुईं, सभी बड़े-बड़े नेताओं ने पत्रों में अपने बयान छपवाये, जिनमें सरकार की कार्रवाइयों की कड़ी निन्दा की गई। पटने में भी एक बड़ी सभा हुई। उसमें सभी विचारों और दलों के लोग शरीक हुए। बंगाल में दमन-नीति चलाने की कड़ी आलोचना उसमें की गई। मैंने उस सभा में जोरदार भाषण किया।

गांधीजी ने जो समझौता किया, उसका आशय यह था कि कांग्रेस विदेशी वस्त्र के बहिष्कार के सिवा अन्य असहयोग स्थगित कर दे और भिन्न-भिन्न प्रकार के काम कांग्रेस के अन्दर भिन्न-भिन्न जमायतें करें; पर चर्खा और खादी का प्रचार, आपस में—विशेषकर हिन्दू-मुसलमान के बीच—मेल-जोल और एकता बढ़ाना तथा हिन्दुओं में अछूतपन दूर करने

के काम सबके लिए अनिवार्य समझे जायं; प्रान्तीय तथा केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभाओं से स्वराज्य-पार्टी कांग्रेस की अंग-स्वरूप होकर कांग्रेस की तरफ से काम करे, इसके लिए वह अपने नियम बना ले, अपने पैसे भी जमा और खर्च करे; चूंकि यह देखा गया है कि जबतक सूत कातना सर्वव्यापी न हो जाय, हिन्दुस्तान कपड़े के सम्बन्ध में स्वतन्त्र नहीं हो सकता; चूंकि चर्खा चलाना एक जीता-जागता और साफ नज़र आता हुआ उपाय है जो कांग्रेसी लोगों और भारत की जनता के बीच सम्बन्ध जोड़नेवाला है, इसलिए चर्खा और खद्दर के प्रचारार्थ कांग्रेस की नियमावली मे यह संशोधन कर दिया जाय कि कोई आदमी तबतक कांग्रेस का सदस्य नहीं हो सकता जबतक उसकी उम्र अठारह बरस की न हो—जो राजनैतिक अवसरों और कांग्रेस के मौकों पर तथा कांग्रेस का काम करते समय हाथ-कता हाथ-बुना खद्दर न पहनता हो—जो प्रतिमास अपने हाथ का कता दो हजार गज अच्छा बराबर सूत, और बीमारी तथा अनिच्छा अथवा इस प्रकार के अन्य किसी कारण की हालत में इतना दूसरे का काता हुआ सूत कांग्रेस-कमिटी को न दे। इसका नतीजा यह होता था कि स्वराज्य-पार्टी को कांग्रेस के नाम पर कौंसिल का काम करने का अधिकार मिल जाता था; पर कांग्रेस-मेम्बर बनने के लिए अब चार आने पैसे की जगह दो हजार गज सूत अपने हाथ से कातकर—बीमारी और अनिच्छा की हालत में दूसरे से खरीदकर—देना पड़ता था। यह समझौता अखिल भारतीय कमिटी और बेलगांव-कांग्रेस की मंजूरी के लिए पेश होने को था।

बंगाल के दमन और इस समझौते पर विचार करने के लिए मौलाना मुहम्मदअली ने बम्बई में अखिल भारतीय कमिटी की बैठक की। उसी समय उन्होंने देश के अन्य राजनैतिक दलों को भी आमन्त्रित किया कि बंगाल की स्थिति पर सब मिलकर विचार करें। गांधीजी पहले से ही इस प्रयत्न में थे कि सब दलों को कांग्रेस मे फिर से शरीक होने के लिए प्रोत्साहित और आमंत्रित किया जाय। गवर्नमेंट की कार्रवाई ने इस प्रयत्न में बड़ी मदद पहुंचा दी। बम्बई मे एक बड़ा सम्मेलन हो गया, जिसमें सभी दलों के लोग शरीक हुए। बम्बई के सर दिनशा पेटिट इसके सभापति हुए। इसके पहले प्रस्ताव में सरकार की दमन-नीति की निन्दा करते हुए स्वराज्य की मांग पेश की गई। दूसरे प्रस्ताव द्वारा एक कमिटी नियुक्त हुई, जिसको आदेश दिया गया कि वह इस बात पर विचार करे कि किस तरह राजनैतिक दलों को कांग्रेस के अन्दर शामिल किया जा सकता है और स्वराज्य का एक मसविदा तैयार करे, जिसमें हिन्दू-मुस्लिम समस्या के—और इस प्रकार के दूसरे मसलों के—राजनैतिक दृष्टि से हल रहें तथा इस कमिटी

की रिपोर्ट ३१ मार्च तक तैयार करके अप्रैल में फिर कान्फ्रेन्स की बैठक की जाय। इस सर्वदल-सम्मेलन का महत्व यह था कि इसमें कांग्रेस के अलावा, जिसमें स्वराज्य-पार्टी भी शामिल थी, प्रायः और जितने राजनैतिक दल थे तथा मुस्लिम लीग के लोग—सब शरीक हुए थे। इसकी कार्रवाई से सारे देश में एक नई लहर उठी। आशा होने लगी कि अब सब लोग फिर मिलकर, एक साथ अगर न हो तो अपने-अपने विचार के अनुसार, एक ध्येय—स्वराज-प्राप्ति—के लिए प्रयत्न में लग जायंगे।

उसी समय अखिल भारतीय कमिटी की बैठक भी हुई। उसमें गांधीजी और स्वराज्य-पार्टी के बीच हुआ समझौता मंजूर किया गया। अपरिवर्तन-वादियों में बहुतेरे ऐसे थे जो इस समझौते को नापसन्द करते थे। उनका विशेष विरोध इससे था कि स्वराज्य-पार्टी को कौंसिलों में कांग्रेस के प्रतिनिधि-रूप होकर बोलने का हक दे दिया गया था। लोग चाहते थे कि यदि उन्हें यह अधिकार दिया जाय तो उनपर नियन्त्रण भी कांग्रेस का रहे। गांधीजी इस नियन्त्रण के भार को नहीं लेना चाहते थे। बहुत वाद-विवाद के बाद समझौता मंजूर हो गया।

इन दोनों सम्मेलनों ने महात्माजी के लिए रास्ता साफ कर दिया। वह आपस की जिस फूट से दुखित थे वह बहुत हद तक दूर हो गई। जो कुछ मनमुटाव रह गया था उसे भी दूर करने का दरवाजा खुल गया। बेलगाव में होनेवाली कांग्रेस के अधिवेशन के लिए वह सभापति चुने जा चुके थे, पर उन्होंने उसे अभी मंजूर नहीं किया था। इन सम्मेलनों के बाद उन्होंने उसे मंजूर कर लिया। यह भी आशा की जाती थी कि कांग्रेस के समय अन्य दलवाले भी अपने वार्षिक अधिवेशन बेलगांव में ही करेंगे, जिसमें फिर सब लोगों को एक बार मिलकर आपस में बातचीत करने का मौका मिले। पर ऐसा हुआ नहीं। केवल श्रीमती एनी बेसेण्ट ने कांग्रेस में शरीक होने का निश्चय कर लिया। वह अपने अनुयायियों के साथ बेलगाव में शरीक भी हुईं।

दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में नियमानुसार बेलगांव में अधिवेशन हुआ। वहां के लोगों में कांग्रेस के कारण उत्साह बहुत था। श्री गंगाधरराव देशपांडे, बूढ़े होकर भी जवान की तरह, घोड़े पर सवार सभी जगहों में आते-जाते और प्रबन्ध की निगरानी करते दिखाई देते। अधिवेशन के साथ-साथ प्रदर्शनी तो बराबर हुआ ही करती है। बेलगाव में संगीत-सम्मेलन भी हुआ, जिसमें कर्नाटक के प्रमुख गुणी और कलाकार शरीक हुए। मैसूर-दरबार से इसमें पूरी सहायता मिली थी। वहां के गुणी विद्वान इसमें

दरबार की ओर से भेजे गये थे। उनमें सबसे नामी श्री शेषन्नाजी थे, जो वीणा के आचार्य समझे जाते थे। जब उपस्थित कांग्रेस-प्रतिनिधियों को समय मिला, उन्होने बहुत ही सुन्दर दक्षिणी—विशेषतः कर्नाटिकी—संगीत सुनाया। एक दिन गांधीजी की कुटी में उन्होने अपनी वीणा का चमत्कार भी दिखलाया।

: ६० :

बोधगया का मन्दिर

एक विशेष घटना यह हुई कि कांग्रेस के पास सिंहल द्वीप (सीलोन) से, डाक्टर कैसियस परेरा (Cassius Periera) के नेतृत्व में, बौद्धों की ओर से एक मंडली आई। उसने यह मांग पेश की कि बोधगया का बुद्ध-मन्दिर बौद्धों के अधिकार में दिला देना चाहिए। गया-कांग्रेस के समय ही बरमा से, भिक्षु उत्तमा के नेतृत्व में, प्रायः एक सौ भिक्षुओं की एक बड़ी जमायत आई थी। बरमा हिन्दुस्तान के साथ ही था। वहां भी कांग्रेस-कमिटी थी। ये लोग प्रतिनिधि होकर आये थे। उनके लिए 'एक पंथ दो काज' था—कांग्रेस का देखना और बोधगया में बुद्धदेव का दर्शन। कांग्रेस का स्थान भी बोधगया के रास्ते पर ही था। उस समय, और कोकनाडा-कांग्रेस के बाद भी, कुछ इस तरह की बात चली थी तथा मुझे इस बोधगया-सम्बन्धी प्रस्ताव पर जांच करने का आदेश मिला था। पर मैं यह काम कर नहीं पाया था। बेलगांव में डेपुटेशन ने इस सवाल को कांग्रेस में पेश करना चाहा। गांधीजी ने उनसे बातें कर लीं। इस सम्बन्ध में जांच करके रिपोर्ट पेश करने के लिए गांधीजी ने मुझे इस अधिकार के साथ काम फिर सुपुर्द किया कि मैं और जिसको चाहूं अपने साथ इसमें शरीक कर लूं। इससे वे लोग सन्तुष्ट हो गये। लाला लाजपतरायजी बहुत डरते थे कि विदेशी बौद्धों को यदि मन्दिर पर अधिकार दिया गया तो हो सकता है कि वह विदेशी षड्यन्त्र का केन्द्र बन जाय और अन्तरराष्ट्रीय जटिलता उपस्थित हो जाय।

मैंने कांग्रेस से लौटकर जांच का काम आरम्भ किया। एक छोटी कमिटी बन गई। उसमें श्री ब्रजकिशोरप्रसाद, डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल और श्री रामोदारदास (जो पीछे भिक्षु राहुल सांकृत्यायन हुए) सदस्य थे। जब जांच आरम्भ हुई तब सिंहल से फिर सिंहलवासी श्री गुणसिंह आये। कुछ दिनों तक बिहार में रहकर कमिटी के काम में उन्होंने बौद्धों की ओर से मदद पहुंचाई। मैंने सबसे पहले हिन्दुओं का विचार जानने का प्रयत्न किया। इसलिए पटने में दो सभाएं की गईं, पर उनमें उपस्थिति संतोषजनक नहीं थी, अतः उनके निश्चय का कोई विशेष महत्व नहीं था। भाग्यवश उसी

समय मुजफ्फरपुर में हिन्दू-महासभा का अधिवेशन होनेवाला था जिसके सभापति लाला लाजपतरायजी थे। वहां मैं गया। बोधगया के महन्त की ओर से भी कुछ लोग सभा में गये थे। सभा ने एक प्रस्ताव मंजूर किया, जिसमें हिन्दुओं और बौद्धों की सम्मिलित कमिटी के हाथो मंदिर के प्रबन्ध का भार सौपने की राय दी गई। पर साथ ही यह भी निश्चय किया गया कि इस बात पर पूरी तरह विचार करने—और हो सके तो महंत को भी राजी करने—के लिए एक कमिटी बनाई जाय। उसके सदस्य भी उपर्युक्त चार सज्जन थे। उनके अलावा एक और सज्जन तथा बोधगया के महंत भी सदस्य बनाये गए। पर जब कमिटी का काम शुरू हुआ, ये दोनों सज्जन उसमें शरीक न हुए। इस तरह हिन्दू-महासभा और कांग्रेस की ओर से हम चार आदमियों ने ही रिपोर्ट तैयार की। कमिटी ने सभी बातो का विचार करके एक लम्बी और महत्वपूर्ण रिपोर्ट तैयार की। साथ ही, अपनी सिफारिश यह की कि बोधगया के मन्दिर का प्रबन्ध हिन्दुओं और बौद्धो की एक सम्मिलित कमिटी के हाथों में दिया जाय—वहां की पूजा-अर्चा का प्रबन्ध बौद्ध रीति के अनुसार किया जाय, पर हिन्दुओ को भी दर्शन और पूजा का अधिकार रहे।

यद्यपि यह बौद्धो का मुख्य तीर्थस्थान है तथापि इस मन्दिर का प्रबन्ध बोधगया के शैव महंत के हाथ में है। हिन्दू भी बुद्धदेव को अपने मुख्य दश अवतारों में एक मानते है तब भी उनकी पूजा हिन्दुओं में प्रचलित नही है। कहीं-कहीं तो उनकी निन्दा भी की गई है। इसलिए वहां यद्यपि पूजा का कुछ प्रबन्ध था तथापि इस महत्वपूर्ण तीर्थ-स्थान के योग्य नहीं था। हमने समझा कि बौद्धो की शिकायत ठीक है कि पूजा का समुचित प्रबन्ध बौद्ध ही कर सकते हैं। इसलिए कमिटी ने अपनी ओर से ऐसी सिफारिश की। हमने महंत से भी भेंट करके इस बात की कोशिश की कि वह इस बात पर राजी हो जाय कि मन्दिर का प्रबन्ध कमिटी के जिम्मे कर दिया जाय। हमने उस कमिटी की मदस्यता उनको भी देनी चाही। उनको मन्दिर से जो कुछ आमदनी चढावे के रूप में आती हो उसका मुआवजा भी देने की बात की। पर वह किसी तरह राजी न हुए। उनका कहना था कि मन्दिर पर वह मुनाफे के लालच से अधिकार रखना नहीं चाहते; क्योंकि मन्दिर में जितना खर्च होता है उतना भी हमेशा चढावे के रूप में नहीं आता, और यदि कुछ आता भी है तो वह इतना कम है कि वह अपनी बड़ी जमीदारी के सामने उसे कुछ नही समझते। बात भी सच है। उस मठ की आमदनी कई लाख की है। मन्दिर से शायद हजार-दो हजार साल मे आते हों। पर वह यह मानते थे कि मन्दिर पर अधिकार रहने के कारण उनकी

बड़ी प्रतिष्ठा है जो विदेशों तक पहुंची हुई है। उसे वह नहीं छोड़ना चाहते थे। हमने उनको बहुत समझाया कि हमारी बात मान लेने से उनकी प्रतिष्ठा घटने की जगह बहुत बढ़ जायगी; पर वह इस बात को नहीं समझ सके। हमारा प्रयत्न असफल रहा। हमने अपनी सिफारिश करके ही मामले को उपयुक्त समय के लिए छोड़ रखा।

वह रिपोर्ट अखिल भारतीय कमिटी के सामने पेश हुई। मंजूर भी कर ली गई। पर आज तक वह काम पूरा नहीं हुआ। जब कई बरसों के बाद कांग्रेस की मिनिस्ट्री बनी तो फिर एक डेपुटेशन सीलोन से आया। उसने वही मांग पेश की। मैं उन दिनों बीमार था और अपने गांव जीरादेई में रहता था। इसलिए वे लोग जीरादेई गये। प्रधान मंत्री से भी मिले। महंत किसी तरह राजी नहीं होते थे। इसलिए कानून द्वारा ही कुछ हो सकता था। मैंने प्रधान मंत्री को लिखा था कि वह इस सम्बन्ध में कानून बनाने का प्रबन्ध करें। वह इस सम्बन्ध में विचार भी करने लगे। पर और-और झंझटों में फंसे रहने के कारण यह बात आगे न बढ़ सकी। जब मंत्रि-मंडल ने इस्तीफा दिया उस समय भी यह बात जहां-की-तहां टंगी रह गई। मैं आज भी मानता हूं कि न्याय इसीमें है कि इस मन्दिर के प्रबन्ध का भार और अधिकार बौद्धों के हाथ में देना चाहिए। और, चूंकि हिन्दू भी बुद्धदेव को अवतार मानते हैं, इसलिए प्रबन्ध-कमिटी में हिन्दुओं को भी रहना चाहिए। इसी सिलसिले में एक बात और उल्लेखनीय है। सिंहल में एक प्रसिद्ध मंदिर है जिसका नाम कतरगामा है। वहां के हिन्दू कहते हैं कि वह हिन्दुओं का मन्दिर है और बौद्धों ने उसपर अधिकार कर लिया है। जब यहां बात चल रही थी, सीलोन के हिन्दुओं की ओर से मेरे पास पत्र और तार आते रहे कि हम हरगिज बोधगया के मंदिर पर बौद्धों को उस वक्त तक अधिकार न दें जबतक वे कतरगामा-मंदिर पर हिन्दुओं का अधिकार न मान लें। अगर बात आगे बढ़ती तो शायद इस सम्बन्ध की बात भी कुछ होती। पर वह समय ही नहीं आया। बात वैसे ही रह गई।

यहां १९२५ की बात लिखते-लिखते इस विषय की चर्चा में १९३९ तक चला आया; क्योंकि इसे एक जगह कह देना ही ठीक था।

: ६१ :

बेलगांव के बाद की कुछ घटनाएं

बेलगांव-कांग्रेस में स्वराज्य-पार्टी के साथ का समझौता मंजूर हो गया। गांधीजी इसपर राजी-से हो गये कि जहांतक राजनैतिक प्रश्नों का सम्बन्ध है, उसमें स्वराज्य-पार्टी की ही प्रधानता रहे और अगर वे चाहें तो वर्किंग कमिटी भी अपनी इच्छा के अनुकूल बना ले; पर खादी-प्रचार और रचनात्मक काम में पूरी मदद करे तथा उसका संचालन हम (गांधीजी) पर छोड दें। इसी नीति के अनुसार कांग्रेस के विधान मे संशोधन हुआ। कांग्रेस का सदस्य बनने के लिए चार आना शुल्क देने के बदले अपने हाथ का कता हुआ सूत देना मंजूर किया गया।

जबसे गांधीजी जेल से निकले थे, उन्होंने खादी-प्रचार पर बहुत जोर डाला था। मैं भी अपने सूबे में रचनात्मक काम मे ही—विशेषकर राष्ट्रीय शिक्षा और खादी-प्रचार में—लगा रहा। १९२४ के दिसम्बर मे पटने में एक प्रदर्शनी की गई, जिसमें चर्खा और उससे उत्पन्न सब प्रकार की खादी के नमूने दिखलाये गए। मैंने इस प्रदर्शनी को राजनीति से अलग रखा। सब लोगों को आमन्त्रित किया कि वे आकर देखें कि हाथ से किस तरह और कैसा सूत बन सकता है तथा खादी-प्रचार से गरीबों को कितना लाभ हो सकता है। सरकारी उच्च कर्मचारी भी खूब आये। उन्होंने खादी की प्रगति देखी। ऐसे लोगों में पटना-हाइकोर्ट के चीफ जस्टिस सर डासन मिलर प्रमुख थे। दूसरे हिन्दुस्तानी और अंगरेज जज, बिहार के गवर्नर की कौंसिल के मेम्बर सर ह्यू मैकफरसन तथा अनेकानेक उच्च कर्मचारी भी आये। चर्खे की जो प्रतियोगिता हुई उसमें मलखाचक-गांधी-कुटीर (सारन) के दो लड़कों ने प्रथम पुरस्कार पाया। वे श्री रामविनोदसिंह के छोटे भाई थे। उनकी प्रगति घंटे में प्रायः ६०० गज की थी। इन्हीं दोनों युवकों मे से एक डाक्टर सत्यनारायणसिंह है, जो पीछे यूरोप मे शिक्षित हो डाक्टर की डिगरी लेकर वापस आये और हिन्दी मे अनेक ग्रन्थों के रचयिता हुए। महीन सूत के काननेवालों ने प्रायः ३०० नम्बर तक का सूत कातकर दिखलाया। उस समय तक जो प्रगति हुई थी, मैंने उसकी रिपोर्ट अपने भाषण में लोगों के सामने पेश कर दी। जहांतक मेरा अनुमान है, लोग बहुत सन्तुष्ट हुए। पारितोषिक-वितरण चीफ जस्टिस की पत्नी लेडी

मिलर ने किया।

जो प्रदर्शनी बेलगांव में हुई उसका उद्घाटन करने का श्रेय मुझे मिला। शायद वह इसलिए मुझे मिला कि हमारे प्रान्त में खादी का काम अच्छा चल रहा था। यद्यपि प्रदर्शनी मे अन्य कलाओं के नमूने भी दिखलाये गए तथापि मैंने अपने भाषण में विशेषकर खादी के सम्बन्ध में ही कहा। मैंने इसपर जोर दिया कि यदि प्रचारक और पैसों की कमी न हो तथा लोग खादी खरीदें, तो सारे देश के लिए थोड़े समय मे ही काफी खादी तैयार की जा सकती है।

इसी वर्ष मे एक और छोटी-सी घटना हुई जो मेरे लिए एक पुण्य-स्मृति है। पटना-युनिवर्सिटी के समावर्तन-समारोह के अवसर पर सर जगदीश-चन्द्र बोस दीक्षान्त भाषण करने आये। मैंने उनको विहार-विद्यापीठ मे निमन्त्रित किया। जब मैं प्रेसिडेन्सी कालेज (कलकत्ता) मे पढ़ता था तब डाक्टर बोस ने मुझे पढ़ाया था। पर वह बहुत दिनों पहले की बात थी। वह भी ऊपर के दर्जों में—जैसे बी० एस-सी० अथवा एम० ए० में नहीं, एफ० ए० मे ही मुझे उनसे पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इसलिए, मैं नहीं समझता था कि उनको मेरे सम्बन्ध मे कुछ याद होगा अथवा वह मुझे कुछ विशेष रीति से जानते होंगे। परन्तु यह जानकर मेरे आह्लाद का ठिकाना न रहा, कि वह केवल मुझे अच्छी तरह याद ही नहीं रखते थे, बल्कि मुझपर प्रीति भी रखते थे। वह खुशी से विद्यापीठ आये। वहां एक अत्यन्त सुन्दर प्रोत्साहन देनेवाला, ओजस्वी भाषण भी किया। मैंने अपने को कृतकृत्य माना। उसी प्रेम और विश्वास का परिचय अपने मरने के कुछ पहले उन्होंने दिया—विहार मे मद्यनिषेध के लिए एक बड़ी रकम दी और उसके सूद की आमदनी को खर्च करने का भार मुझे दिया। वह जैसे विज्ञान के विद्वानों मे शिरोमणि थे वैसे ही सच्चे देशभक्त और त्यागी भी। मद्य-निषेध का काम, १९४२ मे मेरे जेल आने तक, मेरी निगरानी मे, झरिया मे होता रहा। लेडी अबला बोस मेरे पास रुपये भेजती रहीं। जब मैं जेल चला आया और काम करनेवाले भी दमन मे गिरफ्तार कर लिये गए तो जो रुपये मेरे पास बचे थे, मैंने लेडी बोस और ट्रस्टियों के पास वापस कर दिये। यह इसलिए भी आवश्यक हो गया कि मेरे नाम से जितने एकाउण्ट बैंक में थे उनपर गवर्नमेण्ट ने रोक लगा दी। इसलिए अब रुपये के बिना, विशेषकर मेरी गैरहाजिरी मे, काम बन्द हो ही जाता। मैंने सोचा कि रुपयों को अपनी जिम्मेदारी पर रखना उचित न होगा, विशेषकर जब इसका ठिकाना न था कि हम कबतक जेल में रहेंगे। मेरे लिखने पर गवर्नमेण्ट ने इस हिसाब के रुपयों को उनके पास भेज देने की इजाजत दे दी। अब प्रायः

सोलह महीनों तक जेल में रहने के बाद, जब ये पंक्तियां लिखी जा रही है, मैं सोचता हूं कि मैंने रुपये वापस कर देने का निश्चय करके ठीक ही किया। अफसोस केवल इतना है कि आचार्य बोस महोदय की इच्छा मैं पूरी न कर सका; पर इसमे मेरा कसूर नही है। भारतवर्ष में राजनीति कुछ ऐसी ही चीज है। इसमें पड़े हुए मनुष्य को बहुतेरे दूसरे आवश्यक और महत्वपूर्ण काम छोड़ने ही पड़ते है। यद्यपि आज गवर्नमेण्ट ने मद्यनिषेध-सम्बन्धी कांग्रेस-मिनिस्ट्री की नीति को उलट दिया है और झरिया मे—जहां इन रुपयो से काम हो रहा था फिर भी शराब की बिक्री होने लगी होगी, तथापि मुझे विश्वास है कि जब फिर हमको समय मिलेगा, उनकी इच्छा पूरी की जायगी।

यहा एक और घटना का भी जिक्र कर देना अनुपयुक्त न होगा। खादी के काम करनेवालों मे एक युवक थे श्री बब्बनसिंह। सारन जिले के गोपालगंज सब-डिवीजन के कैथवलिया गाव के रहनेवाले थे। बडे भावुक थे। मुखतारकारी की परीक्षा के लिए तैयारी कर रहे थे। परन्तु देश की पुकार सुनकर वह विचार छोड़ खादी के काम मे लग गये। घर के कुछ धनी नही थे। बहुत छोटी वृत्ति के आदमी थे। अपने पैसे से खादी और चर्खे का प्रचार उन्होंने शुरू कर दिया। अपनी जमीन तथा पत्नी के जेवर तक बेच डाले। इतना करने के बाद उन्होंने खादी-बोर्ड से अपनी हालत कही। उस बोर्ड की ओर से उन्हे सहायता देने का निश्चय हुआ। इसी अवसर पर वह बीमार पड़ गये। उन्माद के लक्षण उनमें दीखने लगे। वह बार-बार कहते कि उनको साप काट डालेगा। हमेशा चर्खा और खद्दर के गीत गाते रहते। कभी-कभी बिगड़ भी जाते। इसलिए लोगो ने उनको एक घर मे बन्द कर रक्खा था। एक दिन रात के समय चिल्लाकर कहने लगे कि साप आ गया और वह उससे लड़ रहे हैं। पहले तो लोगों ने उसे पागल का प्रलाप ही समझा। पर जब लोगो ने जाकर देखा तो सचमुच एक गेहुंअन सांप को वह हाथ में पकड़े हुए थे। उसने उनको कई जगह काट लिया था। उन्होंने साप को तो मार डाला, पर स्वय भी कुछ देर में उसके विष से मर गये।

श्री बब्बनसिंह की स्त्री ने, उनकी बीमारी के आरंभ के दिन से ही, अन्न खाना छोड़ दिया था। जब चौबीसवें दिन उनकी मृत्यु हो गई, उसने स्नानादि कर सती होने की इच्छा प्रकट की। लोगों ने ऐसा नही करने दिया। उनके शव को दाह-क्रिया के लिए ले गये। उसने बहुत जोर लगाया, पर लोगों ने उसे जबरदस्ती बन्द कर रक्खा। उस समय वह शान्त हो गई। चुप रहने लगी। अपने घर में, जिसका एक कोना बहुत अंधेरा था,

रहा करती। उसी कोने में कुछ रुई और खादी रखी हुई थी। तीन-चार दिनों के बाद एक रात वह अपने घर मे सोने गई। बब्बनसिंह के दो भाई बाहर के घर में सोये। किसीने कुछ सन्देह न किया। सवेरे वह नही उठी। तब लोगों को सन्देह हुआ। जब लोगो ने उस कोठरी के अन्दर जाकर देखा तो पाया कि 'रामसूरत' (यही उसका नाम था) एक हाथ मे गीता लिये और दूसरे हाथ पर टेक दिये बैठी है। बदन छूने पर मालूम हुआ कि पैर के अंगूठे से लेकर छाती तक शरीर जलकर खाक हो गया है और बाकी हिस्सा ज्यों-का-त्यो है। पीठ पर लटके हुए सिर के लम्बे केश कुछ जल गये थे, पर आखो की पपनियो पर जलने का कुछ निशान न था। वही पर खादी और रुई भी योंही बची पड़ी थी—उसके तन से तीन-चार फुट के अन्दर दो तरफ। घर मे जलावन की कुछ लकड़ी रक्खी गई थी, जो गायब थी; पर वह इतनी नही थी कि उसके शरीर को खाक कर सके। इस तरह उस देवी ने अपना सतीत्व प्रमाणित करके देह-त्याग किया। इस घटना की खबर पाकर मै वहा गया। वहा के लोगों ने जैसी सब बाते कही, मैंने पत्रो मे प्रकाशित करा दी। घटना विचित्र थी। इसमें कुछ चमत्कार भी अवश्य था। बहुतेरे लोग उस स्थान के दर्शनो के लिए आये थे। मैंने भी, घरवालो को सांत्वना देने के अलावा, इस साध्वी के स्थान को देखकर अपनेको धन्य माना।

: ६२ :

देशबन्धु दास का देहावसान

देशबन्धु दास का स्वास्थ्य बेलगांव-कांग्रेस के समय से ही खराब होने लगा। वह कुछ दिनों तक पटने में ही अपने भाई श्री प्रफुल्लरंजन (पी० आर०) दास के साथ आकर ठहरे थे। उस समय मैं उनसे अक्सर जाकर मिलता रहा। उन्होंने चर्खा चलाना सीखना प्रारंभ किया। मुझसे कहा कि तुम खुद सिखाओ या सिखाने के लिए किसी आदमी को नियुक्त कर दो। इस सम्बन्ध में बातें करते-करते उन्होंने कहा कि इस प्रकार के काम में हमारा हाथ नहीं चलता और न बुद्धि ही ठीक चलती है—यदि मुझ-पर छोड़ दिया जाय तो मैं शायद अपने ट्रंक का ताला भी ठीक नहीं खोल सकता। मैंने कई दिनों तक सूत-कताई सिखलाई। फिर जब मुझे कहीं बाहर जाना पड़ा तो एक दूसरे मित्र उनके पास इस काम के लिए जाया करते थे। पटने में उनसे राजनैतिक बातें भी हुआ करती थीं। उन्हीं दिनों लार्ड बर्केनहेड भारत-मंत्री नियुक्त हुए थे। यों तो वह बड़े कट्टर कन्सर्वेटिव (अनुदार-दल के) और पक्के साम्राज्यवादी थे; पर देशबन्धु दास का विचार था कि वह प्रतिभाशाली और एकबग्गा मिजाज के भी हैं, हो सकता है कि हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में वह कुछ कर जाना चाहें। इसलिए, कुछ भीतर-भीतर बात भी शायद चली। उनको बहुत आशा थी कि कुछ-न-कुछ उस वक्त हो जायगा, जिससे भारत और इंग्लैंड के बीच सुलह-शान्ति हो सकेगी। वह यहांतक कहा करते कि बर्केनहेड से यदि मेरी आशा पूरी न हुई तो देश को हमारे सामने उठाने के लिए गांधीजी के चर्खे के सिवा और कुछ भी न रह जायगा।

१९२३ के चुनाव में, जैसा पहले कहा गया है, स्वराज्य-पार्टी ने भाग लिया था। दिल्ली में कांग्रेस के विशेष अधिवेशन ने इसकी इजाजत दे दी थी; पर कौंसिल के कार्यक्रम को अपने हाथों में नहीं लिया था। इसलिए स्वराज्य-पार्टी को उस चुनाव में उतनी सफलता नहीं मिली थी जितनी उसे कांग्रेस की मदद से मिलती; तो भी बंगाल और मध्यप्रदेश में उनकी एक अच्छी संख्या कौंसिल में पहुंची। इसी तरह, केन्द्रीय असेम्बली में, दिल्ली में भी एक अच्छी संख्या में स्वराजी लोग चुने गये। यद्यपि यथेष्ट

सफलता न हुई तथापि कुछ अच्छे लोग कौंसिलों में पहुंच ही गये। उन्होंने वहां की कार्रवाइयों मे एक नई रीति और नई दृष्टि का समावेश कर दिया। मध्यप्रदेश में तो स्वराजियों का बहुमत था। वहा उन्होंने बजट और मंत्रियों के मुशाहरे को नामंजूर कर दिया। गवर्नर को मजबूर होकर मंत्रियों को हटाना और सारा अधिकार अपने हाथों मे ले लेना पड़ा। इसी तरह, यद्यपि उनका बहुमत बंगाल मे नही था, देशबन्धु दास के व्यक्तित्व और प्रयत्न के कारण, वहां का मन्त्रिमंडल भी टूट गया। बंगाल के गवर्नर को भी सब अधिकार अपने ही हाथों मे ले लेना पड़ा था। केन्द्रीय असेम्बली में पंडित मोतीलालजी स्वराज्य-पार्टी के नेता थे। दूसरे दल और विचार-वालों के साथ मिलकर वहां भी बजट नामंजूर करा दिया गया। बड़े लाट को अपने विशेष अधिकार के द्वारा उसे मजूर करना पड़ा। यह सिलसिला दो बरसों तक चलता रहा। बंगाल मे देशबन्धु ने दमन-सम्बन्धी बिल को भी नामंजूर करा दिया। इन सब बातों का असर देश के लोगों पर बहुत अच्छा पडा था। किन्तु सरकारी अधिकारी-वर्ग उतना ही नाराज भी हुआ था। महात्माजी के समझौते के कारणों में स्वराज्य-पार्टी की यह सफलता भी एक मुख्य कारण थी। पर यह स्पष्ट था कि इस तरह की कार्रवाई बहुत दिनों नही चल सकती थी। केन्द्रीय असेम्बली मे जो दूसरे दलो के साथ बातचीत करके एक पार्टी बनाई थी, वह आहिस्ता-आहिस्ता कमजोर पडकर टूट गई। स्वराज्य-पार्टी दूसरे दलों मे अलग हो गई। मध्यप्रदेश में भी भीतर-भीतर, स्वराजियो मे ही, मन्त्रिमंडल बनाने की कुछ मुंहामुही होने लगी, जिसमे विशेषकर बरार प्रान्त के कुछ मदस्य इसके मुख्य समर्थक थे। इन सब बातों को देखकर ही देशबन्धु दास, जो अनुभवी और दूरदर्शी दोनो ही थे, विचार कर रहे थे कि इस मौके पर यदि प्रतिष्ठापूर्वक कोई समझौता इग्लैंड के साथ हो जाय तो बहुत अच्छा होगा।

गवर्नमेण्ट ने नये आर्डिनेन्स और १९१८ के रेगुलेशन के अनुसार गिरफ्तारिया करके दिखा दिया था कि वह किसी तरह के क्रान्तिकारियो को पनपने देना नही चाहती। यह नया आर्डिनेन्स तथा ये गिरफ्तारियां, लेबर-पार्टी (मजदूर-दल) की मजूरी से ही, जिसके प्रधान मन्त्री श्री रामजे मैक-डोनल्ड थे, हुई थी। लेबर-पार्टी के चुनाव हार जाने पर कंसर्वेटिक-पार्टी (अनुदार-दल) का मन्त्रिमंडल बन गया था। उसीमें लार्ड बर्कनहेड भारत-मंत्री बने थे। उन्हीसे देशबन्धु दास आशा रखते थे। उनके लिए देशबन्धु ने अपने जानते रास्ता भी साफ कर दिया। देशबन्धु जानते थे कि अंग्रेजों को सन्देह है कि बंगाल की स्वराज्य-पार्टी और देशबन्धु दास भीतर-भीतर

कान्तिकारियों की मदद करते है। अंगरेजों के दिल में यह सन्देह, गोपीनाथ साहा-सम्बन्धी उनके सिराजगंजवाले प्रस्ताव से और भी पुष्ट हो गया था। देशबन्धु ने सोचा कि अंगरेज किसी प्रकार का समझौता उस वक्त तक नहीं करेंगे जबतक उनके दिल में यह सन्देह बना रहेगा। यह बात उनको अंगरेजों से बातचीत करके मालूम हो गई थी। इसलिए इसे दूर करना उन्होंने आवश्यक समझा। एक वक्तव्य प्रकाशित करके उन्होने यह साफ-साफ कह दिया कि काग्रेस या स्वराज्य-पार्टी ने भी उस नीति का समर्थन नही किया है, जिसमे हत्या जायज समझी जाती है और स्वराज्य-पार्टी के विचार में इस प्रकार की हत्याओ से स्वराज्य-प्राप्ति के रास्ते मे रोड़े पड़ जाते है; इसलिए वह न कभी पहले इसके समर्थक थे, न अब इसका किसी तरह समर्थन कर सकते हैं। साथ ही, उन्होने स्वराज्य-पार्टी की अडंगा-नीति को जायज बनाया। और, जबतक समझौता द्वारा कुछ तय होकर अधिकार हस्तान्तरित न हो जाय, उस नीति को जारी रखने की बात भी कह दी। इस वक्तव्य के पहले अश से अंगरेज संतुष्ट हुए। यहांतक कि लार्ड बर्केनहेड ने भी इसपर अपनी प्रसन्नता प्रकट की; पर साथ ही उन्होने यह भी कहा कि हिन्दुस्तानियों को विधान चलाने मे सहयोग करना चाहिए, जब वे ऐसा करेंगे तभी राजनैतिक प्रगति हो सकेगी। देशबन्धु दास इतने पर भी बिलकुल निराश न हुए। उन्ही दिनो फरीदपुर में बंगीय राजनैतिक सम्मेलन होनेवाला था। देशबन्धु उसके समापति चुने गये थे।

गांधीजी ने उन्ही दिनों बंगाल की यात्रा की। प्रान्तीय सम्मेलन (फरीदपुर) मे वह भी शरीक हुए। देशबन्धु दास ने अपने भाषण मे उन्ही विचारों और उसी आशा को प्रकट किया। पर उनकी आशा पूरी न हुई! उनका स्वास्थ्य दिन-दिन बिगडता ही गया। वह दार्जिलिंग चले गये। महात्माजी भी वहां गये। जब वे दोनों दार्जिलिंग मे थे, मै भी जलपाईगुड़ी तक गया। मेरा उद्देश्य था गाधीजी को बंगाल से बिहार लाने का। इसीलिए मैं वहांतक गया भी। पर अपने स्वास्थ्य के कारण मैं पहाड पर नही गया। श्रीमथुराप्रसादजी को ही गांधीजी के पास भेजा। महात्माजी राजी भी हुए। पर इसी बीच मे देशबन्धु की अचानक मृत्यु हो गई। सारे देश में उनकी असामयिक मृत्यु से मुर्दनी छा गई। उनका शव कलकत्ते लाया गया। वहां अभूतपूर्व दृश्य देखने में आया। इतने अधिक लोग जलूस में शरीक हुए कि शायद ही कभी किसी दूसरे जलूस में उतने हुए हों। महत्माजी भी कलकत्ते में आ गये। यह देशबन्धु-स्मारक के लिए रुपये जमा करने तथा बंगाल के राजनैतिक नेताओं से वहां की स्थिति सुलझाने के सम्बन्ध में बातें करने में लग गये। इसलिए कुछ दिनों तक उनका बिहार में आना न हो सका।

: ६३ :

सामाजिक सुधार

उन्ही दिनों मेरे घर मे दो शादियां थी। एक मेरी छोटी भतीजी रमा की—लखनऊ के श्री विद्यादत्त राम के साथ और दूसरी मेरे बड़े लड़के मृत्युञ्जय की—श्री ब्रजकिशोरप्रसादजी की छोटी लड़की विद्यावती के साथ। लखनऊ की बरात बहुत तुजुक के साथ आई थी। आदमी कुछ ज्यादा नही थे; पर बहुत प्रतिष्ठित घरानें के कारण उन लोगो की शान बहुत थी। सब प्रबन्ध हम लोगों को ही करना पडा था। भाईसाहब ने बहुत इन्तजाम किया था। बाबू हरिजी ने इस शादी के ठीक होने मे बडी मदद की थी। वे लोग उनके निकट सम्बन्धी थे। हम लोग यह नही चाहते थे कि किसीको कोई शिकायत हो। इसलिए ठहरने के लिए खीमो और खान-पान के लिए बहुत ही नफासत का इन्तजाम था। इसके ठीक उलटे मृत्युञ्जय की शादी बड़े सादे तरीके से हुई। हमने तो अपने घर के तीनों लड़को मे से किसीकी शादी में तिलक-दहेज नही लिया; पर तीनों लडकियो की शादी मे तिलक-दहेज काफी देना पडा था। कहीं-कहीं तो जबरदस्ती, इच्छा से अधिक, देना पडा था। इस सम्बन्ध मे हमारे अनुभव हमेशा कटु रहे है। हमारे समाज में कुरीतिया काफी है। जबतक वे दूर नही होती, लडकी का होना और उसकी शादी की झंझट हमारे लिए दु:खदाई साबित होती रहेगी। कायस्थो में, विशेषकर श्रीवास्तवो और अम्बष्ठो मे, बहुत सुधार की जरूरत है।

कायस्थ कान्फ्रेन्स (अखिल भारतीय) का जन्म प्राय: काग्रेस के साथ ही हुआ था। मेरा खयाल है कि शायद पहले अधिवेशन मे ही इस बात पर जोर दिया गया कि लड़की के पिता से कई नामो से तिलक-दहेज की रकमें लेने की प्रथा बहुत बुरी है, उसको रोकना चाहिए। प्राय: प्रत्येक अधिवेशन मे इस आशय के प्रस्ताव पास किये गए है! पर जो कान्फ्रेन्स के कर्ता-धर्ता होते उनमें बहुतेरे स्वयं ही इस प्रस्ताव की अवहेलना करते! अनेक तो ऐसे भी हुए है, जिन्होने कान्फ्रेस द्वारा प्राप्त प्रतिष्ठा को अधिक तिलक-दहेज लेने के कारण बना लिया! चूकि कान्फ्रेस के सभापति अथवा अन्य उच्च-पदाधिकारी होने के कारण कायस्थों मे उनकी बहुत प्रतिष्ठा हो गई, इसलिए उन्होंने अधिक पैसे उगाहे! इसलिए, कायस्थ कान्फ्रेन्स, सब जातीय

कान्फ्रेन्सों में पुरानी होने पर भी, अपने उद्देश्यो की सिद्धि में बहुत सफल नही हुई है।

जब मैं १९१६ मे कलकत्ते से पटने में वकालत करने के लिए आया, उसके थोड़े ही दिनों के बाद कुछ कायस्थ मित्रों ने मुझसे एक प्रतिज्ञा-पत्र पर दस्तखत कराया। उसका आशय यह था कि लड़के की शादी मे, प्रत्यक्ष वा परोक्ष रीति से, किसी नाम से, लड़की के पिता या दूसरे सम्बन्धियों से, ५१) से अधिक हम नहीं लेगे। मेरा विचार इसके पक्ष में पहले से ही था। इसलिए मैंने खुशी से प्रतिज्ञा-पत्र पर दस्तखत कर दिया। भाईसाहब इस विषय में बहुत ही कट्टर विचार के थे। वह तो यह भी मानते थे कि जो कोई तिलक-दहेज अधिक लेता है या शादी मे नाच-महफिल मे अधिक खर्च करता है, उसकी बरात मे जाना ही न चाहिए। इसलिए, हमारे घर मे, इन शर्तों के मानने मे कोई कठिनाई नहीं थी। तीन मे से मेरी दो भतीजियो की शादी इसके पहले ही हो चुकी थी। उनमे हमको तिलक-दहेज देने पड़े थे। अब केवल एक लड़की ब्याहने को थी। पर तीन लड़के थे, जिनमे किसीकी शादी नहीं हुई थी। इसलिए, जहा देने का सवाल था वहां तो हम घाटे मे रहे, और जहा कुछ पाने की आशा की जा सकती थी वहा भी हमने प्रतिज्ञा करके उसका रास्ता ही बन्द कर दिया। पर यह हमने किया जान-बूझकर। उसी प्रतिज्ञा के कारण तीनों लडकों की शादिया नई रीति से, बिना तिलक-दहेज और बिना नाच-तमाशे के हुई। पर कन्या-पक्ष के होने के कारण हमें तीनों लड़कियों की शादियो मे तिलक-दहेज देने पड़े। हमे उन सभी यातनाओ को भोगना पड़ा, जो हमारे समाज में लड़की के पिता और अभिभावकों को भोगनी पड़ती है।

इसके बाद, उसी साल के अन्त मे (१९२५ के दिसम्बर में), जब मै कायस्थ-कान्फ्रेन्स के जौनपुर-अधिवेशन का सभापति चुना गया तो मैंने उसे इसलिए स्वीकार कर लिया कि शायद वहा जाकर कम-से-कम इस कुप्रथा को रोकने मे कुछ कृतकार्य हो सकू। वहा उस कान्फ्रेन्स मे दो प्रस्ताव, पुराने होने पर भी, मार्के के हुए। एक तो तिलक-दहेज-सम्बन्धी था, जिसमे हमने प्रतिज्ञा को और भी कड़ी बना दिया। उसी प्रस्ताव में, ऐसी शादी में, जहा प्रस्ताव का उल्लघन होता हो, शरीक न होने की भी प्रतिज्ञा जोड़ दी गई। दूसरे में, कायस्थो के विभिन्न वर्गों और शाखाओं में रोटी-बेटी के व्यवहार जारी करने पर जोर दिया गया। जहांतक मैं जानता हूं, तिलक-दहेज की प्रथा तो उसके बाद भी जारी रही। शायद जारी रहेगी भी, क्योंकि आज के अनेक युवक तो शादी की शर्तों में कही-कही अपनी शिक्षा-विशेषकर विदेश की शिक्षा—के खर्च की मांग भी पेश कर देते अथवा दूसरी

फरमाइशें स्वयं कर देते है। इसलिए यह आशा भी नही की जा सकती कि पुराने विचारवाले बड़े-बूढे जब गुजर जायगे तो इस सुधार का रास्ता साफ हो जायगा, क्योंकि जिनपर आगे की आशा की जा सकती थी, उनमें बहुतेरे तो पुरानों से भी अधिक व्यापार-बुद्धि रखनेवाले साबित हो रहे है। पर यह सन्तोष का विषय है कि अन्तर्वर्गीय विवाह कायस्थों में होने लगे है। अब कोई इस बात के मानने मे नही झिझकता कि लड़के की शादी दूसरी-दूसरी शाखा के वश मे करना भी उचित और ग्राह्य है। अब तो कम उम्र की छोटी विधवाओ की शादी भी हो जाती है। उस समय तक इस सम्बन्ध मे मेरे विचार साफ नही हुए थे। पर इसके बाद ही मैंने भी मान लिया कि विधवा-विवाह, विशेषकर छोटी उम्र की लड़कियों का, होना अनिवार्य है। ऐसी कुछ शादियो मे अपनी सम्मति देकर मैंने प्रोत्साहन भी दिया है।

: ६४ :

बिहार में गांधीजी का दौरा और कौंसिल का चुनाव

पहले कहा जा चुका है कि बेलगाव-कांग्रेस ने उस समझौते को मंजूर कर लिया था, जिसके अनुसार कांग्रेस की नियमावली मे परिवर्तन करके कांग्रेस-सदस्य बनने के लिए पैसे के बदले मे दो हजार गज सूत देना और कांग्रेस-सम्बन्धी अवसरो पर खादी पहनना अनिवार्य कर दिया गया था। कुछ लोग इसके गहरे विरोधी थे। कांग्रेस के बाहर के लोग, जिनसे कांग्रेस में शरीक होने की आशा की जाती थी, इसके विरुद्ध थे ही। कांग्रेस के अन्दर भी एक जमात थी जो इसका पूरा विरोध करती थी। स्वराज्य-पार्टी ने इसे मजूर कर लिया था; पर उसके कुछ मुख्य सदस्य ऐसे थे, जिन्होंने इसे कभी दिल से स्वीकार नही किया था। बेलगाव के बाद भी यह कहा जाता रहा कि सूत और खादी की शर्त लगाकर कांग्रेस ने अपने क्षेत्र को और भी संकुचित कर दिया—अब उसके सदस्यो की सख्या बहुत कम होकर रहेगी। गांधीजी को आशा थी कि सब लोग मिलकर यदि जोर लगावेंगे तो बहुतेरे चर्खा चलानेवाले हो जायगे, और यदि सदस्यो की सख्या कम भी होगी तो जो रह जायगे वे पक्के और काम करनेवाले होगे, जिनपर पूरा भरोसा किया जा सकेगा। पर यह आशा पूरी न हुई! बहुत प्रयत्न के बाद भी कांग्रेस के सदस्यो की सख्या बहुत कम हो गई। गांधीजी इससे प्रभावित हुए। उन्होंने यह विचार प्रकट कर दिया कि स्वराज्य-पार्टीवाले अगर चाहे तो उनको वह समझौते की शर्तो से मुक्त कर देगे और केवल सूत की जगह सूत अथवा चार आने पैसे कांग्रेस की मेम्बरी के शुल्क के रूप मे दिया जाना मंजूर कर लेगे। पर गांधीजी इस बात पर राजी होना नहीं चाहते थे कि सूत की बात एकदम उठा दी जाय और—जैसा कुछ लोग चाहते थे—खद्दर की शर्त भी उठा दी जाय। उन्होंने पंडित मोतीलालजी के साथ बातें की। यह निश्चय हुआ कि नियमावली मे फिर संशोधन कर दिया जाय; साथ ही यह भी तय हो जाय कि जो रुपये खादी के काम में लगे हैं वे उसी काम में लगे रहें, और खादी-प्रचार के लिए एक अलग संस्था

कायम कर दी जाय, जो कांग्रेस का अंग होते हुए भी स्वतंत्र हो, तथा स्वराज्य-पार्टी को कांग्रेस के राजनैतिक कार्यक्रम के चलाने का पूरा अधिकार दे दिया जाय।

महात्मा गांधी कुछ दिनों के बाद बंगाल का काम पूरा करके बिहार का दौरा करने के लिए आये। बिहार के दौरे का आरम्भ छोटा नागपुर से ही किया गया। इसका विशेष कारण यह था कि बिहार-प्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन उस साल पुरुलिया में, शाह मुहम्मद जुबैर के सभापतित्व में, होनेवाला था। वहा के लोगों ने बहुत उत्साह के साथ तैयारियां की थीं। छोटा नागपुर में प्रान्तीय सम्मेलन का यह पहला ही अधिवेशन हो रहा था। उन लोगों की प्रबल इच्छा थी कि महात्माजी भी वहा पधारें। गांधीजी ने इसे मंजूर कर लिया। एक तरह से उनकी यात्रा वहीं से शुरू हुई। इसके कुछ पहले ही महात्माजी एक बार जमशेदपुर आ गए थे। वहा मजदूर-संगठन में देशबन्धु दास दिलचस्पी ले रहे थे। वहां यूनियन (संघ) भी कायम हुआ था। पर अभीतक उनको टाटा-कम्पनी ने मंजूर नहीं किया था। इस समय, देशबन्धु के बाद, श्री दीनबन्धु एण्डरूज उसके सभापति चुने गये थे। उनके अनुरोध से महात्माजी ने वहा जाना मंजूर कर लिया था। कम्पनी के मैनेजिंग डाइरेक्टर श्री आर० डी० टाटा वहा आये। कम्पनी की ओर से महात्माजी का बड़ा स्वागत हुआ। मैं भी महात्माजी के साथ था। दो दिनों तक वहां ठहरकर उन्होंने कारखाने को भी खूब देखा। डाइरेक्टरों से बातें भी कीं। नतीजा इसका यह हुआ कि यूनियन को टाटा-कम्पनी ने मान लिया; मजदूर-मेम्बरों के मुशाहरे से काटकर उसका चन्दा जमा कर देने का भी वचन दिया। जो दूसरी शिकायतें थीं, उनको भी दूर कर दिया। हर तरह से यह यात्रा बहुत सफल रही।

पुरुलिया का सम्मेलन बहुत समारोह के साथ हुआ। महात्माजी बम्बई की तरफ से आये। उनको हमने 'सीनी' से डाकगाड़ी से उतारा। समय की बचत के लिए, वहा से पुरुलिया तक उन्हें एक स्पेशल ट्रेन से ले आये। सम्मेलन में विशेषता यह थी कि एक अच्छी प्रदर्शनी उसके साथ हुई थी, जिसका उद्घाटन गांधीजी ने किया था। सम्मेलन समाप्त करके गांधीजी ने छोटा नागपुर की यात्रा आरम्भ कर दी। उम्मीद थी कि वह सारे सूबे का दौरा कर सकेंगे। मैंने देखा है कि महात्माजी जब कभी दौरा करने निकलते हैं तो लोगों की इच्छा रहती है कि वह अधिक-से-अधिक स्थानों में ले जाये जाय ताकि वहा की जनता उनके दर्शनों से लाभ उठा सके। यह एक प्रकार से स्वाभाविक भी है; पर यह कहीं-कहीं अन्दाज से अधिक हो जाता है। मुझे मानना पड़ता है कि इस प्रवृत्ति का शिकार

चाहे अपने मन से या मित्रो के अनुरोध से, मैं भी हो चुका हूं। जो यात्रा-क्रम बनाया गया वह बहुत ही कड़ा बना। महात्माजी का स्वास्थ्य, जो महीनों के दौरे से पहले से ही क्षीण हो गया था, उसे बर्दाश्त न कर सका। हमने यात्रा को दो भागो मे बांटा था —पहले मे छोटा नागपुर, दूसरे मे बिहार के अन्य जिले। छोटा नागपुर की यात्रा समाप्त करके पटने मे अखिल भारतीय काग्रेस-कमिटी की बैठक के लिए कुछ ठहरना और फिर दूसरे जिलो मे जाना था। छोटा नागपुर की यात्रा मे ही महात्माजी बहुत थक गये। अन्तिम दिन, हजारीबाग जिले का काम समाप्त करके 'कोडरमा' स्टेशन पर रेल मे सवार होते-होते, वह बेहोश से हो गये। मै भी साथ था। किसी भी प्रकार से भीड-भाड को रोकना कठिन हो रहा था। उनकी तबीयत कितनी ज्यादा खराब हो गई है, इसका भी पूरा पता हम लोगो को न था। अब बात खुल गई। हमने बिहार के बाकी कार्यक्रम को कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया। महात्माजी को पटने मे, गंगाजी के किनारे एक कोठी मे, कुछ दिनो तक आराम करने के लिए, ठहराने का निश्चय किया। इससे उनको बहुत लाभ पहुचा। बिहार के लोग जहां-तहां से आकर दर्शन भी करते रहे।

उसी समय अखिल भारतीय कमिटी की बैठक पटने मे हुई, जिसमे यह निश्चय हुआ कि काग्रेस की नियमावली मे संशोधन और उपर्युक्त परिवर्तन कर दिया जाय। इस बात की भी इजाजत हो गई कि कांग्रेस का सारा राजनैतिक प्रोग्राम, जिसमे कौन्सिलो का चुनाव भी शामिल था, स्वराज्य-पार्टी ही पूरा करे; काग्रेस की ओर से उम्मीदवार खडे किये जायं और इसके प्रबन्ध का भार स्वराज्य-पार्टी के नेता पंडित मोतीलाल नेहरू ले। वही यह भी तय हुआ कि काग्रेस के जो रुपये खादी-प्रचार के काम मे लगे हैं वे—कांग्रेस मे सम्बद्ध, पर अपने काम के लिए स्वतत्र—एक नई सस्था को सौंप दिये जाय। इस तरह अखिल भारतीय चर्खा-सघ का जन्म हुआ। उसका विधान गाधीजी ने बनाया। उसके कई आजीवन ट्रस्टी और प्रबन्ध-कारिणी के सदस्य हुए। उनमे एक मैं भी हुआ। महात्माजी सभापति हुए। इसके अलावा, प्रत्येक सूबे के काम की देख-रेख करने के लिए एक एजेण्ट नियुक्त किया गया। उसकी सहायता के लिए प्रान्तीय मंत्री की भी नियुक्ति हुई। बिहार के लिए मैं एजेण्ट नियुक्त हुआ, उत्तर प्रात के लिए पंडित जवाहरलाल, बंगाल के श्री सतीशचन्द्र दासगुप्त, तामिलनाड के श्रीराजगोपालाचारी प्रभृति। इस प्रकार यह संघ, एक प्रकार से स्वतंत्र होकर खादी-प्रचार का काम करने लगा। इसने पिछले सत्रह-अठारह बरसो में खादी-प्रचार में और उसकी कला की उन्नति में बहत बड़ा काम किया

है। जब ये पंक्तियां लिखी जा रही हैं, अगर सरकार इसके कारबार को जहा-तहां तहस-नहस न कर दिये होती तो, आज कपडे की महगी के दिनों मे इसकी उपयोगिता और भी देखने मे आती। इतने दिनों मे इसने करोडो रुपये गरीबों को, विशेषकर उन गरीब स्त्रियो को, जो दूसरा कोई काम नही कर सकती थी, मजदूरी के रूप मे बाटा है।

जब यह निश्चय कर लिया गया कि कांग्रेस की ओर से चुनाव की लडाई लडी जाय, तो पडितजी ने मुझसे कहा कि बिहार का भार तुमको सभालना होगा। यद्यपि मैं इस विषय मे अपने वही विचार रखता था जो पहले थे, फिर भी मैंने सोच लिया कि कांग्रेस ने जब निश्चय कर लिया है तो उसकी जीत कराने मे यथासाध्य प्रयत्न कर देना ही हमारा धर्म है। मैंने पंडितजी को वचन दे दिया और वह निश्चिन्त हो गये।

उसके थोडे ही दिनों बाद सबसे पहले कौन्सिल आफ स्टेट का चुनाव हुआ। उसमे बिहार के एक मुसलमान और तीन गैर-मुस्लिम सदस्य चुने जाने को थे। मुस्लिम स्थान के लिए शाह मुहम्मद जुबैर और गैर-मुस्लिम स्थानो के लिए सर्वश्री श्रीकृष्णसिह, अनुग्रहनारायणसिह और मेरे भाई बाबू महेन्द्रप्रसाद खडे किये गए। विरोधियो मे दरभगा के महाराजाधिराज और डुमराव के महाराजा बहादुर प्रभृति थे। चुनाव मे परिश्रम काफी पड़ा; क्योंकि मत देनेवाले विशेषकर धनी वर्ग के—जमीदार, महाजन और व्यापारी—थे। उनकी सख्या बहुत नही थी, पर उनको किसी एक स्थान मे आकर मत नही देना था। वे स्वयं भी किसी सरकारी उच्चपदाधिकारी के सामने कागज पर दस्तखत करके अपना सम्मति-पत्र डाक से भेज सकते थे। इसलिए एक प्रकार से कागज बटोरने की होड-सी लग गई। मतदाताओ के पास कागजो के पहुचने के बाद जितना जल्द उनसे दस्तखत कराकर अपने पक्ष मे भिजवाया जा सके उतनी अधिक सफलता की आशा हो सकती थी। इसके अलावा, उडीसा भी बिहार के साथ था; वहा के वोट भी बटोरने थे! हम लोगो के प्रयत्न से शाह जुबैर साहब, बाबू अनुग्रहनारायणसिह और बाबू महेन्द्रप्रसाद चुन लिये गए। चौथी जगह में दरभगा के महराजाधिराज चुने गये। श्री बाबू के हारने का हम लोगो को काफी अफसोस रहा, पर लाचारी थी। यह सब १९२५ का अन्त होने के पहले ही हो चुका था।

: ६५ :

स्वराज्य-पार्टी में मतभेद और कानपुर-कांग्रेस

ऊपर उस प्रयत्न का जिक्र आया है, जो सब दलों को कांग्रेस में शरीक करने के लिए किया गया था। यह भी कहा गया है कि बेलगाव-कांग्रेस के पहले ही अखिल भारतीय कमिटी ने असहयोग को स्थगित करके केवल विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार को जारी रखा था, साथ ही उसने रचनात्मक कार्य-क्रम पर भी जोर दिया था। कांग्रेस की ओर से कौंसिलों में राजनैतिक काम करने का अधिकार स्वराज्य-पार्टी को दे दिया गया था। इससे आशा की जाती थी कि दूसरे दलवाले कांग्रेस मे आ जायगे। जो सर्व-दल-सम्मेलन बम्बई में हुआ, उससे आशा और भी बढ़ी थी। पर खेद है कि यह आशा पूरी न हुई। सर्व-दल-सम्मेलन ने जो सब-कमिटी नियुक्त की थी, वह किसी नतीजे पर न पहुंच सकी। अपनी असफलता घोषित करके वह चुप बैठ गई! पर इसके बाद भी किसी-न-किसी रूप मे मिलाप की चर्चा होती ही रही। नरम दलवालो और जिन्ना-जैसे लोगो को दो-तीन बातो की शिकायत थी। एक बात तो यह थी कि कांग्रेस ने यद्यपि उस वक्त असहयोग स्थगित कर दिया था तथापि उसने उसे एकबारगी हमेशा के लिए छोड़ नही दिया था। कांग्रेस के असहयोग और सत्याग्रह को हमेशा के लिए छोड़ देने की बात तो दूर रही, उनके लिए तो वह देश को तैयार करना चाहती थी, और इस विषय मे अपरिवर्तनवादी तथा स्वराजी दोनो सहमत थे। इन दोनो मे मतभेद इस विषय मे नही था—जो भेद था वह यह था कि कौन्सिलो के द्वारा देश को तैयार करने मे मदद मिलेगी या बाधा पड़ेगी। अपरिवर्तनवादी लोग कौन्सिल के कार्य को सत्याग्रह के रास्ते मे बाधक समझते थे। स्वराजी लोग कौन्सिलों को भी देश की तैयारी मे लगाना चाहते थे। दूसरी बात यह थी कि कांग्रेस खादी और चर्खे के प्रचार पर बहुत जोर ही नही देती थी, बल्कि उसने बेलगाव मे खादी पहनने को—कम-से-कम कांग्रेस के काम में लगे रहने के समय—अनिवार्य कर दिया था। उसने मेम्बरी के लिए सूत कातना भी अनिवार्य कर दिया था। कांग्रेस के बाहर के लोग न तो चर्खे में विश्वास करते थे और न खादी पहनने की जरूरत ही महसूस करते थे। कांग्रेस के अन्दर भी कुछ लोग इस विचार के थे, जिनमें मुख्यतः

महाराष्ट्र के कुछ लोग थे; पर उनकी संख्या थोड़ी थी। तीसरी चीज, जिससे बाहरी लोग घबराते थे, यह थी कि कांग्रेस ने कौन्सिल के काम का भार और अधिकार स्वराजियों को सौंप दिया है। बाहरी लोगों मे अधिक ऐसे ही लोग थे, जो इन कौन्सिलों को विशेष महत्व देते थे। वे यह समझने लगे कि कांग्रेस के अन्दर जाकर भी वे इन कौन्सिलों में अपने लिए स्थान सुरक्षित न कर सकेंगे और न वहा अपनी नीति किसी प्रकार चला सकेंगे; क्योंकि वहा तो नीति स्वराजियो की ही चलेगी। वे उस अड़ंगा-नीति को पसन्द नही करते थे और मानते थे कि मंत्रिमडल में सबको भाग लेकर विधान को काम मे लाना चाहिए। इसलिए जो कुछ थोडी-बहुत आशा कभी-कभी अंकुरित भी हुई, वह इन मौलिक मतभेदो के कारण शीघ्र ही मुर्झा गई। पटने मे अखिल भारतीय कमिटी ने, सितम्बर १९२५ में, स्वराज्य-पार्टी को ही कांग्रेस का सगठन एक प्रकार से सुपुर्द कर दिया। अब बाहर के लोगो का कांग्रेस मे शरीक होना और भी कठिन हो गया।

ऊपर यह भी कहा जा चुका है कि स्वराज्य-दल के अन्दर, विशेषकर मध्यप्रदेश मे, जहा असेम्बली मे उनका बहुमत था, देशबन्धु दास के अन्तिम दिनो मे ही, मन्त्रिमडल के सम्बन्ध मे कुछ कानाफूसी होने लगी थी। उनकी मृत्यु के कुछ ही दिनो बाद यह बात खुल गई कि वहा के कुछ लोग मन्त्रि-पद-ग्रहण के पक्ष मे थे। अभी मन्त्रिमडल तो वहा न बन सका; पर एक प्रमुख स्वराजी श्री ताबे ने—जो स्वराज्य-पार्टी की ओर से असेम्बली के मेम्बर और उसी पार्टी की ओर से खडा करके असेम्बली के प्रेसिडेण्ट चुनवाये गये थे—वहा के गवर्नर की एग्जिक्यूटिव कौन्सिल की मेम्बरी मजूर कर ली। उन्होने ऐसा करने के पहले न अपने साथियो की सम्मति ली, न पार्टी की और न उससे इस्तीफा ही दिया। इससे पार्टी में बडी खलबली मची। पडित मोतीलालजी नेहरू ने सख्त रुख अख्तियार किया। उधर महाराष्ट्र के श्री नृसिंह चिन्तामणि केलकर ने श्री ताबे का समर्थन किया। श्री जयकर ने भी एक प्रकार से—उनका नही, पर पद-ग्रहण का—समर्थन ही किया। मध्यप्रदेश मे श्री अभ्यंकर ने जोरो से इसकी निन्दा की। डाक्टर मुजे और श्री अभ्यंकर में बडा मतभेद हो गया। ये सब लोग स्वराज्य-पार्टी के प्रमुख व्यक्तियो में थे; इसलिए यह गृह-कलह बहुत बढ गया। महाराष्ट्र मे श्री केलकर और श्री जयकर ने प्रतिक्रियात्मक सहयोग का प्रचार आरम्भ किया। पंडित मोतीलालजी नेहरू पार्टी की अड़ंगा-नीति पर डटे रहे और उसका प्रचार करने लगे।

इसी मतभेद के जमाने में कानपुर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। सभानेत्री श्रीमती सरोजिनी नायडू चुनी गई। एक बरस पहले वह दक्षिण-

अफ्रीका से लौटी थी। वहां उन्होने बहुत काम करके बड़ा नाम हासिल किया था। यदि गाधीजी की चलती तो वह शायद उनको बेलगाव-कांग्रेस में ही सभानेतृ बनाते; पर लोगों के अनुरोध को मानकर उन्होंने सभापतित्व स्वीकार कर लिया था। एक प्रकार से बेलगाव के पहले से ही, सब लोगों के दिल मे, कानपुर-काग्रेस के उस उच्च पद के लिए, सरोजिनी देवी चुनी जा चुकी थी।

कानपुर-काग्रेस की विशेषता यह थी कि स्वराज्य-पार्टी को ही कार्यक्रम देना था। इसलिए पडित मोतीलालजी की राय से ही वर्किंग कमिटी ने काग्रेस की विषय-निर्वाचिनी समिति के वास्ते प्रस्ताव तैयार किया था। दक्षिण अफ्रीका मे हिन्दुस्तानियो के विरुद्ध जो नया कानून बन रहा था, उसका विरोध किया गया। एक दूसरे प्रस्ताव मे, बरमा मे भी जो हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध कार्रवाई हो रही थी, उसकी निन्दा की गई। पर सबसे महत्व का प्रस्ताव वह था, जिसका सम्बन्ध कौन्सिलो से था। उसमे यह कहा गया कि असेम्बली मे प्रस्ताव पास करके देश की ओर से जो स्वराज्य की माग पेश की गई है, उसे मानकर ब्रिटिश गवर्नमेण्ट को उसीके अनुसार विधान बनाना चाहिए। यदि वह ऐसा न करने की इच्छा प्रकट कर दे, अथवा फरवरी के अन्त तक इसके सम्बन्ध मे कुछ न कहे, अथवा जो कुछ कहे व करे, वह सन्तोषजनक न हो, तो कौन्सिलो के स्वराजी मेम्बर अपने बयान देकर वहा से चले आवे और जबतक फिर आज्ञा न हो, वापस न जाय और तब रचनात्मक कार्यक्रम मे लग जाय। विरोधियो का कहना था कि १९२६ की जनवरी से मार्च तक जो बैठक, प्रान्तीय और केन्द्रीय असेम्बली की होनेवाली थी, वही प्राय. अन्तिम बैठक थी, जिसमे—१९२६ मे होनेवाले चुनाव के पहले—स्वराजी लोग शरीक हो सकते थे; इसलिए वे अगर निकलते है तो इसी बैठक के अन्तिम कई दिनो के इजलास मे शरीक न हो सकेंगे, यह कोई विशेष महत्व की बात न होगी। हा, अगर निकलना ही है तो हमेशा के लिए निकल आते तो एक बात होगी।

जो हो, काग्रेस ने यही निश्चय किया, जिसका अर्थ प्रतिक्रियात्मक-सहयोगवादियों ने यह लगाया कि फिर एक प्रकार से असहयोग धीरे-धीरे कांग्रेस-कार्यक्रम मे दाखिल होने लगा और इस अवस्था मे उनका कार्यक्रम चल ही नही सकेगा। इसलिए श्री जयकर, श्री केलकर और डाक्टर मुजे प्रभृति कौन्सिल से इस्तीफा देकर अलग हो गये। उन्होने प्रतिक्रियात्मक-सहयोगवादियो की नई पार्टी कायम की। मेरा निजी विचार हमेशा यह रहा है कि हमको अगर कौन्सिलों मे जाना ही हो तो वहा जाकर विधान के अनुसार जो कुछ हम कर सकते हों, करना चाहिए। मैं अडंगा-नीति को

कमी समझ न सका। इस समय भी मेरा विचार यही था कि जब स्वराजी लोग वहां गये हैं तो वहां काम करना चाहिए, केवल अड़ंगा नहीं लगाना चाहिए। पर, साथ ही, मैं यह भी मानता था कि वहां जाना ही बेकार है; क्योंकि जो अधिकार १९२० के विधान के अनुसार मिले थे, वे बिलकुल सन्तोषप्रद नहीं थे। वहां जाने से देश में बुद्धिभेद फैलने के सिवा दूसरा कोई फल नहीं निकल सकता। असहयोग, जनता की विचारधारा को, ब्रिटिश गवर्नमेण्ट और उसकी सस्थाओं की ओर से मोड़कर, जनता की अपनी स्थापित सस्थाओं की ओर खींचना चाहता था। इस प्रकार वह जनता में रचनात्मक शक्ति जाग्रत करना चाहता था। कौन्सिल-प्रवेश इस धारा को फिर सरकारी सस्थाओं की ओर मोड़ता था। इसलिए मेरे विचार से वहां जाना हितकर नहीं था। पर अगर कोई जाना ही पसन्द करे तो उसको वहां से जो थोड़ा-बहुत लाभ मिल सके, उसे देश के लिए लेना चाहिए। स्वराजी लोगों का विचार था कि कौन्सिलों से बाहर रहकर असहयोग तभी किया जा सकता है जब कोई कौन्सिलों में जानेवाला न मिले। पर ऐसा हो नहीं सकता। दूसरे प्रकार का असहयोग अन्दर से किया जा सकता है और उसका रूप यही हो सकता है कि अड़ंगा लगाकर विधान का छकड़ा न चलने दिया जाय। ऐसा उन्होंने किया भी। बंगाल और मध्यप्रदेश में मन्त्रिमंडल नहीं चल सका। स्वयं गवर्नर को ही मन्त्रियों के अधिकार अपने हाथों में लेने पड़े थे। केन्द्रीय असेम्बली में बहुमत न होने पर भी दूसरे दलों को मिलाकर उन्होंने बजट नामंजूर करा दिया और वायसराय को उसे अपने विशेष अधिकार द्वारा मंजूर करना पड़ा था। इस तरह जो कुछ अड़ंगा नीति से हो सकता था, उन्होंने कर दिखाया था और देश पर इसका असर अच्छा पड़ा था।

जो हो, मैं तो कौन्सिल-प्रवेश का ही विरोधी था। ऐसी अवस्था में यहां कौन नीति बरती जाय, इसका फैसला करनेवाला मैं नहीं हो सकता था। मैंने सोच लिया कि जो लोग वहां गये हैं, वे ही इसका फैसला करें; उनकी राय से जो नीति कांग्रेस इस सम्बन्ध में स्वीकार करे उसे ही मुझे भी मान लेना चाहिए; उस नीति के चलाने में जो सहायता मैं दे सकूं, मुझे देनी चाहिए। महात्माजी शायद इस हद तक स्वयं जाने को तैयार नहीं थे; क्योंकि उन्होंने कहा था कि यद्यपि स्वराजियों के खयाल से कांग्रेस ने कौन्सिल का बहिष्कार छोड़ दिया था तो भी कांग्रेस किसीको कौन्सिल के लिए वोट देने अथवा अन्य प्रकार से उसकी मदद करने के लिए बाध्य नहीं कर सकती। मैं इससे कुछ आगे बढ़ता था और सोचता था कि जब कांग्रेस ने एक बार कौन्सिल-प्रवेश का कार्यक्रम अपने हाथों में ले लिया,

तो मेरे निजी विचार चाहे जो हों, मुझे यथासाध्य उस कार्यक्रम को सफल बनाने (अर्थात् चुनाव) में मदद कर देना चाहिए। इसी नीति के अनुसार मैंने काम भी किया। चुनाव मे पूरी शक्ति लगाकर खूब दौड़-धूप भी की।

कानपुर मे भी स्वदेशी प्रदर्शनी हुई थी। वहां हिन्दुस्तानी सेवा-दल का अच्छा संगठन था। एक दिन यह खबर फैल गई कि कांग्रेस के पड़ाव में कुछ लोग आग लगा देनेवाले है। सेवा-दलवालो ने डाक्टर हर्डीकर के नेतृत्व मे चौकी लगाई। अधिवेशन सफलतापूर्वक, बिना किसी उपद्रव के, समाप्त हुआ। वहा एक और घटना हुई थी। अजमेर काग्रेस का एक सूबा समझा जाता था। विधान में उसे भी और सूबो की तरह प्रतिनिधि चुनने का अधिकार था। वहां के चुनाव के सम्बन्ध मे कुछ शिकायत थी। वहा के चुनाव को वर्किंग कमिटी ने रद्द कर दिया था, जिसपर कुछ लोग रुष्ट होकर श्री अर्जुनलाल सेठी के नेतृत्व मे काग्रेस मे या तो जबरदस्ती घुसना चाहते थे अथवा दूसरो को वहा जाने मे रोकना चाहते थे। इस नाजुक परिस्थिति मे भी सेवा-दल को काम करना पड़ा था।

: ९९ :

कांग्रेस में एक स्वतंत्र दल

कांग्रेस के निश्चय के अनुसार, मार्च के महीने में जब कोई संतोषजनक उत्तर न मिला तब, अखिल भारतीय कमिटी ने तय किया कि स्वराज्य-पार्टी के लोग केन्द्रीय असेम्बली और प्रान्तीय कौन्सिलों से निकल आवें। उन्होंने एक निश्चित तिथि पर ऐसा ही किया भी। पंडित मोतीलालजी ने, जो स्वराज्य-पार्टी के नेता थे, असेम्बली में एक वक्तव्य दिया। उसमें इस निश्चय के कारणों को बताकर इनका समर्थन किया। उसी तरह, अन्य सूबों के लोगों ने भी किया। स्वराज्य-दल ने सभी कौन्सिलें खाली हो गईं। निश्चय किया गया था कि जो लोग बाहर निकलेंगे वे अपना समय रचनात्मक काम और कांग्रेस के सिद्धान्तों तथा कार्यक्रम के प्रचार में लगायेंगे। कुछने ऐसा किया; पर बहुतेरे लोग अपने निजी मनमाने काम में ही लगे रहे। इसी साल के अन्त में फिर नये चुनाव होनेवाले थे। इस बीच में कुछ दुखद घटनाएं हो गईं, जिनका जिक्र कर देना आवश्यक है।

हिन्दू-मुस्लिम झगड़े कई बरसों से चले आ रहे थे। हिन्दू-सभा की ओर से, विशेषकर आर्य-समाज की ओर से, शुद्धि और संगठन पर जोर दिया जा रहा था। उधर मुसलमानों ने भी तबलीग और तर्जीम का आन्दोलन जारी कर दिया था। कटुता बढ़ती ही गई थी। कोहाट के दंगे का जिक्र हो चुका है और यह भी कहा गया है कि महात्मा गांधी को वहां जाने से गवर्नमेण्ट ने रोक दिया था। पीछे महात्माजी और मौलाना शौकतअली इस सम्बन्ध में जांच करने के लिए रावलपिंडी गये। वहां से आगे जाने की इजाजत न थी. इसलिए वहीं लोगों को बुलाकर यथासम्भव जांच की गई। कुछ बातों में दोनों में एकमत न हो सका। जब जुदा-जुदा रिपोर्ट छपी तो मालूम हुआ कि जो दो आदमी बराबर एक राय कई बरसों से रखा करते थे, उनका भी इस विषय में मतैक्य न हो सका। महात्माजी ने अपने तरीके से लिखा भी कि इससे लोगों को यह न समझना चाहिए कि हम दोनों के आपस के सम्बन्ध और व्यवहार में किसी प्रकार का फर्क पड़ा है, बल्कि लोगों को यह समझना चाहिए कि ये लोग हमेशा केवल हां-में-हां नहीं मिलाया करते, कहीं-कहीं मतभेद भी रख सकते हैं। चाहे इन दोनों सज्जनों

के भावों मे अन्तर न पड़ा हो, पर इसका असर देश पर अच्छा नही पड़ा। वह समस्या अधिक जटिल होती गई। राजनैतिक मतभेद थे ही। महात्माजी एक प्रकार से सभी राजनैतिक कामो से अलग हो गये। उनका स्वास्थ्य भी बहुत खराब हो गया था। किसी तरह उन्होने कानपुर-कांग्रेस तक काम चला दिया। उसके बाद, डाक्टरो की राय से, उन्होने एक बरस तक साबरमती में रहने का निश्चय कर लिया। वहां रहकर वह आश्रम और खादी के काम को सुसंगठित करने मे लग गये। कुछ लोग, जो यह समझते थे कि महात्माजी दुखी होकर अलग हो गये है, बहुत जोर देने लगे कि उनको फिर नेतृत्व लेना चाहिए पर बात ऐसी थी नही। उन्होने साबरमती से काम करना अपने स्वास्थ्य और देश दोनो के लिए हितकर समझा। इसलिए वह अपने निश्चय पर अटल रहे।

इधर हिन्दू-मुस्लिम झगडे बहुत बढ गये। कलकत्ते मे बहुत बडा दंगा हो गया, जिसमे बहुतेरे हिन्दू-मुसलमान मारे गये। हफ्तो तक बलवा-फसाद जारी रह गया। बकरीद के मौके पर कई जगह दगे हो गये। इसका नतीजा यह हुआ कि खिलाफत-कमिटी के प्रमुख लोग भी प्रभावान्वित हो गये। उसके एक विशेष अधिवेशन मे कड़वे भाषण हुए। उसमे निश्चय किया गया कि अबसे खिलाफत-कमिटी मुसलमानो से सम्बन्ध रखनेवाले सभी प्रश्नो में दिलचस्पी लेगी और मुसलमानो के हको की हिफाजत का प्रबन्ध करेगी। दूसरी ओर, हिन्दुओ मे भी, बहुतेरे कड़वे भाषण किये और लेख लिखे जाने लगे। हमारे सूबे के लिए एक बात यह हो गई कि पंडित मोतीलालजी और मौलवी मुहम्मद शफी मे मतभेद हो गया। मौलवी मुहम्मद शफी ने असेम्बली से इस्तीफा दे दिया। स्वतन्त्र रीति से फिर खड़े होकर वह चुन लिये गए। उन्होने स्वतन्त्र रीति से कुछ प्रचार भी शुरू कर दिया। हमारे सूबे का वायुमंडल भी बिगडता जा रहा था। मौलाना मजहरुल हक साहब इससे बहुत दुखी थे। उन्होने बिहार के प्रमुख कांग्रेसी और खिलाफत-कमिटी के लोगो को, तथा कुछ और स्वतन्त्र लोगो को भी आमन्त्रित करके एक छोटी-सी कान्फ्रेन्स छपरे मे की। कई दिनो तक वहा बहुत सफाई और खुलासगी के साथ बातें होती रही। हम सबने महसूस कर लिया कि यह मामला ऐसा है कि इसको अब छोडना ठीक नही है और जहातक हमसे हो सके, बिगडे वायुमडल को अधिक दूषित होने से रोकना चाहिए। हम सबने निश्चय किया कि इसके लिए हम सब मिलकर प्रयत्न करेगे। उस सभा मे हमको एक बार और हक साहब के देश-प्रेम और सच्ची राष्ट्रीयता का पता चला। हम समझ गये कि हमको एक ऐसा नेता मिला है जो हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के लिए सबकुछ त्याग करने को तैयार है।

अपने जीवन का बहुत समय उन्होंने इसीमें बिताया था। जबतक वह जीते रहे, इस प्रयत्न मे ही लगे रहे। कान्फ्रेन्स के निश्चय के अनुसार हक-साहब, मौलवी मुहम्मद शफी, बाबू जगतनारायणलाल, मैं तथा दूसरे कई भाई सूबे मे दौरा करने निकल गये।

इसका असर सूबे पर बहुत अच्छा पड़ा। देश मे इस बात की बहुत चर्चा होने लगी कि बिहार मे हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की जटिल समस्या के सुलझाने का बहुत सुन्दर प्रयत्न मौलाना हक के नेतृत्व में हो रहा है। बिहार का वायुमडल बहुत हद तक शान्त बना रहा। एक असर यह भी देखा गया कि जब कुछ दिनों के बाद फिर कौन्सिल और असेम्बली का चुनाव हुआ तो मुसलमान भी कांग्रेस की ओर से खडे हुए और चुने गये। मौलवी मुहम्मद शफी साहब और पडित मोतीलालजी के मतभेद से जो अनबन हो गई थी, वह भी दुरुस्त हो गई।

नवम्बर के महीने मे चुनाव हुआ। यह तो इधर अच्छा हुआ कि बिहार मे मौलवी शफी साहब हम लोगो के साथ मिलकर काम करने लगे; पर उधर लाला लाजपतराय और पडित मोतीलालजी का मतभेद हो गया। नतीजा यह हुआ कि पडित मदनमोहन मालवीयजी और लाला लाजपतराय ने एक नया दल बना लिया। उस दल की ओर से जो उम्मीदवार खडे किये गए, उन्होंने कांग्रेस के उम्मीदवारो का विरोध किया। बिहार मे बाबू जगतनारायणलाल कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं मे थे। उनके विचार हिन्दू-सगठन के पक्ष मे थे। वह हिन्दू-सभा मे प्रमुख भाग लेने लगे। उस समय कांग्रेस ने हिन्दू-सभा का सदस्य होना रोका नही था। हममें से बहुतेरे उसके सदस्य थे। ऊपर कहा जा चुका है कि मुजफ्फरपुर के वार्षिक अधिवेशन (हिन्दू-सभा) मे बोध-गया-सम्बन्धी प्रस्ताव पास कराने मे हमने भी पूरा जोर लगाया था। इसलिए, यद्यपि कुछ लोगो को जगत बाबू का कांग्रेस से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध होना और हिन्दू-सभा को इतना समय देना अच्छा नही लगता था, तथापि उनके ऐसा करने मे कोई वैधानिक रुकावट नही थी। पर जब पं० मालवीयजी और लालाजी ने स्वतत्र कांग्रेस दल का सगठन कर लिया और कांग्रेस के निश्चय के विरुद्ध कांग्रेसी उम्मीदवारो का विरोध करने लगे, तो स्थिति बहुत बदल गई। जगतबाबू कांग्रेस की ओर से उम्मीदवार खडे किये गए थे, पर उसे छोडकर उन्होंने इस नरम दल की ओर से खडा होना पसन्द किया। मजबूर होकर उनका विरोध करना पडा। कुछ और लोग भी, जो कांग्रेस से नाराज थे, अथवा जो कांग्रेस के विरोधी थे अथवा जिनको कांग्रेस ने उम्मीदवार न बनाकर किसी दूसरे को बना दिया था, इस दल में जा मिले। ऐसे लोगो मे सारन-

जिले के बाबू श्रीनन्दनप्रसादनारायणसिंह शर्मा भी थे। नतीजा यह हुआ कि बिहार में भी इस चुनाव मे काफी गर्मी आ गई। मालवीयजी तथा लालाजी यहा अपने उम्मीदवारो के समर्थन में दौरा करने लगे। पंडित मोतीलालजी तथा दूसरे स्वराजी नेता काग्रेसी उम्मीदवारो की सहायता के लिए पहुंच गये। मुझसे जो कुछ हो सकता था, मै कर ही रहा था।

मै इसी दौरे मे छोटा नागपुर गया। पुरुलिया से रांची मोटर पर जा रहा था। गाड़ी खूब तेज जा रही थी; क्योंकि उसी दिन रांची मे उम्मीदवारी की दरख्वास्तों की जाच होनेवाली थी। ठीक समय से पहुचना जरूरी था। रास्ते मे भैसागाडी आ गई। मोटर को उससे बचने के लिए मोडना पड़ा। वह काबू से बाहर होकर एक पेड़ से टकरा गई। मेरे सिर और नाक पर चोट आई। थोडी चोट औरो को भी लगी। गाडी का कुछ अंश टूट गया। पर हम लोग किसी तरह कुछ देर के बाद रांची पहुच गये; क्योंकि यह घटना राची के नजदीक पहुचने पर हुई थी। वहा तो कुछ नहीं मालूम हुआ कि मुझे चोट ज्यादा है। डाक्टर ने पट्टी बाध दी। मै दौरे का काम करता रहा। छोटा नागपुर का काम पूरा करके मै उत्तर बिहार मे चला गया। बेगूसराय, समस्तीपुर इत्यादि होते हुए मुजफरपुर जिले मे गया। सीतामढ़ी पहुंचकर, प्राय: घटना के एक सप्ताह के बाद, सिर मे दर्द मालूम हुआ। मैने समझा कि थकावट अथवा सर्दी लग जाने के कारण दर्द है। कुछ दवा भी खा ली और आगे बढ गया। सौभाग्यवश उसी दिन पटना लौटने का कार्यक्रम था। वहा पहुचते-पहुचते दर्द बढ गया। कई दिनो तक बहुत कष्ट हुआ। डाक्टर लोग भी कुछ निश्चय नही कर सकते थे कि यह दर्द क्यो है। पर दो-तीन दिनो के बाद सारे चेहरे पर सूजन आ गई। तब मालूम हुआ कि वह उस चोट का नतीजा है, जो मोटर की दुर्घटना मे मुझे लगी थी। मैं इस बीमारी के कारण और कई जगहो मे जहा जाना था, नही जा सका। चुनाव मे बहुत बेहूदा प्रचार किया गया था। पंडित मोतीलालजी पर खुले आम व्यक्तिगत आक्षेप किये गए। कहीं-कहीं भद्दे व्यग्य चित्र (कार्टून) भी दिखाये गए थे। हमने बहुत जोरों से इन सबका विरोध किया। नतीजा यह हुआ कि जिन स्थानो के लिए सदस्य चुने जानेवाले थे, उनमें से अधिकाश कांग्रेस के उम्मीदवार ही चुने गये। स्वतत्र काग्रेस-दल के बहुत थोड़े लोग चुने गये, जिनमें बाबू जगतनारायणलाल और बाबू श्री नन्दनप्रसादनारायणसिंह शर्मा थे। ये लोग पूर्व के बिहार-कौन्सिल के स्वराज्य-दल के नेता श्री जलेश्वरप्रसाद को, जो कांग्रेस की ओर से खड़े किये गए थे, हराकर चुने गये। लोगो के बहुत कहने और

जिद्द करने पर मौलाना मजहरुल हकसाहब खड़े हुए थे। उनका मुकाबला किया गया। दोनों उम्मीदवारों के पक्ष मे बराबर वोट आये। चिट्ठी लगाई गई तो हकसाहब के प्रतिद्वन्द्वी के पक्ष मे चिट्ठी निकली! इस तरह, यद्यपि प्रान्तीय कौन्सिल के चुनाव में कांग्रेसी लोग ही अधिक सख्या मे चुने गये तथापि हकसाहब-जैसा व्यक्ति नही चुना जा सका और न कांग्रेस का वह उम्मीदवार, जो स्वराज्य-पार्टी का नेतृत्व योग्यतापूर्वक कर चुका था। साथ ही, यह भी स्पष्ट था कि चुने लोगों मे से, बहुमत रखते हुए भी, कांग्रेस के विरोध मे मत्रिमडल बन सकेगा, क्योंकि विधान के अनुसार एक अच्छी तादाद गवर्नमेण्ट द्वारा मनोनीत सदस्यों की हुआ करती थी। कांग्रेस-विरोधी लोग और ऐसे मनोनीत सदस्य मिलकर कांग्रेस-दल से सख्या मे अधिक हो जाते थे। केन्द्रीय असेम्बली मे भी हमारी काफी सफलता रही। वहा जो एक-दो जगहे हमारे हाथ मे न आई उनमे भी कांग्रेस मे सहानुभूति रखनेवाले ही चुने गये। बिहार-कौन्सिल मे कई आदमी, जो स्वतत्र चुने गये थे, कांग्रेस के साथ ही रहते थे। स्वतंत्र कांग्रेस-दल के लोगो मे कुछ कांग्रेस के साथ और कुछ मत्रिमंडल के साथ हो गये थे। इस तरह, इस चुनाव से कोई बात साफ नही हुई। मत्रिमडल के साथ कांग्रेस का जो पहले सद्भाव था, वह अब न रहा, क्योंकि चुनाव के समय हमको मत्रियों और उनके द्वारा समर्थित उम्मीदवारो का विरोध करना पड़ा था। जब वे ही लोग फिर मंत्री बन गये और उनका विरोध करना कांग्रेसी मेम्बरो का प्रधान काम हो गया, तब यह अनबन और भी बढती गई। मंत्री सर गणेशदत्तसिंह, कांग्रेसी उम्मीदवार के भय से, कई जगहो से खड़े हुए थे, पर कही से अपने स्थान को सुरक्षित न देख उन्होंने मिल-मिलाकर एक उम्मीदवार को, एक ऐसे स्थान से, जहां कांग्रेस ने कोई उम्मीदवार नही खडा किया था, बिठा दिया और वहां से स्वय निर्विरोध चुने गये। इस चुनाव में धर्मगत और जाति-गत भेद-भावों का प्रचार करके कुछ लोगों ने नफा उठाया। शायद सभी कांग्रेसवाले भी इससे अपनेको बचा न सके।

मेरा विचार था, और अब वह और भी दृढ़ हो गया है, कि जो भेद-भाव हिन्दुओं और मुसलमानो मे फैल रहा था, वह इन्ही दोनो तक सीमित न रहेगा। हिन्दुओ मे जो अनेकानेक जातिया हैं, एक-दूसरे से उसी प्रकार आपस मे झगड़ने लगेगी जिस प्रकार हिन्दू-मुसलमान लड़ रहे है। मुसलमानों में भी भिन्न-भिन्न दल पैदा हो जायंगे। शिक्षित वर्ग की लडाई सरकारी नौकरियों और सरकार से सम्बद्ध संस्थाओं की मेम्बरी इत्यादि के लिए होती है। किसी-न-किसी समय हिन्दू समाज की भिन्न जातियों में इस प्रकार की स्पर्धा

बढ़ेगी और वे आपस में लड़ेंगी। इस चुनाव में ये बातें कुछ-कुछ देखने में आ गईं। मैंने एक लेख इस आशय का 'देश' मे लिखा था, जिसको कुछ लोगों ने नापसन्द किया था। उस समय से आजतक के अनुभवो ने मेरे इस विचार को और भी दृढ कर दिया है कि जब देश के स्थान पर हम किसी जाति-विशेष अथवा धर्म-विशेष अथवा दल-विशेष को बिठाना चाहते है, तब इस तरह की लड़ाई हुए बिना नही रह सकती। देश-सेवको के लिए एक ही रास्ता है कि कम-से-कम तबतक, जबतक देश पूर्णरूपेण स्वतन्त्र नही हो जाता किसी स्थान अथवा प्रतिष्ठा के लिए लालायित न हों और केवल सेवा को ही ध्येय बनाकर काम करते जाय। मै इसको एक प्रवंचनामात्र मानता हूं, जब कोई यह सोचता और कहता है कि सेवा करने के लिए उसे किसी पद-विशेष की आवश्यकता है तथा उस पद के बिना वह सेवा नही कर सकता। सेवक के लिए हमेशा जगह खाली पडी रहती है। उम्मीदवारो की भीड़ सेवा के लिए नही हुआ करती। भीड़ तो सेवा के फल के बंटवारे के लिए लगा करती है। जिसका ध्येय केवल सेवा है, उसका फल नही, उसको इस धक्के मे जाने की और इस होड मे पडने की कोई जरूरत नही है।

वर्ष समाप्त होने के समय, दिसम्बर मे, गोहाटी में काग्रेस का वार्षिक अधिवेशन होनेवाला था। सभापतित्व के लिए बहुत जगहो से मौलाना मजहरुल हक का नाम आया था। बिहार के लोग बहुत चाहते थे कि वह चुने जायं। यहां से केवल उनका ही नाम भेजा गया था। पर उन्होंने अन्तिम चुनाव के पहले ही घोषणा कर दी कि वह इस प्रतिष्ठा के लिए उम्मीदवार नही है, लोगो को कोई दूसरा योग्य व्यक्ति चुन लेना चाहिए। इस इन्कार का कारण उनके समान व्यक्तित्व और ध्येयवाले महापुरुष के योग्य ही था। उन्होंने लिखा कि वह उस समय अपने सूबे में हिन्दू-मुस्लिम-समस्या हल करने के काम मे लगे है, काग्रेस के सभापति हो जाने से वह उतना समय अपने सूबे के इस काम को न दे सकेगे। हममे से बहुतेरो ने सोचा कि उनकी यह दलील ठीक नही थी। पर इसमे दूसरे की बात ही क्या चल सकती थी। उनके हट जाने पर श्री श्रीनिवास अय्यगर एकमत से निर्विरोध सभापति चुने गए; क्योंकि डाक्टर अंसारी ने भी, जिनका नाम प्रस्तावित हुआ था, अपना नाम हटा लिया था।

भाईसाहब और मैं, दोनों सपरिवार कानपुर-कांग्रेस में गये थे। वही मीराबहन से मेरी पहली मुलाकात हुई। वह कुछ दिन पहले हिन्दुस्तान आ चुकी थी; पर मुझसे मुलाकात नही हुई थी। उन दिनों से ही उनकी भक्ति, विश्वास तथा श्रद्धा की छाप मेरे दिल पर पड़ गई। वह एक

अंगरेज एडमिरल की लड़की है। उनके पिता हिन्दुस्तान में एडमिरल रहे थे। उस समय वह भी अपने पिता के साथ बम्बई में थी। ऐसी महिला का महात्माजी के आश्रम में आना और वहां के लोगों के साथ हिल-मिल जाना अंगरेजों को कब पसन्द हो सकता था। कुछ अंगरेजी पत्रों ने यह समाचार छापते हुए लिखा कि गांधीजी ने उनको एक प्रकार से फुसलाकर रख लिया है। बात ऐसी थी नहीं। मीराबहन ने इसका खण्डन किया। बात यह थी कि जर्मन-युद्ध के समय वह युद्ध की मारकाट से ऊब गई। वह इस तलाश में घर छोड़ रोमां रोलां के पास गई कि वह इस प्रकार के भीषण जीवन से बचने का कोई रास्ता बता देंगे। श्री रोमां रोलां ने इन्हें गांधीजी की पुस्तकें पढ़ने की सलाह दी और कहा कि उनकी पिपासा वहीं बुझ सकेगी। गांधीजी की लिखी जो पुस्तकें मिल सकीं, मीराबहन ने पढ़ीं। वह जैसे-जैसे पढ़ती गई, उनका विश्वास जमता और दृढ़ होता गया। अन्त में उन्होंने गांधीजी के पास आना चाहा, पर गांधीजी ने उन्हें रोका। विलायत में ही वह यथा-साध्य आश्रम का जीवन बिताने लगीं। अन्त में जब उन्होंने बहुत जिद की, तब गांधीजी ने आने की अनुमति दी। तबसे वह बराबर उनके साथ हैं। जो कुछ उनका अपना था, गांधीजी को समर्पित कर दिया है।

वहीं से मैं कायस्थ-कान्फ्रेन्स का सभापतित्व करने के लिए जौनपुर गया। इसका जिक्र ऊपर कर चुका हूं। कुछ भाइयों ने इस बात को नापसन्द किया। उनका कहना था कि कांग्रेसी लोगों को किसी जाति-विशेष की संस्था से लगाव न रखना चाहिए; क्योंकि इससे उनकी राष्ट्रीयता को धक्का पहुंचता है और जनता में बुद्धि-भेद हो सकता है। मैंने किसी जाति-विशेष की राजनैतिक उन्नति अथवा उसके अधिकारों की रक्षा के ख्याल से सभा-पतित्व नहीं स्वीकार किया था। मैंने सोचा था कि हमारे समाज में बहुत कुरीतियां प्रचलित हैं; यदि हम अपने समाज की विशेष संस्था में सम्मिलित होकर उन्हें हटाने में कुछ भी सफल हो सकेंगे तो यह अच्छा ही होगा। मैंने वहां जो भाषण किया वह भी ऐसा ही था कि उसमें राष्ट्रीयता-विरोधी एक भी बात नहीं थी और न जाति-जाति के बीच भेद बढ़ानेवाली कोई बात थी; बल्कि मैंने तो उस मंच से भी राष्ट्रीयता का ही समर्थन किया था। कान्फ्रेन्स में अन्य जाति के स्थानीय लोग भी आमंत्रित किये गए थे। जो ऐसे लोग वहां उपस्थित थे, उन्होंने मुझे भाषण के लिए बधाई देते हुए कहा कि जातीय कान्फ्रेन्स के मंच से इसी प्रकार के भाषण हुआ करें तो आपस में झगड़े ही न हों।

कायस्थ-कान्फ्रेन्स पुरानी संस्था है। उसके अनेक बूढ़े और कार्य-कुशल सेवक हैं। मैं उनके लिए एक नया अजूबा व्यक्ति था; क्योंकि उसके पहले

मैं कभी कायस्थ-कान्फ्रेन्स में नहीं गया था। मेरा भाषण भी शायद पुराने विचारवाले लोगों में से कुछको पसन्द न आया हो। इसलिए मैं समझ सकता था कि कुछने वहा की कार्रवाई पसन्द नही की; पर अधिवेशन सफलतापूर्वक समाप्त हुआ। मुझे अफसोस यही है कि जिस आशा और अभिलाषा से मैं उसमें शरीक हुआ था, वह बहुत करके पूरी न हुई। इसका दोष दूसरो पर न डालकर मुझे अपने ऊपर लेना चाहिए; क्योकि मैं दूसरे कामों में फंस जाने के कारण अपनी पूरी शक्ति लगाकर प्रयत्न भी न कर सका।

: ६७ :

बिहार-विद्यापीठ और खादी-प्रचार-कार्य

उन दिनो मेरा अधिक समय खादी के काम की देखभाल में और बिहार-विद्यापीठ के खर्च के लिए रुपये जमा करने मे लगता था। शुरू मे ही हम लोगो ने देख लिया कि विद्यापीठ के प्रति बहुतेरे भाई एक प्रकार से तटस्थ से थे। कुछ लोग तो उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। १९२१ मे इस भाव का कुछ प्रदर्शन होने लगा था। सबसे अधिक आश्चर्य और दुख की बात यह थी कि जिन लोगो ने बहुत जोर देकर उसे कायम कराया था, वे ही लोग या तो उदासीन हो गये या विरोधी। शुरू मे इसका आरम्भ किया गया था एक भाडे के मकान मे। प्रायः दो सौ रुपये मासिक भाड़ा दिया जाता था। हमने सोचा कि खर्च यथासाध्य कम करना चाहिए। निश्चय किया कि सदाकत-आश्रम में, जिसे मजहरुल हकसाहब ने खोल रखा था और जिसमें उन्होंने कुछ मकान भी बनवा लिये थे, इसे ले जाया जाय। हकसाहब ने इस बात को बहुत पसन्द किया। हम विद्यापीठ वही ले गये। कुछ नये मकान भी बनवा लिये गए, जहा प्राय. सभी छात्र और अधिकाश शिक्षक भी रहने लगे। छात्रों की सख्या कम होने लगी थी। जिलो मे जो स्कूल खुले थे, वे भी जहा-तहा बन्द होने लग गये थे। लोगो का उत्साह कम होता गया। बहुतेरे स्कूल अर्थाभाव और छात्राभाव से बन्द हो चुके थे। तो भी १९२६ के मार्च मे ९ हाईस्कूल, १६ मिडिल स्कूल और ३० प्राइमरी स्कूल चल रहे थे, जिनमे क्रमश. छात्रो की सख्या ७९७,१२८५ और १०१९ और शिक्षको की सख्या ७९, ७० और ३४ तथा खर्च १९५० रु०, १२६० रु० और ४२६ रु० मासिक था—अर्थात् स्कूलो की सख्या ५५ थी, जिनमें १८३ शिक्षक काम कर रहे थे और ३६३६ रु० मासिक खर्च हो रहा था। पर कुछ स्कूल सभी मुसीबतो को झेलते हुए कायम रह गये और आजतक चल रहे है। विद्यापीठ का रहना हमने आवश्यक समझा। इसके लिए रुपये जब-तब, जरूरत पड़ने पर, जमा करते गये।

हमने महाराष्ट्र मे देखा था कि कई संस्थाएं लोग वार्षिक चन्दे से चलाते है। चन्दे की रकम किसी एक आदमी की बहुत बड़ी नहीं होती है; पर बहुत-से लोग पाच या दस या इससे भी कम प्रतिवर्ष देने का वादा कर

देते हैं और संस्था की वार्षिक रिपोर्ट वी० पी० द्वारा ऐसे सभी मेम्बरों के पास भेज दी जाती है। चन्द दिनों में ही चन्दे के सभी रुपये वी० पी० के जवाब में आ जाते है। हमने भी कुछ ऐसा ही करने की सोचा। घूम-घूम कर पांच रुपये वार्षिक चन्दावाले मेम्बर बनवाये। जो लोग एक मुश्त बड़ी रकम दे देते, उनको आजीवन सदस्य अथवा ट्रस्टी बना लेते। पर हमारे सूबे मे लोगो को इस प्रकार नियमित रूप से प्रतिवर्ष चन्दा देने की आदत नहीं पड़ी है। जिन्होंने वादा किया और मेम्बरो का फारम भर दिया, उन्होने भी साल के अन्त में बड़ी कठिनाई से रुपये दिये। एक-दो बरस के बाद वह भी बन्द कर दिया। यह सम्भव नही था कि प्रमुख लोग हर साल मेम्बरो के पास वादा किया हुआ चन्दा वसूल करने के लिए जाय। इस-लिए यह उपाय हमारे लिए कारगर नही साबित हुआ। घूम-घमकर, जहां गये वहां से, हमेशा कुछ लाना ही पड़ता रहा। हा, पटने मे कुछ सज्जनो ने मासिक कुछ देना स्वीकार किया। उनमे से बहुतेरे बराबर देते रहे है। शुरू मे ही एक सज्जन (श्री भगवानदास) ने कुछ जमीन दान कर दी थी, जिसकी थोड़ी आमदनी हर साल मिलती जाती थी। कुछ दिनों के बाद मुजफ्फरपुर के श्री गजाधरप्रसाद साहु ने अपने ट्रस्ट मे से विद्यापीठ के लिए भी कुछ दिया, जो रकम बराबर मिलती जाती थी। इस तरह विद्यापीठ की आर्थिक कठिनाई हमेशा बनी रही है।

हमने इस बात की कोशिश की कि अच्छे विद्वानों को वहां बुलावे, जिसमे जनसाधारण को उसकी उपयोगिता और वहां मिलनेवाली शिक्षा के प्रति विश्वास हो। काशी से प्रसिद्ध विद्वान श्री रामदास गौड़जी आये। इसी तरह बंगाल से कुछ ऐसे विद्वान शिक्षक लाये गए, जिन्होंने युनिवर्सिटी मे ख्याति के साथ परीक्षाएं पास की थी। कुछ दिनों के बाद, प्राचीन भार-तीय इतिहास के ख्यातिनामा विशेषज्ञ श्री जयचन्द्र विद्यालंकार भी विद्या-पीठ मे इतिहास के शिक्षक होकर आये थे। उनके साथ मेरा परिचय उसी समय हुआ, जो आगे चलकर अधिक घनिष्ठ हो गया तथा भारतीय इति-हास-परिषद् के जन्म के कारणों में एक मुख्य कारण हुआ। किन्तु इतने पर भी विद्यार्थियों की संख्या कम होती गई। हमने वहा के पाठ्यक्रम में भी जब-तब परिवर्तन किया। इस बात की भी चेष्टा की कि विद्यार्थी केवल पुस्तकीय विद्या न पाकर अधिक कार्य-कुशल देश-सेवक बनें। पर सबकुछ करने पर भी राष्ट्रीय शिक्षा बहुत ही परिमित क्षेत्र में रह गई। तब भी, जहांतक रह गई है, हमारे विद्यार्थी और शिक्षक अच्छे सेवक निकले हैं। सत्याग्रह के समय उन्होंने हमेशा बहुत काम किया है।

मार्च १९२६ में, समावर्तन के अवसर पर, दीक्षान्त भाषण के लिए,

श्री राजगोपालाचारी निमंत्रित किये गए थे। उन्होंने कहा था कि ये विद्यालय हमारे उत्साह की ज्योति को जगाये रखे हुए है। यह बात अक्षरशः सत्य है। समावर्तन सस्कार बडे उत्साह के साथ हुआ। उनका भाषण भी बहुत ही सुन्दर और जोरदार हुआ। जो लोग उस उत्सव में शरीक हुए, सबने उसकी भूरि-भूरि प्रशसा की। विद्यापीठ और उसके छात्रो की सरलता तथा सरकारी युनिवर्सिटी के समावर्तन-समारोह की शान-शौकत याद करके सब लोग हमारी छोटी संस्था की उपयोगिता मानने लगे थे।

विद्यापीठ के अतिरिक्त मेरा अधिक समय खादी के काम मे लगता था। जबसे खादी का काम आरम्भ हुआ, मेरी दिलचस्पी उसमे थी; पर इन दिनो जितना समय मै उसमे दे सका उतना पहले कभी न दे सका था और पीछे भी न दे सका। बिहार मे खादी का काम १९२१ में ही आरम्भ हुआ, जब स्वराज्य-कोष के रुपयो मे से एक अच्छी रकम बिहार-प्रान्तीय कमिटी को इस काम के लिए मिली। इस काम के चलाने का भार शुरू मे प्रान्तीय कमिटी ने ही लिया। कई जिलो मे उसकी ओर से कुछ लोग इसके चलाने के लिए नियुक्त किये गए। अनुभव न तो प्रान्तीय कमिटी मे किसीको था और न उन लोगो मे से किसीको। नतीजा कुछ अच्छा नही हुआ।

कांग्रेसी कार्यकर्त्ता श्री रामविनोदसिह ने स्वतंत्र रूप से यही काम शुरू किया। उनको श्री आचार्य कृपालानी से मदद मिली। मधुबनी मे एक उत्पत्ति-केन्द्र खोलकर वह अच्छी खादी तैयार करने लगे। यह खादी दूसरे प्रान्तो तक पहुंची। खादी-सम्बन्धी काम मे बिहार का नाम उन्होंने ऊंचा किया। आचार्य कृपालानी की सिफारिश और मेरी अनुमति से उनको काम बढ़ाने के लिए एक बडी रकम का कर्ज खद्दर बोर्ड की ओर से मिला। प्रान्तीय कमिटी का काम उतना सफल न हुआ; क्योंकि काम फैलाया गया बहुत; पर उसमे न तो शास्त्रीय ज्ञान का अधिक उपयोग हुआ और न व्यापार-बुद्धि का ही। इसलिए उसमे घाटा भी काफी रहा। जब अखिल भारतीय चर्खा-सघ की स्थापना हो गई और मै एजेण्ट नियुक्त हुआ तथा श्री लक्ष्मीनारायण मत्री बने, तब नये सिरे से सारे काम का सगठन किया गया। बहुत-से भडार बन्द कर दिये गए। जहां बिना घाटे के काम हो सकता था वहा काम जारी रखा गया। इससे कुछ कांग्रेसी कार्यकर्त्ता असन्तुष्ट भी हुए। जो खादी के काम मे आये, उनका नियंत्रण भी अधिक होने लगा। एक चित्त होकर इस काम मे लगने के लिए उनपर जोर दिया गया। नतीजा यह हुआ कि काम की व्यवस्था बहुत सुधर गई। खादी की उत्पत्ति और बिक्री बढ़ने लगी।

मैं उन दिनों प्रायः सभी उत्पत्ति-केन्द्रो में, बरस में एक बार, जाया करता था। वहां एक-एक दो-दो दिन रहकर काम देखा करता था। भंडार में, जहां सूत की खरीद और रुई की बिक्री होती थी, खुद बैठता भी था। अपने हाथों रुई-सूत तौलता और बेचता-खरीदता था। कपड़े की बुनाई को भी जाकर देखता और तैयार कपडे पर दाम बैठाने के काम मे यथासाध्य भाग लेता। इससे मेरा निजी ज्ञान बढता गया। साथ ही यह भी अनुभव होता गया कि हम इस विषय में कितनी कम जानकारी रखते है और इस जानकारी का न होना ही घाटे के मुख्य कारणों मे था। जो हम खर्च का अनुमान-पत्र बनाते, उसे चर्खा-सघ के मत्री श्री शंकरलाल बैंकर और उनके दफ्तर के लोग खूब जाच-समझकर ही मंजूर कराते। पर तो भी कई बार घाटा हो गया।

उस समय खादी-प्रचार के लिए हम सबकी इच्छा रहती थी। अखिल भारतीय चर्खा-संघ की भी नीति थी कि हम जितनी सस्ती खादी बना और बेच सकें उतना ही अच्छा है। इसी नीति के अनुसार सस्ती-से-सस्ती दर पर सूत खरीदने, कम-से-कम बुनाई देकर उसको बुनवाने और दूकानों मे कम-से-कम खर्च करके उसे बेचने का प्रयत्न किया जाता। इसका नतीजा यह होता कि कार्यकर्त्ताओ की कमी और अयोग्यता के कारण दूकानों मे बिक्री ठीक न होती, माल का हिसाब ठीक न रहता और उत्पत्ति-केन्द्रो का हाल यद्यपि कुछ बेहतर होता तथापि पूरा सतोषजनक न हो पाता था। इस-लिए इस देखभाल की बहुत जरूरत होती। इतना हम अवश्य कहेंगे कि उन दिनों जितनी शाखाए थी, उनमे बिहार की खादी बहुत करके सस्ती और अच्छी भी होती थी। महीन खादी के लिए आन्ध्र मशहूर था। बिहार की 'कोकटी' सभी सूबों में जाती। इससे बिहार की ख्याति काफी हो गई। रंगाई-छपाई का काम भी शुरू कर दिया गया था। अब रंग-बिरंग की खादी मिल सकती थी, पर मेरे सन्तोष के लायक अभी पक्का सगठन नहीं हो पाया था।

जब काम आरम्भ किया गया था तो खादी-विभाग का दफ्तर और मुख्य भडार पटने मे ही था। खादी तैयार होती विशेषकर दरभगा जिले मे, पर केन्द्र-भंडार पटने मे ही था। इसमें असुविधा काफी थी, पर हम सभी पटने में ही रहते थे, इसलिए केन्द्र-भंडार और दफ्तर को वहा से हटाने की इच्छा न होती। जब लक्ष्मीबाबू मंत्री हो गये और काम बढाने का विचार हुआ तो निश्चय किया गया कि कारबार पटने से हटाकर मुजफ्फर-पुर ले जाया जाय। इसमे पटने के मित्रों का बहुत विरोध हुआ, पर मैने इसकी उपयोगिता देख ली और हटाने की राय दे दी। मुजफ्फरपुर में,

अखाड़ा-घाट पर, गंडक नदी के किनारे कुछ झोंपड़े बने, जिनमें कार्यकर्त्ता रहने लगे और जहा रंगाई इत्यादि का काम होने लगा। स्थान बहुत अच्छा था। मैं भी कभी-कभी जाकर वहा रहता। माल रखने का गोदाम और मुख्य भंडार शहर में, सरैय्यागज में, भाड़े के मकान में रखे गये थे। यहां से काम बहुत बढ़ा। कुछ दिनों के बाद हमने महसूस किया कि यह प्रबन्ध भी ठीक नही है; क्योंकि उत्पत्ति-केन्द्र मुख्यतः दरभंगा जिले में थे। वहां से कपड़ा तैयार कराकर मुजफ्फरपुर लाया जाता। मुजफ्फरपुर में धुलाई, रंगाई, छपाई इत्यादि का काम होता। तब वहां से बिक्री के लिए भंडारों मे खादी भेजी जाती। इसमे खर्च अधिक पड़ता। इसलिए निश्चिय हुआ कि मुख्य भंडार मधुबनी (दरभगा) में ही ले जाया जाय। इससे पहले रामविनोद-बाबू का भंडार वहा था ही। इसलिए चर्खा-संघ का काम वहां अधिक न करके पंडौल मे ही होता था, ताकि दोनो सस्थाओ मे आपस में प्रतिस्पर्धा न हो तथा दोनो स्वतन्त्र रूप से काम चलाते और बढाते जायं। पर कुछ दिनों मे रामविनोदबाबू और उनके सहकर्मियो मे—जिनमे मुख्य श्री ध्वजाप्रसाद और रामदेव ठाकुर थे—मनभेद हो गया। रामविनोदबाबू का काम भी चर्खा-संघ के मुकाबले मे कम हो गया। इसलिए अब मधुबनी जाने में ही सुविधा देखी गई। एक तो वह बहुत बडा केन्द्र हो सकता था, दूसरे अनेक अन्य उत्पत्ति-केन्द्रो के लिए वह एक ऐसी जगह थी, जहां से कार्य-कर्त्ताओ के आने-जाने मे काफी सुविधा थी। तीसरे रेल, तार, डाक, बैंक इत्यादि की भी सुविधा थी। इसलिए मुजफ्फरपुर से दफ्तर और केन्द्र-भंडार हटाकर मधुबनी ले जाये गये। आहिस्ता-आहिस्ता वहा चर्खा-सघ का अपना मकान बन गया। आज तो वह एक देखने योग्य स्थान हो गया है। इसमे न जाने कितने बरस लगे है; पर एक स्थान पर ही इसका जिक्र कर देना ठीक समझा।

१९२६ मे खादी-सम्बन्धी मेरा मुख्य काम यह भी रहा कि स्थान-स्थान पर खादी-प्रदर्शनी कराऊ। मेरा प्रयत्न था कि खादी मे सब लोगों की दिल-चस्पी पैदा हो। इसी उद्देश्य से पटने की प्रदर्शनी सफलतापूर्वक की गई थी, जिसका जिक्र पहले आ गया है। १९२६ की प्रदर्शनियो मे भी इसकी विशेष चेष्टा की गई। जहा-तहा अगरेज और दूसरे विदेशियो ने भी दिल-चस्पी ली। बेतिया (चम्पारन) की प्रदर्शनी का उद्घाटन उस समय के बेतिया-राज के मैनेजर मिस्टर एच० सी० प्रायर, आई० सी० एस० ने किया। मिस्टर अथरफोर्ड के हट जाने पर वही वहा मैनेजर हुए थे। मोती-हारी की प्रदर्शनी का उद्घाटन रेवरेण्ड जे० जेड हौज ने किया। वह एक प्रतिष्ठित पादरी थे, जिनका परिचय गांधीजी से और मुझसे पहले से ही

था। जमशेदपुर में भी एक मार्के की प्रदर्शनी की गई। इतने बड़े कारखाने-वाले शहर मे—जहा की चिमनिया दिन-रात धुआ उगलती रहती है, जहा गला हुआ लोहा नदी के झरने के समान वहता रहता है, जहा लोहे की बड़ी-बड़ी सिले आसानी से आटे की रोटी की तरह वेल दी जाती है और पत्तर अथवा लम्बी-लम्बी रेल-लाइने वेली जाती रहती है—छोटी तकली और चर्खे की प्रदर्शनी एक अजीब-सी चीज थी। इसका आयोजन करना ही एक साहस का काम था। उस बड़े कारखाने के अफसरो को इस छोटी कल की करामात दिखाने की बात तो और भी बड़े दुस्साहस की थी। पर हमने ऐसा ही किया। टाटा-कम्पनी के बड़े अफसर मिस्टर टेम्पुल से—जो खुद इजीनियर थे और जमशेदपुर के टाउन-एडमिनिस्ट्रेटर भी—प्रदर्शनी के उद्घाटन करने का अनुरोध किया गया। उन्होंने इसे मान लिया। खादी की उपयोगिता पर सुन्दर भाषण भी किया। कम्पनी के जनरल मैनेजर मिस्टर कीनन और उनकी पत्नी, जो दोनो अमेरिका-निवासी थे, प्रदर्शनी मे आये। दोनो ने कुछ खादी भी खरीदी। कम्पनी के दूसरे बड़े-बड़े अफसर भी, प्रायः सभी, प्रदर्शनी में आये। खादी की बिक्री भी अच्छी हुई। लोगो के आग्रह से एक और प्रदर्शनी शहर के एक दूसरे मुहल्ले मे भी की गई। इस साल में सूबे के प्राय सभी बडे-बडे शहरो में प्रदर्शनियां की गईं। उनका उद्घाटन अक्सर स्थानीय प्रतिष्ठित लोगों द्वारा कराया गया। कई जगहो मे मैंने ही उद्घाटन किया। इन प्रदर्शनियों से केवल खादी-सम्बन्धी प्रचार ही नही हुआ, खादी खूब बिकी भी। जो माल नया तैयार हो गया था, उसकी निकासी मे पूरी मदद मिली। १९२५ मे गाधीजी ने बिहार के कुछ जिलो मे जो दौरा किया था, उसमे खादी और देशबन्धुदास-स्मारक-कोष के लिए रुपया जमा किया था। बिहार में प्रायः पचास हजार रुपये जमा किये गए थे। वह रकम पूजी मे जोड़ दी गई थी। इससे काम खूब बढने लगा था।

किन्तु महात्माजी का स्वास्थ्य प्रायः ठीक न रहता। रुधिर का दबाव अधिक हो जाया करता। वह गर्मी के दिनो मे मैसूर-राज्य के नन्दी-पहाड पर आराम करने के लिए गये। मै भी वहा गया। उनके साथ कई दिनों तक ठहरा। स्थान बहुत ही रमणीय था। पहाड़ पर चढना कुछ मेहनत का काम था। पर अभी तक मेरा दमा इतना ज्यादा नही बढा था। प्रायः गर्मियो मे तो मैं अच्छा रहता ही हूं। इसलिए मै पहाड़ पर पैदल ही चढ़ गया। यों ही वापसी में उतरा भी। उस प्रदेश की यह मेरी पहली यात्रा थी। वहां से महात्माजी के साथ बंगलोर आया और ठहरा। वहा खादी की एक बड़ी प्रदर्शनी हुई, जिसमें विशेष भाग तामिलनाड और आन्ध्र की

शाखाओं ने ही लिया। अपने ढग की वह प्रदर्शनी बहुत ही अच्छी हुई। वही से मैसूर-राज्य मे खादी-प्रचार का सगठित रूप से सूत्रपात हुआ। उस अवसर पर खादी-सम्बन्धी प्रक्रियाओं के प्रदर्शन के साथ-साथ खादी-सम्बन्धी भाषण भी हुए।

हिन्दी-प्रचार का काम भी दक्षिण में हो रहा था। वहा एक विशेष सम्मेलन करके कुछ परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियो को प्रमाण-पत्र वितरित किये गए। मैंने पहले-पहल हिन्दी-सम्बन्धी उत्साह देखा। एक ही साथ पति-पत्नी, मा-बेटी, सास-पतोहू और पिता-पुत्र हिन्दी सीखनेवाले मिले। एक ही साथ परीक्षा में ये बैठते भी। मेरे लिए यह सब नया अनुभव था। उस यात्रा को अपने लिए मै बहुत ही शिक्षाप्रद मानता हूं।

बगलोर मे प्रदर्शनी समाप्त होने के बाद मैंने दक्षिण के कई स्थानो का भ्रमण किया। तामिलनाड के मुख्य भडार को देखा। वह तिरुपुर मे था। दूसरे कई और भडारों को भी जाकर देखा। राजाजी ने अपना आश्रम सेलम जिले में बना रखा था। वहा वह खादी का काम बहुत जोरो से चला रहे थे। वहा भी गया। इन सब जगहो मे वहा के काम की परिपाटी और सगठन-विधि का पूरी तरह अध्ययन किया। जो कुछ नया और जानने योग्य वहा मिला, उसको अपने सूबे मे दाखिल करने का प्रयत्न भी किया। वहा का संगठन और हिसाब रखने का तरीका मुझे बहुत पसन्द आया। मैंने उनका अध्ययन कर लिया। उन दिनो सबसे अधिक खादी की उत्पत्ति तामिलनाड मे होती थी। सबसे बढिया महीन खादी (कोकटी को छोडकर) आन्ध्र देश मे बनती थी। इसलिए मैंने सोचा कि तामिलनाड का सगठन देखने के बाद आन्ध्र भी जाना चाहिए। वहा के चर्खा-सघ के मत्री श्री सीताराम शास्त्री का आग्रह भी था कि मै चलू और खादी-सम्बन्धी भाषण भी करू।

लौटने के समय मै आन्ध्र होते हुए लौटा। मै आन्ध्र के कई जिलो मे गया। सभी जगहो मे मैंने खादी-सम्बन्धी भाषण किया। मेरे भाषण वहा अगरेजी में ही हुए। मैंने देखा कि मै जिस शास्त्रीय रीति से खादी के सम्बन्ध मे लोगो को समझाता, उसका असर काफी अच्छा पड़ता—विशेष-कर शिक्षितवर्ग पर, जो अक्सर खादी की उपयोगिता और सफलता के सम्बन्ध मे बहुत शका-सन्देह रखा करता था। वहा के लोगो का कहना था कि मेरी यात्रा से खादी-प्रचार मे अच्छी सहायता मिली। जब मैं पटने लौट आया तो कुछ भाइयों का विचार हुआ कि जो कुछ मैंने अपने भाषणो मे कहा है, वह लेखबद्ध कर दिया जाय तो अच्छा होगा। इसलिए मैंने अपने भाषणो का साराश लिख डाला। 'एकनामिक्स आफ खादी' के नाम से वही एक पुस्तिका के रूप मे प्रकाशित हुआ। इसका हिन्दी-

रूपान्तर भी 'खादी का अर्थशास्त्र' के नाम से प्रकाशित हुआ। इस तरह उस साल का बहुत समय खादी के काम में ही बीता।

कानपुर-काग्रेस के समय आसाम के कुछ लोग आये थे, जिनमे एक प्रमुख व्यक्ति श्री नवीनचन्द्र बारदोलाई थे। यह मेरे एक पूर्व-परिचित मित्र थे। इनके साथ उस समय से ही घनिष्ठता हो गई थी, जब हम दोनो कलकत्ता-हाइकोर्ट मे वकालत किया करते थे। असहयोग-आन्दोलन मे यह आरम्भ से ही आ गये थे और अपने प्रान्त के प्रमुख लोगो मे से थे। इन लोगों की इच्छा थी कि कांग्रेस को आसाम मे निमत्रित करें। इस सम्बन्ध मे इन्होने मेरी राय ली। मैने इनको मना किया, क्योकि गया-काग्रेस के अनुभव ने मुझे बता दिया था कि काग्रेस का आयोजन बहुत विस्तार ले चुका है और आसाम छोटा प्रान्त है। पहले तो काफी रुपये जमा करने में ही मुश्किल हो सकती है, क्योकि आसाम केवल छोटा ही नही, गरीब सूबा भी है। दूसरे, काग्रेसी लोग सरकारी प्रान्त के केवल उसी हिस्से को आसाम कहते है, जहा की भाषा असमिया है, अर्थात् ब्रह्मपुत्र की घाटी। जो बगला बोलनेवाला हिस्सा है, जिसे सूरमा घाटी कहते है, वह तो बगाल के साथ है। इस तरह सूबा और भी छोटा हो गया है। कार्यकर्त्ताओं की संख्या भी काफी नही है। इतने पर भी उन लोगों का उत्साह बहुत था। उन्होने मेरी बात नही मानी, काग्रेस को आमन्त्रित कर ही दिया।

उन लोगो की यह भी इच्छा थी कि कांग्रेस के पहले ही उस प्रान्त मे खादी के काम का पुनस्सगठन हो जाय। पहले कुछ काम हुआ था, पर वह योग्य कार्यकर्त्ता के अभाव से ठीक चला न था, उसे बन्द कर देना पडा था। उन्होने इसके पुनस्सगठन मे मेरी सहायता मागी। मै इन्कार न कर सका। वहां जाने का वचन दे दिया। कुछ दिनों के बाद वहा गया भी। आसाम के कई जिलो मे, जहां खादी का काम अच्छी तरह चल सकता था, भ्रमण किया। इस यात्रा का अनुभव बहुत ही अच्छा रहा। खादी के लिए आसाम एक अत्यन्त उपयुक्त प्रान्त है, क्योकि इसके लिए वहां जैसी सुविधाए है वैसी शायद ही किसी सूबे मे हो। रेशम के कीडे पालने, उनसे सूत निकालने और उस सूत को बुन लेने की प्रथा अभीतक आसाम मे जारी है। कपडा बुनना वहा की स्त्रिया उसी तरह जानती है जिस तरह हमारे सूबे की स्त्रियां कुछ सीना-पिरोना। अच्छे घरो की लड-कियों की तो शादी ही नही हो सकती, यदि वे अच्छी तरह बुनाई न जानती हों। वह बुनाई भी मामूली बुनाई नहीं, वे अपने करघो पर रग-बिरंगे फूल भी बुन सकती हैं। निहायत खूबसूरत फूलदार किनारी के साथ साड़ियां भी बन सकती है। प्राय: सभी घरों मे करघे चला करते हैं। करघे भी बहुत

सादा बांस के ही बने होते हैं। बुनाई के अलावा वहां की स्त्रियां सूत कातना भी जानती हैं। मुझे वहां यह देखकर बहुत आश्चर्य और प्रसन्नता हुई कि वहां के खद्दर-भण्डार में स्त्रियां तैयार कपड़ा लेकर आती और उससे रुई बदलकर ले जाती; अथवा, इसी बात को हम इस तरह भी कह सकते है कि हम जैसे दरभगा-जिले के भण्डारों मे रुई देकर सूत बदलते थे वैसे ही वहा के भण्डारों मे रुई देकर कपड़ा बदला जाता था। इसका कारण यही था कि वहां चर्खे और करघे का घर-घर प्रचार है। हम तो कुछ स्त्रियों से सूत कतवाते है। वह सूत फिर बुनकर को बुनने के लिए देते है और वह उसे बुनता है। वहा यह बीच का कदम गैरजरूरी हो गया है। उस प्रान्त के कुछ हिस्से मे रुई भी पैदा होती है, जो बहुत अच्छी तो नहीं कही जा सकती, पर तो भी काम चलाने के लिए ठीक है। इस तरह उस सूबे मे खादी-प्रचार के लिए बहुत अच्छा सुयोग मैंने पाया। मैंने चर्खा-सघ मे आकर बहुत जोर दिया कि इस काम के लिए आसाम को कुछ रुपये दिये जायं। मत्रीजी यह नही चाहते थे, क्योंकि उनका पहला अनुभव ठीक न था। आखिर उन्होंने और कौन्सिल ने मेरी बात मान ली। कुछ रुपये दिये गए। वहा का काम फिर सगठित रूप से चलने लगा।

इस यात्रा मे मैंने एक बात देखी। नवगाव-जिले के गावों मे भ्रमण करते समय देखा कि वहा बहुत जमीन परती है, जो अभीतक आबाद नही की गई है। जमीन पर बहुत अच्छी और हरी घास लगी हुई थी, क्योंकि वहां की जमीन मे योंही काफी नमी रहती है। कही-कही इन बडी परतियों में कुछ झोंपड़े नजर आते थे, जिनमें थोड़े ही आदमी देखने मे आये। अभी तक जमीन पर कोई फसल नही थी और न जोतने-बोने का कोई चिह्न ही देखने मे आता था। पूछने पर मालूम हुआ कि इस तरह की गैरआबाद जमीन आसाम मे कुछ है। वहा का कानून कुछ ऐसा था कि जो आदमी ऐसी गैरआबाद जमीन मे आ करके बैठ जाय और उसको आबाद करना शुरू कर दे तो कुछ काल मे उसपर उसको स्वत्व प्राप्त हो जाता था। वहा से नजदीक ही बगाल का मैमनसिंह-जिला है, जिसकी आबादी बहुत है और जहा जमीन की कुछ कमी होने लगी है। इसलिए वहा से कुछ लोग आकर इन गैरआबाद टुकड़ो पर झोंपड़े बनाकर रह जाते है। उन्हे वे आहिस्ता-आहिस्ता आबाद करने लगते है। इस तरह कुछ दिनों मे जमीन पर अपना हक कायम कर लेते है। ये लोग प्राय. सभी मुसलमान है। इनसे वहा की गैरआबाद जमीन आबाद होती जा रही है। साथ ही, आगन्तुक मुसलमानो की संख्या सूबे के मुसलमानो की संख्या बढाती जा रही है। पूछने पर यह भी मालूम हुआ कि कोई भी इस तरह से आकर वहां जमीन ले सकता है,

चाहे वह किसी भी प्रान्त का हो। मैंने सोचा कि बिहार मे, विशेषकर छपरा-जिले में, इतनी अधिक आबादी हो गई है कि जमीन की कमी के कारण लोगों को लाखों की संख्या में प्रतिवर्ष प्रान्त के बाहर मजदूरी करने के लिए जाना पड़ता है। उनमे से न मालूम कितने हजार इसी आसाम में आते है। यहा कुछ महीनो तक रहकर मजदूरी करके कुछ कमा लेते है। फिर अपने घर कुछ महीनो के लिए चले जाते है। मेरी यात्रा मे मेरे जिले के आदमी प्रायः सभी जगहो मे मिल जाते थे। अपनी बोली और चाल-ढाल से वे बड़ी आसानी से पहचाने जाते थे। पूछने पर गाव का नाम भी मालूम हो जाता था। मैंने सोचा कि जो लोग इस तरह यहा आकर कुछ महीनों के बाद ही घर चले जाते है वे यदि स्थायी रूप से जमीन हासिल करे तो एक पथ दो काज हो सकता है—छपरे की आबादी मे कमी हो सकती है और ये लोग हर चार-पांच महीने पर जो रेल-भाड़े मे खर्च करते है, वह बच जाय तथा इनको जमीन भी मिल जाय।

इस विषय मे वहा के लोगों से बाते हुई। उन्होंने इस बात को पसन्द किया, क्योंकि बिहारी मजदूरो से उनका परिचय था, उनको वे पसन्द करते थे। मैमनसिह के आदमी उनके काम के नही होते। वे उन्हे इसलिए पसन्द नही करते थे कि मैमनसिहवालो का व्यवहार वहा के स्थानीय लोगो के साथ अच्छा नही होता था। कुछ लोग तो मैमनसिह के मुसलमानो की अपेक्षा बिहार के हिन्दुओं का वहा जाकर बसना अपने लिए बेहतर समझते थे। कारण, हिन्दू-मुस्लिम झगड़े उन दिनो हुआ ही करते थे। वे चाहते थे कि वहा इस तरह आगन्तुक मुसलमानो की संख्या न बढे तो वहा के हिन्दुओ के हक मे अच्छा होगा। बात भी ऐसी थी कि मुसलमानो की सख्या बंगाली आसाम मे अधिक थी और यह गैरआबाद जमीन शुद्ध आसामी बोलनेवाले हिस्से मे थी, जहां मुसलमानो की सख्या कम थी। वहा के हिन्दू डरते थे कि यहा यदि मैमनसिह से मुसलमान इस तरह आकर बसते रहे तो एक दिन उस हिस्से मे भी मुसलमानो की सख्या अधिक हो जायगी। वे खुद सब जमीन आबाद नही कर सकते थे। नियमानुसार कोई भी बाहर से आकर आबाद कर सकता था। ऐसी अवस्था मे उनके लिए यही बेहतर था कि बिहार के हिन्दू ही आकर बसे। बिहार लौटने पर मैंने इस जमीन का और इसके मिलने के नियम का जिक्र कुछ भाइयों से किया था। पर वहां कोई गया नही। जहां-तक मै जानता हूं, शायद दो-चार ही बिहारियों ने वहा जाकर जमीन ली हो।

मैंने इसका जिक्र अपने भाईसाहब से भी किया। उन्होंने कई बरसों के बाद वहां जाकर जमीन देखी। गैरआबाद जमीन के सिवा उन्होने

आबाद जमीन लेने की बात भी सोची। स्वर्गीय बाबू शंभूशरण और बाबू अनुग्रहनारायणसिंह के साथ मिलकर एक बंगाली सज्जन ने भी प्रायः एक हजार एकड़ जमीन कई हजार रुपये पर मोल ली। सुना था कि जमीन अच्छी थी। नारंगी का बगीचा था। आबाद करने के लिए मोटर-ट्रैक्टर था। एक बगला भी था। जमीन जगल के बीच में थी। वहां जंगली जानवर, विशेषकर शेर और हाथी, आ जाया करते थे। तब भी जमीन आबाद करने का प्रबन्ध किया गया। बैल वगैरह रखे गये। पर वहा की आबहवा इतनी खराब थी कि जो कोई जाता, मलेरिया ज्वर से ग्रस्त हो जाता। शायद पुराने मालिक के बेचने का भी यही कारण था। भाई-साहब कई बार वहा गये। अनुग्रहबाबू और शभूबाबू भी गये। मैं कभी न गया। पर उन लोगो के जाने पर भी आबादी का सिलसिला ठीक जमता न था। कई बरसों के बाद भाईसाहब वहा गये थे। वहीं से ज्वर लिये वापस आये। उसी बीमारी ने उनको मजबूर कर दिया, जिससे उनकी मृत्यु भी हो गई। उसके पहले ही शभूबाबू की मृत्यु हो चुकी थी। अब किसीके मन मे उत्साह नही रह गया। हम लोगो ने जमीन को यों ही छोड़ दिया। मालगुजारी बाकी पड जाने से शायद वह नीलाम हो गई होगी। इसमे हम लोगो का कई हजार रुपयों का नुकसान हुआ था। केवल बाबू महेन्द्रसिंह और श्री रामरक्ष ब्रह्मचारी वहा कुछ जमीन लेकर आबाद करा सके। वह जमीन आजतक उनके भाई या कोई दूसरे सबांग रहकर आबाद कराते और कुछ हासिल कर लेते है। ये सब बातें उस एक साल की ही नही है। यह प्रायः सात आठ बरसो की घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन है। पर यहां एक ही स्थान पर दे देना ठीक मालूम पडा। अब सुना है कि वहा के उस कानून में कुछ परिवर्तन हुआ है। अब उतनी आसानी से बाहर के लोगो को जमीन नही मिल सकती। उसका अधिक हिस्सा शायद स्थानीय लोगों के लिए सुरक्षित रखने की व्यवस्था की गई है।

: ६८ :

गोहाटी-कांग्रेस

गोहाटी में जो कांग्रेस का अधिवेशन हुआ उसके लिए वहा के लोगों ने बडे उत्साह के साथ ब्रह्मपुत्र के किनारे ही कांग्रेस-नगर बनवाया था। उस स्थान और शिविर का दृश्य अत्यन्त सुन्दर था। खादी का काम बहुत आगे बढ निकला। वहा की प्रदर्शनी भी बहुत अच्छी हुई। प्रदर्शनी के सफल बनाने मे चर्खा-सघ का ही मुख्य प्रयत्न हुआ करता था। इसलिए चर्खा-संघ मे उसके प्रबन्धक अनुभव प्राप्त करते जा रहे थे। मुझे याद है कि उस प्रदर्शनी मे चर्खा-संघ की बिहार-शाखा के कार्यकर्त्ताओं ने बहुत काम किया था। इस बार कांग्रेस के सभापति थे मद्रास के श्री श्रीनिवास अय्यंगर। स्वागताध्यक्ष थे श्री तरुणराम फूकन और मंत्री श्री नवीनचन्द्र बारदोलाई। उन लोगों ने प्राणपण से सुप्रबन्ध की चेष्टा की थी। ठीक कांग्रेस के अधिवेशन के कुछ दिन पहले एक आततायी मुसलमान ने दिल्ली में स्वामी श्रद्धानन्दजी को उनके घर मे घुसकर मार डाला था। इससे सारे देश के हिन्दुओ में बहुत क्षोभ उत्पन्न हुआ, जिसका असर गोहाटी में उपस्थित लोगो पर भी पड़े बिना न रह सका। सबसे बढकर हिन्दुओ के दिल दुखानेवाली बात यह हुई कि हत्या करनेवाले उस आदमी के मुकदमे की पेशी मे मौलाना मुहम्मदअली-जैसा नेता भी गया। हिन्दुओ के दिल पर इससे यह असर पड़ा कि मौलानासाहब भी उसके साथ सहानुभूति रखते हैं और शायद इस हत्या को पसंद भी करते हो। स्वामीजी कई बरसो से शुद्धि और संगठन के काम मे बहुत दिलचस्पी लेते आ रहे थे। इससे कट्टर मुसलमान उनपर क्रुद्ध थे। उनकी हत्या का यही कारण भी था। उन दिनों किसी-न-किसी धार्मिक कारण से इस प्रकार की कई हत्याएं हिन्दुओं की हुईं। बलवा-फसाद तो हो ही रहे थे। इससे सारे देश का वायुमडल बहुत बिगड़ गया था। जो सुन्दर समा १९२१ में देखने में आया था वह एकबारगी जाता रहा।

अधिवेशन में कोई विशेष महत्व की बात नही हुई। गांधीजी उन दिनों कांग्रेस में जाते तो थे, पर एक प्रकार से तटस्थ-से रहते थे; क्योंकि उन्होंने इस काम को स्वराज्य-पार्टी के हाथों में सौप दिया था। एक घटना

गोहाटी में हुई जो यहां लिख देना अनुचित न होगा। नाभा (पंजाब) के महाराज पदच्युत किये गए थे। उनके कुछ अनुयायी इससे बहुत रुष्ट थे। वे चाहते थे कि कांग्रेस इस सम्बन्ध मे सरकार की निन्दा का प्रस्ताव करे और दूसरे प्रकार से पदच्युत महाराज की सहायता करे। महात्माजी की गैरहाजिरी मे विषय-निर्वाचिनी समिति मे एक प्रस्ताव स्वीकृत भी हो गया। पर महात्माजी को यह बात पसन्द नही थी; क्योंकि वह देशी रियासतो के झगडे में कांग्रेस का पडना, रियासतो और कांग्रेस दोनों के लिए हानिकर समझते थे। इसलिए उन्होंने विषय-निर्वाचिनी से इसपर फिर विचार करने का आग्रह किया। उन्होंने इस विषय पर कोई प्रस्ताव न होने दिया। इससे श्री हार्निमैन, जो बम्बई की ओर से प्रतिनिधि होकर कांग्रेस मे आये थे, बहुत असन्तुष्ट हुए थे। उन्होंने पुनर्विचार का बहुत विरोध किया था। उस समय देशी रियासतों के सम्बन्ध मे मेरी कुछ भी जानकारी न थी। इस नीति को मै ठीक-ठीक न समझ पाया था। पीछे, कई बरसो के बाद, कांग्रेस की नीति के सम्बन्ध मे, कांग्रेसी लोगो में बड़ा मतभेद पैदा हुआ। कई बरसों तक, हर साल, यह एक विशेष विवादग्रस्त विषय बना रहा। इसका जिक्र फिर आगे आवेगा।

गोहाटी-कांग्रेस के समय बहुत पानी बरसा, जिससे वहा के प्रबन्धकों और आगन्तुको को कष्ट उठाना पड़ा था। पर इस विघ्न के पडने पर भी वहा का अधिवेशन सफलतापूर्वक हुआ। सब काम निर्धारित रीति से समाप्त हुए, रामगढ-कांग्रेस की तरह सारा इन्तजाम ही तहस-नहस न हुआ। पर इससे खर्च बढ गया और आमदनी, जिसका बडा हिस्सा दर्शको के टिकट से ही आता है, घट गई। स्वागत-समिति को बहुत घाटा सहना पड़ा। उसको अखिल-भारतीय कांग्रेस-कमिटी से सहायता मागनी पडी। सहायता दी गई, पर पर्याप्त नही। श्री फूकन और श्री बारदोलाई को निजी तौर पर नुकसान उठाना पड़ा। यह झगडा बहुत दिनो तक चलता रहा। इधर हाल मे वर्किंग कमिटी ने उसका बाकी हिसाब चुकाकर वहा के मामले का अन्त किया है। मैंने जिस बात से डरकर अपने मित्र श्री बारदोलाई को कांग्रेस को आमंत्रित करने से मना किया था, वह बात होकर ही रही। प्रकृति के प्रकोप ने आमदनी घटाकर आर्थिक स्थिति को और भी जटिल बना दिया।

ऊपर कहा जा चुका है कि अहमदाबाद के अधिवेशन से ही प्रायः प्रति-वर्ष कोई-न-कोई इस विषय पर एक प्रस्ताव उपस्थित करता कि कांग्रेस का ध्येय केवल स्वराज्य न रखकर पूर्ण स्वतन्त्रता बना दिया जाय और यह हर साल नामंजूर कर दिया जाता। गोहाटी के सभापति श्री अय्यंगर इसके

समर्थक हो गये। इसमें अब जोर आने लगा। पर गोहाटी तक यह पास न हो सका था।

जबसे काग्रेसी लोग कौन्सिलों में गये, कुछ लोग उसी काम में लग गये; कुछ लोग खादी-प्रचार मे लगे रहे और कुछ लोग कांग्रेस के संगठन का काम करते रहे। कौन्सिलों में जो काम होता, उसका समाचार-पत्रों मे खूब प्रचार होता। लोगो ने काम भी अच्छा किया। केन्द्रीय असेम्बली मे पडित मोतीलालजी ही नेता हुए। वहां उन्होने और दलो के लोगो के साथ मिलकर कई बार सरकारी बजट को नामजूर करा दिया। दूसरे विषयों पर भी उन्होने सरकार के विरुद्ध प्रस्ताव स्वीकार कराये। श्री श्रीनिवास अय्यंगर भी वहां के सदस्य थे। कई बातो में पडितजी मे उनका मतभेद हो जाया करता; पर अभी बात कुछ बिगडी नही थी। बहापर सबने विशिष्ट बात यह हुई कि श्री विट्ठलभाई पटेल सभापति चुने गए। उन्होंने अपनी विद्वत्ता और प्रतिभा का बहुत सुन्दर प्रमाण दिया। हर तरह से निरपेक्ष रहते हुए भी कई बार उन्होने गवर्नमेण्ट को बड़ी मुश्किल मे डाल दिया।

: ६९ :

हिन्दू-मुस्लिम समस्याएं

गोहाटी-कांग्रेस के बाद श्री श्रीनिवास अय्यगर ने दो बातों पर विशेष जोर दिया। इन्हींके सम्बन्ध मे उन्होंने काम भी किया। जैसा कहा जा चुका है, हिन्दू-मुस्लिम समस्या बहुत जटिल होती जा रही थी। बलवा-फसाद तो होते ही रहते थे। आपस मे, कांग्रेसी लोगों मे भी, अविश्वास की मात्रा बढ़ती जाती थी। उन्होंने इसका प्रयत्न किया कि यह मामला किसी तरह सुलझ जाय। इस झगडे के दो पहलू हैं—एक धार्मिक और दूसरा राजनैतिक। साधारण जनता, चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, धार्मिक पहलू से अधिक दिलचस्पी रखती है। शिक्षितवर्ग और धनीवर्ग के लोग, जो बाहर-भीतर की कुछ बातों से वाकिफ हैं, राजनैतिक पहलू मे ज्यादा दिलचस्पी रखते है। दोनो का एक-दूसरे पर असर पड़ता ही रहता है। और, शिक्षितवर्ग, जिसे राजनैतिक वर्ग भी कह सकते है, साधारण जनता की दिलचस्पी को भी अपने काम में लाता है। दोनो के दो प्रकार के प्रश्न होते है और उनके हल भी दो प्रकार के है।

हिन्दू गाय के लिए पूज्य भाव और श्रद्धा रखते हैं। गोवध के नाम से ही वे बहुत उत्तेजित हो जाते है। यह बात विशेषकर बिहार और युक्त-प्रान्त में है। इसी गोवध के कारण न मालूम कितने बलवे हो चुके है। यह कोई नई बात भी नही है। मुसलमान बादशाहो ने भी महसूस किया था कि गोवध से हिन्दुओं के दिल को कितनी ठेस लगती है। उनमे जो उदार थे, उन्होंने, हिन्दुओ को मर्माहत होने से बचाने के लिए, गोवध का निषेध भी कर दिया था। वह भावना हिन्दुओं मे आजतक वर्तमान है। इस भावना मे शिक्षित हिन्दू भी एकदम बचे नही हैं। वे भी गोवध से उत्तेजित हो जाते है। उधर मुसलमान बकरीद के दिन कुर्बानी करना अपना फर्ज समझते हैं। गरीबों के लिए यह फर्ज गाय की कुर्बानी से ही अदा हो सकता है; क्योंकि उसमें कम खर्च पड़ता है। इसलिए उस दिन जहां-तहा गाय की कुर्बानी के कारण झगड़े हो जाया करते हैं। जहा मुसलमानो की आबादी ज्यादा है वहां तो कुर्बानी हो जाया करती हैं। पर जहां उनकी आबादी कम है वहां कुर्बानी प्रायः कभी नहीं होती। बहुत करके झगड़ा ऐसे स्थानों में होता है,

जहां मुसलमान नये तौर पर कुर्बानी करना चाहते हैं। हो सकता है, किसी गांव में पहले कोई ऐसा मुसलमान न था, जो गाय की अथवा कोई भी कुर्बानी कभी कर सकता हो। अब उनमे से कोई कुछ पैसे कमाकर कुछ समृद्ध हो गया। उसकी इच्छा हुई कि वह भी अपने धर्म के अनुसार कुर्बानी करे। वहां के हिन्दू इस बात को बर्दाश्त न कर सके। बस झगड़ा हो गया।

बिहार की सरकार ने इस झगड़े को निपटाने के लिए एक फेहरिस्त बना रखी है कि किन-किन गांवों मे बराबर से कुर्बानी होती आई है। यदि ऐसे किसी गांव मे कुर्बानी पर हिन्दू हस्तक्षेप करते है तो उनको दबाकर कुर्बानी करवा देती है। जहां मुसलमान नये सिरे से कुर्बानी करना चाहते हैं वहां उनको भी रोक देती है। यही नीति बहुत दिनो से बिहार-सरकार बर्तती आई है। मुसलमान इससे सन्तुष्ट नहीं होते। वे कहते है कि एक तो यह फेहरिस्त ही ठीक नही है; क्योंकि कुर्बानी तो हमेशा छिपा करके ही की जाती है, खुलेआम कभी नहीं होती; इसलिए इसका सबूत मुसलमानों की गवाही के सिवा दूसरा कुछ हो ही नही सकता—हिन्दू तथा सरकारी अफसर भी इस गवाही को जल्दी सच नही मानते; दूसरे उनका हक है कि वे अपने धर्म का पालन करें, इसलिए रिवाज की कोई बात हो ही नहीं सकती; जहां रिवाज न भी हो, वहा भी वे जब चाहें तब कुर्बानी कर सकते है और उनको इसका हक होना चाहिए। यही झगड़े का घर हो जाता है। बकरीद के मौके पर हमेशा अन्देशा रहता है कि कही झगड़ा न हो जाय। सरकार भी बहुत चौकन्ना रहती है।

मुसलमानों की ओर से, मसजिद के सामने होकर बाजे-गाजे के साथ हिन्दुओं के जलूस निकालने का, विरोध किया जाता है। कहा जाता है कि मसजिद में नमाज पढ़नेवाले मुसलमानों के ध्यान मे बाजे के कारण खलल पड़ता है, इसलिए वे बाजा नही बजने देना चाहते। इसलिए भी अक्सर हिन्दुओं के त्योहारों के दिन झगड़े हो जाया करते हैं। यह बात बिहार में उतनी नही थी जितनी कई दूसरे सूबों में। जबसे आपस का वैमनस्य फैला, मुसलमानों की ओर से जहां-तहां इसपर भी जोर दिया जाने लगा। इसके सम्बन्ध में बिहार के हिन्दू कहते है कि गाय की कुर्बानी के मुकाबले में रखने के लिए मसजिद के सामने बाजे न बजने देने की बात मुसलमानों ने जबरदस्ती नये सिरे से उठाई है और यह केवल एक अड़ंगा खड़ा करने की बात है। जो हो, बिहार में भी कहीं-कही झगड़े होने लगे। कहीं-कहीं तो, जैसे पटना शहर में, यह झगड़ा अभीतक नही होने पाया है; क्योंकि यहां के कुछ ऊपर के दर्जे के मुसलमानों ने इसे अपने जोर से रोक दिया और बाजा

बजाने का विरोध होने ही न दिया।

बात तो यह है कि प्रतिदिन न मालूम कितनी ही गाये कसाईखानों में मारी जाती है। वे मारी जाती हैं या तो गोश्त खाने के लिए अथवा चमड़े इत्यादि बेचकर पैसे बनाने के लिए। विशेषकर जहां गोरों की फौजी छावनियां है अथवा कलकत्ता-जैसे शहर मे जहा, गोरों की अधिक आबादी है, वहां तो अच्छी-अच्छी गाये भी मारी जाती है। किन्तु इसपर हिन्दू विशेष ध्यान नही देते। प्रतिदिन के गोवध को वे सह लेते है; पर बकरीद के दिन धार्मिक प्रवृत्ति मे की गई कुर्बानी को वे नही बर्दाश्त करते। इसी तरह, बड़े-बड़े शहरो मे बड़ी-से-बडी मसजिदो के चारो ओर ट्राम, मोटर, गाड़ी, छकड़े और दूसरे प्रकार की शोर मचानेवाली चीजों का शोर दिन-रात होता रहता है। मुहर्रम के दिनो मे, मुसलमानो के ही जलूसों में, भयंकर शोर मचता है, बाजे बजते है। इनसे तो मुसलमान नही घबराते, मगर हिन्दुओं के किसी धार्मिक अथवा सामाजिक जलूस के बाजे को सहन नही कर सकते। जो हो, यह एक बीहड मसला है। साधारण जनता इससे ही अधिक सम्बन्ध रखती है।

शिक्षित और राजनैतिक वर्ग के लोग सरकारी तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और म्युनिसिपैलिटी एव कौन्सिल की मेम्बरी इत्यादि मे बहुत दिलचस्पी लेते हैं। यदि उनमें मुसलमानो की सख्या उनकी इच्छा के अनुसार न हुई तो मुसलमान बिगड जाते है; यदि हिन्दुओ की राय मे मुसलमानों की सख्या उचित अनुपात से अधिक हो गई तो हिन्दू बिगड जाते है। यहा जो थोडा-बहुत अधिकार हिन्दुस्तानियो को मिला है अथवा मिल सकता है उसके बटवारे का प्रश्न है। जो लोग उस अधिकार को बर्तना चाहते है, वे उसमें किसी तरह ठेस लगने मे आवेश मे आ जाते है।

श्री श्रीनिवास अय्यगर की बहुत इच्छा थी कि कोई समझौता हो जाय। पर यह हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न जितना जटिल उत्तर भारत मे है, उतना दक्षिण मे नही है। वहा अधिक झगडा ब्राह्मण और अब्राह्मण तथा स्पृश्य और अस्पृश्य हिन्दुओ के बीच है। मुसलमानों की संख्या वहां कम है। जिस गोवध के कारण उत्तर भारत मे इतने अधिक दगे हुआ करते है, उसके लिए उधर उतने झगड़े नही होते। हा, उधर कुछ झगड़े बाजे के प्रश्न पर होते है और वह ईसाइयो के साथ भी। इसलिए इस समस्या की जटिलता और हिन्दुओं की भावनाओ का अन्दाजा दक्षिणी लोग ठीक नही आंक सकते। श्री श्रीनिवास अय्यंगर कुछ जल्दीबाज भी थे। जितनी तेजी से वह बोलते थे उतनी ही तेजी से अपनी राय भी कायम कर लेते थे। एक बार राय कायम कर लेने पर उससे जल्दी हटना नही चाहते थे। बुद्धि बहुत तीक्ष्ण

थी, पर व्यावहारिक नही थी। इसलिए जहांतक कानून के पुस्तकीय ज्ञान का सम्बन्ध होता था, वहांतक तो वह बहुतेरों को मात कर सकते थे; पर जहां कार्य-कुशलता की बात आती वहा उनकी बुद्धि उतनी कारगर न होती। उन्होंने अपने सभापतित्व के समय में इस बात का प्रयत्न किया कि हिन्दू-मुस्लिम समझौता हो जाय। पर जिसको वह समझौता मानते थे उसे हिन्दू जनता तो जरूर, और कांग्रेसी हिन्दू भी शायद, स्वीकार न करते। इसलिए उनका यह सत्प्रयत्न सफल न हो सका।

: ७० :

साइमन-कमीशन और मद्रास-कांग्रेस

१९२० में नया विधान बना था। उसमे एक नियम था कि दस बरसो पर पार्लमिण्ट उस विधान के कार्यान्वित किये जाने की रीति पर और राजनैतिक परिस्थिति पर पुनर्विचार करेगी तथा आवश्यकतानुसार इसकी जाच कराने के लिए किसीको नियुक्त करेगी। जबसे यह विधान बना, काग्रेस ने इसका विरोध ही किया। १९२० के चुनाव मे काग्रेसी लोग शरीक न हुए। उन्होने, और उनके तथा खिलाफत-कमिटी के कहने से प्राय: सभी जानदार हिन्दुओ और मुसलमानों ने, इसका बहिष्कार ही किया था। यो तो कोई-न-कोई चुना जाकर उन जगहो को भर देता था; पर ससार यह जानता था और सरकार भी अन्दर-अन्दर मानती थी कि जनता के सच्चे प्रतिनिधि उन धारा-सभाओ मे नही आये थे, क्योकि काग्रेसी और खिलाफती लोगों ने अपनेको केवल उम्मीदवारी मे ही अलग न रखा था; वरन मत देनेवालो को भी मना किया था कि मत देकर चुनाव मे हिस्सा मत लो। इसका नतीजा यह हुआ था कि बहुत कम मतदाताओं ने मत दिया था। १९२३ के चुनाव मे काग्रेस ने इतना ही किया था, कि जो काग्रेसी धारा-सभाओं मे जाना चाहे, वह जा सकता है, पर चुनाव मे काग्रेस भाग न लेगी। इसलिए, यद्यपि उस बार काग्रेसी चुने गये और कुछ अधिक मतदाताओं ने चुनाव में भाग लिया, तो भी यह नही कहा जा सकता था कि वह चुनाव भी सारी जनता के प्रतिनिधि चुनवाने मे सफल हुआ था। १९२६ के चुनाव मे काग्रेस ने भाग लिया और जनता ने भी खूब जोरो से मत दिया। इस चुनाव का नतीजा यह हुआ कि जहातक चुनाव में सफलता मिल सकती थी, काग्रेस को मिली; पर विधान ही ऐसा बना था कि जिससे काग्रेस का और जनता के प्रतिनिधियो का बहुमत न हो सके। इसलिए, अधिक संख्या में चुने जाने पर भी, सरकारी और सरकार द्वारा नामजद मेम्बरो को मिलाकर जो थोड़े लोग चुने जा सकते थे, काग्रेस के विरुद्ध बहुमत पा सके, पर वह भी सब जगहों में नही। जो लोग चुने गये, वे भी, विशेषकर केन्द्रीय धारा-सभा में, पंडित मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व मे, सरकारी पक्ष को हमेशा हराते रहे। इन सब बातों से सरकार भी शायद सोचती रही कि इस असन्तोष को

दूर करना चाहिए। इसलिए दस बरसों का इन्तजार न करके उसने १९२७ में ही एक कमीशन नियुक्त किया और घोषणा की कि वह कमीशन १९२८ के आरम्भ में भारत पहुचकर जांच का काम शुरू करेगा। इस कमीशन के सभापति सर जान साइमन थे। दूसरे सभी सदस्य अगरेज थे। एक भी हिन्दुस्तानी उसमे नही था। इस घोषणा के प्रकाशित होते ही सारे देश मे बहुत असन्तोष देखने में आया। कांग्रेसी लोगों का तो कहना ही क्या, जो लोग नरमदल के थे, वे भी बहुत असन्तुष्ट थे। हिन्दू और मुसलमान सभी इस विषय में प्रायः एकमत हुए। ऐसा मालूम होने लगा कि फिर एक बार सभी मिलकर इसका विरोध करेंगे।

पटना मे इस विषय की एक कान्फ्रेन्स हुई। सर अली इमाम सभापति हुए। सभी दलों के लोग शरीक हुए। निश्चय किया गया कि सब लोग मिलकर इस कमीशन का बहिष्कार करे। इसके नेता सर अली इमाम हुए। मुझे याद है कि इस विषय मे उनसे मेरी बातें हुई थी। मैंने उनसे कहा था कि हम लोगों को यह देखकर बड़ी खुशी है कि उनके ऐसे सरकार द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त और नरम विचार के लोग भी इस कमीशन का विरोध करने पर तैयार हैं—जनता तो इस काम मे उनका साथ देगी ही, यदि कांग्रेस तथा दूसरे लोग भी मिलकर काम करेंगे तो इसमे शक नहीं कि बहिष्कार पूरा हो सकेगा। किन्तु उन लोगों के विचार मे बहिष्कार का अर्थ इतना ही था कि इस कमीशन के सामने आकर कोई अपनी राय न दे और न दूसरे किसी प्रकार से इसके काम मे मदद पहुंचाये। पर हम बहिष्कार का अर्थ इससे अधिक लगाते थे। हम जनता को भी इस बहिष्कार मे शरीक करना चाहते थे। वह तभी हो सकता था जब बहिष्कार का रूप विरोधी प्रदर्शन का हो जाय। हमने उनसे कहा कि आप लोग कमीशन के सामने मत जाय और न दूसरी तरह से उसकी कोई मदद करें; हम लोग प्रदर्शन द्वारा जनता के असंतोष को दिखला देंगे। सर अली इमाम जनता के रोष और प्रदर्शन से बहुत घबराते थे। यद्यपि इस चीज को उन्होंने बहुत पसन्द नही किया तथापि वह कमीशन से इतने असन्तुष्ट थे कि उन्होंने इस बात को मान लिया।

जो बात बिहार मे थी वही सारे देश मे थी। सभी दलों के लोग कमीशन के सम्बन्ध में कहने लगे कि इसमे किसी एक भी हिन्दुस्तानी को स्थान न देकर ब्रिटिश सरकार ने भारतवासियो का बड़ा अपमान किया है; इसलिए वे इस कमीशन के साथ किसी प्रकार का सहयोग न करेंगे। यद्यपि ब्रिटिश सरकार ने कमीशन में किसी भारतीय को स्थान तो न दिया, पर इतना कह दिया कि कमीशन के सलाहकार की तरह से कुछ लोग उसके साथ रहेंगे और हर सूबे में इस प्रकार के सलाहकार नियुक्त किये जायंगे।

हिन्दुस्तान में ऐसे लोगों की कमी नही है, जो ब्रिटिश सरकार का साथ देने को हमेशा तैयार रहते है, चाहे सरकार जो कुछ भी करे। इस मौके पर भी ऐसे लोग उसे मिल ही गये ! पर यह एक सन्तोष का विषय है कि किसी भी राजनैतिक दल की ओर से कोई आदमी शरीक न हुआ।

कमीशन को १९२८ में आना था। उसके सामने पेश करने के लिए गवर्नमेण्ट मसाला तैयार करने लगी। दूसरे लोग उसके वहिष्कार की बात करने लगे। इसी बीच में मद्रास मे होनेवाली कांग्रेस का समय आ पहुंचा। डाक्टर अंसारी सभापति चुने गये। महात्माजी कांग्रेस मे गये। कांग्रेस का यह अधिवेशन एक प्रकार से महत्व रखता है। साइमन-कमीशन के आने की बात देश के सामने थी ही। कांग्रेस ने सोचा कि केवल विरोध करना ही काफी नही है। इसलिए उसने निश्चय किया कि एक ऐसी कमिटी मुकर्रर की जाय जो और सब दलो के लोगों के साथ मिलकर भारत के लिए एक विधान तैयार करे। यह विधान साइमन-कमीशन के सामने पेश करने के लिए नही था; पर यह सोचा गया कि इसके द्वारा हम अपने विचारों और मांगों को देश के सामने रख सकेंगे तथा सब दल मिलकर इसे मंजूर करने के लिए ब्रिटिश सरकार को मजबूर कर सकेंगे।

मद्रास-कांग्रेस मे भी पूर्ण स्वतन्त्रता-सम्बन्धी एक प्रस्ताव पेश हुआ। पंडित जवाहरलाल नेहरू कुछ दिनों तक यूरोप मे रहकर हाल ही मे वापस आये थे। वह इसके बड़े समर्थक थे। उन्होंने ही इसे विषय-निर्वाचिनी समिति में जोर लगाकर पास कराया। मैंने इसका विरोध किया। मेरा विचार था कि हमको कोई ऐसा प्रस्ताव नही पास करना चाहिए, जिसको हम कार्यान्वित करने के लिए तैयार न हों। उस समय मै देश मे कोई ऐसी तैयारी भी नही देखता था, जिसके बल पर यह भरोसा किया जाय कि हम इस ध्येय को प्राप्त कर सकेंगे। किन्तु यह प्रस्ताव बहुमत से पास हो गया। मगर अभी यह एक प्रस्ताव के रूप मे ही था। दो बरसों के बाद, लाहौर-कांग्रेस मे, यह कांग्रेस के विधान मे उसका ध्येय बना।

हिन्दू-मुस्लिम-एकता-सम्बन्धी एक प्रस्ताव भी कांग्रेस के सामने पेश करने के लिए, विषय-निर्वाचिनी समिति ने स्वीकार किया। उसमें और-और बातों के अलावा गोवध के सम्बन्ध में यह कहा गया था कि मुसलमानों को इसका पूरा हक है और वे जहा चाहें आख बचाकर गोवध कर सकते हैं। यही बात श्री अय्यंगर पहले भी कहा करते थे। अब यह बात कांग्रेस के प्रस्ताव-रूप मे आई। मैंने समझा कि चाहे इसका औचित्य जो हो, हिन्दू जनता इसको कदापि न मानेगी; यदि मुसलमान इस हक का इस्तेमाल करना शुरू करेंगे तो इसका नतीजा, बहुत बड़े पैमाने पर बलवा-

फसाद के सिवा, दूसरा कुछ न होगा; यह किसी तरह से देश के लिए हितकर न होगा। गांधीजी विषय-निर्वाचिनी में नही आये थे। जब श्री अय्यंगर ने कांग्रेस के पहले ही यह बात चलाई थी तो मैंने गांधीजी को इसी आशय का पत्र लिखा था। इसलिए महात्माजी पहले से ही इस प्रश्न के दोनों पहलुओं को जानते थे। जब विषय-निर्वाचिनी ने इसे प्रस्ताव-रूप मे स्वीकार कर लिया तो मैंने जाकर उनसे कहा। वह स्वयं उसकी दूसरी बैठक में आये। उनके कहने से इसपर पुनर्विचार किया गया। प्रस्ताव का रूप कुछ बदलकर ऐसा बनाया गया, जो सबको स्वीकार हो जाय। पर मैं जानता हूं कि कुछ मुसलमान भाइयों को यह बहुत बुरा लगा। आपस के मतभेद की जो खाई बन गई थी, वह और भी चौड़ी हो गई!

: ७१ :

लंका की यात्रा

मेरे घर की स्त्रियों की इच्छा हुई कि मद्रास-काग्रेस के समय उधर से ही वे तीर्थाटन भी करती आवे, क्योंकि रामेश्वरजी वहा से करीब है। मेरे साथ भाईसाहब की धर्मपत्नी, मेरी स्त्री और कई अन्य मित्रों के घर की महिलाएं मद्रास गई। जाने के समय हम लोग गोदावरी-स्नान के लिए राजमहेन्द्री मे ठहर गये थे। काग्रेस के अधिवेशन के बाद मदुरा, रामेश्वर आदि तीर्थों मे और लोगो के साथ गये। रामेश्वरजी के दर्शन के बाद हम लोग लका चले गये। घर के लोगो को वही छोड़ दिया। लका जाने की एक सुविधा यह भी थी कि उन दिनो श्री रामोदारदासजी वहा लानिया के एक महाविद्यालय मे बौद्ध-ग्रन्थो का अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने, कई बरसो तक, छपरे मे काग्रेस का काम करके और कई बार जेल-यात्रा करने के बाद, बौद्ध-ग्रन्थों के अध्ययन के लिए वहा जाने का निश्चय किया था। उनको वहा सस्कृत पढने तथा पाली मे त्रिपिटकादि ग्रन्थो के अध्ययन का सुअवसर मिला। कुछ दिनों के बाद, बौद्ध-धर्म मे दीक्षित होकर, वह श्री राहुल साकृत्यायन के नाम से मशहूर हुए और भिक्षु हो गये। उस समय वह केवल अध्ययन कर रहे थे, बाजाब्ता भिक्षु नही बने थे।

जब हम लोग वहा गये, उन्होंने लका के मुख्य-मुख्य स्थानो मे हमे ले जाने का प्रबन्ध किया। हमने भाड़े पर एक लारी ली और कई दिनो तक वहां घूमते-फिरते रहे। यह हम लोगो के लिए पहला ही अवसर था कि इस सुन्दर टापू मे हम भ्रमण कर रहे थे। टापू की खूबसूरती और हरियाली ने हम लोगो को मुग्ध कर लिया। कडी के सुन्दर मंदिर मे जाकर हमने दर्शन किया। वहा से नूरएलिया के पहाड पर जाकर एक रात बिताई। वहा से सीताएलिया गये। कहा जाता है कि यही पर रावण ने श्री जानकी-जी को कैद करके अशोकवाटिका मे रखा था। वहा जाते समय एक विचित्र चीज हम लोगों ने देखी। सीताएलिया, नूरएलिया से, कुछ दूर है। नूरएलिया पहाड़ की चोटी है और सीताएलिया पहाड़ के नीचे है। इसके चारों ओर पहाड़ है। ऐसा मालूम होता है कि मानो प्रकृति ने एक

कटोरा बना दिया है, जिसकी दीवारें पहाड़ की हैं और जिसके पेंदे में एक छोटा-सा झरना है; वहीं एक छोटा मंदिर-सा है, जहां श्री जानकीजी कैद की गई थीं। पहाड़ से उतरने में मोटर को कई बार चक्कर लगाना पड़ता है। उतरते समय हमने देखा कि कुछ दूर तक चारों तरफ फैला हुआ रक्ताशोक का जंगल है। पहाड़ काटकर जो सड़क बनी थी, उसकी बगल में दीवार की तरह पहाड़ खड़ा था। उस दीवार में कई तरह की मिट्टी या पत्थर देखने में आते थे। उसमें एक तह, जो प्रायः दो-तीन फुट चौड़ी थी, ऐसी मिट्टी की थी जो बिलकुल राख-जैसी थी। हमने इस मिट्टी को खोदकर देखा। ऐसा मालूम होता था कि जैसे ऊपर-नीचे पत्थरीली मिट्टी की तह है और बीच में यह एक तह राख की है। अशोक के पत्ते और राख हम अपने साथ भी लाये थे। इनको देखकर रामायण में वर्णित अशोक-वाटिका और हनुमानजी द्वारा लंका के जलाये जाने की बात याद आ गई।

अनेक स्थानों को—जिनमें एक सुन्दर गुफा भी थी, जिसमें बहुत प्राचीन, पर सुन्दर, चित्र बने थे—देखते हुए हम लोग अनुराधपुर में पहुंचे। यहां एक बहुत बड़ा स्तूप है। कहा जाता है कि अशोक के पुत्र महेन्द्र ने यहीं पर आकर गया से लाई हुई महाबोधि वृक्ष की एक शाखा लगाई थी। हम लोग वहां रात में नौ बजे के करीब पहुंचे थे। पीपल के एक वृक्ष के पास बौद्धों की धार्मिक सभा हो रही थी। उसमें एक भिक्षु कुछ उपदेश कर रहे थे। दृश्य बहुत ही सुन्दर था। हृदय पर उसका बहुत असर पड़ा। हम उपदेश को समझ तो न सके, पर वहां बैठी हुई श्रोता-मंडली बीच-बीच में जो 'साधु! साधु' कह उठती थी, उसे हम समझ सके। लोगों ने बताया कि पीपल का वह वृक्ष वही है, जिसे महेन्द्र ने लाकर वहां लगाया था। यों तो बोधगया में भी जो महाबोधि-वृक्ष है, वह भी उस समय का नहीं है, पर उसी स्थान पर उसी वृक्ष का वंशज है। उसी तरह अनुराधपुर का महाबोधि-वृक्ष भी महेन्द्र का ही लगाया हुआ नहीं है, उसका वंशज है, जो उसी स्थान पर आज तक किसी-न-किसी तरह से कायम है। पर इससे भी अधिक चमत्कार और आश्चर्य की बात हमको यह सुनाई गई कि वहां जो दीप जल रहा था, वह भी महेन्द्र का जलाया हुआ है! उस समय से आजतक वह दीप कभी बुझा नहीं है। बौद्धों ने उसे बाईस-तेईस सौ बरसों से बराबर जलाये रखा है! यदि यह सच है तो शायद दुनिया में ऐसी कोई दूसरी अग्नि-शिखा न मिलेगी, जो दो हजार बरसों से भी ज्यादा समय से बराबर जलती आ रही हो।

लंका की यात्रा समाप्त करके हम लोग रामेश्वरजी लौटे। वहां से

परिवार के लोगों को लेकर, जिन तीर्थ-स्थानों में पहली बार न जा सके थे उनमें होते हुए, छपरे वापस आये। छपरे आकर हमने यह सुना कि हमारी गैरहाजिरी में ही भाईसाहब ने फोते में नश्तर लगवा लिया था। कुछ थोड़ी चीनी उनके पेशाब में आती थी। इसके घाव भरने में कुछ दिक्कत होने लगी। बीच मे एक समय तो ऐसा आ गया था कि सब लोग बहुत चिन्तित हो गये थे। हम लोग सफर मे थे, इसलिए हम लोगों को तार द्वारा भी खबर नही दी जा सकती थी। पर ईश्वर की दया से, हमारे लौटने के पहले ही, चिन्ता की अवस्था बीत चुकी थी। अब वह अच्छे हो रहे थे। थोड़े दिनों में फिर बिलकुल चंगे हो गये।

: ७२ :

मेरी यूरोप-यात्रा

बाबू हरिजी के मुकदमे में डुमराव के महाराजा ने प्रिवी कौसिल में अपील कर दी थी। अब अपील की पेशी का समय नजदीक आ गया था। बाबू हरिजी चाहते थे कि मैं भी वहा के बैरिस्टरो की मदद के लिए विलायत जाऊं। मैं पहले ही कह चुका हूं कि उन्होने असहयोग के आरम्भ के समय से ही मुझसे वचन ले लिया था कि उनके मुकदमे मे मैं बराबर काम कर दूगा। इसी वचन की पूर्ति मे हाइकोर्ट की पेशी के समय भी मैंने काम किया था। अब विलायत जाने की बारी आई तो इन्कार नही कर सकता था। और, कुछ यह भी लालच हुई कि इसी बहाने विदेश की यात्रा भी हो जायगी। इसलिए, अब हम वहा जाने की तैयारी करने लगे।

हमारा भतीजा जनार्दन, जो लोहा बनाने का काम सीखने वहा गया था, हाल मे ही लौटा था। टाटा-कम्पनी (जमशेदपुर) मे उसे नौकरी भी मिल गई थी। वहां के रहन-सहन के सम्बन्ध मे उससे तथा दूसरे मित्रो से सलाह करके मैंने सर्दी के लिए गर्म कपड़े बनवाये। मैं बराबर केवल खादी ही पहना करता था। वहा जाकर भी इस नियम को भग करना मैने उचित न समझा। इसलिए कश्मीरी ऊन के कपड़े ही खादी-भडार द्वारा मगाकर बनवाये। कपड़े की काट-छांट भी देशी रखी। अगरेजी पोशाक न पहनने का ही निश्चय कर लिया। फलस्वरूप दो बातें हुई। बहुत कम खर्च में काम के लायक काफी कपड़े तैयार हो गये। पोशाक चूकि हिन्दुस्तानी थी, इसलिए उसमे कुछ भूल अथवा भद्दापन भी हो तो कोई विदेशी समझ नही सकता था। अगरेजी पोशाक और रहन-सहन अख्तियार करने पर उन लोगों के फैशन और रीति-नीति के अनुसार ही चलना-फिरना, कपड़ा पहनना और खाना-पीना पड़ता है। अपने रहन-सहन कायम रखने से यह सब झंझट दूर हो जाती है। विशेषकर मुझ-जैसे आदमी के लिए यह झंझट कुछ कम नहीं है; क्योंकि मैंने कभी जीवन-भर में कपडे और फैशन पर ध्यान ही नही दिया है। हमने कपडे को शरीर गर्म रखने और लज्जा-निवारण का साधन-मात्र समझा है। इसी नीति को बराबर बर्तता आया हूं। पैंतालीस-पचास की अवस्था में नये सिरे से विदेशी फैशन को स्वीकार करके उसके तह-पेच को

समझना और कपड़े पहनना तथा समय-समय पर उसे बदलते रहना मेरे लिए कम कठिन काम न होता। और, ऐसा करने से काफी खर्च भी बढ़ जाता। इसलिए, मैंने वहां भी अपनी ही चाल चलना बेहतर समझा। ऐसा ही प्रबन्ध भी किया।

बाबू हरिजी चाहते थे कि मुझे हर तरह से आराम रहे—इगलैंड मे भी जहांतक हो सके, उनका काम करते हुए, आराम से ही रहू। इसलिए उन्होंने आग्रह किया कि मैं अपने साथ अपना नौकर भी ले जाऊं और बराबर फर्स्ट-क्लास मे ही सफर करू। मेरे सभी दोस्त, जिनको इगलैंड का कुछ भी अनुभव था, इसको गैरजरूरी समझते थे; पर उन्होंने नहीं माना। मैंने गोवर्धन को साथ ले लिया। मार्च के आरम्भ में ही, एक शुभ दिन को, जिसे उनके ज्योतिषी ने निश्चित कर दिया था, मैं घर से रवाना होकर बम्बई पहुचा। वहा खादी-भडार मे कुछ और कपड़े तैयार करने को कह दिया। वहा से, महात्मा गाधी से विदा लेने के लिए, साबरमती चला गया। रवाना होने के दिन भाई साहब भी बम्बई पहुंच गये। कैसर-हिन्द जहाज मे बम्बई से चला।

यह मेरी पहली विदेश-यात्रा थी। मै यहां भी उन लोगों के समर्ग में बहुत न पडा, जो विदेशी ढग मे रहते और खाते-पीते है। जाने के पहले एक दिन श्री सच्चिदानन्दसिह ने मुझे अपने यहा अगरेजी ढग मे टेबुल पर खिलाया था। मैंने कांटा-चमचे का इस्तेमाल देख लिया था। इत्तिफाक से जहाज पर मेरे कमरे मे एक पारसी सज्जन थे। वह विदेश में सैर करने के लिए ही जा रहे थे। उनसे तो जान-पहचान हो ही गई, पर दूसरे कोई मुलाकाती भाई या बहन उस जहाज मे नही थे। मेरी आदत भी कुछ ऐसी है कि मैं किसीसे स्वत मुलाकात या जान-पहचान करने में बहुत सकुचाता हू। इसलिए जहाज पर किसी भी देशी या विदेशी यात्री से एक-दो दिनों तक मुलाकात या बातचीत नही हुई। पर इतना मै देखता था कि मेरी हिन्दुस्तानी पोशाक की ओर बहुतेरों की आखे जाती थी। मै डेक पर अपनी कुर्सी रखकर कुछ पुस्तके पढता अथवा टहलता रहता। समुद्र बहुत शान्त था। इसलिए किसी किस्म की मतली, चक्कर वगैरह मुझे नही आया।

दो दिनों के बाद एक अंगरेज सज्जन, जो आइ० एम० एस० (इंडियन मेडिकल सर्विस) के पेंशन पाये हुए अफसर थे, मेरे नजदीक आये। मुझसे वह बातें करने लगे। मेरे खद्दर के कपड़े और एकान्त में चुप बैठे रहने से उनका और उनकी स्त्री का ध्यान आकर्षित हुआ था। पेंशन पाने के बाद वह किसी कमीशन के मेम्बर होकर फिर हिन्दुस्तान आये थे। अपना काम पूरा करके वह वापस जा रहे थे। दोनों प्राणी बहुत ही अच्छे मिजाज के

थे। वे गांधीजी के सम्बन्ध मे कुछ जानते थे। खद्दर के सम्बन्ध में भी अखबारों में कुछ पढ़ा था। उनकी इच्छा थी कि हिन्दुस्तान मे गांधीजी को देखते, पर इसका सुअवसर न मिल सका। जब बातचीत से उनको मालूम हो गया कि गाधीजी के साथ मेरा कैसा सम्बन्ध है तो दिलचस्पी और भी बढ़ गई। हमसे वे बराबर बातचीत किया करते। उनको यह जानकर कौतूहल हुआ कि मै मांसाहारी नही हूं। वे स्वयं भी मांसाहारी नही थे। उन्होंने मुझसे यह कहकर मुझे चकित कर दिया कि हिन्दुस्तान मे शाकाहारी होकर रहना बहुत कठिन है; क्योकि यहा शाकाहारी के उपयुक्त खाद्य पदार्थ बहुत कम मिलते है। उन्होंने मुझे बतलाया कि इगलैंड और तमाम यूरोप मे ऐसे बहुतेरे रेस्तरां है, जिनमे शाकाहारी भोजन मिल सकता है। वहां सब्जी बहुतायत से मिल सकती है—दूध और दूध से बने हुए बहुत तरह के खाद्य-पदार्थ मिल सकते है। पर वहा के लोग अंडे को भी शाकाहार में ही दाखिल करते हैं। शाकाहारी खूब अडे खाते है। जो लोग पक्के शाकाहारी है, वे दूध और दूध के बने पदार्थ भी नही खाते; क्योंकि वे दूध को भी जानवर के खून का एक परिवर्तित रूप ही मानते है। इसलिए, उन्होने मुझे चेता दिया कि इंगलैंड मे यदि मुझे किसी रेस्तरां मे खाना पडे, तो खास तौर से मुझे कह देना होगा कि मुझे अडे से भी परहेज है; तभी वह बिना अंडे का भोजन देंगे, अन्यथा प्रायः सभी चीजो में किसी-न-किसी रूप में अंडे का अश रहेगा ही। साथ ही, उन्होने यह भी कहा कि बिना अंडे के बिस्कुट इत्यादि भी सब जगह नही मिलते; पर यदि कोई दूकानदार कहे कि बिस्कुट या खाने की अन्य वस्तु बिना अंडे के बनी है, तो मुझे उसकी बात मान लेनी चाहिए; क्योंकि उसका स्वार्थ सच बोलने मे ही है। अडा महंगा पडता है। ये सब बाते मेरे लिए नई थी। पर उस दम्पति की मुलाकात ने मेरे लिए इस प्रकार की बहुत-सी जानने लायक बाते बता दी। प्रतिदिन के जीवन के काम में आनेवाले नुस्खे उन्होने बता दिये। मै अपने नियम के अनुसार वहा भी रह सका।

रास्ते मे मुझे ऐसा मालूम हुआ कि जबतक जहाज स्वेज नहर में गुजरता है, तबतक टामस-कुक-कम्पनी की ओर से ऐसा प्रबन्ध रहता है कि जो मुसाफिर चाहे, मोटर द्वारा जाकर 'कैरो' नगर और उससे थोड़ी दूर पर स्फिक्स को देख आ सकता है। मैने यह देख लेना अच्छा समझा। मेरे ही जैसे कुछ और मुसाफिर भी थे, जिन्होंने टामस-कुक के साथ वहां जाने का प्रबन्ध कर लिया। हम लोग बहुत सवेरे ही, करीब पांच बजे, जहाज से उतरकर मोटर पर कैरो चले गये। कैरो में पहुंचने पर, मुंह-हाथ धोने और कुछ हल्का नाश्ता कर लेने के लिए, एक होटल में हम लोग ले जाये गए।

उसके बाद कैरो का अजायबघर देखने गये। वही पिरामिडों की खुदाई से निकली हुई चीजें सुरक्षित रखी गई हैं। यह बड़ा सुन्दर संग्रह है। प्राचीन मिस्र के कितने बड़े नामी और प्रतापी बादशाहों के शव (ममी), जो पिरामिडों से निकले हैं, वहां सुरक्षित हैं। अब देखने में वे काले पड़ गये हैं, पर मनुष्य का चेहरा और हाथ-पैर तो ज्यों-के-त्यों है। वे जिस महीन कपड़े में लपेटकर गाड़े गये थे, वह कपड़ा भी अभी तक वैसे ही लिपटा हुआ है। यह कपड़ा बहुत ही बारीक हुआ करता था। सुना जाता है कि यह भारतवर्ष से ही जाया करता था। उन दिनों के वहां के निवासियों का विश्वास था कि आराम के सभी सामान यदि मुर्दे के साथ गाड़ दिये जायं तो परलोक में भी उनसे वह आराम पा सकता है। इसी विश्वास के अनुसार, पिरामिडों के अन्दर, शव के साथ, सभी आवश्यक वस्तुएं गाड़ी जाती थीं—पहनने के कपड़े और गहने, बैठने के लिए चौकी इत्यादि, खाने के लिए अन्न, शृंगार के समान, सवारी के लिए रथ और नाव भी। वे सब चीजें एक-से-एक अच्छी बनी हैं। उनसे जान पड़ता है कि उस समय भी लोग सोने का व्यवहार जानते थे।

सुना है कि इसी प्रकार की खुदाई से मोहन-जो-दड़ो (सिन्ध) में जो गेहूं निकला, वह बो देने पर उग गया। अजायबघर के संग्रह और विशेषकर प्रतापी राजाओं के शव देखकर मनुष्य के जीवन की अनित्यता साफ-साफ दीखने लगी। ऐसे दृश्य देखकर यह मालूम होने लगता है कि हम जो-कुछ अपने बड़प्पन के मद में करते हैं, वह सब कितना तुच्छ और अस्थायी है। जिन बादशाहों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उन्होंने अपने जमाने में बहुत जुल्म किया था, उनके शव उसी तरह आज भी पड़े हैं। जो विशेष करके वहां का इतिहास नहीं पढ़ता उसे उनके नामों तक की अब खबर नहीं है। मैंने कुछ चित्र खरीदे। यद्यपि अजायबघर का सफर बहुत अच्छा रहा तथापि मेरे दिल पर क्षणभंगुर जीवन की असारता का गहरा असर पड़ा। मैं वहां से उदास ही निकला।

उस म्युजियम को देखने के बाद हम लोगों को शहर की कुछ प्राचीन और प्रसिद्ध इमारतें और दूसरी मशहूर जगहें दिखलाई गईं, जिनमें एक बड़ी और सुन्दर मस्जिद भी है। मिस्र में मुसलमान पूरब रुख मुंह करके नमाज पढ़ते हैं; क्योंकि वहां से काबा पूरब पड़ता है। यह हिन्दुस्तानी के लिए कुछ अजूबा-सा मालूम पड़ता है। वहां की मस्जिद भी इसी कारण से हिन्दुस्तान की मस्जिदों जैसी पूरब रुख की न होकर पश्चिम रुख की होती हैं। यह बड़ी मस्जिद भी वैसी ही थी। वहां की भाषा अरबी है, पर यूरोपीय भाषाओं में से अधिक प्रचार वहां फ्रेंच का है। लोग साफ मालूम पड़ते थे।

पुलिसवाले तुर्की फेज पहने हुए थे। कैरो यद्यपि पुराना शहर है, तथापि जिस हिस्से को हमने देखा वह बहुत-कुछ आजकल के शहरों जैसा ही था।

दोपहर का भोजन करके हम लोग कुछ दूर तक मोटर पर पिरामिड देखने गये। एक स्थान पर पहुंचकर मोटर छोड़ देनी पड़ी। ऊंटों पर सवार होकर पिरामिडों तक जाना पड़ा। मेरे लिए ऊंट की सवारी बिलकुल नई थी; क्योंकि मै कभी हिन्दुस्तान मे ऊंट पर न चढ़ा था। पर एक बार चढ़ जाने पर कोई विशेष बात न हुई। पिरामिडो को नजदीक जाकर देखा। ये बहुत ऊंची चौखूटी इमारतें है। हमारे देश मे ईंटों का पजावा जैसे बनता है वैसे ही ये पत्थरो के बहुत बड़े-बडे चौरस किये हुए टुकड़ो से बने है। पजावे की तरह ही नीचे की चौड़ाई ज्यादा है, जो ऊपर की ओर कम होती गई है। ईंटो का पजावा तो छोटा होता है, ये बहुत बडे और बहुत ऊचे है। जिस परिमाण में ये ऊंचे और चौडे है, उसी परिमाण मे इनमे लगी हुई पत्थर की ईंटें भी पजावे की ईंटों से लम्बाई-चौडाई और मोटाई मे अधिक है। मेरा अनुमान है कि एक-एक ईंट शायद चार-पाच हाथ लम्बी होगी। इसीके अनुसार उसकी चौडाई और मोटाई भी होगी। न मालूम कितने दिनों मे एक-एक ईंट काटकर इतनी बड़ी इमारत तैयार हुई होगी। इसमे कितने गरीबों ने अपनी जिन्दगी का कितना हिस्सा लगाया होगा? यह सब किसी एक राजा के नाम को, उसके मरने के बाद भी, कायम रखने के लिए किया गया था! नाम तो अब केवल पुस्तकों मे रह गया है! ये इमारतें, जिनसे मनुष्य कोई लाभ नही उठा सकता, अपनी जगह पर आज भी हजारों बरसों के बाद ज्यो-की-त्यो खडी है। उनमे से अनेकों के अन्दर की खुदाई हुई है। उन्हीमे से निकले हुए सामान का संग्रह कैरो के अजायब-घर मे है। मुझे स्मरण है कि हाल मे हम लोगों ने अखबारों मे पढा था कि कब्रे खोदनेवाले की मृत्यु हो गई थी। जिस किसीने यह प्रयत्न किया वह मर गया। खोदनेवाला मर तो गया; पर वहा की खुदाई से बहुत सामान निकला।

स्फिक्स एक अजीब चीज है। मनुष्य का मुंह और शरीर जानवर का है। एक बहुत बड़ी मूर्ति उस रेगिस्तान मे इसी शक्ल की बनी पडी है। सुनते हैं कि प्राचीन काल मे इससे प्रश्न किये जाते थे और यह भविष्य की बातें बता देता था। पर यह जो कुछ कहता था, उसका समझना बहुत कठिन था। अब ये बाते तो नहीं है, पर यह मूर्ति यो ही खड़ी उस प्राचीन समय का स्मरण कराती रहती है।

यह सब देखकर हम लोग संध्या तक वापस आकर रेल पर सवार हुए। पोर्ट-सईद में प्रायः ११ बजे रात के करीब पहुंचे। वहां जहाज पहुंच गया

था। हम सब अपने-अपने कमरे मे जाकर सो रहे। खाना-पीना रास्ते में रेल में ही हो चुका था।

भूमध्यसागर मे पहुचने पर कुछ सर्दी लगने लगी। लाल समुद्र तो बहुत गर्म था—अरबसागर मे भी अधिक। भूमध्यसागर में हवा भी जोर मे चलती थी, इसलिए जहाज कुछ हिलता था। मुझे एक दिन कुछ मतली-सी आई, पर अधिक नही। रास्ते मे जो देखने को मिला, मैं सब कुछ देखता गया। इटली के नजदीक सिसिली टापू के पास होकर ही जहाज गुजरा। वहा का शहर कुछ दूर पर देखने मे आया। पहाड तो साफ नजर आता था। कई दिनो के बाद हम लोग मार्सेल्स (फ्रान्स) पहुच गये। रास्ते मे कोई विशेष बात नही हुई। कभी-कभी कोई टापू नजर आ जाता था तो सब लोग उसे देखने लगते थ। समुद्र-यात्रा मे चारो ओर पानी-ही-पानी दीखता है। इसमे दिन-रात पानी देखते-देखते एक-दो दिनो के बाद ही जी ऊब जाता है। अगर कही कोई दूसरा गुजरता हुआ जहाज नजर आ गया या जमीन देखने मे आ गई, तो बहुत आनन्द होता है। सभी मुसाफिर उसे इस तरह देखने लगते है मानो उन्होने कभी जमीन देखी ही नही है।

हम लोग मार्सेल्स मे सवेरे ही उतरे। वहा एक होटल मे ठहर गये। वहा भी कुक-कम्पनी की कृपा से शहर के सभी देखने योग्य स्थानो को देख लिया। टामस-कुक का प्रबन्ध बहुत अच्छा होता है। यात्रियो को उनका दुभाषिया मुख्य-मुख्य स्थान दिखला देता है। उनकी अपनी मोटर-गाडी रहती है। ऐसा अच्छा प्रबन्ध रखते है कि निश्चित समय के अन्दर सबकुछ आदमी देख लेता है। सवेरे जहाज से उतरते ही, रात मे रवाना होनेवाली गाडी मे, अपने लिए जगह मैने ठीक करा ली थी। दिन-भर घूम-घामकर रात की गाडी से पेरिस के लिए रवाना हो गया। पेरिस मे गाड़ी बदलकर कैले पहुचा। वहा फिर जहाज पर चढकर सध्या होते-होते डोवर मे उतर गया। डोवर से रेल पर चलकर रात के प्राय. ९ बजे लदन पहुच गया। वहा मैं मार्च के तीसरे सप्ताह मे पहुचा था, पर अभी तक काफी सर्दी थी। स्टेशन पर पहले से वहा पहुचे हुए मित्र मिल गये थे। मै सीधे उस मकान मे चला गया जो पहले से किराये पर लिया गया था। वह गोल्डर्स-ग्रीन मे था। हम लोग कुछ दिनो तक वही ठहरे रहे।

वहा पर सब प्रबन्ध पहले से ही था। श्री महावीरप्रसाद बैरिस्टर और श्री कुंवरबहादुर पहले से ही वहां ठहरे थे। इसलिए वहा घर-जैसा ही मालूम हुआ। फिर गोवर्धन के मेरे साथ आ जाने से खाना भी हिन्दुस्तानी मिलने लगा। जैसे यहा हम लोग भात-दाल रोटी-तरकारी खाते है वैसे ही वहा भी खाने लगे। मै तो मुकदमे की पैरवी के लिए गया था। जिस रात

मैं पहुंचा, लोगों से कुछ बातचीत करके सो गया। पहुंचते ही मालूम हो गया कि सवेरे उठकर बैरिस्टर के यहां जाना होगा; क्योंकि उसने आपस में बातचीत करने के लिए समय दिया है। इसलिए, लंदन पहुंचने के बारह घंटों के अन्दर ही मैं काम में जुट गया। और, जबतक मुकदमा खतम न हुआ, दिन-रात उसीके काम में लगा रहा।

: ७३ :

लंदन में मेरा कार्यक्रम और मुकदमे की पैरवी

मेरा कार्यक्रम वहा यह था कि मैं अपनी आदत के मुताबिक बहुत सवेरे उठता। वहा लोग सवेरे बहुत देर तक सोये रहते है। अधिकतर रात की पहली पहर मे ही जागकर काम करते है। मै ऐसा कभी नही करता। वहा भी ऐसा न कर सका। जब सब लोग सोये ही रहते थे, मैं मुह-हाथ धोकर और स्नान कर कपड़े पहन कमरे मे बैठ जाता और मुकदमे के कागज पढ़ने लगता।

सब लोग सवेरे प्रायः नौ-साढे-नौ बजे तैयार होते। उस समय तक मैं प्रायः दो घण्टे काम कर चुका होता था। उसके बाद नाश्ता करके प्रायः दस बजे लाइब्रेरी मे चला जाता। वहा कानून की पुस्तके पढने लगता। वहां के हमारे एटर्नी ने लाइब्रेरी मे हमारे लिए सुविधा करा दी थी। इससे अगरेजी कानून की हर तरह की पुस्तकें देखने को मिल जाती। एक बजे दिन तक इस तरह काम करके मै नजदीक के ही एक शाकाहारी लोगों के रेस्तरां में चला जाता। वहा कुछ फल, रोटी-दूध इत्यादि खा लेता। फिर सध्या तक कोर्ट मे काम करके प्रायः छः बजे वहां से वापस आता। आना-जाना रेल से होता, जो जमीन के भीतर से चलती है। घर पर संध्या का भोजन करके शाम को कुछ देर के लिए टहलने जाता और लौटकर कुछ काम करके सो जाता। किसी-किसी दिन बैरिस्टरों के साथ सलाह-बात होती। उसके अनुसार इस कार्यक्रम मे तब्दीली हो जाती। इस तरह प्रायः दो महीने बीते। अब बाबू हरिजी भी पहुच गये। इस बीच में मुझे कुछ दिनो के लिए हाइथ में जाकर रहना पडा था।

हमारी तरफ के सीनियर बैरिस्टरों मे एक श्री लक्समूर थे, जो थोड़े ही दिनों के बाद वहा के हाइकोर्ट के जज हो गये। उनका घर था हाइथ के पास एक गाव में। ईस्टर की छुट्टी में वह अपने घर गये। हमारी ओर से उनसे कहा गया कि यह मुकदमा बहुत पेचीदा है, यदि आप कहें तो कागज पढने में आपकी सहायता करने के लिए हममे से कोई आपके साथ वहां जाय। पहले वह राजी नही होते थे, पर बहुत कहने-सुनने पर वह राजी हो गये। मैं हाइथ में ठहरा। वहां से उनका घर सात-आठ मील की दूरी

पर था। रोज सवेरे नौ बजे उनकी मोटर आकर मुझे ले जाती। साढ़े नौ बजे से हम लोग काम करने बैठ जाते। बीच में एक घण्टा दोपहर के भोजन के लिए और आधा घण्टा चाय के लिए छोड़कर प्राय. साढ़े छ.-सात बजे तक काम करते रहते। मै फिर हाइथ उसी तरह चला आता। दोपहर का खाना उन्हीके यहा खाता। उनकी पत्नी को मेरे शाकाहारी होने की बात मालूम हो गई थी। उन्होने उसके लिए प्रबन्ध कर लिया था। प्राय: पन्द्रह दिनो तक वहा रहा। काम के सिलसिले मे उनसे बहुत घनिष्ठता हो गई।

हमारे सबसे सीनियर बैरिस्टर श्री अपजौन थे। उनकी अवस्था उस समय पचहत्तर से अधिक हो गई थी। अब भी वह काफी परिश्रम कर लेते थे। स्वास्थ्य उनका बहुत अच्छा था। मुकदमे के कागज प्राय. पन्द्रह हजार पृष्ठो मे छपे थे। बातें भी बहुत पेचीदा थी। कही-कही एक ही कागज पच्चीस-तीस पृष्ठो का होता, पर उसमे हमारे काम की केवल तीन-चार ही पक्तिया मिलती। हम लोगो के पास पटने से ही पूरा-पूरा नोट तैयार था। हम समझते थे कि हम अगर बैरिस्टरो के साथ बैठे और ऐसे दस्तावेजो के आवश्यक भाग की ओर उनका ध्यान आकर्षित कर दे तो उनका समय बच जायगा। इसलिए ही हम चाहते थे कि हमारे साथ वे कागज पढ़े। पहले कोई राजी नही होता था, पर मिस्टर लक्समूर राजी हो गये। मिस्टर अपजौन राजी नही हुए। इसके लिए अलग से फीस देने को कहा। यहा हिन्दुस्तान मे ऐसा ही हुआ था। कागज पढने के लिए जब हममे से किसी के साथ सीनियर लोग बैठते तो उसके लिए फी घंटा ८५ रु० अलग फीस लेते। प्राय. १५००० पृष्ठ इस तरह ८५ रु० घटे के हिसाब से पढवाये गये थे। बाबू हरिजी चाहते थे कि चाहे जो खर्च पड़े, यही बात वहा भी की जाय। पर मिस्टर अपजौन, जिनको हमारी ओर से सबसे पहले बहस करनी थी, इसपर किसी तरह राजी न हुए। उनका कहना था कि जो फीस हमको मिली है, वह केवल इजलास पर बैठने या खडे होने के लिए ही नही है, कागज पढना हमारा कर्तव्य है; क्योंकि उसके बिना वहा हमारा जाना बेकार होगा, इसलिए कागज पढने के लिए अलग फीस मै नही लूगा और मैं अपना काम खुद कर लूगा—हा, अगर कही किसी विषय पर नोट की जरूरत होगी तो मागूगा, तुम लोगों को कोई नोट देना हो तो दे देना, उसे देख लूगा। यहा का रवाज कागज पढ़ने के लिए किसी दूसरे के साथ बैठने का नही है, जब कभी दूसरे लोगों के साथ राय-मशविरा करना होगा तो बुला लूगा ; उसकी उचित फीस—जो कनसलटेशन की होती है—लूगा।

बाबू हरिजी कुछ घबराये; क्योंकि वह समझते थे कि इतना वयोवृद्ध

इतने कागजों को खुद पूरी तरह शायद न पढ़ सकेगा और पढ़ते-पढ़ते घबरा जायगा; क्योंकि जैसा ऊपर कहा गया है, किसी बहुत लम्बे कागज में पच्चीस-तीस पृष्ठ पढ़ने के बाद दो-चार पंक्तियां काम की मिलेंगी और हो सकता है कि वह उन पंक्तियों को लांघकर आगे बढ़ जाय और यह न समझे कि यह कागज किसलिए दाखिल किया गया है। जब उनसे कहा गया कि आपका समय बहुत फजूल चीजों के पढ़ने में व्यर्थ लगेगा तो उन्होंने जवाब दिया कि मैं एक पंक्ति भी बिना पढ़े नहीं छोड़ूंगा—तुम समझते हो कि वही दो-चार पंक्तियां जो तुम बताओगे, जरूरी हैं; पर वहम मुझे करनी है, हो सकता है कि मैं अपनी बुद्धि और अनुभव से दो-चार पंक्तियां ऐसी दूसरी भी निकाल लूं, जिनसे हमारा काम निकले और जिनको तुम लोगों ने गैरजरूरी समझा है; इसलिए मैं अकेला ही सब पढ़ूंगा और तब जरूरत पड़ने पर कुछ पूछना होगा तो पूछूंगा।

इसका उत्तर कुछ नहीं था। बाबू हरिजी को चुप रह जाना पड़ा। पर वह शंकित हो रहे।

प्रिवी कौन्सिल का कायदा है कि दोनों पक्ष अपनी बहस का सारांश लिखकर दाखिल कर देते हैं। इसे केस पेश करना कहते हैं। केस बड़ी सावधानी से तैयार किया जाता है, क्योंकि उसके बाहर की बातों पर बहस नहीं हो सकती। एक पक्ष को दूसरे पक्ष का केस, अपना केस दाखिल करने के पहले, देखने को नहीं मिलता। इसलिए दोनों पक्षों को, विपक्षी के केस का उत्तर भी, अपने केस में, पहले से ही अन्दाज से दे देना पड़ता है। जब मिस्टर अपजौन ने हम लोगों का केस तैयार किया, हमने उसे देखा। हम सबको, विशेषकर बाबू हरिजी को, पूरा विश्वास हो गया कि उन्होंने सारी पेचीदगियों को अच्छी तरह समझ लिया है और सभी कागजों को पूरा-पूरा पढ़ लिया है। इससे हम लोगों को पूरा सन्तोष हो गया। कानूनदां लोगों के बर्ताव का यह बहुत ऊंचा आदर्श मेरे देखने में आया। मैं तो इसपर मुग्ध हो गया। अफसोस के साथ कहना पड़ता है, अपने देश में इतना ऊंचा आदर्श मैंने नहीं देखा था!

मिस्टर अपजौन से मेरी जान-पहचान विचित्र तरीके से बढ़ गई। मेरा हिन्दुस्तानी लिबास देखकर वह समझते थे कि मैं या तो बाबू हरिजी हूं या उनका कोई सम्बन्धी, जो मुकदमे की पैरवी के लिए आया है। वह मुझे वकील नहीं जानते थे। एक दिन 'कन्सलटेशन' में उन्होंने कुछ प्रश्न किये। मैं पीछे बैठा था, मैंने उत्तर दे दिया। उन्होंने मेरी ओर देखा, पर कहा कुछ नहीं। पीछे हममें से एक आदमी से, जो उनके यहां वकील की हैसियत से जाया-आया करते थे, उन्होंने कहा कि हम लोगों का मवक्किल

तो बड़ा होशियार मालूम होता है, उसने मेरे प्रश्नों का अच्छा उत्तर दिया था। इसपर हमारे सहकर्मी ने मेरे बारे मे बताया कि मैं मवक्किल नही, बल्कि एक वकील हूं और अपनी वकालत छोड़ दी है। इससे उनका कुतूहल कुछ बढ़ गया। पीछे उन्होंने मुझसे बहुत काम लिया। अनेक प्रकार के नोट तैयार करने की फरमाइश की। मै बराबर तैयार करके दे देता। जब मुकदमे की पेशी का समय आया तो उन्होंने मुझसे पूछा—"क्या तुम इजलास पर हाजिर रहना चाहते हो?" मेरे 'हां' कहने पर बोले—"यह जरूरी नही है, तुम्हारा समय दूसरे तरीके से बेहतर उपयोग मे आवेगा, मुझे बहुत विषयों पर नोट चाहिए, तुम घर पर रहकर तैयार करो।" मैंने कहा—"यदि मैं नोट तैयार करके दे दिया करूं और घर पर रहना जरूरी न हो तो?" उन्होंने कहा—"नही, नोटों के तैयार करने मे समय लगेगा, तुम हाजिर नही हो सकोगे; पर यदि तुम नोट मे देरी न करो और इजलास पर भी हाजिर रह सको तो मुझे कुछ उज्र नही है; पर नोट मे देरी मैं बर्दाश्त नहीं कर सकूगा।" यह बात मशहूर थी कि वह बहुत बदमिजाज हैं, अपने विरोधी और साथी बैरिस्टरो तथा जजों मे भी उलझ जाया करते है। इसलिए मै बहुत डरता था; पर मैंने देख लिया कि वह मेरे नोटों से संतुष्ट हो जाते थे। वह टेलिफोन कर देते थे कि मैं इजलास लगने के दस या पाच मिनट पहले उनसे मिलूं। वहां वह घर से ही उन विषयो को नोट करके लाते, जिनपर मुझसे वह नोट लिखाना चाहते थे। मुझे वह उन नोटों को लिखवा देते। मै उसके पहले के नोट देखकर आता और उनमे जो कुछ पूछना होता, पूछ लेता। यदि मै पहले से कागज-पेन्सिल लेकर तैयार न रहता तो इसपर भी वह बिगड़ जाते। समय का इतना सदुपयोग करते कि एक मिनट भी बर्बाद न होने पाता।

मैंने एक बात और देखी। वह हमारे देश के, विशेषकर पटने और कलकत्ते के, वकीलों और बैरिस्टरों के लिए अनुकरणीय है। जब मैं वकालत करता था, मेरा अनुभव हुआ कि कोर्ट मे जाने पर जबतक हम घर लौटकर नही आते तबतक का हमारा अधिकांश समय, जो अपने मुकदमे की पेशी मे नही लगता, प्रायः बेकार बरबाद हो जाता है। बार-एसोसिएशन या पुस्तकालय मे बैठकर हम लोग बहुत कम कागज अथवा पुस्तकें पढ़ते है। हम लोग अपने मुकदमे की बहस की तैयारी घर पर ही किया करते है। कोर्ट में जब मुकदमा पेश होता है और जबतक चलता रहता है तबतक, जिसका मुकदमा रहा उसका समय तो उपयोग में आया, पर जिन दूसरे लोगों की मुकदमे की पेशी नहीं हुई है, वे केवल गपशप में सारा समय बिताते हैं। कहीं-कहीं शतरंज की बाजी भी जम जाती है। मेरा अपना अनुभव भी

यही था कि वहांपर बैठकर कागज या पुस्तक पढ़ना बहुत मुश्किल है; क्योंकि इसके लिए वहां का वायुमंडल अनुकूल नहीं रहता। जहा सब लोग गपशप और हंसी-मजाक कर रहे हों, वहा कोई कैसे पढ़ सकता है। इसलिए मुकदमों के कागज पढ़ने का सारा समय घर पर ही निकालना पड़ता है। मेरे पास काफी मुकदमे रहा करते थे। इसलिए मुझे बराबर प्रायः तीन-चार बजे तड़के ही उठकर तैयारी करनी पड़ती थी। वहां मैंने देखा कि बैरिस्टर अपना सारा काम चाहे लाइब्रेरी में या अपने चेम्बर में ही पूरा करते हैं। इजलास पर जजों के बैठने के कुछ पहले ही आ जाते हैं। फिर इजलास उठ जाने के बाद भी घंटा-दो-घटा बैठ जाते हैं। बीच मे जब मुकदमे की पेशी से छुट्टी मिलती है, काम करते हैं। कोई-कोई तो घर पर मुकदमे के कागज ले भी नही जाते। यहांतक कि घर में कानून की पुस्तके भी नही रखते। उनका विचार है कि घर तो बस घर ही है—वहां बाल-बच्चों से मिलना, बाते करना, खाना-पीना, दिल बहलाना, अथवा जी चाहे तो इच्छा के अनुसार दूसरी पुस्तके पढना चाहिए। पेशे का काम तो दिन-भर मे चाहे चेम्बर में, चाहे इजलास पर ही करना चाहिए। इस प्रकार दिन का पूरा समय ठीक उपयोग मे आता है तथा रात और सवेरे का समय अपना होता है, जिसे हम जिस तरह चाहें अपने उपयोग मे ला सकते हैं।

वहा के बहुतेरे वकील-बैरिस्टर शनिवार और रविवार को लंदन से बाहर चले जाते है। मिस्टर अपजौन बिला नागा प्रत्येक शुक्रवार की संध्या को इजलास से उठकर सीधे स्टेशन जाते थे। वहां से रेल द्वारा लंदन से प्रायः सत्तर मील की दूरी पर अपने गांव के घर मे जाकर रहा करते थे। फिर रविवार की सध्या को लदन चले आते थे। सप्ताह के अन्तिम दो दिनों को हमेशा गाव की खुली हवा में ही बिताते थे। हम लोगो की इच्छा थी जि जबतक यह मुकदमा पेशी में रहे, वह लंदन मे ही रहे। हम समझते थे कि शनीचर-इतवार को ही दूसरे पक्ष की बहसवाली और अपनी बाते उनसे कहने का मौका मिल सकेगा; क्योंकि और दिनों तो सारा समय इजलास पर ही लग जायगा। उनसे कहा गया कि आप शनीचर-इतवार को लंदन मे ही रहे और उन दिनों के लिए भी वैसे ही फीस ले ले जैसे पेशी के दिन की लेते हैं। उन्होने इसे मजूर नही किया। फीस की लालच भी उन्हे अपने इस नियम से न हटा सकी। अन्त मे बहुत जिद करने पर उन्होंने कहा कि सप्ताह के ये दो दिन यदि मैं गांव की खुली हवा में न बिताऊं तो सप्ताह के बाकी पांच दिन मैं काम के लायक नही रहूंगा। क्या तुम समझते हो कि मैं यदि यह नियम न रखता तो आज इस उम्र में इतना काम कर सकता था? मवक्किल को समझा दो कि यहां रहने से मैं उनका काम बिगाड़ूंगा,

बनाऊंगा नही, इसलिए वह जिद्द छोड़ दे। हम लोग भी उनकी बात समझ गये। यदि हमारे देश के लोग भी इस तरह समय का उपयोग करते और स्वास्थ्य का खयाल रखते, तो हमारी जिन्दगी कुछ लम्बी हो जाती और हम काम भी अधिक कर सकते।

हम लोगो का, खासकर हमारे बडे-बडे बैरिस्टरो का, खयाल था कि हमारा मुकदमा बहुत मजबूत है, हम जरूर जीतेगे। मिस्टर अपजौन का कहना था कि हमको शायद बहुत जवाब देने की भी जरूरत नही पड़ेगी। मुकदमे की बहस बीस-बाईस दिनो तक दूसरे पक्ष की ओर से चली। अभी शायद एक-डेढ़ महीने तक और उधर की ही बहस चलती। इसी बीच मे कचहरी प्राय: तीन महीनो के लिए बन्द होने जा रही थी। इसका नतीजा यह होता कि मुकदमे की पेशी फिर अक्तूबर मे होती और शायद दिसम्बर तक चली जाती। उन दिनों सर्दी काफी पडेगी और हममे से बहुतेरे उसे सह न सकेगे; खासकर मैं तो उस सर्दी को बर्दाश्त कर ही नही सकता था। बाबू हरिजी इससे बहुत घबराये। एक मौका मिला तो किसी दूसरे से बिना पूछे ही सुलह की बात तय कर ली। वह जानते थे कि वकील-बैरिस्टर सुलह करने की बात पसन्द नही करेगे, क्योंकि वे तो मुकदमा जीतने मे दृढ आशावान थे। तब भी खर्च बचाने और जाडे की दिक्कतो से बचने के लिए, बहुत नुकसान उठाकर, उन्होंने सुलह कर ली। सब बातें तय कर लेने पर, लिखकर दाखिल करने के समय, उन्होंने ये बाते सबसे कही। दूसरे को अब कुछ कहना नही था। सुलहनामा पेश हो गया। मुकदमा अचानक एक दिन, जुलाई के अन्तिम सप्ताह मे समाप्त हो गया। हम सबको छुट्टी मिल गई।

मिस्टर अपजौन मुकदमे की बाते छोड कभी दूसरी बाते नही करते थे। उनके साथ मेरा इतना काम पडा कि उन्होने मेरे सम्बन्ध मे कुछ जानने की इच्छा से श्री कुवरबहादुर से कुछ बातें पूछी। उनको यह मालूम हो गया कि अब वकालत छोडकर मैं गाधीजी के साथ काम करता हू। इससे उनको आश्चर्य हुआ। एक दिन मुझसे पूछा भी। यह भी कहा कि गाधीजी उनके मवक्किल रहे है! जलियांवालाबाग के हत्याकांड के लिए जनरल डायर पर मुकदमा चलाने के सम्बन्ध मे उनसे राय ली गई थी। उन्होने राय दी भी थी। मैंने उनसे कहा कि गाधीजी डायर पर मुकदमा चलाने के विरुद्ध थे। हो सकता है कि प० मोतीलालजी और देशबन्धु दास ने आपकी राय मंगवाई हो। इस पर उन्होने कहा, मैंने समझा कि काग्रेस की ओर से गांधी ने ही मेरी राय मंगवाई है। उस समय तक मै खुद भी नही जानता था कि हत्याकाण्ड का मामला इस हद तक पहुंचा है और विलायत के

बैरिस्टर से राय ली गई है। मेरे सम्बन्ध में उन्होने इतना ही कहा, तुमको वकालत नही छोडनी चाहिए, इस सम्बन्ध मे मुकदमा खतम होने पर एक दिन बाते करूंगा। लेकिन मुकदमा तो अचानक समाप्त हो गया और मुझे बहुत जल्दी मे लंदन छोड देना पड़ा; इसलिए उनसे फिर बाते न हुई।

: ७४ :

युद्ध-विरोधी सम्मेलन में

लंदन छोड़ने का एक विशेष कारण हुआ। जिस दिन मुकदमा समाप्त हुआ उसके दो ही दिनों के बाद, आस्ट्रिया के छोटे गांव सन्तासवर्ग मे, जो वियना से कुछ दूरी पर है, एक अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध-विरोधी सम्मेलन होने-वाला था। मै इस विषय मे कुछ दिलचस्पी रखता था। मिस्टर फेनर ब्राकवे उसके सभापति होनेवाले थे। बिहार के ही श्री तारिणीप्रसादसिंह ने, जो इंगलैंड मे बहुत दिनों से थे और जो उस सम्मेलन मे जानेवाले थे, मुझसे कहा कि मै भी चलू तो अच्छा होगा। इस तरह के सम्मेलन की बात मैंने पहले से भी सुन रखी थी। उसमे जाने का पहले से ही इरादा कर रखा था। मुकदमा खतम हो जाने से बहुत अच्छा सुयोग मिल गया। इसलिए मैं वहां जाने को तुरत राजी हो गया। हम लोग एक और पजाबी मित्र के साथ रवाना हो गये। दूसरे दिन वहा पहुंच गये। रास्ते मे कोई विशेष घटना न हुई। यूरोप के छोटे-छोटे देशों का केवल कुछ अन्दाज मिल गया। जब गाड़ी चार-पाच घंटे चलकर ठहर जाती तब जान पड़ता कि अब दूसरे देश की सीमा पर हम पहुंच गये। वहां उस देश के कर्मचारी चुगी के लिए हमारे सामान देखने आ जाते। हमारे पासपोर्ट (राही परवाना) को भी जांचते। इस तरह आस्ट्रिया प्रायः चौबीस घटों मे हम पहुचे। रास्ते में तीन-चार बार सामान दिखलाना पड़ा।

युद्ध-विरोधी सम्मेलन हुआ था एक गाव में, जहां एक छोटी पहाडी पर पुराना गिरजाघर था। उसमें जर्मनी, आस्ट्रिया, फ्रान्स, इंगलैंड, प्लस्तीन, चेकोस्लोवेकिया, हालैंड इत्यादि अनेक देशों के प्रतिनिधि उप-स्थित थे। प्रतिनिधि-संख्या बहुत बड़ी नही थी; किन्तु अपने-अपने स्थान पर सभी बहुत धुन से युद्ध-विरोधी प्रचार के काम मे लगे थे। इनमे से बहु-तेरों ने इसके लिए सजा भुगती थी, जेलखाने हो आये थे। जब उन लोगों को मेरे बारे में यह मालूम हुआ कि मैं गांधीजी के साथ काम करता हूं तो उनका स्वभावतः मेरी ओर ध्यान आकर्षित हो गया। वे लोग मुझसे गांधीजी के कामों और कार्यशैली के सम्बन्ध में बहुत पूछताछ करते रहे। कान्फेन्स में भी कुछ कहने का मुझसे आग्रह किया गया। मैंने महात्माजी के

कार्य के सम्बन्ध में कुछ बातें बताईं। भारत में उन दिनों बारडोली का सत्याग्रह चल रहा था। उसकी कुछ-कुछ खबर हमको वहां मिली थी। मैंने विशेषकर चम्पारन और बारडोली के सत्याग्रह के सम्बन्ध में ही भाषण किया। मैंने यही दिखलाया कि किस तरह उनकी अहिंसा की नीति सार्वजनिक प्रश्नों के हल करने में काम मे लाई जाती है। और वह कहांतक सफल हुई है। हम लोग वहां दो-तीन दिन ठहरे। बहुत अच्छा समय बीता।

कान्फ्रेन्स की कार्रवाई—जर्मन, फ्रेंच, अंगरेजी और एसपरेण्टो—चार भाषाओं में होती थी। एक जर्मन युवक, जिसकी चर्चा पहले कर चुका हूं, चारों भाषाओं का ऐसा अच्छा पंडित था कि चाहे किसी भी भाषा मे भाषण हो, वह शीघ्रलिपि (शार्टहैण्ड) से पूरा भाषण लिख लेता था और अपने नोट को सामने रखकर पूरा-का-पूरा भाषण बाकी तीन भाषाओं मे उल्था करके सुना देता था।

कान्फ्रेन्स मे युद्ध-विरोधी प्रस्ताव पास किये गए। यह निश्चय हुआ कि कान्फ्रेन्स के बाद, कुछ मुख्य स्थानों मे, कान्फ्रेन्स के प्रतिनिधि जाकर युद्ध-विरोधी भाषण द्वारा प्रचार करें। वहां से कुछ दूर पर ग्राट्ज नामक शहर है। वहां डाक्टर स्टाण्डिनाथ अपनी धर्मपत्नी के साथ रहा करते थे। यह वहां के मेडिकल कालेज मे शिक्षक थे। महात्माजी से इस दम्पति का पत्रव्यवहार हुआ करता था, यद्यपि ये लोग उस समय तक हिन्दुस्तान नहीं आये थे। मेरे यूरोप आने के समय महात्माजी ने मुझे इनके नाम एक पत्र दिया था और कहा था कि उधर जाना हो तो इनसे मिल लेना। जब ग्राट्ज भी जाने की बात हुई तो मैंने उनको सूचना दे दी और गांधीजी का पत्र भी भेज दिया। कान्फ्रेन्स के मन्त्री इगलैंड के श्री रनहम ब्राउन थे। उनके साथ कई और प्रतिनिधि वियना और ग्राट्ज जाने के लिए नियुक्त किये गए। वियना में एक सभा हुई, जिसमें वहां के एक प्रसिद्ध पादरी श्री उदा सभापति हुए। वहां की सभा मे कुछ ऐसे लोग आये थे, जो बीच-बीच मे बहुत शोर मचाते रहे। मै उनकी बात समझ नहीं सकता था; इसलिए यह नहीं कह सकता कि वह क्या बोलते या चाहते थे; पर इतना तो मालूम हुआ कि वे लोग विरोधी विचार के थे। उस सभा मे इससे अधिक कोई घटना नहीं हुई।

दूसरे दिन हम लोग ग्राट्ज गये। वहां संध्या को पांच बजे हम पहुंचे। सात बजे से सभा होनेवाली थी। स्टेशन पर डाक्टर स्टाण्डिनाथ अपनी स्त्री के साथ आये थे। उन्होने मुझे अपने यहां ठहरने के लिए निमन्त्रित किया और मैं उनके साथ चला गया। दूसरे साथी कहीं दूसरी जगह ठहरे,

: ७५ :

रोमा रोलां से मुलाकात : युवक-सम्मेलन में

मैं वहां से सीधे स्विट्जरलैण्ड गया। मेरी बहुत इच्छा थी कि श्री रोमा रोला से जाकर मिलू। इसलिए मैं वहां गया जहा वह बराबर रहा करते है। पर वहा उनकी बहन से मुलाकात हुई तो मालूम हुआ कि वह गर्मी के कारण कार्टरीगी पहाड़ पर गये है। मैं वहा चला गया। रास्ता बहुत ही सुन्दर था। रेल ऊचे पहाड़ पर आहिस्ता-आहिस्ता चढ़ती गई। वहां बर्फ से ढके पहाड़ थोड़ी दूरी पर नजर आ रहे थे। मैं एक होटल मे ठहराया गया। श्री रोमा रोला ने ही सब प्रबन्ध कर दिया था। दो दिन तक वहां रहा। उनसे भेट हुई। बातें भी हुई। पर मुश्किल यह थी कि वह अगरेजी नही बोल सकते थे और मैं फ्रेन्च नही समझता था! होटल मे एक अंगरेजी जाननेवाला उन्होंने खोज निकाला। पर उसकी विद्या भी कुछ अन्दाज की ही थी। उनसे मिलकर मुझे जितना लाभ होना चाहिए था, न हो सका। उन्होने ग्राट्ज की घटना का हाल पत्रों में पढ़ा था। मेरे पट्टी बधे हुए सिर और हाथ को उन्होने देखा। वहां से रवाना होकर, स्विटजरलैण्ड के कुछ और शहरो को देखते हुए, मै लदन के लिए चल पड़ा। मैने बर्नवेल, न्युटाटेल, लोसान और जेनीवा शहरो को देखा। न्युटाटेल मे एक छोटी, पर अचम्भा पैदा करनेवाली, घटना हुई। मैं वहां बाजार मे घूम रहा था। एक दूकान मे हाथ का बुना हुआ कुछ कपड़ा बिकता था। मैं वहा गया। एक लड़की बेचने का काम कर रही थी। वह अंगरेजी जानती थी। जब मैंने हाथ के बुने कपड़े की बात की और उसने मेरी पोशाक देखी तो समझ लिया कि मैं हिन्दुस्तान का रहनेवाला हू। मुझे यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ कि वह गाधीजी का केवल नाम ही नही जानती थी, बल्कि जो ग्रन्थ उनके सम्बन्ध में उसे मिले थे, उन्हें पढ़ भी गई थी। उसने मुझे म्युनिक की एक दूकान का पता दिया, जहां हाथ के बुने कपडे मिल सकते है। अपनी दूकान में रखे हुए पुराने स्विस चर्खे का नमूना भी दिखलाया। वह हमारे देश के पुत्तीवाले चर्खे के समान ही था, पर वह ऊंची कुर्सी या स्टूल पर बैठकर चलाया जा सकता है। मैंने वहां पहले-पहल समझा कि गांधीजी के सम्बन्ध में श्री रोमा रोलां की पुस्तक ने कितना प्रचार कर दिया है।

स्विटजरलैण्ड के शहरों को देखता हुआ मैं पेरिस पहुंचा। वहां भी एक या दो दिन ठहर शहर देखकर लंदन पहुचा। लंदन में अपने मकान पर मैं संध्या समय ६-७ बजे पहुंचा। घर में पहुंचने पर सन्नाटा पाया, कोई नहीं था। पूछने से मालूम हुआ कि हमारी गैरहाजिरी में एक भयकर दुर्घटना हो गई है। श्री सत्यरंजनप्रसादसिंह, जो हम लोगों के साथियों में थे, एक दिन कहींसे लौटते समय, ठीक अपने मकान के सामने ही, बस से उतरे और सड़क पार करने मे मोटर से धक्का खाकर बेहोश गिर गये। उनकी अवस्था बहुत खराब थी। सभी लोग उस नर्सिंग होम (शुश्रूषागृह) मे गये थे, जहां उनकी चिकित्सा हो रही थी। मुह-हाथ धोकर मैं भी तुरन्त वहां गया। चोट लगने के बाद से उनको होश कभी नही हुआ। जब मैं पहुंचा, वह बेहोश ही थे। हालत चिन्ताजनक थी। उसी रात उनकी मृत्यु हो गई!

मेरी इच्छा थी कि मुकदमा खतम हो जाने पर मैं लदन देखूगा और अन्यत्र भी कुछ घूम-फिरकर हिन्दुस्तान लौटूगा। पर इस दुर्घटना से सभी लोगों का चित्त बहुत उदास हो गया। हम सबकी इच्छा हो गई कि जल्द-से-जल्द अब हिन्दुस्तान वापस चला जाय। अब वहा ठहरकर किसी चीज को देखने का जरा भी जी नही चाहता था। उनकी मृत्यु के बाद दो-तीन दिनों तक वहां मृत्यु-सम्बन्धी कोरोनर की जांच के लिए ठहरना पड़ा। उसने फैसला दिया कि दुर्घटना से मृत्यु हुई है, किसीका दोष नही है और हमको शव दे दिया। उसको हम लोगों ने वहा के क्रिमेटोरियम मे जलाया। मैं उसी रात एडिनबरा चला गया। वहा से वापस आकर हम सब लोग रवाना हो गये। लंदन मे कुछ नही देख सका। यहातक कि ब्रिटिश म्यूजियम का भी दर्शनमात्र ही हुआ। उसके अन्दर जाकर कुछ देख न सका।

हम लोग लंदन से इस इरादे से रवाना हुए कि मार्सेल्स में 'मुलतान' जहाज पर सवार होंगे, जो अगस्त के अन्तिम सप्ताह में किसी दिन वहां से रवाना होनेवाला था। बीच मे दस-बारह दिन मिल जाते थे। मैने सोचा कि इन दस-बारह दिनों को यूरोप के देशों के देखने मे लगाऊंगा। इन्हीं दिनो हालैण्ड में युवकों का एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन होनेवाला था। मैं वहां भी गया। उसी सम्मेलन मे बगाल के डाक्टर सान्याल से भेंट हुई। वह भी कुछ-कुछ युद्ध-विरोधी सम्मेलन ही था। उसमें भी कई देशो के युवक आये थे। एक विशेषता यह भी थी कि उसमे अमेरिका के बहुत प्रतिनिधि थे। पूर्वोक्त सन्तासबर्ग के युद्ध-विरोधी सम्मेलन से यहा प्रतिनिधियों की संख्या बहुत अधिक थी; पर जितनी गम्भीरता और हार्दिक उत्साह वहां था, यहां मैंने नहीं देखा। यह सम्मेलन भी किसी शहर में न होकर एक गांव में ही हुआ था। हम सब किसी मकान में न ठहरकर खीमे में ठहरे

थे। प्रबन्ध बहुत सादा था। समय पर 'साइरेन' बजता था। सभी लोग अपने गिलास और तश्तरी लेकर एक बड़े खीमे मे पहुंच जाते। वहां लकड़ियों के पटरे जोड़कर कामचलाऊ मेजे और बेंचे बनी थी। वही खाना या नाश्ता मिल जाता। फिर साइरेन बजने पर सम्मेलन में सभी पहुचते थे। तब वहा भाषण होते। मैने देखा कि देश-देशान्तर के उन युवको की पूरी दिलचस्पी सभी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विषयो में हैं। वहा बडे उत्साह के साथ राष्ट्रसघ (League of Nations) जैसी सस्थाओ और उनकी कार्रवाइयो तथा उपयोगिता पर बहुत बहस हो रही थी। कुछ जर्मन भी उसमे शरीक थे। मैने अनुमान किया कि उस देश मे आपस मे मतभेद है—दूसरे देशो के प्रतिनिधियो मे भी वहा की समस्या-सम्बन्धी विचार-शैली मे भेद है। इस सम्मेलन मे भी मैंने भाषण किया।

: ७६ :

जर्मनी और इटली की सैर तथा स्वदेश-वापसी

वहा से मै बर्लिन गया। मैने एक यात्रा-क्रम बना लिया था, जिसमे जर्मनी के तीन शहर रख लिये थे—बर्लिन, लीपजिग और म्युनिक। इटली में वेनिस और रोम तथा फ्रान्स के दक्खिन मे नीस होते हुए मार्सेल्स पहुचने का विचार था। समय इतना कम था कि इससे अधिक कही जा नही सकता था और इन शहरो मे भी पूरा समय नही दे सकता था। मैं प्रायः रात की गाड़ी से रवाना होता। वहा की गाडियो मे अधिक महसूल देने पर सोने के लिए जगह मिल जाती है। इसलिए मै ऐसी गाडी चुन लेता जो रात को दस-ग्यारह बजे रवाना होती और लक्ष्य-स्थान पर सवेरे पहुंचती। सोने का टिकट लेकर रात को आराम से गाड़ी मे सोता। सवेरे गाड़ी मे ही मुह-हाथ धोकर उतरना। स्टेशन पर उस कमरे की तलाश कर लेता जहा मुसाफिरो के सामान हिफाजत के लिए रख लिये जाते है। प्राय. प्रत्येक स्टेशन पर टामस-कुक का प्रतिनिधि मिल ही जाता; केवल लीपजिग मे वह नही मिला था।

बर्लिन स्टेशन पर उतरने पर पहले कोई परिचित आदमी नही मिला। पर जब मै टैक्सीवाले से सिर्फ अपने इशारों के सहारे अगरेजी होटल की तलाश करने के प्रयत्न मे लगा था, टामस-कुक का आदमी नजर आ गया। वह मुझे एक होटल मे ले गया। इत्तिफाक से बाबू हरिजी भी उसी होटल मे पहुचे। उनसे मुलाकात हो गई। दो या तीन दिनो तक मैं वहा ठहरा। घूम-घूमकर बर्लिन देखा। वहा श्री बी० चट्टोपाध्याय से मुलाकात हुई। रूस से उनका कुछ सम्बन्ध था। कहते थे कि मै यदि वहां जाना चाहू तो वह पासपोर्ट का प्रबन्ध कर सकेंगे। पर समय की कमी के कारण मैं यह लाभ न उठा सका। बर्लिन मे मै एक ऐसे रेस्तरा मे जाकर खाया करता था, जहां शाकाहार मिल सकता था। उसीने सारे यूरोप के बडे-बड़े शहरों के शाकाहारवाले रेस्तरा की फिहरिस्त दे दी। उसमे सबके नाम और पते छपे थे। स्टेशन पर उतर, उसी कागज को दिखलाकर, मैं ऐसे रेस्तरां तक पहुंच जाता और वही भोजन करता। कुछ दिक्कतें अंडे के कारण होती; पर मैंने एक-दो शब्द सीख लिये थे, जिनसे यह जता देता कि मुझे अंडे

से भी परहेज है।

लीपजिग मे केवल दिन-भर ठहरा। वहां टामस-कुक का प्रतिनिधि नही मिला। इसलिए वहां अपनी बुद्धि से ही काम लेना पड़ा। इंगलैण्ड जाने के पहले कई महीनो तक मैंने लुई कूने की जल-चिकित्सा-पद्धति से कटि-स्नान किया था, जिससे कुछ लाभ भी हुआ था। उनकी पुस्तक भी अंग-रेजी में पढ़ी थी। इसलिए मेरी अभिलाषा हुई कि स्वय जाकर उनसे मिलू। इसीलिए मैंने अपने यात्रा-क्रम मे लीपजिग को रखा था। स्टेशन से उतरकर सीधे उनके चिकित्सालय में गया। वहां सुना कि उनकी मृत्यु हो गई है और वह भी विचित्र तरीके से। वह फल खाने के बड़े पक्षपाती थे। अवस्था काफी हो गई थी, तो भी किसी पेड़ पर फल तोडने चढे और गिर गये। चोट गहरी लगी, मर गये। उनके लड़के थे, जो अंगरेजी नही के बराबर जानते थे। उनसे किसी प्रकार बातें हुईं। उन्होने मेरे लिए स्नान-विधि और भोजनादि-सम्बन्धी नुस्खा लिखकर दिया। वही एक बार स्नान कराकर दिखला भी दिया। वह नुस्खा जर्मन भाषा में था। मैं उससे लाभ न उठा सका और वहीपर वह खो भी गया!

खाने के समय मै वहां एक रेस्तरां में गया। वहां तो एक भी आदमी अंगरेजी जाननेवाला न था! मैं बड़ी मुश्किल से नौकर को कुछ बतलाने की कोशिश कर रहा था। एक स्त्री मुझसे कुछ दूर टेबुल पर खाने बैठी थी। उसने मेरी दिक्कत देखी। मेरे पास वह आई। वह अंगरेजी खूब जानती थी। थी तो वह जर्मन, पर उसका पति अमेरिकन था, जो उस समय अमेरिका गया था। उसने मेरी पूरी मदद की। उस दिन टामस-कुक के प्रतिनिधि का काम उसीने कर दिया। घूम-फिरकर तमाम शहर भी दिखला दिया। संध्या को रेल मे सवार करा दिया। इस प्रकार की सहृदयता अक्सर नही देखने मे आती।

अपने यात्रा-क्रम के अनुसार मैं म्यूनिक गया। वहापर वह मशहूर सेलरहौस देखा, जिसमें अक्सर हिटलर के भाषण हुआ करते हैं। वहां के मशहूर म्यूजियम को भी देखा, जिसमें वैज्ञानिक वस्तुओ का संग्रह है। वहां तलाश करते-करते उस दूकान तक भी पहुंचा जहां—न्यूटाटेल में मुझसे कहा गया था—हाथ के बुने कपड़े मिलते हैं। पर ऐसा कोई कपड़ा मिला नहीं।

म्यूनिक से मैं वेनिस गया। अजीब शहर है। समुद्र घर-घर में है। घर से निकलकर नाव पर ही बाहर जाया जाता है। नाव के सिवा वहां कोई दूसरी सवारी नही होती। पानी के बीच में चट्टान हैं, उन्हींपर मकान बने हैं। जो मशहूर गिरजाघर है वहां कुछ खाली जगह है। वहां मैं संध्या

समय टहलता रहा। रात के दस-ग्यारह बजे होटल में जाकर ठहरना चाहा; पर वहां इतने मच्छर थे कि मसहरी लगाने पर भी वहां ठहरना मुश्किल हो गया। इसलिए, गाड़ी के समय से पहले ही, स्टेशन चला आया।

रोम मे दो दिन तक ठहरा। नई और पुरानी चीजें, टामस-कुक के प्रबन्ध में, खूब देखी। इटली के दोनो शहरों मे, फौज के बहुत-से आदमियों को, जहां-तहा आते-जाते देखा। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि फौज का वहां बहुत जोर है। मेरी यात्रा कुछ ऐसी रही कि यात्रियो द्वारा देखे जानेवाले स्थानों के सिवा मै और कुछ न देख सका, न किसीसे मिल सका। समय भी न था और इसका प्रबन्ध भी न था। पहले से यदि प्रबन्ध होता तो कुछ लोगों से मिलता। समय रहता तो वहा की परिस्थिति जानने का भी प्रयत्न करता। पर ऐसा न हो सका, जिसका अफसोस रहा, पर लाचारी थी।

अन्त में मार्सेल्स के लिए रवाना हुआ। रास्ते में नीस में उतरा। वहां भागलपुर-निवासी श्री दीपनारायणसिंह से भेंट हो गई। चन्द घंटों तक उनका साथ रहा। वहा पास ही के मशहूर कैसिनो को भी जाकर देखा, जहां लोग जुआ खेलते है। इन सब चीजों के देखने मे मेरा जी नही लगा। तुरन्त मै मार्सेल्स चला गया। दूसरे ही दिन जहाज पर सवार होना था। बाबू हरिजी से मुलाकात हो गई। रात-भर एक होटल मे ठहरे। दूसरे दिन 'मुलतान' जहाज पर सवार हो गये। जहाज हिन्दुस्तान के लिए रवाना हो गया। इस बार हम लोग आठ-दस आदमी साथ थे, इसलिए जहाज मे किसी किस्म की दिक्कत न हुई। मेरी तबीयत कुछ खराब हो गई। एक-दो दिनो तक समुद्र की हवा लगते ही फिर दमा हो गया। पर वह जल्द ही अच्छा भी हो गया। हम लोग बम्बई मे, सितम्बर के दूसरे सप्ताह में, उतर गये। जहाज पर कोई विशेष घटना न हुई। ढाका-युनिवर्सिटी के वाइस-चान्सलर सर फिलिप हर्टोग उसी जहाज से लौट रहे थे। उनसे मुलाकात हो गई। जहाज पर अक्सर उनसे बातें हुआ करती थी।

: ७७ :

साइमन-कमीशन का पुनरागमन और देश-भ्रमण

बम्बई मे जहाज से उतरकर मैं सीधे अहमदाबाद चला गया। वहां एक-दो दिन ठहरकर फिर पटना लौटा। मेरी गैरहाजिरी मे दो बहुत महत्वपूर्ण घटनाए देश मे हो चुकी थी—१. बारदोली में जमीन पर 'कर' बढाने के कारण सत्याग्रह, और २. देश के निमित्त सभी दलवालों से मिलकर विधान तैयार करने के लिए नेहरू-कमिटी का संगठन। बारदोली का सत्याग्रह खूब सफल रहा। सरकार ने अपनी ओर से हर तरह से उसे दबाने का प्रयत्न किया। लोगो ने भी उत्साहपूर्वक दमन को बर्दाश्त किया। दमन झेलने मे जनता को पूरी सफलता मिली। गाधीजी का आशीर्वाद और साहाय्य तो था ही, आन्दोलन के संचालन का सारा भार वास्तव में सरदार वल्लभभाई पटेल पर ही था। उन्होने उसे बड़ी चतुराई, धीरता, निर्भीकता और परिश्रम के साथ चलाया था। सभी दल के लोगो ने उसे अत्यन्त महत्वपूर्ण आन्दोलन समझा था। सबने सहायता भी दी थी। सरदार ने गुजरात से बाहर के लोगों को आने से मना कर दिया था। इसलिए दूसरे प्रान्त के कार्यकर्त्ता बाहर से ही जो सहायता पहुचा सकते थे, पहुचाते रहे। वहां कोई गया नही। सारे देश के सामने सत्याग्रह का एक आदर्श नमूना आ गया। लोगों को यह मालूम हो गया कि सगठन और त्याग काफी हो तो अहिंसात्मक सत्याग्रह द्वारा जबरदस्त सरकार भी दबाई जा सकती है। जिस चीज की बाट लोग १९२१ से ही जोह रहे थे, उसे एक तालुके में सरदार ने प्रत्यक्ष दिखा दिया। अब इसके बाद लोग यही सोचने लगे कि सारे देश को बारदोली कैसे बनाया जाय। इस सत्याग्रह ने देश मे नई जान डाल दी। जो सत्याग्रह आगे १९३० मे हुआ, उसके लिए जमीन भी तैयार कर दी।

मद्रास-कांग्रेस मे ही एक कमिटी नियुक्त हुई थी। उसको यह काम सुपुर्द किया गया था कि सभी दलों के नेताओं से मिलकर वह एक योजना तैयार करे। साइमन-कमीशन का बहिष्कार तो सबने किया था, पर वह अपना काम करता ही जा रहा था। सोचा गया कि जबतक अपनी ओर से तैयार करके कोई योजना संसार के सामने नहीं रखी जायगी तबतक यही

समझा जायगा कि हम लोग केवल नुक्ताचीनी कर सकते है, कोई रचनात्मक काम नही कर सकते। इसलिए इस कमिटी को सब दलों के लोगो से सहायता मिली। पडित मोतीलाल नेहरू इसके सयोजक थे, इसीलिए इसका नाम नेहरू-कमिटी पड़ा। इस कमिटी ने योजना तैयार कर ली थी। सब दलो के प्रतिनिधियो ने, कुछ बातो को छोडकर, अधिकांश बातों को स्वीकार भी कर लिया था। अब इस योजना को काग्रेस के सालाना जल्से के समय एक सर्व-दल-सम्मेलन मे बाजाब्ता मजूर करा लेना था। काग्रेस मे भी इसे स्वीकृत करा लेना रह गया था। दिसम्बर मे काग्रेस का अधिवेशन कलकत्ते मे होनेवाला था। पंडित मोतीलाल नेहरू सभापति चुने गये। नेहरू-कमिटी की रिपोर्ट पर सारे देश मे चर्चा हो रही थी। सब विचारशील लोग इसके बारे मे अपने-अपने विचार प्रकट करते जा रहे थे। यह योजना औपनिवेशिक स्वराज्य को भारत का ध्येय मानकर ही बनाई गई थी। इसलिए, वे काग्रेसी जो पूर्ण स्वराज्य के पक्षपाती थे, इससे सन्तुष्ट नही थे। इनमे मुख्य थे श्री जवाहरलाल नेहरू, श्री सुभाषचन्द्र बोस और श्री श्रीनिवास अय्यगर।

स्वदेश मे मेरे वापस आने के कुछ दिन बाद, सर्दी शुरू होते ही, साइमन-कमीशन फिर हिन्दुस्तान वापस आ गया। जिन सूबो मे वह अबतक नही जा सका था, उनमे जाने लगा। पजाब मे, उसके बहिष्कार और विरोध-प्रदर्शन मे, लाला लाजपतरायजी शरीक हुए थे। पुलिस ने प्रदर्शकों पर लाठिया चलाई थी। पूज्य लालाजी को पुलिस की लाठियो से बहुत चोट लगी थी। वह बीमार पड गये। फिर अच्छे भी न हुए। ऐसा अनुमान किया जाता है कि उनकी मृत्यु, उन लाठियो की करारी चोट के फलस्वरूप, कुछ दिनो मे ही हो गई। जब कमीशन युक्त-प्रान्त मे पहुचा, वहा भी प्रदर्शको पर पुलिस ने लाठी चलाई। पंडित जवाहरलाल नेहरू को भी चोट लगी थी। इस तरह यह कमीशन पुलिस की लाठियो के साथ देश का भ्रमण कर रहा था। अब पटने मे उसके आने के दिन मुकर्रर हो गये।

मेरी गैरहाजिरी मे बिहार मे भी दो महत्वपूर्ण घटनाए हुई थी। 'सर्चलाइट' अखबार पर हाइकोर्ट के चीफ जस्टिस सर कुटेने टिरल ने अदालत की मानहानि का मुकदमा चलाया था। पटना-हाइकोर्ट के चीफ जस्टिस सर डासन मिलर उसी साल पेन्शन लेकर चले गये। वह एक अत्यन्त शान्त-प्रकृति, पर स्वतन्त्र विचार के, जज थे। यद्यपि वह मुकदमो को ठीक समझने मे थोड़ा समय लेते थे; पर उनके फैसले बहुत अच्छे हुआ करते थे। सभी लोग उनसे सन्तुष्ट थे। उनके जाने पर इंगलैंड से नये चीफ जस्टिस आये, जो लोगों से मिलने-जुलने में तो बहुत अच्छे थे; पर मिजाज के एक-

बग्गा थे और अक्सर फैसलों मे बहक जाया करते थे। इनके एक फैसले पर 'सर्चलाइट' ने कड़ी टीका की थी। इसीके लिए उसपर मुकदमा चला था। इस मुकदमे का महत्व इतना अधिक हो गया कि प्रयाग से श्री मोतीलाल नेहरू और सर तेजबहादुर सप्रू तथा कलकत्ते से श्री शरतचन्द्र बोस बहस करने आये। कुछ दिनो तक पटने में बड़ी चहल-पहल रही। मैंने सुना कि बहुत ही सुन्दर और जोशीली बहसे हुई। अन्त में 'सर्चलाइट' को कुछ सजा हुई। इससे शिक्षित जनता मे, विशेषकर वकीलो मे, काफी खलबली हुई थी।

दूसरी घटना गया-डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड से सम्बन्ध रखती थी। वहा श्री अनुग्रहनारायणसिह चेयरमैन थे। पहले कहा जा चुका है कि प्रान्तीय कौन्सिल के चुनाव मे सर गणेशदत्तसिह का, जो १९२१ से ही मंत्री होते चले आते थे और जो मत्री की हैसियत से सभी म्युनिसिपैलिटियों और डिस्ट्रिक्ट-बोर्डों की देखभाल करते आ रहे थे, काग्रेस ने विरोध किया था। विरोध की गम्भीरता देखकर वह चार जगहो से उम्मीदवार थे। सभी जगहो में काग्रेस के उम्मीदवार उनका विरोध कर रहे थे। एक जगह, गया में, एक दूसरे सज्जन के कारण, जो अपनेको काग्रेस का हमदर्द बताते थे, उम्मीदवार नही खडा किया गया था। अन्त मे, उसी जगह मे उक्त सज्जन की उम्मीदवारी हटवाकर, सर गणेशदत्त चुने गये थे।

इस चुनाव की एक और घटना का उल्लेख आवश्यक है। बेगूसराय के इलाके से भी सर गणेशदत्त उम्मीदवार थे। वहा भूमिहार-ब्राह्मणों की, जिस जाति के सर गणेशदत्त भी है, बहुत अच्छी आबादी है। वह उसी उम्मीद पर वहा से खड़े हुए थे। किन्तु काग्रेसी उम्मीदवार भी भूमिहार-ब्राह्मण ही थे। फिर भी सर गणेशदत्त की ख्याति अपनी जाति मे कई कारणो से बहुत थी। मैं चुनाव के सिलसिले मे वहा गया। एक बड़ी सभा हुई। उसमे सर गणेश-दत्त के मददगार भी आये। उन्होने मुझसे प्रश्न किया, सर गणेशदत्त के विरोध मे कांग्रेस क्यों उम्मीदवार खड़ा कर रही है? उन्होने सर गणेशदत्त की सभी बाते कहीं, जिनमें मुख्य यह थी कि वह जबसे मंत्री बने हैं तबसे उन्होंने अपने वेतन का थोड़ा ही अंश अपने खर्च के लिए लिया है, अधिकांश रुपये परोपकार के लिए दान कर दिये हैं। बात सच थी। उन्होंने कई लाख रुपयों का ट्रस्ट कायम करके एक बहुत अच्छा आदर्श पेश किया था, जिसके लिए हम सब उनके बड़े प्रेमी और प्रशंसक थे। पर यह सब होते हुए भी वह काग्रेस के कार्यक्रम से सहमत नहीं थे और केवल इसी कारण से उनका विरोध करना पड़ा था। मैंने सभा में यही कहा कि कांग्रेस देश-भर की संस्था है, यदि सर गणेशदत्त उसके नियंत्रण में काम करना स्वीकार कर

लें तो कांग्रेसी उम्मीदवार हटा लिये जायंगे; पर इतनी बड़ी संस्था किसी व्यक्ति को मनमानी करने के लिए छोड़ना नहीं चाहती। मैंने उनके सहायकों से भी कहा कि मैं एक दिन और ठहरूंगा, इस बीच वे लोग उन्हें बुला लावें, अथवा उनका पत्र या तार मगवा लें, जिसमें वे मेरी शर्त मंजूर करा लें, तो मैं कांग्रेसी उम्मीदवार हटा लूंगा। सभा में अधिकांश लोग उनकी जाति के ही थे, जिनपर उनको पूरा भरोसा था। मेरी बात को उन सब लोगों ने बहुत पसन्द किया। मैं वहां ठहर भी गया; पर उनके आदमी फिर नहीं लौटे। मैंने देखा कि वहां की जनता पूरी तरह कांग्रेस के पक्ष में हो गई। इसीके बाद सर गणेशदत्त ने गया में उन महाशय को हटाकर किसी तरह अपने निर्विरोध चुने जाने का प्रबन्ध कर लिया।

यह बात तो बीत चुकी थी; पर उनके हृदय में कांग्रेस के प्रति बहुत रंज था, जिसको वह जबतक सार्वजनिक काम करते रहे, कभी भूले नहीं। गया-डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड में उनको अपने उन्हीं मित्र को चेयरमैन बनाना था, जिन्होंने अपनी उम्मीदवारी हटाकर उनको मंत्री बनने का मौका दिया था। इसलिए उन्होंने कई उपायों से वहां के चेयरमैन श्री अनुग्रहनारायणसिंह को हटा दिया—यहांतक कि उनको मेम्बर होने के हक से भी वंचित कर दिया। जब मैं इंग्लैंड से लौटा तो यह षड्यंत्र देखकर मुझे बहुत रंज हुआ। हमारे सभी कांग्रेसी मित्र बहुत ही क्षुब्ध थे। हम लोगों के दिल में यह भी शक था कि उन दिनों देश में साइमन-कमीशन भ्रमण कर रहा था और उसके सामने यह बात भी आनेवाली थी कि जो थोड़े-बहुत अधिकार दिये गए थे, उनका प्रयोग भी हिन्दुस्तानियों ने कहांतक ईमानदारी और सफलता से किया है। बिहार के सबसे ज्यादा आमदनीवाले डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड को इस प्रकार अयोग्य साबित करने का प्रयत्न, हम समझते थे, विशेषकर इसलिए भी किया गया है कि साइमन-कमीशन के सामने गवर्नमेण्ट इसको भी हमारी अयोग्यता के दृष्टान्त-स्वरूप पेश कर सके। इसलिए, सारे सूबे में काफी आन्दोलन हुआ। गया में सभा हुई। मैं भी वहां गया। उसमें मेरा एक बहुत ही कड़ा भाषण हुआ, जैसा पहले कभी शायद ही हुआ हो। जो-जो अभियोग जिला-बोर्ड पर लगाये गए थे, उनकी जांच कांग्रेस की ओर से हमने कराई। सब आरोपों को हमने निर्मूल पाया। तब प्रान्तीय कान्फ्रेन्स का अधिवेशन करने का विचार हुआ। वह पटना में ही हुआ। उसके सभापति अनुग्रहबाबू बनाये गए। स्वागताध्यक्ष श्री सच्चिदानन्दसिंहजी हुए। इस कान्फ्रेन्स की तिथि साइमन-कमीशन के पटना पहुंचने के एक या दो दिन पहले रखी गई थी। सोचा गया था कि जो लोग कान्फ्रेन्स में आवेंगे वे कमीशन के विरुद्ध प्रदर्शन करने में भी शरीक हो सकेंगे। कान्फ्रेन्स सफलता-

पूर्वक समाप्त हो गई। उसके दूसरे दिन सवेरे ही साइमन-कमीशन स्पेशल ट्रेन से आनेवाला था।

हमने सुना कि स्पेशल ट्रेन पटना-जंकशन के विशेष प्लाटफार्म पर, जिसपर प्रिन्स आफ वेल्स उतारे गये थे, लगाई जायगी। वह ठीक हार्डिज-पार्क के सामने पड़ता है। वहां, हार्डिज-पार्क के सामने, लकडियों के मजबूत बल्ले गाड़कर, जनता की भीड को आगे बढने से रोकने के लिए, प्रतिबन्ध लगाया जा रहा था। हमने पंजाब और युक्तप्रान्त मे लाला लाजपतराय तथा पंडित जवाहरलाल नेहरू जैसे नेताओं पर लाठी बरसाने की बात जान ली थी। इससे हमें कुछ आश्चर्य नही हुआ। हम समझते थे कि प्रदर्शन के समय कुछ खून-खराबा होगा। परन्तु जनता मे उत्साह बहुत था, जिसका कुछ नमूना हम प्रान्तीय सम्मेलन मे देख चुके थे।

उसी दिन सध्या को श्री सच्चिदानन्दसिह ने मुझे अपने यहा बुलाया। मैंने वहां पहुंचकर देखा कि पुलिस के इन्सपेक्टर-जनरल मिस्टर स्वेन वहां उपस्थित है। उन्होने मुझसे कहा कि उन्हींके कहने से श्री सिह ने मुझे वहां बुलाया है और वह मुझसे साइमन-कमीशन के सम्बन्ध मे बाते करना चाहते है। उन्होंने कहा कि वह नही चाहते कि जैसी दुर्घटनाए पजाब और युक्त-प्रान्त में हुई हैं, वैसी बिहार मे भी हो, इसमे हम दोनो की बदनामी है। उन्होंने यह भी कहा कि कोई ऐसा रास्ता अगर निकल सके, जिससे पुलिस और प्रदर्शको मे मुठभेड न हो तो अच्छा होगा। मैंने कहा, जनता तो निरस्त्र है ही, वह बिलकुल अहिसात्मक रहेगी, जो कुछ होगा आपकी ओर से ही होगा। उन्होंने विश्वास दिलाया, वह ऐसा नही होने देगे; परन्तु भय इस बात का प्रकट किया कि बहुत भीड़ जमा हो जाने पर कही किसी दल को किसी आदमी ने कुछ बेतुकी बात कह दी अथवा बदतमीजी कर दी तो उसका असर सारी जनता पर पड़ जाता है—उसे कोई रोक नही सकता; इसलिए भीड़ इकट्ठी होने मे ही खतरा है। मैंने साफ-साफ कह दिया कि यह तो नही रुक सकता। उनके पूछने पर मैंने यह भी कह दिया कि शायद दस हजार आदमी आ जायं। यह संख्या मैंने डरते-डरते कम करके कही; क्योंकि उस दिसम्बर के जाड़े में सवेरे साढे छः बजे गाडी पहुचनी थी। मुझे भय था कि शहर के लोग उस समय बड़ी संख्या मे जमा न हो सकेंगे। अन्त मे उन्होने कहा कि भीड़ अगर आवेगी ही तो क्या कोई ऐसा उपाय नही हो सकता कि दोनो दलो के आदमी एक साथ न हो, अलग-अलग रहे। मैंने इसे खुशी से स्वीकार कर लिया और कह दिया कि सड़क के एक ओर स्वागत करने-वाले रहें और दूसरी ओर विरोधी लोग। इसको उन्होंने बहुत पसन्द किया और मैंने भी—विशेषकर इस कारण से कि इस तरह यह बात भी साफ हो

जायगी कि स्वागत करनेवाले कितने कम और विरोधी कितने ज्यादा हैं। बात तय हो गई। मैंने कह दिया कि हमारा कोई आदमी काठ के बने बाघ के बाहर नहीं जायगा—हम शहर की ओर सड़क मे उत्तर और दूसरे पक्ष के लोग सड़क से दक्खिन, रेलवे लाइन के पास, रहेंगे।

दूसरे दिन प्रायः तीन बजे रात को ही हम लोग उठे। सारे शहर मे प्रभातफेरी लगने लगी। भीड स्टेशन की तरफ उमड़ चली। छ बजते-बजते प्रायः पच्चीस-तीस हजार लोगों की भीड हम लोगों के अहाते मे आ गई। उधर तो कुछ लोग मोटर पर सवार होकर आये, कुछ लारियां शहर मे लोगो को जुटाकर लाने के लिए घूमती रहीं, पर शायद ही डेढ-दो सौ आदमी उधर के अहाते मे होंगे, जिनमे अधिकांश सरकारी नौकर और उनके चपरासी वगैरह थे। ऐसा भी देखा गया कि कुछ लोग उनकी लारी पर चढकर आये और उस अहाते मे गये, पर जब उनको यह मालूम हुआ कि वह स्वागत करनेवालो का दल है और विरोधी दल सड़क के उस पार है, तो वहा से सीधे निकलकर इधर चले आये। मै वहा अपने आदमियों के सामने, जिनको लकडी के कठघरे से दो हाथ अलग ही रखा था, टहल रहा था। वहा मिस्टर स्वेन से मुलाकात हुई। उन्होंने इस इन्तजाम पर सन्तोष प्रकट किया और बधाई दी। मैंने उनसे पूछा कि मेरा दस हजार आदमियो के आने का वादा पूरा हुआ या नहीं। उन्होंने कहा, उससे कहीं अधिक आदमी है। जब मैंने उनकी इस राय को—कि दोनो पक्ष के लोग दो तरफ रहें—मान लेने का कारण बताया, तो वह बहुत हँसे। इस तरह बहुत ही खूबी और शान्ति के साथ प्रदर्शन हुआ। काला झडा दिखलाने और 'साइमन-गो-बैक' के नारे के सिवा दूसरा कुछ नहीं हुआ।

इस प्रदर्शन मे सूबे-भर के कांग्रेसी लोग बडी संख्या मे शरीक हुए थे। जब वे अपने-अपने स्थान को गये तो इस उत्साहपूर्ण प्रदर्शन की कथा साथ लेते गये। इससे सारे सूबे मे उत्साह उमड उठा। कुछ दिनों तक तो जहा-तहा सडको पर, योंही बिना समझे, छोटे-छोटे बच्चे भी 'साइमन-गो-बैक' चिल्लाया करते! इन और इस प्रकार के कारणों से देश मे नई जागृति के लक्षण दीखने लगे थे। ऐसा मालूम होने लगा कि १९२१ के दिन फिर लौटेंगे। इसी बीच कलकत्ते मे कांग्रेस का अधिवेशन और सर्वदल-सम्मेलन होने के दिन आ गये। सर्वदल-सम्मेलन के सभापति डाक्टर अंसारी थे और कांग्रेस के पंडित मोतीलाल नेहरू।

: ७८ :

कलकत्ता-कांग्रेस और सर्वदल-सम्मेलन

मैं सर्वदल-सम्मेलन मे शरीक तो हुआ; पर पहले से सभी बातों को जानता नही था, इसलिए कुछ विशेष वहां करता न था। एक रात, मुझे स्मरण है, हिन्दू-मुस्लिम समस्या के कुछ प्रश्नो पर बाते होने लगी। यह पूरा सम्मेलन नही था, कुछ मुख्य-मुख्य लोग इसमे थे। वहा मिस्टर जिन्ना ने, जहांतक मुझे याद है, दो बातो पर बहुत जोर दिया। वह चाहते थे कि केन्द्रीय असेम्बली मे मुसलमानो के लिए एक-तिहाई जगहें सुरक्षित रहनी चाहिए और सूबों को उन सभी विषयो पर अधिकार मिलना चाहिए जो केन्द्रीय गवर्नमेण्ट को साफ तौर पर विधान में दे दिये गए हों। मुझे याद है कि इन बातो पर बहुत रात तक बहस चलती रही। पर लोगो ने इसे स्वीकार नही किया। विरोधियो मे सबसे जबरदस्त श्री जयकर मालूम होते थे। उनके साथ हिन्दू-सभावाले लोग थे, पर बोलनेवाले वही एक थे। अन्त मे यह बात तय न हो पाई। सम्मेलन ने यह नीति रखी थी कि जिस विषय पर सबकी राय न हो उसके सम्बन्ध मे नोट कर लिया जाय कि इस विषय मे किसकी क्या राय है। खुले सम्मेलन मे मौलाना मुहम्मद अली ने भी कुछ संशोधन पेश किये, जिनको लोगो ने बहुमत से नामजूर कर दिया। सम्मेलन ने उपर्युक्त तरीके से अपना काम तो समाप्त किया; पर यह जाहिर हो गया कि मुसलमानों के साथ बात नही पटी। इसीका नतीजा हुआ कि इस सम्मेलन के समाप्त होते ही मुसलमानों का भी एक सर्वदल-सम्मेलन हुआ, जिसमे अनेकानेक कांग्रेसी मुसलमान भी जा मिले। उनमे मुख्य अली बन्धु-द्वय, मौलवी मुहम्मद शफी प्रभृति थे। यहां से साफ-साफ मुसलमानों का एक प्रभावशाली दल कांग्रेस से अलग हो गया। इस प्रकार, जिस समस्या के हल के लिए यह सम्मेलन हुआ था, वह अधिक जटिल हो गई, जिसका बुरा नतीजा आगे और देखने में आया। मिस्टर जिन्ना ने इसके बाद ही मुसलमानों की ओर से अपनी चौदह मांगें पेश की, जिनकी मंजूरी को उन्होंने किसी भी समझौते के लिए अनिवार्य बतलाया।

उधर कांग्रेस में नेहरू-रिपोर्ट को लेकर स्वराज्य की परिभाषा के सम्बन्ध में बहुत मतभेद था। पहले कहा जा चुका है कि पं० जवाहरलाल,

सुभाषबाबू, श्री अय्यंगर प्रभृति पूर्ण स्वराज्य को ही कांग्रेस का ध्येय स्वीकार कराना चाहते थे। दूसरे लोग केवल 'स्वराज्य' शब्द से ही सन्तुष्ट थे और सोचते थे कि यह शब्द हमें इस बात के लिए पूरा मौका देता है कि जब समय आयेगा तब हम निश्चय कर सकेंगे कि हम औपनिवेशिक स्वराज्य से सन्तुष्ट रहेंगे अथवा पूर्ण स्वतन्त्रता ही लेंगे। नेहरू-रिपोर्ट औपनिवेशिक स्वराज्य को ही ध्येय मानकर तैयार की गई थी। दूसरा कुछ हो भी नहीं सकता था; क्योंकि उसके तैयार करने मे नरम दल के लोगों का—विशेष कर सर तेजबहादुर सप्रू प्रभृति का—पूरा हाथ था। यदि वह न मानी जाती तो शायद वह योजना तैयार होकर एक सर्व-दल-सम्मेलन के सामने तक पहुंच नहीं पाती। इसलिए, यदि कांग्रेस उस मौलिक भित्ति को ही अपने प्रस्ताव मे बदल देती, तो नेहरू-रिपोर्ट उस हद तक भी सर्वमान्य होती, जिस हद तक उसे सर्व-दल-सम्मेलन ने स्वीकृत किया था। कांग्रेस की विषय-निर्धारिणी समिति मे इस विषय पर बहुत बहस हुई। महात्माजी का विचार था कि नेहरू-रिपोर्ट मंजूर की जाय। पर गांधीजी हमेशा अपने विचार के विरोधियों के साथ राय कर लेने के लिए तैयार रहते हैं। अन्त मे उन्होंने पूर्ण स्वराज्य के समर्थकों के साथ, जिनके मुखियों के नाम मैं ऊपर दे चुका हूं, यह समझौता कर लिया कि एक बरस तक कांग्रेस का ध्येय जैसा है वैसा ही रहे—यदि ब्रिटिश गवर्नमेंट इस वर्ष के भीतर नेहरू-रिपोर्ट को मान लेती है और हिन्दुस्तान को औपनिवेशिक स्वराज्य दे देती है तो ठीक, नहीं तो एक बरस के बाद कांग्रेस पूर्ण स्वतन्त्रता को ही अपना ध्येय मान लेगी और उसीके लिए काम करेगी, अर्थात् एक बरस के भीतर मिल जाय तो हम औपनिवेशिक स्वराज्य से ही सन्तुष्ट होंगे, नहीं तो फिर औपनिवेशिक स्वराज्य की बात ही न रहेगी, कांग्रेस पूर्ण स्वतन्त्रता पर ही अड़ी रहेगी। यह तय हो जाने पर हम सबने समझा कि अब मामला तय हो जायगा। पर दूसरे दिन सुभाषबाबू की ओर से मालूम हुआ कि वह इस समझौते को नहीं मानते। इससे महात्माजी को बहुत दुख हुआ; क्योंकि पूर्व रात्रि मे सुभाषबाबू ने उसे मान लिया था। मालूम होता है कि उनके साथियों और अनुयायियों ने इसे पसन्द ही नहीं किया, इसलिए वह फिर मुकर गये। प० जवाहरलाल और श्री श्रीनिवास अय्यंगर, चाहे वे पसन्द न भी करते हों, समझौते पर अड़े रहे। महात्माजी ने इस बात की कड़ी आलोचना की। अन्त मे महात्माजी ने उस समझौते के प्रस्ताव को पेश किया और वह स्वीकृत हो गया।

इस कांग्रेस की विषय-निर्वाचिनी में और विषयों पर भी मतभेद रहा। ऐसा मालूम होता था कि कुछ लोग गांधीजी की नीति से सन्तुष्ट नहीं हैं—

जैसे कुछ कम्युनिस्ट लोग, जिनमें मुख्य थे श्री निम्बकर और श्री मोगलेकर, जो अखिल भारतीय कमिटी मे बहुत बोला करते थे। इस काग्रेस में एक विशेष घटना यह हुई कि कलकत्ते के मजदूरो का एक बहुत बड़ा दल, प्रदर्शन करने के लिए जुलूस बनाकर कांग्रेस-नगर तक पहुंचा। वह काग्रेस-पंडाल में जाना चाहता था। कुछ लोगो का अनुमान था कि उनका इरादा पहले से ही पडाल मे जाकर बैठने का था, ताकि अधिवेशन के समय वे वहा से हटें नही और इस तरह सब काम तितर-बितर कर दे। पर शायद ऐसी उनकी इच्छा नही थी; क्योकि महात्माजी ने आकर उनसे कुछ कहा और वे लौटकर चले गये। इस कांग्रेस की स्वागत-समिति से बिहार के लोगो का कुछ मतभेद, प्रबन्ध के सम्बन्ध में, हो गया। बिहार के सभी प्रतिनिधियो ने कांग्रेस मे जाने से इन्कार कर दिया। सुभाषबाबू को यह खबर मिली। वह स्वय आये। उन्होने शिकायत को दूर कर देने का वचन दिया। तब लोग कांग्रेस के अधिवेशन मे शरीक हुए।

कलकत्ता-काग्रेस का अधिवेशन एक प्रकार मे बड़े महत्व का हुआ। पूर्ण स्वतन्त्रता का ध्येय इसीने एक तरह से स्वीकार कर लिया; क्योकि इसीने निश्चय किया कि औपनिवेशिक स्वराज्य से काग्रेस एक बरस के बाद कदापि सन्तुष्ट न होगी। हो सकता है कि काग्रेस में बहुत लोग ऐसे भी हों, जो समझते हों कि यह प्रस्ताव मान तो लिया गया; पर एक बरस बाद फिर देखा जायगा। किंतु गाधीजी काग्रेस के प्रस्तावो को बहुत महत्व देते है—विशेषकर उस हालत मे जब उनमे कोई वादा या प्रतिज्ञा की गई हो। इसलिए, उन्होने तो मान लिया कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट को १९२९ के ३१ दिसम्बर के पहले ही कुछ करके तय कर लेना चाहिए, नही तो अगले अधिवेशन मे कांग्रेस को पूर्ण स्वराज्य अपना ध्येय बना लेना ही पड़ेगा।

मैं इस विषय मे दुविधा मे था। ब्रिटिश विधान का मै पक्षपाती था। मैं मानता था कि उपनिवेशो को अपने कारबार चलाने की पूरी स्वतन्त्रता है। इसलिए, यदि हमको भी वह स्वतन्त्रता मिल जाय तो हमारे लिए वही काफी समझना चाहिए। पूर्ण स्वतन्त्रता तो गौरव का विषय अवश्य है; पर अन्त मे दुनिया की जातियो और देशो के बीच किसी-न-किसी प्रकार का ऐसा समझौता जरूर करना पड़ेगा, जिसमे वे एक-दूसरे के साथ बंधी रहें। यदि ऐसा न हुआ तो लड़ाइयां होती रहेगी। ब्रिटिश साम्राज्य दुनिया के कई देशों के लोगों का उस प्रकार का एक सगठन है ही, उसमे शरीक रहने में हमारी कोई हानि नहीं है, बल्कि कई बातों की सुविधा ही है। इसके अलावा हम अभी इतने संगठित भी नही हैं कि हम ब्रिटिश सरकार को मजबूर करके पूर्ण स्वतन्त्रता ले सकें। इन्ही कारणों से मैंने मद्रास-कांग्रेस में

पूर्ण स्वराज्य-सम्बन्धी प्रस्ताव का विरोध किया था। मुझे कभी-कभी ठेस भी लगा करती थी, जिससे ऊबकर मैं कभी-कभी पूर्ण स्वराज्य की बात भी किया करता था। पर वह ठेस ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेशों का हिंदुस्तानियों के साथ व्यवहार से लगा करती थी—विशेषतः दक्षिण अफ्रिका मे हिन्दुस्तानियों के साथ जो व्यवहार हुआ करता था, उससे मैं इतना घबराता था कि कभी-कभी तो मै यह भी सोचता कि ऐसे साम्राज्य के साथ सम्बन्ध रखने से ही हमको क्या लाभ, जिसके किसी भी भाग मे हमारे देशी भाइयों के साथ ऐसा बुरा व्यवहार हो सकता है। फिर मैं सोचता कि जबतक हमको वही अधिकार और स्थान प्राप्त नही है, जो उन उपनिवेशो को है, तभीतक ऐसा होता है, जब हमको भी वैसा ही मिल जायगा तब ऐसी बात न हो सकेगी। इस प्रकार से मै अपने दिल को सन्तोष भी दिया करता था!

इसी तरह की उधेड़-बुन मेरे दिल मे हुआ करती थी। मै इसी खयाल से, विशेषकर उपनिवेशो के विधान और अधिकारो के सम्बन्ध मे जानकारी हासिल करने के लिए, प्रोफेसर कीथ के ग्रथो को पढा करता। १९२६ मे जो इम्पीरियल कान्फ्रेंस के निश्चय हुए, उन्हे भी मैंने देखा था। सब बातो पर सोच-विचार करने के बाद, बावजूद उन ठेसो के, मैं उस समय तक औपनिवेशिक स्वराज्य से ही सन्तुष्ट था और पूर्ण स्वराज्य को कांग्रेस का ध्येय मानना अपने रास्ते की कठिनाइया बढा लेना समझता था। मै उस समय प० जवाहरलाल के इस कथन को ठीक नही समझता था कि हमारी बात विदेश के लोग नही समझ सकते; क्योकि औपनिवेशिक स्वराज्य तो अंगरेजों ने अपनी जाति और अपने देश के लोगो को ही दिया, जिनके साथ उनके हजारों प्रकार के सास्कृतिक और सामाजिक तथा धार्मिक सम्बन्ध थे; परन्तु हमारे साथ तो उनका उस तरह का एक भी सम्बन्ध नही है; ऐसी अवस्था में न तो वे हमे दे सकेंगे और न हम उसे लेकर सन्तुष्ट हो सकेंगे। मेरे दिल पर स्वर्गीय गोखले की वह बात इस प्रकार जम गई थी, जिसे मैं सहसा हटा नही सकता था। जब १९१० मे उन्होंने मुझे सर्वेट्स आफ इण्डिया सोसाइटी में शरीक होने के लिए कहा था, तभी उन्होंने यह भी कहा था कि ब्रिटिश साम्राज्य का जो चित्र हम अपने सामने रखते है वह तो यह है कि जितने लोग इसके अन्दर है सभी बराबरी का दर्जा पायंगे और सभी मिलकर इसका प्रबन्ध करेंगे, इसलिए जब वह समय आ जायगा तब साम्राज्य रह ही नही जायगा और अगर रहा भी तो अपनी बहुल संख्या के कारण भारतीय इसको अपना साम्राज्य बना लेंगे। मैं यही सोचता था कि सचमुच हमको भी यदि वही स्थान और अधिकार मिल जायंगे, जो

इंग्लैंड और दूसरे उपनिवेशों को मिले हैं, तो वास्तव में हमें इससे अधिक की आवश्यकता न होगी। जो हो, कलकत्ते में कांग्रेस ने निश्चय कर लिया कि १९२९ के अन्दर ही औपनिवेशिक स्वराज्य होना चाहिए।

: ७९ :

एक दुखद घटना

देश मे नई जागृति के चिह्न दीखने लगे थे। कलकत्ते से लौटकर गांधीजी ने भी काग्रेस के काम मे बहुत अधिक मनोयोग देना शुरू किया। १९२९ के अन्दर और भी घटनाए हुई, जिनके फलस्वरूप जागृति बहुत बढ गई। गाधीजी का विचार हमेशा यह था कि हमारे देश की गरीबी के कारणो मे एक मुख्य कारण यह है कि इस देश से कपड़े का व्यवसाय अंग-रेजो ने उठा लिया है, जिसका फल यह हुआ है कि चर्खे-करघे बन्द हो गये और करोडों गरीबो की रोजी का जरिया उनके हाथों से छिन गया। इस-लिए, वह चर्खे को फिर जिलाना चाहते थे। खादी-सम्बन्धी सारी प्रवृत्ति इसी कारण प्रेरित की जा रही थी। वह चाहते थे कि भारत मे एक सूत भी विदेशी न आवे। वह इस वस्त्र-व्यवसाय को जगाना चाहते थे, जिसमें फिर गरीबो की वह रोजी लौट आवे। इसके लिए वह हर तरह के विदेशी कपड़ो का भारत मे आना बन्द करना चाहते थे, केवल इंगलैंड के ही कपड़े का नही। दूसरे लोग विदेशी कपड़े के बहिष्कार का अर्थ अक्सर अगरेजी कपड़े का ही बहिष्कार मान लिया करते थे। उन लोगो की इसमे विशेष दिलचस्पी नही थी कि भारत मे यह व्यापार गाव-गांव में फिर से जारी हो जाय। वे इतने से ही सन्तुष्ट हो जाते कि सिर्फ अंगरेजी कपडा न आवे। वे यह मानते थे कि केवल अगरेजो के साथ हमारा झगडा है, इसलिए उनके ही देश के सामान का हम बहिष्कार करे और इस तरह उनपर जोर डालें तथा अपनी माग मानने के लिए उन्हे मजबूर करे। गांधीजी इस प्रकार के बहिष्कार को हिंसामूलक समझते थे और बराबर इसे रोकते थे। कलकत्ता-कांग्रेस के बाद स्वदेशी की लहर एक बार और चली। गांधीजी ने उसे केवल ब्रिटिश-माल-बहिष्कार का रूप न देकर विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार का रूप दे दिया। वह केवल बहिष्कार से ही सन्तुष्ट न थे। उसके साथ-साथ वह चर्खा-प्रचार भी उतना ही आवश्यक समझते थे। चर्खा-प्रचार का काम तो चर्खा-संघ कर रहा था। विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार के लिए एक कमिटी बनाई गई, जो इसके लिए बहुत जोरों से प्रचार करने लगी। १९२९ का साल इसी काम में लगा। जो कुछ भी जागृति हुई, उससे इसको लाभ पहुंचा

और इसका असर उस जागृति पर पड़ा।

गांधीजी ने कई जगहों पर विदेशी वस्त्रों को जलवाया, जिससे जनता में अधिक उत्साह बढ़ने लगा। कलकत्ते में वह एक दिन के लिए आये। बरमा जा रहे थे, रास्ते मे ठहर गये। वहापर लोगों ने सार्वजनिक सभा की। उसमें विदेशी वस्त्र जलाने का भी प्रबन्ध किया। विदेशी वस्त्र जलाये गए। पर पुलिस ने इसके पहले ही किसी भी स्क्वायर मे इस तरह की कार्रवाई करने की मनाही कर दी थी। सभा हो गई। कपड़े जला भी दिये गए। हम सब वहा से चले भी आये। तब पुलिस ने आकर आग बुझा दी। जो लोग वहा रह गये थे, उन्हें तितर-बितर कर दिया। दूसरे दिन महात्माजी पर मुकदमा चला, जिसकी सुनवाई प्रेसिडेन्सी मजिस्ट्रेट के सामने हुई। गाधीजी तो कुछ बोलना नही चाहते थे, पर वकीलो ने बहुत बहस की कि यह कार्रवाई गैरकानूनी थी और जिस कानून के आधार पर यह मुकदमा जारी हुआ था, वह लागू नही था। पर मिस्टर रौक्सबरा ने फैसला खिलाफ दिया। गाधीजी पर एक रुपया उदूल-हुक्मी के लिए जुर्माना किया। गांधीजी रंगून चले गये थे। वहा से उनके लौटने के बाद ही इसका निपटारा हुआ।

इसी समय, कलकत्ते मे गाधीजी के रहते-रहते एक और बात हुई, जिसके साथ मेरा निजी सम्बन्ध था। घटना दुःखद है। १९२१ मे ही खादी प्रचार का काम आरम्भ किया गया था। हमारे सूबे में श्री रामविनोदसिंह ने बहुत उत्साह और योग्यता के साथ इसको शुरू किया था। उनकी सफलता और कार्य-कुशलता से प्रभावित होकर उन्हें तिलक-स्वराज्य-फड मे पच्चीस हजार ऋण दिया गया था, जिससे उन्होंने खादी के काम को बहुत आगे बढ़ाया था। पर अपने साथियों से उनका मतभेद हो गया; क्योंकि उनके विचार से यह संस्था रामविनोदबाबू ने अब अपनी निजी सम्पत्ति बना ली थी। ऋण के लिए सिफारिश करनेवाले आचार्य कृपालानी भी इसी निश्चय पर पहुंच गये थे। वह भी जोर लगा रहे थे कि चर्खा-संघ उनसे रुपये वापस ले ले। बिहार-शाखा का एजेण्ट होने के कारण यह भार मेरे सिर पर आ जाता था। चर्खा-सघ के प्रान्तीय मंत्री श्री लक्ष्मीनारायण ने, चर्खा-सघ के निश्चय के अनुसार, रुपयों का हिसाब मांगा। हिसाब में उनके और रामविनोदबाबू के बीच मतभेद हो गया। बात गांधीजी तक पहुंची। उन्होंने आज्ञा दी कि श्री सतीशचन्द्र दास गुप्त इस बात की जांच करके रिपोर्ट करें।

सतीशबाबू ने कलकत्ते में ही जांच की। लक्ष्मीबाबू वगैरह वहीं सब कागज-पत्र लेकर गये थे। मैं भी था। मैं इस जांच में शरीक नहीं हुआ था; पर उनकी रिपोर्ट से मुझे दुख हुआ। रुपये तो कम या बेश जो कुछ बाकी

हों, श्री रामविनोदसिंह से बिहार-चर्खा-संघ को ही पाना था। पर उन्होंने रिपोर्ट में बिहार-शाखा की अयोग्यता की शिकायत की। हिसाब भी जैसा रामविनोदबाबू कहते थे वैसा ही स्वीकार किया। मैंने उसे देखा तो मुझे बहुत बुरा लगा—इसलिए नहीं कि बिहार-शाखा के विरुद्ध फैसला था, बल्कि इसलिए कि उन्होंने अपने अधिकार की सीमा से बाहर जाकर बिहार-शाखा को अकुशल और अव्यावहारिक ठहराया था। मैंने महात्माजी से कहा कि मैं इस फैसले से बहुत असन्तुष्ट हूं। आपको स्वयं हिसाब देखना-समझना होगा; क्योंकि एक ओर सार्वजनिक संस्था है, जिसके संचालन का काम कई त्यागी और सच्चे सेवक बहुत उत्साह और परिश्रम के साथ कर रहे हैं तथा दूसरी ओर एक कार्यकर्ता है, जो व्यवहार-कुशल है और जिन्होंने खादी-प्रचार का बहुत काम भी किया है, पर जिनके विरुद्ध शिकायत है कि वह सार्वजनिक संस्था के धन द्वारा बनी-बनाई संस्था को अपनी निजी सम्पत्ति मान बैठे हैं—इसमें भी कोई हर्ज नहीं, क्योंकि उन्होंने परिश्रम और समय लगाया है, पर चर्खा-संघ के रुपये तो ठीक वापस मिल जाने चाहिए।

बरमा से गांधीजी के लौटने पर, कलकत्ते में, जब सब बातें उनके सामने पेश की गईं तब उन्होंने सबकुछ स्वयं देखने का वचन दिया। बात बहुत दिनों तक चलती रही। हिसाब की जांच के लिए महात्माजी ने श्री नारायणदास गांधी को तैनात किया। अन्त में, जो हिसाब चर्खा-संघ की ओर से पेश किया गया था, उसे ही श्री नारायणदास ने ठीक समझा। गांधीजी ने रामविनोदबाबू से कहा कि इसमें यदि भूल है तो हमको समझाओ। इसके लिए दिन भी नियत किया गया। पर बात आगे बढ़ी नहीं, वहीं-की-वहीं रह गई। हां, गांधीजी ने समझ लिया कि हमने जो बात कही थी, वही ठीक है।

इस घटना को मैं दुःखद इसलिए मानता हूं कि इसके चलते रामविनोदबाबू और श्री सतीशचन्द्र दास गुप्त के सम्बन्ध में यहां कुछ लिखना पड़ा। इससे भी अधिक दुःख मुझे उस समय की सारी बातों से हुआ था। सार्वजनिक जीवन में हमें इस तरह अनेक बार ऐसे काम करने पड़ते हैं, जिनको हम व्यक्तिगत हैसियत से करना पसन्द नहीं करते, पर जिन्हें कर्तव्य के अनुरोध से तो अप्रिय होने पर भी करना ही पड़ता है। श्री रामविनोदसिंह को मैं उस समय से जानता हूं जब वह भागलपुर-कालेज में पढ़ते थे और प्रथम जर्मन-युद्ध के समय नजरबन्द किये गए थे। उस समय की मुलाकात गांधीजी के चम्पारन आने पर, अधिक गहरी हो गई। असहयोग-आन्दोलन में, विशेषकर खादी को लेकर, उनसे मेरा सम्पर्क ही नहीं बढ़ा, बल्कि उनकी कार्य-कुशलता में मेरा विश्वास भी और बढ़ गया। ऐसे व्यक्ति के

सम्बन्ध में कुछ भी कहना पड़े तो वह दुखद होता ही है। सतीशबाबू के लिए मेरे हृदय में जो श्रद्धा और प्रेम है, वह मैं कहना नही चाहता। उनकी कार्य-क्षमता और उनका त्याग अतुलनीय है। उनकी भी कृपा मेरे ऊपर रहती है। इसलिए यह दुर्घटना स्वभावतः मेरे लिए बहुत दुखद हुई थी।

: ८० :

राजबन्दियों का वर्गीकरण

१९२९ मे एक बहुत मशहूर षडयंत्र का मुकदमा, 'लाहौर-कौन्सपिरेसी केस' के नाम से, लाहौर में चला। इसके अभियुक्त थे सरदार भगतसिंह। मुकदमा बहुत दिनों तक चला। मुजरिम लोगों ने जेल के अन्दर, असुविधाओं के विरुद्ध, अनशन कर दिया। अनशन कई दिनों तक चला। अनशन करनेवालो मे से एक नवयुवक श्री यतीन्द्रनाथ दास, साठ दिनों के बाद, शहीद हो गये। इस मुकदमे की खबरें अखबारों मे छपा करती। अनशन की खबरें भी लोग पढा करते। सारे देश मे काफी सनसनी थी। जब श्री यतीन्द्रनाथ की मृत्यु हो गई, यह सनसनी और भी ज्यादा बढ गई। उनके शव को गवर्नमेण्ट ने उनके मित्रो को दे दिया। वह रेल पर बड़े सम्मान के साथ लाहौर से कलकत्ते लाया गया। जिन शहरो से होकर वह गाडी आई, उनके स्टेशनों पर बडी भीड लगी। लोगो ने शव पर पुष्प-हार चढाये तथा दूसरे प्रकार से भी उसकी प्रतिष्ठा की। जो जागृति कुछ पहले से ही हो रही थी वह और भी अधिक हो गई। सारे देश मे बड़ा उत्साह उमड़ आया। श्री यतीन्द्रनाथ की मृत्यु का एक फल यह भी हुआ कि गवर्नमेण्ट ने कैदियो का—उनके रहन-सहन, शिक्षा इत्यादि के हिसाब से—तीन भागों मे वर्गीकरण कर दिया। यह तुरन्त तो न हो पाया, पर जब १९३० मे सत्याग्रह हुआ तो सत्याग्रही कैदी भी तीन वर्गों मे बाटे गये। थोड़े लोगो को ए क्लास मिला, उनसे कुछ अधिक को बी० क्लास और बहुत बडी संख्या सी क्लास में ही रखी गई। गवर्नमेण्ट ने इस बात को मजूर नही किया कि राजनैतिक कैदियो का एक अलग वर्ग या क्लास होना चाहिए।

जिस तरह का वर्गीकरण गवर्नमेण्ट ने किया वह हमारे लिए हानिकारक है। यह सच है कि जो आदमी अपने घर पर बहुत आराम से रहता आया है, वह जेल में भी उसी तरह से रखा जाय, वही भोजन उसे दिया जाय, वही कपड़े उसे पहनाये जायं, जो मजदूरी करनेवाले गरीबों को मिलते हैं, तो उसकी सजा उसके लिए कही अधिक कष्टकर हो जाती है। और, यदि कानून की मन्शा जुर्म के लिए सबको समान दण्ड देना है तो इस तरह उसकी सजा यही अधिक हो जाती है। यही कहकर तीन विभागों में कैदी

बाटे गये। परन्तु, जो लोग एक साथ काम कर रहे है और एक ही काम में लगे हुए हैं, वे जेल के भीतर जाने पर यदि एक-दूसरे से अलग कर दिये जायं—इधर कुछको सोने के लिए चारपाई मिले, भोजन में थोड़ा दूध-घी भी रहे, चिट्ठी लिखने और मुलाकात करने की सुविधाएं भी अधिक हो, और उधर अधिकाश को मिला करे लोहे के तसले मे मोटे चावल का भात, लोहे के बर्तन मे बनने के कारण अधिक पानीवाली काली दाल, नाममात्र की तरकारी, पहनने के लिए छोटा जांघिया, अधबहिया कुर्ता तथा उनके साथ जेल के अधिकारियों का बर्ताव भी उन कैदियों के समान ही हो, जो चोरी इत्यादि के लिए जेल में बन्द हों, तो उन अधिकांशों के मन में असन्तोष पैदा होना स्वाभाविक है। मालूम नहीं, गवर्नमेण्ट ने किस नीयत से इस प्रकार का वर्गीकरण किया है।

राजनैतिक कैदियों का एक ही वर्ग हो, जो सुविधा ए अथवा बी वर्ग को मिलती है, उससे उन्हे कम भी मिले; पर बर्ताव सबके साथ समान हो—इसके लिए की गई आजतक की सभी कोशिशें निष्फल हुई हैं। गवर्नमेण्ट अपनी सुविधा के लिए राजनैतिक कैदियो को एक प्रकार से अलग करती है; पर यह कहने पर कि वे अलग समझे जायं और उनके साथ भिन्न व्यवहार हो, हमेशा यह कह दिया जाता है कि गवर्नमेण्ट राजनैतिक तथा अन्य कैदियों मे कोई फर्क नही समझती। बिहार-प्रान्त मे, १९३० के आन्दोलन मे बारह से चौदह हजार तक, सत्याग्रह के कारण राजनैतिक कैदी हुए। पर इनमे बीस से अधिक को ए क्लास नही मिला। बी क्लास वालो की संख्या तीन से चारसौ तक होगी, इससे अधिक नही। बाकी सबके-सब सी क्लास में रखे गये। वर्गीकरण भी जिला-मजिस्ट्रेट या किसी दूसरे अधिकारी की इच्छा के अनुसार ही हुआ करता था। सेठ जमनालाल बजाज का लड़का सी क्लास में रखा गया। एक ही घर का एक भाई ए या बी मे रखा गया और दूसरा सी मे। इस तरह की गड़बड़ी बहुत रही। इसके अलावा, बिहार मे सी क्लासवालों की एक बड़ी—यानी चार-पाच हजार की—जमायत पटना-कैम्प-जेल मे रखी गई। यह जेलखाना खुले मैदान मे, जहां कोई वृक्ष नहीं, टिन की दीवारो और छप्परो का बना था। बरसात में, जमीन नीची होने के कारण, नीचे के फर्श में नमी या सील हो जाती थी। गरमी में टिन के दीवार-छप्पर तप जाते थे। मारे गरमी के लोग परेशान हो छटपटा जाते थे। सर्दी में टिन बाहर की सर्दी को रोक नहीं सकता था। कभी-कभी तो हवा की नमी टिन में लगकर पानी हो जाती और बिना बरसात के ही वर्षा होने लगती। कैदियों के कष्टों का कुछ ठिकाना न था। इन सबका नतीजा यह हुआ कि सी क्लासवालों में

बहुत असन्तोष पैदा हुआ। असन्तोष का कुछ हिस्सा उनके प्रति भी था जिनको ए या बी क्लास मिला था। मनुष्य में मामूली तौर पर डाह की कुछ मात्रा होती ही है। कुछ लोग इसके शिकार हो ही गये, यद्यपि इस वर्गीकरण में ए-बी क्लासवालों का कोई दोष नही था।

हां, ऐसा भी कही-कही हुआ होगा कि कोशिश-पैरवी कराकर लोगों ने ए या बी क्लास लिया हो, यद्यपि ऐसे लोगों की संख्या थोड़ी ही होगी। ऐसा भी किसीने नही किया कि वह अपना ए या बी क्लास छोड दे और दरखास्त देकर सी क्लास करा ले। कही-कहीं कुछ ए या बी क्लास-वालो ने अपना खाना छोडकर कुछ दिनो तक सी क्लास का भोजन लिया; पर यह बहुत दिन तक नही चला। इसमे कोई शक नही कि इस प्रकार के वर्गीकरण से काग्रेसी कार्यकर्ताओ मे कुछ मनोमालिन्य बढा; पर ऐसा न समझना चाहिए कि यह मनमुटाव बहुत बडे पैमाने पर हुआ। सी क्लास-वालों मे अधिक-से-अधिक संख्या ऐसे लोगो की ही रही, जिनमें इतनी उदा-रता थी कि उन्होंने खुद समझा और दूसरो को भी समझाया कि वर्गीकरण मे हम लोगों का हाथ नही है—जो जेलखाने भेजता है, वह जिसे जहा भेजता है, जिसे जिस तरह रखना चाहता है, उसे वहा जाना पड़ता है और वैसे रहना पडता है। एक ही कसूर के लिए अगर एक आदमी को तीन महीनों की और दूसरे साथी को तीन साल की कैद मिलती है, तो जिस तरह इसके लिए तीन महीनेवाले की शिकायत नही की जा सकती, उसी तरह ए बी क्लासवाले की शिकायत भी बेजा है। यह सब होते हुए भी, कुछ लोगों के दिल मे तो वर्गीकरण के कारण दूसरों के प्रति अश्रद्धा हो ही गई।

गांधीजी का विचार हमेशा रहा है कि हमें कैदी-कैदी मे फर्क नही करना चाहिए; यदि सब राजनैतिक कैदी अपना अलग वर्ग बना लेगे तो दूसरे गरीब जो जेल मे आते है, चाहे उनका जो भी कसूर हो, उसी हालत मे पडे रह जायंगे जिसमे वे अबतक रहे है; इसलिए हमको यदि आन्दोलन करना हो तो इसलिए करे कि सभी कैदियो की हालत मे सुधार हो। ठीक इसी नीति के अनुसार गाधीजी तीसरे दर्जे के डब्बे में चलते है और चाहते है कि दूसरे बड़े लोग भी चले तो रेल के तीसरे दर्जे की हालत सुधर जाय। पर काग्रेस के अन्दर भी सभी लोग इस मत के नही हैं। इसलिए अभी तक कुछ ऐसा नहीं हो पाया। जब मैं पहले जेल में गया तो मेरा विचार होता था कि इस मामले का निपटारा बाहर से अधिक सुगमतापूर्वक हो सकेगा, मै कैदियों द्वारा आन्दोलन कराना पसन्द नहीं करता था। पर अब मेरा विश्वास हो गया है कि इस सम्बन्ध में जो कुछ करे, कैदी ही कर सकते हैं—बाहर के लोग विशेष कुछ नही कर सकते। हां, यदि समझदार लोगों

के हाथों में अधिकार आ जाय तो वे शायद कुछ कर सकें। अबतक अनुभव भी यही बतलाता है कि कैदियों की हालत में जो कुछ थोड़ा-बहुत सुधार हुआ है कि वह कैदियो के आन्दोलन के कारण ही हुआ है। जो थोड़ी सुविधाएं लोगो को मिली है, वह भी श्री यतीन्द्रनाथ दास के प्राणत्याग का ही फल है।

: ८१ :

जमशेदपुर के मजदूरों की हड़ताल

बिहार मे जमशेदपुर एक बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। वहां हिन्दुस्तान का ही नही, सारे एशिया का सबसे बड़ा लोहे का कारखाना है, जो संसार के बड़े कारखानों मे भी शायद दूसरा या तीसरा स्थान रखता है। उसके साथ अनेक दूसरे कारखाने भी है, जो उसके मुकाबले में तो छोटे है; पर यदि वह न होता तो बड़े ही समझे जाते। जाहिर है कि ऐसे शहर मे मजदूरो का प्रश्न एक अत्यन्त महत्व का प्रश्न होता है। इस सूबे मे मजदूरों का संगठन एक विशेष महत्व रखता है; क्योकि यहा कोयले की खाने भी सभी सूबों से ज्यादा है। ईख के कारखाने भी, युक्तप्रान्त को छोड़कर, इसी सूबे मे सबसे अधिक है। सब सूबो से अधिक चीनी यही बनती है।

मैं स्वय मजदूरो के प्रश्न मे कभी दिलचस्पी नहीं लेता था। उसका कारण यह नही था कि मैं इसके महत्व को नही समझता था, बल्कि कारण यह था कि मेरे हाथ मे दूसरा काम इतना ज्यादा था कि इसे हाथ मे लेने की मेरी हिम्मत न पड़ती थी। कोई दूसरा भी इसे हाथ मे लेना नही चाहता था। इसका नतीजा यह हुआ कि हम इस मामले मे बहुत पीछे पड गये। जमशेदपुर, झरिया इत्यादि स्थानो मे, स्थानीय लोगो ने अथवा अन्यत्र से आकर बाहर के लोगो ने, कुछ किया। पर वह हमको सन्तोषप्रद नही प्रतीत होता था। १९२१ से ही मै जब-तब जमशेदपुर जाया करता था। कांग्रेस का प्रचार-कार्य करके चला आता। उसी तरह झरिया के साथ भी मेरा वैसा ही सम्बन्ध था। मजदूरो के सगठन को मैंने कभी अपने हाथ मे नही लिया। जमशेदपुर मे एक सघ बना था, जिसके सभापति दीनबन्धु एण्डरूज हुए थे। गाधीजी वहा गये थे। टाटा-कम्पनी के डाइरेक्टर स्वर्गीय आर० जी० टाटा आये थे। मैं भी गाधीजी के साथ था। मजदूर-संघ को श्री टाटा ने मान लिया। वह कुछ काम करता चला आया। श्री एण्डरूज वहा रहते नही थे, कभी-कभी आ जाया करते थे। इसलिए, यद्यपि उनकी सहानुभूति से लाभ तो होता तथापि संगठन उतना मजबूत नही हुआ जितना होना चाहिए।

मजदूरों की शिकायतो के कारण १९२८ में वहां हड़ताल हुई। हड़ताल

कुछ दिनों तक चली। श्री सुभाषचन्द्र बोस कलकत्ते से आये। मजदूर-संघ के वह सभापति हुए। अन्त में उन्होंने टाटा-कम्पनी के साथ समझौता किया। पर इस समय वहां मजदूरों के संगठन में एक दूसरे सज्जन दिलचस्पी लेने लग गये थे। उन्होंने इस समझौते को मंजूर नही किया। कुछ मजदूरों को लेकर उन्होने अलग संघ कायम कर लिया। श्री सुभाषचन्द्र के विरुद्ध उनकी ओर से बुरी तरह का प्रचार होने लगा। पर बात तो तय हो गई थी और सब मजदूर अब एक मत के नहीं थे, इसलिए कम्पनी को और कुछ करना नही पडा। यह सब मेरी गैरहाजिरी मे हुआ था। वहां मजदूरों में दो दल हो गये थे। उनकी संस्थाए भी दो थी। इन दोनो में आपस का मनोमालिन्य भी काफी था।

इसी समय वहां एक दूसरी कम्पनी के कारखाने मे, जिसका नाम टिन-प्लेट-कम्पनी है, हड़ताल हुई। वहा के लोगो ने भी श्री सुभाषचन्द्र बोस की मदद मांगी। वह आये। हड़ताल चली। पर कम्पनी के मालिको ने बहुत कड़ा रुख अख्तियार किया। वे किसी तरह से मजदूरों की सुनने को तैयार नहीं होते थे। सुभाषबाबू ने मुझे भी खबर देकर बुलवाया। इस हड़ताल में दिलचस्पी लेने के लिए मुझसे कहा। प्रोफेसर अब्दुल बारी वहां सुभाषबाबू की मदद कर रहे थे। मैंने भी, अपने सूबे में होने के कारण और मजदूरों की मांगों को न्याययुक्त समझकर, इस हडताल का समर्थन किया। इसके बाद उसके चलाने का प्रायः सारा भार प्रो० अब्दुल बारी और मेरे ऊपर आ गया। मै कई बार वहा गया। हड़ताल प्रायः आठ-दस महीनो तक चलती रही। मैंने गवर्नमेण्ट से इस बात की सिफारिश की कि वह यह मामला, 'ट्रेड्स डिस्प्यूट ऐक्ट' के अनुसार, पंचायत मे दे दे। पर वह इसपर राजी न हुई। तब चीफ सेक्रेटरी और गवर्नमेण्ट के मेम्बर से मैंने भेंट की। उन्होंने यही कहा कि गवर्नमेण्ट इस हडताल को गलत और अकारण समझती है; क्योंकि जमशेदपुर के मजदूरो के नेता श्री होमी भी इसके विरुद्ध हैं। यह वही सज्जन थे, जिन्होंने टाटा-कम्पनी मे सुभाषबाबू का विरोध करके दूसरी संस्था कायम कर ली थी। इस समय गवर्नमेण्ट को इनकी राय इसलिए ठीक जंची कि वह कुछ करना नहीं चाहती थी और कम्पनी की मदद करना पसन्द करती थी। जो हो, हजार कोशिश पर भी कम्पनी टस-से-मस न हुई। आठ-दस महीनो तक चलकर हड़ताल समाप्त हो गई। पर बहुतेरे मजदूर, जिन्होंने काम छोड़ दिया था, अपने काम पर वापस नहीं गये। अथवा, जो जाना भी चाहते थे, उन्हें कम्पनी ने उनकी जगह पर वापस नहीं लिया।

: ८२ :

एक घरेलू घटना और सरकारी घोषणा का अर्थ

१९२९ का मेरा अधिक समय विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार मे लगा, जिसका रचनात्मक रूप खादी की उत्पत्ति होता है। इसके अलावा जमशेदपुर के मामले ने भी कुछ समय लिया। खादी के काम की देखभाल के लिए मैं मधुबनी मे, जहा अब चर्खा-सघ का मुख्य केन्द्र और प्रान्तीय दफ्तर हो गया था, कुछ दिनो ठहरा रहा। काम को आगे बढाने के सम्बन्ध मे कार्यकर्त्ताओं से परामर्श किया। वही मुझे तार मिला कि मेरे भतीजे जनार्दन के एक पुत्र पैदा हुआ है। स्वभावतः भाईसाहब को खुशी हुई और हम सब खुश थे। पुरानी रीति के अनुसार भाईसाहब ने मित्रो के अनुरोध से इस खुशी में कुछ खर्च भी कर दिया। नाच-तमाशे के दिन तो नहीं थे; क्योंकि उन्होंने व्रत ले लिया था कि शादी-ब्याह मे भी नाच वगैरह नहीं करायगे। इसलिए, इस मौके पर भी नाच वगैरह तो नही हुए; परन्तु पूजा-पाठ हुआ। अपने नौकरो और सरोकारियों को कपड़े वगैरह उन्होंने खूब बाटे। मैं भी उत्सव मे छपरे गया। सब लोग बहुत खुशिया मना रहे थे। यहां यह सब इसलिए लिखना पडा कि इसका अन्त बहुत दुखद हुआ।

बच्चा बहुत सुन्दर और होनहार निकला। हम दोनो भाई उसे बहुत प्यार करते थे; क्योंकि उन दिनो घर मे वही एक लड़का था। १९२९ के दिसम्बर मे बीमार पडकर मै दिसम्बर और जनवरी मे अपने गाव जीरादेई मे कुछ दिनो तक रहा। बच्चा वही था। उसको खिलाने और उसके साथ खेलने का सुअवसर मिला। कलकत्ते के श्री सतीशचन्द्र मुखर्जी भी प्रायः एक महीने तक मेरे साथ वही ठहरे थे। रोज-रोज के लाड़-प्यार से लड़के के साथ बहुत स्नेह हो गया। वह जैसे-जैसे बढ़ता गया, स्नेह भी घना होता गया। पर जब वह पांच साल से कुछ अधिक का हुआ तो भाईसाहब की मृत्यु के दो महीने बाद वह भी पटने में टाइफाइड से पीड़ित हो गया। मैं पटने में ही था। यथासाध्य डाक्टरों ने उसे बचाने की चेष्टा की, पर वह सब निष्फल हुई। वह जाता रहा। अब भी जब उसकी स्मृति आ जाती है, चित्त विह्वल हो जाता है। मैं अपनेको मुश्किल से संभाल पाता हूं। इसलिए, जब १९४१ में मेरे बड़े लड़के मृत्युञ्जय के पुत्र हुआ तो मैंने सख्ती

से रोक दिया कि इसके जन्म के कारण किसी प्रकार का उत्सव न मनाया जाय। मैंने आज तक अपने दिल मे बैठे हुए इस कारण को कभी किसीसे कहा नही, आज ही पहले-पहल इसे यहा लिख रहा हूं।

इस समय हिन्दुस्तान के बड़े लाट लार्ड अर्विन थे। वह छुट्टी लेकर कुछ दिनों के लिए इंग्लेड गये। वहापर हिन्दुस्तान की परिस्थिति के सम्बन्ध में उन्होंने बाते की। इस समय वहा भी मजदूर-दल का मत्रिमंडल बना था। श्री रामजे मैकडोनल्ड प्रधान मत्री और श्री वेजवुडबेन भारत-मन्त्री थे। लार्ड अर्विन ने वहां से लौटकर ब्रिटिश सरकार की ओर से एक घोषणा की। उसमे उन्होने यह कहा कि जो घोषणाएं ब्रिटिश-सरकार की ओर से हो चुकी है, उनमे भारत के लिए औपनिवेशिक स्वराज्य निहित है। शायद उन्होंने यह भी कहा कि इस विषय पर विचार करने के लिए एक गोलमेज कान्फ्रेन्स लदन मे की जायगी। यह घोषणा यहा की परिस्थिति देखकर की गई थी। साइमन-कमीशन का बहिष्कार भारत के सभी दलों ने किया था। उसके विरुद्ध प्रदर्शनों मे लोगों पर लाठिया चली थी। देश के कई मान्य लोग भी घायल हुए थे। सारे देश मे हलचल थी। उसमे लाहौर-षडयन्त्र के अभियुक्तो की भूख-हडताल ने और भी जान डाल दी थी। विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार का प्रचार जोर पकडता जा रहा था। कलकत्ता-काग्रेस ने प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया था कि १९२९ के भीतर यदि औपनिवेशिक स्वराज्य न मिला तो काग्रेस पूर्ण स्वतन्त्रता को अपना ध्येय बना लेगी।

गवर्नमेण्ट ने शायद सोचा था कि यह घोषणा इस अशान्ति को शान्त करने मे सफल होगी। घोषणा के अर्थ के सम्बन्ध मे पत्रों मे कुछ वाद-विवाद होने लगा। नरम दलवाले कुछ सन्तुष्ट मालूम पडने लगे। पर यदि उसकी अच्छी तरह छानबीन की जाती तो सरकार की सभी घोषणाओ की तरह उसके भी कई अर्थ निकल सकते थे और गवर्नमेण्ट अपनी सुविधा के अनुसार जब जैसा चाहती उसका अर्थ वैसा निकाल सकती थी। काग्रेस के लोगो ने उसे कलकत्ता-काग्रेस की माग की पूर्ति करनेवाली घोषणा नही समझा। इसका खुलासा पीछे हुआ तो मालूम हो गया कि कांग्रेस का सन्देह बिलकुल ठीक था और दूसरो ने अपनी इच्छा के अनुसार अर्थ निकाला था, जो शब्दो से नही निकल सकता था।

ठीक लाहौर-कांग्रेस के पहले गांधीजी और पंडित मोतीलाल नेहरू लार्ड अर्विन से मिले। उन्होंने वायसराय से इसका अर्थ पूछा तो मालूम हुआ कि जो उन लोगों ने समझा था वही ठीक था, दूसरों ने मनमाना अर्थ निकाला था! अभी औपनिवेशिक स्वराज्य दूर था! जो उसे आया हुआ समझे हुए थे, उन्होंने श्री वेजवुडबेन के उस भाषण को, जिसमें उन्होंने

कहा था कि औपनिवेशिक स्वराज्य तो वास्तव में काम कर रहा है। (Dominion Status in action) वाक्चातुरी न समझकर शाब्दिक अर्थ लगाने में भूल की थी। यह हमारे लिए इस बात की एक चेतावनी निकली कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट की घोषणाओं को खूब बारीकी के साथ देखना चाहिए, उनसे मनमाना अर्थ नहीं निकालना चाहिए। इस चेतावनी के लिए हमें उनका अनुगृहीत होना चाहिए!

: ८३ :

बरमा-यात्रा

जब हम लोग बाबू हरिजी का मुकदमा समाप्त करके इंगलैंड से लौट रहे थे, बाबू हरिजी ने ख्वाहिश जाहिर की थी कि मै एक बार बरमा जाऊं और जियावाडी में जो कुछ उन्होंने किया है, उसे देखू। मेरी भी इच्छा थी कि उनकी उस कीर्ति को भी देखू और बरमा-प्रान्त मे भ्रमण भी करूं। यह ख्वाहिश १९२८ में पूरी न हुई। १९२९ मे बाबू हरिजी खुद बरमा गये। मैंने भी सोचा कि वहां जाने का यह अच्छा मौका है। इसी बीच एक और बात सामने आ गई। जिस तरह दीवान जयप्रकाशलाल (बाबू हरिजी के स्वर्गवासी पिता) ने बरमा मे, ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के प्रोत्साहन से, जमीन ली थी; उसी तरह एक अंगरेज नीलवर मिस्टर मिलन ने भी बरमा मे बहुत जमीन ली थी। शाहाबाद जिले में वह नील का काम किया करते थे। उन्होंने भी बिहार से, खासकर शाहाबाद से, किसानों को ले जाकर, बाबू हरिजी की तरह ही, अपनी जमीन पर बसाया था। कुछ और लोगो ने भी वहां जमीन ली थी; पर वे उसका ठीक प्रबन्ध न कर सके; अन्त मे जमीन उन्होंने छोड़ दी या वह जब्त हो गई। पर इन दो बड़े जमीदारों ने वहां बहुत बड़ी जमीदारी हासिल कर ली। बहुत परिश्रम और अध्यवसाय से, काफी रुपये खर्च करके, ऐसे जंगलों को—जहा हाथी और शेर बसते थे—काट-काटकर, जमीन साफ करके इन लोगों ने बिहारियों को बसाया था। वहां धान, ईख और दूसरी फसले भी पैदा होती थी। मिस्टर मिलन की रैयत मे कुछ अशान्ति-सी व्याप रही थी। रैयत ने यहा पत्र भेजा था कि मैं जाकर उनकी मदद करूं। शायद उन्होंने सुना था कि मैने गांधीजी के साथ चम्पारन में काम किया था, इसलिए मेरी सेवा पर उनका कुछ विश्वास हो गया था। बस, इस दूसरे सुयोग को पाकर मैंने वहां जाने का निश्चय कर लिया। श्री मथुराप्रसादजी के साथ नवम्बर में वहां गया। मिस्टर मिलन की जमींदारी का नाम था 'चौतगा' और बाबू हरिजी की जमीदारी का 'जियावाडी'। मैं इन दोनों जगहों में गया। रंगून मे भी कुछ दिन ठहरा। कुल मिलाकर शायद पन्द्रह दिन वहां रहा। और कहीं नहीं जा सका। इसलिए मांडले वगैरह कुछ न देख सका।

स्टीमर का सफर मामूली था। समुद्र शान्त था। जहाज में आराम था। हम लोग मजे में पहुंच गये। कुछ दूर से ही रंगून के बौद्ध मन्दिरों के सुनहले कगूरे और गुम्बद नजर आये। नजदीक पहुंचते-पहुंचते उनका बडा अश दीखने लगा। रगून के लोगों ने अच्छी खातिरदारी की। एक सार्वजनिक सभा में मुझे मानपत्र दिया गया। मैंने उसके उत्तर मे कहा कि हिन्दुस्तान और बरमा का पुराना सम्बन्ध आज के सम्बन्ध से भिन्न प्रकार का था। भारत ने भी अपना साम्राज्य दूसरे देशो में स्थापित किया था। पर आजकल के साम्राज्य की तरह वह हिंसा, अस्त्र-शस्त्र और सैन्य-बल की नीव पर स्थापित नही था। वह धार्मिक साम्राज्य था। भारत का सम्बन्ध दूसरों के साथ एक रेशमी डोरी से गुंथे मणियों का-सा था, जो एक-दूसरे के साथ रहते तो है, पर एक-दूसरे पर हुकूमत नही करते। आज भी जब ससार मे होती हुई खून-खराबी देखता हू तो मुझे मालूम होता है कि भारतवर्ष की वह धार्मिक एक-सूत्रता, जो सेना के बल से नही वरन धर्म और चरित्र द्वारा ही स्थापित की गई थी, आज के साम्राज्य से कही अधिक स्थायी और प्राणिमात्र के लिए कही अधिक लाभदायक साबित हुई है। भारतवर्ष से, विशेषकर अपने जन्मस्थान बिहार मे, बौद्ध धर्म एकबारगी उठ गया है, तब भी आज उसे ससार के अधिक-से-अधिक मनुष्य मानते है। वे लोग आज भी उस धर्म के प्रवर्त्तक के साथ सम्बन्ध रखनेवाले स्थानो को तीर्थस्थान मानते है। बुद्धदेव ने जहा जन्म लिया, जहा उन्होंने सिद्धि प्राप्त की, जहा अपना धर्मचक्र चलाया, वे सभी स्थान आज भारत मे दुनिया के बौद्धो के लिए पुण्यतीर्थ बने हुए है। उन्ही तीर्थो के कारण ससार के बौद्ध, हमारी आज की पतित अवस्था मे भी, हमे आदर की दृष्टि से देखते है। किसी राजनैतिक साम्राज्य को यह सौभाग्य न प्राप्त हुआ है और न होगा। बरमा मे जाकर मेरे हृदय के अन्दर ये सब भाव स्वत: प्रकट हो गये।

वहां चौतगा के रैयतों से मै मिला। मालिक तो वहां नही थे, विलायत मे थे; पर उनके कर्मचारी और उनके पुत्र वहा थे। उनसे रैयतों की शिकायतों के सम्बन्ध मे बातें हुईं। रगढग से मालूम हुआ कि बाते तय हो जायंगी। पर अन्त में विलायत से कुछ तार आ गया। हाथ मे आई हुई सफलता भी निकल गई! पर मुझे विश्वास है कि वहां के लोगों की हालत बहुत-कुछ सुधर गई, यद्यपि सब बाते हमारे सामने तय न पा सकी।

जियावाडी में भी रैयतो की कुछ शिकायतें थी। पर बाबू हरिजी की कार्य-कुशलता और व्यवहार-पटुता के कारण वे उस समय तक उग्र रूप नहीं धारण कर पाई थीं। हम लोगो की उनके सम्बन्ध में कुछ करना नहीं पड़ा।

कुछ दिन ठहरकर वहां का हालचाल देखा। वहां के गांवों में जाने पर ऐसा नही मालूम होता था कि हम बिहार से बाहर आये हैं। वही भोजपुरी बोली, वही कपड़े, वही रहन-सहन, उसी तरह के मकान और वैसी ही खेती-बारी। मैने मुकदमे के समय कागजो को पढ़ा था। उनको पढ़ने से ही बाबू हरिजी की कार्य-दक्षता और प्रबन्ध-शक्ति का मै कायल हो गया था। अब उस एक समय के, अर्थात ३० बरस पहले के, जंगल को लहलहाते हुए गावों के रूप मे देखकर और भी श्रद्धा हो गई। आज उनमें हजारो बिहारी रहते और खेती करके सुख से जीवन बिताते है तथा बाबू हरिजी को भी लाखो रुपयों की सालाना आमदनी दे देते है। हमारे सामने उन्होंने रैयतो की एक सभा भी की, जिसमें खैरखाहो को मुरेठा बांटा और दूसरे प्रकार मे भी आदर दिया। बिहार-विद्यापीठ के लिए भी कुछ रुपये वहां मिले। रंगून के व्यापारियों ने भी दिये जिन्हे लेकर मै वापस आया।

रंगून मे भी बिहारियो की खासी आबादी है। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जीरादेई का रहनेवाला मेरा एक पुराना नौकर रंगून मे आकर मुझसे मिला। वहा वह कही नौकरी करता था। मेरे आने की खबर सुनकर वह मुझमे मिलने आया। वहां गुजराती और मारवाड़ी व्यापारी काफी हैं। पर गावो मे ज्यादातर मद्रास के रहनेवाले चेट्टी लोग हैं, जो अधिक रुपये लगाने या कर्ज देने का काम करते है। आन्ध्र के भी बहुत लोग है, पर वे भी बिहारियो की तरह नौकरी या मजदूरी करते है। उसी समय आन्ध्र के श्री नागेश्वरराव पंतलू भी वहां गये थे। रगून मे हम दोनो को भोज दिया गया, जिसमे वहां के बहुतेरे मशहूर बरमी और हिन्दुस्तानी शरीक हुए। मेयर वहा के एक मुसलमान सज्जन थे। श्री अब्बास तय्यबजी के सुपुत्र तय्यबजी रैयतो के काम में बहुत दिलचस्पी लिया करते थे। ये सब लोग भोज मे शरीक थे। एक अंगरेज सज्जन भी, जो पीछे वहां की कौन्सिल के स्पीकर या सभापति हुए, उस भोज में थे।

मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि सभी लोग जमीन पर बैठकर भोजन करते गये। अंगरेज महाशय भी हम लोगो के साथ ही उसी तरह बैठे। बिहार मे ऐसा कोई भोज मैंने नही देखा था। गाधीजी के आश्रम के सिवा और कही भी, उस समय तक मैंने इस तरह सब लोगों को हिन्दुस्तानी तरीके मे जमीन पर बैठकर खाते नही देखा था। यह हमारी कमजोरी है कि हम यदि किसी विदेशी को खिलाते हैं या दूसरे प्रकार से उसका आदर करते हैं, तो वह जैसे खाता-पीता या रहता है उसीकी हम नकल करते हैं। वह स्वयं तो अपने घर में वैसे रहता ही है और वही भोजन उसी तरीके से किया ही करता है, फिर हमने अपने यहां के भोज में उसे अपनी विशेषता क्या दिखाई ?

विदेशियों में जो सहृदय होंगे और इस देश के सम्बन्ध में कुछ जानने की इच्छा रखते होंगे, वे शायद दिल में चाहते भी होंगे कि हिन्दुस्तानियों के घर मे वे अपने ही घर की नकल न देखकर हिन्दुस्तान का भी कुछ देख सकें। पर हम न मालूम क्यों भद्दी नकल पसन्द करते हैं और अपनी रीति-नीति को छुपाने की चीज मान लेते है! जो हो, मुझे रंगून में यह देखकर बड़ा आनन्द हुआ। रंगून से मैं जहाज पर कलकत्ते के लिए रवाना हो गया।

: ८४ :

लाहौर-कांग्रेस और मौलाना मजहरुल हक की मृत्यु

जहाज पर ही मुझे दमे का दौरा बहुत जोरों से शुरू हो गया। हालत इतनी खराब हो गई कि जहाज के डाक्टर को सुई देने की जरूरत पड गई। कलकत्ते मे जहाज से उतरकर मैं अपने मित्र श्री योगेन्द्रनारायण मजुमदार बैरिस्टर के घर जाकर ठहर गया। तीन-चार दिनों के बाद मुगेर मे बिहार प्रान्तीय राजनैतिक कान्फ्रेन्स होनेवाली थी। मैं उसका सभापति चुना गया था। मैंने सोचा कि कलकत्ते मे दो-तीन दिनो तक आराम करूंगा और भला-चगा होकर मुगेर जाऊंगा। अबतक मैने हकीम और वैद्य की दवा के सिवा एलोपैथिक इलाज कराया था। मेरे मित्र का विचार हुआ और मैंने भी पसन्द किया कि एक बार होमियोपैथिक को भी आजमाया जाय। एक बूढे डाक्टर को, जिनपर उनका बहुत विश्वास था, उन्होने बुलाया। डाक्टर ने सब बातें देख-सुनकर मुझसे कहा कि वह इसी शर्त पर इलाज करेगे कि मैं कुछ दिनों तक लगातार उनका इलाज कराऊ और जबतक उनका इलाज होता रहे तबतक दूसरा इलाज न करूं—हो सकता है, उनके इलाज से पहले बीमारी बढ़ जाय; यदि ऐसा हो तो मुझे डरना न चाहिए, यह शुभ लक्षण होगा। मैंने उनकी ये सब बाते मान ली। उन्होंने एक खूराक दवा दी और कहा कि अब दो महीनो तक दूसरी दवा नही लेनी होगी। मैंने वह खूराक वही खा ली; दो महीनो के लिए दवा से छुट्टी मिल गई।

मैं वही बैठकर प्रान्तीय सम्मेलन के लिए भाषण भी लिख रहा था। तीसरे या चौथे दिन, रात की गाड़ी से, मैं मुगेर के लिए रवाना हुआ। गाडी में भीड़ बहुत थी। रात-भर बैठे रहना पडा। शायद हवा भी लगी। नतीजा यह हुआ कि मुगेर पहुंचते-पहुचते तबीयत बहुत खराब हो गई। मै सम्मेलन में शरीक न हो सका। मेरा भाषण और किसीने पढकर सुना दिया। दिसम्बर का आरम्भ था। थोड़े ही दिनों के बाद लाहौर में कांग्रेस होनेवाली थी। पंडित जवाहरलाल नेहरू मनोनीत सभापति थे। देश के सामने औपनिवेशिक और पूर्ण स्वराज्य की बहस चल रही थी। मैंने मुगेर के अपने भाषण में औपनिवेशिक स्वराज्य का ही समर्थन किया था। मैं तो वहां इतना सख्त बीमार हुआ कि मैं उस सम्मेलन के निश्चयों को भी न जान सका। पर

पीछे मालूम हुआ कि मैं प्रान्तीय काग्रेस-कमिटी का सभापति चुना गया।

वादा के अनुसार मैंने कोई दवा नही खाई। मैंने समझा कि यह उभड़ी हुई बीमारी डाक्टर के कहने के अनुसार ही है—उसकी दवा की प्रतिक्रिया-मात्र है और जल्द ही अच्छा हो जाऊगा। पर ऐसा हुआ नही। मुगेर से किसी तरह भाईसाहब मुझे पटना लाये। यहां भी खासी और ज्वर का प्रकोप रहा। यहा के डाक्टर बनर्जी बराबर देखते रहे। डाक्टर फणि मुखर्जी ने एक्सरे मे फेफड़े की जांच की। उस जाच से वह और डाक्टर बनर्जी कुछ चिन्तित हुए। वे लोग मुझे देखते तो थे, पर मै किसीकी दवा नही खाता था। कलकत्ते के होमियोपैथिक डाक्टर के पास रोज टेलीफोन किया जाता। उत्तर मिलता कि कुछ घबराने की बात नही है और न दवा की जरूरत है। एक दिन पटना के डाक्टर लोग अधिक चिन्तित हो गये। उन्होंने स्पष्ट कहा कि दूसरे दिन तक यदि हालत न सुधरी तो चिन्ताजनक हो जायगी और वे मुझे दूरवर्ती डाक्टर के आशीर्वाद के भरोसे बिना इलाज के नही छोड़ेगे।

कलकत्ते खबर दी गई। डाक्टर पटना बुलाये गए। उन्होंने एक दवा देने को कहा, जो पीछे मालूम हुआ कि केवल पानी था। उनके आ जाने से यहा के डाक्टरो ने जवाबदेही से अपनेको बरी समझा। वह यहा दो दिन ठहरे, पर दवा कोई नही दी। इन्ही दिनो बीमारी स्वय कम होने लगी। चार-पाच दिनो मे ज्वर के साथ ही खासी जाती रही। एक्सरे से फिर परीक्षा की गई। फेफडा बिलकुल साफ निकला!

मै जीरादेई चला गया। जो मित्र लाहौर-काग्रेस मे जानेवाले थे, चले गये। मै न जा सका। जैसा कह चुका हू, श्री सतीशचन्द्र मुखर्जी के साथ प्राय. एक महीना घर पर रहा। उनसे बाते करता, अखबारों मे काग्रेस का हाल पढ़ना और एक छोटी-सी पुस्तिका लिखी। विषय था अहिंसा। मैंने उसे सतीशबाबू को दिखलाया। उन्होंने बडी प्रशसा की। कहा कि वह उसे बनारस लौटने पर एक बार अच्छी तरह पढ़ेगे और कुछ आवश्यक सशोधन भी बतावेंगे, तब छापने लायक होगा। उसे वह लेते गये। उसके बाद ही सन् १९३० का सत्याग्रह छिड गया। मैं उसमे इस तरह संलग्न हो गया कि फिर उस पुस्तिका की ओर ध्यान ही न गया। न मालूम उसका क्या हुआ!

लाहौर-काग्रेस बड़ी धूमधाम से समाप्त हुई। वहा जाने के पहले ही गांधीजी और पंडित मोतीलाल नेहरू ने दिल्ली मे वायसराय से मुलाकात की थी। वहा स्पष्ट हो गया था कि उनकी घोषणा काग्रेस की मांग पूरी नही करती। इसलिए एक प्रकार से निश्चय-सा ही हो गया था कि वहां काग्रेस का ध्येय बदला जायगा। वह बदल भी दिया गया। अब पूर्ण स्वतंत्रता

ध्येय हो गया, जिसे अबतक हम प्राप्त नही कर पाये है और जिसके लिए हमें अभी बहुत परिश्रम और त्याग करने की जरूरत है।

उधर लाहौर-काग्रेस हो रही थी, इधर अपने गांव में ठहरे हुए मजहरुल हकसाहब का देहावसान हो गया। पटना से जाकर हकसाहब छपरा जिले मे, ओदर के नजदीक फरीदपुर मे, रहा करते थे। वहा उनकी कुछ जमीदारी थी। एक बहुत बड़ा आम का बाग उन्होंने लगाया था। उसी बाग मे एक छोटा-सा बंगला था, जिसमे वह रहा करते थे। पास की ही नदी 'दाहा' की बाढ़ में अपने बड़े पुत्र के अचानक डूबकर मर जाने के बाद से वह बहुत उदास हो गये थे। आध्यात्मिक विषय पर बहुत पुस्तके पढा करते थे। इस विषय पर उनके पास एक खासा पुस्तकालय हो गया था। कभी-कभी मैं वहां जाया करता था। वह मुझे भी उस विषय का अध्ययन करने को कहा करते थे। मैंने कुछ पुस्तके पढ़ी भी। पर बहुत दौड-धूप करते रहने से मुझे पढ़ने का समय नही मिलता था। वहीपर, चन्द दिनो की बीमारी के बाद, उनकी मृत्यु हो गई। उनका यह गाव मेरे गाव से प्रायः पांच मील की दूरी पर है। खबर पाते ही मैं वहा गया और उनकी बेगम साहबा से भेंट कर समवेदना प्रकट की।

उनकी मृत्यु से हम सबको बड़ा दुख हुआ। हममेंसे कुछका विचार था और देश के कई सूबो ने भी इच्छा प्रकट की थी कि वह काग्रेस के सभापति बनाये जायं; पर उन्होने स्वयं इस विचार को प्रोत्साहन नही दिया, बल्कि लोगो को मना कर दिया कि ऐसी बात न चलाओ। वह एक प्रकार से संसार से विरक्त हो गये थे और एक फकीर का ही जीवन बिता रहे थे। उनके चले जाने से हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और समझौते का बहुत बडा स्तम्भ टूट गया। इस विषय मे हम निराधार हो गये। सुना कि पटना मे सार्वजनिक सभा हुई, जिसमे उनके नाम पर स्मारक स्थापित करने का निश्चय किया गया। पर वह आजतक पन्द्रह बरसों के बाद भी, प्रस्ताव के ही रूप में पड़ा है! स्मारक अभीतक नही बना! मेरा विचार रहा है कि एक राष्ट्रीयभवन (कौमी हॉल) बने, जो उनका स्मारक हो। पर वह भी अभीतक विचार की श्रेणी से थोड़ा ही आगे बढ़ा है। कुछ जमीन ली गई है। उसके साथ के दो छोटे मकान भी बन गये है। बड़े हॉल के लिए नक्शा भी तैयार हो गया है। पर अभी हॉल की नीव तक नही पड़ी है। देखें, ईश्वर इसे कब पूरा करता है।

: ८५ :

स्वतन्त्रता-दिवस और नमक-सत्याग्रह

लाहौर-काग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति को काग्रेस का ध्येय बना दिया था। साथ ही, उसने इसके लिए सत्याग्रह करने का आदेश भी दिया था। प्राय. पिछले दो बरसो मे जो नई जागृति दीख रही थी, उसीका यह फल था। काग्रेस के अधिवेशन के थोड़े ही दिनों के बाद वर्किंग कमिटी ने सारे देश को आदेश दिया कि तारीख २६ जनवरी को स्वतन्त्रता-दिवस मनाया जाय। उस दिन उस साल रविवार था। एक सुन्दर ओजस्वी वक्तव्य निकाला गया, जिसमे देश की स्थिति और स्वराज्य-प्राप्ति की प्रतिज्ञा थी। आदेश था कि सभी जगहो मे बड़ी-बडी सभाएं करके उपस्थित लोगो से वही घोषणा दुहरवाई जाय; भिन्न-भिन्न प्रान्त के लोग अपनी-अपनी प्रान्तीय भाषा में भाषान्तर करा ले और ऐसा प्रबन्ध करें कि जनता उसे समझकर दुहरावे; कोई दूसरा भाषण उस अवसर पर न किया जाय, केवल घोषणा ही दुहराई जाय; ये सभाए तीसरे पहर हो, सवेरे जहा हो सके वहा राष्ट्रीय झण्डे का अभिवादन किया जाय; यही कार्यक्रम सारे देश मे मनाया जाय।

मैं उस समय तक घर पर ही आराम कर रहा था। उसी दिन पहले-पहल घर से बाहर निकलने का निश्चय किया। आस-पास की कई जगहों से लोगों का आग्रह हुआ कि मैं वहा सभा मे चलू। यदि सभाए एक ही समय पर न होने को होती तो मै दिन-भर मे कई सभाओं में शामिल हो सकता, पर ऐसा नही करना था। इसलिए मै मोटर पर गया। आध घटे आगे-पीछे दो जगहो की सभाओ मे शरीक होने का विचार किया—एक तो गाव में होनेवाली थी, दूसरी 'सीवान' शहर मे। गाव की सभा करके जब सीवान जा रहा था, मोटर बिगड़ गई। मालूम हुआ कि सीवान न पहुच सकूंगा। पर कृपा करके पुलिसवालो ने अपनी गाड़ी पर स्थान दे दिया। मैं ठीक समय पर सीवान पहुंच गया। वहां भी एक बड़ी सभा मे एकत्र हुई एक-चित्त जनता से उस प्रतिज्ञापत्र को दुहरवा सका।

इस समय देश में जागृति बहुत देखने में आई। प्रायः सभी शहरों और बहुतेरे गांवों मे स्वतन्त्रता-दिवस का कार्यक्रम पूरा किया गया। इन शुभ चिन्हों से मालूम पड़ता था मानो देश कोई बड़ा कदम उठाने जा रहा है।

सभी जगहों में सत्याग्रह की चर्चा हो रही थी। बारदोली में सत्याग्रह की विजय हाल ही में हो चुकी थी। वह लोगों के दिल को बहुत उत्साहित कर रही थी। लोग इस बात की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब, कहा और किस तरह सत्याग्रह का आरम्भ किया जायगा। गांधीजी के लेख लोगों में नई जान फूक रहे थे।

महात्मा गाधी उन दिनों साबरमती के सत्याग्रह-आश्रम मे रहते थे। वहां वर्किंग कमिटी की बैठक हुई। उसमे उन्होंने सत्याग्रह आरम्भ करने की बात कही। इस विषय पर बहुत बातचीत होती रही कि देश अभी तैयार है या नही। बहुतेरे लोगो का विचार था कि अभी कुछ और तैयारी कर लेनी चाहिए। पर महात्माजी तथा जवाहरलालजी बहुत ही उत्सुक थे। इस बात पर भी बहुत बहस होती रही कि कौन-सा कानून तोड़ा जाय। महात्माजी का दृढ़ विचार था कि आरम्भ तो नमक-कानून से ही किया जाय। उनका कहना था कि इस कानून के कारण नमक पर 'कर' लगता है—गरीबो को जो नमक मुफ्त मिल सकता है, अथवा बहुत कम दाम में मिल सकता है, वह महंगा मिलता है—बहुत-से गरीब इस कारण से उतना नमक नही खा सकते, जितना उनके स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है—नमक हमारे खाद्य-पदार्थों मे एक अत्यंत आवश्यक वस्तु है, यह समुद्र के किनारे जमा करने से ही मुफ्त में मिल सकता है, दूसरी जगहो मे भी मिट्टी से बनाया जा सकता है, जहा नमक का पहाड़ है, वहां भी लोग खोदकर बिना दाम के निकाल सकते हैं, पर गवर्नमेण्ट केवल 'कर' प्राप्त करने के लिए इसके जमा करने पर प्रतिबन्ध लगाती है, ईश्वर ने जल और वायु की ही तरह नमक भी मुफ्त बाटने का प्रबंध किया है, मगर सरकार लेने नही देती। इसलिए गाधीजी का विचार था कि इससे खराब दूसरा 'कर' नही हो सकता, इसके विरुद्ध सत्याग्रह करने की बात गरीब भी आसानी से समझ लेंगे, ससार के लोग भी मान लेगे कि यह न्याय है।

महात्माजी का हमेशा यही तरीका रहा है कि एक छोटी चीज को लेकर उससे बड़ा नतीजा निकालना चाहते है। उनका खयाल था, यदि एक अन्यायपूर्ण 'कर' का हम इस तरह प्रतिरोध कर सकेंगे तो दूसरे सभी करो का नियन्त्रण हम कर सकेंगे। इसी तरह जब उन्होंने पंजाब के हत्याकाड और खिलाफत के लिए न्याय पर जोर दिया था तब वह यही समझते थे कि हममे यदि इसके लिए इन्साफ पा लेने की शक्ति आ जायगी, तो वही शक्ति हमें और-और गैरइन्साफों को भी हटाने की शक्ति दे देगी। इसी तरह, नमक-कानून तोड़कर, हम सब प्रकार से अपनी इच्छा के अनुसार सरकार से काम करा लेने की शक्ति प्राप्त कर लेंगे।

ये बातें हम लोग ठीक समझ नहीं पाते थे। हमारे सामने कई दिक्कतें थीं। हममेंसे बहुतेरे यह नहीं समझ पाते थे कि सरकार पर जोर डाले बिना हम उसे मजबूर कैसे कर सकेंगे। साथ ही, इससे भी अधिक अड़चन इस बात की मालूम होती थी कि नमक का कानून हम तोड़ेंगे तो कैसे? जो समुद्र के किनारे रहते हैं, वे तो वहां किनारे पर सरकारी आज्ञा के विरुद्ध नमक जमा करके अथवा नमकीन पानी गर्म करके कानून भंग कर सकते हैं। परंतु भारत की अधिकांश जनता, जो समुद्र के किनारे नहीं रहती, कैसे कानून तोड़ेगी? हां, बहुत जगहों में, खासकर बिहार और युक्तप्रान्त में मिट्टी से नमक बनाया जाया करता था। एक जाति 'नोनिया' होती है, जो यही काम किया करती थी। अब, जबसे विदेशी या देशी नमक सभी जगहों पर समुद्र के किनारे से अथवा खेवड़ा से, पहुंचने लगा है, तबसे उनका रोजगार ही बन्द हो गया है। वहांपर यदि सरकारी आज्ञा के विरुद्ध नमक बनाया जाय तो कानून भंग हो सकता था। पर क्या इस तरह नमक बनाने में साधारण लोगों का उत्साह होगा? क्या पढ़े-लिखे लोग इसमें दिलचस्पी लेंगे? केवल 'नोनिया' ही इस काम को सफलतापूर्वक कर सकते हैं। पर वे गरीब और अशिक्षित हैं। उनसे इसकी आशा करना ठीक नहीं जचता। उनको प्रोत्साहन देकर कानून तुड़वाना भी न्याययुक्त नहीं मालूम होता। ये सब बातें गांधीजी से कही गईं। पर उनका निश्चय अटल रहा कि नमक-कानून ही तोड़ना चाहिए। इसमें जनता उत्साह से भाग लेगी, यही चीज सारे देश में चल सकेगी।

मुझे भी इस कार्यक्रम की सफलता में काफी सन्देह था। मैंने उनसे कहा कि बिहार में 'चौकीदारी-टिकस' एक ऐसा 'कर' है, जो सभी लोगों को देना पड़ता है। उससे गरीब बहुत असन्तुष्ट हैं। उनकी वसूली में भी गरीबों पर काफी सख्ती की जाती है। बाकी 'कर' के लिए उनके बर्तन-बासन भी जब्त होकर नीलाम कर दिये जाते हैं। मैंने कहा कि बिहार में इस टैक्स के बन्द करने में ज्यादा आसानी होगी। जनता बहुत जल्द और खुशी से इसका देना बन्द कर देगी। बिहार के लिए चौकीदारी टैक्स बन्द करने की ही आज्ञा दी जाय। महात्माजी ने कहा, यदि तुम इससे काम शुरू करोगे तो बहुत जल्द हार जाओगे, पहले नमक-कानून तोड़कर ही कार्यारम्भ करो, पीछे यदि लोगों में काफी उत्साह आ जायगा तो टिकस-बन्दी का विचार करना। मैंने बात सुन तो ली, पर मन में बैठी नहीं। मैं सोचता था कि इस सीधे रास्ते को छोड़कर नमक-कानून के फेर में पड़ना क्यों जरूरी है। पर गांधीजी के इन विषयों के अनुभव का मैं कायल था। मेरा विश्वास हो गया था कि यह बहुत दूर तक देख लेते हैं, जहांतक हम

नहीं देख सकते। इसलिए, कुछ दिनों से, मैंने अपना यह तरीका बना लिया था कि अपने विचार उनके सामने रख दू, यदि वह मान लें तो ठीक, नही तो उनकी राय के मुताबिक काम करना ही ठीक है। अन्त में, मेरा अनुभव बताता था, उन्हींकी राय ठीक निकलती थी। मैंने इस अवसर पर भी निश्चय कर लिया कि बिहार में भी नमक-कानून ही तोड़ा जायगा, यद्यपि मैं अभीतक इस बात को पूरी तरह समझ नही पाया।

: ८६ :

गांधीजी की डाण्डी-यात्रा : बिहार में नेहरूजी का दौरा

वर्किंग कमिटी की बैठक के बाद गांधीजी ने अपने लिए एक तिथि मुकर्रर कर दी। उसी दिन वह आश्रम से निकल पड़ेंगे। प्रायः एक महीना तक पैदल चलकर, सूरत-जिले के 'डाण्डी' नामक गाव मे, समुद्र के किनारे पहुचेंगे। वहीं वह पहले-पहल नमक-कानून खुद तोड़ेंगे। इस निश्चय को मजूर कराने के लिए अखिल भारतीय कमिटी की बैठक साबरमती मे की गई। यह बैठक तो हुई; पर उस समय तक महात्माजी डाण्डी-यात्रा के लिए निकल चुके थे। इसलिए वर्किंग कमिटी के निश्चय को ही अखिल भारतीय कमिटी ने मजूर कर लिया।

डाण्डी-यात्रा के पहले, जो एक प्रकार से सत्याग्रह का आरम्भ था, गाधीजी ने अपने नियम के अनुसार एक पत्र बड़े लाट को लिख भेजा। उसमे उन्होंने सभी बाते बता दी। सत्याग्रह के आरम्भ की बात भी लिख दी। यह पत्र उन्होंने एक अगरेज सज्जन के हाथ भेजा। उनका नाम मिस्टर रेनल्ड्स था। उस समय वह साबरमती मे रहते थे। किन्तु, जैसा सोचा गया था, कोई सन्तोषजनक उत्तर नही आया। यात्रा आरम्भ करते समय उन्होंने काग्रेस-कमिटियों और काग्रेसी लोगों को मना कर दिया कि जबतक मैं आदेश न दू तबतक कोई सत्याग्रह न करे—यदि सरकारी आज्ञाएं बुरी भी लगे, तो भी उन्हे मानना ही चाहिए।

इरादा था कि तारीख ६ अप्रैल तक वह डाण्डी पहुच जायगे और उसी दिन स्वय सबसे पहले सत्याग्रह करेंगे। सत्याग्रह-आश्रम के अस्सी या इक्यासी आदमियों को उन्होंने यात्रा मे अपने साथ लिया। क्रम यह था कि सवेरे कुछ दूर तक जाना होता था। दोपहर को किसी निश्चित स्थान में स्नान, भोजन और विश्राम किया जाता था। फिर तीसरे पहर को कुछ दूर जाया जाता। सध्या को कही डेरा पड़ जाता। वही रात का विश्राम होता। फिर दूसरे दिन सवेरे वही क्रम शुरू होता। यह यात्रा प्रायः एक महीने की हुई। बीच मे बहुतेरे गांव और कुछ शहर भी मिले। प्रायः एक-सौ पचास मील की यात्रा थी। प्रायः बारह-तेरह मील रोज चलना पड़ा था। जिस दिन गाधीजी साबरमती से निकले उस दिन आश्रम पर रात-

भर बहुत भीड़ लगी रही। सवेरे हजारों आदमियों के जय-जयकार के बीच होकर गांधीजी और उनके साथी निकले। उन लोगों के पास अपनी-अपनी झोली में उनके आवश्यक सामान थे। बडा ही उत्साह था। देखने से मालूम होता था मानो सारा अहमदाबाद और वहा का इलाका उमड़ आया है।

गांधीजी ने यह भी घोषणा कर दी कि स्वराज्य के बिना वह अब फिर साबरमती-आश्रम मे नही लौटेगे। यात्रा का पूरा विवरण समाचारपत्रों में छपता रहा। इसका असर सारे देश पर जादू के ऐसा पडता रहा। सभी जगह लोग बहुत आतुर होकर ६ अप्रैल की बाट जोह रहे थे। लोग चाहते थे कि हमको भी सत्याग्रह का सुअवसर मिले। काग्रेस के लोग बैठे नही थे। वे भी बड़े जोरों से चारों ओर प्रचार के काम मे लगे थे। गाधीजी जैसे-जैसे बढते गये, देशका उत्साह भी बढता ही गया। सरदार वल्लभभाई, यात्रा का आरम्भ होने के पहले ही, गिरफ्तार कर लिये गए थे। इसलिए वह यात्रा मे अथवा उसके बाद आरम्भ होनेवाले सत्याग्रह में शरीक नही हुए।

इसी बीच मे अखिल भारतीय कमिटी की बैठक अहमदाबाद मे हुई। वहां से पडित मोतीलाल, प० जवाहरलाल प्रभृति के साथ हम लोग जम्बूसर तक गये। वही गाधीजी से मुलाकात हुई। हम लोग भी उनके साथ कुछ दूर तक गये। फिर अपने-अपने स्थान को लौट आये। मैंने बिहार में आकर सब जगह के लोगो को आदेश दे दिया कि जबतक गाधीजी का हुक्म न निकले, कोई सत्याग्रह न करे। पंडित जवाहरलालजी से, चार-पाच दिन के लिए बिहार में दौरा करने का, आग्रह किया। वह प्रसन्नतापूर्वक राजी हो गये। हमारी इच्छा थी कि जो थोड़ा समय मिलता है, उसमे अधिक-से-अधिक स्थानों मे सभाएं हो जायं और अधिक-से-अधिक लोगो को उनके ओजस्वी भाषण सुनने का सुअवसर मिल जाय। इसलिए पहले से कार्यक्रम बना दिया गया। जहा-जहां सभा होनेवाली थी, ठीक समय पर लोगो को इकट्ठे होकर इन्तजार करने को कहा गया। मुझे याद नही है कि वह कहां-कहां और किन जिलों में गये, पर कार्यक्रम मैंने ऐसा बनाया कि सभाओ में उनका कम-से-कम समय लगे। तीन मोटरें साथ थी। पहली मोटर में कुछ ऐसे लोग थे, जो आगे जाकर सभा में राष्ट्रीय गान वगैरह गाकर शान्ति करा देते। जब सब लोग अपने-अपने स्थान पर बैठ जाते, मै दूसरी मोटर से पहुंच जाता। जबतक पंडित जवाहरलालजी तीसरी मोटर से नही पहुंच जाते तबतक मुझे जो कुछ कहना होता, सो कह देता। मेरे पहुंचने पर पहली गाड़ी आगे बढ़ जाती। पंडितजी के पहुंचने पर मैं दूसरी गाड़ी पर अगली सभा के लिए रवाना हो जाता। इस प्रकार किसीको किसी दूसरे के भाषण

के लिए इन्तजार न करना पडता। वह समय भी नष्ट न होता, जो सभा में पहुंचकर लोगों को शान्त करने और उनके उत्साह को संभालने में लगता है; क्योंकि यह काम तो पहले ही हो चुकता। पडितजी की यह यात्रा बहुत सफल रही। इससे सारे सूबे मे, जहा पडितजी नहीं भी जा सके, पूरा उत्साह उमड़ आया।

: ८७ :

बिहार में नमक-सत्याग्रह

नेहरूजी की यात्रा का अन्तिम दिन था। वह प्रयाग चले जानेवाले थे। मुझे जहातक याद है, यह अन्तिम सभा छपरा-जिले के महाराजगज कस्बे में संध्या के समय हुई थी। वही पर तार द्वारा या समाचारपत्रों से पता मिला कि ६ अप्रैल से सब लोग अपने-अपने स्थान पर सत्याग्रह का आरम्भ कर सकते है, गाधीजी का यही आदेश है। इस सूचना ने एक प्रकार से हमारे कार्यक्रम को गड़बड़ा दिया। हमने अभी निश्चय नही किया था कि कौन कहां से सत्याग्रह आरम्भ करेगा। सभी जगहो मे रातोरात खबर दे दी गई। चम्पारन के लोगो ने पहले से सोच रखा था कि विपिनबाबू मोतीहारी से पैदल चलकर, सात-आठ दिनों की यात्रा के बाद, जोगापट्टी के पास पहुंच सत्याग्रह आरम्भ करेगे। उन्होने ६ अप्रैल को ही यात्रा आरम्भ कर दी। मुजफ्फरपुर-जिले मे भी ऐसा ही हुआ। दो-चार दिनों के अन्दर ही सभी जगहो मे नमक-कानून टूटने लगा। जिस दिन विपिनबाबू ने नमक बनाया, मैं वहा पहुच गया। पर मेरे पहुंचने के पहले ही वह गिरफ्तार कर लिये गए थे। वही एक बगीचे मे मजिस्ट्रेट ने कचहरी लगा दी और चटपट मुकदमा देखकर उनको सजा भी दे दी। मैं रास्ते में मोटर से उन स्थानों को देखता गया जहा-जहां सत्याग्रही यात्री लोग ठहरे थे। जिले का प्रायः एक आधा हिस्सा, लम्बाई मे, इस यात्रा में पड गया था। आरम्भ से अन्त तक, सारे रास्ते में, सड़कों पर अनगिनत मेहराब-तोरण-पताका इत्यादि लोगों ने लगाये थे। अभूतपूर्व उत्साह का प्रदर्शन था! जहा कानून तोड़ा गया था वहां के लोगों के उत्साह का तो ठिकाना न था।

मजिस्ट्रेट एक ऐसे सज्जन थे, जिन्होने १९२१ में पटना-कालेज से असहयोग करके कुछ दिनो तक हमारे राष्ट्रीय महाविद्यालय में निवास किया था। अपने घरवालों के जोर देने पर वह फिर वापस चले गये थे। पढ़ने में वह तेज थे। पुनः कालेज की परीक्षा पास कर शीघ्र ही डिप्टी मजिस्ट्रेट हो गये। ८-१० बरसों की नौकरी के बाद इस दर्जे पर पहुंचे थे। मैने देखा कि मुकदमे की सुनवाई के समय जबतक इजलास लगा रहा, उन्होंने एक बार भी सिर न उठाया। सिर नीचा किये ही जो कुछ लिखना था, लिखा और उसी

तरह हुकुम भी सुना दिया। वहां से विपिनबाबू को मोटर पर मोतीहारी-जेल ले आये।

मैं भी अपनी गाड़ी पर मोतीहारी तक आकर पटने के लिए या किसी अन्य स्थान के लिए रवाना हो गया। उधर गांधीजी ने नमक जमा किया, पर सरकार ने उनको पकड़ा नही। सारे देश में अनगिनत स्थानों पर लोग नमक बनाने लगे। गिरफ्तारिया होने लगी। अपने लिए मैने यह कार्यक्रम बना लिया कि सभी जिलो मे दौरा करके सत्याग्रहियो को उत्साहित करूं। एक-दो दिनों के भीतर सारे जिले मे दौड़ जाता। जहा-जहा नमक वना होता अथवा वनने की तैयारिया होती, सत्याग्रहियो से जाकर मिल लेता। जहातक हो सकता, सार्वजनिक सभाएं भी कर लेता।

मैं दो-चार दिनो के अन्दर ही, आधी रात को पहुंचनेवाले स्टीमर से, पटना पहुंचा। वहा गगा-घाट पर ही लोगो ने कहा कि पटना-शहर मे उस दिन सत्याग्रह आरम्भ किया गया है। उसका रूप यह था कि कुछ सत्याग्रही बाकरगज मुहल्ले से निकलकर झडा लिये शहर मे जा रहे थे, जहा वे नमक बनानेवाले थे। जब वे सुलतानगंज थाने के सामने पहुचे तो पुलिस ने उन्हें रोक लिया। अभीतक उनका कसूर इतना ही था कि वे झडा लेकर, पांच-सात आदमियो का जलूस वनाकर, सडक से जा रहे थे। वे गिरफ्तार भी नही किये गए थे; पर पुलिस के सिपाहियो ने कतार बाधकर उनका रास्ता रोक लिया था। वे दिन-भर वहीं खड़े रहे। रात को भी वहीं सड़क पर ही सो गये थे।

मैं सीधे उस स्थान पर गया। देखा कि सिपाही सडक रोके खड़े और सत्याग्रही खुशी से बीच सडक पर सोये है। उनके सोने के लिए मुहल्ले के लोगों ने बिस्तरे भी दे दिये थे, समय पर उनको भोजन भी करा दिया था। मेरे जाने पर वे उठे। मुझसे बहुत प्रेमपूर्वक मिले। रात को तो कुछ होने-वाला न था, मैं सदाकत-आश्रम चला गया। दूसरे दिन खूब सवेरे ही फिर उस स्थान पर पहुचा। मै तो सारे सूबे का चक्कर लगाया करता था और आश्रम मे बैठे-बैठे श्री ब्रजकिशोरबाबू सभी जगहो मे आवश्कतानुसार आदेश तथा सहायता भेजा करते थे। इस बार अभीतक कांग्रेस कमिटी गैरकानूनी नही करार दी गई थी और न सदाकत-आश्रम ही जब्त हुआ था। इसलिए यह काम वहां से चलता रहा। गिरफ्तारियां भी उन्ही लोगों की होतीं जो नमक बनाते, और सबकी नहीं।

दूसरे दिन सवेरे वहां पुलिस की भीड़ बहुत थी। घुड़सवार भी आ गये थे। सुना कि डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट और पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट भी थाने में मौजूद है। इधर जनता की भीड़ भी बढ़ने लगी। मैने समझा कि सत्याग्रही

या तो गिरफ्तार कर लिये जायंगे या मार-पीटकर छोड दिये जायंगे। मुझसे एक आदमी ने आकर कहा कि डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मुझे थाने पर बुलाते हैं। मैं वहां गया। उन्होने मुझसे कहा कि सत्याग्रहियों को मै हटा लू, नही तो उनको कार्रवाई करनी पड़ेगी। मैने कहा, आप उन्हे गिरफ्तार कर सकते है। उन्होने कहा कि वह भीड को भी हटावेगे और ऐसा करने में उनको सख्त कार्रवाई करनी पड सकती है। मैने स्वयसेवको को हटाने से इन्कार कर दिया। इसपर उन्होने मुझसे कहा कि इसकी जवाबदेही मेरे ऊपर रहेगी और वह मुनासिब कार्रवाई करेगे। मैने समझा कि हो सकता है, वह लाठी या गोली भी चलवावें। मैने बेहतर समझा कि और साथियों से सलाह कर लू। यह मैने उनसे कहा। उन्होने कहा कि इसके लिए वह आध घटे का समय देगे। जब मै चलने लगा तो उन्होने अपनी घडी निकाली और कहा कि मैं अपनी घड़ी उनकी घड़ी से मिला लू। यह मुझे बुरा मालूम हुआ। मैने कह दिया कि मै इसकी जरूरत नही समझता। वह अपनी घड़ी देखते रहे। मैने यह भी कह दिया, यदि आध घंटे के भीतर मै उनके सन्तोष के योग्य उत्तर न दूं तो वह जो मुनासिब समझे करे। मैं सीधे मोटर पर सदाकत-आश्रम गया। सबकी राय हुई कि हम कुछ नही कर सकते, मजिस्ट्रेट जो चाहे करे। मैने तुरन्त टेलीफोन द्वारा सुलतानगज थाने मे यही उत्तर दे दिया। फिर यह समझकर कि अब वहा कुछ-न-कुछ होगा, मै जल्दी से मोटर पर वहा के लिए रवाना हुआ।

रास्ते मे, बाकरगंज मे, उधर से मस्जिट्रेट को मोटर पर लौटते देखा। उन्होंने भी मुझे देखा। मुसकराते हुए वह आगे बढ गये। मैने समझा कि वहा कुछ कार्रवाई करके वह लौट रहे है। वहा पहुचने पर मालूम हुआ कि उन्होंने पहले सत्याग्रहियों को चले जाने की आज्ञा दी, जब वे नही हटे तो कुछ दूरी पर खड़े घुड़सवारो को घोडे दौडाने की आज्ञा दें दी। जब घोडे चले तो लड़के सड़क पर लेट गये। इस तरह रास्ते को उन्होने रोक लिया। घोडे वहांतक दौड़ते आये, पर उनके पास पहुंचकर रुक गये। तब वे लड़के उठा-उठाकर एक मोटर-लारी मे रख दिये गए। इस प्रकार गिरफ्तार कर वे हटा दिये गए।

हमने निश्चय कर लिया कि सत्याग्रही पांच-पांच का जलूस बनाकर दिन-भर वहां जाते रहें। जब एक जत्था गिरफ्तार हो जाय तो दूसरा चले। ऐसा ही दिन-रात हो। अप्रैल का महीना आधा से अधिक बीत चुका था। गर्मी काफी पड़ रही थी। हमारे सत्याग्रहियों को भी धूप लगती थी। पुलिसवाले तो दिन-रात खड़े रहते ही थे। एक-दो दिनों तक इस तरह चला। तब मैंने तरीके में कुछ परिवर्तन कर दिया। दिन-रात गिरफ्तारी

का इन्तजार न करके समय मुकर्रर कर दिया गया। दिन-रात में चार या पांच जत्थे नियत समय पर जाते। वे शुरू में तो गिरफ्तार कर लिये जाते, पर पीछे जब दर्शकों की बहुत भीड़ जुटने लगी तो घुड़सवार घोडे दौड़ाते और लोगों को डंडों से पीटते। सत्याग्रही तो इस धक्कमधक्की में कभी गिरफ्तार होते, कभी नही भी होते; पर जनता पर खूब मार पडती। यह विशेषकर सुबह और तीसरे पहर के समय, जब जत्था जाता तभी, हुआ करता। मै भी समय पर पहुच जाया करता और जनता की भीड मे रहकर सब देखा करता। शायद पुलिसवाले मुझे पहचानते थे, इसलिए मुझे कभी चोट न लगी। पर प्रोफेसर अब्दुल बारी को बहुत चोट लगी थी।

यह सिलसिला कई दिनों तक चलता रहा। रोज भीड बढती गई। मोर्चे का स्थान सुलतानगंज थाने से पश्चिम की ओर हटता-हटता पटना-कालेज के सामने तक आ गया। हमारे आदमी और साधारण जन भी बराबर शान्ति बनाये रखते। जो मारपीट होती, पुलिस की ओर से ही। एक दिन का जिक्र है, मिस्टर सैयद हसन इमाम की बीवी ने कही से आते समय पुलिस को मारपीट करते देखा। कई आदमियो के सिर फूट गये थे। इसका उनके दिल पर बहुत असर हुआ। उन्होंने जाकर हसन इमामसाहब से कहा कि बहुत खूनखराबा होने की सम्भावना है। उस समय तक मुझे मामलू नही था कि हसन इमामसाहब इस बात मे कुछ दिलचस्पी ले रहे हैं। इस सम्बन्ध मे मै उनसे मिला न था और न उनसे कुछ बाते करने का मुझे मौका ही मिला था। अपनी बीवी की बात सुनकर उन्होंने मुझे तुरन्त टेलीफोन से बुलाया। मैने सब बाते ब्योरे से कह सुनाई। वह बहुत भावुक सज्जन थे। सब बाते सुनकर उनको भी क्रोध हो आया। वह आवेश मे आ गये। उन्होंने कहा कि वह पूरी मदद करेंगे। उनका यह उत्साह बढ़ता गया। इसका हाल मै आगे चलकर बताऊगा।

इसी बीच ईस्टर छुट्टी आ गई। मै इस सत्याग्रह को धार्मिक युद्ध समझता था। मैने सोचा कि यह यदि धार्मिक चीज है तो इसके द्वारा किसी-को अपने धर्म-पालन मे बाधा न पहुंचनी चाहिए। मैने डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट को एक पत्र लिख दिया कि पुलिस-कर्मचारियो में कुछ क्रिस्तान भी है, जो ईस्टर मे कुछ धार्मिक क्रिया करते होगे, इसलिए सोमवार को जत्था नही जायगा, फिर मंगलवार से नियमानुकूल जत्थे जाया करेंगे। शुक्रवार को भी दोपहर के समय जाने के लिए जो जत्था मुकर्रर था, उसको मैंने रोक दिया; क्योंकि घुडसवारों में अधिक मुसलमान ही थे। मैने यह पत्र सच्चे दिल से लिखा था। डिस्ट्रिक्ट मिजिस्ट्रेट ने पत्र पढ़ने पर टेलीफोन द्वारा मुझसे पूछा कि मैंने जो लिखा है, वह क्या सचमुच धार्मिक खयाल से ही

लिखा है। मैंने कह दिया कि वास्तव में सच्चे दिल से ही लिखा है। इसपर उन्होंने कहा कि मै उनसे मिलू, वह विचार करेगे कि यह झगड़ा किस तरह सुलझ सकता है।

दूसरे ही दिन सोमवार था, मैं गया। बहुत देर तक बाते हुई। मैंने कह दिया कि यहा झगड़ा बहुत छोटा है। पाच आदमियों का जलूस सड़क होकर जाना चाहता है। इसमे कोई कानून के विरुद्ध बात नही है। वह जलूस को निकल जाने दे, उसे रोके नही, सारा झगड़ा मिट जायगा। जब जत्था नमक बनाकर कानून तोडे, तो गिरफ्तारकिया जाय और कानूनन जो सजा हो, दी जाय। उन्होने दूसरी सड़क से जलूस ले जाने की बात कही। मै इसपर राजी न हुआ। बात इतने ही तक होकर रह गई। दूसरे दिन सवेरे जो जत्था गया वह गिरफ्तार कर लिया गया। गिरफ्तारी के बाद भीड खुद हट गई। मार-पीट की नौबत ही नहीं आई। यह भी देखा गया कि पुलिस की सख्या बहुत कम है, घुडसवार तो है ही नही। पुलिस के असिस्टेट सुपरिण्टेण्डेण्ट ने गिरफ्तारी की। सत्याग्रही तुरन्त कचहरी में पेश किये गए। मुकदमा चल ही रहा था कि दूसरे जत्थे के आने का समय हो गया। वह जत्था सीधे रास्ते से चला गया। किसीने उसको नही रोका। हम लोग कचहरी मे ही थे कि यह खबर मिली। उन सत्याग्रहियो को भी कचहरी उठने तक की कैद की सजा हुई। हुकुम सुनाकर हाकिम उठ गये। हम सब सत्याग्रहियों के साथ ही वह भी वहां से निकले। अब साफ हो गया कि जत्थे को पुलिस नही रोकेगी। संध्या को भी जत्था गया, पर कोई रोक-टोक नही हुई। इसके बाद जत्था भेजना बन्द कर दिया गया। पर नमक बनाने का काम जारी रहा, इसलिए लोग गिरफ्तार होते रहे। पटना-शहर मे भी गिरफ्तारियां होती रही।

: ८८ :

नमक-सत्याग्रह के बाद का कार्यक्रम

उधर गाधीजी कुछ दिनो के बाद गिरफ्तार हो गये। धरासना में, जहां नमक का सरकारी गोला है, सत्याग्रही धावा बोलने लगे। वहा बाहर मैदान मे ही नमक बहुत जमा किया पड़ा रहता है। स्वयसेवक उसे लूटने तो जाते नही थे, पर सरकारी आज्ञा के विरुद्ध उस स्थान पर पहुचना चाहते थे। इसलिए वहां वे खूब लाठियो से पीटे जाते। पहले गाधीजी, उसके बाद श्री अब्बास तैयबजी और श्रीमती सरोजिनी नायडू उन स्वयंसेवकों का नेतृत्व करते रहे। वे एक-पर-एक गिरफ्तार होते गये। वहा स्वयंसेवकों के बेरहमी से पीटे जाने, लाठियो की चोट से बेहोश होने, बेहोशी की हालत में घसीटकर झाडियो मे छोड दिये जाने और वहा से काग्रेसी खाटो पर उठा ले जाकर काग्रेसी अस्पताल मे पहुचाये जाने की रोमाचकारी खबरें छपती रही। इनसे उत्साह बढ़ता ही जाता था, घटता न था। यह जानते हुए भी कि बहुत जोरो से मार खानी है, वहा सैकडो आदमी रोज जाते। यह बात जबतक बरसात शुरू न हो गई और वहा जाना-आना असम्भव-सा न हो गया, तबतक बराबर जारी रही।

बिहार-सूबे मे समुद्र-तट तो था नही। पर सभी जगहो पर कुछ-न-कुछ नमकीन मिट्टी मिल जाती, उसे जमा करके उसका पानी चुला लेते और उसे हाडी मे गर्म करके सुखा देते, कुछ नमक-जैसी चीज निकल आती। मैने खुद कही नमक नही बनाया, पर जहा जाता वहा के बने हुए नमक को सभाओ मे बेचता या नीलाम करता। उससे खर्च के कुछ रुपये भी मिल जाते और खुलेआम कानून भी टूटता; क्योकि बिना 'कर' दिये नमक बेचना वैसा ही जुर्म है जैसा नमक बनाना। पर मै बहुत दिनो तक गिरफ्तार नहीं हुआ।

पडित जवाहरलालजी की गिरफ्तारी शुरू में ही हो गई। उनके स्थान पर पंडित मोतीलालजी काम करने लगे। वह भी प्राय: जून के अन्त तक गिरफ्तार नही किये गए। मुझे भी वर्किंग कमिटी का मेम्बर बना लिया था। इस बीच में जब-तब प्रयाग में वर्किंग कमिटी की बैठक भी होती। वहां से आवश्यकतानुसार आदेश निकलते। जिस प्रकार की मदद लोग

मांगते, दी जाती। सारे देश मे सरकार की दमन-नीति जोरों से चल रही थी। गिरफ्तारियां जितनी हो सकती थी, उतनी सरकार न करती। उसने यह नीति ठहरा ली कि कुछ ही कानून तोड़नेवाले गिरफ्तार किये जायं, अधिकांश मार-पीटकर ही छोड़ दिये जाय। इसलिए, जहा कही लोग जमा होकर नमक बनाते, पुलिसवाले पहुंचते—हाड़ी और चूल्हा तोड़-फोड़ डालते, जो लोग वहा रहते उनमेसे एक-दो को गिरफ्तार करते और दूसरो को लाठियों से पीटकर चले जाते। इससे नमक बनाना बन्द न होता, फिर नई हांड़ी पहुंच जाती, नया चूल्हा बन जाता और नमक बनानेवालो की तादाद ज्यों-की-त्यो बनी रहती। गांववाले यह काम लुक-छुपकर तो करते नही थे, क्योंकि खुलेआम करने की आज्ञा थी। मै बराबर दिन-रात दौरा कर रहा था। सभी जगहो मे देखता कि लोग गांव के किसी मुख्य स्थान मे, केले के थम्भ वगैरह गाड़कर, झंडे और बन्दनवार लगाकर, घिरी जगह बना लेते। वही चूल्हा और मिट्टी से पानी चुलाने के लिए छोटी कोठी बना लेते। गाव के सभी लोग जानते कि कहा नमक बनता है। किसी आगन्तुक व्यक्ति अथवा पुलिस को नमक बनाने की जगह का अनायास ही पता लग जाता।

मुझे कुछ दिनों तक गवर्नमेण्ट ने गिरफ्तार नही किया। मै ऊपर कह चुका हूं कि सत्याग्रह आरम्भ होने के पहले मुझे नमक-सत्याग्रह की सफलता में सन्देह था, पर तब भी मैने इसके लिए पूरा प्रयत्न किया। जैसे-जैसे गांधीजी अपनी यात्रा मे डाडी की ओर आगे बढ़ते जाते थे, देश मे उत्साह उमड़ता जाता था। यह सब देखकर मेरा विश्वास भी दृढ़ होता गया कि इसमें पूरी सफलता होगी। तब मै और भी जोर लगाता गया। पंडित मोतीलालजी का भी कुछ ऐसा ही हाल था। उन्होने भी, प्रयाग के अपने आनन्द-भवन मे ही, जैसे प्रयोगशाला मे कोई प्रयोग होता है, वैसे ही, फिल्टर कागज के जरिये मिट्टी से नमक निकाला। उन्होने उसे बहुत गर्व के साथ हम लोगो को दिखलाया। हम लोगों को भी इसका गर्व रहा। उनकी आज्ञा और सम्मति से, बिहार की स्थिति की ओर ध्यान रखते हुए, मैंने यह कार्यक्रम बनाया कि बिहार मे जून तक नमक बनाया जाय—अर्थात इसीपर अधिक जोर रहे; उसके बाद विदेशी वस्त्र-बहिष्कार पर जोर लगाया जाय, साथ ही मद्य-निषेध भी चले; बरसात में नमक नही बन सकता, इसलिए जून के बाद विदेशी वस्त्र-बहिष्कार और मद्यनिषेध के लिए पहरे वगैरह का काम चालू किया जाय; बरसात समाप्त होने पर चौकीदारी-टिकस बन्द करने का कार्यक्रम चलाया जाय।

इस कार्यक्रम का यह अर्थ नही था कि जब नमक बन रहा हो तब

विदेशी वस्त्र-बहिष्कार का काम हो ही नही। अर्थ केवल इतना ही था कि उस समय एक चीज पर जोर देकर जनता का ध्यान उसीपर ज्यादा खीचा जाय और उसमें पूरी सफलता प्राप्त की जाय। इस प्रकार, एक काम पर जोर देने से वह अधिक तेजी से चलता।

मुझे खबर मिली थी कि आरम्भ में सरकार का विचार मुझे गिरफ्तार करने का नही था। मै तो सरकार के विचार की परवा न करके काम करता ही जाता था। कुछ दिनो के बाद पता चला कि जिला मजिस्ट्रेटों को प्रान्तीय सरकार की अनुमति मिल गई है—अगर वे चाहें तो मुझे गिरफ्तार कर सकते है। मेरा कार्यक्रम ऐसा रहता कि मैं किसी जिले मे चला जाता, एक मोटर मगनी की या भाडे की ले लेता, सवेरे पाच-छः बजे स्नानादि से निवृत्त होकर एक तरफ निकल जाता, दिन-भर बारह-पन्द्रह जगहो मे छोटी-मोटी सभाएं करता, रास्ते मे जहा-जहा नमक बनता होता, उसका मुआइना करता, रात में दस-ग्यारह बजे दौरे से लौटना। इस तरह हर जिले के काफी बड़े हिस्से का दौरा कर लेता। दो या तीन दिनो मे एक जिले का दौरा समाप्त करके दूसरे जिले मे निकल जाता। मैने देखा, गावों मे इस बात की स्पर्धा होती कि उनके अधिक आदमी गिरफ्तार हों। जहां नमक न बना रहता वहा के लोग, जबतक नमक वहा न बनता, लज्जित रहते। मै लोगो को विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार, मद्य-निषेध और नमक बनाने की बात समझाता। अक्सर लोग चौकीदारी-टिकस और लगान देना बन्द करने की बात पूछते। उनसे कह देता कि यह चालू कार्यक्रम पूरा हो जाने पर उसकी आज्ञा निकलेगी। तबतक लोग उसके लिए तैयारी करे। लोग इसे समझ जाते।

: ८९ :

विदेशी वस्त्र-बहिष्कार और मद्य-निषेध

शहरों का कार्यक्रम, नमक के अलावा, अधिकतर वस्त्र-बहिष्कार और मद्य-निषेध का होता। प्रयाग मे वर्किंग कमिटी की बैठक के समय यह मालूम हो गया कि देश की कई जगहो मे विदेशी वस्त्र-बहिष्कार का काम जोरो से चल रहा है। यह काम बिहार मे भी शुरू हो गया। व्यापारियों और जनता दोनो मे बडा उत्साह था। इसलिए यह काम बहुत आसानी से आगे बढने लगा। जिस तरह गाव-गाव मे नमक बनाने की होड़-सी लग गई, उसी तरह बड़े-बड़े शहरो मे यह होड़ लग गई कि वहां की दूकानों और आढ़तों मे जितना भी विदेशी कपड़ा हो, उसकी बिक्री बन्द कर दी जाय। महात्माजी ने लिखा था कि इनपर तथा मद्य की दूकानो पर पहरे का काम अधिकतर स्त्रियो के ही हाथ मे रहे और वे इसे पूरा करने का भार अपना समझ ले। इसलिए कही-कही स्त्रियां दूकानों पर पहरा देने लगी। किसीने कहींपर एक तरीका जारी कर दिया और वह प्रायः सभी जगहों में चल पड़ा। वह यह था कि सभी कपड़े के दूकानदार अपनी दूकान के विदेशी वस्त्रों को बाधकर उसपर कांग्रेस की मुहर लगाकर रख देते और लिखकर वादा कर देते कि जबतक कांग्रेस का हुक्म न होगा उस गाठ को फिर नही खोलेगे। व्यापारी अक्सर आपस मे ही कमिटी बना लेते, जिसपर कांग्रेस की देख-रेख रहती अथवा जिसमे कांग्रेस के प्रतिनिधि भी रहते। वे इस कमिटी पर सारे विदेशी वस्त्र के इस प्रकार बधवा देने और बिक्री न होने देने का भार डाल देते। यदि कोई व्यापारी वादा-खिलाफी करता तो उसे वह कमिटी जुर्माने का दण्ड भी देती और इस तरह उनपर पूरा शासन रहता। जो व्यापारी राजी न होता, उसकी दूकान पर पहरा बैठाया जाता और उसकी बिक्री बन्द हो जाती।

आज भी यह याद करके बहुत प्रसन्नता होती है कि बिहार के प्रायः सभी शहरों के और बहुतेरे गावो के छोटे-छोटे व्यापारियों ने भी अपने सभी विदेशी कपड़ों को गांठों में बाधकर कांग्रेस की मुहर लगवाकर अलग रख छोड़ा। सारे सूबे में पहरे का काम थोड़ा ही करना पड़ा और वह बहुत सफलतापूर्वक हुआ। पहरा शुरू करते ही गांठों का बंधना शुरू हो जाता

और दो-चार दिनों मे ही काम पूरा हो जाता। यह दृश्य मैंने प्रायः सभी जगहों में देखा। विचार तो था कि आधा जून बीत जाने के बाद इस कार्यक्रम पर जोर दिया जायगा; पर मेरा खयाल है कि जून का अन्त होते-होते यह काम भी सारे सूबे मे पूरा हो गया था। जो काम होता था, उसमे देखा-देखी का बड़ा प्रभाव होता था। यदि खबर मिल गई कि किसी एक शहर के व्यापारियो ने गांठ बाधना शुरू कर दिया तो दूसरे शहर के व्यापारी इसपर विचार करने लगते और वहा के काग्रेसी भी उनपर जोर डालने लगते, बस, वहा भी काम शुरू हो जाता और जल्द ही समाप्त भी। पडित मोतीलालजी से कानपुर, दिल्ली, पजाब इत्यादि के बड़े-बड़े व्यापारी मिलते और उनसे बाते करके उन केन्द्रो मे किस तरह यह काम पूरा कराया जाय और इसमे भारतीय मिल वालो से किस तरह मदद ली जाय, इसपर विचार करते। प्रतिज्ञा-पत्र का मसविदा तैयार कराकर सर्वत्र भेज दिया गया था। जनता और व्यापारी अपनी-अपनी प्रतिज्ञा पर दस्तखत करते।

किसी-किसी सूबे मे मद्य-निषेध पर अधिक जोर दिया गया। वहां इसीको लेकर सरकारी दमन चला। लोगो को कैद और गोलियो तक का शिकार बनना पड़ा। ऐसी रोमाचकारी घटना सीमाप्रान्त मे हुई। बहुत-से पठान गोलियो के शिकार हुए। सारे देश मे सनसनी फैल गई। श्री विट्ठलभाई पटेल ने, जो असेम्बली के प्रथम निर्वाचित सभापति (स्पीकर) थे, अपने पद से इस्तीफा दे दिया। वह सीमाप्रात के गोलीकाड की जाच में जा लगे। उनकी रिपोर्ट को सरकार ने जब्त कर लिया। उसका बहुत प्रचार न हो सका। पर जितनी कुछ खबर छपती थी, उसीका असर सारे देश में बिजली की तरह बहुत तेजी से काम करता। जब सभी जगहो पर एक-से-एक उत्साह-वर्धक कार्रवाइयां हो रही हो तब यह चुनना फर्ज हो जाता है कि किस-किसका जिक्र किया जाय। मुझे इस बात का अफसोस है कि अभीतक देशव्यापी सत्याग्रह का विस्तृत इतिहास नही लिखा गया। पर कुछ ऐसी बाते हैं, जिनका जिक्र कर देना अच्छा होगा।

बिहार पर्दा-प्रधान प्रदेश है। जब मै इगलैंड मे था, यहां पर्दा हटाने का एक विशेष प्रयत्न आरम्भ हुआ था। दरभगा-जिले के युवक श्री रामनन्दन मिश्र अपने घर के लोगो की इच्छा के विरुद्ध अपनी स्त्री को पर्दे से बाहर ले आये। उसे वह साबरमती-आश्रम मे भी कुछ दिनों के लिए ले गये। महात्माजी ने श्री मगनलाल गाधी की पुत्री श्री राधा को उनकी शिक्षा और पर्दा-निवारण के काम के लिए बिहार भेजा। श्री मगनलालजी यहां का काम और अपनी पुत्री को देखने आये। वह अचानक बीमार पड़ गये और पटने में उनकी मृत्यु हो गई। इसका असर विचित्र पड़ा। पर्दा-

निवारण का काम जोरों से आरम्भ हुआ। इसके लिए एक प्रान्तीय सम्मेलन हुआ, जिसमें अगुआ श्री व्रजकिशोरप्रसाद भी हुए। काम चलता रहा। जो काम गया-कांग्रेस के समय छोटे पैमाने पर आरम्भ हुआ था, वह बढ़ता ही गया।

जब १९३० का सत्याग्रह आरम्भ हुआ और गांधीजी ने मद्यनिषेध तथा विदेशी वस्त्र बहिष्कार को खासकर स्त्रियों का काम बताया, तो स्त्रियों में उत्साह की लहर बढ चली। शहरों मे जहां-जहां दूकानों पर पहरे का काम होता, स्त्रियां ही करती। दूकान पर उनके खड़ी हो जाते ही कोई खरीददार उस तरफ झांकने की हिम्मत न करता। दूकानदार भी सहम जाते और उनके साथ भद्रता पूर्वक व्यवहार करते। पटने मे इस प्रकार का पहरा दो-चार दिनों के लिए कुछ दूकानो पर बिठाना पड़ा था। इसमें मुख्य काम करनेवाली श्रीमती विन्ध्यवासिनीदेवी थी। ऐसी-ऐसी स्त्रियां भी इसमे शरीक हुई, जो कभी घर के बाहर न निकली होगी। सवेरे ही आठ-नौ बजे तक काग्रेसी कार्यकर्त्ता उनको अपने-अपने घरो से बुला लाकर नियत दूकान पर बिठा जाते। फिर समय हो जाने पर उन्हें उनके घरो पर पहुंचा भी देते। एक दिन का जिक्र है, किसी घर की एक नववधू आ गई। स्वयसेवक उसे घर वापस पहुंचा देना भूल गया। रात हो गई। उसे कोई ले जाने नहीं आया। एक दूसरी काम करनेवाली स्त्री के पति अपनी पत्नी को अपने घर ले जाने के लिए आये, तो उन्होने इस लड़की को एक दूकान पर खड़ी देखा। पूछने पर मालूम हुआ कि उसे घर ले जाने के लिए कोई नहीं आया है, इसलिए वह अभीतक वहा खड़ी है। उन्होंने उसे अपनी मोटर पर चढा लिया और चाहा कि उसके घर पहुचा दे। पर वह अपना घर भी नही पहचान सकती थी, क्योकि घर से बाहर कभी निकली न थी। शहर के सभी घरों को प्रायः एक तरह का देखकर अपना ही बता देती। हमारे यहा रिवाज है कि स्त्रियां अपने पति का नाम नही लेती। इसलिए वह अपने पति का नाम भी नही बता सकती थी, जिससे उसके घर का पता चले। वह शायद कैथी लिपि में अपना नाम लिख लेती रही हो, इससे ज्यादा पढ़ी-लिखी भी न थी। वह मोटरवाले सज्जन कैथी नही जानते थे कि उसके पति का नाम उससे लिखवाकर घर का पता लगा लें। कुछ देर तक यहां-वहां मोटर दौड़ाते रहे। फिर उसके पति का नाम उससे लिखवाकर किसीसे पढवाया। तब घर का पता लगा। इस तरह उसे उसके घर तक पहुंचा दिया। यह घटना मैंने इसलिए लिख दी है कि पाठक इससे देख सकेंगे कि स्त्रियों में कितना उत्साह था और किस तरह अशिक्षिता स्त्रियां भी इस काम में आ लगी थीं।

: १० :

बिहार में बीहपुर का सत्याग्रह

एक बार मै प्रयाग गया था। वहा वर्किंग कमीटी की बैठक थी। वहा से पटना वापस आया तो सुना कि भागलपुर-जिले के 'बीहपुर' गांव मे नये ढग का सत्याग्रह शुरू हो गया है। इसकी कुछ खबर प्रयाग में ही मिल गई थी। पटना मे कुछ अधिक बाते मालूम हुई। तब मैने तुरन्त वहां जाने का निश्चय किया। 'बीहपुर', गगा के उत्तर, भागलपुर से थोड़ी ही दूर है। बी० एन० डब्ल्यू० रेलवे का छोटा-सा जकशन है, जहा से भागलपुर-घाट की गाड़ी जाती है। यहा का सारा इलाका बरसात मे जलमग्न हो जाता है। ऐसे दियारो मे जैसा देखा जाता है, यहा के लोग बडे बहादुर और लट्ठधर है। यहा काग्रेस के लिए लोगो मे बहुत उत्साह था।

१९२९ मे ही एक बार मै बहुत आग्रह से यहां बुलाया गया था। लोग मुझे आसपास के गाव मे भी ले गये थे। बहुत उत्साह और प्रेम के साथ वहां के लोगो ने मेरा स्वागत किया था। वहा से कुछ दूर गौरीपुर गाव है, जहां मै गया था। लौटने के समय बहुत जोर से पानी बरसने लगा। बीच मे एक नदी पार करनी पडती थी। हाथी की सवारी थी। नदी पार करके हाथी पर हम लोग खूब भीग गये। जब बीहपुर मे सभा-स्थल पर पहुचे तो देखा कि बहुत बड़ी भीड़ जमा है—यद्यपि खूब पानी बरस रहा है तथापि एक आदमी भी हटता नही है। मुझे भी उसी बरसते पानी में खड़ा होकर भाषण करना पडा। इस तरह वहां के उत्साह का नमूना मैने कुछ पहले ही देख लिया था। वहा का कुछ इतिहास भी मैने सुन लिया था। उसमेसे एक बात यहा देना उचित होगा। वहा एक अगरेज की जमीदारी थी। रैयत से एक जमीन की खातिर बहुत दिनों से झगडा चला आता था। कचहरियों मे मुकदमे चले थे। गोरेसाहब ने जमीन की रक्षा के लिए कुछ गोरखों को नौकर रखकर रखवारी का काम उन्हे सुपुर्द किया था। सुना जाता है कि बरसात के दिनों मे एक रात को उस इलाके के लोगो ने सभी गोरखों को, जिनकी संख्या बीस-पच्चीस थी, मारकर बढी हुई गंगा में फेक दिया। पता भी न लगा कि किसने मारा और उनके शवो का क्या हुआ।

ऐसे स्थान की जनता में सत्याग्रह के लिए उत्साह होना कोई आश्चर्य

की बात नही थी; पर वे अहिंसात्मक रह सकेंगे, इसीका डर था, और आश्चर्य भी। वहांपर एक नये ढंग का सत्याग्रह, गांजे की एक दूकान के सम्बन्ध मे, आरम्भ हो गया। रेलवे-प्लाटफार्म के पास ही पश्चिम की तरफ कुछ जमीन है, जिसमे कांग्रेस का आश्रम बना हुआ था। वहां एक छोटी कोठरी थी, जिसमे खादी-भडार था, जहा सूत खरीदकर रक्खा जाता था, बेचने के लिए रूई तथा कपड़े रखे जाते थे। दूसरी कोठरी में कांग्रेस के कार्यकर्त्ता और स्वयंसेवक रहा करते थे। उन दिनों ये मकान झोपडे जैसे थे। अब तो वहां आश्रम के लिए सुन्दर पक्का मकान बन गया है, जो रेल के यात्रियो को रेल पर से ही दीख पडता है।

स्टेशन के दक्षिण में पांच-सात दूकानो का एक छोटा-सा बाजार है। इन्हीमेंसे एक दूकान में गाजा बिका करता था। कांग्रेसी स्वयंसेवको ने गांजे की दूकान पर पहरा बैठाया। पुलिस ने एक दिन कार्यकर्त्ताओं को आश्रम से मार-पीटकर निकाल दिया। आश्रम पर भी कब्जा कर लिया। रूई-सूत-खादी इत्यादि को इधर-उधर फेक-फाक दिया। जब आस-पास के लोगों को मालूम हुआ कि पुलिस ने इस तरह आश्रम पर कब्जा कर लिया है तो उन्होने आश्रम पर दखल करना चाहा। इसके लिए पहले चार-पाच आदमियो का जत्था हाथ मे झडा लिये वहां गया। जाहिर है कि जहा पुलिस का जत्था हथियारबन्द बैठा था, वहा चार-पांच आदमी खाली हाथ जाकर जबरदस्ती दखल नही कर सकते थे। यह सिर्फ सत्याग्रह का एक जरिया था। पुलिस भी इसे वैसा ही समझती थी। वह उन लोगो को, जो जत्था बनाकर जाते थे, गिरफ्तार कर लेती थी। यह काम प्रतिदिन एक बार, तीसरे पहर चार-पाच बजे के करीब, होता।

इस बात की खबर चारों ओर फैली। जैसे पटना मे तमाशा देखने के लिए भीड जमा हो जाया करती थी वैसे ही वहा भी जत्थे के जाने के समय भीड़ लग जाया करती। कभी-कभी पुलिस जत्थे को गिरफ्तार न करके उनको मारपीट कर छोड देती। प्रतिदिन दर्शकों की भीड़ बढती गई। जब पटने में मुझे सविस्तार समाचार मिला तो मै कुछ मित्रो के साथ भागलपुर गया। वहां से दूसरे दिन दोपहर को बीहपुर पहुचा। उस दिन हम लोगो के जाने की खबर फैल गई। इसलिए भी भीड़ बहुत बड़ी जमा हो गई। दिन मे तीन बजे के करीब सब लोग एक बगीचे में जमा हुए। मैने उनको समझाया कि चाहे जो हो, अपनी ओर शान्ति रखनी चाहिए, किसी तरह कोई आदमी कोई हिंसात्मक कार्य न करे। जत्थे का समय हो जाने पर सब लोग सड़क पर और उसके इधर-उधर खड़े हो गये। कुछ लोग उस छोटे-से बाजार में भी जमा हो गये। हम लोग भी जहां-तहां खड़े थे। मैं बाजार के

सामने एक ऐसे स्थान पर था, जहां से वह स्थान नजर आता था, जहां पुलिस के आदमी खड़े थे और जहांतक जत्था जा सकता था। वहा पहुचने पर जत्था चाहे पीटा जाता, चाहे गिरफ्तार कर लिया जाता। भीड़ प्रायः पन्द्रह-बीस हजार आदमियो की थी।

सत्याग्रहियो का जत्था निकला और सडक पर होकर उस स्थान तक पहुचा, जहा पुलिस खड़ी थी। वह सहूलियत के साथ गिरफ्तार कर लिया गया, मार-पीट नही हुई। हम लोगो ने समझा, उस दिन का काम समाप्त हुआ, अब सब लोग चले जायंगे। जनता अब तितर-बितर होना ही चाहती थी कि आश्रम के अन्दर से पुलिस के सुपरिण्टेण्डेण्ट कुछ लट्ठधारी सिपाहियों के साथ निकले और सडक पर खड़ी जनता पर लाठियां बरसाने का उन्होने हुकुम दिया। सडक वहापर ऊची है, आश्रम और बाजार दोनों ही नीची जमीन मे है। पुलिसवाले बेतहाशा लाठियां चलाते, भीड़ को चीरते, स्टेशन तक आ गये। न मालूम, कितने आदमियों को लाठियां लगी; पर कोई कुछ न बोला। वहा से पुलिस के सुपरिण्टेण्डेण्ट के साथ वे लोग बाजार मे पहुच गये, जहा मै खडा था। कुछ दूर पर, एक दूकान के ओसारे मे, सुपरिण्टेण्डेण्ट ने चारो ओर निगाह दौडाई। वहां से चिल्लाते हुए कहा कि मारो सालों को। पुलिस उसी तरह लोगो पर बेतहाशा लाठियां चलाते आगे बढ़ी। मुझपर चार-पाच लाठिया पडी। एक युवक स्वयसेवक ने बीच मे पडकर कुछ लाठियो के जोर को अपने ऊपर झेल लिया। इसलिए, यद्यपि मुझे भी चोट लगी तथापि उतनी न लगी जितनी लग सकती थी। मुझसे कुछ दूर पर श्री बलदेवसहाय और श्री मुरलीमनोहरप्रसाद थे। उनको भी कुछ चोट लगी। कुछ दूर पर प्रोफेसर अब्दुल बारी भी थे। उनके बहुत चोट आई। वह गिर गये। उनका सारा बदन लहू-लुहान हो गया।

इस प्रकार मारते-पीटते पुलिस का जत्था सुपरिण्टेण्डेण्ट के पीछे-पीछे फिर आश्रम मे चला गया। भीड तो लाठी चलने के पहले से छट चली थी। लोग जहां-तहा चले गये। हम लोग जो भागलपुर से आये थे, वही ठहरे रहे; क्योकि हमारी गांडी सात-आठ बजे रात को वहा से छूटती थी। भीड़ के छंटने और पुलिसवालो के चले जाने पर उस बाजार में रहनेवाले एक डाक्टर आये। वह हम लोगों के घावो को धोकर पट्टी बाधने लगे। हम लोग वहीं बाजार के सामने खुले मैदान में घास पर पड़े थे। इसी बीच पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट, सिपाहियो और पुलिस-इन्सपेक्टर के साथ, फिर उधर आता नजर आया। हम लोगो ने सोचा, शायद फिर हमपर लाठियों का वार हो; पर वैसा हुआ नही। वे लोग कुछ दूर अलग ही ठहर गये। इन्स्पेक्टर ने भागलपुर के प्रसिद्ध वकील और कांग्रेसकर्मी श्री पटलबाबू को, जो हम लोगों के

साथ आये थे, गिरफ्तार कर लिया। वे लोग उनको साथ लेकर वापस चले गए। हम लोग रात की गाड़ी से भागलपुर पहुंचे। वहां बड़ी सनसनी फैल गई। मैं भी एक-दो दिन ठहर गया।

भागलपुर, बिहार-भर मे, विदेशी कपडे की आढ़तों का, सबसे बड़ा केन्द्र है। और-और जगहों में प्रायः व्यापारियो ने विदेशी कपडे की गाठें बांधकर मुहरबन्द रख छोड़ी थी, पर अभीतक भागलपुर में ऐसा नही हुआ था। उक्त घटना के बाद वहां भी स्त्रियो ने दूकानो पर पहरा देना आरम्भ किया। मेरे पास दूकानदार आकर कहने लगे कि वे गाठ बाधकर मुहर लगवा देने के लिए तैयार है। उन्होने आपस की कमेटी भी बना ली। दो-चार दिनों के अन्दर वहा भी सब विदेशी वस्त्र, बिक्री के बाजार से उठाकर, गाठों के अन्दर मुहरबन्द करके, रख दिये गए। बीहपुर की घटना का तत्काल फल यह हुआ कि यह काम बिना परिश्रम के वहा हो गया।

हम लोगो के साथ असेम्बली के दो सदस्य, श्री अनन्तप्रसाद और श्री कमलेश्वरीसहाय, बीहपुर गये थे। भीड-भाड़ मे उनको भी कुछ धक्का तो जरूर लगा था, पर पुलिस के सामने ठीक न पडने से वे लाठियो की चोट से बच गये थे। पर सारा खेल उन्होने अपनी आखों देखा था। वे भी वहां से बहुत उत्तेजित होकर लौटे थे। उन लोगो की भी राय यही थी कि लाठी बिलकुल बिना कारण चली थी; क्योकि लाठी चलने के पहले ही भीड़ का हटना शुरू हो गया था—दो-चार मिनटो के अन्दर ही लोग जहा-तहा चले गए होते, और हम लोगों पर किया गया प्रहार तो और भी बिना कारण था। इसलिए, उन्होने अपने इस्तीफे भेज दिये। आज ठीक स्मरण नही है; पर शायद कुछ दूसरे लोगों ने भी, जब इस घटना का हाल सुना, तो इस्तीफे भेज दिये।

सबसे विचित्र एक दूसरी बात हुई। पुलिसवालों में दो दल हो गये। कुछ तो ऐसे थे जो सुपरिण्टेण्डेण्ट के हुकुम को ठीक मानते और खूब लाठियां फटकारते थे। पर कुछ ऐसे भी थे, जो लाठी के प्रहार को गलत समझते थे और होशियारी से हाथ बचा देते थे। हम लोगों पर जो लाठियां पड़ी वे एक ही दल की थीं, दूसरे की नही। सुपरिण्टेण्डेण्ट आगे-आगे चल रहा था और ये लोग उसके पीछे-पीछे चारों ओर लाठियां हरहराते जाते थे। जब लाठी की चोट से अब्दुल बारी प्रायः वही बेहोश होकर गिर गये, तब भी एक सिपाही ने उनपर फिर लाठी उठाई। वह अचेत गिरे हुए बारीसाहब पर लाठी मारना ही चाहता था कि एक दूसरे सिपाही ने उसकी लाठी को अपनी लाठी पर रोक लिया। एक तीसरे सिपाही ने तो बारीसाहब को मारनेवाले उस सिपाही को ही लाठी मार दी। दोनों दल इस प्रकार आपस

में लड़ते-झगड़ते आगे निकल गये और अब्दुल बारी उस भारी चोट से बच गये। यह बात खुद अब्दुल बारी ने हम लोगों से कही।

हम लोग जब भागलपुर में ठहरे थे तो प्रायः गंगा-स्नान करने जाते थे। वहां दूसरे दिन कुछ आदमियों से घाट पर भेंट हो गई। वे भी स्नान करने आये थे। उन्होंने यह सारा किस्सा कह-सुनाया और इसके बाद की घटना भी कह दी। वे पुलिस के उस दूसरे गोल के थे, जिसने अब्दुल बारी पर दूसरा वार रोका था। उन्होंने कहा—"जब हमने देखा कि हमारा वह साथी, जिसको हमने लाठी मारने से रोका था और जिसपर हमने खुद लाठी का वार कर दिया था, सुपरिण्टेण्डेण्ट के पास जाकर नालिश करेगा तो हम जल्द दौड़कर उससे आगे पहुंच गये और जाकर पहले हमने ही नालिश कर दी कि दूसरे दल के सिपाहियों को लाठी चलाना नहीं आता, भीड़ पर लाठी चलाने के बदले वे अपने लोगों पर ही लाठियां झाड़ देते हैं, इसीलिए कुछ पुलिसवाले भी लाठी के शिकार बन गये हैं; यह सब हम कह ही रहे थे कि दूसरे दलवाले भी पहुंच गये, उन्होंने सुपरिण्टेण्डेण्ट से नालिश की कि इन्हीं लोगों ने उनपर लाठियां मारी हैं।" पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट ने दोनों दलों के बयान सुनकर वहां कुछ नहीं किया, उन्हें सीधे भागलपुर की पुलिस-लाइन में भेज दिया।

एक और विचित्र घटना हुई। पुलिस के इन्स्पेक्टर छपरा जिले के रहनेवाले थे। वह मेरे स्कूल के साथी थे। हम दोनों चार बरस तक एक साथ पढ़े थे। एक साथ ही एण्ट्रेन्स भी पास किया था। उसके बाद मैं कलकत्ते पढ़ने चला गया। वह पुलिस की नौकरी में चले गये। तबसे हम दोनों की मुलाकात नहीं हुई थी। पर यह मैं जानता था कि वह पुलिस में हैं। अब वह कुछ बूढ़े-से भी हो गये थे। उनके केश प्रायः सफेद हो गये थे। जब उस दिन हम लोग घास पर पड़े थे, सुपरिण्टेण्डेण्ट के साथ वह दूसरी बार पटलबाबू को गिरफ्तार करने आये। उन्होंने आहिस्ता से मुझे प्रणाम किया। मैंने उन्हें पहचाना नहीं; पर उन्होंने मुझे पहचान लिया था। पीछे दरियाफ्त करने पर उनका नाम मालूम हुआ। मैंने खादी-भंडार के एक कार्यकर्त्ता रामविलास शर्मा को बीहपुर भेजा कि वहां के पुलिस-अफसर से कहकर खादी-सूत-चर्खे इत्यादि जो इधर-उधर फेंके पड़े थे, उन्हें एकत्र करके लावें और भागलपुर-भंडार में जमा करा दें। रामविलास बहुत बुलक्कड़ और शोख मिजाज के हैं। उन्होंने सुन लिया था कि इन्स्पेक्टर मेरे साथी हैं। वहां पहुंचने पर उन्होंने देखा कि वही महाशय वहां के इंचार्ज हैं। उनसे जाकर वह मिले। कुछ बातें करने पर पता लग गया कि इन्स्पेक्टर साहब उस दिन की घटना से कुछ लज्जित-से हैं। इसपर शर्मा ने मेरा हवाला

देकर उनसे कहा कि मैं उनका साथी हूं और उस दिन उनके प्रणाम करने पर भी उन्हें ठीक न पहचान सकने का मुझे बहुत अफसोस है। वह जैसे-जैसे उनसे ये बाते करते जा रहे थे, उनके चेहरे का रंग बदलता जा रहा था। उन्होंने शर्मा से कहा, इन सब बातो की चर्चा मत कीजिये। इतना कहकर दूसरी ओर उन्होंने मुह फेर लिया। रामविलास ने मौका देखकर कुछ और बाते छेड दी। फिर मेरा जिक्र करते हुए कहना शुरू कर दिया कि मुझे इस बात का बहुत अफसोस रहा कि इतने दिनो के बाद देखादेखी हुई तो पुराने साथी से कुछ बाते भी न हो सकी। इसपर फिर उन्होने राम-विलास को आगे बाते करने से रोका। रामविलास ने देखा कि उनकी आखे डबडबा गई थी।

मै जानता हू कि इस प्रकार की घटनाए अनेक स्थानो पर हुई। एक दूसरे पुलिस-अफसर का भी यही हाल हुआ। उन्होने रात को मुझसे मुला-कात की। आसू बहाते हुए मेरे पैर पकड़ लिये। कहा कि उस जिले मे उनके रहते-रहते ऐसी घटना हुई कि मै लाठी से पीटा गया और वह कुछ भी न कर सके! यहापर यह भी लिख दू कि १९३३ की जनवरी मे जब दुबारा सत्याग्रह के समय मै पटना-जेल से हजारीबाग-जेल मे पहुचाया गया, तो हजारीबाग-रोड-स्टेशन से हजारीबाग तक जो पुलिस-इन्स्पेक्टर मुझे पहुंचाने गये थे वह यही इन्स्पेक्टर थे। पर वह रात का समय था। जाड़े के कपडे मे वह भी खूब छुपे थे और मै तो था ही। लारी की अगली सीट पर वह बिना कुछ बोले बैठ गये। हम लोग पीछे बैठे और खूब सवेरे ही जेल के दरवाजे पर पहुच गये। हम लोगों के उतरते-उतरते ही वह कही हट गये। रास्ते मे वह कही एक शब्द नही बोले थे, जिससे मै पहचान सकू। जेल के फाटक पर भी देखा नही। पीछे जेलर ने हमसे उनका नाम कहा। यह भी कहा कि रास्ते-भर वह किसी तरह अपनी पहचान बचाते आये है। जेलर भी छपरे के रहनेवाले थे। वह हम लोगो के एक दूसरे साथी के छोटे भाई थे। इस कारण हम उन्हे लड़कपन से ही जानते थे।

बीहपुर में लाठी-प्रहार के बाद भी जत्था वैसे ही प्रतिदिन जाता रहा। वह गिरफ्तार होता या पीटा जाता। जबतक गाधी-अर्विन-समझौता न हुआ और कांग्रेस ने सत्याग्रह बन्द न किया, यह क्रम बराबर जारी रहा। पीछे जत्थेवाले बहुत बेरहमी से पीटे जाने लगे। एक स्वयंसेवक आजतक हम लोगों के पास सहायता के लिए आया करता है। उसको बहुत पीटा था। अंत मे साइकिल का पम्प उसके कान में लगाकर इस तरह हवा भर दी थी कि उसके कान की झिल्ली फट गई।

१९३२ में जब सत्याग्रह फिर आरम्भ हुआ तब गवर्नमेण्ट ने बीहपुर

के आश्रम को जब्त नही किया—यद्यपि समझौते के जमाने मे बहुत कोशिश करने पर भी इसे छोडने पर राजी नहीं हुई थी। जमीन के मालिक ने आश्रम की जमीन कांग्रेस को लिख दी थी। हम लोगों का उसपर पूरा कानूनी हक था। पर सरकारी कर्मचारियों ने किसी दूसरे आदमी को खडा करके जमीन लिखवा लेने का प्रयत्न किया था। जब हमने नालिश करने की धमकी दी तब वह आश्रम हमे वापस मिला। जिस समय पुलिस ने आश्रम पर कब्जा किया था, जब्ती का कोई हुक्म नही निकला था। पीछे भी कभी बाजाब्ता जब्ती नहीं हुई थी। तो भी वे उसे छोडना नही चाहते थे। किसीसे लिखवाकर उसपर बिलकुल झूठा दावा कर रहे थे। वही हमको साफ मालूम हो गया कि सरकारी कर्मचारी अपना पक्ष-समर्थन करने-कराने के लिए चाहे जो कुछ भी कर सकते है! इसके लिए मुझे उस समय के चीफ सेक्रेटरी मिस्टर हैलेट से और बिहार के लाट से भी, समझौते के जमाने मे, भेंट करनी पड़ी थी।

: ९१ :

मेरी पहली गिरफ्तारी

पटना लौटने पर मुझे मालूम हुआ कि अब मेरी गिरफ्तारी के लिए सरकार का हुकुम हो गया है। मैने पूर्ववत अपना दौरा जारी रखा। कई जिलो मे घूम आया, पर कही गिरफ्तार न किया गया। पीछे मालूम हुआ कि मैं एक जिले से दूसरे जिले में बहुत जल्दी घमकर चला जाता हू। इसलिए जिला-मजिस्ट्रेट मुझे गिरफ्तार करके एक बला अपने ऊपर नही लेना चाहते। इस तरह मै बचता चला गया। इसी बीच एक दिन श्री विट्ठलभाई पटेल आये। वह हाल ही मे केन्द्रीय असेम्बली के सभापति-पद को छोड़ चुके थे। इससे लोगों मे उनके प्रति श्रद्धा और भी बढ गई थी। पटना में एक सार्वजनिक सभा की गई। मिस्टर हसन इमाम उसमे खादी का जांघिया और अधबहिया पहनकर आये। वही खबर मिली कि उसी दिन सवेरे पंडित मोतीलालजी गिरफ्तार कर लिये गए। मैने समझ लिया, अब मेरी गिरफ्तारी मे भी देर न होगी। मैने चलते समय मिस्टर हसन इमाम साहब से मुलाकात की। उन्होने बहुत उत्साहपूर्वक आश्वासन दिया। कहा—"बच्चू, तुम्हारे गिरफ्तार हो जाने से काम रुकेगा नही।" मै उसी सभा के बाद, श्री विट्ठलभाई पटेल को बिहार से बिदा करके, खुद छपरा जिले के दौरे पर चला गया।

वहां भी तीन दिनों का कार्यक्रम था। जिले के पश्चिमी भाग से प्रारम्भ करके तीसरे दिन पूर्वी भाग समाप्त कर पटना पहुच जाना था। पहली रात जीरादेई मे और दूसरी छपरे मे बितानी थी। तीसरी रात को पटने पहुंचना था। दो दिन बीत चले थे। दूसरे दिन शाम का कार्यक्रम पूरा करते बहुत रात हो गई। संध्या के बदले रात बारह बजे छपरा पहुंचा। बिहार-बंक मे पहुंचने पर मालूम हुआ कि भाई कही गये है—छपरे में नही हैं और पुलिसवाले प्रायः दस-ग्यारह बजे तक मेरे इन्तजार में बंक मे ठहरे रहे है। मै समझ गया कि गिरफ्तारी के लिए खोज कर रहे होगे। मैं भोजन करके सो गया। सवेरे उठकर स्नानादि से निवृत्त हो, करीब साढ़े आठ बजे, मोटर पर गड़खा के लिए रवाना हुआ। वही पर पहली सभा होनेवाली थी। पुलिसवालों को मालूम ही था। इसलिए वे लोग गड़खा में जाकर मेरा इन्त-

जार करने लगे। एक दल उस रास्ते पर ठहरा रहा, जिधर से मैं गड़खा पहुंचनेवाला था। मैं अभी छपरा शहर के बाहर भी नही गया था कि गड़खा की ओर से एक मोटर पर पुलिसवाले लौटते मौना मुहल्ले मे ही मिल गये। उन्होंने इशारा करके मेरी गाड़ी को रुकवाया। मुझसे कहा कि मेरी खोज में वे पहले दिन से घूम रहे है। मै उनके साथ उनकी गाड़ी पर हो लिया। उन्होने कहा कि बक मे यदि किसीसे मिल लेना हो अथवा कुछ ले लेना हो तो उधर से चल सकते है। मैं बंक मे गया। वहा घर के लोगो से भेंट कर ली। कुछ खा भी लिया। घर गये। एक-आध घंटे के भीतर ही तैयार होकर उनको गाड़ी पर फिर सवार हो गया। अभीतक इस बात की खबर शहर मे पहुची भी न थी कि मै सीधे जेल ले जाया गया।

जेल का यह मेरा पहला अनुभव था। एक बार मैं छपरा-जेल मे कुछ मित्रो से मिलने गया था। पर इससे ज्यादा उसके या किसी भी जेल के सम्बन्ध मे नही जानता था। जेल मे उस समय प्रायः तीन-चार सौ सत्याग्रही कैदी थे। उनको मालूम हो गया कि मै फाटक के अन्दर पहुंच गया। वे जय-जयकार करते फाटक के पास पहुच गये। जेलर कुछ घबरा गये। उन्होंने अन्दर का फाटक नही खोला। इसपर लोग और भी शोर करने लगे। मैने जेलर से कहा कि मुझे अन्दर ले चले, सब शान्त हो जायगे। उन्होंने कहा जबतक ये लोग फाटक के नजदीक रहेगे, फाटक खोलने का नियम नही है, इसलिए ये लोग जब चले जाय तभी वह मुझे अन्दर ले जायगे। मै सत्याग्रहियों से कुछ कह भी नही सकता था; क्योंकि छोटे सूराख से कहातक बाते हो सकती थी। मै जानता था कि यह उत्साह केवल स्वागत के लिए है, मेरे अन्दर जाते ही और भेट होते ही सब शान्त हो जायंगे। पर जेलर इस बात को नही समझ सकते थे। कुछ देर के बाद फाटक खोलकर वह मुझे अन्दर ले गये। सभी लोग इतना ही चाहते थे। सब मेरे साथ हो लिये और मुझे जहा रहना था वहांतक पहुचाकर अपने-अपने स्थान को चले गये। इसी बीच मे बाहर से जय-जयकार की आवाज आने लगी। वहा की जेल में एक दोमहला मकान है। उसपर भी कुछ लोग रहते थे। उन्होने देखा कि एक बड़ी भीड़ जेल की तरफ जय-जयकार करती आ रही है। वह भीड़ बाहर सड़क पर थी। जेलर और भी घबरा गये थे। उन्होंने जेल के वार्डरों को फाटक पर से बन्दूक छोड़ने का हुकुम दिया। आवाज हम लोगों ने सुनी और समझा कि शायद कही गोली तो नही चली। पर बात ऐसी नही थी। जेल एक तरह से बीच शहर में है, चारों ओर सड़क है। लोगों ने केवल जेल के इर्द-गिर्द जलूस घुमाकर और नारे लगाकर काम समाप्त किया। पर जेलर अपनी घबराहट में खामखा बन्दूक छुड़वाने

लगे। खैरियत थी कि खाली फैर किया जाता था। सुना कि पीछे जब डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट को इसकी खबर मिली तो उन्होंने जेलर को डांटा कि यह बड़ी भूल थी। यदि जनता बन्दूक छूटते देखकर बिगड़ जाती तो वह झूठे फैर से उसे कैसे रोक सकते, खासकर जब उन्होंने पुलिस या मजिस्ट्रेट को भी खबर नही दी थी।

मेरा पहला अनुभव विचित्र रहा; क्योंकि पीछे जब औरों के अनुभव से मैंने अपने अनुभव को मिलाया तो मालूम हुआ कि औरों को ऐसा अनुभव नही हुआ था। उस समय तक छपरे मे कैदियो के वर्गीकरण का कोई इन्तजाम नही था। मेरे सम्बन्ध में कोई खास हुकुम भी न था। इसलिए मैं लोहे के तसले मे जो कुछ वहां मिलता, वही खाता। घर से लोगो ने खाना भेजा; पर मैंने मना कर दिया और उसे नही खाया। जेलर का कहना था कि मैं जबतक हाजती (under trial) हू तबतक घर का खाना खा सकता हूं, पर फाटक पर जाकर खाना होगा! मै तो योंही इन्कार करता, इस शर्त ने और भी मजबूर कर दिया। दूसरे दिन भाईसाहब छपरा पहुचे। मुकदमे की पेशी के समय, जो जेल मे ही हुई, आकर मिले। जेलर कायदा बर्तने में इतने सख्त थे कि मेरे घर से कुछ आम आये तो उन्हे भी फाटक पर आकर ही खाने के लिए सवाद भेजा। मैंने इन्कार कर दिया। आम भी वापस कर देने को कह दिया। तबतक आम लानेवाला आदमी वापस चला गया था। फिर उन्होंने खुद आकर कहा, तो मेरे कारण पूछने पर कहने लगे कि जेल मे एक कैदी दूसरे कैदी को अपना खाना नही दे सकता, इसलिए उसे बाहर की चीज भी हम अन्दर खाने नही देते। पीछे मालूम हुआ कि यह उनका मनगढ़न्त नियम था, किसी दूसरी जेल मे ऐसा नहीं हुआ।

जिन मजिस्ट्रेट के सामने मेरा मुकदमा पेश हुआ, उनकी मेरी पहले से मुलाकात थी। मेरे वकालत के दिनो मे वह मेरे मवक्किल रह चुके थे। उनके निजी मुकदमे मे मै काम कर चुका था। इत्तफाक की बात, १९३३ में जब मै पटना में गिरफ्तार हुआ, वह वहां के सब-डिवीजनल अफसर थे। उस बार भी उनको ही मेरी सजा सुनानी पडी। मुकदमे मे कुछ कहना-सुनना तो था नही, कोई दफा लगाकर मुझे छः महीने कैद की सजा उन्होने दे दी।

मुझे कुछ भी मालूम न था कि मुझे वही रखेगे या कही अन्यत्र ले जायंगे। पर इतना मैं जानता था कि सूबे के प्रमुख लोग हजारीबाग-जेल में रखे गये है। जेलर ने भी कुछ नही कहा कि मै वही रहूंगा या हजारीबाग भेजा जाऊंगा। इस तरह पांच-छः दिन बीत गये। एक दिन संध्या को भोजन करके मैं अपने वार्ड के छोटे आंगन में, एक कुर्ता पहने और एक

अंगोछा हाथ मे लिये, घूम रहा था। जेलर ने आकर कहा कि डिप्टीसाहब फाटक पर आये है, मुझसे मिलना चाहते है। उन दिनो वहा के पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट छुट्टी पर गये थे, एक डिप्टी मजिस्ट्रेट उनकी जगह काम कर रहे थे। मैने समझा, वही आये होगे। मै गया। फाटक खुला। जैसे ही मै अन्दर घुसा, डिप्टीसाहब दूसरी ओर मुह फेरकर बाहरवाले दरवाजे की तरफ चलते बने! मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। वार्डर ने मुझे अन्दर लेकर भीतर का दरवाजा बन्द करके दौड़कर बाहर का दरवाजा खोला। उसके खुलते ही एक दूसरे सज्जन अन्दर आ गये, जो मिस्टर खा डिस्ट्रिक्ट-मजिस्ट्रेट थे। उन्होंने कहा कि मुझे तुरन्त चलना है। मैने पूछा कि सामान अन्दर है, जाकर ले आऊ। उन्होंने कहा कि उसकी मै परवा न करू, वह सब आ जायगा। जेल का एक नियम यह भी था कि पहने हुए कपडो और बिस्तर के सिवा दूसरा कुछ अन्दर नही जाने देते थे। इसलिए थोडे कपड़े फाटक पर ही थे। मैने टोपी निकाल ली और उसे पहनकर डिस्ट्रिक्ट-मजिस्ट्रेट की मोटर पर बैठ गया। उसके चारो ओर पर्दे लगे हुए थे।

मजिस्ट्रेट ने ड्राइवर से कहा कि पश्चिम ले जाओ। मेरे पूछने पर कि कहा जाना है, उन्होंने कहा कि पीछे बताऊगा। जेल से छपरा-जकशन स्टेशन पश्चिम पड़ता है। पर जब स्टेशन के सामने मोटर पहुची तो उधर मोड़ने के बदले उन्होंने सीधे पश्चिम जाने को कहा। कुछ देर मे हम लोग शहर के बिलकुल बाहर पहुच गये। तब उन्होंने पर्दा गिरा दिया। मुझसे माफी मागते हुए कहने लगे कि उनको अफसोस है कि इस तरह की कार्रवाई उन्हें करनी पड़ती है, मुझे हजारीबाग जाना होगा, पर रास्ता मामूली रास्ता नही है। मुझे वह 'माझी' स्टेशन पर—जो छपरा-बनारस-लाइन मे सरयू-तट पर एक छोटा स्टेशन है—बनारस की गाड़ी मे सवार करायेगे, वहा से मै बनारस के रास्ते मुगलसराय ले जाया जाऊंगा; जहा से ग्राण्डकौर्ड-लाइन द्वारा सोनईस्ट-बंक स्टेशन तक ले जाकर उतार लिया जाऊगा, फिर वहा से मोटर पर हजारीबाग पहुचाया जाऊगा। मेरे लिए रेलवे-पुलिस के असिस्टैण्ट सुपरिण्टेण्डेण्ट अपना सैलून लेकर आ रहे है, कोई तकलीफ न होगी।

खैर, हम लोग मांझी स्टेशन पर जल्द ही पहुच गये। थोडी देर में डिप्टीसाहब भी मेरे सामान के साथ पहुच गये। गाड़ी भी आ गई। मै सैलून मे सवार हो गया। पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट ने मुझसे इतना ही कहा कि मै लोगो को अपना परिचय न दू। मैने कहा कि मै खुद थोड़े ही किसी-को अपना परिचय देता चलूंगा; पर यदि कोई मुझे पहचान ही ले तो मै क्या करूंगा। इसपर वह हँसे और मजे में हम दोनों साथ चले। रात का समय

था। हमारा डब्बा गाड़ी के आखिरी डब्बे के पीछे जोड़ा गया। इससे वहा तक कोई मुसाफिर भी नही पहुचता था। कुछ रात रहते ही हम बनारस पहुंच गये। वहा से मोटर पर मुगलसराय पहुचे। वह रिफ्रेशमेण्ट रूम में मुझे कुछ खिलाने के लिए ले गये; पर मैं अभी तैयार नही था। कुछ देर तक वहा बैठा। इतनेमे गाड़ी आ गई। इस बीच मे शायद दो-चार आदमियो ने मुझे पहचाना हो। खाने के लिए उन्होंने आम खरीद लिये। गाड़ी खुलने पर मैने मुह-हाथ धो, स्नानादि से निवृत्त होकर नाश्ता कर लिया। सोन-ईस्ट-बैंक स्टेशन पर गया-जिले के पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट मिले। उन्होने मुझे एक मोटर पर सवार कराकर, हजारीबाग के लिए एक इन्स्पेक्टर के साथ, रवाना किया। वहां मै एक बजे दिन के कुछ पहले पहुच गया। मित्रों के साथ वहा रखा गया। इस लम्बी-चौडी यात्रा की बाते जब मित्रों ने सुनी तो बहुत चकित हुए। मिस्टर खा ने छपरे मे ही पूछने पर इस तरह ले जाने का कारण बताया था—सरकार नही चाहती कि छपरा, सोनपुर, पटना और गया स्टेशनो पर लोगो की भीड़ जमे और प्रदर्शन हो, इसलिए यह रास्ता सोचकर निकाला गया है। साथ के इन्सपेक्टर ने भी कहा कि रास्ते में कही भी मोटर न ठहराने का हुकुम है और औरंगाबाद (गया) में जहा कस्बे के बीच होकर सड़क जाती है, वहा मोटर को तेज ले जाने का हुकुम है। ऐसा उन्होने किया भी।

छपरा-जेल से मेरे निकल आने पर जब जेलर मेरा सामान लाने अन्दर गये तो लोगों को मालूम हो गया कि मै वहां से हटा दिया गया। वहां के लोगों मे बड़ी उत्तेजना फैली। कुछ लोगों ने कोठे पर से चिल्लाना शुरू कर दिया कि मुझे किसी अज्ञात स्थान मे ले गये। शहर के किसी आदमी ने दौड़-कर बिहार-बक मे पहुच भाई को खबर दे दी। वह अपनी मोटर पर तुरन्त छपरा-स्टेशन पहुचे। वहा उन्हे मालूम हुआ कि मै किसी गाडी में नही सवार कराया गया हू। उन्होने समझा कि शायद किसी आगे के स्टेशन पर सवार करायंगे। पर उन्हें यह क्या पता कि सोनपुर की ओर न जाकर मुझे बनारस की ओर ले गये है। वह सोनपुर तक मोटर से पहुंचे। जब वहां भी मुझे न पाया तो निराश होकर फिर छपरे लौट गये। बाद मे जब मालूम हुआ कि मैं हजारीबाग पहुंच गया तो वह आकर मुझसे मिले।

: १२ :

हजारीबाग-जेल में

हजारीबाग-जेल के जेलर बाबू नारायणप्रसाद मेरे पूर्व-परिचित थे। उनके एक बड़े भाई मेरे स्कूल के साथी थे, जिनसे मेरी मित्रता थी। मैं उनके घर पर कभी-कभी जाया करता था। वह बड़े कार्य-कुशल और विचारशील जेलर थे। उन्होंने मुझे वही स्थान दिया जहा रामदयालबाबू, श्रीबाबू, विपिनबाबू प्रभृति रहते थे। जेल मे मेरा समय कुछ पढ़ने और सूत कातने मे बीतता था। पीछे सुपरिण्टेण्डेण्ट मेजर अय्यगर से कहकर मै उस कारखाने मे, जहा कपडा और नेवार बुना जाता था, बुनाई का काम करने लगा। इन पाच-छः महीनो मे मैने प्राय. दोसौ गज नेवार और १४-१५ गज कपड़े भी बुन लिये। पर वह कपडा चर्खे के सूत का नही था, जेल का ही था, इसलिए उसे वही छोड दिया। पर नेवार को चलने के समय दाम देकर खरीद लिया। मै जुलाई के पहले सप्ताह मे गिरफ्तार हुआ था और दिसम्बर के अन्त तक वहा रहकर रिहा हुआ। समय बीतते देर न लगी।

इस बीच मे श्री दीपनारायणसिह भी वहा पहुच गये। वह भी हमारे साथ ही उसी कमरे मे रहे। दक्षिण अफ्रीकावाले स्वामी भवानीदयाल भी उसी वार्ड मे रहते थे। दूसरे वार्ड मे जो मित्र रहते थे, वे भी जेलर से इजाजत लेकर जब-तब हम लोगो मे मिलते रहते थे या हम ही उनके वार्ड मे जाकर उसी तरह मिलते थे। किसी बात की तकलीफ नही थी। पुस्तको के सम्बन्ध मे कुछ रुकावट थी। कोई पुस्तक पुलिस अथवा मजिस्ट्रेट के 'पास' किये बिना, हम लोगो को नही मिलती थी। पास करनेवाले सज्जन कुछ बहुत पढे-लिखे नही मालूम होते थे। जिस पुस्तक के नाम मे किसी तरह 'पालिटिक्स' या 'पोलिटिकल' शब्द आ जाय, उसे वे हरगिज नही पास करते। जिसमें ये शब्द न आवे उस पुस्तक को, चाहे उनके दृष्टिकोण से वह कितनी भी खराब पुस्तक क्यो न हो, वे पास कर देते। उदाहरणार्थ, वहां की एक मजाक की बात सुन लीजिये।

किसीने 'इकनॉमिक्स' की एक पाठ्य पुस्तक, जो कालेजों मे पढाई जाती थी, मगाई। उसका नाम था 'टैक्स्ट बुक ऑव पोलिटिकल इकॉनामी'।

उसे उन्होंने नामंजूर कर दिया चूंकि उसके नाम मे 'पोलिटिकल' शब्द था ! पर 'ए० बी० सी० ऑव कम्यूनिज्म' और 'थ्योरी ऑव लेबर क्लास' के पास करने में वह नही हिचके ! पहली पुस्तक को न मालूम क्या समझकर पास किया, पर दूसरी के सम्बन्ध में हम लोगो का अनुमान हुआ कि उन्होंने समझा होगा, इसमे ऐसे लोगों के मनबहलाव की बाते होगी, जिनके पास बहुत अवकाश का समय रहता है !

मैंने जेल मे सोचा कि गांधीजी के लेख अधिकतर उनके साप्ताहिकों की फाइलो मे ही पड़े है। यद्यपि मद्रास के प्रकाशक श्री गणेशन ने उनको इकट्ठा करके पुस्तकाकार में प्रकाशित किया है और उसके लिए मैने एक लम्बी भूमिका भी लिखी है, तो भी मेरा विचार हुआ कि यदि एक-एक विषय के सभी लेखो का अलग-अलग संग्रह छापा जाय और आरम्भ की छोटी-सी भूमिका मे उन लेखो का सक्षिप्त अर्थ दे दिया जाय, जिससे पाठक उस विषय पर उनके विचारो को थोड़े शब्दों मे जान ले और तब उनका विस्तार-पूर्वक उनके अपने शब्दो मे एक जगह अध्ययन करे, तो अच्छा होगा। इस-लिए, मैंने उन लेखो को कई विभागो मे बाटा। जैसे अहिसा, स्वराज्य, सत्याग्रह, शिक्षा, खादी इत्यादि। फिर प्रत्येक विषय पर छोटा लेख लिखा, जिसमें उनके विचारो का साराश था। लेखो को चुन लिया। कुछ मित्रों ने अलग-अलग उनकी नकल भी तैयार कर दी। मेरी भूमिका भी पूरी हो गई। इसी समय मैं छूट गया।

बाहर आने पर समय न मिला कि उसे फिर एक बार देखकर छपवाऊं। गांधीजी से भेट होने पर उनसे पूछा कि ऐसा करना क्या वह पसन्द करेंगे। उन्होने अपनी अनुमति दे दी। यह भी कहा कि कुछ दिन पहले किसीने गुज-राती में ऐसा ही संग्रह छापा भी है। कुछ और मित्रो ने भी इसे पसन्द किया। विशेषकर पुरुलिया के श्री निवारणचन्द्र दास गुप्त ने इसे बहुत पसन्द किया था। उन्होने भूमिका मे कुछ सुधार भी बतलाये थे, जिनको मैने मान लिया था। १९३१ मे यह चीज प्रेस मे न जा सकी। जब १९३२ मे फिर हम लोग गिरफ्तार हो गये तो सदाकत-आश्रम भी जब्त हो गया। बस फिर वह लिखी हुई चीज मुझे नही मिली। न मालूम कहां रखी गई और किस तरह गायब हो गई !

जेल के अन्दर चर्खा चलाने और उद्योग-धन्धे के अलावा धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन भी हुआ करता था। छपरे के पं० भरत मिश्रजी भी साथ थे। उनसे श्री वाल्मीकीय रामायण की कथा और पं० विष्णुदत्त शुक्ल से 'दुर्गा सप्तशती' की कथा सुनी। स्वयं पहले-पहल मुख्य उपनिषदों को आद्योपात पढ़ गया।

हजारीबाग-जेल में सूबे के प्रायः सभी जिलों के प्रमुख काग्रेसी लोग भेजे गये थे। मैं बराबर सूबे में दौरा किया करता था। अधिकतर कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओं को जानता था। पर जेल में जितने दिनों तक एक साथ रहने का मौका मिला उतना कभी बाहर नही मिला था। वही स्वामी भवानी-दयाल के साथ बहुत दिनों तक रहकर एक-दूसरे को जानने-पहचानने का मौका मिला। वह स्मृति सदैव एक मीठी स्मृति बनी रहेगी। मुजफ्फरपुर-जिले के ठाकुर नवाबसिह एक पुराने विचार के वयोवृद्ध सज्जन थे—अथवा यो कहें कि अंगरेजी शिक्षा से अनभिज्ञ—तो बेहतर होगा। गांधीजी के असहयोग-आन्दोलन ने गांवो मे बहुतेरो को प्रभावित किया था। बिहार में विशेषकर गावो के लोगो पर ही अधिक प्रभाव पड़ा था। इसके विपरीत पास के ही सूबा युक्त प्रात मे अधिक प्रभाव शहरो पर पडा था। चम्पारन में गाधीजी के काम मे देहात के लोग परिचित हो गये थे। इसलिए किसानो मे, जो अधिकतर गांवो मे ही रहते है, उनका बहुत प्रभाव था। उसी प्रभाव में पड़कर ठाकुर नवाबसिह इस आन्दोलन में शुरू से ही आ गये थे। आये भी तो अकेले नही। उनके लड़के, भतीजा, पोता सबके सब साथ आये। सीतामढ़ी-सबडिवीजन मे जो कुछ होना हो, जो कुछ करना हो, ठाकुर नवाबसिह पर उसका भार पडता। वही नेतृत्व करते। आधुनिक रीति से शिक्षित न होकर भी वह इतने समझदार थे कि सब बातो को जल्द समझ लेते। काग्रेस की आज्ञा को पूरा करने और कराने मे यथासाध्य खूब चेष्टा करते। वह भी अपने पुत्र के साथ उसी जेल मे थे। उनको भी अधिक जानने का सुअवसर मुझे वही मिला। उन्होंने अपने जीवन के अन्त तक अपना विचार दृढ़ रखा। १९४२ के अगस्त मे, गाधीजी और दूसरो की गिरफ्तारी के बाद, जो हलचल शुरू हुई उसमे भी वह उसी उत्साह, निर्भीकता और दृढ विश्वास के साथ शरीक हुए, जिसके साथ वह शुरू मे आन्दोलन में आये थे। सीता-मढी नैपाल के निकट है। वह पुलिस की धांधली से बचकर काम करने के लिए नैपाल की तराई मे चले गये। वही से काग्रेस का काम करते रहे। वहीं बीमार पड़े और हमने जेल मे सुना कि उनका देहावसान हो गया।

स्वामी सहजानन्द भी जेल मे थे। बहुतेरे लोग उनसे गीता पढ़ते थे। मेरी भी इच्छा थी, पर समयाभाव से यह पूरी न हुई। पर सबसे अधिक मेरी घनिष्ठता श्री निवारणचन्द्र दासगुप्त से बढ़ गई। वह एक साधु प्रकृति के पुरुष थे। उन्होने गांधीजी के असहयोग-आन्दोलन को केवल एक राजनैतिक आन्दोलन ही न मानकर धार्मिक उत्थान का एक साधन भी माना था। उनके साथ हम लोगों ने पतंजलि के योग-सूत्र का अध्ययन किया। वहीं उनकी विद्वत्ता और गम्भीर गवेषणा-शक्ति का पता चला।

: ९३ :

गोलमेज-कांफ्रेंस : मोतीलाल नेहरू की मृत्यु

उन्ही दिनों, मेरे हजारीबाग पहुंचने के कुछ ही दिनों बाद, लंदन मे होनेवाली गोलमेज-कान्फ्रेन्स की बात छिड़ी। सबसे पहले पंडित मोतीलाल-जी से हुई मुलाकात की बात मि० स्लोकौम्ब ने प्रकाशित की। उसके बाद सर तेजबहादुर सप्रू और श्री जयकर बीच-बचाव करने लगे। उनके ही बीच-बचाव से पंडित मोतीलाल, पंडित जवाहरलाल और डाक्टर महमूद से, जो नैनी-जेल से पूना ले जाये गए, जहा महात्मा गाधी और वर्किंग कमिटी के कुछ दूसरे मेम्बर थे, बाते हुई। पर पटरी नही बैठी और मामला टूट गया। मैने अपने लोगों में, जो हजारीबाग-जेल मे थे, एक बात देखी। जब समाचार-पत्रों मे समझौते की कोई खबर छपती तो उसे वे बहुत उत्सुकता से पढते और सभी बातो पर आपस में बहुत बहस करते। ऐसा मालूम होता कि उनमें से बहुतेरे समझौते के लिए उत्सुक है। हा, कुछ लोग अवश्य ऐसे थे, जो इस बात पर डटे रहते थे कि जबतक स्वराज्य-सम्बन्धी सन्तोषजनक बात न तय पावे, समझौता नही होना चाहिए। पर दूसरे ऐसे लोग भी थे, जो समझते थे कि गोलमेज-कान्फ्रेन्स में कुछ-न-कुछ सन्तोषजनक बात हो जायगी, इसलिए इस समय यहा अधिक झगडा न उठाकर वहा जाना स्वीकार कर लेना चाहिए। जब समझौता न हो सका तो ऐसे लोगों को वह जरूर नापसन्द हुआ।

दिसम्बर मे जेल से छूटकर मैं सीधे बम्बई गया; क्योंकि उस समय बम्बई ही एक प्रकार से आन्दोलन का केन्द्र हो रहा था। वहा आजाद-मैदान में सभाएं होती और लाठियो द्वारा भग की जाती, बहुतेरे घायल होते। सब लोगों की सेवा-शुश्रूषा का प्रबन्ध काग्रेस-अस्पताल मे था। वहां का रुई-बाजार बहुत दिनों तक बन्द रहा। दूसरे प्रकार से वहां की जनता आन्दोलन में खूब भाग ले रही थी। वहां जाकर मै सब लोगों से मिला। सरदार वल्लभभाई से भी भेट हुई।

बिहार में चौकीदारी-टिकस बन्द करने का कार्यक्रम चल रहा था। सरकार सख्ती से उसे दबा रही थी। जिससे दो-चार आने का भी पावना रहता, उसका बहुत माल बरबाद कर दिया जाता। जहां किसी गांव के

लोगों ने टिकस बन्द किया, गांव ही लूट लिया जाता। मैंने एक गांव के सम्बन्ध मे जानकारी हासिल की, जो हम लोगों की ही जमीदारी में था। वहां पुलिस ने जाकर एक आदमी को गोली से मार डाला था और दूसरों को खूब पीटा था। एक दूसरे गांव मे मैंने खुद जाकर देखा था; वहा घर में घुसकर गल्ला रखने की कोठिया तोड़ डाली गई थी, सभी बासन-बर्तन चूर कर दिये गए थे, यहांतक कि चारपाइयों की बुनावट काट दी गई थी, मकान के लकड़ी के खम्भे भी काट दिये गए थे। एक गांव की यह कैफियत थी कि पुलिस के चले जाने के बाद वहां गाव मे न एक घड़ा था और न एक रस्सी, जिससे लोग कुएं से पानी निकालकर प्यास बुझा सकें। इस तरह की बाते अनेक गांवों मे हुई थी। हमारी गैरहाजिरी मे अनेक जगहों मे गोली भी चली थी। दमन बहुत जोरों से चल रहा था। पीछे जब सरकार ने यह देखा कि केवल जेल जाने से लोग नही डरते तो जुर्माना करना शुरू किया। जुर्माने की अच्छी-अच्छी रकमों की वसूली मे घरवालों के साथ ज्यादतिया की जाती, एक के बदले दस का माल बर्बाद किया जाता। हाईकोर्ट में किसीने अपील कर दी तो एक ऐसा फैसला हो गया कि हिन्दू के सयुक्त परिवार मे एक आदमी के कसूर के लिए सारे परिवार का संयुक्त धन नीलाम या जब्त नही किया जा सकता। इससे कुछ रुकावट पडी, तो जुर्माना और चौकीदारी-टिकस न देने के कारण जो लूटपाट होती उससे लोगो मे आतंक-सा फैलता दीख पड़ा। किन्तु इतने पर भी आन्दोलन चल ही रहा था, कही भी रुका नही था।

प्रायः इसी समय पंडित मोतीलालजी रिहा हो गये। उनका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया था। मैं प्रयाग जाकर उनसे मिला। वह इलाज के लिए कलकत्ता गये। कुछ दिनों तक वहां ठहरकर प्रयाग वापस आये। उन्होंने आन्दोलन-संचालन का भार अपने ऊपर ले लिया था, यद्यपि वह अस्वस्थ थे। मैं उनकी आज्ञा के अनुसार काम करता। इस समय काग्रेस की वर्किंग कमिटी को सरकार ने गैरकानूनी करार दे दिया था। इसी तरह प्रान्तीय तथा दूसरी बहुतेरी कमिटियां भी गैरकानूनी हो गई थी। इसलिए वर्किंग कमिटी की बाजाब्ता बैठक गैरकानूनी थी, पर बेजाब्ता तौर पर हम लोग बैठक कर सकते थे। उधर इंगलैंड में गोलमेज-कान्फ्रेन्स का काम प्रायः समाप्त हो चुका था। कुछ काम आगे न बढ़ा। प्रधानमन्त्री मैकडोनल्ड ने एक भाषण देकर उसे स्थगित किया—उसमें गोल-मोल बाते थी। उन लोगों की इच्छा जान पड़ी कि कांग्रेस को कान्फ्रेन्स में शरीक करने का एक और प्रयत्न किया जायगा। इस भाषण के कुछ पहले ही पंडितजी की राय से वर्किंग कमिटी के वे सदस्य प्रयाग बुलाये गए, जो बाहर थे। सबके पास

पत्र भेज दिये गए। इसकी सूचना अखबारो में नही दी जा सकती थी और दी भी नहीं गई थी। लाहौर मे पुलिस ने एक सदस्य की तलाशी ली। उनके पास वह पत्र मिल गया। यह बात अखबारों मे छप गई। हम लोगों ने देख लिया। तबतक मिस्टर मैकडोनल्ड का भाषण पत्रो मे आ गया। हम लोग सोच रहे थे कि यह बैठक यदि हुई तो सब लोग एक साथ ही गिरफ्तार कर लिये जायंगे, जैसा पहले वर्किंग कमिटी के साथ हो चुका था। पंडितजी ने आज्ञा दी कि अखबारो मे छपवा दो कि श्री मैकडोनल्ड के भाषण पर विचार करने के लिए वर्किंग कमिटी की बैठक अमुक तिथि पर प्रयाग मे होगी। उधर मालवीयजी भी अस्वस्थ अवस्था में इसी समय छूटे। वह भी निमंत्रित किये गए।

वर्किंग कमिटी के जो मेम्बर आ सकते थे, प्रयाग में आ गये। हम सब समझते थे कि गैरकानूनी बैठक में सब लोग गिरफ्तार हो जायगे, पर पडितजी कहते थे कि जब हम मिस्टर मैकडोनल्ड के भाषण पर विचार करने की घोषणा कर चुके है तब वे गिरफ्तार नही करेंगे। ऐसा ही हुआ भी। उस दिन तीसरे पहर से रात को देर तक बातचीत होती रही। एक निश्चय तक हम लोग पहुचे, जिसमे हमने मिस्टर मैकडोनल्ड के भाषण को ना-काफी समझा और उसे ना-मंजूर किया। पंडितजी अपनी अस्वस्थता की हालत मे भी बराबर काम करते रहे, हम लोगो के हजार कहने पर भी न माने। प्रस्ताव तैयार हो गया। पडितजी का विचार हुआ कि उसे तुरन्त प्रेस मे दे देना चाहिए; क्योंकि ऐसा न करने से लोगो मे यह जानकर ढिलाई आ जायगी कि कुछ सुलह होने जा रही है। मैने कहा कि इसे एक बार और देखकर सवेरे प्रेस मे दिया जाय। पडितजी ने इस बात को मान लिया। वर्किंग कमिटी की खबर इगलैंड पहुंच गई थी। वहा से श्री श्रीनिवास शास्त्री, सर तेजबहादुर सप्रू और श्री जयकर का तार उसी रात पडितजी को मिला, जिसमें उन्होने लिखा था कि वे हिन्दुस्तान लौट रहे है और जबतक उनसे वर्किंग कमिटी की मुलाकात न हो ले तबतक वह कोई आखिरी फैसला न करे। दूसरे दिन सवेरे जब मै पडितजी से मिला, उन्होने तार दिखलाया और कहा कि अब उस प्रस्ताव को अखबारो में मत दो, केवल इतना ही दे दो कि वर्किंग कमिटी तार पहुंचने के पहले ही फैसले पर पहुच गई थी, पर तार पाकर उसका प्रकाशन स्थगित रखती है। मै इस समय प्रयाग में प्रायः बराबर स्वराज्य-भवन में ही रहा करता था।

इन सब बातो का नतीजा यह हुआ कि सरकार ने वर्किंग कमिटी के सभी मौजूदा और भूतपूर्व मेम्बरों को छोड़ दिया। जबसे सत्याग्रह शुरू हुआ था, वर्किंग कमिटी के मेम्बर की गिरफ्तारी पर उसके स्थान में कोई

स्थानापन्न सदस्य बना दिया जाता था। इस तरह आरम्भ के और स्थानापन्न सदस्यों की संख्या खाली हो गई थी। सब-के-सब छोड़ गये। छूटते ही गाधीजी प्रयाग पहुच गये। सब लोग बुलाये गए। वहा बाते शुरू हुई। पडितजी का स्वास्थ्य दिन-दिन बिगडता गया। जवाहरलालजी इसी कारण मियाद पूरी होने के पहले ही छोड दिये गए थे। जब मै सोचता हू कि बीमारी की हालत मे भी पडितजी कितना काम करते रहे तो मुझे लगता है कि पडितजी की बीमारी के मामूली न होने और अवस्था काफी होने पर भी यदि उन्हे इतना अधिक परिश्रम न करना पडा होता तो शायद उनकी बीमारी बढती नही और देश को उनकी बुद्धिमत्ता एव दृढता से और भी कुछ दिनो तक लाभ उठाने का सुअवसर मिलता। उनके इन अन्तिम दिनों मे उनके साथ रहने का सौभाग्य मै अपने लिए बडे महत्त्व का समझता हू। उसी समय उनकी धीरता-गम्भीरता, मेधाशक्ति और देश-प्रेम का पूरा परिचय मुझे मिला। वह एक क्षण भी देश मे चलते हुए आन्दोलन, उसकी प्रगति तथा देश के भविष्य की बात छोड़कर कुछ दूसरा सोचते नही थे। अपने स्वास्थ्य की कुछ भी परवा न कर देशोद्धार की चिन्ता मे लगे रहते।

कलकत्ते के कविराज श्री श्यामादास वाचस्पति आये, परिश्रम करने से मना करते रहे, पर पडितजी कहा माननेवाले थे। अन्त मे उनकी हालत खराब हो गई। पंडित जवाहरलाल आ चुके थे। वह उनको लेकर लखनऊ गये। पडितजी इतने खुश-मिजाज थे कि उस समय भी मजाक से बाज न आये। चेहरे पर कुछ सूजन आ गई थी। जब मै उनके चलने के समय प्रणाम करने गया तो हँसते हुए उन्होने वहां उपस्थित लोगो से कहा—"मेरा चेहरा देखो, मै ब्यूटी काम्पीटीशन (सौन्दर्य-प्रतियोगिता) मे काम्पीट (स्पर्द्धा) करने जा रहा हूं।" सब लोग जबरदस्ती मुस्कराये; पर सबके दिल मे आशका थी कि शायद अब फिर उनके दर्शन न होंगे। वैसा ही हुआ। लखनऊ जाते ही उनका शरीरान्त हो गया। मै उनको लखनऊ के लिए रवाना करके पटना पहुचा ही था कि यह दुखद समाचार आ गया। मै उलटे पाव फिर प्रयाग गया; पर मेरे पहुचने के पहले ही उनके शव का दाहकर्म किया जा चुका था।

इस समय पडितजी की मृत्यु से सारे देश मे हाहाकार मच गया, शोक उमड़ आया। देश-भर में न मालूम कितनी शोक-सभाएं हुई। प्रयाग की सार्वजनिक शोक-सभा में मैं भी शरीक हुआ और मैने भी कुछ शब्द कहे थे। पर देश जो क्षति अनुभव कर रहा था, वह शब्दों से व्यक्त नही की जा सकती थी। उनके अभाव का अनुभव इस कारण और भी खलता और

सालता था कि ठीक उसी समय वर्किंग कमिटी के लोग देश की परिस्थिति पर विचार कर रहे थे, सरकार से कुछ बातचीत चल रही थी या चलने-वाली थी; ऐसे ऐन मौके पर पंडितजी की दूरदर्शिता और नीतिनिपुणता से देश वंचित हो गया।

: ९४ :

गांधी-अर्विन-समझौता

विलायत से लौटे हुए गोलमेज-सभा के सदस्यों की मुलाकात वर्किंग-कमिटी से हुई। वहां का सब हाल उन्होंने बताया। और सब चीजों के अलावा महात्माजी इसपर बहुत जोर दे रहे थे कि सरकार को इस बात पर राजी होना चाहिए कि आन्दोलन के दबाने मे उसके कर्मचारियों ने जो ज्यादतियां की है, उनके सम्बन्ध मे एक निष्पक्ष अदालत जांच करे। पर लार्ड अर्विन इस बात को सुनना भी नही चाहते थे। प्रयाग में ऐसा मालूम पड़ा कि बातें आगे बढ़ेगी ही नही, यही पर मामला समाप्त हो जायगा। महात्माजी भी अपनी बात पर डटे रहे। वायसराय से उनकी भेंट की बात चली; पर जबतक गांधीजी अपनी बात पर अडे रहते, यह होनेवाली न थी। अन्त मे एक दिन महात्माजी ने अपनी ओर से वायसराय के पास पत्र लिखा और उनसे मिलने की इच्छा प्रकट करते हुए समय मांगा। इसीसे मुलाकात का रास्ता खुल गया। दिल्ली में दोनो की मुलाकात हो गई। हम लोग वर्किंग कमिटी के सदस्य भी वहां बुलाये गए। मै भी जाकर डाक्टर अंसारी के मकान पर ठहरा, जहा दूसरे लोग भी ठहरे थे। महात्माजी की मुलाकात लगभग बीस दिनो तक रोजाना होती रही। कभी-कभी तो महात्माजी दिन-दिन-भर वायसराय के यहां रह जाते, कभी-कभी बहुत रात बीतने पर वापस आते। जिस दिन वही रह जाते, मीराबहन उनका भोजन ले जाती। वहा से वापस आने पर महात्माजी हम सबको इकट्ठा करके वहां की बातचीत का सारांश कह हम लोगों की राय ले लेते। जिस दिन रात मे देर करके आते और हम लोग सो गये रहते, तो भी सब उसी समय फिर उठकर उनसे सभी बातें सुन लेते।

गुजरात मे किसानों की बहुत जमीन आन्दोलन में जब्त कर ली गई थी; सरदार वल्लभभाई पटेल इसपर अड़े थे कि वह सब वापस होनी चाहिए; उधर बम्बई की सरकार इस बात को मानती न थी। अन्त मे, इस विषय की जांच होगी, इसीपर बात तय हुई। नमक के लिए ही सत्याग्रह आरम्भ हुआ था। महात्माजी इसपर बहुत जोर दे रहे थे कि इस सम्बन्ध में गरीबो को काफी सुविधा मिलनी चाहिए। पंडित जवाहरलालजी सारी

बातचीत से असन्तुष्ट थे। उनको डर था कि इस प्रकार के समझौते से देश पीछे हट जायगा। औरों का विचार था कि सन्तोषजनक समझौता यदि हो सके तो अच्छा होगा, बुरा नही। महात्माजी रोज सवेरे टहलने जाया करते थे, मैं भी साथ जाया करता। एक दिन मैंने कहा कि ऐसा उपाय कीजिये कि समझौता हो जाय, पर समझौता ऐसा हो, जिससे हमारी हार न जान पड़े, जीत ही जान पडे। महात्माजी हँसे और बोले कि समझौते से हार-जीत थोड़े ही मालूम होगी—यदि जीत है, तो चाहे समझौता जो भी हो, जीत है और लोग ऐसा ही अनुभव करेगे; यदि हार हुई है तो, चाहे ऊपर से हम कुछ भी कहे, हम हारे ही है और लोग भी ऐसा ही समझेगे। अन्त में जो समझौते की शर्तें कलमबन्द की गई, उनपर कई दिनो तक बहुत छानबीन के साथ विचार होता रहा। महात्माजी को उधर लार्ड अर्विन के साथ उसके प्रत्येक शब्द पर विचार करना पड़ता और इधर हम लोगो के साथ भी।

लार्ड अर्विन और महात्माजी, दोनो ही, बहुत ही सहिष्णुता और धीरज के साथ, समझौते के मसविदे को अन्तिम रूप दे चुके थे। जब हम लोगों से बाते हुई तो एक वाक्य उसमे ऐसा था कि महात्माजी उसमें असत्य की गंध देखने लगे। लार्ड अर्विन के साथ बात करने के समय उनको उन शब्दो का वह अर्थ नही सूझा था। जब हम लोगों मे बाते होने लगीं तो हममें से किसीने उस वाक्य का यह नया अर्थ लगाकर कुछ चर्चा की। सुनते ही महात्माजी के कान खड़े हो गये। उन्होंने गौर से फिर पढ़ा और कहा कि यह अर्थ भी हो सकता है, पर यदि यह अर्थ है तो वाक्य असत्य है। इस बीच में लार्ड अर्विन ने विलायत से समझौते की उसी रूप में मंजूरी मंगा ली। जब महात्माजी ने जाकर यह बात उनसे कही तो लार्ड अर्विन भी मुश्किल मे पड़ गये। महात्माजी किसी तरह उस रूप मे उसको स्वीकार नही कर सकते थे, क्योंकि उसमें असत्य की गंध थी। अन्त में, लार्ड अर्विन ने उस वाक्य को बदल दिया और महात्माजी ने इस संशोधित रूप मे स्वीकार कर लिया। बात तय हो गई। मैं तो समझौते मे खुश था। पंडित जवाहरलालजी को छोड़कर प्रायः सभी सदस्य खुश थे। पडितजी बहुत दुखी थे। महात्माजी ने उनको बहुत समझाया, पर उनको सन्तोष न हुआ।

अबतक सत्याग्रह स्थगित नही किया गया था। समझौते की बातचीत चल रही थी और सत्याग्रह भी जारी था। स्वभावतः बातचीत चलने के कारण सत्याग्रह की प्रगति धीमी पड़ गई थी; पर इस बीच में भी कई स्थानों में गम्भीर घटनाएं हो गईं। महात्माजी ने वायसराय को उनसे अवगत कर दिया। वायसराय ने उनके सम्बन्ध मे पूछ-ताछ करने का वचन भी

दे दिया। समझौते पर हस्ताक्षर होते ही वर्किंग कमिटी ने सभी सूबों को आदेश दे दिया कि सत्याग्रह स्थगित कर दिया जाय। गवर्नमेण्ट ने भी कांग्रेस-कमिटियों पर से प्रतिबन्ध उठा लिया।

उन्हीं दिनों मेरे छोटे लड़के धन्नू की शादी की बातचीत चल रही थी। उसके लिए दिन भी मुकर्रर हो गया था। भाई ने वह दिन यह सोचकर मुकर्रर किया था कि उसके पहले ही लार्ड अर्विन से होनेवाली बातचीत समाप्त हो जायगी और मै शादी मे शरीक हो सकूगा। पर बात बढती गई। ऐसा मालूम होने लगा कि उस दिन तक कुछ तय न हो सकेगा। मैने खबर दे दी कि यदि बात समाप्त हो जायगी तो मै आ जाऊगा, पर यदि न हुई तो मेरे लिए इन्तजार न करके नियत दिन पर शादी कर दी जाय। किन्तु शादी के ठीक दो दिन पहले समझौते पर हस्ताक्षर हो गये। मै उसी दिन जीरादेई के लिए रवाना हो गया। बरात की रवानगी से करीब पन्द्रह घंटे पहले जीरादेई पहुच गया। समझौते की शर्तों मे सत्याग्रहियों की रिहाई की बात भी थी। इसलिए, मैने कुछ मित्रों को, जो हजारीबाग-जेल मे थे, आमत्रित कर दिया था; पर कोई पहुच न सका। मैं किसी तरह बरात मे शरीक हो सका।

मेरा विचार है कि लार्ड अर्विन ने समझौता सच्चे दिल से किया। वह चाहते थे कि जो बाते तय पा चुकी है, वे ठीक-ठीक बर्ती जाय और पूरी की जाय। समझौते को सिविल-सर्विस के लोग पसन्द नही करते थे। उनके ही बाधा डालने के कारण इसके तय होने मे इतना समय लगा था। लार्ड अर्विन ने हिन्दुस्तान मे और लेबर गवर्नमेण्ट ने इगलैंड से इसपर जोर डाल-कर समझौता कराया। हम आशा करते थे कि एक बार बात तय हो जाने पर सब काम ठीक चलेगा और हम लोग चैन से रचनात्मक काम कर सकेंगे। पर दुर्भाग्यवश लार्ड अर्विन का समय पूरा हो गया था। वह शीघ्र ही, एक-डेढ महीने के बाद ही, चले जानेवाले थे। उनकी जगह पर लार्ड विलिंगडन वायसराय होकर आये। वह बम्बई और मद्रास के गवर्नर रह चुके थे। हिन्दुस्तान से उनका बहुत पहले का परिचय था। सिविल सर्विस की गतिविधि से भी वह खूब परिचित थे। उन्होने आकर सिविल सर्विस का ही साथ दिया। उनके हिन्दुस्तान पहुचते ही हवा का रुख बदल गया। चूकि समझौता हो चुका था, उसे खुलेआम तो वह तोड़ना नही चाहते थे; पर उनकी शर्तों को पूरी करने मे हर तरह आनाकानी होने लगी।

हम यह मानते है कि यह समझौता बड़े महत्व का था। पहली बात तो यह थी कि यह पहला ही अवसर था जब ब्रिटिश गवर्नमेण्ट भारतीय जनता की किसी प्रतिनिधि-संस्था से बातचीत और समझौता करने पर

तैयार हुई थी। दूसरी बात यह थी कि नमक के सम्बन्ध में गरीबों को बहुत-सी सहूलियतें मिल गईं। तीसरी बात यह थी कि कांग्रेस को गोलमेज-कान्फ्रेन्स में जाकर विधान-रचना में हाथ बंटाना था। विधान में जो संरक्षण और बचाव की शर्तें अंगरेजों के बचाव और संरक्षण के लिए रखी जानेवाली थी, वे अब इस दृष्टि से देखी जानेवाली थी कि वे भारत के लिए भी हितकर हैं या नही और वे तभी मानी जानेवाली हो जब जनता के लिए हितकर हों। चौथी बात यह थी कि सारे भारत के लिए एक केन्द्रीय सरकार को कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया था, पर प्रान्तो को अपना प्रबन्ध करने की स्वतन्त्रता होनेवाली थी और इस केन्द्रीकरण मे देशी रजवाड़े भी शरीक होनेवाले थे। इस तरह कई बातों का चित्र—धुधला ही सही—सामने आ गया था। इसलिए, मैं तो इसका पक्षपाती था और इससे सन्तुष्ट भी। अफसोस यही रहा कि ब्रिटिश सरकार की ओर से यह भी, पहले की अनेकानेक घोषणाओं और प्रतिज्ञाओं की तरह, पूरा नही किया गया!

: १५ :

कराची-कांग्रेस

दिल्ली मे समझौता हो जाने के वाद कांग्रेस का अधिवेशन करना पक्का हो गया। यह निश्चय हुआ कि अधिवेशन मार्च के अन्दर ही कराची मे होगा। समय बहुत कम था। पर कराची के कार्यकर्त्ताओं ने प्रवन्ध करना स्वीकार कर लिया। लाहौर मे बहुत सर्दी के कारण निश्चय हुआ था कि अधिवेशन दिसम्बर मे न होकर फरवरी या मार्च मे हुआ करेगा। इसलिए जो अधिवेशन मामूली तौर पर लाहौर कांग्रेस तक दिसम्बर में हुआ करता था, उसका इस साल मार्च मे होना नियमानुकूल ही था। संयोग से समझौता हो जाने के कारण जो अड़चन रास्ते मे थी वह भी हट गई। सरदार वल्लभभाई सभापति चुने गये।

लाहौर-षड्यन्त्र के मुकदमा का जिक्र ऊपर आ चुका है। उसकी सुनवाई बहुत दिनों तक चली। उसका अन्तिम फैसला अब हुआ। सरदार भगतसिह को, उनके कुछ साथियो के साथ, फासी की सजा मिली। दूसरों को लम्बी-लम्बी कैद अथवा काला पानी की सजा मिली। अनशन के कारण श्री यतीन्द्रनाथ दास की मृत्यु से देश मे हलचल मच गई थी। अब इस घटना से और भी खलबली मची। विशेषकर युवक ही इस मुकदमे मे अभियुक्त थे। मुकदमे की खबरे बहुत दिनों तक अखबारों में छपती रही; क्योकि मुकदमा बहुत दिनो तक चलता रहा। इससे बहुत लोग इसमे दिलचस्पी लेने लग गये थे। सरदार भगतसिह ने बडी बहादुरी के साथ मुकदमे में भाग लिया था, जिसका असर भी लोगों पर बहुत पड़ा था। इसलिए फासी की सजा से सारे देश मे रोष छा गया। महात्माजी ने लार्ड अर्विन से कहा कि फांसी की सजा को बदलकर कैद या कालापानी की सजा कर दें। लार्ड अर्विन के जाने का समय भी बहुत निकट था। वह महात्माजी की वात न मान सके। उन्होंने तो समझौता ही अपने संगी-साथी अफसरों की राय के खिलाफ किया था, अब यह एक और काम उनकी राय के खिलाफ न कर सके। मामला बहुत दिनों तक यों ही टंगा रहा। लोगों को उम्मीद होने लगी थी कि शायद फासी से वे बच जायं।

अन्त में लार्ड अर्विन ने गांधीजी से अपनी असमर्थता प्रकट की; पर

यह कहा कि यदि वह चाहें तो काग्रेस के बाद तक वह फासी रोक देंगे। शायद उनका मतलब था कि फासी से क्षुब्ध होकर काग्रेस शायद समझौते को नामंजूर कर दे अथवा काग्रेस के समय गाधीजी से काग्रेस में जाने-वाले रुष्ट हो जायं। वह इसे बचाना चाहते थे। पर गाधीजी ने इसे मजूर नही किया। उन्होने कह दिया कि फासी से उनको रिहा नही कर सकते तो अच्छा यही होगा कि जो कुछ करना हो, काग्रेस के पहले ही कर दिया जाय; क्योकि ऐसा न करने से देश और काग्रेस के साथ धोखा होगा। ऐसा ही हुआ। काग्रेस के ठीक पहले फासी हो गई। यह खबर पत्रो में छपी उसके साथ यह खबर भी छपी कि शव के साथ भी बे-उनबानी की गई। इससे लोगो में बहुत क्षोभ पैदा हुआ। युवक लोग गाधीजी से भी असन्तुष्ट हुए। वे लोग यह नही समझ सकते थे कि गाधीजी से जो कुछ हो सका, उन्होंने किया और यदि वह सरदार भगतसिह को न बचा सके तो इसमे उनका दोष नही था। कराची के रास्ते मे गाधीजी के सामने विरोध प्रदर्शन किया गया। कही तो लोग कपड़े के काले फूल, अपना शोक और गुस्सा दिखलाने के लिए, गांधीजी को देने के लिए ले आये। इन्होने उन फूलो को स्वीकार किया और जरा भी अपनी ओर से क्रोध अथवा घब-राहट के चिह्न नही दिखलाये।

कराची-काग्रेस मे भी बराबर इसी प्रकार की मनसनी रही। इसका यह अर्थ नहीं था कि लोग गाधीजी के प्रति अनादर का भाव रखते हों। जब सुबह-शाम खुले मैदान मे वह प्रार्थना करते, वहा जनता की बड़ी भारी भीड़ इकट्ठी हो जाती। उनके दर्शनो के लिए वैसी ही भीड़ हुआ करती जैसी कही भी हुआ करती थी। पर लोगो के दिल को जो चोट पहुंची थी उसके प्रदर्शन का यह एक रास्ता मिल गया, जिससे लोग अपनी मनोव्यथा व्यक्त कर सके, इस मनोव्यथा का एक विशेष कारण था। सरदार भगतसिह और उनके साथियों की बहादुरी के लिए दर्द था ही, उनके विरुद्ध यह भी अभियोग था कि उन्होने उस अंगरेज अफसर को मारा था, जिसके सम्बन्ध मे समझा जाता था कि उसीने साइमन-कमीशन के विरुद्ध प्रदर्शन में लाला लाजपतराय पर लाठी चलाई थी, जिससे अन्त मे उनकी मृत्यु हो गई थी। जो हो, कराची का अधिवेशन बड़े मार्के का हुआ।

लाहौर मे ही निश्चय हुआ था कि जब कांग्रेस फरवरी-मार्च में होगी तो वह संध्या के समय हो सकेगी और इसलिए पंडाल पर छाजन की जरूरत न होगी। इस तरह खुले मैदान में आसमान के नीचे काग्रेस का यह पहला अधिवेशन था। संध्या से आरम्भ होकर रात को देर तक बैठक होती। दिन में विषय-निर्वाचिनी की बैठक सायेदार पंडाल में होती। इससे पंडाल

बनाने का खर्च बच गया, पर उसके बदले में रोशनी का प्रबन्ध काफी करना पड़ा। दृश्य बहुत सुन्दर था। उस समय बिलकुल नया होने के कारण बहुत हृदयग्राही भी था। उत्साह का तो कोई ठिकाना न था। सत्याग्रह के बाद पहला अधिवेशन था। लोग इस बात को नही भूल सकते थे कि सत्याग्रह के फल-स्वरूप ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने कांग्रेस के साथ सुलह की है। बहुतेरे ऐसे लोग थे, जो सत्याग्रह मे कैद हुए थे और उस सुलहनामे के कारण समय से पहले ही छूटे थे। यद्यपि अभी बहुतेरे नही छोड़े गये थे और जिनके छूटने के सम्बन्ध मे लिखा-पढ़ी चल रही थी अथवा किसी कारण जिनको सरकार सुलहनामे की शर्तों के अन्दर छोड़ने योग्य नहीं समझ रही थी। तो भी समझौते के कारण मुक्त सत्याग्रहियो की खासी संख्या वहां पहुंच गई थी। लाहौर-षड्यंत्र के अभियुक्तो की फासी और सजा का भी असर पडा ही था। इन सबका नतीजा वहा की बहस और बातचीत मे झलक जाता था।

कराची में दो मुख्य प्रस्ताव हुए। एक प्रस्ताव तो समझौता-सम्बन्धी था, जिसमे समझौता मजूर किया गया। इसपर बहस काफी हुई। समय भी इसमें बहुत लगा। दूसरा प्रस्ताव बडे महत्व का था। उसमे स्वराज्य-प्राप्त भारत के लिए कार्यक्रम का खाका बताया गया था। इसने एक प्रकार से भारतीयो के मौलिक अधिकारो को, जिनमे आर्थिक स्वतन्त्रता की भी कुछ बात आ गई है, पहले-पहल कांग्रेस के मंच से घोषित किया। नेहरू-रिपोर्ट मे कुछ बाते इस प्रकार की थी; पर जितना स्पष्ट और विस्तृत यह खाका था, विशेषकर आर्थिक विषयो को लेकर, उतना नेहरू-रिपोर्ट में नहीं था। इस प्रस्ताव के श्रीगणेश का श्रेय पंडित जवाहरलाल नेहरू को ही है। महात्माजी ने और सरदार वल्लभभाई ने उनकी ही राय मानकर इसे स्वीकार किया। यह एकबारगी नया विषय था, जिसपर बहुत विचार-विमर्श नही हुआ था। विषय-निर्वाचिनी के समक्ष भी, जल्दी मे और अधिवेशन की समाप्ति के समय ही, पेश हुआ। वहां लोगों को इसकी शिकायत हुई कि इतने बडे निश्चय पर पहुंचने के पहले प्रतिनिधियों को सोचने-विचारने का पूरा समय नही दिया गया। इसलिए प्रस्ताव को कांग्रेस ने स्वीकार तो कर लिया; पर उसके साथ एक बात जोड दी। वह बात यह थी कि इस प्रस्ताव पर सभी प्रान्तीय कमिटियां अपने विचार प्रकट करें और एक उपसमिति उनपर विचार करके अखिल भारतीय कमिटी में उचित संशोधन पेश करे तथा अखिल भारतीय कमिटी इसे उचित संशोधन के साथ अन्तिम स्वीकृति दे।

कराची-कांग्रेस में यह भी तय हुआ कि गवर्नमेण्ट यदि बुलायेगी तो गोलमेज-कान्फ्रेन्स में कांग्रेस के प्रतिनिधि भी शामिल होंगे। उस समय यह

नहीं निश्चय हुआ कि कितने प्रतिनिधि होंगे और इस सम्बन्ध में गवर्नमेण्ट से हमारी क्या मांग होगी। कांग्रेस का पूर्ण-स्वतन्त्रता-सम्बन्धी प्रस्ताव पास हो ही गया था और आगे के लिए विधान कैसा हो, इसका भी थोड़ा स्पष्टीकरण समझौते मे तथा कराची के प्रस्तावों द्वारा हो गया था। सोचा गया था कि और जो कुछ होगा उसके मुतल्लिक वर्किंग कमिटी तथा अखिल भारतीय कमिटी आदेश देगी। बातचीत चलने पर महात्माजी की राय वर्किंग कमिटी मे हुई कि अगर जाना पड़ा तो कांग्रेस अपना प्रतिनिधि केवल उनको ही भेजे। वहां हाथ गिनकर कुछ होनेवाला नही है। यदि वे लोग बात माननेवाले होंगे तो एक आदमी काफी होगा। यदि न माननेवाले होंगे तो भारी भीड़ भी उनको मजबूर न कर सकेगी।

: ९६ :

तिरंगे झण्डे का राष्ट्रीय रूप

कराची से लौटने पर मेरा बहुत समय उन सत्याग्रहियों के मुक्त कराने के लिए पत्र-व्यवहार में लगा जो अबतक जेलों में बन्द थे। इसी तरह अपने-अपने सूबे में सभी लोगों को बहुत लिखा-पढ़ी करनी पड़ी। समझौते की शर्तों में हमको तो केवल सत्याग्रह बन्द कर देना था। उसे हमने एक घोषणा निकालकर और सभी मातहत कमिटियों को आदेश भेजकर पूरा कर दिया। पर सरकार को तो बहुत बातें करनी थीं। लार्ड अर्विन के चले जाने के बाद उसमें बहुत आनाकानी हुई। महात्माजी तथा कांग्रेस के अध्यक्ष सरदार वल्लभभाई पटेल अखिल भारतीय विषयों पर भारत-सरकार के साथ पत्र-व्यवहार करते रहे। स्थानीय प्रश्नों पर प्रान्तीय कमिटी के लोग प्रान्तीय सरकारों से लिखा-पढ़ी और बात-चीत करते रहे। महात्माजी को इस सम्बन्ध में सरकारी कर्मचारियों से भेंट भी करनी पड़ी। मुझे भी अपने सूबे में चीफ सेक्रेटरी मि० हैलेट और प्रान्तीय गवर्नर सर स्टिफेन्सन से भेंट करनी पड़ी थी। बहुत बातों में सफलता भी मिली। पर इसमें इतना समय लगा और इतनी झंझट हुई कि जी ऊब गया। वहां हमने समझा कि जिसको हम स्पष्ट और निश्चित समझते थे, वह किस तरह अस्पष्ट और अनिश्चित कर दिया जाता था। आज इसके उदाहरण याद नहीं हैं; पर उस समय के समाचार-पत्रों के देखने से यह बात स्पष्ट प्रमाणित हो जायगी। उत्साह की केवल एक ही बात थी; वह यह कि पटना-कैम्प-जेल या दूसरी जेलों से दल-के-दल बन्दी छूटकर सदाकत-आश्रम में आते और एक रात या कुछ समय ठहरकर भोजन आदि करके नेताओं की जय मनाते हुए अपने-अपने घरों को चले जाते थे। घर जाने का रेलभाड़ा वगैरह तो उन्हें सरकार से मिल जाता था, मगर कुछ मदद प्रान्तीय कोष से भी मुझे देनी पड़ी। स्वराज्य के देशभक्त सैनिकों की यह लहर चित्त के उद्वेग को कुछ-कुछ शान्त करती रही।

कुछ दिनों के बाद बम्बई में वर्किंग कमिटी की बैठक हुई। उस समय एक महत्व का प्रश्न यह भी था कि हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न पर कांग्रेस का क्या रुख होगा। कलकत्ता-कांग्रेस के बाद ही बहुतेरे मुसलमान कांग्रेस से अलग हो

गये थे। वे मुसलमानों की अलग संस्था कायम करके अपनी मांगें पेश कर रहे थे। मि० जिन्ना की चौदह मांगें मशहूर हो चुकी थी। सरकार द्वारा की जानेवाली गोलमेज-कान्फ्रेन्स में शरीक होने के पहले हमें अपने विचार तो साफ कर लेने चाहिए। इस विषय पर उस अधिवेशन मे विचार हुआ। मैं बम्बई पहुंचकर बीमार पड गया। इसलिए, यद्यपि मैं जिस कमरे में था उसके पास के ही कमरे मे बैठक हो रही थी तथापि, मैं शरीक न हो सका। वहापर यह निश्चय किया गया कि कांग्रेस मुसलमानों तथा दूसरी अल्पसख्यक जातियो के साथ वैसा ही समझौता कर सकती है, जो राष्ट्रीय भावना का विरोधी न हो—हा, यदि और सब जातिया किसी समझौते को मान ले तो कांग्रेस भी उसे स्वीकार कर लेगी। समझौते के मुख्य सिद्धान्तों की गणना भी संक्षेप मे उसमे दे दी गई थी। इसे वर्किंग कमिटी के मुसलमान मेम्बरों ने स्वीकार ही नही किया था। उनके ही जोर से वर्किंग कमिटी ने उसे तैयार किया और माना था। वे चाहते थे कि जब दूसरे लोगों ने बहुत बाते कही हैं तो कांग्रेस को भी अपना विचार स्पष्ट कर देना चाहिए, ताकि देश के लोगों को वे बाते मालूम हो जायं और कांग्रेस प्रतिनिधि को जहा मौका मिले वहा उन्हें अधिकारपूर्वक कह सके तथा पेश कर सके।

अखिल भारतीय कमिटी की एक महत्वपूर्ण बैठक हुई, जिसमे मौलिक अधिकारोवाले कराची के प्रस्ताव पर विचार किया गया। सब-कमिटी ने अपना काम पूरा किया था, सभी प्रान्तीय कमिटियों की सम्मति प्राप्त करके अपनी रिपोर्ट तैयार की थी। कोई विशेष महत्वपूर्ण संशोधन नही हुआ। कुछ मामूली बातें जोड़-घटाकर मौलिक अधिकार उस अधिवेशन मे स्वीकृत हो गये।

उस समय एक और झगड़ा चल रहा था। राष्ट्रीय तिरंगा झंडा कभी बाजाब्ता मंजूर नही हुआ था, पर १९२१ से ही यह प्रचलित हो गया था। इसमें तीन रंग के कपड़े होते थे। सबसे नीचे लाल, उसके ऊपर हरा और सबके ऊपर सफेद; बीच मे चर्खे का चित्र होता। गांधीजी ने और दूसरे लोगों ने तीन रंगों का अर्थ बता दिया था, जिसे सब लोगों ने मान लिया था। लाल रंग हिन्दुओं का सूचक था और उनकी सख्या सबसे अधिक होने के कारण सबके आधार-स्वरूप वही सबसे नीचे था। उसके बाद मुसलमानों की संख्या है, इसलिए लाल के ऊपर उनका हरा रंग आता था। सफेद रंग में और सभी लोग सम्मिलित थे; उनकी संख्या हिन्दू और मुसलमान से कम होने के कारण वह सबसे ऊपर रखा गया था। हम अहिंसात्मक तरीकों के द्वारा ही स्वराज्य-प्राप्ति करना चाहते थे, इसलिए बीच में उसका चिह्न चर्खा दिया गया था। इससे सिखों को असन्तोष था। वे कहते थे कि उनके

लिए एक अलग रंग होना चाहिए और झंडे में उनको भी स्थान मिलना चाहिए। उन लोगो ने भी राष्ट्रीय आन्दोलन मे काफी भाग लिया था। एक जीती-जागती अल्पसंख्यक जाति उनकी है। यद्यपि हिन्दू-महासभा उनको भी हिन्दू ही समझती है और ऐतिहासिक विचार से भी वे हिन्दू-जाति की ही एक उपजाति है, तथापि वे अपनेको पृथक कहना चाहते थे। इस विषय पर विचार करने के लिए एक सब-कमिटी बनाई गई। उसने अपनी रिपोर्ट पेश की और झडे के रूप मे परिवर्तन कर दिया। उसीकी रिपोर्ट अखिल भारतीय कमिटी ने मजूर कर ली। झडा तिरगा ही था; पर उसके रंगो मे और उनके स्थान मे परिवर्तन हो गया। लाल रग उठा दिया गया, उसके स्थान पर सुनहला केसरिया रग कर दिया गया। सबसे नीचे हरा रंग, उसके बाद सफेद रंग और सबसे ऊपर केसरिया रहा। सफेद कपडे पर चर्खे का चित्र। सबसे महत्व की बात यह हुई कि रगों मे जो जातिगत अर्थ लगा दिया गया था, वह हटा दिया गया। अब कोई रग किसी जाति-विशेष का द्योतक न रहा। इसपर सिख भी राजी हो गये। उनका रंग केसरिया है। यद्यपि वह झडे की खूबसूरती के लिए लिया गया था, तथापि उनके लिए वह सन्तोषप्रद हुआ। देखने मे भी नया राष्ट्रीय झडा अधिक सुन्दर था। इसलिए इस प्रस्ताव से देश को केवल एक अधिक सुन्दर राष्ट्रीय झडा ही नही मिला; बल्कि रगो के जाति-विशेष-द्योतक होने से जो एक झगडा खडा हो गया था, वह समाप्त हो गया और सारे देश के सामने कांग्रेस ने बाजाब्ता अपने प्रस्ताव द्वारा झडा उपस्थित कर दिया।

मै इस वर्ष बिहार के कई जिलो में दौरे पर गया। लोगों को रचनात्मक काम में लगाने के विचार से ही यह दौरा किया गया था और इसमें कुछ सफलता भी मिली। एक अनुभव यहा लिख देना अच्छा मालूम होता है। जब मैं १९२१ में सथाल-परगना मे गया था तो वहां इतना दमन हुआ था कि मुझे कही ठहरने की जगह मिलने मे दिक्कत होती थी। वहा के पाकुर कस्बे की घटना का जिक्र पहले कर चुका हूं। इस बार मैं जिले के अन्दर दूर-दूर गांवों तक गया। बड़ा स्वागत-सत्कार हुआ। पाकुर में रात के नौ बजे रेल से उतरा। वहा स्टेशन पर लोगो ने दीवाली मनाई थी। रोशनी के मारे चारों ओर जगमग हो रहा था। बहुत धूमधाम के साथ शहर तक जलूस निकला। वहां के बड़े जमीदारो के यहां मै ठहराया गया। मैंने उनकी ही मोटर पर सारे जिले का दौरा किया। उन्होने कहा भी कि यह १९२१ का कुछ प्रायश्चित्त है।

: १७ :

गोलमेज-सभा में गांधीजी

गोलमेज-कान्फ्रेन्स के दिन नजदीक आ गये, पर अभीतक समझौते की सभी बातें पूरी नही हुई थी, विशेषकर एक बात थी, जिसपर सरदार पटेल का बहुत जोर था। गुजरात के गावों मे जो जमीन जब्त व नीलाम कर ली गई थी, उसके सम्बन्ध मे अभीतक जांच का काम आरम्भ नही हुआ था। बड़ी कठिनाई सरकार की ओर से पेश की जा रही थी। महात्माजी पत्र-व्यवहार करते-करते ऊब गये थे। इंगलैंड से जोर था कि महात्माजी को जरूर वहां किसी-न-किसी तरह जाना ही चाहिए। महात्माजी को शिमला भी समझौते के सम्बन्ध मे जाना पड़ा। मालूम होता था कि इस बार भी कांग्रेस गोलमेज-कान्फ्रेन्स में शरीक न हो सकेगी। अंत मे सभी बातें मान ली गई। देर इतनी हो चुकी थी कि यदि महात्माजी उस सप्ताह के जहाज से रवाना न होते तो वहा पहुंचने मे बहुत देर हो जाती। इसलिए महात्माजी को शिमला से ही सीधे बम्बई जाकर जहाज पकड़ना पड़ा। जहाज को भी उनके लिए कुछ देर तक इन्तजार करना पड़ा था। विशेष प्रबन्ध द्वारा बड़ी मुश्किल से वह शिमला से बम्बई पहुंचाये गये।

गुजरात मे जांच शुरू हुई। सरदार ने मुझे वहा बुलवा भेजा। मैं गया। बारडोली मे जांच हो रही थी। श्री भूलाभाई देसाई जनता की ओर से वकालत कर रहे थे। सरकार की ओर से थे उस जिले के सरकारी वकील। मैं भी जांच-कचहरी मे कभी-कभी जाता। कई हफ्तो तक जाच चलती रही। अंत मे कुछ सरकारी कागज पेश करने की बात आई, जो पेश नही किये गए और हाकिम ने भी इसे मान लिया। श्री भूलाभाई ने उसे इन्साफ का खात्मा समझा और जांच मे भाग लेने से इन्कार कर दिया। इसके बाद एकतरफा सरदार के पक्ष की रिपोर्ट हो गई। मैं वहां गया था, इस खयाल से कि सरदार को उनके काम में कुछ मदद दूं। पर उनको मेरी मदद की जरूरत ही न पड़ी। वहां के ही काम करनेवाले काफी रहे। हां, कांग्रेस-प्रेसिडेण्ट की हैसियत से उनके पास जो पत्र आते अथवा प्रश्न पूछे जाते उनके सम्बन्ध मे बातचीत हुआ करती। मैं प्रायः दो हफ्ते तक रहकर वापस चला आया। वहां रहते-रहते मैंने बिहार के पत्रों मे कुछ लेख लिखे थे, जिनमें

गांधीजी की चम्पारन-यात्रा-सम्बन्धी कुछ बातें थी।

महात्माजी इंगलैंड पहुंचे। पर उनके वहां पहुंचते-पहुंचते वहां का मंत्रि-मंडल बदल गया। अब वेजवुडबेन के स्थान पर सर सेमुयल होर भारत-मंत्री हुए। पर मि० मैकडोनल्ड अपने दल—लेबरपार्टी—के अधिकांश लोगों से अलग होकर प्रधान मत्री बने रहे। यद्यपि नाम के लिए तो यह सब दलों का मंत्रिमंडल था तथापि वास्तव मे यह कान्सर्वेटिव (अनुदार) दल का ही मंत्रिमंडल बना। इसलिए वहां से जो थोड़ी-बहुत उदारता की आशा की जा सकती थी, उसका रास्ता भी बन्द हो गया। गांधीजी ने कांग्रेस की मांग पेश की। उनकी बहुत आवभगत और खातिरदारी भी हुई। पर हिन्दुस्तान के लिए कुछ भी सन्तोषजनक विधान न बन सका। पं० मालवीयजी और श्रीमती सरोजिनी नायडू भी वहा आमंत्रित होकर गये थे। कांग्रेस की ओर से केवल महात्माजी ही थे और उसकी ओर से वही बोलते थे। जैसा बराबर होता आया है, दूसरे लोग सरकार के नामजद थे। चुन-चुनकर ऐसी जमायत जुटाई गई थी, जो कभी एकमत शायद हो ही नही सकती थी। महात्माजी ने बहुत प्रयत्न किया कि एक ही कांग्रेसी मुसलमान सही, मगर बुलाया जरूर जाय। पर सरकार इसपर राजी न हुई। शायद दूसरे मुसलमान सदस्यों ने इसका विरोध किया था। वहां इस बात का भी प्रयत्न हुआ कि आपस के झगड़े तय हो जायं, पर वह भी न हो सका। शायद हो भी नहीं सकता था।

एकता तो हुई नही, इसके बदले में अंगरेज, मुसलमान और हरिजनों में एक प्रकार का समझौता हुआ। जब आपस मे बाते तय न हो सकीं तो मि० मैकडोनल्ड ने साम्प्रदायिक मसले पर अपना फैसला दिया, जिसके द्वारा मुसलमानो की प्रायः सभी मागे पूरी कर दी गई। इससे हिन्दुओं और सिखों मे बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ। इसमें हरिजनो के लिए भी अलग चुनाव की व्यवस्था थी। महात्माजी ने इसका बहुत विरोध किया था। उन्होने अपने एक भाषण में यहांतक कह दिया था कि हरिजनो के लिए यदि अलग निर्वाचन-क्षेत्र कायम किये गए और उनको सवर्ण हिन्दुओ के चुनने में अथवा सवर्ण हिन्दुओं को उनके चुनने में भाग लेने का अधिकार न मिला, तो इस प्रकार की अलग निर्वाचन-विधि का वह तीव्र विरोध करेंगे तथा अपनी जान तक दे देने के लिए तैयार रहेंगे। ब्रिटिश सरकार को कुछ करना तो था नहीं, इसलिए आपस की फूट को बहाना बना लिया। यहां के जो लोग गये थे, इस बात को समझ गये। उन्होने आपस मे राय करके आगाखां को अपना नेता बनाकर एक संयुक्त विधान तैयार कर पेश किया। पर उनकी भी एक न सुनी गई। तब, जैसा ब्रिटिश चाहते थे वैसे ही विधान की योजना

बनाने का उन्होंने आपस में निश्चय कर लिया।

यहां हिन्दुस्तान में भी हालत दिन-दिन बदलती-बिगड़ती जा रही थी। हम समझ गये कि गवर्नमेण्ट कोई-न-कोई बहाना खोज रही है, जिसकी आड़ में समझौते को खत्म करके वह कांग्रेस से बदला लेना चाहती है। सिविल-सर्विसवालों की राय तो ऐसी बराबर से ही थी। लार्ड विलिंगडन की भी यही राय थी। इसलिए अब किसी उपयुक्त अवसर का ही इन्तजार था। प्रायः दो बरसों से सभी चीजों का दाम घटता गया था—विशेषकर गल्ले का। इस वजह से किसानों को रुपये मिलने में बहुत कठिनाई हो रही थी। वे लगान अदा नहीं कर सकते थे, क्योंकि इतना पैदा ही नहीं होता था, जिसे बेचकर वे लगान अदा कर सकते और अपना दूसरा जरूरी काम कर सकते। खासकर युक्तप्रान्त की परिस्थिति बहुत नाजुक हो चली थी। १९३० के सत्याग्रह के समय से ही किसानों की हालत खराब हो रही थी और वहां बहुतेरे किसान कांग्रेस से आशा रखते थे कि उनको सहूलियत दिलवाने में कांग्रेस समर्थ होगी। कहीं-कहीं, विशेषकर इलाहाबाद जिले में, लगानबन्दी का आन्दोलन भी चला था। सुलहनामे के बाद अब लगानबन्दी को रोकना था; क्योंकि हमें हर प्रकार के सत्याग्रह को रोक देना था। पर वहां की स्थिति राजनैतिक ही नहीं थी, किसानों की आर्थिक स्थिति इतनी खराब थी कि वे यदि लगान अदा करना चाहते भी तो कर नहीं सकते थे। कांग्रेस सत्याग्रह तो बन्द कर देती, पर उनकी इस आर्थिक असमर्थता को दूर करके उनसे लगान दिलवा देना उसके या किसीके बूते की बात नहीं थी। यदि वह लगान देने को न कहे तो समझा जाता कि समझौते को वह पूरा नहीं कर रही है। इसलिए वहां आवश्यक हो गया कि राजनैतिक और आर्थिक परिस्थिति को बिलगाकर, लगानबन्दी का आन्दोलन—जो सत्याग्रह का अंग था—न चलाकर, किसानों की आर्थिक स्थिति के अनुसार, उनके लिए सहूलियत प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाय। ऐसा ही किया गया, पर सरकार कब इस बात को माननेवाली थी!

उधर जमीदार भी अपनी रकम वसूल किये बिना सन्तुष्ट होनेवाले नहीं थे। गवर्नमेण्ट ने लगान में कुछ माफी दी, पर वह इतनी कम थी कि उससे बहुत सहूलियत नहीं मिली। इसके अलावा किसानों ने जो थोड़ा-बहुत अदाकारी का प्रयत्न किया और कुछ दिया, उसका असर उनके लिए अच्छा न हुआ; क्योंकि जो बाकी रह गया उसीके लिए उनके खेत की जब्ती हो गई और वे अपनी जमीन से वंचित कर दिये गए। पहले का बकाया ज्यों-का-त्यों पड़ा ही रहा। इस बात की बहुत कोशिश की गई कि कुछ और माफी कराकर, लगान घटाकर, उनकी मदद हो। पर पहले तो सरकार कुछ करने

पर राजी नही होती और अगर राजी भी होती तो वह इतना कम होता कि उससे किसानो के लिए कोई सुविधा नही मिलती। पंडित जवाहरलाल, श्री पुरुषोत्तमदास टंडन और उस समय के प्रान्तीय कार्यो के अधिकारी सभापति स्वर्गीय श्री तसद्दुक अहमद शेरवानी ने बहुत प्रयत्न किया कि कुछ हो जाय, पर वे नाकामयाब रहे। कामयाब हों तो कैसे हो? गवर्नमेंट कुछ और ही सोच रही थी। वह अगर कुछ करना भी चाहती तो उसे कांग्रेस के आग्रह से नही करना था; क्योंकि ऐसा होने से कांग्रेस का प्रभाव किसानों में बढ जाता। इसलिए हर तरह से हारकर वहा की प्रान्तीय कमिटी ने निश्चय किया कि वह किसानों को परामर्श दे कि वे अपनी असमर्थता के कारण लगान न दें। यह एक प्रकार से लगानबन्दी का आन्दोलन समझ लिया गया। अखिल भारतीय वर्किंग कमेटी की अनुमति के बिना वह ऐसा नही कर सकती थी। इसलिए उसने अनुमति मागी।

उधर बंगाल मे भी विकट परिस्थिति हो गई। वहां की प्रान्तीय सरकार हमेशा क्रांतिकारी दल से आतकित रहा करती थी और योंही बहुतेरे युवको को जेलो मे बन्द रखती आ रही थी। गाधी-अर्विन-समझौते मे सत्याग्रही बन्दियो के छूटने की ही बात हुई थी और उनके ही छूटने मे कठिनाई पड़ रही थी। गवर्नमेण्ट की ओर से तरह-तरह के बहाने निकाले जा रहे थे। क्रातिकारी लोगो का तो कहना ही क्या था! इससे वहां लोग बहुत क्षुब्ध थे। इसी बीच में हिजली-कैम्प-जेल मे, जहा क्रातिकारी नजरबन्द और कैदी थे, एक घटना भी हो गई, जिसमें जेल के अन्दर गोली चली और कुछ बन्दी घायल हुए और शायद एकाध मारे भी गये। इससे और भी खलबली मची। चटगांव में किसी पुलिस-कर्मचारी को एक क्रातिकारी ने मार डाला। इसमे कोई हिन्दू-मुस्लिम की बात नही थी, क्योंकि क्रान्तिकारियों ने कितने ही हिन्दू-पुलिस-अफसरों को भी मार डाला है। वे किसी भी सरकारी कर्मचारी को उसकी जाति अथवा धर्म के कारण नही मारते, बल्कि जिसको देशद्रोही समझते हैं, उसीको मारते है, चाहे वह किसी भी जाति व धर्म का हो। पर वहां उसको हिन्दू-मुस्लिम झगडे का रूप दे दिया गया और वहां के हिन्दुओं के साथ बहुत ज्यादतियां की गई, जिनमें अंगरेजों और अर्ध-गोरों का भी पूरा हाथ था।

इन सब बातों से बंगाल में बड़ी खलबली मची थी। सरकार नये आर्डिनेन्स निकालने में हिचक रही थी। बंगाल-प्रांन्तीय राजनैतिक सम्मेलन, ब्रह्मपुर (मुर्शिदाबाद) में, वयोवृद्ध प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता श्री हरदयाल नाग के सभापतित्व में हुआ। सरदार पटेल ने श्री अणे और मुझको कांग्रेस की ओर से वहां भेजा। हम लोगों ने सम्मेलन में शिरकत की और मैंने बंगाल

में भाषण भी किया। इसी प्रकार सीमाप्रान्त की हालत भी कुछ अच्छी नही थी। वहां भी दमन चल रहा था। इस तरह जैसे-जैसे गोलमेज-कांफ्रेंस का काम समाप्त होने पर आ रहा था वैसे-वैसे यहां की परिस्थिति और भी कठिन होती जा रही थी। हम समझ रहे थे कि अब मामला फिर बिखरेगा और झगड़ा फिर होगा।

जब वर्किंग कमिटी के सामने युक्तप्रात की दर्खास्त पर विचार होने लगा तो हम लोगो ने अपनी बड़ी जवाबदेही महसूस की। अभीतक गांधीजी लौटे नही थे। उनकी गैरहाजिरी में लगानबन्दी आरम्भ करना हमारे लिए कहातक उचित होगा और यदि उचित भी हो तो हम कहांतक उसे चला सकेंगे—इत्यादि, हर पहलू से कई दिनों तक हम लोग विचार करते रहे। मेरे मन मे सन्देह था कि वहां की जनता उस दमन को बर्दाश्त कर सकेगी या नहीं, जो लगानबन्दी के कारण अवश्य होगा। बिहार मे चौकीदारी-टिकस एक मामूली टिकस है, जो किसीपर भी १२ रुपये सालाना से अधिक नही हो सकता है तथा मामूली तरह से गरीबों पर छ. या बारह आना सालाना होता है—मामूली किसानों पर एक-डेढ रुपया अथवा इससे कुछ ज्यादा, हैसियत के मुताबिक, हुआ करता है। इसके बन्द करने पर जितनी ज्यादतियां हुई थी, मैंने अपनी आंखो गावो मे जा-जाकर देखी थी। अभी एक बरस भी नही बीता था कि यह सब देखने को मिला था। इससे मैं बहुत डरता था कि लगान-बन्दी करने की बात बडी गम्भीर हुआ करती है। जमीदार का लगान बन्द होने से वह सरकारी मालगुजारी नही दे सकेगा। इसलिए सरकारी आमदनी का एक बहुत बड़ा अश रुक जायगा और सरकार को भी अपना काम चलाने मे अडचन पड़ेगी। इसलिए इसके बन्द किये जाने पर सरकार की ओर से भी बड़ी सख्ती होगी। मैने इन्ही कारणों से बार-बार इस बात को पूछा कि जनता कहांतक दमन बर्दाश्त करने के लिए तैयार होगी। इसका कोई उत्तर निश्चयात्मक रूप से तो दिया नही जा सकता था; पर वहां के भाइयो ने इस बात का आश्वासन दिया कि जनता बहुत हद तक मुसीबत बर्दाश्त करने के लिए तैयार है।

सरदार पटेल का विचार था कि जब वहां की प्रान्तीय कमिटी और प्रमुख लोग वहां की परिस्थिति ऐसी समझते है कि इसके सिवा दूसरा कोई चारा नही, और इसके कारण जो दमन होगा उसे भी बर्दाश्त करने के लिए जनता को तैयार मानते हैं, तो हम लोग अखिल भारतीय वर्किंग कमिटी के मेम्बर किस तरह अनुमति देने में आनाकानी कर सकते है। अन्त में बहुत सोच-विचारकर, बहुत प्रतिबन्धों के साथ, अनुमति दी गई। वह भी, अभी तुरन्त लगानबन्दी करने की नहीं, तैयारी करने की। सरकार तो इसीकी

ताक में बैठी थी। उसने तुरन्त ही कार्रवाई शुरू कर दी। असल बात तो यह थी कि गल्ले की कीमत इतनी गिर गई थी कि लगान अदा करना ही असम्भव था। इस बात को कुछ दिनों के बाद वहां के गवर्नर हेली साहब ने खुले तौर पर स्वीकार भी किया। उन्होंने यहांतक कह डाला कि जब-तक इस विषम लगान-कानून का मौलिक सुधार न होगा, समाज का सारा संगठन डावाडोल रहेगा। पर उस समय कांग्रेस को दबाना ही मजूर था; दूसरी कार्रवाई शुरू कर दी गई।

: ९८ :

सरकार का भयंकर दमन-चक्र

गोलमेज-कान्फ्रेन्स का काम समाप्त होते ही गांधीजी निराश होकर, हिन्दुस्तान के लिए रवाना हो गये। उनके भारत पहुंचने के दिन बम्बई में वर्किंग कमिटी की बैठक रखी गई। सब लोग अपने-अपने सूबे से बम्बई के लिए रवाना हुए। बगाल में दमन-चक्र चल रहा था। इसी बीच सीमा-प्रान्त में भी खान अब्दुलगफ्फारखा, डाक्टर खानसाहब और दूसरे नेता एकाएक गिरफ्तार कर लिये गए। वे अपने सूबे से बाहर नजरबन्द करके जहां-तहां भेज दिये गए। युक्तप्रान्त मे श्री पुरुषोत्तमदास टंडन और शेरवानी साहब भी गिरफ्तार हो गये। हम जिस गाड़ी से जा रहे थे, उसीसे पंडित जवाहरलालजी भी बम्बई जा रहे थे। डाकगाड़ी, प्रयाग से थोड़ी ही दूर पर, एक छोटे स्टेशन पर ठहर गई। वहां पहले से मोटर लेकर पुलिसवाले पहुंचे थे। पंडितजी वही गिरफ्तार कर लिये गए। हम लोग सीधे बम्बई चले गये।

बम्बई में महात्माजी के स्वागत की बडी तैयारी थी। जिन रास्तों से उनको जाना था, उनके सब मकान जन-समूह से खचाखच भरे थे। सड़कें भी लोगो से भरी थी। इस तरह की भीड़ शायद ही किसी दूसरे अवसर पर किसीको देखने के लिए इकट्ठी हुई हो। निश्चित स्थान पर पहुंचते ही गांधीजी से सभी बातें कही गईं। वह भी समझ गये कि सरकार अब दमन खुले तौर पर करना चाहती है। वर्किंग कमिटी की बाजाब्ता बैठक हुई। तत्कालीन परिस्थिति-सम्बन्धी एक लम्बा प्रस्ताव स्वीकार किया गया। गांधीजी ने वायसराय को तार दिया, जिसमें प्रस्ताव का सारांश बताया और उनसे मुलाकात की अनुमति मांगी। यह सब हो जाने पर हम सब अपने-अपने स्थान के लिए रवाना हुए।

जब मैं रवाना होते समय महात्माजी से अन्तिम बिदाई लेने गया तो देखा कि मिस्टर बेन्थल उनसे बातें कर रहे हैं। वह भी गोलमेज-कान्फ्रेन्स में हिन्दुस्तान के अंगरेजों के प्रतिनिधि होकर गये थे। वहां पर उन्होंने मुसलमानों और अंगरेजों का गठबन्धन कराने की बहुत-सी कार्रवाइयां की थीं। हम लोग तो समझ गये थे कि अब कुछ होनेवाला नहीं है—बहुत शीघ्र

दमन होगा और कांग्रेस को मजबूर होकर फिर सत्याग्रह करना पड़ेगा। हम लोगों में से किसीकी इच्छा नहीं थी कि सत्याग्रह आरम्भ किया जाय —न इसके लिए तैयारी थी और न मानसिक तत्परता ही। हां, हमारे मान्य साथियों को सरकार ने अकारण गिरफ्तार कर लिया था; उनके सम्बन्ध में पहले वायसराय से बातचीत करना जरूरी था। और, जब ऐसी ही मजबूरी हो तो कुछ करना भी लाजिम था। पर गांधीजी के हिन्दुस्तान लौटने के पहले से ही यहां की सरकार ने सब तैयारियां कर ली थी। उसकी ओर से वार भी हो चुका था। उसकी तैयारियों की कुछ खबर हम लोगों को पहले से ही इधर-उधर से मिल गई थी। यहांतक कि डाक्टर अंसारी को इसका भी पता चल गया था कि किस प्रकार के आर्डिनेन्स जारी किये जायंगे। उन्होंने ये बातें आपस के लोगों को बता दी थी। अब तो बात और स्पष्ट हो गई थी।

बम्बई से चलकर मैंने सोचा कि अब तो बिहार में भी दमन होगा ही, इसलिए अपने लोगों से एक बार मिल लेना अच्छा होगा। इटारसी जंकशन से मैंने कई तार भेजे, जिनमें बिहार-प्रान्तीय वर्किंग कमिटी की बैठक पटने में करने की बात के अलावा उसके सदस्यों के लिए निमन्त्रण भी थे। जब दूसरे दिन सवेरे पटने पहुंचा तो मालूम हुआ कि वहां तार पहुचा ही नहीं है। तारों को सरकार ने रोक लिया था। तब भी कुछ लोग पटना पहुच ही गये। वहां वर्किंग कमिटी की बैठक भी हमने कर ली। उसी रात को महात्माजी की गिरफ्तारी हो गई थी। उनके साथ सरदार वल्लभभाई तथा दूसरे कई प्रमुख कांग्रेसी नेता गिरफ्तार कर लिये गए थे। यह सब हम अखबारों में देख चुके थे और समझ गये थे कि अब हम लोगों की गिरफ्तारी भी शीघ्र ही हो जायगी। इसलिए पटने में पहुंचते ही हमने वर्किंग कमिटी का काम कर लिया। सब लोगों के लिए आदेश तैयार करके उसे छपवाने का भी प्रबन्ध कर दिया। यह सब काम पूरा करके हम जब-तक तैयार हुए तबतक पुलिस के आने की सूचना मिली। वह अभी सदाकत-आश्रम तक पहुंची नहीं थी, पर आ ही रही थी। हम भी गिरफ्तार होने का इन्तजार करने लगे। श्री रामदयालुबाबू, प्रोफेसर अब्दुल बारी तथा दो-एक और सदस्य काम खत्म करके चले जा चुके थे। तिरहुत के कुछ सदस्य दोपहर के स्टीमर से दीघाघाट तक आये थे, मगर जेल से बाहर रहकर कांग्रेस का काम करते रहने के खयाल से उधर ही रह गये।

पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट कई सशस्त्र सिपाहियों के साथ आ धमके। आश्रम को उन्होंने घेर लिया। हम दो-चार आदमी जो बैठे थे उनसे वे पूछने लगे कि क्या हम वर्किंग कमिटी की बैठक कर रहे हैं। हमने स्पष्ट कह दिया

कि वह काम पूरा हो चुका और बहुतेरे सदस्य जहां-तहां चले गये। उन्होंने सरकारी विज्ञप्ति दिखाई, जिसके द्वारा काग्रेस-कमिटी और उसकी सभी शाखाएं गैरकानूनी करार दी गई थी। पुलिस ने पहले तो टेलीफोन अपने कब्जे मे किया। फिर राष्ट्रीय झण्डे के स्थान पर अपना—ब्रिटिश सरकार का—झण्डा लगा दिया। तब वहां की तलाशी शुरू की। तलाशी में कोई खास चीज तो मिली नही, पर उसमें कई घटे लग गये। हम सब गिरफ्तार कर लिये गए; पर अभी वही रहे। प्राय: दिन के एक-दो बजे से रात के आठ बजे तक हम सब वही रहे। आश्रम और विद्यापीठ की सभी इमारतें जब्त कर ली गई। विद्यापीठ के जितने विद्यार्थी और शिक्षक वहां थे, सबको चले जाने की आज्ञा हुई। सर्वश्री ब्रजकिशोरप्रसाद, मथुराप्रसाद, कृष्ण-वल्लभ सहाय, जगतनारायण बी० एस-सी० और मैं तथा प्रजापति मिश्र भी गिरफ्तार कर लिये गए। रात मे नौ बजे हम लोग बाकीपुर-जेल पहुंचाये गए। पुलिस की लारी में अपना सामान लेकर हम सब सवार हुए। पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट भी साथ ही जेल मे पहुचे। अपना-अपना बिस्तर, बक्स वगैरह सब सामान हम लोगो को स्वयं उतारना और ढोना पड़ा। सुप-रिण्टेण्डेण्ट की यही आज्ञा थी।

रात को एक गन्दे 'वार्ड' में, जो खाली रखा गया था, हम लोग बन्द कर दिये गए। बिछाने को कुछ कम्बल मिले। खाने के लिए बाजार से पूरी मंगा दी गई। वहां पेशाव की इतनी बदबू थी कि हम रात-भर चैन से सो न सके। बाजार की पूरी भी कुछ वैसी ही थी जो रुचि से खाते न बनी। दूसरे दिन सवेरे अंगरेज सिविल सर्जन, जो जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट थे, आये। उन्होने कहा कि यदि हम चाहें तो अपना भोजन बाहर से मंगवा सकते हैं। हम लोगो ने कह दिया कि जो कुछ जेल से मिलेगा वही हम लोग खायंगे। वही लोहे का तसला और वही खाना मिला जो सब कैदियों को मिलता है। हम लोगो ने उसे ही खाया। दो दिनो के बाद गवर्नमेण्ट का हुकुम आया कि हम लोग 'अपर डिवीजन' (ऊंचे दर्जे) के कैदी समझे जाय। तबसे कुछ अलग खाना मिलने लगा। दूसरे दिन से ही हम एक दूसरे वार्ड में ले जाकर रखे गए। जेल में ही हम लोगों पर मुकदमा चलाया गया। ब्रजकिशोरबाबू को पांच महीने और बाकी सबको छः महीनों की सजा मिली। चन्द दिनों के बाद हम सब हजारीबाग-जेल भेज दिये गए। वहीं हमने अपनी मियाद पूरी की।

हम लोग तो गिरफ्तार हो गये, इसलिए बाहर के आन्दोलन में कुछ भी भाग न ले सके; पर बाहर के लोगों ने बहुत काम किया। लार्ड विलिंग-डन ने डींग मारी कि दो सप्ताहों में वह सारा मामला खतम कर देंगे, पर

यह आन्दोलन भी प्रायः दो बरसों तक चलता रहा। उस समय तो लोगों में बहुत ही उत्साह था। न मालूम कहां से नये नेता निकल आये, जिन्होंने अपने-अपने ढग के कार्यक्रम भी बना लिये और कानून-भंग का काम जोरों से चलने लगा। कानून तोड़ने में विशेष कठिनाई भी न थी। सरकार की ओर से सभी जगहों में सभा, जलूस इत्यादि की मनाही थी। इस हुकुम का विरोध होने लगा, सभाए होने लगी, जलूस निकलने लगे। सभाओं और जलूसो पर लाठिया चलती—कही-कही गोलियां भी चलती; पर वे होते ही रहे। सभी काग्रेस-कमिटियो के मकानो और आश्रमों को सरकार ने जब्त कर लिया था। उनपर लोग धावा करते, और जैसे बीहपुर (भागलपुर) के आश्रम पर पिछले सत्याग्रह मे बराबर धावे होते ही रहे वैसे ही अनेक आश्रमों पर धावे होने लगे। सदाकत-आश्रम पर भी रोज-रोज धावे होते रहे और लोग गिरफ्तार भी होते रहे। यहा के झंडे पर खास हमला होता रहता। 'यूनियन जैक' लगे हुए लग्गे को लोगो ने आखिर झुकाकर ही छोड़ा।

यह बार सरकार ने ४ जनवरी को आरम्भ किया था। थोड़े ही दिनों बाद २६ जनवरी को स्वतन्त्रता-दिवस मनाने का निश्चय लोगों ने कर लिया। उस दिन कई जगहो मे गोलिया चली। मोतीहारीमें वहां की जिला-कमिटी के मकान के सामनेवाले मैदान मे बडी सभा हुई, जिसमें गावों से भी बहुत लोग आये थे। वहापर गोली चली और कई आदमी मारे गए, पर लोग हटे नही। आज भी उस स्थान पर शहीदो के नाम पर चबूतरा बना हुआ है। अन्त मे गोली चलाना बन्द कर जब पुलिसवाले चले गये, तब भी जनता वहां डटी रही। रात को वही रहकर लोगो ने उसी स्थान पर लिट्टी लगाकर खाया। दूसरे दिन जहा-तहा गाववाले चले गये। मुगेर जिले के तारापुर और बेगूसराय मे भी बहुत लोग गोलियों के शिकार हुए। एक विद्यार्थी ने गोली खाकर मरते दम ये शब्द कहे—"मैं स्वराज्य के लिए मर रहा हूं, लोकमान्य तिलक के निकट पहुचकर सन्देश कहूंगा।" इस तरह की बहादुरी अनेकानेक जगहो के लोगों ने बिहार मे दिखलाई। फिर १९३० की तरह सूबे-भर के सभी जेलखाने भर गये और पटना-कैम्प जेल भी। १९३० से इस बार यही फर्क था कि जेलो मे अधिक सख्ती हो गई। 'अपर डिवीजन' मे बहुत थोड़े लोग रखे गये। बिहार मे ऐसे लोग यों तो पहले भी कम ही थे; पर इस बार उनकी संख्या और भी कम हो गई। गवर्नमेण्ट जितनी जल्दी और तेजी से आन्दोलन बन्द करना चाहती थी, न कर सकी, वह चलता ही रहा। हम लोग हजारीबाग में उसी तरह दिन बिताने लगे। नई बात यह हुई कि इस बार हम लोगों को कारखाने में जाने की इजाजत

नहीं मिली; क्योंकि समझा जाता था कि वहां मामूली कैदियों से हमारी मुलाकात होगी और हम उनको बिगाड़ या बहका देंगे। इसलिए हम इस बार उस तरह का कुछ काम नहीं कर सके; पर सूत अधिक काता गया। धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन भी खूब हुआ—कुरान शरीफ, बौद्धधर्म के ग्रन्थ, बाइबिल आदि भी पढ़े गये।

इस बार की जेल-यात्रा में एक अद्भुत घटना हुई। श्री महामायाप्रसाद एक बहुत स्वस्थ युवक थे। वह बहुत कसरत वगैरह किया करते थे। हम लोगो के भोजन की देख-रेख उन्हींके जिम्मे थी। एक दिन अप्रैल में, जब गर्मी काफी हो गई थी, वह चौके से दोपहर को आये। तबीयत कुछ सुस्त हो गई थी। सबने समझा कि कोई मामूली-सी बात होगी। दूसरे दिन से आहिस्ता-आहिस्ता उनकी बोली बन्द होने लगी। दिन में वह इस तरह बन्द हो गई कि 'आ-आ ऊं-ऊं' भी नही कर सकते थे। जो कुछ कहना होता, लिखकर बताते। बातें सुनते-समझते थे, पर बोल नही सकते थे। वहां के डाक्टरो और सिविल सर्जन ने देखभाल की, पर कुछ कर न सके। उनकी मीयाद भी पूरी हो चली थी। इसलिए वह छोड़ दिये गए। कलकत्ते में वह इलाज कराने गये। वहा के डाक्टरों और वैद्यो की हजार कोशिश के बाद भी उनकी आवाज न खुली। सभी लोग कहते थे कि आवाज की नली मे कोई कसर नही है, पर तो भी आवाज निकलती नही। यही कैफियत प्रायः दो बरसों तक रही। जब १९३४ मे डाक्टर असारी यूरोप गये, वह भी उनके साथ गये। वहा वियना (आस्ट्रिया) मे एक विशेषज्ञ ने इलाज किया, जिससे एक-दो हफ्तो के अन्दर ही आवाज कुछ-कुछ निकलने लगी। कुछ दिनो बाद पूरे स्वस्थ होकर वह स्वदेश वापस आ गये। बाद मे उनकी आवाज पूर्ववत हो गई। बड़ी-बड़ी सभाओं मे भी वह भाषण करते हैं और उनकी आवाज सब लोगों तक पहुंच जाती है।

इस प्रकार, सब तरफ कानून-भग चल ही रहा था कि एक विचित्र बात कांग्रेस के अधिवेशन के सम्बन्ध में हुई। ऊपर कह चुका हू कि इस बार सरकार ने गिरफ्तारियां ४ जनवरी को ही आरम्भ कर दी थी। कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन मार्च मे होनेवाला था। उत्कल (उड़ीसा) के लोगों ने कांग्रेस को आमन्त्रित किया था। वे तैयारियां भी कर रहे थे। जब एकाएक वार शुरू हो गया तो वहां के लोग भी गिरफ्तार हो गये। बिहार और उड़ीसा एक ही (सम्मिलित) प्रान्त थे। इसलिए वहा के भी प्रमुख कांग्रेसी लोग, जो अपर-डिवीजन में थे, हजारीबाग ही आ गये और हम सब साथ ही थे। उड़ीसा में अधिवेशन होने की बात तो अब थी नही; पर जो लोग बाहर थे, उन्होंने सोचा कि अधिवेशन मार्च में कही-न-कही अवश्य

होना चाहिए। सरकार तुली हुई थी कि अधिवेशन वह किसी तरह न होने देगी। लोगों ने निश्चय किया कि अधिवेशन दिल्ली में होगा। उसके लिए दिन भी नियत करके घोषित कर दिया गया। पंडित मदनमोहन मालवीय का सभापतित्व भी घोषित हो गया। बहुतेरे लोग भिन्न-भिन्न सूबों से, किसी-न-किसी तरह, नियत दिन के पहले ही, दिल्ली पहुचकर जहा-तहा, ठहर गये। लोगों ने इस बात की भी घोषणा कर दी कि नियत तिथि पर, १० बजे दिन को, घटाघर के सामने, चादनी चौक मे अधिवेशन होगा। मालवीयजी दिल्ली के लिए रवाना हुए। वह सीधे रेल से दिल्ली तक नही गये, कही रास्ते से मोटर पर हो लिये। गाजियाबाद और दिल्ली के बीच मे वह गिरफ्तार कर लिये गए। इसकी भी सूचना लोगो को मिल गई। ठीक अधिवेशन के दिन भीतर-भीतर यह खबर उड़ा दी गई कि चादनी चौक मे अधिवेशन न होकर कही नई दिल्ली मे होगा। यह खबर इस तरह फैलाई गई कि पुलिस को इसीपर विश्वास हो गया। इसलिए उस दिन पुलिस की तैयारी चादनी चौक मे न होकर उस दूसरे स्थान मे रही। ठीक समय पर बाहर से आये हुए प्रतिनिधि, जो घटाघर के पास की गलियो मे जहा-तहां थे, चारों ओर से निकल आये। वे घटाघर के सामने बीच सड़क पर ही जमा हो गये। कांग्रेस के नियमानुसार मनोनीत सभापति की गैरहाजिरी मे अहमदाबाद के एक मिल-मालिक सेठ रणछोडदास सभापति चुने गये। उनका छोटा-सा भाषण हुआ। एक समयानुकूल प्रस्ताव बाजाब्ता पेश हुआ और सबने इसे मजूर किया। यह हो ही रहा था कि पुलिस को इसकी खबर मिल गई। घुडसवार और दूसरे जत्थे, जो लारियो पर सवार थे, वहा पहुंच गये और उपस्थित लोगों को लाठियो द्वारा तितर-बितर कर दिया। पर इसके पहले ही सारी कार्रवाई खत्म हो चुकी थी। यह खबर अखबारो में छपी। लोगो का इससे बडा मनोविनोद रहा। इत्तफाक से सेठ रणछोडदास गिरफ्तार भी न हुए। मालूम नही कि सचमुच उस नाम के सेठ सभापति हुए थे या योंही उनका नाम घोषित कर दिया गया। पर इतना ठीक है कि यह अधिवेशन कांग्रेस के बाजाब्ता अधिवेशनो में नही गिना गया। दूसरे अधिवेशनों के सभापतियो की तरह इसके सभापति को अखिल भारतीय कमिटी की आजीवन सदस्यता नही मिली।

इस बार देश ने कांग्रेस का पूरा साथ दिया। सरकार ने पिछली बार ही देख लिया था कि धन की मार बहुत जबरदस्त होती है। इसलिए इस बार बड़ी-बड़ी रकमों के जुर्माने हुए। कांग्रेस की सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गई। कांग्रेस का मकान तो कही था ही नही, बैंकों में जो कुछ कांग्रेस के हिसाब में जमा मिला, वह भी जब्त हुआ। पर कांग्रेस का बहुत-कुछ सरकार

को मिला नहीं। सरकार तथा दूसरे लोगों का भारी भ्रम है कि कांग्रेस के पास बहुत रुपये हैं और वह रुपयो के बल से काम करा लेती है। १९२१ में एक बार कांग्रेस ने बड़ी रकम जमा की थी। वह राष्ट्रीय शिक्षा और खादी में बहुत-कुछ खर्च हुई। इसके अलावा कांग्रेस के संगठन में भी खर्च हुआ। उसके बाद सभी प्रांतों की कमिटियां अपनी जरूरत के अनुसार खर्च जमा कर लिया करती है। वह रकम बहुत बड़ी नही होती। यदि कांग्रेस के सामने कोई काम आ जाता है तो वह उसके लिए तत्काल पैसे जमा कर लेती है। पर कांग्रेस की किसी भी कमिटी के पास बहुत रुपये नही जमा रहते। हां, जहां-तहां छोटे मकान कांग्रेस के हो गये है। वे भी स्थानीय लोगों से तत्काल ही जमा किये हुए पैसो से बनाये गए है। पर इतना ठीक है कि जब जैसी जरूरत होती है, जनता से पैसे मिल जाते हैं। जहां कांग्रेस का सगठन अच्छा है—कार्यकर्त्ताओं के प्रति लोगों में श्रद्धा और विश्वास है—लोगो के पास पैसे हैं, वहां अधिक पैसे मिल जाते है; पर जहा इनमे किसी बात मे कमी है, वहां कम मिलते है।

गांधीजी का विश्वास है और इसी नीति पर वह चलते हैं कि सार्वजनिक संस्था को अपने खर्च के लिए धन इकट्ठा करके जमा नही रखना चाहिए; आवश्यकतानुसार पैसे जमा करके काम चला लेना चाहिए। इससे वह संस्था निरंकुश नही हो सकती; क्योकि यदि उसने काम ठीक नही किया तो वह अपनी लोकप्रियता खो बैठेगी और पैसे नही मिलेंगे; इस तरह उस संस्था को अपने जीवन के लिए जनता पर निर्भर रहना पडता है और वह अपने कर्तव्य को ठीक निबाहने पर ही जीवित रह सकती है। मेरे अनुभव ने इस बात को अक्षरशः सत्य साबित पाया है। हमारा प्रान्त एक गरीब सूबा है। बड़े-बड़े जमीदारो से काग्रेस का सम्बन्ध नही के बराबर रहा है। पर जब कभी जरूरत पड़ी है, मध्यम वर्ग के लोगों ने आवश्यकतानुसार हमें धन दिया है। मैं मानता हू कि धन-संग्रह मे हमारी शक्ति और हमारा समय बहुत व्यय होता है और यदि इस चिन्ता से हम मुक्त रहते तो शायद काम अधिक कर सकते। काम करनेवाले बहुत रहे है—अच्छे समझदार और कांग्रेस के सच्चे अनुयायी; पर रुपयों की कमी के कारण उनको हम आश्रमों में रहने तक के लिए भी खर्च नही दे सकते हैं, उनके बाल-बच्चों और घरवालों के लिए कौन कहे! बहुतेरे तो इस मजबूरी से दुख के साथ कभी-कभी अपनी रोटी की फिक्र में कांग्रेस के काम से अलग भी हुए हैं। यह सब होते हुए भी, मैं समझता हूं कि धनाभाव से हमारा काम कभी रुका नहीं है। एक प्रकार से हमारी गरीबी हमारी सहायक भी रही है। गरीब सूबे की प्रान्तीय कमिटी वहां के जनसाधारण का प्रतिनिधित्व गरीब रहकर ही

कर सकती है। इसलिए मैं यह भी मानता हूं कि हम अपने सूबे के ठीक प्रतिनिधि रहे है ।

यहा मै एक आवश्यक—पर अप्रस्तुत—विषय की आलोचना मे बहक गया। जो हो, हमारे सूबे मे सरकार को कांग्रेस के हिसाब में अधिक धन नही मिला। पर हमारे मकान सभी जब्त रहे। जब वे हमें वापस मिले, बहुतेरो की हालत रद्दी हो गई थी ।

सरकार ने इस बार काग्रेस या उसके किसी कार्यकर्ता को आर्थिक या किसी तरह की मदद देना जुर्म बना दिया था । कई नये आर्डिनेन्स बन गये थे, जो मामूलीतौर पर लड़ाई के दिनो मे ही और मुल्को में बना करते है । इसलिए हमारे बाहर रह जानेवाले कार्यकर्ताओं को बहुत जगहों में किराये पर भी मकान नहीं मिलते थे। सवारी भी जल्दी न मिलती । बहुत आतंक फैलाने का प्रयत्न किया गया, पर काम रुका नही; क्योकि जनता बराबर मदद करती रही। और, कुछ लोग ऐसे थे; जो अखिल भारतीय कमिटी के दफ्तर को अपने हाथ मे रखकर सारे देश मे समय-समय पर आदेश पहुंचाते तथा सभी जगहो की कार्रवाई की खबर लेते रहे ।

इस तरह, यद्यपि कांग्रेस गैर-कानूनी संस्था हो गई, जिसके न घर थे, न दफ्तर, न पैसे, न सदस्य और न पदाधिकारी, तो भी जैसे किसी गुप्त स्थान से भूर मे पानी निकलता ही रहता है वैसे ही काग्रेस का कार्यक्रम भी कहीं गुप्त स्थान से निकल ही आता और उसको पूरा करनेवाले भी यथास्थान और यथासमय मिल ही जाते। लार्ड विलिंगडन की वह मदपूर्ण धमकी कि काग्रेस दो हफ्तों मे समाप्त कर दी जायगी, पूरी नहीं हुई। हजारीबाग-जेल के अन्दर इतनी कड़ाई थी कि खान अब्दुल गफ्फारखां और डाक्टर खानसाहब उसी जेल मे थे, पर हम लोगों से उनकी एक बार भी मुलाकात न हुई ।

: ९९ :

हरिजनों के लिए गांधीजी का अनशन

छह महीनो की सजा काटकर मैं हजारीबाग से रिहा हो गया। कुछ घंटों के लिए मुझे हजारीबाग शहर में ठहरना था। उसी समय मुझे जोरों से जाडा-बुखार आ गया। मुझे कुछ ठहर जाना पड़ा। जब कुछ स्वस्थ होकर मै पटने आया तब भी बीमार ही था और कमजोरी तो बेहद थी। मैने कुछ अच्छा होकर बाहर की परिस्थिति का ज्ञान प्राप्त किया। अखिल भारतीय काग्रेस-कमिटी के कार्यकर्ताओ से मेरी मुलाकात हुई। सूबे मे भी जो बाहर थे, उनसे भेट हुई। मुझसे जो कुछ हो सका, मैंने मदद भी की; पर काम चलाने का भार मैने अपने ऊपर नही लिया, जो लोग चला रहे थे उन्हीपर रहने दिया। अखिल भारतीय काग्रेस कमिटी के काम में ही मैंने अधिक दिलचस्पी ली और समय दिया। मैं काशी में पंडित मालवीयजी से जाकर मिला और वहा कई दिनों तक ठहरा रहा। फिर बम्बई भी गया और कलकत्ते भी। सभी जगहो मे कार्यकर्ताओ से मिला और यथासाध्य रुपये जमा करने में उनकी कुछ मदद की। अभीतक पूरा स्वस्थ नही हो पाया था, पर ऐसा बीमार भी न था कि काम रुक जाय।

मैं मानता था कि मुझे बाहर नही रहना चाहिए और सोच भी रहा था कि कोई उपयुक्त अवसर मिले तो फिर जेल-यात्रा करूं। इतने ही मे एक दिन अखबारों में महात्माजी के अनशन की बात पढ़ी। हम जबसे बम्बई में गांधीजी से मिलकर अलग हुए थे, उनकी कोई खबर हमको नही मिली थी। पर सरकार के साथ उनका कुछ दिनों से पत्र-व्यवहार चल रहा था। पहले कह चुका हूं कि गोलमेज-कान्फ्रेन्स में उन्होंने अस्पृश्य वर्ग के लिए अलग चुनाव-क्षेत्रों का प्राणपण से तीव्र विरोध किया। मि० मैकडोनल्ड ने अपने फैसले मे अलग क्षेत्र कायम करने की बात कह दी थी। महात्माजी ने अपने उसी भाषण की याद दिलाते हुए कहा था कि सरकार इस फैसले को नही बदलेगी तो वह आमरण अनशन करेंगे, इसलिए सरकार के न मानने पर उन्होंने अनशन आरम्भ कर दिया। सरकार ने सारा पत्र-व्यवहार प्रकाशित कर दिया और उसके प्रकाशित होते ही देश-भर में बड़ी सनसनी पैदा हो गई।

महात्माजी यरवदा-जेल में थे। वही अनशन आरम्भ हुआ। मैं खबर पाते ही बम्बई पहुंचा। पूज्य मालवीयजी भी पहुंचे। श्री राजगोपालाचारी भाग्यवश बाहर थे, वह भी आ गये। और जो भी लोग बाहर थे, बम्बई पहुंच गये। महात्माजी के अनशन को छुडाने की कोशिश होने लगी। पर महात्माजी अपनी प्रतिज्ञा से कब डिगनेवाले थे। मि० मैकडोनल्ड के फैसले में एक बात यह भी थी कि वह फैसला तबतक कायम रहेगा जबतक उन जातियो के लोग, जिनका फैसले से सम्बन्ध था, आपस के समझौते से उसके स्थान पर कोई दूसरी बात तय न कर ले। स्वभावतः इस ओर लोगो का ध्यान गया। अब भी इस बात की कोशिश होने लगी कि अस्पृश्य वर्ग के लोगों को ही राजी करके अलग निर्वाचन-क्षेत्र छुडवाये जायं। बम्बई में डा० अम्बेदकर रहते थे। सरकार ने उनको ही अस्पृश्यो का नेता बनाकर गोलमेज-कान्फ्रेन्स मे भेजा था। उनसे बाते होने लगी। एक-दो दिन बीत गये, पर कोई बात तबतक तय न हो सकती थी जबतक गाधीजी से भी राय न ले ली जाय। इस बीच मे अस्पृश्य वर्ग की जनता मे भी हलचल मच गई; क्योंकि अस्पृश्यता-निवारण में गाधीजी ने बहुत काम किया था। उस वर्ग के लोग देखने लगे कि इनकी मृत्यु यदि इसी कारण हो जायगी तो उनके लिए वह एक अमिट कलक हो जायगा।

गांधीजी ने जिस कारण से अलग क्षेत्र का विरोध किया था, वह कारण भी कुछ लोग अवश्य समझते थे। गाधीजी का कहना था कि अस्पृश्य-वर्ग-वाले हिन्दू है; पर किसी कारण से समाज मे ऐसी रूढि हो गई है कि हिन्दू-जाति के इतर वर्ग उनको आज अस्पृश्य समझने लगे है। वह खुद इस अस्पृश्यता को हिन्दू-धर्म और हिन्दू-समाज का कलंक मानते थे, और इसे हटा देना चाहते थे। यो तो जो अस्पृश्य, ईसाई या मुसलमान हो जाता है और इस प्रकार हिन्दू-समाज तथा हिन्दू-धर्म से अलग हो जाता है, वह उनसे बिलकुल कट जाता है और यद्यपि वहा भी कुछ हद तक अस्पृश्यता रह ही जाती है तथापि वह हिन्दुओं के लिए अस्पृश्य नही रह जाता। इसलिए यह प्रश्न उनके सम्बन्ध मे ही होता था, जो हिन्दू रह जाते है। गाधीजी समझते थे कि राजनैतिक चुनाव के लिए भी यदि अलग क्षेत्र हो जायगे तो यह एक नया अछूतपन हो जायगा और जहां अछूतपन दूर करने का प्रयत्न किया जा रहा है तथा जहा इसके दूसरे रूप हट रहे है, वहां यह उसका एक नया कारण एवं रूप हो जायगा। अछूतों के शिक्षित नेतावर्ग यह मानते थे कि जब सब अधिकार चुनाव के ही बल पर अवलम्बित होंगे तो उनको भी अपने संख्या-बल का लाभ मिलना चाहिए और वह तभी पूरी तरह मिल सकेगा जब उनके लिए अलग चुनाव-क्षेत्र हो जायंगे। इसलिए गोलमेज-

कान्फ्रेन्स में डा० अम्बेदकर ने इसपर जोर दिया था ।

बम्बई और पूना के बीच में कुछ लोग दौड़-धूप करने लगे, पर यह बहुत असुविधाजनक था। इसलिए सब लोग, जिनको इसमें कुछ करना था, पूना ही चले गये। डा० अम्बेदकर और उनके कुछ साथी भी पूना गये। वहां दो-तीन दिनों तक बातें चलीं। महात्माजी से भी जेल में भेंट की अनुमति मिल गई थी। वहा फाटक के नजदीक ही एक छोटे-से वार्ड में गांधीजी से मुलाकात हुआ करती, जहा एक आम के गाछ के नीचे उनकी चारपाई रहती। श्री राजगोपालाचारी, पंडित मालवीयजी, श्री ठाकर बप्पा, सेठ घनश्यामदास बिड़ला, सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास प्रभृति ने बहुत काम किया। डा० अम्बेदकर, डा० सोलकी प्रभृति भी अपनी ओर से बराबर बातचीत में शामिल रहे। जैसे-जैसे दिन बीतते जाते, मैं घबराता था; क्योंकि बातचीत में गांधीजी को पूरा परिश्रम पड़ता और मै डरता था कि वह इतने परिश्रम के साथ बहुत देर तक अनशन बर्दाश्त नही कर सकेंगे। जब-जब बाते होती, मै भी शरीक होता; पर अपनी आदत के मुताबिक बाते बहुत कम करता। गांधीजी ने एक दिन संध्या को डा० अम्बेदकर से बहुत बातें की और उनसे जोरदार अपील भी की। बाते तय हो गई। मुख्य शर्तें यह थी कि अलग निर्वाचन-क्षेत्र नही होंगे, उनके बदले मे चुनाव का तरीका यह होगा कि निर्धारित संख्या मे अस्पृश्य वर्ग के लिए जगहे सुरक्षित रहेंगी, चुनाव के समय अस्पृश्य मतदाताओ को अधिकार होगा कि प्रत्येक स्थान के लिए चार उम्मीदवार मनोनीत कर दे; यदि चार से अधिक उम्मीदवार हों तो केवल उनके ही वोट से चार ही चुन लिये जायं और इन चार की ही उम्मीदवारी कायम रहे; चारो नामों पर वोट लिये जायं और वोट सवर्ण तथा अस्पृश्य सभी हिन्दू दें और जो सबसे अधिक वोट पावे वे ही चुने जायं, यह दस बरसो तक रहेगा और उसके बाद इसपर फिर विचार किया जायगा। मि० मैकडोनल्ड के फैसले में अस्पृश्यो को जितनी जगहें मिली थी उनकी संख्या बहुत बढा दी गई। वह उनकी जनसंख्या के अनुपात से बढ़ाई गई। वे बातें तय हो गई और प्रधान मन्त्री मैकडोनल्ड के पास तार भेज दिया गया। उन्होंने इसे मंजूर कर लिया और अपने फैसले को इस हद तक बदल दिया।

इतना हो जाने पर गांधीजी के अनशन का कोई कारण नही रह गया। उसे उन्होंने समाप्त कर दिया। इस समझौते से हम लोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई। राजाजी और डा० अम्बेदकर ने अपने कलम आपस में अदल-बदल कर लिये। यह राजाजी की इच्छा से हुआ; क्योंकि वह बहुत ही खुश थे। विलायत से उत्तर आने में अधिक विलम्ब नहीं हुआ, शायद चौबीस घंटों

के अन्दर ही मंजूरी आ गई। पर ये चौबीस घंटे भी हम लोगों को बहुत अधिक लग रहे थे। उस दिन सवेरे से ही हम सब परेशान थे। होते-हवाते दोपहर का समय हो गया। मालूम हुआ कि उत्तर आ गया है और जल्द ही जेल में पहुंचनेवाला है। उसी दिन विश्वकवि रवीन्द्रनाथ पूना पहुचे। वह रवाना हुए थे गाधीजी को देखने के लिए। उस समय तक समझौते की खबर उनको नही थी। पूना पहुंचने पर उन्हे इसकी खबर मिली। वह ठीक उसी समय जेल मे पहुंचे जब समझौते की मजूरी की खबर वहा पहुंची और गांधीजी के अनशन छोड़ने का समय आ गया। बडा ही शुभ मुहूर्त्त था वह। प्रार्थना की गई। गुरुदेव ने एक सुन्दर गीत गाया और आशीर्वाद दिये। इसके उपरान्त गांधीजी ने नारगी का रस पीकर उपवास समाप्त किया। सारे देश मे खुशिया मनाई गई। अछूतोद्धार की जबरदस्त लहर चल पड़ी।

: १०० :

अछूतोद्धार का प्रयत्न

कुछ राजनैतिक प्रश्नो पर समझौता हो जाने से ही गाधीजी सन्तुष्ट होनेवाले नही थे। उनके हृदय मे तो अस्पृश्यता को जला देने के लिए एक आग धधक रही थी। वह आग केवल चुनाव में एक क्षेत्र अथवा अस्पृश्यों को कुछ सुरक्षित जगहें मिल जाने से कैसे बुझ सकती थी? वे सब सवाल उस समय तक उठते ही रहेंगे जबतक कि उनके साथ अछूतपन का व्यवहार होता रहेगा और हिन्दू-जाति उनको मनुष्य की श्रेणी से एक प्रकार अलग ही समझती रहेगी। इसलिए वह यह भी चाहते थे कि इसे निर्मूल कर देने का भी उपाय किया जाय। वहा से बम्बई में आकर एक अच्छी सभा हुई, जिसमें हिन्दुओं की ओर से इस बात की प्रतिज्ञा की गई कि वे अछूतपन को दूर करा देने का पूरा प्रयत्न करेंगे। इस काम को चलाने तथा दूसरे प्रकार से अछूतों की सेवा करने के लिए एक सस्था कायम की गई। गाधीजी ने उस समय तक 'अछूत' शब्द के बदले मे 'हरिजन' शब्द का व्यवहार आरम्भ कर दिया था। इसलिए उस संस्था का नाम 'हरिजन-सेवक-संघ' रक्खा गया। उसके सभापति हुए सेठ घनश्यामदास बिडला और मन्त्री श्री अमृतलाल ठक्कर, जिनको लोग प्रेम से 'ठक्कर बप्पा' कहा करते है। वह सस्था अभी तक अच्छी तरह काम कर रही है। सारे देश मे उसकी शाखाए कायम हो गई हैं। ठक्कर बप्पा के पैरो में मानो चक्र है! वह अपनी वृद्धावस्था में भी सारे देश का दौरा करते हुए सभी जगहों मे हरिजनो की सुविधा तथा शिक्षा का प्रबन्ध करके हर प्रकार की सेवा करते रहते है।

उस समय यह भी विचार हुआ कि अछूतपन दूर करने का एक स्पष्ट तरीका, जिसे सभी समझ और अपनी आंखो देख सकते है, यह है कि मन्दिरों में जहां उनका प्रवेश निषेध है वहां उनका प्रवेश कराया जाय; मंदिरो को उनके लिए भी वैसे ही खुलवाया जाय जैसे वे दूसरे हिन्दुओ के लिए खुले है। इसी तरह सार्वजनिक कुंओं में उन्हें जल भरने का भी अधिकार होना चाहिए। जहां दूसरे हिन्दू जा सकते है, बैठ सकते हैं, वहां जाने-बैठने आदि का अधिकार और सहूलियत उन्हें भी मिलनी चाहिए। गांधीजी के उपवास के समय ही बहुत जगहों में हिन्दुओं ने मन्दिरों के दरवाजे उनके लिए खुल-

वाने शुरू किये और उनके दूसरे स्वत्व भी बहुत जगहों में स्वीकार किये गए। पर इतने बड़े देश के लिए ऐसे स्थानों की संख्या अभी बहुत कम थी। इस उत्साह का एक नतीजा यह हुआ कि बम्बई की सभा के बाद बहुत जगहों में इस सम्बन्ध के सम्मेलन होने लगे, जिनमे अस्पृश्यता-निवारण के प्रस्ताव स्वीकृत होते—मन्दिर खुलवाये जाते इत्यादि। इस प्रकार का एक सम्मेलन विहार मे, छपरे मे, थोड ही दिनो के बाद हुआ, जिसमे काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० भगवानदास ने सभापति का आसन सुशोभित किया। बहुत उत्साह देखने मे आया और जनता की ओर से हरिजनो के प्रति बहुत प्रेम तथा क्रियात्मक सहानुभूति प्रदर्शित की गई।

बम्बई मे ही राजाजी ने मुझसे अनुरोध किया कि मैं उनके साथ मद्रास जाऊं। अछूतपन का कट्टरपन और भयकर रूप सबसे अधिक उसी इलाके में देखा जाता है। मालाबार मे तो अछूतपन यहातक है कि कुछ जातिया उस सडक पर नही चलने पाती, जिसपर सवर्ण हिन्दू चलते है! जहा उन जातियों के लोग सडक पर चलने पाते है वहा भी उनको पुकारते जाना पड़ता है, जिसमे दूसरे अनजान मे कही उनके नजदीक न पहुच जाय! कुंआ और तालाब मे पानी भरने की तो बात ही नही हो सकती। इसके अलावा दक्षिण मे बहुत बडे-बडे मन्दिर है। कुछ तो ऐसे है, जहां हिन्दुस्तान के हर कोने से यात्री जाया करते है। इन मन्दिरो का नियत्रण पचायत द्वारा होता है। पंच कही-कही जनता द्वारा चुने जाते है और कही-कही सरकार द्वारा मनोनीत होते है। यदि उन लोगो मे प्रचार हो और वे मंदिरो को खोल दें तो बहुत बड़ी बात हो जायगी। मै राजाजी के साथ वहा गया। मदुरा और श्रीरंगम् के मन्दिर खुलवाने का बहुत प्रयत्न किया गया। वहां के पुजारियो और सचालकों से बहुत बाते हुई। कुछ सहानुभूति भी दिखलाते थे। हम लोग कई दिनो तक यह प्रयत्न इन दोनो स्थानो मे करते रहे। सार्वजनिक सभाएं की गई। पडितो से भी बहुत बाते होती रही। पर इन बडे मन्दिरो के खुलवाने मे हम लोग समर्थ नही हुए। कुछ दूसरे मन्दिर, जिनका उतना अखिल भारतीय महत्व नही था, खोले गये। इससे इतना तो अवश्य जान पड़ा कि काम यद्यपि कठिन है तथापि असम्भव नही है। जिन लोगो को हम बहुत कट्टर समझते थे, वे भी बात सुनने और करने के लिए तैयार थे। हम वहा से निराश होकर नही, बल्कि बहुत आशा लेकर उत्तर की ओर आये।

हमारे प्रयत्न का फल तुरन्त तो नही मिला; पर कई बरसों के बाद मालाबार मे, जहां सबसे ज्यादा कट्टरपन था, त्रावनकोर के महाराज ने वहां के सबसे प्रसिद्ध श्री पद्मनाभजी के मन्दिर को खोल दिया; सारे राज्य में राज्य के सभी मन्दिर खोल दिये गए। मद्रास में भी कानून बनाकर राजाजी

ने, जब वह प्रधान मंत्री थे, मदुरा के मन्दिर को खुलवा दिया। उसी समय यह बात भी चल पड़ी कि कानून बनाकर मन्दिर खुलवाये जायं। कानून का क्या रूप हो और उनमें कैसी शर्तें रहें, इसपर विद्वान् लोग विचार करने लगे, जिसका फल पीछे देखने में आया। सबसे बड़ी विचित्र बात दक्षिण में यह देखने मे आई कि वहा के अब्राह्मण सवर्ण हिन्दुओ की अपेक्षा वहा के ब्राह्मण इस सुधार के लिए अधिक तैयार पाये गए। वहां से लौटते समय मै आन्ध्र प्रदेश के कतिपय स्थानो मे ठहरता हुआ आया। वहा भी वैसी सुधार की लहर देखने मे आई। वहां भी मैं कई जगह मन्दिर खोलने के उद्योग मे शरीक हुआ।

उत्तर भारत मे भी इसी तरह लहर दौड़ गई। अनेकानेक स्थानों मे सभाएं होने लगी, मन्दिर खुलने लगे और दूसरे प्रकार से भी अछूतपन दूर करने के प्रमाण क्रियात्मक रूप में दिये जाने लगे। गाधीजी जेल से ही इस विषय पर बयान देते थे। गवर्नमेण्ट ने इस बात पर इजाजत दे दी थी कि अछूतोद्धार-सम्बन्धी उनके बयान समाचार-पत्रो मे छपने के लिए भेजे जा सकते है। इस अधिकार का उन्होंने बहुत तत्परता से उपयोग किया और उनके बहुत-से लेख प्रकाशित होने लगे। कुछ दिनो के बाद उन्होंने महसूस किया कि इस तरह पत्रो मे बयान छपना काफी नही है, इसके लिए एक अपना पत्र निकलना चाहिए। 'यंग इडिया' उनका बन्द हो चुका था। इसलिए 'हरिजनो' की सेवा के लिए अंगरेजी मे 'हरिजन' और भारतीय भाषाओं मे 'हरिजन-बन्धु' तथा 'हरिजन-सेवक' के नाम से साप्ताहिक पत्रो का जन्म हुआ, जो कई बरसो तक चले। पर इसी बीच मे और भी बहुत-सी बातें हुई, जिनका जिक्र पहले आना चाहिए।

एक तरफ इस तरह हरिजन-सेवा और अस्पृश्यता-निवारण के लिए अभूतपूर्व उत्साह पैदा हुआ, दूसरी ओर अनपेक्षित दिशाओ से विरोध के कुछ चिह्न भी देखने मे आये। एक तो सबसे आश्चर्य की बात यह हुई कि इस सारे प्रयत्न को कुछ हरिजन लोग नापसन्द करते थे। उनका कहना था कि यह एक ढोंगमात्र है, जो उनकी राजनैतिक जागृति मे बाधक होगा, उनको राजनैतिक और आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त हो जायगी तो अछूतपन स्वयं दूर हो जायगा; जबतक वह नही होती तबतक सवर्णों द्वारा इस प्रकार के प्रयत्न उनको फिर गफलत की नीद मे सुला देंगे जिससे वे औरों की अपेक्षा दुनिया की होड़ मे पीछे रह जायंगे। इसलिए वे चाहते थे कि उनमें जो असन्तोष है वह और भी बढ़े और उसीसे जागृति पैदा होगी। उनकी ओर से 'हरिजन' नाम का भी विरोध किया गया। वे इस प्रश्न को धार्मिक और सामाजिक नही समझते थे, इसे केवल आर्थिक और राजनैतिक दृष्टिकोण

से ही देखते थे। हरिजन-सेवक-संघ और गांधीजी के प्रयत्नों का उद्देश्य उनकी राजनैतिक और आर्थिक उन्नति में बाधा डालना तो था ही नहीं—सच तो यह कि पूना के समझौते से उनको प्रान्तीय और केन्द्रीय व्यवस्थापक सभाओं में इतनी जगहें मिल गई थीं जितनी मि० मैकडोनल्ड ने भी नहीं दी थीं। और किसी प्रकार का वास्तविक विरोध था भी नहीं, पर उनके दिल में सन्देह था और उसका कोई उपाय न था। जब काम जोरों से चलने लगा तो बहुतेरों का सन्देह कुछ हद तक दूर हुआ; पर उसने इतनी गहरी जड़ पकड़ ली थी कि पीछे वह फिर स्पष्ट हो गया। उनमें जो शिक्षित थे और देश-विदेश की बातें समझ सकते थे, वे यह भी देखते थे कि जो शासन-विधान बननेवाला है, उसमें वोट देनेवालों को अधिकार मिलेगा, और इसलिए अपनी संख्या पर ध्यान रखकर उसमें पूरा लाभ उठाना चाहते थे। इसकी कोई शिकायत भी नहीं कर सकता था, पर इसके लिए अछूतपन दूर करने के प्रयत्न को ढोंग समझना बिलकुल गलत था। सवर्ण हिन्दुओं में भी कुछ ऐसे जरूर थे, जो उनके इस रुख से बहुत असन्तुष्ट हो गये और समझने लगे कि राजनैतिक अधिकार से व्यक्तिगत लाभ उठाने के लिए कुछ पढ़े-लिखे लोगों का ही यह विरोध है। जो हो, विरोध का रूप क्रियात्मक नहीं हुआ, केवल मन्तव्यों और बयानों द्वारा ही जहां-तहां प्रकाशित होता रहा।

दूसरी बाधा कांग्रेसी लोगों में से भी कुछकी ओर से पड़ने लगी। यह तो जाहिर है कि जिस समय गांधीजी ने अनशन आरंभ किया, सत्याग्रह चल रहा था, सरकार जोरों से दमन कर रही थी। उन लोगों का कहना था कि ऐसे समय में महात्माजी ने इस झगड़े को खड़ा करके जनता का ध्यान सत्याग्रह की ओर से खींचकर एक सामाजिक प्रश्न पर केन्द्रित कर दिया—देश के लिए यह समय ब्रिटिश सरकार के साथ लड़ने का था, न कि हिन्दू-समाज की हजारों बरस की बुराई को दूर करने का। वे लोग समझते थे कि इस तरह यह सत्याग्रह कमजोर कर दिया गया, कांग्रेस के कुछ कार्यकर्ता अछूतोद्धार के काम में लग गये; कुछ तो बाजाब्ता हरिजन-सेवक-संघ के पदाधिकारी बनकर अपना सारा समय उसीमें देने लग गये। यद्यपि यह बात ठीक थी कि ध्यान उस ओर खिंच गया और कुछ काम करने-वाले भी हरिजन-सेवा में लग गये, तथापि यह विचारणीय है कि जो लोग सत्याग्रह का काम छोड़कर इसमें आ सके थे, उनमें थोड़े ही ऐसे थे, जो सत्याग्रह का काम करने के लिए तैयार थे—किसी-न-किसी कारण से उनमें से बहुतेरे अब उस काम से अलग होना ही चाहते थे, और वे यदि इस काम में लगे भी तो इससे सत्याग्रह-सम्बन्धी काम उन्होंने छोड़ा नहीं। यदि यह काम न होता तो भी वे सत्याग्रह छोड़नेवाले ही थे! यह भी एक बात है

कि हरिजन-सेवक-संघ मे काम करनेवालों में ऐसे लोगों की बहुत बड़ी संख्या थी जो कांग्रेस और सत्याग्रह में नही काम करते थे। इसके सबसे बड़े और उत्कृष्ट उदाहरण तो उस सघ के सभापति सेठ घनश्यामदास बिड़ला और मंत्री श्री ठक्कर बप्पा ही है।

जो हो, कांग्रेसी दल मे इस प्रकार का असन्तोष पैदा हुआ। जो लोग इस विचार के थे, वे यह नही देख पाते थे कि हमारे देश मे विदेशी राज्य का मुख्य और मूल कारण हमारी कमजोरियां हैं, जो हमारे समाज मे अथवा व्यक्तिगत रूप से हममे घर कर गई है। गांधीजी ने, आरंभ से ही, इन कमजोरियो को दूर करने के लिए ही, रचनात्मक काम पर इतना जोर दिया है। हम जैसे-जैसे आगे बढते है, इन कमजोरियो को महसूस करते है और देखते है कि इनकी वजह से हमारी गाडी कदम-कदम पर रुक जाती है। यदि इस कमजोरी को हम दूर कर सके—करोडो भाइयो और बहनो को इनका शिकार होने से बचा सके, तो यह बहुत बडी सेवा होगी। इससे स्वराज्य भी, यदि वह सच्चा है और सबके लिए एक तरह होनेवाला है, नजदीक आ जाता है। मै तो हमेशा रचनात्मक कार्यक्रम का कायल रहा हूं और यथासाध्य अपनी ओर से प्रयत्न भी करता हू; पर यह बात कांग्रेस के सभी लोगों की नही है। दो विचार-धाराओ का विरोध और टक्कर है। कौन कह सकता है कि कौन-सा विचार ठीक है। हम इतना ही कह सकते है कि हम अपने विचार को दृढता और विश्वास के साथ ठीक मानते है। हम यह भी समझते है कि ऐसा न मानने से ही हमारी बाधाओं को दूर करने का उतना जबरदस्त प्रयत्न नही किया जाता जितना किया जाना चाहिए और इसीलिए वे दूर नही हो रही है।

इन अनपेक्षित विरोधो के अलावा कट्टर सनातनी लोगो का विरोध तो था ही। उसका प्रदर्शन कुछ दिनो के बाद देखने मे आया जब गांधीजी दौरे पर निकले। कई जगहो मे उनपर हमले किये गए। पूना मे ही, जहां इस सारे आन्दोलन के उग्र रूप का जन्म हुआ था, सार्वजनिक सभा मे जाते समय गांधीजी पर बम फेंका गया। बिहार-जैसे गांधी-भक्त और श्रद्धालु-सूबे में भी गाधीजी की मोटर पर लाठियों के प्रहार हुए। यह काण्ड देवघर-वैद्यनाथ-धाम मे हुआ था, जहां मोटर के 'हूड' के कारण ही बापू चोट से बचे, मोटर की छत तो लाठियो से चूर ही हो गई। आज, इतने दिनों के बाद, जब सारी बातों पर मैं विचार करता हू तो मुझे मालूम पड़ता है कि जो हुआ और किया गया, सब ठीक ही था। इस कुप्रथा के दूर होने में सफलता भी काफी मिली है, यद्यपि अभी हम यह नही कह सकते कि इसमें हम पूरे सफल हुए हैं। वास्तव में अभी बहुत सफर करना रह गया है। पर जब

हम यह याद करते हैं कि हजारों बरसों की रूढ़ि—जो हमारी नस-नस में समा गई है, जिसका हमारे धर्म के साथ एक प्रकार का अविच्छिन्न संबंध-सा जुट गया है—कितनी जबरदस्त है, तो जो प्रगति इसमें अबतक हुई है वह कम नहीं जान पड़ती। कुछ और धक्के लगेंगे और यह पुरानी दीवार गिर जायगी। काम करनेवालों को विश्वास और दृढ़ता के साथ काम करते रहने की जरूरत है।

: १०१ :

प्रयाग का एकता-सम्मेलन

दिल्ली मे नव-स्थापित हरिजन-सेवक-संघ की बैठक हुई। यद्यपि मैं उसकी कार्य-कारिणी का सदस्य नही था, तथापि बुलाया गया। मै दिल्ली गया। दुर्भाग्यवश मुझे ज्वर हो गया। दमे का दौरा भी शुरू हो गया। मुझे वहा कई दिनों तक ठहर जाना पड़ा। उन दिनो दिल्ली में श्री ठक्कर बप्पा बिड़ला-मिल्स, सब्जी मंडी में, ठहरा करते थे। मैं भी वहीं ठहरा था; पर जब तबीयत कुछ ज्यादा खराब मालूम पड़ी तो श्री घनश्यामदास बिड़ला ने मुझे नई दिल्ली के बिडला-हाउस मे, जहा वह खुद रहते है, बुला लिया। कलकत्ते में जो होमियोपैथी इलाज मैंने शुरू किया था, अभीतक उसे ही यथासाध्य जारी रखता आया था। इसीलिए वहा भी होमियोपैथी इलाज ही कराया। डा० युद्धवीरसिहजी अच्छे होमियोपैथ डाक्टर हैं, और कांग्रेसी भी है। उन्हीकी दवा हुई थी। फायदा भी हुआ। अभी कुछ अच्छा हो ही रहा था कि खबर मिली, इलाहाबाद मे यूनिटी-कान्फ्रेन्स (एकता-सम्मेलन) होने जा रहा है। उसमे शरीक होने के लिए मैं भी बुलाया गया। मैं दिल्ली से सीधे प्रयाग चला आया।

इस सम्मेलन मे मुख्य-मुख्य हिन्दू, मुसलमान, सिख और ईसाई नेता शरीक हुए थे। काग्रेसी लोग तो अधिकतर जेल मे ही थे। पर जो बाहर थे, वे बुलाये गए थे। मौलाना शौकतअली और मौलाना जफरअली भी शुरू मे ही आ गये। कुछ दिनो के बाद मौलाना शौकतअली किसी काम से चले गये। पर दूसरे लोग बराबर भाग लेते रहे। मि० मैकडोनल्ड का फैसला तो निकल ही चुका था। उनमे प्रायः सभी मांगें, जो मुसलमानो की ओर से पेश की गई थी, मान ली गई थीं। एक चीज यह रह गई थी कि केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा में मुसलमानो की संख्या एक-तिहाई होनी चाहिए और सिन्ध को एक अलग सूबा बना देना चाहिए। इन विषयों पर अभी फैसला नहीं हुआ था। कान्फ्रेन्स का काम बहुत लम्बा बढ गया। प्रायः तीन हफ्तों तक हम लोग प्रतिदिन सवेरे से दोपहर तक बैठते थे और फिर तीसरे पहर से रात के प्रायः आठ-नौ बजे तक बैठा करते थे। बैठकें डा० कैलासनाथ काटजू के निवास-स्थान पर, उनके मकान के बड़े हाल में हुआ करती थीं। आपस में हर बात पर बहुत बहस होती। जो कुछ मुसलमानों की ओर से

कहा जाता अथवा जो कुछ उन्हे मैकडोनल्ड-फैसले से मिला था, सबकी मांग सिखों की ओर से हाती ! यदि मुसलमानो को वायसराय की कौसिल मे जरूर जगह मिलनी चाहिए तो सिखों को भी अवश्य ही ! यदि मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचन-क्षेत्र है तो सिखों के लिए भी जरूर चाहिए ! इस तरह सभी बातों पर बहुत जोरदार बहस होती। सिखो और मुसलमानों मे बारीकी और उलझन ढूढ निकालने की होड-सी लग गई थी। पर लोगो के मिजाज में गर्मी या तुर्शी नही थीं। इतने दिनो की गरमागरम बहस मे दो-तीन ही ऐसे मौके आय जब किसीने कुछ आवेश मे आकर कोई कड़ी बात कह दी अथवा वहा से उठकर चले जाने की तैयारी दिखलाई। मालवीयजी के धैर्य की सीमा नही थी। दूसरे लोग तो बहस मे थक जाते थे, चाहते थे कि कुछ भी तय हो जाय अथवा जिस बात पर एकमत न हो उसे छोड़कर अन्य बातो पर विचार किया जाय; पर मालवीयजी छोड़ते ही नही थे। आखिर बहुत-सी बातो पर एकमत हो भी गया। पर इस बात पर एकमत नही हो सका कि केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा मे मुसलमानो के लिए एक-तिहाई जगहे सुरक्षित रहनी चाहिए। इसमे हिन्दुओं की ओर से सबमे तीस जगहे देने की बात कही गई। कई दिनों तक बाते करने के बाद सबमे इकतीस या बत्तीस तक जगहे देने की रजामदी जाहिर की गई, पर ३३$\frac{1}{3}$ तक अभी नही पहुंचे थे। उसी तरह सिन्ध के अलग सूबा बनाने के बारे में भी एकमत नही हो सका था। पर मालूम होता था कि इसमें रजामन्दी शायद हो भी जाय।

अन्त में राय ठहरी कि जो दो-तीन बाते इस तरह की अनिश्चित रह गई है, उनके सम्बन्ध मे एक सप्ताह के बाद कलकत्ते मे फिर सब लोग मिले और वही अन्तिम निर्णय किया जाय। मैकडोनल्ड-फैसले मे यह बात थी कि वह फैसला रद कर दिया जायगा, यदि हिन्दू, मुसलमान और दूसरे लोग आपस मे मिलकर कोई दूसरा समझौता कर लेंगे। इसी शर्त के कारण अस्पृश्य लोगों के अलग निर्वाचन-क्षेत्र को, पूना का समझौता हो जाने पर, मि० मैकडोनल्ड ने हटा दिया। सम्मेलन इसी आशा से किया गया था कि आपस का समझौता यदि हो जायगा तो जो कटुता मैकडोनल्ड-फैसले से पैदा हुई थी वह दूर हो जायगी। पर हम लोग अभी ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के हथकंडों को नही समझ पाये थे। जब बहुत बातों में एकमत हो गया और ऐसा मालूम हुआ कि अब केवल केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा की जगहों की बात ही रह गई है और वह भी शायद कलकत्ते में तय हो जायगी, ठीक उसी समय ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने इंगलैंड से एक विज्ञप्ति निकाल दी। हम लोग कलकत्ते जा रहे थे और रास्ते में रेल पर ही यह विज्ञप्ति देखने को मिली।

इसमें केन्द्रीय असेम्बली में एक-तिहाई जगह की मांग मंजूर कर ली गई थी! जिस चीज पर हम इतनी बहस कर चुके थे तथा जिसपर एक बार और विचार करने के लिए हम कलकत्ते जा रहे थे, वह सरकार ने ठीक इसी अवसर पर दे दी! हम समझ गये कि अब इस सम्मेलन का काम समाप्त हो गया! ब्रिटिश गवर्नमेण्ट मैकडोनल्ड-फैसले को किसी तरह बदलना नहीं चाहती है। उसके कायम रहने से ही आपस के झगड़े कायम रहेंगे। वह अगर समझौते के कारण रद कर दिया और उसके स्थान पर हमारा आपस का समझौता रह गया, जिसे सभी मानने के लिए नैतिक रूप से भी बाध्य होंगे, तो फिर ब्रिटिश राज्य को तीतर-बटेरों-जैसी लड़ाई कराने और देखने का मौका नहीं मिलेगा, और न बिल्लियों की लड़ाई में बन्दर को दोनों के हिस्से खाते रहने का ही सुअवसर प्राप्त होगा। इसलिए यह अवसर उस फैसले की एक कमी की पूर्ति के लिए ठीक उपयुक्त समझा गया और वह तुरन्त घोषित कर दिया गया। सम्मेलन समाप्त हो गया! हम कलकत्ते में मिले, पर इस मिलने मे कुछ तथ्य नहीं था।

सम्मेलन का इतना अच्छा असर सारे देश पर पडा था कि सभी लोग आशा लगाये हुए थे कि अब मामला तय होकर ही रहेगा। इसकी खबर पाकर अलवर के महाराज प्रयाग आ गये थे। उनकी तथा प० मालवीयजी की इच्छा थी कि सम्मेलन के अन्तिम अधिवेशन मे, जो खुलेआम सभा के रूप मे होगा, वह भी बोलें। वह सभा हुई भी, जिसमें बताया गया कि सब बातें तय हो गई है और जो दो-एक बात रह गई है, वह भी तय हो जानेवाली है। महाराज का भी अच्छा भाषण हुआ। पीछे जो उनके साथ व्यवहार हुआ उससे मालूम हो गया कि ब्रिटिश सरकार से वह जितना असन्तुष्ट थे, उससे भी अधिक ब्रिटिश सरकार उनसे असन्तुष्ट थी। थोडे ही दिनों के बाद वह गद्दी से उतारे गए। कुछ दिनों के बाद उन्होंने इगलैंड मे आत्महत्या कर ली।

उस सभा तक हम लोग यही समझ रहे थे कि इस सम्मेलन के द्वारा हम एकता कायम कर लेंगे। मुझे इस सम्मेलन मे एक बात से तो आशा हुई, मैंने देखा कि बहुत बातों मे एकमत हो गया। पर बहस से मै भी कभी-कभी ऊब जाता था, यद्यपि मैं बहस में बहुत कम योग देता था। कभी-कभी तो मैं ऐसा अनुभव करता था कि छोटी बातों को लेकर हम आपस में जल्दी एकमत नहीं हो सकते थे। ३२ और ३३½ में बहुत थोडा ही फर्क है, पर हम इसको भी न सुलझा सके! इसके लिए सम्मेलन को स्थगित करना पड़ा, जिसका नतीजा यह हुआ कि ब्रिटिश सरकार ने लकड़ी मार दी और इस गिरह का सुलझना असंभव-सा हो गया।

: १०२ :

दुबारा गिरफ़्तारी और बिहार की युनाइटेड पार्टी

कलकत्ते मै गया एकता-सम्मेलन के काम से था, पर वहां कुछ ठहर जाना पड़ा। मैने वहां आन्दोलन के लिए भी कुछ काम कर लिया। उन दिनों रुपये की जरूरत थी। इस जरूरत को पूरा करने मे मैंने कुछ हाथ बटा लिया। लोगों मे आन्दोलन के प्रति उत्साह और श्रद्धा थी, पर लोग बहुत डर गये थे। इसलिए कोई धनी आदमी खुल्लमखुल्ला मदद करने को तैयार नही था। पर चुपचाप पैसे देनेवाले बहुत थ। इसका एक बहुत ही अच्छा दृष्टान्त यहा देना ठीक होगा। जब मै बनारस मे ठहरा हुआ था, एक दिन कही जाते समय, सड़क पर एक पुराने परिचित मित्र से मुलाकात हो गई, जो गाधीजी के यहा आया-जाया करते थे। उन्हें देखकर मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। वहा उन्होंने मुझसे इतना ही जान लिया कि मै बाबू शिवप्रसाद गुप्त के यहां ठहरा हूं। वह आकर मुझसे मिले। उन्होंने कहा—सुना है कि आन्दोलन मे रुपयो की जरूरत है और यह जरूरत मद्रास तथा बिहार मे विशेष महसूस हो रही है। मैने कहा, रुपयो की जरूरत तो है ही। रुपये वह साथ लाये थ। आज मुझे ठीक स्मरण नही है, पर अखिल भारतीय काम के लिए आठ या दस हजार के नोट मेरे हाथो मे उन्होंने रख दिये। मैं बहुत कृतज्ञ हुआ और उनकी इच्छा के अनुसार रुपयो को जहा-तहां भिजवा दिया। इसी तरह लोगो की मदद कलकत्ते में भी मिली। कलकत्ते से मैं पटना वापस आ गया।

मुझे जेल से निकले प्रायः छः महीने बीत चुके थे। दिन बीतते देर नही लगती। इसी बीच मे दो बार बीमार पड़ा, गाधीजी के उपवास और पूना के समझौते के समय वहा हाजिर रहा, हरिजन-सेवक-सघ-सम्बन्धी यात्राएं और सभाएं की, प्रयाग के एकता-सम्मेलन के लम्बे अधिवेशन में काम करना और फिर कलकत्ते में उसीके लिए आना पड़ा। यह सब करता हुआ भी मैं बराबर महसूस किया करता था कि मुझे बाहर नहीं रहना चाहिए। मै ही काग्रेस का सभापति अथवा डिक्टेटर समझा जाता था और उस समय की प्रचलित पद्धति के अनुसार अपनी जगह पर किसीको मनोनीत करना था। प्रयाग मे एकता-सम्मेलन समाप्त होने के समय ही मैंने

सोच लिया था कि अब मैं कलकत्ते से लौटकर ही जेल-यात्रा कर दूगा। वहां पर राजाजी और श्री अणे भी थे। उनसे मैने सलाह ली और राजाजी को मनोनीत करना चाहा। पर उन्होंने अभी कुछ समय हरिजन-सेवा का काम और करने की इच्छा प्रकट की। आपस की राय के बाद मैने श्री अणे को मनोनीत कर दिया। मेरी गिरफ्तारी के बाद वही डिक्टेटर हुए।

कलकत्ते से लौटकर मैं पटने में उपयुक्त दिन की इन्तजारी कर रहा था। बड़े दिन की छुट्टियां आ गई थी। मैने सोच लिया था कि ४ जनवरी (१९३३) को मैं किसी तरह गिरफ्तार हो जाऊंगा। ४ जनवरी को ही १९३२ मे सरकार ने गाधीजी को गिरफ्तार करके दमन शुरू किया था। उसकी यादगार में इस वर्ष भी सभी जगहों में एक विज्ञप्ति कांग्रेस की ओर से पढ़ी जानेवाली थी। इसी बीच मे एक दिन श्री कृपालानी, जो बाहर थे, मुझसे मिलने आये। वह कुछ रुपयों के बन्दोबस्त के लिए ही आये थे। जो कुछ कलकत्ते में हुआ था, मैने उनको बतला दिया। किसी मित्र के नाम से, जो मुझे याद नहीं है, उनको एक पत्र भी दे दिया। वह उस पत्र को लेकर जा रहे थे। पटना-स्टेशन पर वह गिरफ्तार कर लिये गए। गिरफ्तार होते ही उन्होंने पत्र को फाड़कर फेंक दिया। पर पुलिस ने टुकडो को एकत्र कर साट करके पूरा पत्र फिर तैयार कर लिया। उनपर मुकदमा चला। वह बाकीपुर-जेल के अन्दर ही पेश हुआ। मैं भी पेशी मे मुकदमा देखने गया। मुकदमा समाप्त होने पर मैं बाहर निकला। अपनी सवारी पर ज्योंही सवार होना चाहता था कि पुलिस अफसर ने आकर मुझे खबर दी कि मुझे भी यहां रह जाना चाहिए! मै तुरत फिर फाटक के अन्दर दाखिल हुआ। कृपालानीजी और बाबू मथुराप्रसाद पहले ही से वहां आ गये थे—मथुराबाबू ४ जनवरी की घोषणा पढ़ने के लिए! मैं भी उनका साथी हो गया। एक-दो दिनों के बाद मुझपर भी मुकदमा चला। मथुराबाबू को १८ महीने कृपालानीजी को ६ महीने और मुझे १५ महीनों की सजा हुई। मुझे आश्चर्य हुआ कि मुझे १५ महीने क्यों मिले, जब मथुराबाबू को अठारह महीने दिये गए। मैंने मजाक में मजिस्ट्रेट से पूछा भी। यह वही पूर्व-परिचित मजिस्ट्रेट थे, जिन्होंने मुझे छपरे में सजा दी थी और जो मेरी वकालत के समय के मेरे पुराने मुवक्किल भी थे। खैर, चन्द दिनों के बाद हम लोग हजारीबाग पहुंचा दिये गए।

हजारीबाग में फिर उसी तरह पढ़ने और चर्खा चलाने में समय बीतने लगा। खानसाहब दोनों भाई अभी तक वहीं थे। कुछ दिनों के बाद अखबारों से पता चला कि गांधीजी को हरिजनों के सम्बन्ध में लिखने की जो सुविधा मिली थी, वह बन्द कर दी गई, इसलिए उन्होंने अनशन कर दिया, अन्त में सरकार को सुविधा देनी पड़ी और उनको छोड़ भी देना पड़ा।

बाहर निकलकर उन्होंने देश की परिस्थिति देखी। उन्होंने हरिजनों के प्रति सवर्ण हिन्दुओं की ओर से प्रायश्चित्त और उनके कर्तव्यों को जताने के लिए इक्कीस दिनों का उपवास किया। इससे हम लोग बहुत चिन्तित हुए। वहा प्रतिदिन हम लोग प्रार्थना करते। यो तो सध्या के समय, ठीक कोठरी बन्द होने के पहले, सामूहिक प्रार्थना हम लोग बराबर करते ही थे; पर इस उपवास के दिन में और भी अधिक प्रार्थना होती। कोई गीता-पाठ करता, कोई रामायण की आवृत्ति करता, कोई केवल फल खाकर रहता। अपनी रुचि और शक्ति के अनुसार बहुतेरो ने आत्मशुद्धि के लिए वहा कुछ-न-कुछ किया। जिस दिन यह इक्कीस दिनो का व्रत निर्विघ्न समाप्त हुआ, उस दिन हम लोगों ने इकट्ठे होकर विशेष प्रार्थना की और ईश्वर को धन्यवाद दिया।

इस उपवास के अमर से अच्छे हो जाने के बाद गांधीजी ने ऐसे कांग्रेसियों की सभा की, जो बाहर थे। उसमे देश की परिस्थिति पर बहुत विचार-विमर्श हुआ। उस समय पं० जवाहरलालजी भी बाहर आ गये थे। हम लोगो को पूरा पता तो नही चला; क्योंकि उन दिनों अखबार भी हमें नहीं मिलते थे—केवल 'स्टेट्समैन' का विदेशो के लिए प्रकाशित साप्ताहिक संस्करण ही मिला करता था। पर कोई-न-कोई बाहर से नया गिरफ्तार होकर आ ही जाता था और उससे कुछ-न-कुछ पता लग ही जाता था। हम लोगों ने चाहे 'स्टेट्समैन' में पढ़ा अथवा किसीने बाहर से वहा पहुचकर कहा कि सत्याग्रह का रूप व्यक्तिगत कर दिया गया है। सभी सूबों मे फिर से कुछ जागृति हुई। कुछ लोग व्यक्तिगत रूप से फिर जेलो मे गये। इसमे बिहार ने अच्छा उत्साह दिखलाया। यहा छ.-सातसौ से अधिक लोग गिरफ्तार हुए। पर हम लोगो को ऐसा भी मालूम होने लगा कि लोगों में कुछ सुस्ती आ गई है। जनता ने इस सत्याग्रह मे भी पूरा उत्साह दिखलाया था और यह सुस्ती आरंभ के प्राय: अठारह महीनों के बाद देखने मे आई। मेरा अपना खयाल था कि इसके कारणो मे एक कारण यह भी था कि काम करनेवाले कुछ छुपकर काम करने लगे। सत्याग्रह मे जनता की श्रद्धा तभी तक बनी रहती है जबतक काम करनेवाले, विशेषकर मुख्य काम करनेवाले, हिम्मत से अपने ऊपर सरकार की मार झेलते रहते हैं अथवा झेलने के लिए तैयार रहते है। जब मुख्य काम करनेवाले, आन्दोलन को चलाने के लिए अपनी हाजिरी जरूरी समझ, बाहर रह जाते—कुछ सरकारी दमन से बचने या भागने के लिए नहीं, तब भी लोगों की कुछ धारणा जरूर हो जाती है कि यह अपनेको बचा रहे है। इससे जनता में त्याग का उत्साह कम होने लगता है।

जब सरकार ने बहुत सख्ती के साथ दमन करके कांग्रेस के लिए न मकान रहने दिया, न पैसे और न खुले तौर पर काम करनेवाले; तब कुछ लोगों ने संगठन को बनाये रखने के लिए छुप करके ही काम करना शुरू कर दिवा। उन्होने काम भी किया और कांग्रस के संगठन को टूटने भी नही दिया। प्रायः सभी प्रान्तों की प्रान्तीय कमिटिया काम करती रही और उसी तरह जिलो में भी कमिटियों के प्रतिनिधि काम करते रहे। यह शृंखला टूट नहीं सकी। अखिल भारतीय कमिटी के आदेश और मन्तव्य सभी प्रातों मे पहुचते रहे और उनके अनुसार थोड़ा-बहुत काम भी होता रहा। पर साधारण जनता में, जिनमे से नये कार्यकर्ता और सत्याग्रही मिलते, उत्साह कम होने लगा। छुपकर काम करने का असर अन्तत· अच्छा नही हुआ। सत्याग्रह की लडाई इस सम्बन्ध मे अन्य लड़ाइयो से विभिन्नता रखती है। इसमे नेताओं को ही आग रण में कूदना पडता है—अपनेको ही उन्हें सबके पहले आग मे झोकना पड़ता है। आजकल की शस्त्र की लड़ाई में जनरल आगे नही जाता—बहुत करके तो वह लड़ाई के मैदान मे भी नही जाता—वह पीछे से ही सेना का सचालन करता है। सेना भी यह आशा रखती है कि जनरल पीछे रहकर अपनेको सुरक्षित रखता हुआ सेना का संचालन करेगा। इसलिए उसके पीछे रहने पर भी सेना पर बुरा प्रभाव नही पडता। पर सत्याग्रह में सेना भी आशा रखती है कि सरदार ही सबसे आगे जूझेगा। इसलिए इसमे उसके पीछे पड़ने से सेना मे स्वाभाविक असन्तोष और कमजोरी आ जाती है। ऐसा ही १९३३ मे भी हुआ।

जब मै बाहर था, १९३२ मे एक बात इस सूबे में हुई। गोलमेज-कान्फ्रेन्स वगैरह की कार्रवाइयो से इतना निश्चित जान पडता था कि कुछ-न-कुछ शासन-विधान मे सुधार तो होगा ही और चाहे वह सुधार कांग्रेस को सन्तुष्ट करे या न करे, नये चुनाव तो होगे ही, जिनमें जनता को भाग लेना पड़गा। बिहार ही क्या, सारे देश मे किसानों की ही बडी संख्या है। उनके हाथों मे बहुत वोट होगे। कांग्रेस का उनमे पूरा प्रभाव था। इसका प्रदर्शन १९१३ और १९२६ के चुनावो मे हो चुका था। १९३० और १९३२-३३ के सत्याग्रह के बाद वह प्रभाव बढ़ा ही था, घटा नही था। यह समझ करके बिहार के गवर्नर ने बिहार के जमीदारो को किसानों मे सगठन करने के लिए प्रोत्साहन दिया था। जाहिर था कि किसानों का झगड़ा अभी जमीदारो के साथ ही हुआ करता था। इसलिए उन्होंने एक नई पार्टी बनाई, जिसमें किसानों को भी मिलाने का प्रयत्न किया गया। पार्टी का नाम 'युनाइटेड पार्टी' पड़ा। उन लोगों की इच्छा थी कि जबतक कांग्रेसवाले लड़ रहे हैं, हम लगान कानून में कुछ ऐसी तब्दीली करेंगे, जिससे

किसानों को कुछ सहूलियत मिल जाय और इस तरह उनको मिला लेंगे—जब नया चुनाव आयेगा और कांग्रेस उसमें भाग लेगी, तो यह युनाइटेड पार्टी इतनी मजबूत हो गई रहेगी और किसान इसका इतना साथ देते रहेंगे कि कांग्रेस मुकाबला नहीं कर सकेगी।

इस पार्टी के नियम कुछ बुरे नहीं थे, यद्यपि कांग्रेस की निगाह में वे काफी नहीं थे। इसने भी अपना उद्देश्य (औपनिवेशिक स्वराज्य) मान लिया और जिस तरह के प्रस्ताव लिबरल फेडरेशन में हुआ करते हैं, उस तरह के कुछ प्रस्ताव भी किये। बिहार में कांग्रेस के अलावा कोई दल नहीं था; एक तरफ था सरकार या उसके मददगारों का दल और दूसरी तरफ कांग्रेस या सरकार से लड़नेवालों का दल; लिबरल जैसे बीच के विचार रखनेवाला कोई दल नहीं था। इस पार्टी के लोगों से मेरी भेंट और बातचीत भी हुई थी। मैंने समझ लिया था कि यह प्रयत्न कांग्रेस का प्रतिद्वन्द्वी दल खड़ा करने के लिए किया जा रहा है और इसमें गवर्नर का भी इशारा है। तो भी मेरे मन में एक क्षण के लिए भी यह सन्देह न हुआ कि यह दल कांग्रेस का मुकाबला कर सकेगा। कांग्रेस का प्रभाव उसकी सेवा और त्याग का कारण है। इस पार्टी में वह बात नहीं हो सकेगी। मैं यह भी समझता था कि जो पार्टी चुनावों में जगह लेने को ही मुख्य उद्देश्य मानकर बनाई जा रही है, उसमें आपस के झगड़े हुए बिना भी न रहेंगे, क्योंकि पार्टी के अन्दर उम्मीदवारों की संख्या जगहों से कई गुना अधिक हो जायगी। इसके अलावा आपस की प्रतिद्वन्द्विता भी होती रहेगी। इसलिए मुझे इसका डर नहीं था कि यह पार्टी कांग्रेस का मुकाबला कर सकेगी। मैंने यह भी समझा कि यदि एक ऐसी बीचवाली पार्टी हो जाय तो कुछ बुरा भी न होगा; क्योंकि जब कभी सरकार से लड़ाई करने में कांग्रेस लग जाती है तो रचनात्मक काम करनेवाला भी कोई नहीं रह जाता। शायद इस पार्टी से मौके पर देश की कुछ सेवा हो सकेगी। मैंने यह भी सोचा कि यदि यह किसानों को अपनी ओर से कुछ सहूलियत दे भी देगी तो उससे किसानों को लाभ भी पहुचेगा, फिर जब कांग्रेस के साथ इसका मुकाबला होगा तो किसान केवल कांग्रेस का ही साथ देंगे और स्वराज्य की बात को नहीं भूलेंगे। इसलिए मैं इस पार्टी के संगठन से बिलकुल निश्चिन्त था। इसके मुख्य काम करनेवालों से बातें हुईं तो मैंने अपने विचार भी कह दिये। उन्होंने इच्छा प्रकट की कि मैं इस सम्बन्ध में एक वक्तव्य प्रकाशित कर दूं। मैं राजी हो गया। एक छोटा-सा वक्तव्य मैंने पत्रों में दे दिया। उसमें इतना ही लिखा कि यह पार्टी यदि अपने प्रकाशित उद्देश्यों के अनुसार काम करती रहेगी तो मैं आशा रखता हूं कि इससे देश

का भला ही होगा, बुरा नही।

इस वक्तव्य की खबर हजारीबाग में मित्रों को मिल गई थी। कुछ लोग इससे असन्तुष्ट हुए। वहां मेरे पहुंचने पर इस सम्बन्ध में बातें हुईं। मैंने अपने विचार बता दिये। पर शायद वे सन्तुष्ट न हुए। हम लोग वही थे जब इस पार्टी की ओर से लगान-कानून में कुछ संशोधन की बात चल पड़ी। मैं तो यह सब जानता ही था और जान करके भी निश्चिन्त था। पर कुछ मित्र इससे और घबराये। वे सोचने लगे, इस तरह पार्टी अपना प्रभाव किसानों में जमा लेगी। उनका विचार हुआ कि इसका विरोध होना आवश्यक है। कांग्रेस तो जेल मे थी और गैरकानूनी संस्था भी बना दी गई थी; इसलिए किसान-सभा ही विरोध कर सकती थी। शायद पहले की ही सभा थी, जो कांग्रेस के जोर के कारण कुछ विशेष काम नही कर रही थी। उसे कुछ लोग पुनः जीवित करने का प्रयत्न कर रहे थे। वहां से उन लोगों को प्रोत्साहन के सन्देश भेजे गए। स्वामी सहजानन्दजी से विशेष अनुरोध किया गया कि वह किसान-सभा का सगठन करके लगान-कानून के सुधार के प्रस्ताव का विरोध करावे। मैं इसको गैरजरूरी समझता था। कारण ऊपर बता चुका हूं। पर मैं इसका विरोध नही कर सकता था। मैं चुप रहा। ब्रजकिशोरबाबू भी किसान-सभा-जैसी एक दूसरी सस्था की जरूरत नही समझते थे। पर उन्होंने बाहर रहकर भी और मैंने भीतर से इसका विरोध नही किया। इस तरह किसान-सभा का जबरदस्त संगठन हम लोगों की गैरहाजिरी मे ही होने लगा। लगान-कानून-सुधार का विरोध सख्ती से होने लगा। पहले के कुछ किसान-सभा के प्रमुख कार्यकर्ता इस किसान-सभा का विरोध और सुधार का समर्थन जोरो से करने लगे। यह बात एक-डेढ बरस तक चलती रही। जेल से हम लोगों के छूटने तक यह तय नही हुई थी।

: १०३ :

मेरी बहुत सख्त बीमारी

मैं १९३३ की जुलाई के पहले सप्ताह में बीमार पड़ गया। कुछ खासी शुरू हो गई। शायद अचानक ठड लग जाने से ही ऐसा हुआ। पहले तो मैंने समझा कि यह मामूली खासी है, जल्द ठीक हो जायगी, पर यह कम न होकर दिन-दिन बढती गई। दमा जोर पकड़ गया। एक बार तो इतने जोर से उठा कि प्रायः दो दिनों तक मैं बहुत परेशान रहा। उसके बाद सुई दी गई। दमा कुछ कम हुआ और तब कुछ खाने के लिए मैं बैठा। जैसे ही चम्मच मे लेकर दूध और रोटी का टुकड़ा मुह मे दिया कि फिर दमा बहुत जोरों से शुरू हो गया और सास इस तरह घुटने लगा कि मानो प्राणान्त हो जायगा। मै बेहोश-सा हो गया। जेल-डाक्टर ने आकर कुछ सुंघाया, तब होश आया। उसके बाद बहुत जोर मल (आव) पड़ गया। दिन मे चौबीस-पच्चीस बार दस्त होने लगा। कमजोरी बहुत बढ़ गई। शरीर बडा दुर्बल हो गया। जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट ने सरकार को लिखा, यह पटना-अस्पताल में दवा के लिए भेजे जायं। पहले इसपर कुछ खयाल नही किया गया। भाईसाहब को खबर मिली। वह घबराकर वहां पहुंचे। मेरी हालत देखकर बहुत चिन्तित हुए। राची गये। कुछ मित्रों से मिले। अन्त में गवर्नमेण्ट का हुक्म मुझे पटने भेजने के लिए हुआ। यह हुआ सितम्बर के पहले सप्ताह में, बीमारी शुरू होने के दो महीने बाद! हुक्म यह था कि मै पटना-जेल भेजा जाऊं और पटना-अस्पताल में बीमारी की जाच की जाय। मुझे जब हुक्म बताया गया तो मैंने कहा कि पटना-अस्पताल में यदि नही जाना है—पटना-जेल में ही जाना है, तो बेहतर है कि यही रहूं। पर मुझको बताया गया कि यही कायदा है लिखने का, इसका अर्थ यह है कि मैं अस्पताल में भेजा जा रहा हूं।

दूसरे दिन सवेरे किसी तरह मुझे पटने ले आये। भाई भी साथ ही आये। यहा पहले जेल में लाकर वहां से फिर तुरन्त ही अस्पताल ले गये। अस्पताल में मैं उन मकानों में से एक में रखा गया, जिनमें रोगी भाड़े देकर रहते हैं और जिनमें थोड़ी जगह घर के बाल-बच्चों के रहने की भी होती है। मेरी भौजाई, पत्नी और नौकर भी साथ रहने लगे। डाक्टर बनर्जी

ने मेरे पहुंचते ही जांच की। हालत खराब देख तुरन्त अपनी चिकित्सा आरम्भ कर दी। डाक्टर रघुनाथशरण तथा दूसरे डाक्टर भी, जो पहले से मुझे जानते थे, आया-जाया करते थे। पुलिस का पहरा रहता था; पर किसी-के आने-जाने की मनाही न थी। कई दिनों तक तो हालत खराब रही; पर आहिस्ता-आहिस्ता सुधरने लगी। मल और ज्वर कुछ सभाल मे आये। खांसी भी कुछ कम हुई। अभी बीमारी गई नही थी, उसका उग्र रूप कुछ कम हुआ था। बीमारी को दूर करने के लिए दवा अब शुरू हो रही थी कि एक दिन दोपहर को तीन-चार बजे अचानक खबर मिली—सरकार का हुक्म आया है कि मै तुरत बाकीपुर-जेल भेज दिया जाऊं। शायद किसीने सरकार के पास कुछ खबर दे दी थी या चुगली कर दी थी कि मेरे पास बहुत लोग मिलने आते हैं और मैं वहां खाट पर पड़े-पड़े आन्दोलन चला रहा हूं। बात बिलकुल झूठी थी। मुझसे लोग मिलने आते थे जरूर—और वह बीमारी के कारण स्वाभाविक था; पर मैंने किसीसे आन्दोलन के सम्बन्ध मे कुछ भी नही कहा था।

जो हो, अस्पताल से तुरन्त मैं बांकीपुर-जेल पहुंचाया गया। डाक्टर बनर्जीसाहब खबर पाते ही आये। उनको बहुत अफसोस हुआ, क्योंकि वह बीमारी का इलाज अब शुरू कर रहे थे, अबतक तो उग्र कारणो को ही कम कर पाये थे। वहां जो दवा इत्यादि वह दे रहे थे, उसे लिखकर उन्होंने एक रिपोर्ट भी साथ कर दी। जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट मेजर स्ट्रिक्लैण्ड, जो जिले के सिविल सर्जन भी थे, उनकी बाते भी हुई। सुपरिण्टेण्डेण्ट ने उनके ही इलाज को जारी रखने का इरादा बतला दिया। जेल मे वही दवा जारी रही। मै कुछ अच्छा तो हो ही गया था। जेल मे भी सुधार जारी रहा। सर्दी के दिन आ रहे थे, जब मेरी तबीयत अक्सर खराब हुआ करती है। एक दिन अचानक फिर बड़े जोर का दमा शुरू हो गया। दो दिन मे हालत बहुत खराब हो गई। सिविल सर्जन ने बहुत प्रयत्न किया, पर सफल न हुए। हालत देखकर वह भी कुछ घबराये। उन्होंने फिर गवर्नमेण्ट के पास लिखा या टेलीफोन किया; डाक्टर बनर्जी भी मुझे देखने के लिए आये। डाक्टर बनर्जी ने कुछ दवा दी। उस रात को मैं कुछ सो सका, पर बहुत सुधार नहीं हुआ। अन्त में सिविल सर्जन ने फिर गवर्नमेण्ट से बातें करके मुझे जेल से अस्पताल भेजने का प्रबन्ध किया। जब उन्होंने मुझसे यह कहा कि गवर्नमेण्ट का हुकुम मुझे अस्पताल भेजने का आ गया, तो मैंने कहा कि इस तरह जेल से अस्पताल और फिर अस्पताल से जेल आना-जाना मैं नहीं बर्दाश्त कर सकता—जो होना होगा, यही होगा। इसपर उन्होंने आश्वासन दिया कि इस बार जबतक डाक्टर लोग मुझे आराम करके वापस

न करेंगे तबतक मैं अस्पताल में ही रखा जाऊंगा।

बात यह थी कि पहली बार के हुकुम में केवल जांच के लिए ही अस्पताल ले जाने की बात थी; पर वहां डाक्टरों ने दवा करना शुरू कर दिया था, इससे गवर्नमेण्ट ने उनसे कैफियत मांगी थी! पर जेल के इन्स्पेक्टर-जनरल, सिविल सर्जन और अस्पताल के डाक्टर, सबने जवाब दिया था कि इलाज से अलग जाच के कोई मानी नहीं है और हालत इतनी खराब थी कि दवा देना आवश्यक था। इस बात की रिपोर्ट डाक्टरी भाषा में गवर्नमेण्ट को दी भी गई थी। इससे गवर्नमेण्ट का मुंह बन्द हुआ, पर तुरन्त मुझे वापस भेज देने का हुकुम निकाल दिया गया। जब जेल में दुबारा बहुत बीमारी बढ गई तो सबने मिलकर साफ हुकुम कराया कि आराम होने तक मैं वहीं रखा जाऊं। सिविल सर्जन का इशारा इसीकी तरफ था जब उन्होंने कहा कि मुझे आराम होने तक वहीं रहना होगा।

मैं अस्पताल में बहुत बुरी हालत में पहुंचाया गया। इस बार सख्ती भी काफी थी। हुकुम था कि घर की दो स्त्रियां साथ रह सकती हैं और काम के लिए एक या दो नौकर, कोई दूसरा मिलने के लिए नहीं आ सकता, हफ्ते में एक बार घर के लोगों से मुलाकात हो सकती है—वह भी पुलिस और जेल के कर्मचारी की हाजिरी में। मुझे इससे कोई खास तकलीफ नहीं थी, क्योंकि मैं पहले भी किसीसे आन्दोलन की बातें नहीं किया करता था, और अभी तो इतना बीमार था कि चारपाई से उठकर कुर्सी पर भी नहीं बैठ सकता था। इस बार की बीमारी पहले से भी बहुत कड़ी थी। हजार कोशिश करने पर भी उसमें कमी नहीं आती थी। कभी-कभी तो ऐसा मौका आया कि सुई-पर-सुई देनी पड़ी। सांस का फूलना चार-पांच घंटों के लिए कुछ कम हो जाता, फिर ज्यों-का-त्यों, बस फिर सुई दी जाती। नवम्बर-दिसम्बर बहुत खराब गुजरे। यद्यपि मैं बहुत बीमार पड़ा करता हूं तथापि इतनी सख्त बीमारी कभी हुई नहीं। दिसम्बर में अस्पताल के डाक्टरों ने सरकार को लिखा कि हालत खराब है और बीमारी कब्जे में नहीं आती है, रात को इतनी परेशानी रहती है कि मेडिकल कालेज के दो विद्यार्थी बारी-बारी से जाकर देखभाल करते हैं। पर सरकार का काम जल्दी तो होता नहीं। अन्त में हुकुम हुआ कि मेडिकल बोर्ड मेरी जांच करे। इस बोर्ड में वही डाक्टर बनर्जी थे, वही सिविल सर्जन थे और एक तीसरे थे मेडिकल कालेज के प्रिन्सिपल। मेरा अनुभव था कि दिसम्बर के अन्त में हर साल बीमारी का जोर कुछ कम हो जाया करता है। इस साल भी वैसा ही हुआ। जब मेडिकल बोर्ड १९३४ की जनवरी के पहले सप्ताह में जांच करने आया, बीमारी में कमी आ गई थी। सब हालत और प्रतिदिन

की रिपोर्ट देखकर बोर्ड ने मुझे छोड़ देने की सिफारिश की। मुझसे यह कहा नही गया। एक साल से अधिक जेल में हो चुका था—पन्द्रह महीनों की सजा थी। शायद डेढ़-दो महीने मीयाद के बाकी रह गये थे। रिपोर्ट पर सरकार ने १९३४ की १५ जनवरी को विचार किया—मुझे छोड़ देने का निश्चय किया। मैं उस दिन भोजन करके चारपाई पर लेटा हुआ था। एक आदमी ने आकर नौकर को खबर दी कि सर गणेशदत्तसिंह ने संदेश भेजा है—गवर्नमेण्ट ने आज निश्चय किया है कि मैं छोड़ दिया जाऊ और अब एक-आध दिन में यह हुक्म जेल की मार्फत पहुंच जायगा। नौकर ने मेरी भौजाई और पत्नी से यह कहा—फिर उन्होने मुझे खबर दी।

: १०४ :

बिहार का प्रलयंकर भूकम्प

अस्पताल मे चारपाई पर लेटे-लेटे मै सोच रहा था—जब बीमारी का बहुत जोर था, जिस वक्त अब-तब की नौबत थी, उस वक्त तो सरकार ने कुछ किया ही नही, अब जब कुछ अच्छा हो गया हू, स्वास्थ्य मे दिन-दिन उन्नति होने की सम्भावना और आशा है तथा मीयाद भी प्रायः पूरी हो चली है, तब यह मुफ्त का अहसान मुझपर क्यो लादा जा रहा है! बीमारी की सख्ती के दिनो मे तो घर के किसी आदमी से, भाई से भी, हफ्ते में एक ही बार पुलिस के सामने मुलाकात हो सकती थी! सख्ती इतनी थी कि एक बार मेरी भौजाई चली गई और मेरे भतीजे की स्त्री दो-चार दिनों के लिए सेवा करने आई, उसका एक चार साल का बच्चा था जो उससे कहीं अलग नही रह सकता था; इसपर भी उज्र हुआ कि हुकुम दो आदमी के रहने का है, यह तीसरा बच्चा साथ नही रह सकता! उसे चला जाना पड़ा! अब क्यो यह मुफ्त का अहसान लिया जाय?

मैं इसी उधेड़-बुन मे लगा चारपाई पर करवटें बदल रहा था कि चारपाई हिलती हुई जान पड़ी। फिर मकान के दरवाजे और जगले हिलने लगे। मुझे आभास हुआ कि मै बीमारी के कारण इतना कमजोर हो गया हूं और इतनी देर से सोच-विचार में लगा रहा हूं, इसलिए मेरे दिमाग में चक्कर आ गया है। मैं सोच ही रहा था कि मेरी भौजाई ने दूसरे कमरे से चिल्लाकर कहा कि धरती डोल रही है। मै तुरन्त समझ गया। कहा कि सब निकल भागो। तुरन्त चारपाई से उतरकर बाहर निकल गया। सामने के मैदान मे जाकर खड़ा हो गया। धरती इतने जोरों से डोल रही थी कि खड़ा रहना कठिन था। साथ ही, भयानक गड़गड़ाहट थी, सैकड़ों रेल-गाड़ियों के एक साथ चलने के बराबर आवाज हो रही थी। कुछ दूसरे बीमार, जो आस-पास के मकानो मे थे और जो चल सकते थे, मेरे नजदीक ही आकर खड़े हो गये। मैदान मे बहुत-सी गायें चर रही थीं, वे पूंछ उठाकर इधर-उधर दौड़ने लगीं। एक बार सब मिलकर जहां हम लोग खड़े थे, वहां इस तरह दौड़ी आईं कि जान पड़ा, हम लोगों पर हमला कर रही हैं! पर ऐसा कुछ न करके हम लोगों के पास दौड़ती आकर खड़ी हो गईं, मानो

उन्होंने उस स्थान को निरापद समझा अथवा हम लोगों को अपना हितैषी मानकर हमारे पास रहना ही अच्छा समझा। इतने में ही, कुछ दूर पर, नर्सों के रहने का बडा दोमंजिला मकान धड़ाम से गिर पडा। पर गड़-गड़ाहट इतनी थी कि मकान गिरने की आवाज कम ही सुनाई दी, केवल धूल-गर्द को जोरों से उड़ते देखकर ही हमने समझा कि वह मकान गिरा है, अस्पताल के कुछ हिस्से जहां-तहां गिरे, पर सौभाग्यवश कोई मरा नहीं और न कोई घायल ही हुआ। कुछ देर मे शान्ति हुई।

मैने करीब चार मिनट तक भूकम्प जारी रहने का अन्दाजा लगाया था। पीछे सूबे के विभिन्न स्थानो से खबरें आईं तो जान पड़ा कि साढ़े चार मिनट से सात मिनट तक भूकम्प का जारी रहना देखा गया था। सब लोग जहा-तहा से डरे-घबराये निकलने लगे। अब घर के अन्दर जाने की किसीकी हिम्मत नही होती थी। मै जबसे अस्पताल आया था, यह पहला ही अवसर था कि कमरे के बाहर निकला था और पहला ही अवसर था जो दूसरे लोगों से बाते हुई। बातें और क्या हो सकती थी, भूकम्प के बारे मे ही थीं। मित्र लोग शहर से दौड़कर देखने आये कि मेरी क्या हालत है। आहिस्ता-आहिस्ता खबर आने लगी कि शहर मे बहुत मकान गिरे हैं। कुछ लोग अस्पताल मे घायल लाये भी गये। हम लोगो की चारपाई बाहर मैदान में ही निकाल दी गई थी। वहीं सन्ध्या तक हम पड़े रहे। जनवरी का जाड़ा था। हवा जोरो से चल रही थी। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। मेरे सामने प्रश्न हुआ कि रात को क्या किया जाय। मकान के अन्दर जाकर लोगों ने देखा तो कई जगह दीवार फट गई थी, पर कोई हिस्सा गिरा नही था। मैंने सोचा कि रात मे बाहर रहने से तो सर्दी के कारण मेरी बीमारी अवश्य ही बढ जायगी और मै बच न सकूगा, यदि फिर रात में भूकम्प आया तो फिर निकल आयंगे। हिम्मत करके मै मकान के अन्दर चला गया। देखादेखी कुछ और मरीज गये, पर सब नही। पास में बच्चो का वार्ड था, उसका एक हिस्सा गिर गया था, दीवारें कुछ कमजोर हो गई थी; इसलिए अस्पतालवालों ने सबकी चारपाइयां मैदान में ही रखवा दी और उसी सर्दी मे वे रात काटने लगे। रात को एक बजे भूकम्प का एक धक्का और आया। यह भी जबरदस्त था; क्योंकि चार-पाई इतनी हिली कि मैं जाग उठा। सब फिर बाहर निकल आये। पर यह इतनी देर तक न रहा जितनी देर दिन का भूकम्प रहा था। किसी तरह रात कटी। हम लोगों को बाहर की खबर उस दिन कुछ न मिली। शहर की थोड़ी खबर मिली, जिससे मालूम हुआ कि शहर की काफी बर्बादी हुई है।

दूसरे दिन सवेरे दस बजे डाक्टर मुझे देखने आये। मैं उनसे बातें करते-करते बरामदे से नीचे उतर ही रहा था कि एक झटका और आया। हम दोनों बाहर निकल गये। उनसे पहले-पहल मालूम हुआ कि मुंगेर की हालत खराब है, यद्यपि कुछ भी साफ खबर नहीं मिली है। वह मुंगेर के ही रहनेवाले है, अतः बहुत चिन्तित थे। उन्होंने यह भी कहा कि सरकार की आज्ञा हुई है कि जितने डाक्टर मिल सकें, तैयार रखे जायं कि जहां जाने का हुकुम मिले, तुरन्त चले जायं और अस्पताल में भी घायलों के लिए जगह तथा दूसरे प्रबन्ध ठीक रखे जायं। अब कुछ पता चला कि यह भूकम्प कुछ दूर तक करामात दिखला गया है। यह भी सुनने में आया कि सरकारी सेक्रेटरियट का एक हिस्सा गिर गया है, सब काम तितर-बितर है, इसी हल्ले में मेरी रिहाई का हुकुम भी न आ सका। मैं दो दिनों के बाद छोड़ा गया। उस दिन सिविल सर्जन ने आकर मुझसे चार बजे अपराह्न को कहा कि मैं छोड़ दिया गया और मैं जो चाहूं कर सकता हूं। पुलिस का पहरा हटा लिया गया। कुछ लोगों की धारणा है कि भूकम्प के कारण सरकार ने मुझे छोड दिया। जैसा ऊपर बताया गया है, मुझे बीमारी के कारण छोड़ने का निश्चय भूकम्प के चन्द घंटे पहले ही हो चुका था और उसकी सूचना भी मुझे मिल गई थी। भूकम्प से रिहाई में दो दिनों की देर हो गई; क्योंकि सब मामला ही गड़बड में पड़ गया। जब उत्तर बिहार की शोचनीय दशा का पता दो दिनों के बाद कुछ लगने लगा तो सरकार ने उधर के रहनेवाले कुछ सत्याग्रहियों को छोड़ दिया। उन लोगों को मालूम हो गया कि मैं भी मुक्त हूं। मैं सोच ही रहा था कि भूकम्प-पीड़ित लोगों की सहायता के लिए कुछ-न-कुछ करना होगा, तबतक वे लोग आ गये। उनको मैंने तिरहुत के जिलों में भेजा। कुछ रुपये उधार लेकर उनके लिए कम्बल खरीदवाये, उन लोगों के पास ओढ़ने को कुछ नहीं था, वे सब गरमी में गिरफ्तार हुए थे और चलने के वक्त वही गरमी की धोती और कुर्ता वापस लिये थे। कुछ खर्च के साथ किसी तरह चम्पारन, मुजफ्फरपुर, दरभंगा और सारन की खबर लेने के लिए उनको भेजा। रेल, तार, सब बन्द थे। इसका भी पता न था कि वे किस तरह जा सकेंगे। उन्होंने हिम्मत करके नाव पर और पैदल जाकर पता लगाना शुरू किया।

मैंने मदद के लिए रुपयों की फिक्र की और एक अपील निकालने का विचार किया। कई दिन बीत चुके थे, अभी तक कुछ भी ठीक खबर नहीं मिली थी। पर जो थोड़ी-बहुत खबर मिली थी वह बहुत भयानक थी। डाक्टरों ने मुझे अस्पताल में ही रोक रखा था। मैं बहुत कमजोर था, पर न मालूम इस समय कहां से उत्साह और शक्ति आई। मैंने जिद्द करके काम

शुरू कर ही दिया, अस्पताल में से ही। हजारीबाग से मथुराबाबू और सत्यनारायणबाबू छूटकर अस्पताल में मेरे पास आ गये। कुछ मित्र अस्पताल में ही मिले और राय ठहरी कि एक अपील निकाली जाय तथा रिलीफ-कमिटी के नाम से एक कमिटी बना ली जाय। हमने तय कर लिया कि यह कमिटी केवल काग्रेसी लोगो की ही न होकर सभी दलो के लोगों की होगी। हम बराबर, जब कभी कोई संकट आया, इस तरह का काम करते आये थे। इसलिए इस बार भी वही करना था। पर अभी यह नही मालूम था कि यह कितना बड़ा काम होगा। अबतक भी क्षति की पूरी खबर नही मिली थी। गवर्नर ने भी एक सार्वजनिक सभा करने की सोची। मि० सैयद अब्दुल अजीज जो उन दिनो एक मिनिस्टर थे, मुझसे अस्पताल मे मिले। उन्होने कहा कि अलग अपील न करके सरकार के साथ मिलकर काम करना ही अच्छा होगा। शफी दाऊदी साहब भी मिले और उनकी भी यही राय हुई। उन्होंने यह भी कहा कि अपील मे आये रुपयो के अलावा सरकार अपने रुपय भी खर्च करेगी, और हम लोगो की अपील मे बहुत मिलने की आशा नही की जा सकती है, क्योंकि सत्याग्रह के कारण काग्रेस का सगठन तितर-बितर हो गया है तथा काम करनेवाले भी बहुतेरे जेलो मे है। मैने उन दोनों सज्जनों से कह दिया कि इस मामले में सरकार जो कुछ भी करेगी, उससे हम लोगों का विरोध तो होगा ही नही; पर कुछ ऐसे लोग भी होंगे, जो सरकार को पैसे न देकर यह चाहेगे कि गैर-सरकारी सस्था भी काम करे; हम लोग हर संकट के समय कुछ इस तरह का करते आये है। इसलिए जनता भी कुछ हमसे आशा रखेगी। सरकार से हमारा मुकाबला नही है। जो लोग हमको देंगे उसीका अच्छा-से-अच्छा इस्तेमाल करके हम चुपचाप हो जायगे और सरकार हमसे अगर कुछ काम लेना चाहेगी तो उसके करने में भी हम नहीं हिचकेंगे। ऐसा कहकर मैंने कुछ मित्रों से बातें की तो उन्होने मेरी राय पसद की।

एक दिन एक छोटी सभा हुई, जिसमें बिहार-सेण्ट्रल-रिलीफ-कमिटी के नाम से एक संस्था स्थापित की गई। मैं उसका प्रधान बनाया गया और उसीके नाम से मैंने अपील निकाली। उसके बाद सरकार की ओर से सार्वजनिक सभा हुई। उसमें मैं भी शरीक हुआ। उन्होने भी अपील निकाली। मेरी अपील पर चारों ओर से रुपये और सामान आने लगे। अखबारों में अब ध्वंस का विवरण भी छपने लगा। उसको पढ़-पढ़कर सारे देश में और विदेशों में भी बिहार के प्रति बहुत सहानुभूति उत्पन्न हो गई। पंडित जवाहरलाल पटने आये। तिरहुत और मुंगेर में जाकर, जहां ध्वंस सबसे अधिक हुआ था, उन्होंने अपनी आंखों हाल देखा। मुंगेर में तो उन्होंने गिरे

मकानों का मलबा खोदकर मुर्दे निकालने में भी मदद की और एक तरह से सबके लिए नमूना पेश किया। बगाल से संकट-त्राण-समिति की ओर से श्री सतीश चन्द्र गुप्त रुपये और माल-असबाब लेकर चले आये। मैंने गांधीजी को भी तार द्वारा सूचना भेजी। वह उन दिनों बहुत दूर मद्राम-प्रान्त में कही हरिजन-यात्रा मे घूम रहे थे। तार पाते ही उन्होंने भी अपील निकाली, और स्वयं पैसे जमा करने लगे। कमिटी की ओर से सभी जिलों में मुख्य कार्यकर्ता नियुक्त किये गए और उनकी मातहती में अनेकानेक काम करने-वाले काम करने लगे। हिन्दुस्तान के सभी प्रान्तों से रुपये आने लगे—कपड़ा, चावल, दूसरे खाद्य-पदार्थ, बर्तन, कम्बल, दवा इत्यादि पहुंचने लगे। सब चीजो की जरूरत थी। पटने से हम आवश्यकतानुसार सबको पीड़ित जिलो मे भेजने लगे। दो-चार दिनो के अन्दर ही काम बहुत बढ गया। हमारे साथी बहुतेरे जेलों मे थे। सरकार ने प्रायः सबको, जो तिरहुत, भागलपुर और पटना कमिश्नरियों के रहनेवाले थे, धीरे-धीरे छोड़ दिया। वे लोग भी आकर काम में जुट गये।

पंडित जवाहरलालजी ने एक दिन पटने में ठहरकर केन्द्रीय दफ्तर के संगठन और दूसरी बातों मे अपनी सलाह से मदद की। वह दो बार इस सूबे मे आये और जी-जान से काम में मन लगाने लगे थे; पर खेद है कि इसके बाद ही वह गिरफ्तार कर फिर जेल मे बन्द कर दिये गए। इसलिए हमको उनके नेतृत्व का अधिक लाभ न मिल सका। सरदार वल्लभभाई पटेल भी जेल मे ही थे। उन्होने गुजरात में, वहां की प्रलयकारी बाढ़ के समय, लोक-सेवा का जो प्रबन्ध किया था, उसके अनुभव का भी हमको लाभ नहीं मिला। पर महात्माजी, सेठ जमनालाल बजाज तथा सरदार के सहकारी श्री लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम प्रभृति आ गये। युक्त प्रान्त से आचार्य नरेन्द्रदेव और श्री श्रीप्रकाशजी पहुंच गये। सब बाहर के आये भाइयों और बहनों के नाम गिनाना मुश्किल है। यदि किसीका नाम छूट जाय तो हमारे लिए शर्म की बात होगी। पर कुछ नाम ऐसे हैं, जिनका उल्लेख न करना अत्यन्त कृतघ्नता होगी। इनमें श्री जे० सी० कुमारप्पा है। यह हिसाब-जांच का काम किया करते थे, विलायत से इसकी शिक्षा प्राप्त कर बम्बई में बड़ी-बड़ी कम्पनियो के हिसाब जाचा करते थे, गांधीजी के साथ आ जाने पर वह काम छोड़कर गुजरात विद्यापीठ में काम कर रहे थे; जब कांग्रेस ने एक ऐसी कमिटी बनाई, जिसके जिम्मे भारतवर्ष पर लादे हुए कर्ज की जांच करने का भार दिया तो यह भी उसके सदस्य बनाये गए। महात्माजी ने इनको हिसाब की देखरेख के लिए यहां भेज दिया। इतना कहना अत्युक्ति नहीं है कि यदि वह न आ गये होते और उन्होने सारे हिसाब का एक अच्छा

संगठन न कर दिया होता तो हम मुश्किल में पड़ते। हमारे काम करने-वालों की संख्या प्रायः दो हजार से भी अधिक होगी। वे बारह जिलों में बंटे हुए थे। उनमें थोड़े ही ऐसे थे, जो हिसाब कुछ भी जानते हों। काम भी बहुत प्रकार के थे और सबका हिसाब अलग-अलग रखना पड़ता था। यह काम इतना फैला हुआ था कि उसका सभालना बहुत ही कठिन था। पर इनके बताये तरीके से हिसाब रखने पर सब काम ठीक हुआ।

मैंने शुरू मे बिहार-बैंक को कमिटी का खजाची बना दिया था। रुपये कमिटी के पास आते और सीधे बैंक के पास आते थे। एक दिन मे दो सौ-तीन सौ मनीआर्डर पहुचते थे। सैकड़ो पार्सल रोज आते और उनमें हर तरह की चीजे आती। सबका हिसाब अलग-अलग रक्खा जाता। केन्द्रो मे पहुंचकर जब रुपयों अथवा चीजो का खर्च होता तो उसका भी हिसाब केन्द्रीय दफ्तर के निरीक्षण मे ही रक्खा जाता। कुछ दिनों के बाद जब हमने पहली रिपोर्ट निकाली और उसके साथ पैसे तथा सामान देनेवालो की नामावली छापी तो वह प्रायः चार सौ पन्ने की पुस्तक हो गई। हमने जनता से अपील की कि यदि किन्ही दाता का नाम उसमे न छपा हो तो वह मुझे सूचना दें। हर्ष का विषय है कि यद्यपि कई हजार दाताओं ने सीधे हमारे पास या बैंक के पास पैसे और सामान भेजे थे तथापि मेरे पास थोडे ही, शायद दस-बारह ही पत्र आये, जिनमे शिकायत की थी कि उनके नाम नही छपे हैं। जब जांच की गई तो उनके नाम भी छपे मिले, केवल गलती यह हुई थी कि किसी दूसरे सूबे या शहर के नीचे उनके नाम छप गये थे। इसीसे सबको सन्तोष हो गया कि हिसाब का काम बहुत पक्का रहा। इसपर मैंने इसलिए यहा इतना जोर दिया कि सार्वजनिक काम मे रुपये-पैसो के मामले में सफाई निहायत जरूरी है। काम करनेवाले ठीक और उचित तरीके से जनता के दिये रुपये खर्च करे भी और हिसाब ठीक न रक्खे तो बदनामी हो जाती है। अक्सर बदनामी बे-बुनियाद होती है, क्योंकि खर्च तो ठीक हुआ रहता है, पर हिसाब के ज्ञान के अभाव के कारण अथवा काम करनेवालो की सुस्ती या आलस के कारण हिसाब ठीक न रहने से बदनामी हो जाती है। जब आशा से अधिक लोगो मे उत्साह दीखा और रुपये बरसने लगे तो मुझे यही चिन्ता थी कि लोगों का विश्वास कहीं झूठा न पड़े। पर ईश्वर की दया से, और खासकर कुमारप्पाजी और उनके अधीन काम करनेवाले कार्यकर्ताओं की चतुरता एवं मुस्तैदी से काम भली-भाति पूरा हो सका। हम कह सकते है कि लोगों के दिये हुए रुपये और सामान का अच्छा-से-अच्छा उपयोग हुआ। वास्तव में जैसा सद्व्यय होना चाहिए था, वैसा ही हुआ।

: १०५ :

बिहार-सेंट्रल-रिलीफ-कमिटी की सेवाएं

मैं कैद से मुक्त होने के बाद भी दस दिनों तक अस्पताल में रहा। पर बाहर भी आया-जाया करता। दिन-दिन ताकत बढ़ती गई। काम की भीड़ इतनी थी कि सवेरे चार बजे उठ जाता और चारपाई पर से ही लिखने का काम शुरू कर देता। पत्रों की भरमार थी। उनका उत्तर देना, पत्रों में आई हुई खबरों के सम्बन्ध को फिर नई अपील के रूप में भेजकर लोगों को यहां की दुर्दशा की सूचना देना तथा अपने केन्द्रों से आये हुए पत्रों के उत्तर देना यह कुछ कम काम नहीं था। मि० अजीज ने अपना एक छोटा मकान दफ्तर के लिए दिया, पर शीघ्र ही काम इतना बढ़ गया कि वहां जगह ना-काफी हो गई। तब हमने एक दूसरा बड़ा मकान भाड़े पर लिया। दफ्तर के कई विभाग कर दिये गए। सबके चार्ज में एक-एक प्रमुख कार्यकर्ता रक्खा गया। शुरू में श्री जयप्रकाशजी ही दफ्तर के चार्ज में रहे। पीछे जब अनुग्रहबाबू छूटकर चले आये और काम भी बहुत बढ़ गया तो उन्होंने उसे सभाला। जो कमिटी हमने बनाई, उसमें सभी दलों और सूबों के लोगों को, जिन्होंने मदद पहुंचाई थी, सदस्य बना लिया।

थोड़े ही दिनों के बाद गांधीजी आये। उनके आने से पहले मैंने सोचा कि मैं उसके पूर्व ही एक बार उन स्थानों को जाकर देख आऊं, जहां सबसे अधिक नुकसान हुआ है। यह प्राय. भूकम्प के एक महीने बाद हुआ। अब-तक मैं दफ्तर में रहकर काम करता था, कुछ तो कमजोरी के कारण और कुछ काम की भीड़ से। अब सहायक लोग आ गये, काम बंट गया और उन लोगों ने उसे सभाल लिया तो मैं बाहर निकला। मैं जहां-जहां गया वहां की हालत देखकर रिपोर्ट भेजता गया, जो छोटी पुस्तिका के रूप में छप भी गई। अपने कार्यकर्ताओं, दाताओं और सहानुभूति दिखवानेवालों को सब बातों से अगाह रखने के लिए हमने एक 'बुलेटिन' निकालना शुरू कर दिया, जो कुछ दिनों तक नियमित रूप से निकाला, पीछे अनावश्यक समझ-कर बन्द कर दिया गया।

जिन्होंने कमिटी के पास रुपये और सामान भेजे अथवा स्वयं आकर उसके संगठन में योगदान किया, उनके अलावा बहुतेरी दूसरी संस्थाएं निजी

तौर से काम करने आई। इन सबका हमारी कमिटी के साथ सहयोग था। हम प्रयत्न करते कि हम सबके काम में विरोध न हो और एक ही काम दो संस्थाओं द्वारा दुबारा किया जाय। इससे यह फायदा हुआ कि सार्वजनिक धन, चाहे वह कमिटी के पास आया हो या किसी दूसरी संस्था के पास, अच्छे व्यवहार में ही आया। ऐसी संस्थाएं तो बहुत थीं, जिनकी पूरी सूची प्रकाशित रिपोर्ट मे मिलेगी। पर सबके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए यहां मुख्य के ही नाम दे सकता हूं। वे थी मारवाडी रिलीफ सोसायटी, मेमन रिलीफ सोसायटी और श्रीरामकृष्ण-मिशन। बाबा गुरुदत्तसिहजी के दल ने भी अच्छा काम किया। रेडक्रास और इण्डियन मेडिकल एसोसिएशन ने मदद की। श्री सतीशचन्द्र दास गुप्त की मार्फत बगाल की सकट-त्राण-कमिटी ने भी दवा, सवारी आदि की भी अच्छी सहायता की।

एक ओर सरकार की अपील थी, दूसरी ओर बिहार-सेण्ट्रल-रिलीफ-कमिटी की। कुछ दिनो तक तो जनता का और दान देनेवालो का इतना उत्साह रहा कि दोनों के फण्ड प्राय: बराबरी में चलते रहे। हम भी रोजाना की आमदनी प्रकाशित करते और सरकार भी करती। महात्माजी जब आ गये और सेठ जमनालाल बजाज अपने साथियों के साथ बिहार में बैठ गये तो मेरे सिर से बोझ कुछ हल्का हो गया। लोगो को राहत पहुचाने में कठिनाइयां बहुत थी। पहले तो रेल-लाइने टूट गई थी। माल रेल पर नही जा सकता था। रास्तों के पुल टूट गये थे। इसलिए बैलगाडी और मोटर-लारी पर भी ले जाना आसान नही था। रहने के लिए बहुत जगहो मे मकान नहीं मिलता था। बहुत जगहो में पानी का कष्ट था। हमको रिलीफ-कमिटी की ओर से कई मोटर-लारी खरीदनी पड़ी। आहिस्ता-आहिस्ता सड़के कुछ सुधरी। पुल तो नही बने, पर उनके पास से होकर, जहां कोई बड़ी नदी नहीं थी, दूसरा रास्ता निकल गया। नदियों मे नाव से भी काम लिया लगा। रिलीफ-कमिटी के झोंपड़े सभी जगहों में बन गये। कार्यकर्ताओं के संगठन में श्री कृपालानी, श्री हार्डीकर और श्रीमती सोफिया सोमजी ने बड़ा काम किया। काम करनेवालों की देख-रेख भी कुछ सहज नही थी। कार्यकर्ताओं के लिए हमें सैकड़ों साइकिले देनी पड़ी। उनके रहने के लिए झोपड़े बनाने तथा खाने का प्रबन्ध करना पड़ा। पर यह जानकर आश्चर्य होगा कि अपने कार्यकर्ताओं के खाने का खर्च दो आने रोज से अधिक हम नहीं देते थे। वे उसीमें जो कुछ हो सकता, खाकर काम करते। उतना ही उनके लिए काफी था। महात्माजी भी उन जिलों में गये, जहां बहुत क्षति हुई थी। उनका जाना दो दृष्टियों से आवश्यक था। एक तो क्षति को वह खुद देख लें और जहां इतनी और इतने प्रकार की क्षति हुई है, वहां किसकी पूर्ति

करने का हम प्रयत्न करें, यह निश्चय करने में हमारी सहायता करें। दूसरी बात यह भी थी कि उनके जाने से लोगों की हिम्मत बढ़ती और विपत्ति में ढाढ़स होता। इसलिए सभी जगहों में इस बात पर बहुत जोर दिया गया कि महात्माजी सभी जगहो में जायं। यह तो सम्भव नहीं था, पर तो भी बहुत जगहो मे वह गये। उन अभूतपूर्व हृदय-विदारक दृश्यों को उन्होने देखा, जो भूकम्प ने उपस्थित कर दिये थे।

हमारे सामने दो प्रकार के प्रश्न थे। भूकम्प के कारण लोगों के घर गिर गये, जो कुछ घर मे था बर्बाद हो गया। खाने को अन्न नही, पहनने को कपड़े नही। अन्न मिले भी तो उसे पकाने के लिए बर्तन नही। रहने को घर नही। कुएं भर गये। तालाबो में बालू भर गई। इसलिए पीने को पानी नही। यह सबसेंसी मागें थी, जिनका तुरन्त पूरा होना आवश्यक था। इसलिए महात्माजी के आने के पहले ही भोजन, कपड़ा, बर्तन आदि जहा-तक हो सका हमने लोगो को बांटा। उससे भी पहले जहातक हो सका, मकानों का मलवा हटाने का प्रयत्न किया गया, ताकि उसके नीचे दबे लोग निकाले जाय। इस काम मे रिलीफ-कमिटी बहुत-कुछ नही कर सकी। यह काम जो कुछ हुआ, स्थानीय लोगों ने ही किया, क्योंकि रिलीफ-कमिटी के संगठित होते और कार्यकर्ताओ के पहुंचते-पहुचते जो मलवे के नीचे दबे थे, वे या तो निकाल लिये गये थे या मर चुके थे, पर जो बच गये थे उनको तत्काल मदद देने के काम मे रिलीफ-कमिटी ने पूरा हाथ बंटाया। महात्माजी के पहुंचते-पहुंचते यह काम भी बहुत-कुछ हो चुका था, यद्यपि अभी एकबारगी खतम नही हुआ था। अब जो कुछ रह गया था, वह कुछ अधिक स्थायी काम था। इसमें दो-तीन प्रकार के काम मुख्य थे और हमको निश्चय करना था कि हम कौन काम करें।

लाखों-लाख मकान गिर गये थे। उनके बनवाने में लोगों की सहायता करना एक बहुत बड़ा काम था। इसी तरह लाखों-लाख कुएं बालू से भर गये थे। बहुतेरे ऐसे गांव थे, जहां कुओ में पानी था ही नहीं, यहांतक कि कहीं-कहीं गहरे गड्ढे इस तरह भर गये थे कि वहा यह पता नहीं चलता था कि यहा कभी गड्ढा रहा है। कही-कही छोटी-मोटी नदियों का पेट बालू से बिलकुल भर गया था। पानी का घोर कष्ट था। यह किसी एक गांव या इलाके की बात नही है। गंगा के उत्तर प्रायः सभी जिलों में, सैकड़ों मील की लम्बाई और प्रायः चालीस-पचास मील की चौड़ाई में, थोड़ी या बहुत एक ही हालत थी। पानी किस तरह पहुंचाया जाय, यह बड़ा बीहड़ प्रश्न था। तीसरा प्रश्न, जो हमको बहुत परेशान कर रहा था वह खेतों में बालू का आ जाना था। खेतों में पानी के फौवारे निकले और

पानी के साथ-साथ बालू भी निकली। वह इतनी अधिक निकली कि खेत बालू से पट गये। जब पानी सूखा तो मालूम होने लगा कि सारा इलाका बलुकामय मरुभूमि हो गया! यदि यह बालू यों ही छोड़ दी गई तो यहां अब फिर कोई फसल न होगी, ऐसा भय होने लगा। इसलिए यह बालू किसी तरह साफ की जा सकती है या नही, यह बात विचारणीय थी। हमने खुद देखा कि कही-कही बालू पांच-छः फुट गहरी पड गई थी। एक जगह थोड़ी जमीन मे बालू साफ करने का प्रयोग करके देखा तो इतना ज्यादा खर्च पड़ा कि वह असम्भव जान पडने लगा।

एक और तात्कालिक प्रश्न ईख के कारण उठ खड़ा हुआ। उत्तर बिहार मे चीनी के बहुत कारखाने है। लोग ईख की खेती करते है और उन कारखानो के हाथ ईख बेच देते है। इससे उनको पैसे मिल जाते है। भूकम्प ने प्रायः सभी कारखानों को बेकार कर दिया। वे सब रुक गये। करोडो की ईख खेतो मे खड़ी थी। अब वह बेकार होने लगी। हमने यह सोचा कि पुराने कोल्हू फिर चालू किये जाय, जिससे कुछ भी तो ईख का गुड बन जाय और किसानों को कुछ भी तो बच जाय। सरकार ने भी इसको पसन्द किया। दोनो सस्थाओ की ओर मे कोल्हू बाटे गये। पर कोल्हू मिलने मे भी कठिनाई थी, क्योंकि वे इतनी अधिक सख्या मे तैयार नही थे। उनके लिए बाजार ही नही था, इसलिए उनका बनना एक प्रकार से बद हो गया था। तो भी कई हजार कोल्हू हमने और सरकार ने बाटे, और कुछ ईख इस तरह बचाई गई। पर भाग्यवश कुछ दिनो के बाद बहुतेरी मिलो की मरम्मत हो सकी और उन्होने अपना काम शुरू कर दिया। इस तरह जितनी क्षति हो सकती थी, उतनी नही हुई।

इनके अलावा छोटे-मोटे और भी बहुत-से प्रश्न थे। इनपर विचारकर तात्कालिक सहायता का काम समाप्त करके आगे के लिए निश्चय करना था। इसलिए कमिटी की एक बैठक पटने में की गई। इसमे सभी सूबों के प्रमुख लोग, जो इसके सदस्य थे, आये। इसने प्रस्ताव किया कि सरकार के काम में हम हर तरह के सहयोग देने को तैयार है। अपने काम के लिए इसने कार्यकारिणी बना दी। मामूली नियम भी बना दिये। इतनी बड़ी कमिटी का बार-बार इकट्ठा होना मुश्किल था। इसलिए कार्यकारिणी पर ही काम का सारा भार आ पड़ा। वह बराबर मिला करती और सब बातों पर निश्चय किया करती। महात्माजी की राय हुई और हम सब लोग इससे सहमत हुए कि बालू हटाने का काम हमारे लिए असम्भव है, इसलिए उसमें हम हाथ न लगावें; मकान बनवाने के काम में हम सहायता दे सकते हैं, पर उससे भी अधिक आवश्यक और उपयोगी काम पानी पहुंचाने का था;

इसमें व्यक्तिगत मदद का भी मौका रहेगा, इसलिए विशेष व्यक्ति के साथ पक्षपात करने का मौका कम आयेगा तथा हमारा काम भी अधिक स्वच्छ होगा; इसलिए हम पहले कुंआ और तालाब बनवायें, जिनमे मनुष्य और पशुओं के लिए पानी की सुविधा हो।

परन्तु यह काम भी इतना बड़ा था कि हमारे सब पैसे खर्च हो जाते तब भी इसका थोडा अंश भी पूरा न होता। फिर भी पहले इसीपर जोर देने का निश्चय हुआ। इसमें भी प्रश्न उठा कि हम 'ट्यूब वेल' बनवाये अथवा पक्के कुंए। ट्यूब वेल' बहुत जल्द तैयार हो सकते थे और यह काम ठेकेदारो के द्वारा आसानी से हो सकता था। हमने कुछ बनवाये भी, पर हमने देखा कि इनसे काम नही चलेगा। एक तो यह कि एक ट्यूब वेल से एक घड़ा पानी निकालने मे एक आदमी का जितना समय लग जाता है, उतने ही समय मे कुंए से चार-पाच आदमी एक साथ ही चार-पांच घड पानी निकाल सकते है। दूसरे, इनकी मरम्मत का प्रश्न भी विकट था। बिगड़ने पर गांवों के लोग इनकी मरम्मत कैसे करायेंगे। उसके लिए हमको बड़ा 'स्टाक' रखना पड़ेगा। फिर कुछ दिनो के बाद यह बेकार हो जायगा। यह भी देखा गया कि कही-कही ट्यूब वेल और कुंओं मे बराबर ही खर्च पड़ता था। इसलिए हमने कुंआ बनवाने का ही निश्चय किया। सभी जगहों पर कार्यकर्ता लोगो ने गांववालो के सहयोग मे कुआ बनवाना आरम्भ कर दिया। हम चाहते थे कि बरसात के पहले ही अधिक-से-अधिक कुंए बन जायं। इनके अलावा पुराने कुओं की मरम्मत भी जरूरी थी। बालू निकालकर उनको साफ कर देने से ही बहुत जगहो मे काम चल जाता था। इन सबमें गांवो के लोग अपने शरीर से मदद कर सकते थे। उसी तरह पुराने तालाबों को साफ करा देने से मवेशियों के लिए पानी का प्रबन्ध हो जाता था। हमने कई हजार नये कुंए बनवाये और अनेक पुराने कुओं की मरम्मत-सफाई भी कराई। कई तालाब खुदवाये या बिगडे हुए तालाबों की मरम्मत कराई। यह सब काम अप्रैल से जुलाई के पहले ही समाप्त हो गया, क्योंकि उसके बाद दूसरा ही प्रश्न आ खड़ा हुआ और हम उसमें लग गये।

पानी पहुंचाने का निश्चय बहुत ही ठीक रहा, क्योकि उससे हम एक स्थायी काम कर सके। एक कुंए या तालाब से बहुत लोगों को लाभ पहुंचा सके। यह गांधीजी की दूरदर्शिता का ही फल था कि इतना स्थायी काम हो सका, नहीं तो सब रुपये चाहे मकानों की मरम्मत मे या बालू साफ कराने में लग जाते, तब भी फल इतना व्यापक न होता। पक्षपात के—गलत चाहे सही—अभियोग से भी हमारी संस्था न बच सकती।

: १०६ :

भूकम्प के बाद बाढ़ की समस्या

इस काम में हम लगे ही हुए थे कि दूसरा प्रश्न आ खड़ा हुआ। सभी जगहो मे नदी-नाले भर गये थ। अत: भय था कि गंगा, सरयू, गंडक-जैसी बड़ी-बड़ी नदियो का पेट भी बालू से कुछ भर गया होगा। जमीन की सतह ऊंची-नीची हो गई थी। इनसब कारणों से आशका हो रही थी कि बरसात के दिनों में बाढ़ के कारण नई विपत्ति आ सकती है। हमको उसके लिए तैयारी करनी पड़ी। सरकार ने भी अपनी तैयारी की। हमको बहुतेरी नावें बनवाकर या खरीदकर उन स्थानो मे रखनी पड़ी, जहा बाढ़ का अधिक भय था।

भूकम्प के बाद गरीबों के लिए, जो मजदूरी किया करते हैं, काम की कमी न रही। किसी-न-किसी तरह का काम उनको मिलता रहा। पर इस बात का भय था कि बरसात मे उन्हें काम नही मिलेगा। दो-चार दिनो तक विपत्ति-काल में गरीबो को खाना दे देना अच्छा है; पर बिना काम कराये उनको खैरात खिलाना उन्हे निकम्मा और आलसी बनाना है। इसलिए हमने शुरू से ही यही नीति रक्खी थी कि यथासाध्य बिना काम कराये मुफ्त न खिलाया जाय। जनता को मजदूरो की जरूरत थी ही। सभी लोग, जो काम करा सकते थे, अपने गिरे-पडे मकानों को साफ या उनकी मरम्मत कराते। बहुतेरे तो नये मकान मे भी हाथ लगा देते। खेती का काम भी था ही। रिलीफ-कमिटी ने जो हजारो कुए बनवाये और जिनकी मरम्मत कराई तथा हजारो तालाब-पोखरे खुदवाये या साफ कराये उनमे भी बहुतेरे मजदूर काम करते रहे। कई जगहों पर हमने नई सड़कें बनवा दी या पुरानी बिगड़ी सड़कों की मरम्मत करा दी। इस तरह हजारो मील सड़के सारे सूबे में हमने बनवा डाली या मरम्मत करा दी। पानी के नाले भर गये थे। यदि वे बरसात के पहले साफ न कर दिये जाते तो पानी का निकास ही नही होता। बरसात मे गांवों की हालत दर्दनाक हो जाती। इसलिए इस तरह के नालों को भी हमने बहुत जगहों में साफ कराया।

मुजफ्फरपुर-जिले में, सीतामढ़ी जाने के रास्ते पर, भरथुआ का एक मशहूर चंवर है। भूकम्प के पहले ही वहां की हालत कुछ ऐसी खराब हो

गई थी कि बागमती नदी का पानी हमेशा वहां जमा रहता था। जो पहले हरी-भरी जमीन थी, जहां बहुत अन्न पैदा हुआ करता था, वहां की सारी जमीन इस तरह जलमग्न रहने लगी थी कि कुछ भी पैदा न होता। वह जल भी इतना बुरा था कि वहां के बड़े-बड़े गांछ-वृक्ष भी सूख गये थे। बड़े-बड़े बगीचे यों सूखे खड़े थे कि देखकर आश्चर्य होता था। इस तरह का दृश्य मैंने कोसी नदी के किनारे कुछ गांवों में देखा है, जहां उसी तरह बड़े-बड़े पेड़ बिना पत्ते के सूखे पड़े है। गांधीजी सफर में वहां गये थे और वहां की हालत देखकर दुःखी हुए थे। वहा के कार्यकर्ताओं ने इसपर बहुत जोर दिया कि कुछ उपाय होना चाहिए। दरियाफ्त करने से मालूम हुआ कि पहले एक नाला या नहर थी, जिससे वहा का पानी निकल जाया करता था। बागमती ने अपना पुराना घाट छोड़ दिया और यह नाला भर गया। उसीका यह फल था कि वहां पानी जम गया, जो निकल नही सकता था। यदि वह नाला किसी तरह फिर खोल दिया जाय तो वहां सैकड़ों वर्गमील फिर हरा-भरा हो जाय।

हम लोगो ने निश्चय किया कि सरकार यदि इसका प्रबन्ध करने को तैयार न हो तो रिलीफ-कमिटी द्वारा यह काम करा दिया जायगा। हमारे अन्दाज से खर्च प्रायः पचास हजार का था। सरकार से लिखा-पढ़ी हुई। उस नहर के खुदवाने का भार ले लिया। इस तरह की छोटी-मोटी नहरें हमने और कई जगहों मे खुदवाकर बहुत-सी बर्बाद हो रही जमीन हरी-भरी बनवा दी। जहां गरीब स्त्रिया दूसरा काम नही कर सकती थी, चर्खे के द्वारा उनको काम दिया गया। इस तरह रिलीफ-कमिटी ने सूत और खादी का काम भी कई जगहो मे जारी किया। पीछे जब कमिटी का काम समेटा गया तो यह खादी का सारा काम बिहार-चर्खा संघ के जिम्मे कर दिया गया। मकान इतने बनवाने थे कि लोगों को मकान बनाने के सामान की बहुत जरूरत थी। ईंट, खपडा रस्सी, बास, लकडी और लोहे के सामान इत्यादि की बडी माग थी। हमने बहुत जगहो मे कमिटी की ओर से दूकानें खोल दी, जहा लागत-मात्र दाम पर चीजें दी जाती। पर इससे भी अधिक हमने यह किया कि ईंट, लकड़ी, सिमेंट इत्यादि के व्यापारियो के साथ बात-चीत करके लागत दाम पर अथवा बहुत कम मुनाफे पर सामान बेचने का प्रबन्ध कराया। जो हमारे पुर्जे ले जाते उनको उस नियत दाम पर सामान मिल जाता। कमिटी की ओर से उनको कुछ कमीशन दिया जाता था—कहीं बिना इसके भी काम चल जाता। इस तरह जो हमने कमिटी की ओर से सीधे तौर पर मदद की, उसके अलावा इनसब चीजों के दाम के नियंत्रण में बहुत बड़ा भाग लेकर मुनासिब कीमत पर लोगों को सामान मुहैया कराया।

इस बात का पूरा अन्देशा था कि बरसात के महीनों में चावल की कमी सूबे के बहुत भागों में होगी। देखने में आया कि चावल का दाम कुछ चढ़ता जा रहा है। हमने बरमा-प्रान्त से बहुत चावल खरीदकर उन सभी स्थानों में, जहां अभाव का भय था, चावल की रिलीफ-दूकानें खोल दी। इसका नतीजा यह हुआ कि चावल का दाम नही चढा और लोगों को मुनासिब दाम पर चावल मिलता रहा। रिलीफ-कमिटी के रुपये भी चावल बिक जाने पर वापस आ गये। मलेरिया और हैजे के प्रकोप का भय अलग था। कही-कही यह हुआ भी। इसके लिए कमिटी के डाक्टरी विभाग ने अपनी शाखाए बहुत जगहो में खोल दी और उनसे लोगो को बहुत लाभ पहुंचा। बाढ के दिनों मे बहुत मुश्किल से लोगों की मदद की जा सकी। कमिटी और गवर्नमेण्ट की सलाह से नावे उन स्थानो मे रक्खी गई थी, जहां बाढ़ का भय था। इन नावों के द्वारा बाढ-पीड़ितो को मदद पहुचाने में बहुत सहूलियत हुई।

इसके अलावा हमने बहुत-से लोगो को मकान मरम्मत करने या बनवाने के लिए नगद रुपये भी दिये। कमिटी ने निश्चय कर लिया था कि जो लोग भूकम्प के पहले अच्छे धनी-मानी थे अथवा जिनके बडे मकान थे अथवा जो बड़ा मकान बनवाना चाहते थे, उनकी मदद करने मे कमिटी असमर्थ है; क्योकि उसके पास इतने पैसे नही थे। वह तो गरीब और मझोले दर्जे के लोगों की ही मदद कर सकती थी। इसलिए उसने निश्चय किया कि किसी एक व्यक्ति को ढाईसौ रुपये से अधिक नगद मदद नही दी जायगी। इसके अलावा रिलीफ-दर पर ईंट, बास, लकडी, सिमेंट इत्यादि चीजे दी जा सकती हैं। सरकार ज्यादा रकम की मदद देती थी। हमने उस वर्ग के लोगों की मदद का भार गवर्नमेण्ट पर ही छोड दिया। इस तरह पाठकों को कुछ अन्दाज मिल गया होगा कि सहायता कितने प्रकार की देनी पड़ी और कितने प्रकार के काम कमिटी को करने पड़े। उसकी रिपोर्ट समय-समय पर छपती गई। वह लोगों में, विशेषकर दान-दाताओ में, वितरित की गई।

एक बहुत महत्वपूर्ण अनुभव का उल्लेख आवश्यक है। जब महात्मा गांधी भूकम्प-पीड़ित क्षेत्रों मे घूम रहे थे, उनके साथ इंगलैंड की दो महिलाएं बहुत जगहों में गईं। एक थी कुमारी मुरियल लेस्टर, जिनके अतिथि महात्माजी गोलमेज-कान्फ्रेंस के समय रह चुके थे। दूसरी थीं वहां की, भारत से सहानुभूति रखनेवाली, सार्वजनिक काम करनेवाली कुमारी अगेथा हरिसन। यों तो और भी बहुत-से विदेशियों ने भूकम्प की क्षति देखी थी। सबने अपने-अपने मित्रों को लिखा था। दीनबन्धु एण्डरूज तो सभी जगहों

में, जहां विपत्ति पड़ती थी, जाया ही करते थे; बिहार में भी आये थे। उन्होंने एक पुस्तक लिखकर इगलैंड और अमेरिका में छपवाई थी। इन-सब कामो से वहां के लोगों मे भी बिहार के प्रति सहानुभूति पैदा हुई थी। गवर्नमेण्ट की अपील भी वहां पहुंची थी। उसपर लोगों ने पैसे की भी मदद की थी।

यूरोप में एक संस्था है, जिसके सदस्य युद्ध के विरोधी हैं। पर वे मानते हैं कि सेना मे जिस प्रकार का नियन्त्रण होता है और लोगों को अपना सर्वस्व अर्थात् जान तक देने का जो अवसर मिलता है, उससे बहुतेरे युवक उस तरफ आकर्षित होते है; पर यदि इस उत्साह और त्याग-शक्ति को नर-सहार में न लगाकर जन-सेवा मे लगाया जाय तो बहुत बड़ा काम हो जाय। इसलिए, इस सस्था के सदस्य, अपनेको सैनिक की भाति नियन्त्रण में रखते हुए, जहा कोई विपत्ति आती है वहा जाकर, जनता की सेवा करते हैं। इसमे वे जाति या देश का विचार नही करते। यूरोप मे पिछले बड़े युद्ध के बाद कई जगहो मे, जहां बहुत विध्वंस हुआ था, उन्होने जाकर सेवा की थी। इसी तरह कई जगहो मे पीड़ित जनता की सेवा करने का अनुभव उनको था। उनके नेता थे स्विट्जरलैंड के पियर सेरेसोल। यह इंजीनियर थे। बड़े ऊंचे खानदान के थे। इनके घर के लोग अपने देश के शासन-विभाग के उच्च-पदों को—विशेषकर सेना मे—सुशोभित कर चुके थे। इनके पिता शायद वहां के प्रजातन्त्र के प्रधान रह चुके थे। इन्होने युद्ध-विरोधी सिद्धान्त के कारण वह सब छोड़ दिया था और फौजी शिक्षा से इन्कार करने के कारण सजा भी भोगी थी। बिहार में यह कुछ साथियो को लेकर सेवा के लिए आये।

हम लोगों ने देखा कि कई जगहें इतनी बरबाद हो गई थी कि वहां के लोगों को वहां से हटाना ठीक ही था। हमने बहुत कोशिश की कि लोग स्थान छोड़कर कहीं दूर जा बसना पसन्द करें। इसके लिए दूसरे स्थानों में जमीदारो से बातचीत करके जमीन का बन्दोबस्त कराने का यत्न भी हम कर रहे थे, पर कही कोई अपने घर को छोड़कर दूर जानेवाला नही मिला। इसलिए किसी बड़े पैमाने पर स्थानान्तर अथवा स्थान-परिवर्तन का कार्य-क्रम असंभव समझकर हमने छोड़ दिया। पर मुजफ्फरपुर-जिले में कुछ गांवों के लोग बाढ़ से इतने पीडित थे कि गाव छोड़कर थोड़ी दूर अलग बस जाने पर राजी हो गये। हमने सोचा कि इसमें मकान बनाने इत्यादि में हम उनकी मदद करें। सरकार भी इस बात पर राजी हो गई कि रिलीफ-कमिटी और सरकार दोनों मिलकर इसमें खर्च करें। काम का भार एक स्थानीय कमिटी को सुपुर्द किया गया। डाक्टर सेरेसोल ने इस काम का

भार लिया। हमने रिलीफ-कमिटी की ओर से उनको ही उस कमिटी का सदस्य बना दिया और उनकी मदद के लिए अपने कार्यकर्ता श्री फणीन्द्र-मोहन दत्त को दे दिया।

वहांपर कई नये गाव बसाये गए। इसमें एक साल से अधिक समय लगा। डाक्टर सेरेसोल वहां बराबर रहे। बीच में एक बार यूरोप गये भी, तो फिर कुछ दिनों के बाद वापस आकर काम मे जुट गये। उनके साथ यूरोप के कई देशो के चार-पांच साथी थे। उन्होंने अपने शरीर से भी बहुत परिश्रम किया। डाक्टर सेरेसोल की अवस्था साठ से अधिक थी। बहुत लम्बे-तगड़े थे। यहां की गर्मी से परेशान हो जाते थे, तो भी उस गाव मे ही रहते थे। वहां भोजन का कष्ट था, आराम का वहा कोई सामान न था जिसके वह आदी थे। तब भी दिन-रात दौड-धूप करते रहते। उन्हें परिश्रम करते देखकर दूसरों को भी उत्साह हो जाता था। जो गाव बसाये गए, उनमें मुख्य गांव का नाम शांतिपुर रक्खा गया। यह सुन्दर-सम्पन्न गाव आज भी आबाद है और एक नमूने की बस्ती है।

भूकम्प और बाढ़ के कारण कई जगहो मे मलेरिया का बडा प्रकोप हो गया। रिलीफ-कमिटी की ओर से कई जगहो मे, मलेरिया से लोगो को बचाने के लिए, विशेष प्रबन्ध करने पडे। इनमे मुख्य है रामपुरहरि और मनुसमारा का इलाका—मुजफ्फरपुर जिले में, पंडौल और मधुबनी का इलाका—दरभंगा-जिले मे तथा सुपौल का इलाका भागलपुर जिले मे। यह इतना बड़ा काम हो सका कार्यकर्ताओं के उत्साह और त्याग से ही। उनकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। अगर पैसा देकर सभी कार्यकर्ता रखने पड़ते तो रिलीफ-कमिटी का बहुत रुपया सिर्फ काम करनेवालो पर ही खर्च हो जाता। हम आरम्भ से ही इस बात पर बहुत ध्यान रखते थे कि असहायों को मदद देने में ही हमारा अधिक-से-अधिक खर्च हो और मदद पहुचाने के काम में कम-से-कम खर्च हो। ऊपर कहा गया है कि सेवकों को मोटा-से-मोटा भोजन हम देते थे, जिसका लागत-खर्च दो आने रोज के लगभग पड़ता था। काम प्रायः डेढ साल चलता रहा। इसलिए दफ्तर में कुछ लोग ऐसे अवश्य रक्खे गये, जिनको कुछ निर्वाह-व्यय भी देना पड़ता; पर वह भी हम बहुत ही किफायती दर से देते। इसके अलावा दफ्तर के लिए मकान, सामान इत्यादि का खर्च भी करना पड़ता था। माल ढोने के लिए और कार्यकर्ताओं तथा निरीक्षकों को कम-से-कम समय में अपने स्थानों पर पहुंचाने के लिए हमें लारियां और सवारियां भी खरीदनी पडी थीं। यह सब खर्च संस्था के नाम से लिखा जाता। हमेशा हम इस बात पर ध्यान रखते कि संस्था-खर्च और सहायता-खर्च का अनुपात जहांतक कम रह सके, रहे।

हम अपनी रिपोर्ट में इसका भी बराबर जिक्र करते। शुरू में जब लोगों को अन्न-वस्त्रादि पहुंचाना था तब केन्द्र से इनको ढोकर सहायता की जगह पर ले जाने और बांटने का खर्च ज्यादा पड़ा। यह स्वाभाविक था। जब कुंआ, पोखरा, तालाब, सड़क, पुल, नहर इत्यादि में हाथ लगाया गया तो संस्था-खर्च कम हो गया। जब मकान के लिए रुपये बांटने का समय आया तो यह खर्च और भी कम हो गया।

यहां एक छोटी घटना का उल्लेख आवश्यक जान पड़ता है। सरकार ने अपने सिविल-सर्विस के एक सुयोग्य अफसर मि० ब्रेट को रिलीफ-कमिश्नर बनाया था। रिलीफ के सारे काम का भार उन्हीं पर था। उन्होंने रिलीफ-सम्बन्धी एक रिपोर्ट लिखी, जिसमे उन्होने बिहार-सेण्ट्रल-रिलीफ-कमिटी का भी जिक्र किया और उसके खर्च का सारांश भी उस रिपोर्ट मे दिया। वहां उन्होने लिख दिया कि रिलीफ-कमिटी का सस्था-खर्च ज्यादा पड़ा। वह रिपोर्ट लिखकर, अपना काम खतम करके, छुट्टी पर इंगलैंड चले गये। वह रिपोर्ट उनके चले जाने के बाद छपी। हमने देखा कि यह संस्था-खर्च का हिसाब बिलकुल गलत है। हमने सरकार को लिखा कि हमारे जाचे और छपे हिसाब में सस्था-खर्च तो उतना नही है। सरकार के आंकडे गलत है। हमने जानना चाहा कि वे आकड़े कहा से और कैसे निकले हैं। मि० ब्रेट की गैरहाजिरी मे उत्तर मिला कि आकडे मि० ब्रेट ने तैयार किये थे और सरकार को मालूम नही कि वह कैसे उन आंकडों तक पहुचे थे। ऐसी अवस्था मे उचित होता कि सरकार अपनी भूल स्वीकार कर लेती; पर ऐसा भी नही किया गया और सरकार की रिपोर्ट मे वे गलत अंक आज भी पड़े है।

जब रिलीफ का काम खतम हो गया तो जो रुपये बचे थे, वे एक ट्रस्ट के जिम्मे कर दिये गए। जब कभी इस तरह की विपत्ति बिहार में आवेगी तब वे खर्च होगे। सौभाग्यवश कोई बड़ी विपत्ति तबसे नही आई है। जहां-तहा छोटी-मोटी बाढ आई तो थोड़ी-बहुत सहायता की जरूरत पड़ी। वह सहायता उसीमें से दी गई है। ट्रस्टियो ने रुपयो को खाली न रखकर, महात्माजी की सलाह से, अधिकांश चर्खा-संघ को कर्ज दे रक्खा है। चर्खा-संघ कुछ ब्याज देता है और चर्खा-द्वारा रुपये गरीबों की सेवा में लगे भी हैं। इस तरह एक पंथ दो काज हो रहा है। ट्रस्टी थे सरदार वल्लभभाई पटेल, सेठ जमनालाल बजाज और मै। सेठजी के स्वर्गवास के बाद अब दो ही रह गये हैं।

: १०७ :

सत्याग्रह स्थगित

रिलीफ-कमिटी के काम से जब महात्माजी ध्वस्त जगहों का दौरा कर रहे थे, एक घटना हुई, जिसका असर यहा की राजनीति पर बहुत पड़ा। १९३३ के मध्य भाग मे ही सत्याग्रह-आन्दोलन में सुस्ती आ गई थी, व्यक्तिगत सत्याग्रह से कुछ जागृति देखने मे आई, पर वह भी धीरे-धीरे जाती रही। जिस समय भूकम्प हुआ, गाधीजी दक्षिण भारत मे हरिजन-सम्बन्धी दौरा कर रहे थे। वहा से ही वह बिहार आये थे। अबतक नये सुधारो की बात इंगलैंड में कुछ आगे बढ़ चुकी थी। दूसरी गोलमेज-कान्फ्रेन्स के बाद कुछ और कार्रवाई हुई और एक श्वेत पत्र (White Paper) निकला, जिसमे वे सिद्धान्त निश्चित किये हुए थे, जिनके अनुसार नया विधान बननेवाला था। लोग समझते थे कि शीघ्र ही श्वेत पत्र के अनुसार कानून बन जायगा और नया विधान काम मे आने लगेगा। कुछ लोग सोच रहे थे कि यह नया विधान चाहे कितना भी खराब क्यो न हो और चाहे उसके अनुसार काम करना हम स्वीकार करें या न करें, काग्रेस को चुनाव मे भाग लेना चाहिए। इस बात की चर्चा चारो ओर चलने लगी और कांग्रेसी लोगों में भी यह बात चली। डा० असारी, डा० विधानचन्द्र राय और श्री भूलाभाई देसाई ने यह बात काग्रेसियो मे चलाई। मैं तो रिलीफ के काम में ही व्यस्त था। इसलिए मुझे तो इस ओर ध्यान देने का अवकाश नही था। महात्माजी शायद कुछ-न-कुछ सोचते रहे होगे।

उत्तर बिहार के सफर मे एक दिन भागलपुर जिले के 'सहरसा' नामक गांव में हम लोग ठहरे। दूसरे दिन सोमवार था, महात्माजी का मौन-दिन। महात्माजी मौन में कुछ लिखते रहे। मै यों भी कभी उनका समय व्यर्थ नहीं लेता, उस दिन तो वह लिख रहे थे। इसलिए दिन-भर मै उनसे कुछ बातें न कर सका। संध्या चार-पाच बजे के करीब उन्होंने मेरे हाथ में एक कागज दिया और लिखकर कह दिया कि इसको पढ़कर अपनी सम्मति दो। मैं उसको पढ़ गया। उसमे सत्याग्रह बन्द कर देने की बात थी और चुनाव-सम्बन्धी संकेत था। उन्होने उसमें यह बताया था कि कुछ उनके विश्वासी लोगों ने, जो जेल से निकले हैं, ऐसी बातें कही है जिनसे उनको इस नतीजे

पर पहुंचना पड़ा है। देश में व्याप्त सुस्ती के अलावा मेरे सूबे में भूकम्प के बाद से दूसरा ही वातावरण हो गया था। यहां सत्याग्रह तो हो ही नहीं रहा था, बल्कि हम लोगों के प्रायः सभी साथी जेलों से मुक्त कर दिये गए थे और रिलीफ के काम में उनका अगर पूरा सहयोग नहीं था तो किसी प्रकार का विरोध भी नहीं था। अगर पूरे सहयोग में किसी प्रकार की कमी थी तो वह हमारे कारण से नहीं थी, सरकार ही पूरा सहयोग नहीं चाहती थी और हमारे सभी कामों को सन्देह की दृष्टि से देखती थी। इसलिए आन्दोलन को, जो बहुत-कुछ स्वयं बन्द हो चुका था, बाजाब्ता बन्द कर देने की बात मुझे खटकी नहीं। और बातें भी ऐसी नहीं थीं, जिनसे कुछ चोट लगे। इसलिए ध्यान से पढ़ने के बाद मैंने उस वक्तव्य के साथ अपनी सहमति प्रकट कर दी। तुरन्त उसकी नकल की गई और महात्माजी का विचार हुआ कि उसे अखबारों में भेजा जाय। वहां से तो तार भी नहीं जा सकता था। इसलिए मैं किसीको उसके साथ पटना भेजने का प्रबन्ध कर रहा था कि इतने में एक आदमी पटना से आ गया।

पटने में डा० असारी का तार आया था। उसीको लेकर एक आदमी को वहां के लोगों ने भेज दिया था। पटने में लोगों ने समझा था कि सहरसा में तार नहीं मिल सकेगा। उस तार में डाक्टर असारी के पटने आने की बात थी। वह इन्हीं विषयों पर महात्माजी से बातें करने आ रहे हैं। उनके साथ डा० विधानचन्द्र राय और श्री भूलाभाई देसाई भी आवेंगे। यह तार पाकर महात्माजी ने अपने वक्तव्य को अखबारों में भेजने से रोक दिया और पटना जाने का निश्चय किया। डा० असारी के पहुचने के समय हम लोग पटना पहुंच गये। डा० असारी प्रभृति से महात्माजी की बातें हुईं और उसके बाद वह वक्तव्य अखबारों में भेज दिया गया। इस वक्तव्य के निर्णय से बहुतेरे काग्रेसी सन्तुष्ट थे; पर जो कारण बताया गया था उसे वे पसन्द नहीं करते थे। इसका नतीजा यह हुआ कि अब प्रमुख कांग्रेसियों का इकट्ठा होकर इस विषय पर विचार करना आवश्यक हो गया। महात्माजी का बिहार का दौरा अभी पूरा नहीं हुआ था। छोटा नागपुर जाना बाकी था; उधर भूकम्प से नुकसान नहीं हुआ था; पर गांधीजी ने हरिजन-सम्बन्धी काम से उधर का भी दौरा करना पसन्द किया। वह उधर चले गये। सलाह-मशविरे के लिए प्रमुख काग्रेसियों को रांची में बुलाया गया। यह कोई बाजाब्ता बैठक नहीं थी, लोगों की राय जानने के लिए ही बुलाहट हुई थी। वहां मैं भी गया। सभी सूबों से बहुतेरे लोग आये। दो तीन दिनों तक बातचीत हुई। निश्चय हुआ कि पटने में अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी की बाजाब्ता बैठक की जाय। इस बीच में महात्माजी और

जगहों का दौरा कर लेंगे। मई (१९३४) के महीने में पटने में यह बैठक हुई।

इस बैठक की विशेषता यह थी कि अबतक सभी कांग्रेस-कमिटियां गैर-कानूनी थी। उनमें से किसीकी भी बैठक गैर-कानूनी होती। पर सरकार ने भी रंगढंग समझ लिया था। उसकी ओर से किसी तरह की रोक-टोक नही हुई। श्रीमती राधिकासिंह-हाल में बैठक हुई और सध्या समय उसीके मैदान में। दो प्रकार के लोग थे। जो प्रस्ताव वर्किंग-कमिटी की ओर से पेश किया गया, उसमें सत्याग्रह स्थगित करने का आदेश था, केवल गांधीजी को सत्याग्रह करने का अधिकार दिया गया था। कौंसिल के चुनाव मे भाग लेने की भी बात थी। साथ ही, महात्माजी के वक्तव्य का समर्थन था। कुछ लोग तो प्रस्ताव के साथ सहमत थे। कुछ लोगों ने उसका तीव्र विरोध किया। विरोध उस निश्चय के साथ तो था ही, महात्माजी के वक्तव्य में जो कारण बताया गया था, उसके साथ भी था। कुछ लोग, जो सत्याग्रह बन्द करने के विरोधी नहीं भी थे, कौन्सिल-चुनाव में भाग लेने के विरुद्ध थे। बहुत गरमा-गरम बहस के बाद प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। इस विरोध में अधिक भाग उन लोगों का था, जिन्होने 'काग्रेस सोशलिस्ट-पार्टी' बनाई। पटने में ही, इसी अवसर पर, सोशलिस्ट लोगों ने अपनी एक अलग काफ्रेंस की। उन्होने अपनी पार्टी, कांग्रेस के अन्दर रहकर ही, संगठित की। इसके मुख्य कार्यकर्ता और नेता आचार्य श्री नरेन्द्रदेव और श्री जयप्रकाश नारायण थे। अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी मे विरोधियों में मुख्य आचार्य नरेन्द्र-देव ही थे।

जो हो, अखिल भारतीय काग्रेस-कमिटी ने सत्याग्रह स्थगित कर दिया। इसके बाद अब सरकार के लिए भी रास्ता खुल गया। उसने कुछ दिनों के बाद कांग्रेस-कमिटी पर से गैर-कानूनी होने का हुकुम उठा लिया। कुछ दिनो में वर्किंग-कमिटी की बैठक हुई। उसने आदेश दिया कि कांग्रेस का पुनः संगठन जल्द-से-जल्द कर लिया जाय और सभी कमिटिया बाजाब्ता काम करना शुरू कर दें। इस बार दोनों पक्षों ने अपने-अपने मन्तव्य स्वतंत्र रूप से प्रकाशित कर दिये थे। इसीलिए किसीपर किसीका दावा या बन्धन नहीं था। गांधी-अर्विन-समझौते के बाद उसकी शर्तों को पूरा कराने में बड़ी कठिनाई हुई थी। इस बार वह सब बखेड़ा नही था। कुछ दिनों के बाद सरकार ने एक-एक करके सभी आश्रमो और कांग्रेस-भवनों को वापस कर दिया। वे जिस अवस्था में थे, उसी दशा में उन्हें हमको ले लेना था और फिर मरम्मत वगैरह का सारा काम हमको स्वयं करना था। इसलिए, इस बार लिखा-पढ़ी में न समय लगाना पड़ा और न सिर खपाना पड़ा। वर्धा

में वर्किंग कमिटी की बैठक हुई, जिसमें एक कौटुम्बिक विपत्ति के कारण मैं नही जा सका। इन दिनो सेठ जमनालाल बजाज स्थानापन्न सभापति बनाये गए और वही कांग्रेस का संचालन करने लगे। निश्चय हुआ कि कांग्रेस का विशेष अधिवेशन किया जाय। यही अधिवेशन अक्तूबर में बम्बई में हुआ। सभी सत्याग्रही अभी तक छूटे नही थे। सरदार वल्लभभाई, पण्डित जवाहरलाल प्रभृति अभी तक जेल में ही थे। सरदार तो बम्बई-कांग्रेस के पहले ही निकल आये थे; पर पण्डित जवाहरलालजी बम्बई-कांग्रेस के बहुत बाद तक जेल में ही रहे।

: १०८ :

भाई की मृत्यु और ऋण-संकट

इधर मेरे घर मे बड़ी विपत्ति आ गई। मै, इसी कारण से, पटना में अखिल भारतीय कमिटी की बैठक हो जाने के बाद वर्धा मे होनेवाली वर्किंग कमिटी मे शरीक न हो सका। अखिल भारतीय कमिटी की बैठक समाप्त होने के बाद बहुत जल्द ही यह विपत्ति आई।

रिलीफ के काम मे भाई ने बहुत परिश्रम किया था। छपरे में ही उनको अधिक काम करना पड़ा था। प्रान्तीय काम मे भी उन्होने अच्छा भाग लिया था। उन्होंने आसाम में जो जमीन ली थी, उसे देखने कभी-कभी वहा भी जाया करते थे। अभी तक उसका कोई समुचित प्रबन्ध न हो सका था। वह मई के महीने मे वहा एक बार गये। वहा से लौटकर आये तो उनको ज्वर हो गया। वह जगह बहुत मलेरिया-ग्रस्त थी। उनको मलेरिया ने वही पकड़ा, जिसका असर यहा घर लौटने पर मालूम हुआ। पर उससे वह अच्छे हो गये। मै एक दिन छपरा गया तो उनको अच्छा पाया, पर देखा कि वह बैंक का काम करने लगे है। उस समय वह बहुत कमजोर थे। मैंने मना किया, कहा कि अभी कुछ और आराम कर लें, शक्ति हो जाने पर ही काम करे। यह सब कहकर मैं पटने चला आया। मेरे पटना लौटने के दो-चार दिनो के अन्दर ही एक दिन दोपहर को छपरे से तार आया कि उनकी तबीयत खराब है, डाक्टर रघुनाथशरण को मै भेज दू अथवा साथ लेकर आऊं। तार पढ़कर मेरी चिन्ता बढ गई। यह तार छपरे के सिविल सर्जन डाक्टर राजेश्वरप्रसाद की राय से दिया गया था।

डाक्टर शरण से मिलकर छपरा जाने का निश्चय हो ही रहा था कि दोपहर का स्टीमर, जो गंगा-पार जाता है, निकल गया। हम लोगों ने रात तक ठहरना मुनासिब न समझा। मोटर पर डाक्टर शरण के साथ मैं रवाना हो गया। नाव से मोटर को गंगा-पार करके हम लोग आगे चले। भूकम्प के कारण सड़कें तो यों ही खराब हो गई थी, रेल बन्द हो जाने से जो बहुत बैलगाड़ियां और लारियां चली थी, उससे सड़को की हालत और भी रद्दी हो गई थी। हम लोग प्रायः दस बजे रात को छपरा पहुंचे। वहां

के सभी डाक्टर बहुत चाव और प्रेम से चिकित्सा कर रहे थे। डाक्टर राजेश्वरप्रसाद तो दिन-रात वही रहते थे। जब उन्होंने हालत काबू के बाहर देखी तभी तार दिया था। ज्वर के अलावा इस समय 'किडनी' की हालत खराब हो गई थी। इसलिए पेशाब और खून का जांचना अत्यन्त आवश्यक था। उनको पहले कुछ चीनी की शिकायत थी और उसकी चिकित्सा भी कराई गई थी, जिससे वह कुछ संभल गई थी; पर कमजोरी की हालत मे शायद उसने भी जोर कर दिया था।

रात को ही पेशाब इत्यादि लेकर आदमी पटने भेजा गया। डाक्टरों ने बहुत परिश्रम किया, पर दिन-दिन बीमारी बढती गई। पटने से वैद्यराज पंडित ब्रजबिहारी चौबेजी को भी बुलाया। उन्होंने भी कुछ उपचार किया, पर किसीका कुछ असर न हुआ। अन्त मे डाक्टरों की राय हुई कि शायद एक 'किडनी' निकालने से कुछ लाभ हो। डाक्टर राजेश्वरप्रसाद अच्छे सर्जन होते हुए भी यह जवाबदेही अकेले लेना नही चाहते थे। डाक्टर बनर्जी के बुलाने का प्रयत्न किया गया, पर वह मेडिकल कालेज बन्द होने के कारण पटने में नही थे। मुंगेर के योग्य सिविल सर्जन डाक्टर बटुकदेव-प्रसाद वर्मा बुलाये गए, पर उनके हाथ मे कोई दूसरा मरीज था, जिसको तुरन्त छोड़कर वह कही बाहर जा नही सकते थे। लखनऊ तार दिया कि वहां के नामी सर्जन डाक्टर भाटिया बुलाये जायं, पर वह भी न आ सके। कलकत्ते तार दिया तो वहा के मित्रो ने नामी सर्जन डाक्टर पचानन चटर्जी को भेजा। पटना के कर्नल एलेक्जेण्डर को भी बुलाया। सबने देखकर कहा कि कमजोरी इतनी है कि छुरी लगाना ठीक न होगा। हार मानकर नश्तर की बात छोड़ दी गई। इसके दो दिनो के अन्दर ही उनका स्वर्गवास हो गया !

हमने तार देकर जमशेदपुर से जनार्दन और उनके स्त्री-बच्चे को बुला लिया था। लखनऊ से दामाद और लड़की भी आ गई। शिकारपुर की बबुनी मृत्यु होने पर पहुंची। पटने से साथ-ही-साथ भाई मथुराप्रसादजी आये थे। पूज्य ब्रजकिशोरबाबू भी आ गये। इस तरह सभी इष्ट-मित्रों के बीच, बाल-बच्चों से घिरे हुए, उन्होंने शरीर-त्याग किया। हम सब राम-नाम ले रहे थे और गीता-पाठ कर रहे थे। हम सबके लिए तो आफत का पहाड़ टूट पड़ा। हमने घर से कभी सम्बन्ध रक्खा ही न था। सबकुछ वही करते थे। जब मैं वकालत कर रहा था और रुपये कमा रहा था तब भी वही मेरी देखभाल करते थे। जब मैं असहयोग करके फक्कड़ बन गया तब भी वही मेरी देखभाल करते थे। मेरी स्त्री और लड़के भी उनके ही साथ बराबर रहे थे। मैं जब कभी जाता था तो उनसे मिल आता था।

उन्होंने घर की स्त्रियों को कभी एक-दूसरे से अलग न होने दिया, लड़कों में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया। लड़के भी उनको ही पिता जानते और मानते थे। यह विपत्ति अचानक आ पड़ी। वह भी ऐसे समय आई जब मैं दूसरे काम मे व्यस्त था।

हम लोग जल्द ही दाह-क्रिया के लिए सरयूजी चले गये, जो उन दिनों छपरा-शहर से कुछ दूर पर थीं। दाह-क्रिया करते देर हो गई। दूसरे दिन सवेरे, घर के सब लोगों के साथ, मोटर पर हम जीरादेई चले गये। वहीं घर पर श्रद्धादि क्रिया की गई। भाई सारे सूबे में विख्यात थे। वह सार्वजनिक सेवा में बहुत समय लगाते थे। इसके अलावा छपरे में और दूसरी जगहो मे भी लोगो की सेवा-सहायता किया करते थे। किसीके घर मे यज्ञ हो, वह प्रबन्ध करते। किसी प्रकार का सभा-सम्मेलन कहीं हो, वह प्रबन्ध मे जुट जाते थे। व्यक्तिगत व्यवहार लोगो के साथ इतना अच्छा रखते थे कि किसीको कोई जरूरत हो तो उसको पूरा करने मे हिचकते नही थे। इसलिए उनकी मृत्यु की खबर जब छपी तो सारे सूबे से बहुत मित्रों के सहानुभूति-सूचक तार और पत्र आने लगे। इन सबसे मुझे बड़ा ढाढ़स हुआ। महात्माजी के सांत्वना-सूचक शब्दों का असर तो पड़े बिना रह ही नही सकता था।

यह सब होते हुए भी मेरे लिए यह बहुत ही कठिन और दुःख का समय हुआ। मै कह चुका हूं कि घर के कारबार से मेरा कुछ सरोकार नही रहा करता था। सबकुछ भाई ही देखा करते थे, यहांतक कि जब मै रुपये पैदा किया करता था तब भी मेरे निजी आराम और जरूरत की चीजों का खयाल वही किया करते थे। जब पटना आते, नौकर से पूछते कि मेरे कपड़े तो ठीक हैं न, मेरी धोतियां अच्छी हैं या पुरानी हो गई है, मेरे पास कुर्ते कितने हैं, मैं नाश्ता क्या करता हूं, इत्यादि। और, जरूरत के मुताबिक उस नौकर को, चाहे मेरे क्लर्क मौलवी शराफत हुसैन को, जिनको हम 'मुंशीजी' कहा करते थे, हिदायत दे जाते। मै भी, जो कुछ खर्च के बाद बच जाता सब उनके ही हवाले कर देता। घर पर थोड़ी जमीदारी थी, जिससे चार सौ से पांच सौ रुपया तक मासिक बचत होगी। पिताजी, जमीदारी के काम से अलग ही रहते थे, इससे कुछ बदइन्तजामी हो गई थी, जिसके कारण इतनी आमदनी होते हुए भी कभी-कभी कष्ट हो जाया करता। मैं पहले ही लिख चुका हूं कि जब भाई प्रयाग में बी० ए० में पढ़ रहे थे तब परीक्षा के समय उन्होंने युनिवर्सिटी-फीस के लिए रुपये मांग भेजे; इतनी रकम कोई बड़ी चीज नहीं थी; पर इन्तजाम का सारा भार दीवान पर था, दीवान जल्दी न दे सके तो पिताजी ने कर्ज लेकर रुपये भिजवाये। यह तो

एक साधारण उदाहरण है। रुपये की दिक्कत हमेशा रहा करती।

मै छपरे में जब पढ़ता था, वहां नगद रुपयों की बहुत कम जरूरत होती। दो मोदियो से बात पक्की हो गई थी। मै पुर्जा लिख देता, वे जरूरत की चीजे दे देते। सब पुर्जे लेकर वे जीरादेई जाते और रुपये वही से पाते। केवल स्कूल-फीस और पुस्तक अथवा कपडा खरीदने के लिए नगद रुपये की जरूरत होती। जब कोई घर से जमीदारी के मुकदमे की पैरवी के लिए आता तो उससे मै ले लेता। इसके लिए एक आदमी, जिनका नाम किन्नूराय था, नियुक्त थे। वह हमेशा छपरा आते-जाते रहते। इसलिए मुझे कभी कोई तकलीफ नही हुई। पर यह बात भाई के साथ नही थी। उनको पटने या प्रयाग मे खर्च के लिए हर महीने नगद रुपये चाहिए थे। इसके लिए उनको बहुत कष्ट झेलना पड़ा था। इस बात को वह भूले नही थे। इसलिए पिताजी के देहान्त के बाद जब उन्होंने जमीदारी का इन्तजाम संभाला तो मेरे पास खर्च भेजने का बहुत अच्छा प्रबन्ध कर दिया; बल्कि सच तो यह है कि पिताजी के जीवन-काल मे ही, जब वह प्रयाग से बी० ए० पास करके आ गये, जमीदारी का काम देखने लगे। प्रबन्ध उन्होंने अच्छा कर दिया।

पिताजी के मरने के समय थोडा कर्ज था। उनकी मृत्यु के बाद एक भतीजी की शादी हुई, उसमे भी कुछ कर्ज हो गया। इस तरह कई हजार का कर्ज था। पर इतनी जमीदारी के लिए यह कर्जा कुछ इतना बड़ा न था कि अदा ही न हो सके, विशेषकर अगर कुछ बाहर की नगदी आमदनी हो जाय। भाईसाहब बिहार-बैंक की छपरा-शाखा के मैनेजर थे। पर उनको इतना वेतन नही मिलता था कि वहा का सब खर्च चलाकर वह कुछ बचा सके। मै कुछ कमाता था जरूर; पर खर्च भी काफी करता था। इसलिए यह कर्ज अदा न हो सका। एक और लड़की की शादी आ गई। उसमें भी खर्च पडा। चाची मर गई। उनके श्राद्ध मे खर्च पडा। पर इन सबसे कर्ज बढा नही; बल्कि आमदनी कुछ बढ़ गई; क्योकि बारहसौ रुपये की सालाना आमदनी, जो चाची को तीर्थाटन के लिए मिली हुई थी, अब बचने लगी। तो भी किसी तरह बोझ हल्का न हुआ। पर सब लोग बड़े आराम से रहते। ऊपरी ठाठ-बाट बहुत अच्छा था। नाम और यश अच्छा फैला। भाईसाहब बहुत ही उदार थे। खर्च काफी किया करते थे, किसी व्यसन या शौकोंनो में नहीं; पर तरह-तरह के दूसरे खर्च थे। इसलिए अच्छा प्रबन्ध होने पर भी पहले का कर्ज अदा न हो सका। वह आशा लगाये थे कि मैं इतने पैसे कमा लूगा कि कर्ज आसानी से अदा हो जायगा। जब मैंने वकालत छोड़ने का निश्चय कर लिया तो उनकी सब आशाओं पर पानी फिर गया। पर कभी उन्होंने एक शब्द भी मुझसे कहा नहीं।

वह जानते थे कि सार्वजनिक सेवा की ओर मेरी अभिरुचि उनके ही प्रोत्साहन से हुई थी। जहांतक हो सका, वह बराबर इसमें मेरी मदद ही करते थे। कभी असन्तोष प्रकट न करते। मुझे इस तरह के काम से रोकने का खयाल भी अपने मन में न आने देते। इसलिए अपनी सब सांसारिक आशाओं पर पानी फिरते देखकर भी वह खुश ही रहे और हमेशा मुझे खुश रखने के प्रयत्न मे ही लगे रहे। उन्होने यह सोचा कि बैंक की नौकरी से आमदनी ज्यादा नही हो सकती। ज्यादा मुशाहरावाली दूसरी नौकरी चाहते तो मिल जाती; क्योंकि चुस्त मैनेजर होने की उनकी काफी ख्याति थी। पर जिस बैंक के स्थापित होने में उन्होंने मदद की थी, उसको किसी तरह छोड़ना नही चाहते थे। इसके अलावा उसमें सुविधा भी थी। वह नौकर की तरह नही, मालिक की तरह काम करते। उतना परिश्रम शायद ही कोई नौकर (मैनेजर) किसी बैंक का करता हो। साथ ही, वह प्रायः रविवार को जीरादेई चले जाते और घर का कारबार देख आते। सार्वजनिक कामों मे भी वह बहुत समय लगाते। बैंक के अधिकारियो की ओर से इसमें कभी रुकावट नही डाली जाती। उन्होने इन्ही कारणो से बैंक से अलग होना तो गैरमुनासिब समझा, पर सोचा कि किसी दूसरे उपाय से कुछ आमदनी बढ़ाई जाय। इसलिए उन्होंने चावल की एक मिल खोली।

मै तो काग्रेस के काम में व्यस्त था, मिल का काम बहुत आगे बढ़ जाने पर मुझे इसका पता लगा। भाई के हाथ में बैंक का काम, कोआपरेटिव-सोसाइटियों का काम और दूसरे-दूसरे इतने अधिक काम थे कि वह इस मिल की देख-रेख मे खुद समय न दे सके। उन्होंने दूसरो पर भरोसा किया। दूसरे लोग, चाहे अनुभव के अभाव से, चाहे सुस्ती से, चाहे और किसी कारण से, ठीक प्रबन्ध न कर सके। मिल में रुपयों की कमी हो गई। धान का मौसम बीतता जाता था। यदि उस समय धान न खरीदा गया तो मुनाफा न होगा। पर आशा की जाती थी कि यदि किसीसे रुपये लेकर लगा दिये जायं तो मौसम बीतने पर चावल बिक जाने से रुपये वापस आ जायंगे और महाजन को अदा कर दिये जायंगे। बाजार की हालत ऐसी समझी जाती थी कि लागत के रुपयों के ब्याज देने के बाद भी अच्छा मुनाफा रहेगा। उन्होंने ऐसा ही समझा और मुझसे कहा कि सेठ जमनालालजी से एक 'सीजन' के लिए कुछ रुपये ला दो। सेठजी ने इस बात को मंजूर कर लिया। रुपये आ गये। मिल खूब जोरों से चलने लगी। तैयार होने के पहले ही चावल बिक जाता। खरीदारों की भीड़ लगी रहती। सब समझते थे कि खूब मुनाफा होगा। मिल के संचालक महाशय ने दाम लगाने में ही भूल कर दी थी। लागत से कम दर पर ही चावल बिक रहा था। ऐसी अवस्था

में खरीदारों का टूट पड़ना कोई आश्चर्य नहीं था। जितना ज्यादा चावल बनता और बिकता, घाटे की रकम उतनी ही बढ़ती गई। सेठजी के रुपये आ जाने से मैंने भी थोड़ी दिलचस्पी ली। एक दिन मिल में गया। वहां ठहरकर हिसाब देखा। मालूम हुआ कि लागत से कम पर ही चावल बिक रहा है। मैनेजर मेरी बात मानते नही थे। अन्त में भाईसाहब को भी समय लगाना पड़ा। उन्होंने भी हिसाब लगाकर देखा और समझ लिया कि बहुत नुकसान हो चुका है। नतीजा यह हुआ कि सेठजी का रुपया समय पर नहीं दिया जा सका। आहिस्ता-आहिस्ता कुछ-कुछ अदा हुआ, पर बहुत ज्यादा बाकी रह गया।

जब ऐसी अवस्था मालूम पडी तो हम दोनों बहुत शर्मिन्दा हुए, पर कुछ कर नहीं सकते थे। तकाजा होता रहा, पर रुपये अदा न हो सके। सेठजी के एक मारवाडी मित्र श्री बैजनाथ केडिया बिहार में कहीं थोड़ी जमीन लेकर खेती करना चाहते थे। एक बार सेठजी और केडियाजी दोनों जीरादेई आये। मेरी जमींदारी में सत्तर-अस्सी बीघे जमीन ऐसी है, जो अपने जोत में रहती है। उसमें धान, गेहूं, ऊख इत्यादि सब प्रकार की फसलें पैदा हो सकती है। मेरे मकान से प्राय. एक मील के अन्दर ही वह जमीन है। सेठजी के और दूसरे कर्ज मिलकर साठ-पैंसठ हजार होते थे। वह इस पर राजी हो गये कि यह जमीन और मकान उनको हम बेच दें तो वह सब-का-सब कर्ज चुकता कर देंगे। मकान पक्का है, भड़कदार है; बना तो था दादा के समय में, पर भाईसाहब ने उसमें कई हजार लगाकर उसे बढाया था और कुछ हिस्से को दो-महला बनाया था। यदि मकान और जीरात की जमीन हम उस समय बेंच देते और कर्ज से मुक्त हो जाते तो हर तरह अच्छा होता। इसके बाद भी कम-से-कम पांचसौ रुपये मासिक की आमदनी जमींदारी से बेदाग बच जाती। हां, घर कहीं अन्यत्र बनाना पड़ता। पर इस समय घर के लोग अधिकतर छपरा रहा करते थे। छोटा घर कही अपनी जमींदारी मे बना लेना मुश्किल नही था। मैने इस राय को पसन्द किया और इसपर जोर दिया कि कर्ज अदा करने का इससे बेहतर रास्ता इस समय नही हो सकेगा। इसलिए इसे तय कर देना चाहिए।

सेठ लोगों से बातचीत हुई। वे तो राजी थे ही। सेठ जमनालाल बजाज ने भी बहुत जोर दिया कि यह बोझ हटा देना चाहिए, नही तो आगे चलकर यह गला दबा देगा। भाईसाहब बाप-दादा के बनाये और हम सबके जन्म-स्थान पुराने मकान को बेचने से बहुत हिचके; पर मजबूरन कुछ-कुछ राजी भी हुए। पीछे घर की स्त्रियों और कुछ मित्रों की राय से, जिनमें बाबू मथुराप्रसाद भी थे, प्रभावित होकर वह मकान और खेत बेचने पर राजी

नहीं हुए। मामला खत्म हो गया। पैतृक मकान और जीरात के खेत तो नही बिके; पर थोड़े ही दिनों में दूसरे महाजनों का इतना जोर हुआ कि काफी जमींदारी बेचनी पड़ी।

चावल-कल के घाटे से तो दबे थे ही, उन्होंने कुछ दूसरा व्यापार करना चाहा! छपरे मे बिजली का कारखाना खोलने का प्रबन्ध किया। १९३० में, जब मैं जेल मे था, यह बात तय हुई। रुपये अपने पास तो थे नही, छपरा-इलेक्ट्रिक-सप्लाई-कम्पनी कायम की गई। गवर्नमेण्ट ने लाइसेन्स उनको ही दिया, कम्पनी को नही। इसलिए बिजली-कल उन्होंने ही बनवाई। रुपये कर्ज के थे। कुछ बैंक से लेकर कम्पनी ने दिया। कुछ 'शेयर' बेचकर और कुछ उन्होने अपनी जवाबदेही पर कर्ज लेकर रुपये लगाये। पहले का और अबका कर्ज मिलाकर बहुत हो गया था। मरने के एक-दो साल पहले ही उनको प्रायः बाईस सौ रुपये सालाना आमदनी की जमींदारी बेच देनी पडी। तो भी अभी सब कर्ज अदा न हुआ। सेठ जमनालालजी के रुपये तो बाकी रह ही गये; दूसरे भी कई जगहों के रुपये बाकी थे। मुझे सेठजी के सिवा दूसरो के कर्ज की खबर नही थी। जब जमींदारी बिकी तो मैंने सोचा था कि अब बोझ हल्का हो गया होगा। पर यह कहा होनेवाला था। कुछ तो खर्च के कारण और कुछ इस तरह के व्यापार के कारण कर्ज बढ़ता ही गया। कभी-कभी वह कहा करते थे कि बिजली के हिस्से अगर बिक जायं और जो रुपये लगाये गए है, वे उतर आवे तो बोझ हल्का हो सकता है। पर यह भी उन्होने आशावादी होने के कारण ही कहा था। कुछ हिस्से बेचने का प्रयत्न भी किया, पर चूंकि बिजली-कल पर कम्पनी का स्वत्व ही नही था, हिस्सा बिकने मे कठिनाई हुई। इस तरह अपने ऊपर कर्ज का भारी बोझ बढता गया। ब्याज भी बढ़ता गया और अदाकारी का कोई सामान नजर नही आता था। लड़के लोगो में मेरा भतीजा इंगलैंड से लोहा बनाने का काम सीखकर आया और टाटा कम्पनी में उसे जगह मिल गई थी। वहां उसको तीनसौ-साढे तीनसौ रुपये के लगभग मिलता था; पर वहा का खर्च और घर के लोगों के वहा रह जाने का खर्च इतना अधिक होता कि वह बहुत बचा नही सकता। शायद भाईसाहब जिस तरह मुझसे कभी कुछ नहीं मागते और न मुझे आर्थिक चिन्ता में कभी डालना चाहते, उसी तरह उससे भी कभी कुछ न चाहते और न कहते। उनकी मृत्यु हो जाने के बाद हमको इसका पता लगा कि हम कितने गहरे पानी में उतर गये हैं। लोगो का उनपर इतना विश्वास था कि बिना किसी लिखा-पढ़ी के लोगों ने हजारों-हजार का कर्ज उन्हें दे दिया था। अगर वह जीते रहते तो और भी न मालूम कितने हजार उनको लोगों से मिल जाते।

उनके मरने के बाद जब मुझे यह सब देखने की नौबत आई तो पहले तो मुझे यही नहीं मालूम था कि किसको कितना देना है और किससे कितना पाना है। मैं छपरे में ठहर गया। उनके एक विश्वासी बैंक के नौकर थे, जो उनके निजी लेन-देन की भी पूरी खबर रखते थे। उन्होंने मुझे कुछ बताया और पीछे महाजन लोग एक-एक करके खुद मेरे पास आये और कहने लगे। जब मुझे पूरा पता चल गया कि कितना देना है तो मैं बहुत परेशान हो गया; क्योंकि सब-कुछ बेच देने पर भी सबका कर्ज अदा होना कठिन था। हाँ, यदि अच्छी कीमत आ जाय तो किसी तरह शायद सब अदा हो सके। पर अब जमींदारी की अच्छी कीमत देता कौन है और वह भी जब जल्दी में बेचना हो! इतने कर्ज का भार सिर पर रखना मेरे लिए असह्य था। मैं चाहता था कि किसी तरह लोग जमींदारी ले लेते और हमको मुक्त कर देते तो बड़ी कृपा होती। पर सभी महाजन जमींदारी लेना नहीं चाहते थे। मैंने सबसे कहा कि मैं कोई-न-कोई प्रबन्ध करके एक साल में रुपये अदा करने का प्रयत्न करूंगा और जो जमींदारी लेना चाहें, उनको तो तत्काल ही लिख देने को तैयार हूं। लोगों का भाईसाहब पर इतना विश्वास था—उनके साथ इतना प्रेम था और मुझपर भी विश्वास था कि सभी बिना हिचक के मेरी बात मान गये। मैं चाहता था कि अब सब काम छोड़-छाड़कर जमींदारी बेचने के प्रबन्ध में लग जाऊं और इस बोझ को हटाकर फिर सार्वजनिक काम में आ लगूं।

: १०९ :

ऋण-मुक्ति और बम्बई-कांग्रेस

बम्बई में होनेवाली कांग्रेस का समय नजदीक आने लगा और सभापति के लिए मेरा नाम आया। कराची-कांग्रेस के बाद उड़ीसा में होनेवाली कांग्रेस के सभापतित्व के लिए भी मेरा नाम आया था और एक प्रकार से मैं चुना भी गया था। पर सत्याग्रह छिड़ जाने के कारण वह कांग्रेस हुई ही नहीं। जब फिर बाजाब्ता कांग्रेस होने लगी तो स्वाभाविक रीति से मेरा ही नाम लोगों को जंचने लगा। इसके अलावा भूकम्प-संकट-निवारण के काम से सारे देश में मेरे प्रति बहुत प्रेम और विश्वास बढ़ गया था। गांधीजी भी चाहते थे कि मैं ही सभापति होऊं।

भाई की मृत्यु के आघात से मैं घायल था ही। उसपर कर्ज के बोझ का पता लगते ही मैं और भी कातर हो गया था। मैंने ऐसी अवस्था में कांग्रेस के सभापतित्व का बोझ लेना अनुचित और असम्भव समझा। महात्माजी की ओर से श्री महादेवभाई देसाई ने लिखा कि भूकम्प-सम्बन्धी काम से सन्तुष्ट होकर देश मेरे प्रति विश्वास और श्रद्धा दिखलाना चाहता है, मुझे इस भार को लेना उचित है, कर्ज के सम्बन्ध में सेठ जमनालालजी से कुछ बातें हुई हैं, वह देखेंगे। शायद वहां यह समझा गया था कि उनका ही अधिक कर्ज है तो वह कोई उपाय सोचकर कोई प्रबन्ध कर देंगे।

सेठजी एक बार मेरे घर के लोगों से मिलने जीरादेई आये। घर के लोगों के साथ भी उनका बहुत प्रेम हो गया था। मेरी भौजाई, मेरी स्त्री और दो पतोहुएं बहुत दिनों तक साबरमती-आश्रम में रही थी। वहीं उनसे सबकी मुलाकात हो गई थी। इसलिए भाई के मरने पर पुछार करने वह आये थे। घर का सब हाल और कर्ज का भी कुछ हाल सुना था। उनका खयाल था कि सब जमींदारी यदि ठीक कीमत पर बिक जाय तो सब कर्ज अदा हो सकेगा, पर जमींदारी का लालच एकदम छोड़ना पड़ेगा। मैं इसपर राजी था ही। इसलिए महात्माजी ने उनका हवाला दिया और कर्ज की चिन्ता उनपर छोड़कर कांग्रेस का भार उठाने को कहा। यहां महाजनों ने भी एक साल का समय दे ही दिया था। मैंने सभापतित्व का गुरुतर भार स्वीकार कर लिया। सेठजी ने अपने मुनीम को भेज दिया कि सब महाजनों

से हिसाब कर लें, जिससे इसका पूरा पता लग जाय कि कितना देना है और उनसे बातचीत भी करके यह पता लगावें कि उनमें से कौन जमीदारी लेने पर राजी हैं।

पर मेरी विपत्ति का अभी अन्त नही था। मेरे भतीजे जनार्दन का एक बच्चा था। वह करीब छः बरस का हो चुका था। जैसा पहले भी लिख चुका हूं, उसे सभी बहुत प्यार करते थे। मेरी भी बहुत मुहब्बत थी। उसको ज्वर हो गया। उसके सिर में कभी-कभी दर्द हुआ करता था। भाईसाहब की मृत्यु के समय वह अपनी मां के साथ जमशेदपुर से आया था। इलाज कराने के लिए मै उसे पटने ले आया। यहा उसे टाइफाइड हो गया। अठारह-बीस दिनों तक बीमार रहकर वह भी चल बसा। इसकी चोट हमको बहुत लगी। भाईसाहब तो चले ही गये थे, अब यह होनहार बच्चा भी चला गया। इन सब कारणों से मै बहुत ही व्यथित था। पर कांग्रेस का सभापतित्व स्वीकार कर लिया, यह एक तरह से अच्छा ही हुआ। उसमे जी लग गया और अब घर की चिन्ता करने का समय ही नही रह गया। कांग्रेस के सभापतित्व की बात कहने के पहले घर की बात पूरी कर देना अच्छा होगा, यद्यपि यह अध्याय सभापतित्व के बाद भी कुछ दिनो तक चलता रहा।

जब कर्ज का सब हिसाब देख लिया गया और सेठजी को रिपोर्ट दी गई तो इस बात का प्रयत्न किया गया कि जो राजी हों, उनको जमीदारी दे दी जाय। कुछ महाजन राजी हुए। उनके हाथ जमीदारी बेच दी गई। महाजन लोगो में प्रायः सभी, एक को छोड़कर, बहुत अच्छी तरह पेश आये। एक महाशय ने कसकर सूद-ब्याज लिये—एक पैसा भी, जैसा सभी महाजन फारखती के समय किया करते है, छोड़ा नही। और सबों ने, भाईसाहब की मृत्यु के बाद से अदाकारी के दिन तक, जो उसके सात-आठ महीने बाद हुई, ब्याज नही लिया। किसी-किसीने और भी कुछ छोड़ दिया। जमीदारी वगैरह का अधिकाश बेच डालने पर भी, कुछ महाजनों के—जो जमीदारी लेना नही चाहते थे—और सेठजी के रुपये बाकी रह गये। मैंने बाकी सारी जमीदारी सेठजी के नाम में जरपेशगी लिख दी और उन्होंने दूसरे महाजनों के नकद रुपये अदा करा दिये। सब रुपये उस समय वह अपने पास से नहीं दे सकते थे, तो उन्होंने सेठ घनश्यामदास बिडला से कुछ दिलवाये और कुछ खुद दिये। इस तरह सारा-का-सारा कर्ज अदा हो गया। पर एक धूर जमीन भी अपनी जमींदारी की नही रह गई। सेठजी को बिहार में जमींदारी तो लेनी नहीं थी। उस समय उन्होंने उसे इसलिए लिखवा लिया कि आहिस्ता-आहिस्ता जमींदारी बेचकर उनके रुपये अदा कर दिये जायंगे। यही विचार घनश्यामदासजी का भी था। इस तरह मैं कर्ज के बोझ से मुक्त हो गया।

हां, जमीदारी बेचकर सेठों के रुपये अदा करने थे। जबतक अदा न हो, सूद देना था। अब जमीदारी में से एक पैसा भी हम घर-खर्च में नही ले सकते थे। जीरात की जमीन भी जरपेशगी में थी। पर सबकी आबादी वगैरह हम लोगो को ही करानी थी और उन लोगो को सूद सालाना अदा करते जाना था। जमीदारी का ठेका उन्होंने मेरे छोटे लड़के धन्नू के नाम से लिख दिया था। इस तरह, यद्यपि कानूनी तौर पर जरपेशगीदार सेठजी हुए, तथापि जमीदारी और जीरात हमारे ही कब्जे में रही। उनको सिर्फ सालाना सूद मिलना था और जैसे-जैसे हो सके असल रुपये भी पाने थ। लड़के लोग कुछ-न-कुछ पैदा कर रहे थे, इसलिए जमीदारी पर भोजन के लिए भरोसा करने की जरूरत नही थी। मैंने इस बात की कोशिश की कि बची हुई जमीदारी बिके, पर अब जमीदारी की कीमत और भी घटती गई। काग्रेस-मन्त्रिमण्डल ने लगान घटाकर आमदनी भी कम कर दी। अब जमीदारी की न वह कीमत रही और न वह इज्जत। इसलिए जमीदारी अभी तक बिकी नहीं है। पर मै केवल उसे बचने के ही भरोसे बैठा न रहा। चम्पारन मे कुछ जमीन मैंने वकालत के जमाने मे ही ली थी। वहां पास मे ही चीनी-कल बन जाने से ऊख से कुछ पैसे मिलने लगे। जीरादेई के पास की जीरात मे भी ऊख से कुछ पैदा होने लगा। कुछ जनार्दन की कमाई से, कुछ धन्नू के ऊख के ठेके की बचत से, कुछ घर के पुराने कीमती शाल-दुशाले बेचकर, हमने सूद और असल अदा करना शुरू कर दिया। यानी जो कुछ आता और बचता, सब इसी काम में लगा दिया जाता। इस तरह अब-तक उस कर्ज की अच्छी रकम अदा हो चुकी है। पर अब भी कुछ रकम बाकी है। सूद हमेशा अदा होता गया है। अब ऐसी हालत है कि मै आशा करता हू, असल भी कुछ दिनो मे इसी तरह से, जमीदारी बिना बेचे ही, अदा हो जायगा। वे दिन मेरे लिए बहुत ही अन्धकारमय थे, जब अपने ऊपर इतने कर्ज का भार मैंने पाया। सेठ जमनालालजी की चतुरता और उदारता ने रास्ता निकाला और घनश्यामदासजी की सहायता लेकर उन्होंने मेरे सिर के बोझ को हल्का कर दिया। जमीन तो नहीं बची, पर इज्जत बच गई, ईमान बच गया, सब महाजनों का जो हमपर विश्वास था वह भी बच गया—साथ ही, देश के महत्वपूर्ण काम का भार उठाने की शक्ति भी बच गई।

भाईसाहब गये। जमनालालजी ने उनका स्थान ले लिया। मैं पहले-जैसा ही निठल्ला बना रहा। उनके प्रति शब्दों द्वारा कृतज्ञता नही प्रकट की जा सकती। साथ ही, मैं अपने भतीजे जनार्दन और दोनों लड़के मृत्युञ्जय तथा धनञ्जय को भी हृदय से आशीर्वाद देता हूं कि ऋणसंकट के इस

कठिन समय में वे भी अधीर नहीं हुए। घर का सबकुछ खुशी-खुशी हँसते-हँसते उन्होने दे डाला। एक प्रकार से पहला काम उनका इस बोझ को ढोना और कर्ज को अदा करने के लिए दस्तावेज पर दस्तखत करना ही हुआ। उन्होने न कभी शिकायत की और न मुंह बनाया। अब वे अपना कमाते-खाते है। जो बोझ अभी रह गया है, उसको भी हटाने की चिन्ता में वे है। इस हिम्मत और सब्र के लिए उनको भी बधाई है। ईश्वर उनका भला करेगा। अभी ही अच्छे दिन लौटते दीखने लगे है।

बम्बई-कांग्रेस के दिन निकट आ गये। १९३१ के मार्च के बाद कांग्रेस का बाजाब्ता अधिवेशन यही होनेवाला था। इस बीच में दूसरी बार का सत्याग्रह हो चुका था। ब्रिटिश सरकार ने सुधार-सम्बन्धी अपनी नीति श्वेत पत्र के रूप प्रकाशित कर दी थी। विलायत में नया विधान उसीके अनुसार बन रहा था। कांग्रेस गैर-कानूनी संस्था अब नहीं थी। वह इन विषयो पर अपनी राय देनेवाली थी। साथ ही, १९३४ के नवम्बर में ही—अर्थात् कांग्रेस-अधिवेशन के चन्द हफ्तों के अन्दर ही, केन्द्रीय असेम्बली के सदस्यों का चुनाव होनेवाला था। इस सम्बन्ध मे भी कांग्रेस को अन्तिम फैसला देना था। भावी विधान-सम्बन्धी नीति भी निर्धारित करनी थी। इसलिए अधिवेशन का महत्व काफी था। मैंने परिपाटी के अनुसार अपना भाषण लिखा। पर वह अभी पूरा न हो पाया था। मैंने सोचा था कि कुछ पहले ही वर्धा चला जाऊंगा और वहा एकात मे बैठकर उसे समाप्त करूंगा। वहा गाधीजी से बातें कर लेने का मौका मिलेगा। पर जो भाषण मैंने लिखा था, उसमें प्रस्तावित विधान की काफी आलोचना थी। मैंने उसे डाक्टर सच्चिदानन्दसिंह को दिखलाया कि कही किसी अंश में, अज्ञान अथवा असावधानी के कारण, मैंने कुछ भूल तो नही की है। उन्होंने उसे देखा और मुझे विश्वास दिलाया कि आलोचना ठीक है और कोई भूल नही है। मैं पटने से जमशेदपुर गया। वही से वर्धा जानेवाला था। पर वहा मुझे ज्वर-दमा का दौरा हो गया। वही ठहर जाना पड़ा। अच्छा होकर वर्धा गया। वहां की अच्छी आब-हवा मे जल्द ही अच्छा हो गया। भाषण भी वही समाप्त कर सका।

: ११० :

बम्बई में कांग्रेस की तैयारी और कार्यवाही

बम्बईवालों को कांग्रेस-अधिवेशन के प्रबन्ध के लिए कम समय मिला था। पर उन्होने बहुत ही अच्छा और विशाल आयोजन कर लिया था। जैसे रिलीफ-कमिटी के रुपये जमा करने के समय लोगो में उत्साह हो गया था वैसे ही इस अधिवेशन के लिए भी काफी उत्साह हो गया था। लोग समझते थे कि यह दिखला देना चाहिए कि कांग्रेस मरी नही है। उन्होने एक कांग्रेस नगर बसाया था। वही समुद्र के किनारे खुले मैदान में, अधिवेशन के लिए आसमान के नीचे, विराट् पंडाल बनाया, जिसमे प्रायः एक लाख आदमी बैठ सकते थे। खादी-प्रदर्शनी का भी वैसा ही सुन्दर और विस्तृत प्रबन्ध किया। सभापति के स्वागत के लिए विशेष प्रबन्ध था। 'कल्याण' स्टेशन पर ही मैं नागपुर-मेल से उतार लिया गया। वहां मुह-हाथ धोकर नाश्ता-पानी करके मै तैयार हो गया। कल्याण में ही कई संस्थाओं की ओर से मुझे मानपत्र दिये गए। वहां से मै घर के लोगो और कुछ मित्रों के साथ स्पेशल ट्रेन पर गया। कल्याण स्टेशन पर ही श्री दीपनारायणसिंह उतर पड़े और मेरे साथ हो लिये। उनकी कृपा मुझपर बहुत दिनों से थी। मुझे सभापति होने देखकर उनकी खुशी का ठिकाना न था, खासकर इसीलिए वह वही उतरकर मेरे साथ हो गये।

बहुत धूम-धाम से मैं बम्बई पहुचा। जहां-जहां रास्ते में गाड़ी ठहरी, स्वागत का हजूम रहा। फूल-मालाओं से डब्बा भर गया। रंग-बिरंगी चीजें लोगों ने भेंट की। बम्बई स्टेशन पर इतनी भीड थी कि मुझे उतारकर सवारी तक ले जाना कठिन था। लोगो ने चार घोड़ों की गाड़ी पर चढ़ाकर मुझे जलूस में ले जाने का प्रबन्ध किया था। मैं कमजोर था। पर लोगों की इच्छा और स्वागतकारिणी के निश्चय तथा प्रबन्ध के प्रतिकूल कुछ भी करना असम्भव था। इसलिए श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्री नरीमन और अपनी स्त्री के साथ मैं गाड़ी पर सवार होकर जलूस में चला। उस दिन तक बहुत लोग यह नहीं जानते थे कि मेरी स्त्री है; क्योंकि वह कभी मेरे साथ सभा इत्यादि में नही जाया करती थी। उस दिन भी, यदि श्रीमती नायडू उनको न ले लेतीं तो वह शायद और लोगों के साथ सीधे निवासस्थान पर चली जातीं।

जलूस बहुत लम्बा था। शहर की तैयारी भी अनोखी थी। लोगों की भीड़ भी वैसी ही थी। तमाम दूकानें सजाई गई थीं। जगह-जगह लोगों ने सुन्दर मेहराबें बनवाई थीं। बाजार में जहां जिस चीज की मुख्यता थी, वहां उसी चीज की प्रधानता सजावट और मेहराब में नजर आती। जहां कलों की दूकानें थीं, वहां की सजावट कलों से ही की गई थी। रूई-बाजार की मेहराब रूई की गाठों की थी। मैंने सुना कि उस मेहराब में, जो बहुत ही विशाल थी, लाख रुपये से अधिक की गाठें लगी थीं। रास्ते-भर में अनगिनत स्थानों पर लोगों ने फूल-माला, आरती इत्यादि से स्वागत किये। न मालूम कितनी ही चीजें भेंट देते गये। गाड़ी इन चीजों से बिलकुल भर गई थी। इस जलूस और स्वागत के सम्बन्ध में लोगों का कहना था कि इस तरह का स्वागत किसीका कभी बम्बई में उसके पहले नहीं हुआ था; १९१८ में हसनइमाम साहब का भी बहुत स्वागत हुआ था, जब वह विशेष कांग्रेस के सभापति बने थे; पर इस बार की तैयारी उससे भी कहीं ज्यादा थी, क्योंकि *१९१८ के मुकाबले जनता में जाग्रति अब कहीं अधिक थी। जलूस में प्रायः* तीन घण्टे से अधिक लगे। अन्त में कांग्रेस-भवन होता हुआ मैं निवास-स्थान पर, जो कांग्रेस-नगर में ही था, पहुचाया गया। बहुत ही थक गया था, पर बीमार नहीं पड़ा।

दूसरे दिन से अखिल भारतीय कमिटी और विषय-निर्वाचिनी समिति की बैठक होनेवाली थी। महात्माजी तथा दूसरे नेता भी पहुंच गये, विषय-समिति की बैठक में बहस बहुत गरमागरम होती रही। कई बातें ऐसी हो गई थीं, जिनसे ऐसा होना स्वाभाविक था। कांग्रेस के अधिवेशन के कुछ पहले गांधीजी ने एक वक्तव्य निकाला था। उन्होंने उसमें यह कहा था कि वह कांग्रेस से अलग हो जायंगे और उसकी जो कुछ सेवा-सहायता होगी, वह कांग्रेस के बाहर रहकर ही करेंगे। साथ ही, उन्होंने यह भी कहा था कि कांग्रेस के विधान में हेर-फेर करना आवश्यक है, जिसमें वह और भी अधिक चुस्त और जनता का प्रतिनिधित्व करनेवाली संस्था हो जाय। महात्माजी के इस विचार से देश में एक प्रकार की खलबली-सी हो गई थी। यद्यपि महात्माजी ने इस बात का पूरा आश्वासन दिया था कि बाहर से भी वह कांग्रेस की पूरी सहायता कर सकेंगे और उनके इस प्रकार हटने से कांग्रेस में कमजोरी न आकर उसकी शक्ति बढ़ेगी, तथापि लोगों को इस आश्वासन से सन्तोष नहीं होता था। मैंने अपने भाषण में महात्माजी के इस निश्चय का भी समर्थन किया था। पर अखिल भारतीय कमिटी के लोगों में इससे बड़ा असन्तोष था।

मैं सोचता था कि महात्माजी का यह निश्चय कांग्रेस को कमजोर

करने अथवा उसकी किसी तरह बुराई करने के लिए तो किया नहीं गया था; हम जब चाहेंगे उनसे सलाह-मशविरा कर सकेंगे और सभी महत्व-पूर्ण बातों में उनका पथ-प्रदर्शन हमेशा हमें मिला करेगा; पर उनके हट जाने से एक बात अवश्य होगी—सभी निश्चयों का भार उनको ही सोच-समझकर लेना होगा, जो लोग रह जायंगे। जबसे महात्माजी कांग्रेस में आ गये है, उनके व्यक्तित्व के सामने दूसरे लोग कुछ फीके पड़ जाते है। दूसरे लोग कुछ ऐसे-वैसे नही है। हमारे नेताओं मे काफी योग्यता, दूरदर्शिता और त्याग है। वे सभी प्रश्नों पर हर पहलू से विचार कर सकते है। देश के भले के लिए वे समुचित निश्चयों पर पहुच सकते है। पर गांधीजी के नेतृत्व में हममे से कुछ उनपर इतना ज्यादा भरोसा करते है कि वह जो कुछ कह देते है, उसे हम मान लेते है। हम अपनी बुद्धि और विचार-शक्ति को काम मे लाने की जरूरत नही समझते। तो भी मै मानता हूं कि जो निश्चय गांधीजी के नेतृत्व मे कांग्रेस ने किये है, बिना समझे-बूझे नही किये है। महात्माजी समझते थे कि वह अलग होकर सोचने-विचारने का भार सब लोगो पर डाल देगे। और, जो यह देखने मे आता है कि जो कुछ होता है उनके कहने से होता है, यह भावना दूर हो जायगी।

मैने इन बातो से सहमत होकर ही उनके निश्चय का समर्थन किया था। पर दूसरे लोग इस बात पर इस दृष्टि से विचार नही कर रहे थे। कुछ तो घबराते थे कि महात्माजी के हट जाने का अर्थ उनका कांग्रेस से बिलकुल अलग हो जाना है और अब उनकी सलाह-सम्मति भी नही मिलेगी। कुछ यह मानते थे कि उनके हट जाने से कांग्रेस पर जनता का उतना विश्वास नहीं रह जायगा जितना आज है, इसलिए कांग्रेस कमजोर हो जायगी। कुछ शायद यह भी समझते थे कि कांग्रेस के भीतर भिन्न-भिन्न विचारवाले लोगो के आ जाने से गांधीजी रुष्ट होकर हटे जा रहे है, उनको किसी-न-किसी तरह जरूर रखना ही चाहिए। इन कारणों से विषय-निर्वाचिनी में इस विषय पर बहुत बहस हुई। वहा गांधीजी से अनुरोध किया गया कि वह अपने विचार बदल दें और जिस तरह नेतृत्व करते आये है, करते रहे। पर वह अपने निश्चय पर डटे रहे। वह इसी बात पर जोर देते रहे कि उनके हटने से कांग्रेस का कुछ नुकसान नहीं होगा। साथ ही, पूछे जाने पर सलाह-मशविरा देते रहने का आश्वासन भी देते जाते थे और कांग्रेस के विधान में संशोधन की बात भी करते जाते थे। अन्त में, जब यह स्पष्ट हो गया कि वह अपने निश्चय से किसी तरह डिगनेवाले नही हैं तब और चर्चा चलने लगी।

विधान के संशोधन में भी काफी बहस रही। एक सब-कमिटी बनाई गई, जिसने संशोधन का मसविदा तैयार किया। उसमें विशेष हाथ गांधीजी

का और नई बनी हुई सोशलिस्ट पार्टी का ही रहा। एक और विवादग्रस्त विषय था, जिसका सम्बन्ध प्रस्तावित भारतीय विधान के साथ था। ऊपर कहा जा चुका है कि गोलमेज-कान्फ्रेन्स के समय प्रधान मंत्री मैकडोनल्ड ने साम्प्रदायिक निर्णय दिया था, जिसके एक अंश के विरुद्ध गांधीजी को अनशन करना पड़ा था और जो हरिजनों के साथ पूना में समझौता करके बदलवाया गया था। उस निर्णय में और भी ऐसी बातें थीं, जिनको कोई भी राष्ट्रीय भावना का आदमी स्वीकार नहीं कर सकता था। पर उसमें एक शर्त लगा दी गई थी। वह यह थी कि यदि वे सभी लोग, जिनका सम्बन्ध उससे था अथवा जिनके स्वत्व पर उसका असर पड़ता था, आपस में मिलकर समझौता कर लें और इस समझौते के द्वारा उसे बदलना चाहें तो वह बदल दिया जायगा। इसी शर्त के अनुसार उसका वह हिस्सा, जिसका सम्बन्ध हरिजनों के साथ था—उनके साथ समझौता करके, बदलवा दिया गया था। कांग्रेस की वर्किंग कमिटी ने उस निर्णय को अन्यायपूर्ण मानते हुए भी निश्चय किया था कि वह उसे न तो मंजूर करती है और न उसका विरोध ही करती है।

वर्किंग कमिटी के इस निर्णय का अर्थ यह नहीं था कि वह उसका समर्थन करती है अथवा उसे न्याय-संगत समझती है। उसने उसकी निन्दा कड़े शब्दों में की थी। इसलिए कोई यह नहीं कह सकता था कि वह किसी तरह उसका समर्थन करती है। पर वह उसका विरोध नहीं करना चाहती थी; क्योंकि विरोध का अर्थ होता था दूसरों के साथ खुल्लमखुल्ला झगड़ा, और यह विरोध अनावश्यक भी था। कमिटी ने तो सारे विधान को ही नामंजूर कर दिया था। इसलिए विधान का यह अंश भी सबके साथ ही नामंजूर हो गया था। अलग से नामंजूर करने का अर्थ यह भी होता था कि हम परोक्ष रूप में और अंशों को मान लेते हैं, तभी तो एक अंश को विशेष करके नामंजूर करते हैं। साथ ही, विधान का यही अंश ऐसा था, जिसको बदलने का अधिकार हमारे हाथ में था; दूसरे किसी अंश के बदलने की शक्ति हमको विधान द्वारा नहीं मिली थी। इन्हीं विचारों से प्रेरित हो वर्किंग कमिटी ने अपना निश्चय प्रकट किया था, जिसका साराश यह था कि कमिटी सारे विधान को नामंजूर करती है और सारे विधान के साथ-साथ यह अंश भी गिर जायगा। और, यद्यपि वह इसे राष्ट्रीयता की दृष्टि से घातक समझती है तथापि उपर्युक्त कारणों से वह इसे न स्वीकार करती है और न इसका विरोध करती है। इस विषय पर प० मदनमोहन मालवीयजी और श्री अणे के साथ बहुत बातें हुई थीं। पर न वे गांधीजी को समझा सके और न गांधीजी उनको समझा सके! कांग्रेस की विषय-निर्वा-

चिनी में इस विषय पर भी काफी बहस रही। पर यह स्पष्ट था कि वर्किंग कमिटी की राय से ही कांग्रेस सहमत है। कई दिनों तक गरमागरम बहस के बाद प्रस्ताव तैयार हुए और कांग्रेस के आम जल्से का समय आ गया।

मैं यद्यपि बहुत कमजोर हो गया था तथापि उस समय न मालूम कहां से शक्ति आ गई और सब काम ठीक से अंजाम देता गया। सोशलिस्ट-दल के लोग संगठित रूप से बहस में भाग ले रहे थे। उनमें अच्छे विद्वान् और बोलनेवाले थे। वे सभी बातों में अपने स्वतन्त्र विचार रखते थे। मेरे सामने अक्सर नियम के प्रश्न आते रहे। मैं कभी किसी असेम्बली या कौन्सिल का मेम्बर नही रहा था। कांग्रेस की नियमावली में ऐसे विषयों पर नियम नही है। वहा जब इस प्रकार के प्रश्न उठते है तो उनका निपटारा अंगरेजी पार्लामेण्ट और सभा-सोसाइटियो के नियमानुसार किया जाता है। यहां की असेम्बली और कौन्सिल के नियम भी उसी आधार पर बने है। देश की सभा-समितियों के नियमों के भी वे ही आधार है। उन नियमों से मेरा कोई विशेष परिचय नही था। इस मौके पर बहुतेरे प्रश्न उठाये गए, जिनका निर्णय मुझे वही तत्काल देना पड़ा। मैने अपनी बुद्धि से, जो मुझे ठीक मालूम हुआ, निर्णय दिया। पीछे मुझे यह जानकर संतोष हुआ कि मेरे निर्णय नियमानुकूल होते गये।

मैने कांग्रेस के अधिवेशन मे अपना पूरा भाषण नही पढा। गांधीजी की राय से हमने सोच लिया था कि कांग्रेस का अधिवेशन निर्धारित समय के भीतर ही समाप्त करना चाहिए। स्पष्ट था कि जिस तरह के विवाद-ग्रस्त प्रश्न आनेवाले थे उनका निपटारा, यदि समय न बचाया जाता तो, नही हो सकता था, मैंने अनुभव से यह भी देखा है कि सभापति के छपे भाषण का वहां पढ़ा जाना लोग बहुत पसन्द भी नही करते—उसे ध्यान देकर सुनते भी नही; क्योंकि छपी प्रति उनके हाथों में होती है और उसे वे अपने सुभीते से पढ़ लेते हैं। बेलगांव-कांग्रेस में गाधीजी ने अपने भाषण को अधिवेशन के पहले ही बंटवा दिया था और कह दिया था कि प्रतिनिधि-गण उसे पढ़कर अधिवेशन में आवें। मैंने भी, इन विचारो से, भाषण पढ़ने में कांग्रेस का समय नही लिया। कुछ अंश पढ़ दिया। उसके बाद मुख्य प्रस्ताव पर बहस छिड़ गई। वह भारतीय विधान-सम्बन्धी प्रस्ताव था। उसमें वर्किंग कमिटी के तत्सम्बन्धी निश्चय का समर्थन था। पं० मालवीय-जी ने उसके संशोधनार्थ प्रस्ताव दिया और बहुत जोरदार भाषण भी किया। दूसरे दिन भी उसपर बहुत जोरों से बहस चली।

अन्त में, जब उसपर राय लेने का समय आया, पं० मालवीयजी उसपर फिर कुछ बोलना चाहते थे। नियमानुसार उनको कुछ कहने का अधिकार

नहीं था; पर उन्होंने खाहिश जाहिर की। मेरे लिए बड़ी कठिन समस्या खड़ी हो गई। यदि उनके व्यक्तित्व के कारण मैं नियम-भंग करूं तो फिर दूसरे के लिए भी वैसा ही करना पड़ेगा। मैंने निश्चय कर लिया कि उनको मैं इसकी इजाजत नही दूगा। बहुत नम्रतापूर्वक मैंने उनको नियम का हवाला देकर अपनी मजबूरी जाहिर कर दी। उनको जो कुछ कहना था उसका सारांश कांग्रेस को स्वयं कह देने का वचन भी दिया। मैंने ये सब बाते कांग्रेस से भी कह दी। वहां कांग्रेस में जबरदस्त जोरदार लाउड स्पीकर लगे थे। वहां जो कुछ हो रहा था, महात्मा गांधी अपनी झोंपड़ी में बैठे-बैठे सुन रहे थे। उन्होने वह बात भी सुनी। उन्होंने दूसरे दिन मुझसे हँसते-हँसते कहा भी कि तुमने मालवीयजी को बोलने से रोक दिया! मुझे इस बात का दु.ख हुआ कि ऐसे पूज्य व्यक्ति की बात मैं नहीं मान सका; पर वहां मै राजेन्द्र नही था, कांग्रेस के सभापति की हैसियत से बैठा था, और दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है। सम्मति लेने पर बहुत बड़ा बहुमत वर्किंग कमिटी के पक्ष मे निकला। पर कुछ लोग, जो उसके विरोधी थे, आपे से बाहर हो गये। दो-चार आदमियों ने जूते दिखलाये, जो तेज रोशनी में मुझे साफ दीख पड़े!

कांग्रेस के दूसरे प्रस्तावों पर बहुत बहस नही हुई। कांग्रेस-नियमावलीवाला प्रस्ताव तो एक प्रकार से सबकी राय से बिना बहुत बहस के ही मंजूर हो गया, क्योंकि उसपर बाहर ही बहुत बहस हो चुकी थी। यह प्रस्ताव बड़े महत्व का था। अबतक कांग्रेस के प्रतिनिधियों की संख्या प्रदेश की आबादी के हिसाब से होती थी। इसका फल यह होता था कि चाहे किसी प्रदेश में कांग्रेस का काम कुछ होता हो या न होता हो, चाहे वहां कांग्रेस-कमिटियां काम करती हो या न करती हों, पर वहां की आबादी के अनुसार प्रतिनिधियों और अखिल भारतीय कमिटी के सदस्यो की सख्या पक्की रहती थी। दूसरे प्रान्त, अधिक काम करके भी, अपनी संख्या से अधिक सदस्य नहीं भेज सकते थे। बम्बई के विधान में प्रतिनिधियों की संख्या कांग्रेस-सदस्यों की संख्या के अनुपात में बना दी गई। यह नियम बन गया कि प्रत्येक प्रतिनिधि के लिए कम-से-कम नियमित संख्या में सदस्य अवश्य होने चाहिएं। जहां उतने सदस्य न हों वहां प्रतिनिधि चुनने का अधिकार न रहे। बम्बई में पांच सौ सदस्यों पर एक प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया गया। यह संख्या पीछे बदल दी गई है। साथ ही, यह भी खयाल था कि सभी प्रान्तों के प्रतिनिधत्व की संख्या वहां की आबादी के हिसाब से भी रहे। इससे यह हुआ कि यदि सारे सूबे में जितने प्रतिनिधि आबादी के हिसाब से होते थे उतने पांच सौ सदस्य नहीं हुए तो सूबे के प्रतिनिधियों की संख्या कम हो जायगी।

यदि प्रत्येक प्रतिनिधि पर पांचसौ से अधिक सदस्य हो गये तो प्रत्येक प्रतिनिधि के चुनाव के लिए पांचसौ से अधिक सदस्यों के क्षेत्र बनाये जायंगे। इस तरह सदस्य बनाने पर जोर डाला गया। साथ ही, आबादी का भी खयाल रक्खा गया।

दूसरा महत्व का प्रश्न यह था कि अल्पसंख्यक मतवालों का प्रतिनिधित्व कैसे हो। यदि सीधे तौर पर सम्मति ली जाती है तो उनका एक आदमी भी नही चुना जा सकता, पर उनके मतवाले सूबों को यदि इकट्ठा किया जाय तो कुछ आदमी उनके चले जाते हैं। सोशलिस्ट लोगों ने, जिनकी संख्या कम थी, परिवर्तनीय सम्मति द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional representation by single transferable vote) पर जोर डाला। कांग्रेस के प्रतिनिधियों के चुनाव के लिए तो यह सम्भव नहीं था, पर अखिल भारतीय कमिटी के सदस्यो के चुनाव के लिए यह विधान मंजूर कर लिया गया। विधान में जो परिवर्तन किय गए, उनको कार्यान्वित करने पर उनमें कई त्रुटियां जाहिर हुई। उसके बाद से कई बार परिवर्तन करना पड़ा है, पर नियमों का जो आधार वहां बना, वह अभी तक अपने स्थान पर है। हां, आनुपातिक प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध मे बहुत मतभेद रहा है; पर अब बहुत लोग इस बात को मानने लगे हैं कि बहुत थोडे लोगों के हाथ में चुनाव का अधिकार रहने से यह बहुत बुरा परिणाम भी पैदा करता है। कांग्रेस के नियमानुसार आठ प्रतिनिधि पर अखिल भारतीय कमिटी का एक मेम्बर होता है—अर्थात् यदि आठ आदमी मिल जायं तो एक आदमी को चुन सकते हैं। चुनावो में देखा गया है कि आठ आदमियों को किसी ऐसे व्यक्ति के लिए जुटा लेना कठिन नही है, जो अपनेको चुनवाने पर उतारू हो जाय। जो इस प्रकार अपनेको चुनवाने के काम में दिलचस्पी नहीं लेता, अथवा जिसके मित्र उसे चुनवा देने में दिलचस्पी नही लेते, वह चाहे कितना भी अच्छा काम करनेवाला क्यों न हो, नही चुना जाता। इससे छोटे-छोटे दलों की वृद्धि होती है, अच्छे-अच्छे लोग नही चुने जाते और दलबन्दी करनेवाले चुन लिये जाते हैं। इसलिए, अब बहुतेरे लोग इतने दिनों के अनुभव के बाद, समझ गये हैं कि यह हमारे काम की चीज नहीं है। पर यह अभी तक नियम में है। वहां बम्बई-अधिवेशन के समय यह समझा जाता था कि इसके विरोध का एक ही अर्थ हो सकता है—वह है सोशलिस्टों का अखिल भारतीय कमिटी में घुसने न देने का इरादा। जो हो, वहां तो यह स्वीकृत हो गया।

कांग्रेस का अधिवेशन, निर्धारित समय पर, रात बारह बजे के करीब, तीसरे दिन समाप्त हो गया। मैंने काम पूरा कर दिया। लोग बड़े उत्साह

के साथ अपने-अपने स्थान को गये। जाते ही केन्द्रीय असेम्बली के मेम्बरों के चुनाव लड़ने थे। कांग्रेस के उत्साह से वहीं स्पष्ट हो गया कि कांग्रेस की जीत इन चुनावों में होगी।

मैं कांग्रेस का काम समाप्त करके अपने निवास-स्थान पर गया और रात दो बजे से दमा का दौरा शुरू हो गया। दूसरे दिन कोई दूसरा विशेष काम नहीं था, वर्किंग कमिटी बना लेना था। यह भार मेरे ही ऊपर था। मैंने कुछ तो वहीं निश्चय कर लिया और कुछ पीछे। नाम अखबारों में दे दिये गए। सबसे महत्व का प्रश्न मंत्री का चुनाव था। मैं ऐसे आदमी को चाहता था जो अपना पूरा समय इसी काम मे दे सके और जिसका मत मेरे साथ सभी बातों में मिलता हो। मैंने बहुत सोचने के बाद आचार्य कृपालानी को नियुक्त किया।

बंगाल से मै एक आदमी को वर्किंग कमिटी में लेना चाहता था। पर कुछ ऐसा संयोग पड़ा कि मै किसीको न ले सका। इससे वहां के मित्र मुझसे बहुत रुष्ट हो गये। मुझे बहुत गालियां भी खानी पड़ीं। मेरा बंगाल के साथ पुराना परिचय और घनिष्ट सम्बन्ध था। मैं बंगाल के महत्व को भली भांति जानता हूं। बंगालियो मे मेरे कई घनिष्ट मित्र भी है। पर वहां कुछ ऐसा संयोग हुआ कि बात नहीं बनी। इसका मुझे पूरा अफसोस रहा। वहां दो दल थे और किसी एक को वर्किंग कमिटी मे लेना दूसरे को दुश्मन बनाना था। दो के लिए जगह थी नहीं। यदि होती भी तो वहां का झगड़ा वर्किंग कमिटी में आ जाने का भय था। इसलिए अपने ऊपर बदनामी लेकर भी मैंने वर्किंग कमिटी को इस झगड़े से सुरक्षित रखा।

मैने बम्बई में ही सोच लिया था कि जब गांधीजी के कथनानुसार हमने उनको कांग्रेस के प्रतिदिन के काम से मुक्त कर दिया है और महत्व के प्रश्नों पर ही उनसे राय लेना ठीक है, तो मैं उनको अधिक कष्ट नहीं दूंगा और प्रत्येक वर्किंग कमिटी तथा अखिल भारतीय कमिटी में उनको आने का कष्ट नही दूंगा। हां, जो महत्व की बातें होंगी उनके सम्बन्ध में उनसे मिलकर बात कर लिया करूंगा। मैंने अपने सभापतित्व-काल में इसी नीति से काम लिया भी; गांधीजी को कमिटियो मे आने का कष्ट नहीं दिया। मैं वर्धा बराबर जाता-आता रहा और वहीं उनसे राय ले लिया करता।

: १११ :

केन्द्रीय असेम्बली का चुनाव-संघर्ष

बम्बई से मैं पटने आया। पहला काम जो कांग्रेस को करना था, वह केन्द्रीय असेम्बली के लिए अपने उम्मीदवारों को खडा करना और उनको चुनवाना। सरकार समझती थी कि १९३०-१९३४ के सत्याग्रह के कारण उसने कांग्रेस को इतना दबा दिया है कि वह अब फिर उठ न सकेगी। लार्ड विलिंगडन ने १९३२ के आरम्भ में, जब गोलमेज-परिषद से लौटने के बाद फिर सत्याग्रह पर गाधीजी और वर्किंग कमिटी को मजबूर किया गया था, कहा था कि दो-चार हफ्तों मे आन्दोलन दबा दिया जायगा। उन्होने इसका पूरा प्रयत्न भी किया था। पर दो-चार हफ्तों के बदले दो बरसों तक आन्दोलन चलता रहा और शुरू में तो बहुत जोरों से चला था। तो भी अभी कोई ऐसा मौका नही आया था जहा कांग्रेस की लोकप्रियता का पूरा परिचय मिल जाता। भूकम्प की सहायता और बम्बई के अधिवेशन से कुछ-कुछ पता चला था; पर अब भी सब लोगों को और विशेषकर गवर्नमेंट के लोगों को इस बात का विश्वास नही था कि कांग्रेस सारे देश में लोकप्रिय संस्था है। इस चुनाव मे एक प्रकार से इस बात की जांच होनेवाली थी कि कांग्रेस कहांतक जनता का प्रतिनिधित्व करती है। हम भी इस चुनाव को इसी कारण बहुत महत्व देते थे।

मद्रास-प्रान्त में १९२० से ही वहां की जस्टिस-पार्टी की मिनिस्ट्री चल रही थी। उसने अपनी शक्ति बढ़ाने और अपनेको सुसंगठित करने में कोई बात उठा नहीं रखी थी। उसमें योग्य लोगो की भी कमी नही थी। उस दल में ब्राह्मणेतर प्रायः सभी जाति के लोग शरीक होते थे। इसलिए इसमें भी कोई शक नहीं था कि साधारण जनता के ब्राह्मणेतर सभी लोगों की तरफ से वह बोला करती थी। उसने एक प्रकार से ब्राह्मण-अब्राह्मण का इतना झगड़ा खड़ा कर दिया था—लोगों मे इतना प्रचार किया था कि मालूम होता था, वहां कांग्रेस का अर्थ ब्राह्मण समझा जाता है, इसलिए वह कांग्रेस को ही अपनी परम विरोधी संस्था मानती थी। सरकार का भी उसपर पूरा भरोसा था, क्योंकि वहां के जमींदार और दूसरे धनी वर्ग तथा साधारण जनता का बहुत बड़ा बहुसंख्यक अंश उन्हीं जातियों का था जो उसमें शरीक समझी जाती थीं और जो ब्राह्मणेतर थीं।

चुनाव तो सारे हिन्दुस्तान में होनेवाला था। सभी सूबों में एक दिन चुनाव के लिए नही रखा गया था। यह जरूर सोचा गया था कि एक जगह के चुनाव का असर दूसरी जगहो पर जरूर पड़ेगा। ऐसा प्रबन्ध तो सम्भव नही था कि एक ही सूबे में, अलग-अलग जिलों में चुनावों में समय का इतना अन्तर हो कि एक का नतीजा मालूम होने पर दूसरी जगह में चुनाव हो। पर सारे देश के लिए यह सम्भव था और ऐसा ही इन्तजाम अधिकारियो ने किया भी। चूकि वे मद्रास पर सबसे अधिक भरोसा रखते थे, उन्होंने सबसे पहले मद्रास-प्रान्त मे चुनाव रखा, उसके बाद ही और प्रान्तों में। चुनाव मे सभी जगहो में काग्रेस ने अपने उम्मीदवार खड़े किये और सभी जगहो मे विरोधी लोग भी खडे हुए। वे ऐसे ही लोग थे, जिनकी या तो सरकार के साथ अच्छी बनती थी अथवा जो किसी विशेष दल की ओर से खड़े हुए थे। पर जस्टिस-पार्टी के सिवा दूसरी कोई ऐसी जबरदस्त संस्था नही थी जिसकी ओर से काग्रेस का विरोध करने के लिए उम्मीदवार खड़े किये गए हों।

मैं तो बम्बई से बीमार ही लौटा और हस्ब-मामूल दिसम्बर तक बीमार ही पड़ा रहा। इसी बीच सारा चुनाव हो गया। मैं उसमें कोई विशेष भाग न ले सका। पर दूसरो ने, विशेषकर सरदार वल्लभभाई पटेल ने, बहुत सिरतोड़ परिश्रम किया। वह बिहार में भी दौरे पर आये। दूसरे कई सूबों मे भी गये। मै बिहार में ही दो-चार जगहों में जा सका, ज्यादा कुछ नही कर सका। मद्रास में चुनाव का नतीजा सबसे पहले मालूम होने लगा; क्योकि वही सबसे पहले चुनाव हुआ। वह नतीजा सरकारी हलकों में बहुत ही अचम्भा उत्पन्न करनेवाला हुआ। वहा केवल इतना ही न हुआ कि सभी जगहों में कांग्रेसी चुने गये, बल्कि सभी कांग्रेसी बहुत बड़े बहुमत से चुने गये। जो ऐसी जगहे थी, जिनके सम्बन्ध में जस्टिस-पार्टी-वालों को कोई सन्देह नहीं हो सकता था और जिनको जीतना हम भी मुश्किल समझते थे, वहा भी काग्रेस की भारी जीत हुई। उदाहरणार्थ, दो जगहें ऐसी मानी जाती थी। एक जगह थी वह जिसमें श्री सत्यमूर्त्ति चुने गये। इनके विरोधी एक अत्यन्त योग्य और जस्टिस-पार्टी के नामी मुख्य आदमी सर रामस्वामी मुडेलियर थे। दूसरी जगह वहां के व्यापारियों के प्रतिनिधि की थी। वहां से कांग्रेस के विरोध में खड़े हुए थे श्री (अब सर) षण्मुखम् चेट्टी और कांग्रेस की ओर से श्री वेंकटाचलम् चेट्टी। श्री षण्मुखम् चेट्टी पहले पंडित मोतीलालजी के साथ कांग्रेस की ओर से चुने जाकर केन्द्रीय असेम्बली के मेम्बर रह चुके थे और कांग्रेस-सदस्यों में भी उनकी योग्यता को लोग मानते थे। उन्होंने काम भी अच्छा किया

था। पर सत्याग्रह के समय वह कांग्रेस से अलग हो गये थे। अब इस चुनाव में उन्होंने कांग्रेस का विरोध किया। वह चेट्टी जाति के थे। चेट्टी लोग ही मद्रास प्रान्त में व्यापार का काम अधिक करते हैं। वह अब्राह्मण भी थे। जस्टिस-पार्टी ने उनको अपनी ओर से उम्मीदवार बना लिया था। फिर क्या था! सफलता के सभी कारण उनके साथ मौजूद थे। इसके अलावा, कहा जाता था कि लार्ड विलिंगडन उनको बहुत मानते थे। पर उन्होंने भी बड़ी गहरी हार खाई।

जैसे ही मद्रास के नतीजे अखबारों में निकलने लगे, विशेषकर कांग्रेस के पक्ष के मतों की संख्या, देश में उत्साह बढता गया। सभी सूबों में कांग्रेस की बडी जीत हुई। बिहार में भी वैसी ही हुई। यहां एक बड़े मार्के की बात यह हुई कि एक बहुत ही बड़े सेठ से मुकाबला हो गया। वह थे सेठ रामकृष्ण डालमिया। इनकी सहानुभूति कांग्रेस के साथ रहा करती थी। पहले जब-तब पैसे से सहायता भी किया करते थे। इस चुनाव में इन्होंने खड़ा होने का निश्चय कर लिया। पीछे मुझसे कहा कि कांग्रेसी उम्मीदवार श्री अनुग्रहनारायणसिंह हटा लिये जायं। यह सम्भव नहीं था, क्योंकि कांग्रेस की नीति थी कि यथा-साध्य सभी जगहों पर उम्मीदवार खड़े किये जायं। श्री डालमियां कांग्रेस के अनुशासन के अन्दर आना भी नहीं चाहते थे। पर उनके साथ हम सबकी व्यक्तिगत सद्भावना बनी रही। उन्होंने बहुत खर्च किया, पर वह भी करारे ढग से हारे।

एक तरफ तो इस तरह की सफलता हुई, जिससे सभी लोगों को बहुत आनन्द हुआ, दूसरी तरफ एक ऐसी बात भी इस चुनाव में हुई जो बहुत दुःखद थी। पहले कहा जा चुका है कि बम्बई-कांग्रेस के पूर्व से ही प्रधान मन्त्री मैकडोनल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय के कारण कांग्रेसी लोगों में मतभेद हो गया था और बम्बई-कांग्रेस में पंडित मालवीयजी ने उस प्रस्ताव का विरोध किया था, जिसमें कांग्रेस का नव-विधान-सम्बन्धी मत प्रकट किया गया था—उनका संशोधन-प्रस्ताव बहुत बड़े बहुमत से नामंजूर किया गया था। उस विचार के लोगों ने अपनी ओर से उम्मीदवार खड़े किये। बिहार में भी श्री जगतनारायणलाल खड़े हुए। बंगाल में तो प्रायः सभी जगहो के लिए उम्मीदवार खड़े किये गए। और सूबों में भी कुछ लोग खड़े हुए। ये लोग यों तो और सब बातों में कांग्रेस से सहमत थे, पर एक इसी विषय पर ये कांग्रेस से अलग थे। कांग्रेस ने श्री अणे के विरुद्ध कोई उम्मीदवार नहीं खडा किया और वह निर्विरोध चुने गये; पर और जगहों में दो प्रकार के कांग्रेसियों में मुठभेड़ हो गई। बिहार में तो कांग्रेस से कोई नहीं जीता, पर बंगाल में प्रायः सभी जगहों में कांग्रेस को हार खानी पड़ी और उस दल

के लोगों की जीत हुई। इसका विशेष कारण यह था कि श्री मैकडोनल्ड के निर्णय से बंगाल के सवर्ण हिन्दुओं की सबसे अधिक हानि हुई थी। वहां मुसलमानों की संख्या प्रायः पचपन-छप्पन और हिन्दुओं की चौवालीस प्रतिशत के लगभग होती है। अल्प-संख्यक होने के कारण हिन्दुओं को वहां कुछ सुविधा मिलनी चाहिए थी। पर उस निर्णय के अनुसार दस प्रतिशत स्थान यूरोपियनों को मिल गये और बाकी नब्बे के बंटवारे में ५१ मुसलमानों को और ३९ प्रतिशत हिन्दुओं को मिले, अर्थात् अपनी संख्या के अनुपात से भी उनको कम जगहें धारा-सभाओं में मिली। इसके बाद जब अछूतों से, महात्माजी के उपवास के बाद पूना में, समझौता हुआ तो हरिजनों के लिए सुरक्षित स्थानों की संख्या भी बहुत बढ़ गई, जो हिन्दुओं के स्थानों में से ही हो सकती थी। इसलिए वहां सवर्ण हिन्दुओं में बहुत असन्तोष था। वे चाहते थे कि इस निर्णय का जबरदस्त विरोध किया जाय। इसमें कांग्रेसी और गैरकांग्रेसी सभी हिन्दू शरीक थे। इसलिए वहां के चुनाव में कांग्रेस की हार हुई और इस नये दल की जीत हुई, जिसमें कांग्रेसी लोग ही चुने गये, जो और बातों में कांग्रेस का ही साथ देनेवाले थे। नवम्बर के अन्त तक सारे देश में चुनाव हो गया और कांग्रेस की बहुत बड़ी जीत हुई। कांग्रेस ने अब नीति भी निर्धारित कर दी थी। उसीके अनुसार केन्द्रीय असेम्बली में काम होनेवाला था।

: ११२ :

जिन्ना से समझौते की चर्चा : देश का दौरा

यद्यपि चुनाव में कांग्रेस की जीत हुई थी और दूसरे प्रकार से भी मालूम पड़ता था कि कांग्रेस जीवित है. तथापि हम यह आवश्यक समझते थे कि उसका संगठन मजबूत बना दिया जाय, क्योंकि चार बरसों की लड़ाई में, जब कांग्रेस-कमिटियां गैरकानूनी संस्था करार दे दी गई थीं, कांग्रेस का संगठन तितर-बितर हो गया था। उसको एक बार पुनर्जीवित और सुसंगठित करना आवश्यक था। इसलिए एक बार सभी जगहों का दौरा करना आवश्यक जान पड़ा। प्रान्तीय कमिटियों की ओर से इस बात का तकाजा भी हुआ कि मैं सभापति की हैसियत से दौरा करूं। जाड़ों में तो मेरे लिए यह सम्भव नही था, पर मैने सोचा कि जाडा कम होते ही मैं बाजाब्ता सिलसिलेवार दौरा शुरू करूगा—इस बीच में, अपने स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए, अगर हो सका तो जहां-तहां जाऊंगा।

दिल्ली में असेम्बली का काम जनवरी में शुरू होनेवाला था। वहीं वर्किंग कमिटी की बैठक भी की गई। वहां महात्माजी भी इत्तफाक से आ गये थ। वहां के लोगों की इच्छा थी कि कांग्रेस के सभापति का दौरा वही से शुरू किया जाय। इसलिए जब मैं वहां पहुंचा तो वहा के लोगो ने भी बड़ी शान से स्वागत किया। बम्बई ने स्वागत का एक खासा नमूना कायम कर दिया था। दिल्ली में भी उसी प्रकार का स्वागत बहुत बडे जलूस में किया गया। शहर के लोगों ने बहुत उत्साह दिखलाया। मैं अभी तक कमजोर ही था, इसलिए स्वागत की भीड़ बर्दाश्त करना कुछ आसान नही था; पर मैंने उसे किसी तरह संभाल लिया।

मैं जलूस के कुछ बाद ही महात्माजी से मिला। उनको सब खबर मिल चुकी थी। उन्होंने एक मार्के की बात कही, जिसका जिक्र शायद मैंने स्वतंत्र रूप से ऊपर किया है। उन्होंने कहा कि अन्त में हमको मजबूरन सत्याग्रह बन्द करना पड़ा था, क्योंकि जनता का उसमें उत्साह नहीं रह गया था और लोग कुछ दब-से गये थे। पर कांग्रेस के प्रति उनका प्रेम कम नही हुआ था, लोग चाहते थे कि कोई मौका मिले तो उसे दिखलावें; इसीलिए इस प्रकार के स्वागत में इतना उत्साह देखने में आता है, जैसा तुमने बम्बई में देखा

अथवा दिल्ली में देख रहे हो—ऐसा ही स्वागत जहां जाओगे लोग करेंगे।

मैं इस प्रकार के भीड़-भड़क्के से बहुत घबराता हूं। विशेषकर स्वागत और जलूस से तो बहुत डरता हूं। पर मैंने इसे उस पद की खातिर बर्दाश्त करना मजूर कर लिया। महात्माजी ने मेरी इस राय को पसन्द किया कि मैं सभी सूबो में दौरा करूं। मैंने यह कांग्रेस के संगठन के विचार से जरूरी समझा। मैंने देखा कि जहां १९३२-३३ में बहुत जगहों में लोग कांग्रेसी कार्यकर्ताओं को अपने यहां ठहराने से भी हिचकते थे वहां १९३५ मे कांग्रेस के अध्यक्ष का इतने जोर-शोर से स्वागत करने पर तैयार थे। सभी जगहों से इस दौरे के सम्बन्ध में मेरे साथ पत्र-व्यवहार होने लगा। तिथियां सोची जाने लगी। इस यात्रा को शुरू करने के पहले अपने साथ निजी काम के लिए श्री चक्रधरशरण को रख लिया। वह मुजफ्फरपुर-जिले के बेलसंड थाने के अन्तर्गत परतापुर गांव के रहनेवाले हैं। १९२० से ही वह कांग्रेस का काम करते आये हैं। भूकम्प के समय मुजफ्फरपुर मे उन्होंने अच्छा काम किया था। रिलीफ में भी बड़े उत्साह और ईमानदारी से काम किया था।

पर इस यात्रा को शुरू करने के पहले एक दूसरा प्रश्न था, जिसका हल आवश्यक था। श्री मैकडोनल्ड ने साम्प्रदायिक निर्णय देकर मुसलमानों को बहुत खुश कर दिया था! पर हिन्दू उनसे बहुत क्षुब्ध थे। सभी समझदार लोग मानते थे कि यदि कोई समझौता हो जाय तो वह सबसे अच्छा होगा। इसके लिए डाक्टर अंसारी बहुत ही उत्सुक थे। उन्होंने श्री जिन्ना से लिखा-पढ़ी शुरू की थी। दिल्ली में वर्किंग कमिटी के सामने उन्होंने यह बात पेश की। वर्किंग कमिटी ने कहा कि यदि कोई रास्ता निकल सके तो उसे जरूर ढूढ़ निकालना चाहिए। इसी बीच श्री जिन्ना भी दिल्ली पहुच गये। एक दिन डाक्टर अन्सारी के मकान पर वर्किंग कमिटी के सदस्यो से उनकी मुलाकात और कुछ बातचीत हुई। पर वह बातचीत ऐसी नहीं थी कि इतने लोग एक साथ ठीक तरह से कर सके और वह इतनी जल्द तय हो जाय। अन्त में श्री जिन्ना की राय हुई कि वह और कांग्रेस के अध्यक्ष ही बातें करें। अगर कुछ रास्ता निकल आवे तो अपनी-अपनी संस्था से उसकी मंजूरी करा लेवे। डाक्टर अंसारी के घर पर पहले दिन जो बातें जिस ढंग से हुईं उनसे और उस ढंग से मुझे कुछ विशेष आशा नही मालूम हुई, तो भी यह बात ऐसी थी कि इसमें अपनी ओर से किसी तरह की कोताही नहीं की जा सकती थी, इसलिए मैं इसमें दिलोजान से पड़ गया। मुझे इस बात का शक था कि मैं इस तरह के काम के लिए कहांतक योग्य हूं। पर मुझे डाक्टर अंसारी और सरदार वल्लभभाई पटेल की पूरी मदद थी। महात्माजी का आशीर्वाद भी था। इससे मैं समझता था कि कोई भूल न होने पावेगी।

बातचीत बहुत लम्बी चली। मुझे कई हफ्तों तक दिल्ली में रह जाना पड़ा। श्री जिन्ना और मैंने बड़ी स्पष्टता और सफाई से बातें कीं। जहांतक मैं समझ सका, हम दोनों का एक-दूसरे के प्रति भाव भी अच्छा ही रहा। मैं बातचीत के बाद जो कुछ बातें हुई रहतीं, उनका खुलासा उसी दिन लिख लिया करता। उस समय के लिए हुए नोट आज भी कहीं मौजूद मिलेंगे। मंत्री श्री कृपालानी भी प्रायः बराबर दिल्ली में ही रहे। उनसे तथा डाक्टर अंसारी से सभी बातें मैं बता दिया करता। श्रीमती सरोजिनी नायडू भी बहुत करके दिल्ली में रहीं। उनको भी सब बातें मालूम हो जातीं। महात्माजी तथा सरदार को भी मैं पत्रों द्वारा सब बातों से आगाह रखता। सब बातों को यहां विस्तार से देना अनावश्यक है।

अन्त में बात खत्म करनी पड़ी। समझौता नहीं हो सका। इसका मुझे बहुत अफसोस रहा; क्योंकि मैं समझता था कि हम जिन शर्तों पर समझौता करना चाहते थे और जिनपर हमने श्री जिन्ना को राजी कर लिया था, वे शर्तें देश के लिए हितकर होतीं। इससे भी अधिक अफसोस इसलिए हुआ कि जिस कारण समझौता न हो सका वह ऐसी बात थी, जिसका कोई विशेष महत्व नहीं था—उसको न मानना अथवा उसपर जिद्द करना, मेरे खयाल से, दोनों ही बेकार थे।

मैंने बातचीत शुरू करने के पहले ही यह साफ कर लिया था कि मैं केवल कांग्रेस की ओर से बातें कर रहा हूं; मुझे किसी दूसरे दल की ओर से बातें करने का अधिकार भी नहीं है और मैं दूसरों की जवाबदेही ले भी नहीं सकता—हां, हम जो कुछ तय करेंगे वह कांग्रेस से हम मंजूर करा लेंगे। उसी तरह श्री जिन्ना से भी हम यही आशा रखेंगे कि वह भी मुस्लिम लीग से समझौते को मंजूर करा देंगे। उन्होंने यह मंजूर किया था। वह देख चुके थे कि अभी हाल में ही हमने कांग्रेस में साम्प्रदायिक निर्णय के सम्बन्ध में अपना न्यारा रुख रक्खा था और उसके लिए हमको प० मालवीयजी-जैसे मान्य एवं धुरन्धर नेता का भी विरोध करना पड़ा था। वह यह भी देख चुके थे कि हम एक सूबा छोड़कर प्रायः सभी सूबों में चुनाव में भी जीते हैं। इसलिए वह इसपर राजी थे। मैंने यह भी साफ कह दिया था कि यदि वह मुसलमानों के लिए अलग चुनाव-क्षेत्रों को कायम रखने पर तुले होंगे तो बातचीत की कोई गुंजाइश नहीं है; क्योंकि हम अलग चुनाव को राष्ट्रीयता की दृष्टि से इतना घातक मानते हैं कि यदि वह रह जाय तो किसी समझौते से कोई काम न होगा। इसलिए बातचीत इसी आधार पर शुरू होगी कि वह अलग निर्वाचन-क्षेत्र छोड़ने पर तैयार हो जायं। इसपर उनकी ओर से यह प्रश्न हुआ कि यह चीज मुसलमानों को मिल चुकी है और वे इसे कुछ दिनों

से काम में लाते रहे हैं; इसके बदले में उनको जबतक कुछ निश्चित रूप से न मिले तबतक उनको मनाना और राजी करना संभव न होगा।

मैंने उनके लिए उतने ही सुरक्षित स्थान मान लिये, जितने उनको साम्प्रदायिक निर्णय से मिले थे। हम दोनों ने इन दो बातों को मान करके ही आगे बात चलाई थी। उनकी ओर से यह मांग हुई कि उन चुनाव-क्षेत्रों में जहां मुसलमान मत-दाताओं की संख्या उनकी आबादी के अनुपात से कम हो, मताधिकार के लिए आवश्यक गुण को कम करके भी मुसलमान मत-दाताओं की संख्या उनकी आबादी के अनुपात के अनुसार बना दी जाय। वह कहते थे कि मुसलमान गरीब हैं और बहुत जगहों में उनमें शिक्षा भी कम है, इसलिए जहां टैक्स देना ही मताधिकार की पहचान होगी वहां बहुतेरे मुसलमान छंट जायगे और मतदाताओं में उनकी संख्या आबादी के अनुपात से बहुत कम हो जायगी; इसलिए यह होना आवश्यक है। पंजाब के सम्बन्ध में जो कुछ भी आंकड़े मिल सके, मैंने उनका खूब अच्छी तरह से अध्ययन किया। मुझे जहांतक पता चला, उनमे मतदाताओ की सख्या आबादी के अनुपात से कई जगहों में कुछ कम होती थी, पर यह बहुत बड़ा फर्क नही था—शायद दो प्रतिशत या इससे भी कम हो का फर्क था। जब हिन्दू और मुसलमान दोनो का सयुक्त चुनाव-क्षेत्र होनेवाला था तो मुसलमानों की यह मांग कि मतदाताओ मे उनकी संख्या आबादी के अनुपात मे हो, मुझे न्याय-युक्त मालूम पड़ी और मैने इसे मान लिया—विशेषकर जब कांग्रेस ने यह निश्चय कर लिया था कि चुनाव का मताधिकार सभी बालिग लोगों को दिया जाय तो यह मांग मान लेने मे मुझे कोई आपत्ति नही मालूम हुई। पर जब सिखों और हिन्दुओं से मैने बातें की तो सिखो ने इसका जबरदस्त विरोध किया। पंजाब के हिन्दुओ से बातें होने पर उनमें से कतिपय मुख्य व्यक्तियों ने इसे मान लिया; पर बंगाल के हिन्दू इसे किसी तरह मानने पर तैयार न हुए। जो लोग बंगाल से केन्द्रीय असेम्बली में चुनकर गये थे, उनसे मेरी पहले बातें हुईं। उन्होने सब बाते सुन-समझकर समझौते को पसन्द किया, पर वे बंगाल के और लोगों की राय लेना आवश्यक समझते थे।

पंडित मालवीयजी से बातें हुईं तो उन्होने सिखों और बंगाल के हिन्दुओं का हवाला देकर कहा कि जबतक वे न मानेंगे; तबतक वह कुछ नहीं कर सकते। मैंने बंगाल के आंकड़े बहुत खोजे; पर मुझे सरकार की किसी रिपोर्ट अथवा पुस्तक से कुछ भी पता न चल सका कि वहां की वस्तु-स्थिति इस सम्बन्ध में क्या होगी। इसलिए, जिस तरह मैं पंजाब के हिन्दुओं के सामने आंकड़े रखकर बहस कर सका उस तरह बंगाल के हिन्दुओं के साथ नहीं। तब मैंने श्री जिन्ना से बहस की कि वह इस मांग पर न अड़ें; क्योंकि इसमें

कोई तत्त्व की बात नहीं है। जहां मुसलमानों का बहुत बड़ा बहुमत है वहां सैकड़े एक या दो की कमी से चुनाव के नतीजों पर कोई विशेष प्रभाव या फर्क नहीं पड़ेगा। पर वह इसपर राजी नहीं होते थे। कांग्रेस की ओर से मैं उसे मान लेने पर भी राजी था। पर उन्होंने इसपर जोर दिया कि पंडित मालवीयजी की अनुमति भी आवश्यक है; क्योकि समझौता अगर हुआ भी और पंडित मालवीयजी के नेतृत्व मे साम्प्रदायिक निर्णय के विरुद्ध आन्दोलन होता ही रहा तो मुसलमानों को इस समझौते से कोई लाभ न होगा।

उधर उन्हीं दिनों दिल्ली में साम्प्रदायिक-निर्णय-विरोधी एक सम्मेलन हुआ, जिसमें बगाल के कुछ लोग आये। उन्होंने इसका पूरा विरोध किया। मै पडित मालवीयजी को किसी तरह राजी न कर सका। अन्त में उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि जितनी जगहे मुसलमानों को मिली हैं, विशेषकर बंगाल और केन्द्र मे, उन्हें भी घटाना चाहिए और जबतक वे घटाई न जायंगी तबतक वह राजी नही हो सकते। उधर श्री जिन्ना भी इस बात पर तुल गये कि जबतक पडित मालवीयजी के हस्ताक्षर नही होगे, तबतक वह राजी नहीं होंगे। अपनी ओर से वह यह कहते थे कि मुसलमान नेताओं की मंजूरी वह दे सकेंगे। इस प्रकार, यद्यपि यह बातचीत कांग्रेस की ओर से मैंने शुरू की थी—और काग्रेस तथा मुस्लिम लीग के अध्यक्षों के बीच ही यह चली थी—तथापि अन्त मे यह इसलिए टूट गई कि श्री जिन्ना केवल कांग्रेस के साथ समझौते पर राजी नही हुए और हिन्दू-सभा की अनुमति जरूरी समझने लगे।

वह चाहते थे कि कांग्रेस, मुस्लिम लीग को, मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधि-संस्था मान ले और स्वयं हिन्दुओं की ओर से समझौता करने पर राजी हो जाय! कांग्रेस न उस समय केवल हिन्दुओं की सस्था थी और न आज है। वह हमेशा से राष्ट्रीय संस्था रही है, जिसमें सब जातियों और सब धर्मों के लोगों के लिए स्थान है और रहेगा। उसकी नीति भी वैसी ही राष्ट्रीय नीति है और रहेगी। उस दिन समझौता नही हुआ। यह दुःख की बात है, क्योंकि उसके बाद परिस्थिति बराबर बिगड़ती ही गई है, और आज तो वायुमंडल भी विषाक्त है।

जबतक यह बातचीत चलती रही, मैं दिल्ली में ही रहा। पर बीच-बीच में जहां-तहां एक-दो दिनों के लिए चला जाता। मैं इलाहाबाद और आगरा इन्हीं दिनों में हो आया। मार्च से बाजाब्ता सिलसिलेवार दौरा करने का निश्चय किया। सबसे पहले पंजाब जाने का निश्चय किया। मार्च में वहां गया। सबसे पहले मैं जालन्धर में उतारा गया। वहां से कुछ दूर

पर खादी का मुख्य केन्द्र आदमपुर में है। वहां गया और वहां का काम देखा। जालंधर से लाहौर गया। वहां से दूसरे स्थानों में जाने का कार्यक्रम बना था। लाहौर में मेरे रेल से उतरने पर हस्ब-मामूल बड़ा जलूस निकाला गया। कुछ दूर जलूस जाने के बाद ही बहुत जोरों से पानी बरसने लगा। मैं खूब भीग गया। पर जलूस समाप्त करके ही मुझे फुर्सत दी गई। जलूस समाप्त होते कुछ रात हो गई। मैं लोक-सेवक-समिति (Servants of People Society) के लाजपतराय-भवन में भोजन करने के लिए गया। भोजनोपरान्त डाक्टर सत्यपाल के घर पर ठहरने के लिए गया। पानी में भींगना और उसके बाद रात की सर्दी लग जाना मुझसे बर्दाश्त न हो सका। दूसरे दिन सवेरे ही खांसी-दमा शुरू हो गया। मैंने उम्मीद की कि मेरे स्वास्थ्य के लिए अच्छे दिन आ गये और वह व्यतिक्रम दो-एक दिनों में ठीक हो जायगा। पर वैसा न हो सका, मैं बीमार पड़ गया। नतीजा यह हुआ कि मुझे सारे कार्यक्रम को बदल देना पड़ा। लाहौर में मैं कई दिनों तक पड़ा रहा। पानी भी कुछ-न-कुछ कई दिनों तक बरसता रहा। मेरे अच्छा होते-होते वह सारा समय, जो मैंने पंजाब-भ्रमण के लिए दिया था समाप्त हो गया। पजाब का दौरा स्थगित करके मैं सीधे बिहार वापस आ गया।

यह दुःख की बात है कि पजाब-जैसे सूबे में कांग्रेसी लोगों में आपस का मतभेद बहुत है। यह सब उस समय भी बहुत जोर पर था। मुझे कुछ हद तक इसका शिकार भी बनना पड़ा था। यह बात विनोदपूर्ण है, इसलिए यहां कह देना बुरा न होगा। इसमे किसीपर दोष लगाने का अभिप्राय नही है। पाठकों के मनोविनोद और उन्हे यह जता देने के लिए कि आपस के मतभेद से आगन्तुक अतिथि को भी कही-कही असुविधा हो सकती है, यह लिख रहा हू।

पहले से निश्चित था कि हमको जालन्धर उतरना है। हम जिस गाड़ी से गये थे, वह सवेरे तीन-चार बजे के करीब वहां पहुंचती थी। जालन्धर में दो स्टेशन है—एक सिटी और दूसरा छावनीवाला। मुझे मालूम नहीं था कि किस स्टेशन पर उतरना है; पर मैं समझता था कि जहां-कहीं उतरना होगा, कुछ लोग आवेगे ही और उतार लेगे। इसलिए मैं इस विषय में निश्चिन्त था। जो स्टेशन पहले मिला, वहां कुछ लोग आये और उन्होंने मुझे उतरने को कहा। मेरे साथ कृपालानीजी भी थे। हम लोग वहां उतर गये। वे लोग हम लोगों को स्टेशन के मुसाफिरखाने में ले गये और वहां मुंह-हाथ धोकर तैयार हो जाने को कहा। हमने समझा कि लोगों का विचार है कि सवेरा हो जाने पर वहां से ले जायंगे। पर हमको आश्चर्य हुआ कि जिन सज्जन के यहां हम ठहरना चाहते थे और जिनको हमने तार

दे दिया था वह (रायजादा हंसराज) स्टेशन पर नहीं आये हैं। हमने सोचा कि शायद वह सवेरा होने पर आयंगे और तब हमें साथ ले जायंगे। हम लोग मुंह-हाथ धो ही रहे थे कि कुछ देर बाद मोटर पर रायजादा साहब आ गये। मालूम हुआ कि वह दूसरे स्टेशन पर इन्तजार कर रहे थे, जब हम लोग वहां नहीं पहुंचे तो वह यहां तलाश करने आये; जिन साहबों ने हमको उतार लिया था वे दूसरे दल के थे, जो यह नही चाहते थे कि हम रायजादा साहब के साथ ठहरें—उन्होंने कहीं अन्यत्र हमें ठहराने का प्रबन्ध किया था! दोनों मे कुछ बाते आपस मे हुई। हम अतिथि कुछ मुश्किल में थे! अन्त मे तय हुआ कि हम रायजादा साहब के यहा दोपहर का भोजन करें और सवेरे उन महाशय के यहा नाश्ता करें, जिनके यहा ठहराने का दूसरे लोगो ने निश्चय किया था। मै रायजादा साहब को पहले से खूब जानता था। इसीलिए उनको तार दे दिया था। वहा के लोगो की यह हालत देखकर जो प्रबन्ध उन्होंने किया वही मानना पड़ा। हम लोग रायजादा साहब के यहा गये। मुह-हाथ धोकर नाश्ता करने दूसरी जगह गये। वहा से आदमपुर गये। फिर लौटकर रायजादा साहब के यहा भोजन करके रेल से लाहौर के लिए रवाना हो गये।

पर हमारी दिक्कतें यही समाप्त न हुई। लाहौर मे कहां ठहरना होगा, यह समस्या अभीतक हल नही हुई थी। रेल मे एक आदमी डाक्टर सत्यपाल की पत्नी का पत्र लेकर आया और मिला। डाक्टरसाहब उस समय जेल में थे। वही प्रान्तीय कमिटी के सभापति थे। यदि वह बाहर रहते तो सारा प्रबन्ध उनका ही होता। उनके न रहने से दूसरों ने प्रबन्ध किया था। मुझे मालूम हुआ कि लोक-सेवक-समिति के सदस्यों ने, जिनमे कई परिचित मित्र थे, सभा-भवन मे ठहराने का प्रबन्ध किया है। श्रीमती सत्यपाल ने लिखा कि उनके पति जेल मे है, अतः वह आशा रखती है कि और कुछ नही तो इस कारण से भी मैं उन्हीके यहा ठहरने का निश्चय करूगा। मैं फिर संकट में पड़ गया। दोनों पक्षों के लोगों के बीच रेल में ही कहा-सुनी होने लगी। कृपालानीजी अपने उग्र स्वभाव के अनुसार बिगड़े! उन्होंने दोनों को डांटा कि तुम लोग आपस में बाते तय नही कर लेते और अतिथि को संकट में डालते हो। यह भी मालूम हुआ कि उस दिन संध्या के भोजन के लिए लोक-सेवक-समिति ने शहर के कितने ही माननीय पुरुषों को भी निमन्त्रित कर लिया है और यदि मै वहां नहीं गया तो उनके प्रति भी अनादर होगा। अन्त में बात यह तय पाई गई कि संध्या का भोजन तो लाजपतराय-भवन में हो, पर मैं जाकर ठहरूं डाक्टर सत्यपाल के घर पर ही। जलूस में भींगने का कारण भी कुछ ऐसा ही था। प्रबन्धकों ने निश्चय कर लिया

था कि जलूस किन सड़कों से जायगा। वे जलूस के रास्ते को, कुछ सड़कों को छोड़कर, कुछ छोटा न बना सके।

मैं डाक्टर साहब के घर पर ठहरा। दुर्भाग्यवश बीमार पड़ गया। अब जरूरत पड़ी किसी डाक्टर या वैद्य की; यह बात भी तय न हो सकी। पहले जो डाक्टर आये उनसे दूसरे दल को सन्तोष न था; वे अपना डाक्टर बुलाना चाहते थे! अन्त में ऐलोपैथिक छोड़कर होमियोपैथिक पर बात गई। कुछ अच्छा होते ही मै बिहार वापस चला आया।

अप्रैल से जो यात्रा-क्रम बना था, उसे मैं निर्विघ्न प्रायः जून के अन्त तक ठीक-ठीक पूरा करता रहा। अप्रैल मे जबलपुर में अखिल भारतीय कमिटी की एक बैठक की गई। इस बैठक के लिए कोई विशेष कार्यक्रम अथवा महत्व का प्रश्न नही था। पर मैने सोचा था कि साल में दो-तीन बार अखिल भारतीय कमिटी को अवश्य मिलना चाहिए ताकि सदस्यों को कांग्रेस-सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करने का अवसर मिले। मध्यप्रदेश में बहुत दिनों से अखिल भारतीय कमिटी नही हुई थी। इसलिए मैंने वहां के लोगो की इच्छा के अनुसार वही बैठक बुलाई। वह सफलतापूर्वक समाप्त हुई। वहा से मैं यात्रा पर निकल गया। यात्रा का आरम्भ बरार प्रान्त में हुआ। वहा प्रान्तीय राजनैतिक कान्फ्रेन्स थी, जिसके सभापति पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त थे। कान्फ्रेन्स समाप्त करके मै बरार के सभी जिलों में गया।

सभी जगहो में सभाएं होतीं, स्वागत होता, जलूस निकलता; लोगों में उत्साह काफी दीखता। मेरे लिए इस प्रकार की यात्रा का, अपने सूबे के बाहर, यह पहला ही अनुभव था। वह अनुभव अच्छा और सुखद था; क्योंकि भिन्न-भिन्न प्रान्तो को देखने के अलावा कांग्रेस के संगठन को सुदृढ़ बनाने का कुछ मौका मिलता और जन-साधारण से सम्पर्क बढ़ता।

बरार की यात्रा समाप्त करके मैं सीधे कर्नाटक चला गया। यहां के सभी जिलों में दौरा किया। उसके बाद सारे महाराष्ट्र में गया। मैं सवेरे उठता और नहा-धोकर प्रायः सात बजे मोटर पर निकल जाता। स्थान-स्थान पर सभा करता हुआ दिन के बारह बजे तक कही पहुंचता, जहां भोजनादि का प्रबन्ध रहता। भोजन और विश्राम के बाद प्रायः दो बजे फिर निकल जाता और रात के आठ-नौ बजे तक सभा करता। रात को विश्राम के स्थान पर पहुंच जाता। रेल पर कम चलता, अधिकतर मोटर पर ही सारी यात्रा समाप्त हुई। बरार, कर्नाटक और महाराष्ट्र की यात्रा में ही प्रायः आधा अप्रैल, पूरा मई और प्रायः पूरा जून समाप्त हो गया। इस बीच केवल दो-तीन दिनों के लिए मैं एक बार अपने घर गया—

भाईसाहब के वार्षिक श्राद्ध के लिए, जून के आरम्भ में।

सभी जगहों में बड़े-बड़े जलूस निकले, बड़ी-बड़ी सभाएं हुईं। छोटे-छोटे कस्बों और गांवों तक में मुझे जाने का और लोगों से मिलने का मौका मिला। कर्नाटक के जगलों और पहाड़ों से होते हुए समुद्र के किनारे से लेकर मैसूर तक गया। फिर वहां से लौटते वक्त शोलापुर, सतारा, पूना, बेलगांव, मालवन, रत्नागिरि, नासिक, अहमदनगर इत्यादि नगरों मे भी जाने का मौका मिला। सुन्दर-से-सुन्दर प्रदेश और दृश्य देखने को मिले। पहाड़ो की प्राकृतिक छटा, जंगलो के सुन्दर-सुहावने दृश्य, दक्षिण भारत की हरियाली और समुद्र की अनन्त जलराशि, सबके दर्शन हुए। मोटर पर जाने के कारण इन दृश्यो के देखने की और भी सुविधा हुई। लोगो की रग-बिरंगी वेशभूषा तथा भाषा की विभिन्नता देखी। पर इन सबकी तह मे भारत की एकता झलक रही थी। वह कही भी खो नही सकती थी। एक तरफ सतारा और शोलापुर की तपती धूप मिली तो दूसरी ओर मैसूर और कुर्ग के जंगलों की ठंडी हवा शरीर को सुख पहुचाती मिली। मरकरा मे ऊंची पहाड़ी के समतल पर सभा के लिए एक अत्यन्त मनोरजक स्थान है। वहां हजारों फुट की ऊचाई पर एक ओर सभा होती थी और दूसरी ओर हजारो फुट नीचे, जहांतक नजर पहुंच सकती थी, हरा-भरा जगल दीख रहा था। जमीन कही ऊंची कही नीची, पर सभी जगह सब्ज-सब्ज ही नजर आती। वहां के लोगो की पोशाक भी अपने ढग की निराली थी। स्त्रिया सिर पर एक बेनी बाधती है। पुरुष अंगरखा पहनते और एक प्रकार की कुकडी या तलवार कमर में बांधते है। जंगल इतने घनघोर है कि सुना वहां हाथी भी होते हैं और शेर वगैरह तो होते ही है।

महाराष्ट्र की यात्रा में एक बात हुई, जिसका जिक्र कर देना ठीक मालूम होता है। मैंने देखा कि वहां के लोगों को फूलों का बहुत शौक है। स्वागत के लिए वे फूल की मालाएं बहुत लाते। वहां का यह भी रिवाज है कि जब कोई प्रतिष्ठित अतिथि आता है तो उसके स्वागत में बहुत-सी संस्थाएं शरीक होती हैं और सभीकी ओर से अलग-अलग हार दिये जाते हैं। इस तरह एक-एक सभा में कितने ही हार मुझे दिये जाते। फूल के हार कुछ ठहरनेवाले तो होते नही, दिन समाप्त होते-होते मुरझा जाते और उनको फेंक देना पड़ता; रास्ते में वे गाड़ी के लिए भी बोझ बढ़ा देते। जहां स्थानीय बाजार में हार न मिलते वहां लोग दूर-दूर से पार्सल करके हार मंगवाते। इसमें पैसे भी लगते और उनसे कोई काम भी पूरा न होता। इसलिए मैंने एक अपील निकाल दी कि लोग यदि स्वागत-सम्मान करना चाहते हैं तो बेहतर हो कि फूल के हार न देकर हाथ के कते सूत का हार

मुझे दें। श्री शंकरराव देव ने मेरी इस उक्ति को पसन्द किया। उन्होंने भी इसपर जोर दे डाला। इसका नतीजा यह हुआ कि महाराष्ट्र और दूसरे प्रान्तों में, जहां-जहां मैं सफर में गया, सूत के हार मुझे दिये गए। मैं सूत की मालाओं को जमा करके साथ ले आया। बुनवाने पर इतना ज्यादा कपड़ा हुआ कि मित्रों को कुछ बाटने के बाद भी मुझे कई वर्षों तक खादी खरीदने की जरूरत नहीं पड़ी।

महाराष्ट्र-कमिटी ने यह भी निश्चय किया कि मैं जहां जाऊं, लोग कुछ पैसे भी भेट करें। उसी प्रान्त में यह बात आरम्भ की गई। छोटी-छोटी सभाओ मे लोग कुछ-न-कुछ पहले से जमा करके रखते, थैली भेट देते। छोटे-छोटे गावों मे भी इस तरह की भेट मिलती। कही-कहीं रास्ते में भी गाड़ी रोककर भेट दी जाती। इस तरह प्रायः बीस-बाईस हजार रुपये जमा हो गये। इसका थोड़ा अश अखिल भारतीय कमिटी के लिए कृपालानीजी ने ले लिया और प्राय· तीन-चौथाई से भी अधिक वहीं की प्रान्तीय कमिटी को वहां के काम के लिए दे दिया गया। इस सारे सफर में महाराष्ट्र के कार्यकर्ताओ की कार्य-कुशलता और कारबारी तरीके से मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। यात्रा-क्रम ऐसा बनाया गया था कि मुझे ठीक समय से सभी स्थानों मे पहुंचने का मौका मिला। श्री शंकरराव देव मुझे यह भी कह देते कि किस स्थान पर कितनी देर ठहरना है और मैं उसीके अनुसार अपने भाषण में भी समय लगाता। अगर कुछ भी देर होने लगती तो वह छड़ी दिखला देते। चाहे सवेरे रवाना होने में, चाहे दोपहर के आराम के बाद चलने में, चाहे किसी स्थान की सभा समाप्त करने मे, वह सर्वत्र पूरी कड़ाई से समय पर काम करते-कराते। इससे यह हुआ कि बिना कष्ट के सारा कर्यक्रम दिन-भर में समाप्त होता और भोजन तथा आराम के लिए यथोचित समय मिल जाता।

ऐसा सभी सूबों में नही हुआ। कही-कही तो रात में एक या दो बजे भी जाकर सभा करनी पड़ी। हमारे अपने प्रान्त में ही, जब १९३७ में पंडित जवाहरलालजी आये, बांकीपुर में रात के बारह बजे और पटना-सिटी में रात के दो बजे—जनवरी के महीने में—सभा हुई। जनता उस कड़ी सर्दी में, संध्या छः बजे से दो बजे रात तक, खुले मैदान में बैठी रही! जब मैं महाराष्ट्र का वह संगठन स्मरण करता हूं तो वहां के लोगों की कार्य-दक्षता की सराहना किये बिना नहीं रह सकता। पर अपने सूबे की अव्यवस्था के लिए क्या कहूं! जनता का उतनी देर इन्तजारी करना उसके उत्साह और धैर्य का सूचक था, तो अतिथि के पहुंचने में उतनी देर हमारी अव्यवहार्यता का सूचक था। पर मैंने देखा है कि इस देर के कारण में जनता का भी पूरा

हाथ रहता है। जन-समूह भारी संख्या में जमा होता है। वह यदि पहले से अपने स्थान पर ठीक नियन्त्रण मे बैठा रहे तो अतिथि को मच तक पहुंचने में कठिनाई न हो और वहा पहुचकर वह अपना काम भी जल्द-से-जल्द समाप्त कर सकता है। पर ऐसा होता नही। जनता की भीड़ अतिथि को घेर लेती है।" उसका आगे बढ़ना कठिन हो जाता है। उसके बाद मंच तक पहुंचने में भी काफी समय लग जाता है। फिर उसके बाद भी कुछ समय जनता को बैठाने और शान्त करने मे लगता है। कार्यक्रम बनाने मे हम इन सबकी गुंजाइश नही रखते। यदि उन जगहो के लिए, जहा सभाए होने-वाली हैं, गुंजाइश रक्खे भी, तो रास्ते में भीड़ गाड़ी रोक लेगी, और जो जगह कार्यक्रम मे नही है वहा भी अतिथि को कुछ कहने के लिए मजबूर करेगी! इसको तो हम न पहले से जानते हैं और न इसके लिए कार्यक्रम मे समय ही देते हैं। इसलिए समय पर कही भी पहुचना कठिन हो जाता है।

मैने महाराष्ट्र की जनता में सयम भी देखा। उन्होने कार्यक्रम के विरुद्ध कही भी रोका नहीं। न कही लोगो ने इस तरह की भीड़ ही की कि व्यर्थ समय नष्ट करना पड़े। इसका एक सुन्दर नमूना शोलापुर मे देखने को मिला। वहां लोगों ने स्वागत के लिए बड़ी तैयारी की थी, सारा शहर सजाया था। वहां पहुचने पर मालूम हुआ कि सरकार ने जलूस रोक दिया। कार्यकर्ताओं ने हुकुम तो मान लिया, पर सब लोगो को मुझे देख लेने का सुन्दर प्रबन्ध कर दिया। यह सब चन्द घन्टों मे ही कर दिया गया। लोगों को कह दिया गया कि सब अपने-अपने स्थान पर—सड़को पर या दूकानों पर और मकानों में—ठहरे रहे। मुझे उन सभी रास्तो से वे ले जायगे जिधर से जलूस निकलने की बात थी। इस तरह लोग मुझे देख भी सकेंगे और लोगों ने जो स्वागत की तैयारी की थी, उसे मैं भी देख सकूगा। लोगों ने प्रबन्धकों का आदेश अक्षरश: माना। मैं निवास-स्थान से एक खुली गाड़ी में, जो सुगन्धित फूलो से खूब सजाई गई थी, चला। आहिस्ता-आहिस्ता उन सभी सड़कों से गुजरा जहां जलूस जानेवाला था। गाड़ी के साथ केवल एक-दो और गाड़िया थी, जो आगे और पीछे चलती थी। सड़कें और मकानों तथा दूकानों के बरामदे लोगों से ठसाठस भरे हुए थे। पर कोई अपने स्थान से हमारी गाड़ी के पीछे या बगल में नही दौड़ा। गाड़ी धीरे-धीरे चली, इसलिए सभी मुझे अच्छी तरह देख सके। गाड़ी के धीरे चलने पर भी इस चक्कर में उससे कम समय लगा जितना जलूस में लगता। जहां लोग चाहते, गाड़ी रोक दी जाती, लोग हार इत्यादि से स्वागत कर लेते। इस तरह मुझे शहर देखने का भी अच्छा मौका मिला। साथ-साथ दौड़ती हुई भीड़ की गर्द से और कान फाड़नेवाले शोर-गुल से मैं एक-

बारगी बच गया। लोग भी दौड़-धूप के कष्ट से बच गये। सरकार ने जलूस रोका था कि लोग स्वागत में शरीक न हो सकें और भीड़-भाड़ न हो। अच्छी सूझवाले कार्यकर्ताओं की प्रवीणता और जनता के सयम का फल यह हुआ कि लोगों पर जलूस से जितना असर पड़ता, उससे कही अधिक असर पड़ा।

सभी जगहों में, हर हालत में, जहां सरकार की रुकावट न हो वहां भी क्या ऐसा नही हो सकता है? हो सकता है, और अवश्य होना भी चाहिए। हमारे काम करनेवालो का बहुत समय भीड़ के संभालने में लग जाता है। कुछ मनचले लोग जलूस का प्रबन्ध बिना किसी अधिकार के अपने हाथों में ले लेते है। इसका नतीजा यह होता है कि कुछ लोग अतिथि की गाड़ी के साथ-साथ चलते है, जिससे वह छुप जाता है और बगल में खड़े लोग उसे देख नही पाते। तब फिर न देख सकनेवाले भी कुछ दूर तक साथ हो जाते है। इस तरह जलूस मे गडबड़ी मच जाती है। इतने लोगों के एक साथ ही चलने से खूब धूल उड़ती है। साथ के लोग हमेशा नारे लगाते चलते हैं। अतिथि की नाक गर्द से और कान नारो से फटने लगते है। वह यदि मेरे-जैसा दमा का मरीज हुआ तो उसे इसका नतीजा अगर उस दिन नही तो शीघ्र ही भोगना पडता है। जलूस मे अधिक समय लगने के कारण वे लोग, जो अतिथि को देखने की इच्छा से सचमुच दूर से आते है, महरूम रह जाते है और आगे के कार्यक्रम मे भी देर हो जाती है।

मैने इसी यात्रा मे कही क्वेटा में भयंकर भूकम्प की खबर सुनी। शुरू में कई दिनो तक वहा का पूरा हाल नही मिला। पर जब तफसील अखबारों मे आने लगी तो मालूम हुआ कि वहा की स्थिति भी कुछ बिहार-जैसी ही होगी। मैने एक रिलीफ-कमिटी बना दी और मै ही उसका सभापति बना। रुपये जमा होने लगे। बिहार और क्वेटा मे दो बातों का बडा अन्तर था। क्वेटा का भूकम्प क्वेटा शहर और आस-पास के लिए उतना ही प्रलयकारी था जितना बिहार का। पर उसका क्षेत्र बिहार-सा विस्तृत नही था। क्वेटा एक फौजी छावनी है। इसलिए वहा फौज मौजूद थी, जो लोगों को मदद पहुंचाने के काम मे लगाई गई। पर इसी कारण वहां कोई भी गैर-सरकारी संस्था काम न कर सकी। अखबारों पर रोक लगा दी गई कि वे सरकारी मजूरी के बिना कोई खबर न छापें। एक-दो पत्रों के साथ, खबर छाप देने के कारण, बहुत सख्त व्यवहार किया गया! बाहर से लोगों का वहां जाना एकदम बन्द कर दिया गया। इसलिए वहां की वास्तविक स्थिति क्या थी, इसका पता किसीको न लगा। जो खबर मिली, वह केवल सरकारी विज्ञप्तियों द्वारा ही, दूसरा कोई चारा न था। इस बात को लेकर

अखबारों में जोरों की चर्चा हुई। पर सुननेवाला कोई न था! फौज और सरकारी अफसरों ने जो मुनासिब समझा, किया। वहां के सरकारी कर्मचारियों और फौज के विरुद्ध बहुत तरह की शिकायतें, वहां से आये हुए लोगों की जुबानी, सुनने मे आईं। पर इनको कोई प्रकाशित न कर सका और न इसकी सचाई के सम्बन्ध में किसीने जांच ही की। पर इसमें सन्देह नही कि इस प्रकार वहां अखबारों का जाना रोक देना और किसी भी बाहरी आदमी के वहां जाने की मनाही कर देना एक अजीब बात थी। इससे आम लोगों ने यह अर्थ निकाला कि शिकायतें सही है और उन्हीपर परदा डालने के लिए यह कार्रवाई की गई है। लोगो की इच्छा थी और बहुत संस्थाएं तैयार थीं कि वहां जाकर पीड़ितो की सहायता करें; पर किसीको वहा जाने की इजाजत ही न मिली।

वहां बहुत-से लोग सिन्ध और पंजाब के थे। जो बचे उनमे बहुतेरे सिन्ध और पंजाब वापस आ गये। उन लोगों से ही तरह-तरह की खबरे फैली। बाहर के लोगों ने ऐसे निराश्रय लोगों की ही सहायता की। इनकी भी सहायता जरूरी थी; क्योंकि इनका सर्वस्व वहां खो गया था। बहुतेरों के कारबारी और कमानेवाले कुटुम्बी वहा मर गये थे। उनको पहले तो किसी ऐसे स्थान पर पहुंचा देना जरूरी था, जहां वे रह सकें। परन्तु वैसे स्थान मे पहुंचने पर भी उनको कोई ठिकाना मिलने की आशा नही थी। इसलिए उन्हें कही भी ले जाकर कुछ दिनों के लिए उनके रहने और खाने-पीने का प्रबन्ध कर देना तथा फिर किसी रोजगार मे उन्हें लगा देना जरूरी था। मेरी बहुत इच्छा थी कि मैं वहां जाऊं और जो थोड़ा-बहुत अनुभव बिहार के भूकम्प में काम करने से मिला था, उसका लाभ वहां के लोगों को देकर उनकी सहायता करूं। पर सरकार ने इजाजत न दी। इस बात पर समाचार-पत्रों ने सरकार की निन्दा की; पर वह टस-से-मस न हुई।

मैं कराची चला गया, जहां बहुतेरे लोग क्वेटा से भागकर आये थे। सिन्ध के उन शहरों में भी गया, जहा ऐसे पीड़ित लोगों के आने की खबर मिली। हजारों शरणार्थियों से मुलाकात की। उनकी दुःख-गाथा सुनी। तब सरकार को एक पत्र लिखा। उसमें उन सभी शिकायतों का जिक्र किया, जो सुनने में आई थीं। वहां जाने की इजाजत भी मांगी। इसका उत्तर उस समय के भारत-सरकार के गृहसचिव श्री हैलेट—युक्तप्रान्त के गवर्नर सर मौरिस हैलेट—ने दो सतरों के पत्र में दिया कि इजाजत नहीं मिल सकती और शिकायतों को भी सरकार जांच करने के योग्य नहीं समझती। इसलिए मुझे बाहर से ही सेवा-कार्य करना पड़ा। मैं क्वेटा तो नहीं गया, पर कराची, जैकोबाबाद, सक्खर, शिकारपुर आदि सिन्ध के शहरों में गया।

डेरागाजीखां, मुलतान, लाहौर इत्यादि पंजाब के शहरों में भी गया, जहां लोग भागकर वहा से आये थे। मैंने सभी जगहों में उनकी सहायता के लिए कमिटियां बना दी। कमिटियों ने उनकी यथासाध्य सहायता की। क्वेटा-रिलीफ कमिटी की अपील पर कई लाख रुपये भी आ गये, जिनका वितरण किया गया। यहा सहायता का रूप बिहार से बिलकुल भिन्न था। बिहार में की गई विविध सहायता का वर्णन पहले किया जा चुका है। यहां क्वेटा में उस स्थान पर तो हम पहुंचे ही नही जहां सहायता की जरूरत थी। इस-लिए खास क्वेटा जाकर हम कुछ करने से मजबूर रहे। इधर ही कुछ रुपये शरणार्थियों को खिलाने-पिलाने और उनके दवादारू मे खर्च हुए। पर अधिक खर्च उनको व्यक्तिगत रूप से कही फिर जीवन आरम्भ करने के साधन पहुंचाने में ही किया गया। इस काम का भार सिन्ध में श्री जयराम-दास और पंजाब मे डाक्टर गोपीचन्द भार्गव ने ही उठाया। उनके सहायक स्थानीय लोग थे, जिन्होंने बडी तत्परता से काम किया।

ऊपर कहा गया है कि सफर में ही मुझे क्वेटा की खबर मिली। कुछ दिनो तक तो मैने दौरा रोका नही, पर जब वहा की स्थिति की भयंकरता का ठीक पता चला तो मुझे दौरा रोककर उधर जाना पड़ा। उस समय मैं नागपुर मे दौरा कर रहा था। उसके बाद ही, बरसात के कारण, दौरा रोकना था ही। इसलिए चन्द जगहों का दौरा ही रोकना पड़ा। बरसात शुरू हो गई। मै सिन्ध और पंजाब मे चला गया। वहां बरसात बहुत कम होती है। जो होती भी है, वह देर करके होती है। इसलिए कुछ हिस्सा जून का और पूरा जुलाई का महीना उन प्रान्तो मे बीता। वहां के दौरे के कारण में और कार्यक्रम मे, दोनों में, कुछ फर्क पड़ गया। जहां गया वहां पहले अस्पताल में जाकर क्वेटा के घायलो को देखता। फिर उनके लिए जो छावनी बनी होती वहां जाता और आश्रयी लोगों से मिलता। वहा के लोगों से कुछ रुपये जमा करता। रिलीफ के काम की निगरानी भी करता और सार्वजनिक सभा में भाषण भी। सिन्ध और पश्चिम पजाब में तो केवल यही काम हुआ। पर जैसे-जैसे क्वेटा से दूर पूरब-पजाब पहुंचता गया, दूसरा काम भी कुछ कर सका। इस तरह वे महीने, जिन्हें दूसरे सूबों के दौरे में बरसात के कारण नही बिता सकता था, सिन्ध और पंजाब में बिताये। वही जो कुछ हो सका, किया। इस यात्रा में भी, विशेषकर पंजाब में, बहुत करके मोटर पर ही घूमना पड़ा। इसलिए बीच और पूरब के पंजाब में कई जिलों के अन्दर घुसकर वहां की हालत अच्छी तरह देख सका।

: ११३ :

कांग्रेस का इतिहास : देशी राज्यों की समस्या

कांग्रेस का जन्म १८८५ के दिसम्बर में हुआ था, जब उसका पहला अधिवेशन बम्बई मे किया गया था। १९३५ के दिसम्बर में उसके पचास वर्ष पूरे होते थे। इसलिए यह निश्चय किया गया था कि कांग्रेस की अर्ध-शताब्दी (स्वर्णजयन्ती) धूमधाम से मनाई जाय। इसके लिए कार्यक्रम बनाया गया था, जिसका जिक्र आगे आवेगा; पर एक बात यहां कह देना आवश्यक है। यद्यपि कांग्रेस के प्रायः पचास बरस बीत चुके थे तथापि कांग्रेस का कोई ठीक इतिहास, शुरू से आजतक का इकट्ठा, लिखा नहीं मिलता था। डाक्टर पट्टाभि सीतारमैया ने एक इतिहास लिख रक्खा था, पर वह अभी छपा नहीं था। राय हुई कि इस जयन्ती के अवसर पर एक इतिहास भी प्रकाशित किया जाय। डाक्टर सीतारमैया से मैंने अनुरोध किया कि अपने लिखे इतिहास को वह पूरा कर दें और कांग्रेस की ओर से वह छपवाया जाय। उन्होंने इतिहास पूरा कर दिया। बरसात मे, मैं और वह, वर्धा में बैठकर, उसे दुहरा गये। इसमे कई दिन लगे। जो-कुछ बाकी रह गया था, उसे मैं इलाहाबाद मे स्वराज्य-भवन में बैठकर दुहरा गया।

वह इतिहास अंगरेजी मे लिखा गया था। हमने यह भी निश्चय किया कि देशी भाषाओं मे भी उसके संस्करण उसी समय निकाले जायं। इसलिए हिन्दी, मराठी, कन्नड़, तेलुगु, तमिल, उर्दू आदि भाषाओं मे उसका अनुवाद छापने का भी प्रबन्ध कर दिया गया। अंगरेजी संस्करण के छापने के खर्च का भार तो अखिल भारतीय कमिटी ने लिया, क्योंकि हम जानते थे कि इसमे जो पैसे लगेंगे वे पुस्तक के बिक जाने पर वापस आ जायंगे। दूसरी देशी भाषाओं में अनुवाद कराने और उन्हें छापने का भार कुछ प्रकाशको ने अथवा उन प्रान्तों की कमिटियों ने ले लिया, जहां की भाषा में अनुवाद हुआ था। जिस दिन कांग्रेस की जयन्ती मनाई गई उस दिन—जहांतक मुझे स्मरण है—अंगरेजी, हिन्दी, मराठी, कन्नड़, तेलुगु, तमिल और उर्दू के संस्करण छपकर तैयार हो गये थे। उस अवसर पर जो खरीदना चाहते थे, उनको पुस्तक मिल सकी थी। यदि पुस्तकें कुछ और पहले छपकर तैयार

हो सकी होती तो और भी बहुत प्रतियां बिक सकती। तो भी हिन्दी और मराठी के दो संस्करण उन चन्द दिनों के अन्दर ही निकालने पड़े। अंगरेजी का भी कई हजार का संस्करण पूरा-का-पूरा बिक गया और कुछ दुबारा छापना पड़ा, जिसकी कुछ प्रतियां पीछे तक बची रहीं। मुझे इस पुस्तक के दुहराने मे काफी समय लगाना पड़ा था और इसके लिए एक भूमिका भी लिखनी पड़ी थी।

इस जयन्ती के अवसर पर कांग्रेस-सम्बन्धी छोटी-मोटी और भी बहुतेरी पुस्तकें छपी। एक मे कांग्रेस के सभी स्वीकृत प्रस्ताव इकट्ठे करके छापे गए थे। एक दूसरी मे सभी नहीं, पर मुख्य-मुख्य प्रस्ताव छापे गए थे। मद्रास के श्री जे० ए० नटेशन् ने कांग्रेस के सभापतियों के भाषणों को इकट्ठा करके पहले ही छापा था। उन्होंने उसे १९३४ तक के भाषण के साथ छापकर पूरा कर दिया। इस तरह इस साल में कांग्रेस-सम्बन्धी साहित्य बहुत छपा और बिका।

बरसात की हवा मेरे स्वास्थ्य के अनुकूल नही होती। इस साल भी कुछ तबीयत खराब रही। पर कोई विशेष तकलीफ नही हुई। मेरा काम नही रुका। काम भी एक स्थान मे बैठकर अधिक करना पड़ा। इसलिए दौड़-धूप के कारण जो व्यतिक्रम हुआ करता है वह नही हुआ। मैंने पहले से ही सोच रक्खा था कि बरसात के बाद दक्षिण भारत की यात्रा करूंगा। इसलिए मद्रास-प्रेसिडेंसी के तीन सूबों—तामिलनाड, केरल और आन्ध्र—के लिए यात्राक्रम बनाया गया। मैंने सोचा कि दशहरे के बाद यह यात्रा शुरू करूंगा। यात्रा शुरू करने के पहले मद्रास में अखिल भारतीय कमिटी की बैठक करने का निश्चय किया। वह एक विशेष कारण से आवश्यक हो गया था।

कांग्रेस की नीति शुरू से यह रही थी कि देशी रजवाड़ों और रियासतों के अन्दरूनी मामलों में वह हस्तक्षेप नही करेगी। पहले चाहे जिस कारण से यह नीति मानी गई हो, अब इसके सम्बन्ध में बहुत मतभेद होने लगा था। देशी रियासतों में प्रजातन्त्र नही है। राजाओं का मनमाना ही चलता है। कही-कही अच्छे दीवान सलाहकार मिल गये तो राज्य-प्रबन्ध अच्छा हुआ और प्रजा का कुछ लाभ भी हुआ। पर कहीं भी राज्य-शासन में प्रजा को अधिकार नही था। इन छः-सात सौ रजवाड़ों में कुछ तो बीघे के क्षेत्रफल और चन्द आदमियों की आबादीवाले छोटे राज्य से लेकर हजारो वर्गमील के विस्तार और करोड़ों की जनसंख्यावाले बड़े-बड़े राज्य तक थे। इनके अधिकार भी इसी तरह भिन्न थे। जो बड़े-बड़े राज्य हैं, वे अन्दरूनी मामलों में प्रायः स्वतन्त्र हैं। वे अपनी अदालत, कचहरी, थाना,

पुलिस वगैरह सबकुछ रखते हैं। जो बहुत छोटे हैं, वे जमीदार वा जागीरदार के समान ही हैं। इनमें से कुछका सम्बन्ध ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के साथ सुलहनामे के जरिये बना हुआ है और बहुतेरों का सम्बन्ध सनद द्वारा निर्धारित किया गया है। आरम्भ में चाहे जो सम्बन्ध रहा हो, अब तो ब्रिटिश सरकार सबकी सिरताज है। वह यद्यपि उनके प्रतिदिन के कारबार में प्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप नहीं करती, तथापि ब्रिटिश-रेजिडेण्ट या दूसरा नियुक्त अफसर अपने हलकेवाले राज्य पर काफी असर रखता है। खासकर दीवान और मन्त्री की नियुक्ति में उसकी बात खूब चलती है। इस तरह, ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट परोक्ष रीति से, उनके अन्दरूनी मामलों मे भी, काफी दिलचस्पी लेती है।

किसी भी देशी राज्य में ब्रिटिश-सरकार की मर्जी के खिलाफ कोई महत्वपूर्ण काम नहीं हो सकता था। इसके अलावा जब कोई राजा या नवाब ब्रिटिश-सरकार को नाखुश कर देता है, चाहे वह जिस कारण से हो, तो उसकी खैर नहीं होती। उसे शीघ्र ही अपनी गद्दी छोड़नी पड़ती है। उसके लिए कोई-न-कोई कारण आसानी से सामने आ जाता है। यों तो कहा जाता है कि ब्रिटिश-सरकार ने अपने हाथों में इस बात का अधिकार रखा है कि यदि कोई राजा कुशासन करे, प्रजा पर जुल्म करे, तो वह पदच्युत किया जा सकता है। पर अधिकतर बात ऐसी हुई है कि ब्रिटिश-गवर्नमेंट को नाखुश करने पर ही कुशासन की खोज की जाती है और कुशासन के नाम पर वह पदच्युत किया जाता है! यदि कुशासन के साथ-साथ कोई राजा ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट को खुश भी रख सका, तो वह निर्भय और निरंकुश है! पर यदि कुशासन के साथ वह ब्रिटिश-गवर्नमेंट को भी नाखुश करता है तो उसके लिए फिर कहीं कोई जगह नही रह जाती। इस तरह प्रायः प्रतिवर्ष एक-आध राजा पदच्युत होते देखे जाते है। इतने पर भी इन राज्यो का दावा है कि वे अपना सम्बन्ध केवल ब्रिटिश ताज के साथ रखेंगे और वे स्वतन्त्र हैं! यह दावा बिलकुल खोखला है; क्योंकि जब भारतीयों के खिलाफ उनको खड़ा करना होता है तो ब्रिटिश-सरकार उनके साथ सुलहनामों की दुहाई देती है; पर जब उसे उनके साथ अपनी मनमानी करनी होती है तो वह जो चाहती है कर गुजरती है—उनकी तथा उनकी प्रजा की एक भी नहीं सुनती! ब्रिटिश-सरकार के साथ ऐसा सम्बन्ध रखते हुए भी इन राज्यों का दावा है कि अपने राज्य में वे जो चाहेंगे, करेंगे। इसलिए वे अपने यहां प्रजातन्त्र को फटकने नहीं देना चाहते।

फिर भी ब्रिटिश-भारत में पचास बरसों से अधिक काल से राजनैतिक सभाएं होती रहीं। यहां जनता में काफी जाग्रति आ गई। ब्रिटिश-सरकार

को मजबूर होकर तथा ब्रिटिश राजनीति की प्रजातंत्रात्मक पद्धति के कारण भारत के लिए प्रजातन्त्र स्थापित करने की घोषणा करनी पड़ी। जो विधान समय-समय पर बनते गये वे भारत को उसी ओर ले जाते रहे। यह दूसरी बात है कि हम जहांतक जाना चाहते थे वहांतक वह हमें नहीं पहुंचने देती थी। तो भी इससे इन्कार नहीं कि यहां के विधान का रुख उस ओर था। ब्रिटिश-भारत और देशी रियासतें, दोनों इस तरह मिले-जुले थे कि कोई उनमें मामूली तौर पर भेद नहीं देख सकता था। भेद शासन-पद्धति में था, पर दोनों की जनता मे भेद नहीं था। वही लोग जो सरहद के एक तरफ रहते है, सरहद के दूसरी तरफ भी बसते है; एक ही बोली बोलते है; एक ही धर्म मानते है; एक ही सस्कृति रखते है; आपस मे लेन-देन और शादी-ब्याह भी किया करते हैं। पर शासन-प्रणाली में बहुत फर्क पड़ जाता था। इसलिए जब ब्रिटिश-भारत मे जाग्रति हुई तो उसका असर देशी रजवाड़ों की प्रजा पर पड़े बिना नहीं रह सकता था। उन लोगों में भी अपने राज्य-शासन मे अधिकार पाने की इच्छा और अभिलाषा उत्पन्न हुई। वहां की नादिरशाही के कारण इस अधिकार की आवश्यकता भी खूब महसूस होने लगी। वहां भी लोगों ने कुछ सगठन शुरू किया। वे लोग भी ब्रिटिश-भारत के राजनैतिक आन्दोलन मे भाग लेने लगे। इस तरह यहां के विचारो को अपने राज्य के अन्दर अपने साथ ले जाने लगे। इसलिए कांग्रेस की पुरानी नीति कि वह देशी राज्यों के भीतरी मामलों मे हस्तक्षेप नहीं करेगी, लोगों को खटकने लगी।

नागपुर-कांग्रेस के समय, १९२० के दिसम्बर मे, जब कांग्रेस ने नये सिरे से कांग्रेस का विधान बनाया, और भाषाओं के अनुसार कांग्रेसी सूबों का संगठन किया, तो उसने देशी रजवाड़ों की प्रजा को अपने पास के ब्रिटिश-भारतीय कांग्रेस-सूबों की कमिटियों में शरीक होने का अधिकार दे दिया। इस तरह उन सभी देशी रजवाडों की प्रजा को, जहां गुजराती बोली जाती है, गुजरात-प्रांतीय कांग्रेस-कमिटी की मातहत कमिटियों में मेम्बर बनने और चुने जाने का अधिकार मिला। गुजरात प्रातीय कमिटी को अखिल भारतीय कमिटी के लिए अथवा कांग्रेस-अधिवेशन के लिए उतने ही सदस्य या प्रतिनिधि चुनने का अधिकार मिला जितने ब्रिटिश-गुजरात और रजवाडों-वाले गुजरात (काठियावाड़) की आबादी के अनुपात से मिलना चाहिए था—अर्थात् गुजरात की आबादी केवल ब्रिटिश-गुजरात की ही आबादी नहीं मानी गई, उसके साथ रजवाडोंवाले गुजरात की भी आबादी जोड़ दी गई, जहां गुजराती बोली जाती है। इसी तरह, अजमेर एक छोटी जगह है, जो ब्रिटिश-सरकार के अन्दर है। कांग्रेस-विधान में वह भी एक सूबा है और उसकी आबादी केवल उस छोटे हलके की आबादी नहीं मानी

गई, बल्कि उसके साथ पूरे राजपूताने की आबादी भी जोड़ दी गई, जिससे अजमेर को बहुत अधिक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार मिल गया।

कांग्रेस देशी राज्यों के भीतर कांग्रेस-कमिटिया स्थापित करना नही चाहती थी; क्योकि यदि ऐसा किया जाता और वहां के शासन से किसी बात मे मतभेद हो जाता, अथवा वे कांग्रेस-कमिटिया स्थापित होने देना पसन्द न करते तो उनके साथ मुठभेड़ हो सकती थी। काग्रेस इसे पसन्द नही करती थी। जब देशी रियासतो की जनता में जाग्रति होने लगी तो उनकी ओर से काग्रेस मे मांग हुई कि काग्रेस अपनी नीति को बदल दे और रियासतों मे भी प्रजातन्त्र के लिए काग्रेस उसी तरह से प्रयत्न करे जिस तरह ब्रिटिश-भारत के लिए करती है। उनकी यह माग न्यायसंगत थी, क्योंकि दोनों की जनता मे कुछ भेद नही था। काग्रेस के लिए भी दोनो मे अन्तर करना ठीक नही था। कांग्रेस दोनो में अन्तर करना चाहती भी नही थी, पर वह इस झगड़े को भी हाथ मे लेकर अपनी कठिनाइयों को बढाना नही चाहती थी। वह यह भी मानती थी कि यदि हम ब्रिटिश भारत मे ब्रिटिश सरकार की शक्ति के साथ कुछ कर लेगे और यहां प्रजातन्त्र स्थापित कर सकेगे तो देशी राज्यों मे भी यह आसानी से हो जायगा; क्योंकि वे भी ब्रिटिश सरकार की शक्ति पर ही बहुत-कुछ अवलम्बित थे। यह सब होते हुए भी इधर कई बरसो से इस विषय मे रियासती प्रजा मे काफी खलबली हो रही थी। इसके कई कारण थे।

गोलमेज-कान्फ्रेन्स में ब्रिटिश सरकार ने रजवाडों के प्रतिनिधियो को भी बुलाया था। वहा सारे भारत के लिए विधान बनाने का प्रयत्न किया गया था, जिसके अन्दर ब्रिटिश भारत और देशी भारत दोनो का ही समावेश था। दोनों के लिए एक ही विधान बनाने का आरभ तभी हो सका जब गोलमेज परिषद् मे उपस्थिति राजाओ ने इसे मंजूर किया कि यदि सतोषप्रद विधान बना और उनके स्वत्व उसमे सुरक्षित रहे, तो वे भी उस विधान के अन्दर अपनी रियासतो को ला सकेंगे। १९३५ के विधान मे जो केन्द्रीय असेम्बली बननेवाली थी, उसमें दो-तिहाई प्रतिनिधि ब्रिटिश भारत के और एक-तिहाई प्रतिनिधि देशी रियासतो के रखे जानेवाले थे। पर इसमें एक बहुत बड़ा अन्तर होगा कि ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि तो वहां की प्रजा द्वारा चुने जायंगे; पर रजवाड़ो के प्रतिनिधि वहा के राजा द्वारा नामजद किये जायंगे! यह बात वहां की प्रजा को तो खटकती ही थी, हम सबको भी बहुत बुरी लगती थी; क्योंकि हम समझते थे कि इस तरह से ब्रिटिश-सरकार कहने के लिए केन्द्रीय असेम्बली को प्रतिनिधित्व का हक देती है; पर वास्तव में उसके एक-तिहाई सदस्यों की नियुक्ति में, रेजिडेण्टों की मार्फत, वह पूरा-

पूरा हाथ बंटा सकेगी। यह भी एक विशेष कारण था, जिससे कांग्रेस पर जोर दिया जाने लगा कि अब देशी रजवाड़ों के अन्दर भी कांग्रेस उसी तरह काम करे जिस तरह वह ब्रिटिश भारत के अन्दर जन-संगठन का काम करती है।

देशी राज्यो मे कही-कही के शासकों ने आधुनिक वायु-मण्डल से प्रभावित होकर कुछ सुधार किया और कही-कही सिर्फ नाम के लिए बहुत कम अधिकारों के साथ धारा-सभाएं भी कायम हो गई। पर उनमे से किसीमे भी अभीतक उतने अधिकार नही मिले है, जितने ब्रिटिश भारत में १९२० के विधान के अनुसार प्रान्तों को मिले थे। पर कहीं-कही—जैसे बडोदा, मैसूर, ट्रावनकोर आदि राज्यों मे—शिक्षा-सम्बन्धी और कुछ दूसरे सुधार ऐसे हुए हैं, जो किसी-किसी बात में ब्रिटिश राज्य से भी आगे है। पर प्रजा को शासन में अधिकार अभी तक वहां भी नही मिले है। इस तरह के सुधार भी अभी तक इने-गिने चन्द राज्यो मे ही हो पाये है। प्रजा मे, बहुत जगहो मे, जाग्रति हो रही है। ब्रिटिश भारत तथा कुछ देशी राज्यों की हालत देखकर सब राज्यो की प्रजा अपनी-अपनी रियासतो मे भी सुधार चाहती है।

१९३०-१९३४ के सत्याग्रह-आन्दोलन मे देशी राज्यों की प्रजा ने बहुत जगहों मे काफी भाग लिया था। गुजराती लोग और मारवाड़ी लोग व्यापार में बहुत आगे बढ़े हुए है। वे बम्बई, कलकत्ता आदि बडे-बड़े नगरों मे व्यापार के लिए जाते हैं। वहां जो आन्दोलन बढा तो वे उससे अपनेको अलग न रख सके। जब बम्बई और कलकत्ता-जैसे शहरों के गुजराती और मारवाड़ी वहा के सत्याग्रह मे शरीक हुए, तो वे अपनी रियासतों में भी स्वभावतः इस आन्दोलन को उन्ही अधिकारों के लिए ले जाना चाहते थे जिनके लिए वे ब्रिटिश-भारत मे, कांग्रेस में शरीक होकर, लड़ रहे थे। इस तरह कांग्रेस के अन्दर एक खासा बड़ा दल तैयार हो गया था, जो कांग्रेस की नीति मे परिवर्तन कराना चाहता था। कांग्रेस के अन्दर ब्रिटिश-भारत के रहनेवालों मे भी बहुतेरे ऐसे थे, जो ब्रिटिश-भारत और देशी भारत में कोई अन्तर देखना नही चाहते थे। इसलिए बम्बई-कांग्रेस के समय ही यह आवाज उठाई गई कि कांग्रेस की नीति बदली जाय।

स्वय महात्मा गांधी का जन्म एक देशी राज्य मे हुआ था। वह काठियावाड़ के राज्यों से अच्छी तरह परिचित है। ब्रिटिश-गुजरात देशी राज्यों से केवल घिरा ही हुआ नही है, बीच-बीच में दोनों के गांव एक-दूसरे से इस तरह मिले-जुले है कि यह कहना कठिन होता है कि कहां ब्रिटिश राज्य है और कहां किसी देशी राज्य का शासन है। इस तरह, उनको और सरदार वल्लभभाई पटेल को, दोनों को, देशी रजवाड़ों की स्थिति का पूरा अनुभव है। वहां की प्रजा से भी उनका काफी परिचय है। महात्माजी का विचार

था कि यदि हम ब्रिटिश-भारत से देशी रजवाड़ों में काम करना शुरू करेंगे तो वहां काम ठीक न हो सकेगा; वहां की प्रजा को अपने पैरों पर खड़ा होने का वह सुअवसर भी न मिलेगा, जिससे उसमें आवश्यक शक्ति पैदा हो सके। इसलिए, वह देशी राज्यों की प्रजा के साथ काफी सहानुभूति रखते हुए भी यह नहीं चाहते थे कि कांग्रेस अपना काम रजवाड़ों में भी उसी तरह जारी करे जिस तरह वह ब्रिटिश भारत में करती है। हां, वहां की प्रजा इस तरह का आन्दोलन अवश्य कर सकती है और कांग्रेस की सहानुभूति उसके साथ अवश्य है तथा रहेगी—वह सहानुभूति, आवश्यकता और सुविधा के अनुसार, क्रियात्मक भी हो सकती है और होगी; पर वहा के आन्दोलन और सगठन का भार कांग्रेस अपने ऊपर अभी नही ले सकती।

महात्माजी ने अपने एक वक्तव्य मे यह मत प्रकाशित कर दिया। पर उन लोगों को इससे संतोष न हुआ, जो देशी राज्यो के मामले में कांग्रेस का सीधा हस्तक्षेप चाहते थे। मैने कांग्रेस के सभापति की हैसियत से एक बयान निकाला, पर उससे भी लोग सतुष्ट न हुए। अन्त में, वर्किंग कमिटी ने भी एक वक्तव्य निकाला। इसलिए मद्रास मे अखिल भारतीय कमिटी की बैठक करने का एक कारण यह भी था कि वर्किंग कमिटी के निश्चय पर वह विचार कर सके। अखिल भारतीय कमिटी ने वर्किंग कमिटी के वक्तव्य को मंजूर कर लिया और यह झगडा कांग्रेस के अन्दर चलता रहा।

पर इन सबका एक नतीजा वह है, जो हर तरह से वाछनीय था और जो गांधीजी की नीति का उद्देश्य था। अब रजवाड़ो के अन्दर वहां की प्रजा ने अपनी संस्थाएं स्थापित कर ली हैं। बहुतेरे रजवाड़ों मे प्रजामण्डल या किसी दूसरे नाम की संस्थाएं बन गई हैं। अखिल भारतीय देशी राज्य-प्रजामण्डल भी बन गया है। इस तरह वहां के लोग अपना आन्दोलन स्वयं चलाने लगे हैं। कांग्रेस भी, जहां आवश्यकता होगी, जरूर उनकी मदद करेगी। इस स्थिति तक पहुंचने में कई साल लग गये है। १९३५ में अभी बहुत जोरदार बहस चल रही थी। इसलिए नीति निर्धारित करके घोषणा करना आवश्यक था। यह मतभेद केवल राजनैतिक आन्दोलन के सम्बन्ध में ही था। जहातक वहां की प्रजातन्त्रात्मक शासन-पद्धति की बात थी, कांग्रेस भी उसे पूर्णरूपेण उसी तरह अपना उद्देश्य समझती थी जिस तरह वह ब्रिटिश भारत के लिए समझती थी। इसकी घोषणा भी वह कर चुकी थी। रचनात्मक काम के सम्बन्ध में भी कोई मतभेद न था। कई रियासतों के अन्दर अछूतोद्धार-सम्बन्धी कार्य, और खादी की उत्पत्ति तथा उसके प्रचार का काम; कई वर्षों से खूब चलता रहा है; इसमें भी कोई मतभेद न था।

: ११४ :

दक्षिण भारत का दौरा

मैं वर्धा से मद्रास के लिए रवाना हुआ। वहापर अखिल भारतीय कमिटी की बैठक के बाद दक्षिण भारत की यात्रा आरम्भ की गई। यहां का भी कार्यक्रम वैसा ही था—दिन-भर मोटर पर चलना, रास्ते में स्थान-स्थान पर भाषण देते जाना, दोपहर को कहीं कुछ देर के लिए भोजन और विश्राम के वास्ते ठहर जाना, फिर रात के नौ-दस बजे तक वही सिलसिला जारी रखना। प्रायः संध्या तक किसी बड़े स्थान पर पहुंच जाता था, जहां रात को रहता और जहां संध्या के बाद ही सभा होती।

दक्षिण भारत की उस यात्रा मे भाषा का प्रश्न उपस्थित हुआ। मध्य-प्रदेश और प्रायः महाराष्ट्र तक मे मैंने हिन्दी में ही भाषण किये। कहीं-कही खासकर गावो में, श्री शकरराव देव मेरे भाषण का उल्था कर देते; पर अधिकांश जगहो मे हिन्दी से ही काम चल जाता। पर तमिलनाड में यह बात नहीं थी। वहां तो मद्रास से ही मुझे अगरेजी में भाषण करना पड़ा। मैं जो कुछ कहता, उसके प्रत्येक वाक्य का भाषान्तर कोई स्थानीय सज्जन कर दिया करते।

दक्षिण भारत में हिन्दी-प्रचार का काम १९१८ से ही, महात्मा गांधीजी की प्रेरणा से, हो रहा है। तामिल-प्रदेश में भी हजारों स्त्री-पुरुष ऐसे हो गय हैं, जो हिन्दी बोल और समझ लेते हैं। मैं जिस बड़े शहर में पहुंचता, हिन्दी-प्रचारकों से मुलाकात हो जाती। कुछ तो वहां के ही निवासी थे, जिन्होंने हिन्दी सीख ली है; कुछ उत्तर भारत के रहनेवाले हैं, जो बिहार तथा युक्तप्रान्त से जाकर वहां उस काम मे लगे हुए हैं। वहां के लोगों का हिन्दी के प्रति प्रेम और श्रद्धा अवर्णनीय है। हिन्दी-प्रचार का काम विशेष-कर पढ़े-लिखे लोगों में ही अधिक हुआ है। स्त्रियों ने इसमें उतना ही रस लिया है जितना पुरुषों ने। हिन्दी-पाठशालाओं में बूढ़े और बच्चे, स्त्रियां और पुरुष, एक साथ शिक्षा पाते हैं। जब मैं एक बार और दक्षिण में गया था तो मैंने देखा था कि एक ही सभा में पिता और पुत्र, माता और पुत्री को हिन्दी-परीक्षा पास करने के प्रमाणपत्र एक साथ ही दिय गए थे। यह सिल-सिला अभीतक जारी है। लाखों लोगों ने हिन्दी का ज्ञान प्राप्त कर लिया

है। तो भी हिन्दी में भाषण करना अभी सम्भव न था; क्योंकि हजारों की संख्या में जो लोग जमा होते, उनमें हिन्दी समझनेवाले थोड़े ही होते। अंगरेजी जाननेवालों की सख्या हिन्दी जाननेवालों से कहीं ज्यादा होती। तो भी सारी जनता में उनकी गणना भी बहुत थोड़ी ही होती। इसलिए, मैं चाहे अंगरेजी मे बोलता या हिन्दी मे, सभा मे उपस्थित सौ आदमियों मे प्राय: नव्वे ऐसे होते ही, जो न हिन्दी समझते थे, न अंगरेजी, और उनके लिए भाषण का भाषान्तर हर हालत में आवश्यक होता।

मद्रास-जैसे बड़े शहर मे शायद अंगरेजी जाननेवालों की संख्या गांवों की अपेक्षा बहुत अधिक होगी; पर वहां भी अंगरेजी में भाषण समझनेवालो की गिनती थोड़ी ही होगी। पर जो थोडे-बहुत अंगरेजी जाननेवाले होते उनके बराबर भी हिन्दी जाननेवाले न होते। किन्तु इससे भी अधिक बड़ा कारण अंगरेजी में भाषण करने का यह होता कि अगरेजी से तमिल में उल्था करनेवाला आसानी से सभी जगहों मे मिल जाता; किन्तु हिन्दी से तमिल में उल्था करनेवाला मिलना कठिन होता। इसलिए मुझे तमिलनाड में और केरल प्रदेश में अधिकतर अगरेजी मे ही भाषण करने पड़े। बहुत दिनो से अंगरेजी अधिक बोलने की आदत छूट गई थी; पर दो-चार सभाओ के बाद ही फिर मुह खुल गया और मैं अच्छी तरह से भाषण कर सका।

एक और चीज थी, जिसका जिक्र कर देना अच्छा होगा। मद्रास में 'हिन्दू' नामक अगरेजी दैनिक पत्र बहुत पुराना और प्रतिष्ठित है। इसकी बिक्री बहुत काफी है। छपाई इत्यादि भी बहुत सुन्दर है। इसका सम्पादन और समाचार-संग्रह भी बहुत ही अच्छा होता है। यदि यह कहा जाय कि हिन्दुस्तान के सभी हिन्दुस्तानी पत्रो मे, जो अगरेजी मे छपते है, यह सबसे अच्छा है तो अतिशयोक्ति न होगी। इसका मुझे अनुभव वहां पूरी तरह से हो गया। मैं जिस दिन मद्रास पहुंचा, स्टेशन पर लोगों ने स्वागत किया। वहीं एक छोटी-सी सभा हो गई—छोटी इस माने में कि जो सभा समुद्र के किनारे होती उसके मुकाबले में वह छोटी ही थी। पर तो भी वहां हजारों आदमी मौजूद थे। वहा मुझे सम्मान के साथ उतारकर लोग ले गये। वहीं मुझे पहले-पहल उस प्रान्त मे कुछ कहना पड़ा। वहां से जलूस निकला, जो शहर के कई हिस्सों से गुजरता हुआ मैलापुर गया, जहां मुझे ठहरना था। रास्ते में 'हिन्दू' का आफिस पड़ता था। जलूस जब 'हिन्दू'-आफिस के सामने पहुंचा, 'हिन्दू' का एक अंक, जो उन दिनों संध्या के समय निकला करता था, मेरे हाथ में दिया गया। उसमें मैंने स्टेशन के स्वागत का वर्णन और वहां के दृश्य का चित्र तथा अपना भाषण भी देख लिया। मैं जहां-

कही गया, 'हिन्दू' का संवाददाता मौजूद मिला करता। वह मेरे पूरे भाषण को, जो अंगरेजी में ही हुआ करता था, पूरा-पूरा अपने पत्र के पास लिख भेजा करता। इस तरह तमिलनाड में और केरल मे मेरे भाषणों की जैसी पूरी और अच्छी रिपोर्ट छपी वैसी और कही नही। 'हिन्दू' के संवाददाता सभी जगहो मे होते। ऐसा नही था कि कोई संवाददाता मेरे साथ-साथ सफर में फिरता रहा हो। स्थानीय संवाददाता भी शीघ्रलिपि जानते थे, अगरेजी की अच्छी लियाकत रखते थे और अपने काम में इतने तत्पर होते थे कि मद्रास से किसीको मेरे साथ घूमने की जरूरत न हुई।

उन सभी स्थानो का नाम देना तो कठिन है, जहा-जहा मैं गया। यदि मै ऐसा कहू कि सारे सूबे मे शायद ही कोई तालुका या शहर होगा जहां मैं नही गया, और एक तालुके से दूसरे तालुके तक के रास्ते मे शायद ही कोई मुख्य स्थान होगा जहां मै कुछ देर के लिए न ठहरा होऊ, तो अत्युक्ति नहीं होगी। इस सफर मे भी प्रायः सारा रास्ता मोटर पर ही कटा। कही-कहीं ऐसा हुआ कि एक रास्ते पर दो बार जाना पड़ा, तो वहा एक ओर से रेल पर सफर किया गया।

मैने ऊपर कहा है कि मद्रास में ब्राह्मण-अब्राह्मण का झगड़ा कुछ वैसा ही है जैसा उत्तर भारत मे हिन्दू-मुसलमान का अथवा बगाली-बिहारी का बिहार मे। जस्टिस-पार्टी अब्राह्मणों का दल है। वहा मेरे जाने के एक वर्ष पहले ही वह केन्द्रीय असेम्बली के चुनाव में काग्रेस से हार चुकी थी। पर उसका असर तो अभी बहुत-कुछ बाकी था। इसलिए कही-कहीं इस तरह के सवाल किये जाते थे, जिनसे यह टपकता था कि वे लोग कांग्रेस को ब्राह्मणों की सस्था समझते हैं। मैने कई जगहों मे साफ-साफ कहा कि कांग्रेस में सबके लिए स्थान है और आज भी उसकी वर्किंग कमिटी मे बहुत-से अब्राह्मण हैं। उदाहरणार्थ—महात्मा गाधी, सरदार वल्लभभाई पटेल, आचार्य कृपालानी और अपना नाम भी मैने लिया। मैने देखा कि कारण चाहे जो हो, इस तरह के प्रचार का यह बुरा फल हुआ है कि कांग्रेस-जैसी संस्था के सम्बन्ध मे भी लोगों मे सन्देह पैदा कर दिया गया है।

पर इससे भी अधिक एक दिलचस्प चीज और कहीं-कही देखने में आई। वहापर एक दल अब्राह्मणों का कायम हुआ था, जो अपनेको स्वाभिमानी दल (सेल्फ रिस्पेक्ट पार्टी) कहा करता था। उस दल की ओर से कहीं-कही कुछ लोग स्वागत के समय, काले झंडे दिखलाते और 'गो-बैक'—'लौट जाओ' का नारा लगाते। पर यह दल इतना छोटा होता कि केवल एक मजाक की चीज ही बन जाता। मुझे याद है कि एक सभा में कुछ लोग 'गो-बैक' के नारे लगाकर शोर मचा रहे थे। मैंने हँसकर सभा से पूछा कि

कितने लोग चाहते हैं कि मैं वापस चला जाऊं और कितने चाहते हैं कि मैं न जाऊं। लोगों ने जो हाथ उठाकर अपनी राय बतलाई तो साफ हो गया कि 'गो-बैक' कहनेवालो की संख्या बहुत थोड़ी थी। मैंने भाषण इसी प्रश्न से शुरू किया—इतने अधिक लोग चाहते है कि मैं न जाऊं और इतने थोड़े लोग चाहते हैं कि मैं जाऊं, तो ऐसी अवस्था मे मैं क्या करूं? मेरे प्रश्न करते ही सारी सभा में हँसी हुई। लोग इतना हँसे कि 'गो-बैक' कहनेवाले भी अपनी हँसी न रोक सके, वे भी उस हँसी में शरीक हो गये। उसके बाद सभा शान्ति से हुई।

एक दूसरे स्थान मे रात को सभा हो रही थी। कुछ लोग शोर मचाने लगे। पर सभा बहुत बड़ी थी। मुझ तक उस शोर का असर नही पहुचा था। पर वहां के लोग उससे ऊब गये। पुलिसवाले भी गुस्से में आ गये। शोर मचानेवालों की संख्या बहुत थोड़ी थी। पुलिस ने उनको पकड़कर पास के ही एक मकान में बन्द कर दिया। जबतक सभा होती रही, उनको बन्द ही रक्खा। इसकी खबर मुझे पीछे लगी। पर मैंने यह देखा कि जो काले झंडे दिखलाने के लिए आते, वे भी कुछ देर तक शोरगुल मचाकर भाषण होने लगने पर चुप हो जाते और उसे ध्यान से सुनते। बीच-बीच मे, विशेषकर जलूस और स्वागत के समय ही, वे अपनी शक्ति खर्च करते, मेरे भाषण के समय नही।

तमिलनाड, केरल और आन्ध्र प्रदेशों में बहुत जबरदस्त स्वागत हुआ। प्रचार-कार्य भी काफी हुआ। आन्ध्र मे मै सबसे पीछे आया। वहांपर एक नई बात यह हुई कि मेरे पूरे सफर में हिन्दी-प्रचार-सभा के श्री सत्यनारायण साथ रहे। वह आन्ध्र के रहनेवाले हैं। पर हिन्दी का ज्ञान उनका इतना अच्छा है कि यदि वह भाषण देने लगें तो किसी हिन्दी-भाषी को यह संदेह न होगा कि वह हिन्दी-भाषी नही हैं। इसलिए वहां मेरे भाषणों के भाषान्तर का प्रश्न बहुत आसान हो गया। आन्ध्र में तमिल की अपेक्षा हिन्दी-प्रचार अधिक भी हुआ है। वहा मैंने यह भी देखा कि बहुत जगहों में लोग मेरा भाषण हिन्दी में ही सुनना चाहते थे। इसलिए, आन्ध्र में कुछ स्थानों को छोड़कर और सब जगहों में मैंने हिन्दी में ही भाषण किया। सत्यनारायणजी-जैसा भाषान्तरकार साथ में था। जहांतक मैं समझ सकता था, मेरे भावों का वह बहुत सुन्दर रीति से तेलुगू में उल्था करके बता देते थे। बात तो यह है कि वहां भी सौ में नब्बे ऐसे ही लोग हुआ करते थे, जो न हिन्दी जानते थे और न अंगरेजी; उनको तेलुगु-उल्था के लिए हर हालत में इन्तजार करना पड़ता था—चाहे मैं अंगरेजी में बोलूं या हिन्दी में। यही बात तमिलनाड में भी थी। पर आन्ध्र के जो थोड़े अंगरेजी जाननेवाले होते, वे

भी या तो हिन्दी समझ लेते या तेलुगू-भाषान्तर के लिए इन्तजार करने को तैयार होते। तमिलनाड के अगरेजी जाननेवाले इतना सब्र नही कर सकते।

इस यात्रा से मुझे इस बात का पता चला कि हिन्दी-प्रचार-सभा ने कितने महत्व का काम किया है और वह काम राष्ट्र-निर्माण में कितना सहायक हुआ है तथा आगे कितना सहायक होगा। एक बात और देखने मे आई। मैं जहा गया वहां जो थोड़े मुसलमान मिले, उनमें बहुतेरे टूटी-फूटी हिन्दी कुछ-न-कुछ समझ लेते थे। उनकी बोली तो शायद उस स्थान की ही बोली होगी, पर वे न मालूम किस तरह कुछ-कुछ ऐसी बोली समझ लेते, जिसे मै समझ सकता। वह न शुद्ध हिन्दी होती और न फारसी-मिश्रित शुद्ध उर्दू। वह तो होती एक ऐसी सरल भाषा जिसे प्रत्येक हिन्दी-भाषी समझ सकता है। इस भाषा को वहां के लोग 'मुसलमानी' कहा करते थे। इससे अनुमान हुआ कि इसे मुसलमान ही उत्तर भारत से उस तरफ ले गये थे।

तमिलनाड की यात्रा मे मै दो स्थानो का उल्लेख जरूरी समझता हूं। मै तिरुवन्नमलय मे जब पहुचा तो मालूम हुआ कि यही रमण महर्षि निवास करते है। यात्रा का क्रम इतना कड़ा था कि वहां मै ठहर न सका। चन्द मिनटो के लिए उनका दर्शनमात्र कर सका। पर मेरी इच्छा हो गई कि यदि हो सका तो कभी आकर अच्छी तरह से दर्शन करूगा। कुछ दिनों के बाद श्री शकरलाल बैंकर ने भी मुझे वहा जाने की सलाह दी। वह स्वयं वहा कई बार गये थे और उनके हृदय पर अच्छा प्रभाव पड़ा था। इसलिए कई बरसों के बाद एक बार सेठ जमनालालजी के साथ मैं वहा गया। कई दिनों तक वहा ठहरकर महर्षि के दर्शन करता रहा। दूसरी जगह, जिसका उल्लेख करना चाहता हूं, चिदम्बरम् है। वहीपर अन्नमलय-युनिवर्सिटी राजा अन्नमलय चेट्टियर के दान से बनी है। उन दिनों श्रीनिवास शास्त्री वहा के वाइस-चासलर थे। उन्होने मुझे लिखा था कि जब मैं वहां जाऊं तो उनके ही साथ ठहरूं। मुझे यह बात बहुत पसन्द आई। मैं दो दिनों तक उनका अतिथि रहा। यो तो श्री शास्त्रीजी से मेरा पहले का परिचय था; पर यह पहला ही अवसर था जब मै उनके साथ एक-दो दिनों तक ठहरा। इसका असर यह हुआ कि मेरी श्रद्धा उनके प्रति और भी बढ़ गई।

केरल-प्रान्त में मै कोचीन भी गया। वहां तातापुरम् में तेल के बड़े कारखाने को देखा। पर मैं ट्रावनकोर-राज्य में दो-एक स्थानों को ही देख सका। इनमें एक कन्याकुमारी है। वहांपर जाकर कुछ समय मैंने बिताया। हिन्दुस्तान का सबसे दक्षिणी अन्तरीप, जहां बंगाल-उपसागर और अरब-सागर मिलते हैं, भारत के लिए और संसार के लिए, एक विशेष महत्व

रखता है। लोगों ने भारत के नक्शे पर भारत-माता को एक स्त्री के रूप में चित्रित दिखलाने का प्रयत्न किया है। चित्र मे माता के चरण यहीं पड़ते हैं। मैंने सुना है कि जब स्वामी विवेकानन्द इस स्थान पर पहुंचे और यहां की चट्टानों को, जो माता के चरण हैं, देखा—जिनको समुद्र बराबर अपनी लहरों से धोता रहता है—तो वह अनायास वहां साष्टाग दण्डवत् करके माता के चरणों में गिर पड़े। मेरी भावना भी उस स्थान पर कुछ वैसी ही हुई। फिर जब मैंने यह सोचा कि कन्याकुमारी के सामने दक्खिन मे दक्षिण-ध्रुव तक कोई दूसरा टापू अथवा जमीन का टुकड़ा नही मिलता, तो यह भावना और भी दृढ़ हुई कि प्रकृति ने यहीपर एक प्रकार से पृथ्वी का अन्त किया है। जमीन उत्तर ध्रुव से साइबीरिया, चीन, तिब्बत, हिमालय होते भारत को पार करके वहां (कन्याकुमारी) तक फैली है। वही उसका अन्त हो जाता है। उनके दक्खिन में केवल जल-ही-जल है, जो दक्षिणी-ध्रुव तक फैला हुआ है। वह सचमुच हमारे लिए एक अत्यन्त सुन्दर, मनोहर एवं पवित्र स्थान है, जिसको देखकर कोई भारतवासी भारत की एकता और एकसूत्रता को भूल नही सकता।

कन्याकुमारी से उत्तर प्रायः श्री जगन्नाथपुरी तक मैं बराबर मोटर पर घूमा। यह तो भारत के पूर्वी हिस्से मे समुद्र के किनारे-किनारे भ्रमण हुआ। उसी तरह, पश्चिमी किनारे पर भी कर्नाटक और महाराष्ट्र की यात्रा में, बंगलौर से लेकर गुजरात तक, मोटर पर भ्रमण कर चुका था। बीच के शहरों में भी वहां के प्रायः सभी मुख्य स्थानों को देखने का अवसर मिला था। जो थोड़े स्थान ऐसे थे, जहां नही जा सका था, वहां पीछे गया। इस प्रकार, केवल हैदराबाद-राज्य के अन्दर के स्थानों को छोड़कर, मैं विन्ध्य के दक्षिण सारे भारत का पूरा दौरा कर चुका हू।

कार्यक्रम ऐसा बना था कि दिसम्बर की २० या २१ तारीख तक मैं प्रायः तीन महीनों में सफर समाप्त करके वर्धा पहुंच जाऊं और वहां से बम्बई जाऊं, जहां कांग्रेस की जयन्ती मनाने का प्रबन्ध किया गया था। मैं आन्ध्र में सबसे पीछे विशाखापट्टन (विजगापट्टम्) में पहुंचा। वहां से ट्रेन पर सवार होकर रायपुर आया। रायपुर में, श्री पंडित रविशंकर शुक्लजी के आग्रह से, वहां की सेवा-समिति के उत्सव में शरीक होने का, पहले से ही वचन दे चुका था। उस उत्सव को देखकर वर्धा गया। वर्धा में एक या दो दिन ठहरकर बम्बई चला गया।

: ११५ :

कांग्रेस की स्वर्ण-जयन्ती

काग्रेस-जयन्ती के अवसर पर सारे देश मे उत्सव मनाने का प्रबन्ध किया गया था। मुख्य उत्सव बम्बई मे ठीक उसी स्थान पर होनेवाला था, जहा कांग्रेस का पहला अधिवेशन सन् १८८५ के दिसम्बर में हुआ था। बम्बई की प्रान्तीय कमिटी ने इस उत्सव के लिए समुचित प्रबन्ध किया था। जब मैं बम्बई पहुंचा, मुझे यह मालूम हुआ कि सर दिनशा वाचा बहुत बीमार है। उस समय शायद वही एकमात्र जीवित व्यक्ति थे, जिन्होने काग्रेस के पहले अधिवेशन में भाग लिया था। पडित मदनमोहन मालवीयजी शायद एक या दो वर्ष बाद से काग्रेस में आने लगे। सर दिनशा वाचा केवल सबसे पुराने कांग्रेसी ही नही थे, वह कांग्रेस के सबसे बूढे सभापति भी थे, जो उस समय जीवित थे। इसलिए मैने अपना कर्त्तव्य समझा कि उत्सव का कार्यारम्भ उनके दर्शन करके और उनके आशीर्वाद के साथ करूं। इधर कई बरसों से उनका कांग्रेस के साथ बहुत गहरा मतभेद हो गया था। वह कांग्रेस से बहुत दूर हो गये थे। तो भी उनकी सेवाओं को, काग्रेस के इतिहास से परिचय रखनेवाला, कोई भी भारतीय भुला नहीं सकता। उनके दर्शन मैने प्रायः उनकी बेहोशी की हालत में किये, पर यह भी मेरे लिए सौभाग्य की बात थी।

जयन्ती का उत्सव बड़े समारोह से बम्बई में हुआ। भारत में प्रायः सभी शहरों में वह बहुत धूमधाम से मनाया गया। लोगों ने दिवाली मनाई, बडी-बड़ी सभाएं की, कांग्रेस के इतिहास-सम्बन्धी भाषण किये। एक विशेष वक्तव्य जो निकाला गया था, उसे पढकर सर्वत्र लोगों को बतलाया गया। मैंने और कही के उत्सव को तो नही देखा, पर उसके वर्णन पढ़े। पटने लौटने पर पटने में मनाये गए उत्सव का हाल साथियों से सुना। शायद इस तरह का उत्सव इसके पहले कभी सारे देश में जनता ने इतने उत्साह से नही मनाया था। उसी साल ब्रिटिश बादशाह पंचम जार्ज के राज्य के पच्चीस वर्ष पूरे हुए थे, जिसके लिए रजतजयन्ती मनाई गई थी। लोगों के दिल में शायद यह भी स्पर्धा थी कि राष्ट्रीय महासभा की जयन्ती भी शान-शौकत से मनाई जाय। इस भावना को उन्होंने इस उत्सव के अवसर पर कार्य-रूप में प्रदर्शित किया।

इस सफर में मेरे भाषणों का लक्ष्य और तात्पर्य एक ही था—कांग्रेस के संगठन को मजबूत बनाना चाहिए। जहांतक मैं समझ सका, इस दौरे का असर अच्छा ही पड़ा; क्योंकि जनता चाहती थी कि १९३०-३४ के सत्याग्रह के बाद, जब सरकार ने अपने जानते कांग्रेस को खूब दबा डाला था, उसे यह दिखलाने का मौका मिले कि वह अब भी कांग्रेस के प्रति वही प्रेम और श्रद्धा रखती है। मैने अपने सभापतित्व-काल को इस तरह बहुत दौड़-धूप करके बिताया। शायद मेरे पहले किसी सभापति ने इतना लम्बा-चौड़ा सफर नही किया था। पंडित जवाहरलालजी ने, जो मेरे बाद ही फिर दूसरी बार सभापति हुए, इस सिलसिले को जारी रक्खा। अपनी जबरदस्त शारीरिक शक्ति से उन्होने इससे भी ज्यादा कठिन यात्रा की।

१९२९ के दिसम्बर में लाहौर-कांग्रेस में निश्चय हुआ था कि कांग्रेस का अधिवेशन फरवरी या मार्च मे हुआ करे। इसी निश्चय के अनुसार कराची का अधिवेशन १९३० के दिसम्बर में न होकर १९३१ के मार्च मे ही होना था। १९३० के दिसम्बर में सत्याग्रह चल रहा था, इसलिए उस समय अधिवेशन नही हो सकता था। पर नियमानुकूल उसे १९३१ के मार्च मे ही होना था और वह कराची में हुआ भी। १९३२-३३ में सत्याग्रह के कारण बाजाब्ता अधिवेशन नहीं हुआ। पर पुलिस की आज्ञा के विरुद्ध, दिल्ली और कलकत्ते में, नियमानुसार समय पर, लाठियो के प्रहारों के बीच, अधिवेशन हुए। १९३४ मे बाजाब्ता अधिवेशन हुआ, पर मार्च में नही; क्योंकि उस समय कांग्रेस गैर-कानूनी संस्था थी। वह अधिवेशन अक्तूबर मे बम्बई में हुआ। अब १९३५ के मार्च में यदि अधिवेशन होता तो वह पिछले अधिवेशन के पांच महीने बाद ही पडता। इसलिए निश्चय किया गया कि १९३५ के बाद ही अधिवेशन किया जाय—१९३६ के फरवरी-मार्च में। पंडित जवाहरलालजी बम्बई-अधिवेशन के समय जेल में थे। बाद में जेल से छूटने पर, श्रीमती कमला नेहरू की बीमारी के कारण, वह उनके पास यूरोप चले गये, जहां देवीजी का देहान्त हो गया। पंडित जवाहरलालजी ही कांग्रेस के सभापति चुने गये थे। इसलिए उनके वापस आ जाने पर और आ जाने के बाद देश की परिस्थिति समझ लेने पर ही अधिवेशन हो सकता था। इसलिए दूसरा अधिवेशन १९३६ के अप्रैल मे लखनऊ में हुआ। १९३५ के अन्त तक मैं सफर और जयन्ती में लगा रहा। उसके बाद सर्दी के कारण कुछ अस्वस्थ हो गया। कुछ आराम कर लेना आवश्यक था। इसलिए ज्यादा लम्बा सफर नहीं कर सका।

जिस दिन पंडित जवाहरलालजी यूरोप से कमलाजी के 'फूल' लेकर हवाई जहाज से उतरे, मैं उनके स्वागतार्थ प्रयाग गया। वह शोक का दिन

था; क्योंकि कमलाजी-जैसी निपुण काम करनेवाली और देश के साथ प्रेम रखनेवाली स्त्री विरली ही मिलती है। इसपर उनका विदेश में देहान्त और जवाहरलालजी का उनकी राख के साथ वापस आना—सभी दुःख बढ़ानेवाली बातें थीं। बड़े समारोह के साथ उनका अस्थि-विसर्जन त्रिवेणी-संगम पर किया गया। इसके बाद से ही लखनऊ-कांग्रेस की तैयारी होने लगी।

एक प्रश्न जवाहरलालजी के सभापतित्व के सम्बन्ध में उठा था। उस समय तक कांग्रेस का एक अलिखित नियम माना जाता था कि जिस सूबे में सालाना अधिवेशन हो, उस सूबे का आदमी सभापति नहीं हो सकता। जवाहरलालजी युक्त प्रान्त के रहनेवाले ही नहीं थे, वहां की प्रान्तीय कमिटी के प्रधान या सभापति नहीं तो प्रधान काम करनेवालों में जरूर थे। इसलिए कुछ लोगों ने यह प्रश्न उठाया कि वह सभापति हो सकते हैं या नहीं। पर गांधीजी ने राय दी कि ऐसी कोई बात विधान में नहीं है और इसकी कोई आवश्यकता भी नहीं है। इसलिए पंडितजी के सभापति चुने जाने में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए।

: ११६ :

लखनऊ-कांग्रेस

लखनऊ के अधिवेशन के पहले वर्किंग कमिटी की एक बैठक दिल्ली मे हुई, जिसमें महात्माजी भी आये। जवाहरलालजी बहुत दिनों के बाद लौटे थे और विलायत जाने के पहले भी बहुत दिनो से जेल में थे। इसलिए उनकी इच्छा थी और यह मुनासिब भी था कि भावी सभापति वर्किंग कमिटी से, कांग्रेस के अधिवेशन के कुछ पहले ही, मिल लें और अधिवेशन के विचारार्थ विषयों पर भी विचार-विनिमय कर लें। जवाहरलालजी के विचार पहले से ही साम्यवाद के पक्ष में है और यूरोप की यात्रा के बाद उनके विचार अधिक पुष्ट हो गये थे। हम सब उस विषय को न तो बहुत समझते थे और न मानते थे। देश में कांग्रेस के अन्दर सोशलिस्ट-पार्टी का जन्म हो ही गया था। पंडितजी यद्यपि उस पार्टी में शरीक नही हुए तथापि बहुत-से विषयों में एक विचार होने के कारण उनकी राय उस पार्टी के साथ मिल जाती थी। दिल्ली की बैठक मे हमने देखा कि कई विषयों पर उनका और मेरा मतभेद है। यह मतभद कार्यक्रम के सम्बन्ध में उतना नही होता जितना दृष्टिकोण के सबंध मे। हम दोनों यदि किसी कार्यक्रम के संबध में एक राय भी रखते तो उस नतीजे पर हम दो रास्ते से पहुचे होते। यदि एक ही बात को कहना भी चाहते तो उसे दो प्रकार की भाषा मे कहते। यदि एक ही रास्ते पर चलना भी चाहते तो दो प्रकार की सवारियों पर चलना चाहते। यदि एक ही प्रस्ताव करना चाहते तो उसकी अलग-अलग भूमिका बनाते। इतनी भूमिका यहां दे देना आवश्यक है; क्योंकि पीछे चलकर वह मतभेद प्रकट हो गया और लखनऊ-कांग्रेस में तो सर्वथा स्पष्ट हो गया।

लखनऊ-अधिवेशन के कई दिन पहले प्रयाग में वर्किंग कमिटी की बैठक हुई। अनुभव से देखा गया है कि वर्किंग कमिटी में कांग्रेस के लिए प्रस्तावों के तैयार करने में काफी समय लगता है। शुरू में तो हम सुस्ती से काम करते है, अर्थात् छोटी-मोटी बातों में भी अधिक समय लगाते हैं; पर जब विषय-निर्वाचिनी की बैठक का समय पहुंच जाता है तो जल्दी-जल्दी उसके लिए प्रस्ताव तैयार करने पड़ते हैं। इसका नतीजा होता है कि सब प्रस्ताव ठीक समय

कांग्रेस पर तैयार नहीं हो पाते या ठीक समय से छपकर सदस्यों में बांटे नहीं जा सकते और इस बात की उनकी शिकायत रह जाती है। इसीलिए लखनऊ के कुछ पहले सोचा गया कि वर्किंग कमिटी की बैठक कुछ पहले ही हो और प्रस्ताव तैयार करके प्रकाशित कर दे अथवा छपवा ले, ताकि विषय-निर्वाचिनी के समय जल्दी न करनी पड़े। हां, अगर कोई नई बात पैदा हो जाय अथवा कोई ऐसा विषय उपस्थित हो जाय, जिसपर विचार करना आवश्यक है तो उसपर उस समय भी विचार किया जा सकता है। इस-लिए, यद्यपि नियमावली में कोई ऐसी बात नही थी तथापि यह बैठक कई दिन पूर्व ही की गई। वही कुछ प्रस्ताव तैयार किये गए और कुछ लखनऊ के लिए छोड़ रखे गए।

लखनऊ-अधिवेशन में, जैसा ऊपर कहा गया है, मतभेद रहा। यदि कोई यह कहे कि किस विषय मे मतभेद रहा, तो शायद इसे उस रीति से बता देना कठिन है; पर जैसा ऊपर कहा गया है, मतभेद अधिकतर दृष्टि-कोण का ही था। ऊपर कहा जा चुका है कि बम्बई-काग्रेस के समय सुधार-सम्बन्धी ब्रिटिश सरकार के प्रस्ताव मालूम हो चुके थे, यद्यपि अभी पूरा कानून नही बना था। बम्बई-कांग्रेस ने उसे नामजूर कर दिया था। मेरे दक्षिण भारत के दौरे मे मुझसे इस सम्बन्ध के प्रश्न किये जाते—विशेषकर यह कि काग्रेस नये विधान के अनुसार मत्रिपद ग्रहण करेगी या नही। कांग्रेस के अन्दर एक दल पैदा हो गया था, जो यह कह रहा था कि काग्रेस को मंत्रिपद ग्रहण करना चाहिए, दूसरा दल इसके विरुद्ध था। विरोधियों में सबसे अधिक बोलनेवाले सोशलिस्ट लोग ही थे। काग्रेस ने यद्यपि विधान को नामंजूर कर दिया था तथापि उसने इस बात का निश्चय नहीं किया था कि वह अपनी नामंजूरी को किस तरह व्यक्त करेगी। कांग्रेस के नामं-जूर कर देने से वह कानून रद नही हो जाता था। इसलिए, उसके अनुसार जो चुनाव होंगे, उनमें काग्रेस भाग लेगी या नही; चुनाव का बहिष्कार उस तरह करेगी या नही जिस तरह उसने १९२० के चुनाव का किया था? यदि चुनाव में भाग लेगी तो उसके बाद वह क्या करेगी? यदि कांग्रेस को बहुमत मिल जाय तो उस हालत मे क्या वह स्वयं मंत्रिमंडल न बनाकर दूसरों को भी न बनाने देगी अथवा वह किसी दूसरे प्रकार से अड़गा-नीति द्वारा उस विधान को बेकार बनावेगी? उसकी नीति का सफल होना या न होना बहुत करके उसके सदस्यों के बहुमत से चुने जाने पर ही निर्भर था; इसलिए चुनाव के पहले कुछ भी निश्चित रूप से तय कर देना सम्भव और उचित नहीं था। अतः मुझसे जब कोई प्रश्न करता तो मुझे यही कहना पड़ता कि कांग्रेस ने विधान को नामंजूर कर दिया है, पर वह ना-

मंजूरी किस तरह कार्यान्वित होगी, इसका निश्चय अभी नहीं हुआ है, समय आने पर ही निश्चय किया जायगा। इस उत्तर के लोग तरह-तरह के अर्थ लगाते। पर बात यह थी कि कांग्रेस ने इससे ज्यादा अभीतक निश्चय किया ही नहीं था। यदि मैं सभापति की हैसियत से कुछ कह देता तो अभी से आपस का मतभेद इस विषय पर केन्द्रित हो जाता—दिन-रात यही बहस चलने लगती।

एक दूसरा प्रश्न था, जिसके सम्बन्ध में यद्यपि मतभेद मौलिक नहीं था तथापि जब-तब सामने आ जाता था। यूरोप में युद्ध का वातावरण पैदा हो गया था। इटली ने अबीसीनिया पर चढ़ाई करके उसे दखल करने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया था। इंगलैंड ऊपर से शायद इटली की उस कार्रवाई को नापसन्द करने योग्य बताता था—अथवा इगलैंड के कुछ लोग इसकी निन्दा करते थे। पर वह सचमुच इस बात को लेकर इटली से भिड़ना नही चाहता था। राष्ट्रसंघ (League of Nations) ने अबीसीनिया के साथ सहानुभूति दिखलाई; पर इससे कुछ अधिक नही किया। कुछ दिनों तक इंगलैंड ने इटली पर आर्थिक दबाव डालने का भी प्रयत्न किया। पर वह भी कुछ ऐसे ही वैसे। हमारे काग्रेसी सोशलिस्ट चाहते थे कि हम इस प्रकार का प्रस्ताव पास करें कि भारतवर्ष किसी लड़ाई में अंगरेजो की मदद नही करेगा और साथ ही वे अबीसीनिया के साथ हमदर्दी भी दिखलाना चाहते थे। जहांतक सताये हुए मुल्क के साथ हमदर्दी का सवाल था, किसी प्रकार का मतभेद नही था; पर और तरह से इस प्रकार के अन्तरराष्ट्रीय विषय पर अपनी राय दे देना मुझे कांग्रेस के लिए समय से पहले जान पड़ता था। पर इसका अर्थ यह नही था कि मै ब्रिटिश सरकार को लड़ाई में मदद करने के पक्ष मे था। इसलिए यदि ऐसे विषय पर कोई प्रस्ताव मुझे बनाना पड़ता तो मै केवल सहानुभूतिसूचक प्रस्ताव बनाता। पर दूसरे पक्ष के लोग सहानुभूति के साथ युद्ध-विरोधी राय भी प्रकट करना चाहते थे।

जो हो, पंडित जवाहरलालजी की राय हमारी राय से नहीं मिलती थी। पर अंतरराष्ट्रीय विषयों में हम मानते थे कि वह हमसे कही अधिक जानकारी रखते है और उनके विचारों की हम बहुत कद्र करते थे। इसलिए उनकी ही बात मान लेते। मंत्रिमंडल के सम्बन्ध में भी उनकी स्पष्ट राय थी कि वह मंत्रिमडल में कांग्रेस की शिरकत नहीं चाहते थे। हमने अभी तक अपनी राय पक्की नही की थी। हम सचमुच इस प्रश्न को उस समय तक उठाना नही चाहते थे जबतक हमारे सदस्यों की संख्या और शक्ति का ठीक पता न लग जाय। जवाहरलालजी ने अपने विचारों को जाहिर

कर दिया—यद्यपि उसके साथ-साथ उन्होंने यह भी कह दिया कि ये उनके निजी विचार हैं, कांग्रेस ने अभीतक कोई निश्चय नहीं किया है।

आज यह कहना मुश्किल है कि लखनऊ में किन बातों पर मतभेद हुआ। पर इतना निश्चय है कि कई विषयों पर हुआ और कमिटी में कई बातों में बहुमत हमारे साथ रहा। पर जैसा ऊपर कह चुका हूं, वे कोई मौलिक बातें नहीं थीं, जिनके कारण हम दोनों का अलग हो जाना अनिवार्य हो जाय—जैसा गया में स्वराज्य-पार्टी और अपरिवर्तनवादियों के लिए हो गया था, विशेषकर कार्यक्रम में कोई मौलिक भेद नहीं था। हम लोग जवाहरलालजी की कार्यदक्षता, त्याग, परिश्रम और विचार-गाम्भीर्य के कायल थे। उनसे अलग होना हम हरगिज किसी तरह पसंद नहीं करते थे। वह भी समझते थे कि सूबों में काम करनेवालों और असर रखनेवालों में शायद हम लोग ज्यादा जबरदस्त थे, इसलिए वह भी हमको अलग करना या हमसे अलग होना नहीं चाहते थे। बात यह थी कि दोनों पक्ष परस्पर पूरा सम्मान का भाव रखते थे और जानते थे कि देश के लिए आपस की जुदाई हितकर नहीं होगी। शायद हम यह भी समझते थे कि हम एक-दूसरे की कमियों को पूरा करते थे। हम यह भी समझते थे कि चाहे हममें जितना भी मतभेद हो, देश यह नहीं बर्दाश्त करेगा कि हम एक-दूसरे से अलग हो जायं। यहांपर मैंने एक ही जगह कितनी बातें कह दीं। इससे यह न समझना चाहिए कि उसी समय कोई दो दल बन गये थे। दो विचार-धाराएं मात्र थीं—किसीने कोई दलबन्दी नहीं की थी और न नये मतभेद उसी दिन इतने स्पष्ट हो गये थे कि हमारे लिए अलग होने की बात उठ खड़ी हुई हो। एक तरह से यह विचार-भेद की धारा भीतर-भीतर तबसे आजतक चली आ रही है। गांधीजी उस समय लखनऊ-कांग्रेस में आये तो जरूर थे, पर उन्होंने इस बहस में बहुत भाग नहीं लिया और जो कुछ हमने किया, अपनी समझ के अनुसार ही किया। पीछे जब यह बहुत बड़ा लोक-व्यापी युद्ध खड़ा हुआ तो कुछ बातों में गांधीजी के साथ भी मतभेद मालूम हो गया।

कांग्रेस के बाद जब वर्किंग कमिटी के संगठन का समय आया तो जवाहरलालजी को कुछ कठिनाई अवश्य हुई। वह नये विचारवाले लोगों को उसमें लेना चाहते थे। हम भी इसके विरोधी नहीं थे; पर हम यह अवश्य चाहते थे कि यदि हम वर्किंग कमिटी में रहें तो उसका संगठन ऐसा हो कि हमारी बातें भी सुनी जायं। महात्माजी ने इस विषय में जवाहरलालजी को राय दी कि वह जिनको उचित समझें, समाजवादियों में से वर्किंग कमिटी में ले लें और शायद उन्होंने उनके नाम भी बताये। हमने भी इसे मान

लिया। वर्किंग कमिटी बनी, जिसमें दो प्रकार की विचार-धाराएं चलतीं, यद्यपि अभी कार्यक्रम में कोई अन्तर नहीं था। समाजवादियो से जो भी मतभेद हो, उसके कारण काम मे बाधा नहीं आती थी, पर उनके प्रचार की रीति कुछ ऐसी थी कि हमें वह अच्छी नही लगती थी। बहुत बातों में जो नीति गांधीजी ने कांग्रेस में १९२० से ही चला रक्खी थी, उसका वह प्रत्यक्ष और परोक्ष रीति से विरोध करते और हमपर यह असर होता कि वह उस सारे कार्यक्रम और नीति को तहस-नहस करना चाहते है, जिसको गांधीजी ने चलाया था—जिसपर कांग्रेस काम करती आ रही थी और जिसपर चलकर वह देश को इतना आगे ले जा चुकी थी। इस विषय में, जहांतक मैं समझता हूं, जवाहरलालजी भी उन लोगों के साथ सहमत नही थे; क्योंकि बहुत-सी बातों में गांधीजी से मतभेद होने पर भी वह उनके नेतृत्व के महत्व को जानते और मानते थे—उसे किसी तरह कमजोर करना नही चाहते थे। यह बात दूसरों में नही थी। यही कारण था कि मतभेद होते हुए भी हम जवाहरलालजी के साथ काम कर सकते थे और दूसरों के साथ चलना कठिन हो जाता था। जो हो, कांग्रेस का अधिवेशन समाप्त हुआ। सब लोग अपने-अपने स्थान के लिए रवाना हुए।

: ११७ :

राष्ट्र-भाषा का प्रश्न

मुझे लखनऊ से ही नागपुर जाना था। वहां अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन होनेवाला था, जिसका मै सभापति निर्वाचित हुआ था और वह ठीक कांग्रेस के बाद तीन-चार दिनो के अन्दर ही होनेवाला था। इसलिए मै उसी गाडी से गया, जिससे महात्माजी गये। उनके साथ ही वर्धा गया और वहां से सम्मेलन के दिन नागपुर आया।

वर्धा में बैठकर मैने भाषण लिखा। कुछ दिनों से इस बात पर बहस चल रही थी कि हिन्दी की शब्दावली मे विदेशी भाषाओं के शब्दों को लेना चाहिए या नहीं। सच पूछिये तो प्रश्न को यह रूप देना भी उचित नही है; क्योंकि कोई भी हिन्दी का लेखक—चाहे वह कितना भी विदेशी शब्दों का विरोधी क्यों न हो—सभी विदेशी शब्दो का बहिष्कार नही करना चाहता, और न अपने लेखों अथवा भाषणों मे उनका बहिष्कार करता है। यह झगड़ा हिन्दी और उर्दू का है। हिन्दी मे, जैसा उसका रूप आज हो गया है और होता जा रहा है, सस्कृत के शब्दों का बाहुल्य होता है। उर्दू मे, जिस तरह वह आज बढ़ और फूल-फल रही है, अरबी और फारसी शब्दों की बहुतायत हुआ करती है। दोनों मे बहुतेरे अच्छे सुलेखक हैं, जो सादी और सहज भाषा भी लिखते है। दोनों में कुछ ऐसे लोग भी है, जो संस्कृत, फारसी या अरबी शब्दों को देख करके घबड़ाते और डरते है कि इनसे हिन्दी का रूप विकृत हो जायगा और वह उर्दू बन जायगी तथा उर्दू बिगड़कर हिन्दी बन जायगी। कुछ लोग ऐसे भी है, जो हिन्दी को हिन्दुओं की और उर्दू को मुसलमानों की भाषा मानते हैं। इस तरह इस झगड़े मे कुछ साम्प्रदायिकता भी आ गई है—यद्यपि बहुतेरे मुसलमान कवि और लेखक हुए, जिन्होंने हिन्दी की सेवा की है तथा उसी तरह बहुतेरे हिन्दुओं ने उर्दू की सेवा की है।

कांग्रेस के विधान में जहां भाषा का जिक्र है, वहां न 'हिन्दी' शब्द का व्यवहार किया गया है न 'उर्दू' शब्द का, बल्कि वहां 'हिन्दुस्तानी' शब्द का ही इस्तेमाल हुआ है। जब गांधीजी ने दक्षिण भारत में राष्ट्र-भाषा का प्रचार १९१० में आरम्भ किया था तब हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के तत्त्वावधान में ही आरम्भ कराया था। उसी समय वह इन्दौर में साहित्य-सम्मेलन के सभापति हुए थे। कांग्रेस के विधान में 'हिन्दुस्तानी' शब्द का व्यवहार

महात्माजी और श्री पुरुषोत्तमदास टंडन ने ही किया था। उनके ही शब्द को कांग्रेस ने मान लिया था। दक्षिण भारत मे जिस सभा के द्वारा राष्ट्र-भाषा-प्रचार का काम आज भी लिया जा रहा है, उसका नाम दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा है। इससे स्पष्ट है कि गांधीजी ने जबसे इस काम को हाथ में लिया है, उन्होंने हिन्दी और उर्दू को दो भिन्न-भिन्न भाषाएं नहीं माना है। यद्यपि दोनो की शब्दावली में अन्तर हैं और वह अन्तर दिन-दिन बढ़ता जा रहा है, तथापि दोनो का व्याकरण प्रायः एक ही है और वह व्याकरण दूसरी किसी भाषा के व्याकरण से पूरा-पूरा नही मिलता। भाषा-तत्त्वविदो का कहना है कि भाषा की विभिन्नता शब्दावली से उतनी नहीं होती जितनी उसके वाक्यों की गढन और व्याकरण के नियमों के कारण होती हैं। इसलिए यह मानना अनुचित और भाषा-विज्ञान के नियमो के प्रतिकूल नही है कि हिन्दी और उर्दू एक ही भाषा का नाम है अथवा एक ही भाषा की दो शैलियां है—दो विभिन्न भाषाएं नही। 'हिन्दुस्तानी' हिन्दी भी है और उर्दू भी; क्योकि वह प्रायः क्लिष्ट शब्दों को काम में नही लाती। वह अपना रूप ऐसा रखती है, जिसको हिन्दीवाले और उर्दू-वाले दोनों ही अपना समझ सकें।

मैं इस बात का हिमायती हूं कि जिस भाषा का शब्द-भण्डार जितना भरा-पूरा होगा वह भाषा उतनी ही अधिक उन्नत होगी। यदि एक ही अर्थ में कई शब्द होंगे तो समय पाकर उनके अर्थ मे थोड़ा बहुत भेद होता जायगा और उसमें बारीकियां आती जायंगी। विचार की सूक्ष्मता को व्यक्त करने की शक्ति ऐसी भाषा मे अधिक होती जायगी। जीती-जागती भाषा दूसरी भाषाओं के सम्पर्क से, यदि उसमे ग्रहण और सग्रह करने की शक्ति है तो, लाभ उठाती जायगी और उसका शब्द-भण्डार बढता जायगा। वह इस बात से डरकर घोंघे की तरह अपनी खपड़िया के अन्दर घुसकर अपनेको बन्द नहीं कर लेती कि बाहर की हवा से, बाहर के शब्दो से, वह पिस जायगी और अपना अस्तित्व ही खो देगी। वह हिम्मत के साथ खुलेआम संघर्ष में आवेगी और दूसरी भाषाओं के अच्छे भावग्राही शब्दों को अपने में मिला लेगी। हां, ऐसा करने में वह अपने नियमों को, अपने रूप को, नही बदलेगी—अपनी पोशाक और अपनी सजावट को भले ही बदल ले और उसमें भले ही विचित्रता लावे।

मैंने अपने भाषण का यही विषय रक्खा और हिन्दी-साहित्य-सेवियों के विचारार्थ यह प्रश्न उपस्थित किया। मेरा कहना था कि हिन्दी को विदेशी शब्दों के ग्रहण करने में हिचकना नही चाहिए—चाहे वे फारसी और अरबी के हों या अंगरेजी के, पर जो शब्द हिन्दी में आवें, उन्हें हिन्दी बन जाना

चाहिए—अर्थात् हिन्दी में आकर वे अपने साथ अरबी-फारसी या अंगरेजी का व्याकरण हिन्दी में दाखिल न करें, बल्कि वे हिन्दी-व्याकरण के अनुशासन के अधीन होकर रह जायं। मेरा यही विचार आज भी है। उस समय से आजतक इस बात पर बहुत बहस छिड़ी रही है; पर मै अपने विचार में अधिक दृढ होता गया हूं। और, केवल इन तीन भाषाओं के ही शब्द नही लेने पड़ेगे, हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनते-बनते बहुतेरे ग्रामीण शब्दो को भी अपने में ले लेना पड़ेगा—जो प्रान्तीय भाषाएं है, उनकी शब्दावली के भी बहुतेरे शब्द ले लेने पड़ेगे।

इस सम्बन्ध का एक दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न भी है, जिसपर विचार कर लेना आवश्यक है। क्या आज की आधुनिक हिन्दी और उर्दू एक है या हो सकती हैं? व्याकरण प्रायः एक होते हुए भी शब्दावली का अन्तर बहुत बढ़ता जा रहा है। आज केवल हिन्दी अथवा उर्दू जाननेवालों की सभा मे ऐसी भाषा बोली जा सकती है, जिसे वहां के श्रोता न समझ सकें—ऐसी संस्कृत-मिश्रित हिन्दी, जिसको उर्दू जाननेवाले न समझ सकें और ऐसी फारसी-अरबी-मिश्रित उर्दू जो हिन्दी-दा के लिए आम-फहम न हो। यह भी संभव है—बहुत कठिन नही है—कि ऐसी भाषा बोली जाय जिसको केवल हिन्दी जाननेवाले और सिर्फ उर्दू जाननेवाले अच्छी तरह समझ जायं। मैं इसीको 'हिन्दुस्तानी' अथवा 'हिन्दुस्थानी' नाम देता हूं। बड़ी-बड़ी सभाओं के लिए, साधारण समाचारपत्रों के लिए, किस्से-कहानियों के लिए और दिल पर असर करनेवाली कविता के लिए भी इस तरह की सुगम भाषा हो सकती है, इसमे सन्देह नही है। हा, जब उच्च कोटि की वैज्ञानिक पुस्तक लिखनी हो तो उसके लिए बहुतेरे वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दों की जरूरत पड़ सकती है। ऐसे शब्द हमेशा सहज और सुबोध नहीं हो सकते। यह किसी भी भाषा में नही है। अंगरेजी एक उन्नत भाषा समझी जाती है। यदि अंगरेजी में लिखी विज्ञान की कोई पुस्तक अंगरेजी के अच्छे ज्ञाता को भी दी जाय, तो वह उसे ठीक समझ न सकेगा; क्योकि उसमें—पंक्ति-पंक्ति में इस तरह के पारिभाषिक शब्द मिलेगे, जिनको केवल अंगरेजी साहित्य का जाननेवाला साधारणतः नही जानता—जानता केवल वही है, जो उस विज्ञान-विद्या से परिचित है। यों तो अब इस प्रकार की कहानियां और ऐसे उपन्यास भी लिखे जाते हैं, जिनमें बहुत-सी वैज्ञानिक बातें रहती हैं—वैज्ञानिक शब्द आ जाते हैं। पर मैं इस समय इस प्रकार की विशेष पुस्तकों पर विचार नही कर रहा हूं। साधारणतया किसी भी मामूली अंगरेजी जाननेवाले के सामने भौतिक विज्ञान की अथवा चिकित्सा-विषय की कोई अंगरेजी पुस्तक रख दी जाय, तो वह उसे प्रायः ठीक-ठीक

नहीं समझेगा, यद्यपि उसका व्याकरण उसके लिए सरल होगा। पर उसके बहुतेरे शब्द ऐसे होंगे, जो उसके लिए अपरिचित-से होंगे।

इसी तरह, यदि हिन्दी और उर्दू में इस प्रकार के वैज्ञानिक और दार्शनिक ग्रंथ लिखे जायं तो उनकी भाषा एक भिन्न प्रकार की होगी। पारिभाषिक शब्द किसी संस्कृत (अथवा संस्कारयुक्त) भाषा से ही लिये जा सकते हैं, अथवा किसी संस्कृत या संस्कारयुक्त भाषा की मदद से बनाये जा सकते हैं—वह भाषा चाहे संस्कृत हो या अरबी। अंगरेजी में भी इस प्रकार के शब्द बहुतायत करके लैटिन से ही बने होते है। यहांपर मैं मानता हूं कि इन वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दो के लिए हमको संस्कृत अथवा अरबी की ओर जाना होगा—हो सकता है कि यूरोपीय भाषा के बहुतेरे शब्दों को ज्यों-का-त्यों ले लेना पड़े। किन्तु भारतवर्ष मे तो इस प्रकार के शब्द यदि अधिकतर सस्कृत के ही होगे तो उनका ज्यादा प्रचार होगा; क्योंकि यहां की जितनी प्रान्तीय भाषाएं है, सभी सस्कृत के साथ गहरा सम्बन्ध रखती हैं। यहांतक कि दक्षिण भारत की भाषाए भी संस्कृत से बहुत ज्यादा प्रभावित हुई है। यदि उनको भी नये शब्द लेने पड़े, जिन्हें वे स्वयं नहीं बना सकती, तो वे संस्कृत से ही लेना पसन्द करेगी। उदाहरणार्थ, यदि हमको 'ज्योतिष' शब्द लेना पड़े तो वह 'इल्मनजूम' की अपेक्षा अधिक सुगमता से हिन्दी-भाषी प्रान्तों में समझा जायगा—बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र, तमिल, तेलुगू, केरल, पंजाब इत्यादि मे भी लोगों की समझ में आवेगा। उसी विज्ञान के शब्द 'नक्षत्र' और 'ग्रह' को भी लोग सारे भारतवर्ष में अधिक सुगमता से समझ लेंगे। इसलिए मैं समझता हूं कि इन पारिभाषिक शब्दों के लिए राष्ट्र-भाषा को, चाहे हम उसे जिस नाम से पुकारें, हमको संस्कृत पर ही निर्भर करना होगा। हो सकता है कि विदेश से कुछ शब्द ऐसे आ गये हों, जो प्रचलित हो गये है। उनको वैसे ही रहने देना उचित और अनिवार्य है। पर जहां नये शब्द गढने हो वहां संस्कृत की सहायता लेना ही उचित और सुकर है। इसमें उर्दूवालों का यदि आग्रह हो तो वे जैसे चाहें अपने शब्द बना ले। पर वे ध्यान रक्खे कि उनके शब्द सार्वदेशिक न हो सकेंगे—सिर्फ उर्दू के ही रह जायंगे। इसलिए, जहांतक मामूली बोलचाल और समाचार-पत्रों की भाषा का सम्बन्ध है, हम ऐसी ही भाषा व्यवहार में ला सकते है जो हिन्दी और उर्दू दोनों के लिए ग्राह्य हो। पर जहां पारिभाषिक शब्दों का काम पड़ेगा वहां दोनों विलग हो सकती हैं—यद्यपि यह भी आवश्यक या अनिवार्य नहीं है। और, जैसा ऊपर कहा गया है, वह (पारिभाषिक) तभी सर्वमान्य और सार्वदेशिक शब्द हो सकता है जब वह संस्कृत की सहायता से बना हो।

राष्ट्रभाषा का सम्बन्ध विशेषकर प्रतिदिन के कारबार से ही रहता है। इसलिए, जहांतक मै समझ सकता हूं, वह ऐसी होनी चाहिए जिसे हिन्दी और उर्दू दोनों ही अपनी समझ सकें। वैज्ञानिक और दार्शनिक ग्रंथों की, शायद उच्च कोटि के साहित्य की भी, भाषा हिन्दी और उर्दू में अलग-अलग होगी। यदि हम इस विभेद को मान ले तो हिन्दी-उर्दू का झगड़ा बहुलांश में मिट सकता है। हम तो सारे भारत के आपस के व्यवहार के लिए एक राष्ट्रभाषा चाहते है—वह अंगरेजी नही हो सकती, वह हिन्दी ही हो सकती है, चाहे उसे हम हिन्दुस्तानी कहें या हिन्दी कहें अथवा उर्दू कहें। आज की प्रचलित प्रान्तीय भाषाओं के स्थान को उसे नही लेना है; वे अपने-अपने स्थान पर ज्यों-की-त्यो कायम रहकर प्रान्तीय काम मे और प्रान्तीय साहित्य मे व्यवहृत होती रहेगी। सार्वदेशिक व्यवहार के लिए ही हमको राष्ट्रभाषा चाहिए। यदि उसको हम फारसी-अरबी के बहुत-से प्रचलित शब्दों से भरकर कठिन बना देगे तो वह बगाल, आसाम, उत्कल, आन्ध्र, तमिल, केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात इत्यादि मे मुश्किल से प्रवेश पा सकेगी। अतएव उसको वहा के लिए सुगम बनाने में जहांतक हो सके इन प्रान्तीय भाषाओं के प्रचलित शब्दो को लेना हितकर और सहायक होगा। *साथ ही, हम यह भी नही भूल सकते कि पंजाब,* सीमा-प्रान्त और कुछ पश्चिमी युक्तप्रदेश की भाषा में भी उर्दू का पुट अधिक है—विशेषकर शिक्षित मुसलमानो मे वहा फारसी-अरबी के शब्द अधिक आसानी से बोले और समझे जाते हैं। राष्ट्रभाषा ऐसे लोगों को भी अपने दायरे के बाहर नही कर सकती। इसलिए राष्ट्रभाषा को उदार नीति ग्रहण करनी पड़ेगी और बहिष्कार-नीति छोड़नी पडेगी।

मैने स्वयं अपने देशव्यापी दौरे में देखा है कि मुझे दो प्रकार की हिन्दी बोलनी पड़ती है। जब मै सीमाप्रान्त और पजाब मे गया—विशेषकर ऐसी सभाओं में जहां मुसलमानो की संख्या अधिक थी—तो मै फारसी-मिश्रित हिन्दी बोलकर अपने विचारो को व्यक्त कर सका। बगाल, महाराष्ट्र इत्यादि और दक्षिण भारत में भी, जहां कुछ हिन्दी समझी जाती थी, मैं संस्कृत-बहुल हिन्दी ही बोलकर अपना काम कर सका। मै न तो अरबी-फारसी का आलिम हूं और न संस्कृत का पण्डित। अरबी का ज्ञान तो बिलकुल नहीं है। फारसी का थोड़ा ज्ञान है। संस्कृत का भी वैसा ही अन्दाज का परिचय है। पर मैं दोनों प्रकार की भाषाएं कुछ-कुछ बोल सकता हूं। दोनों प्रकार के श्रोताओं में मेरे भाषण आसानी से समझ लिये जाते हैं। इसका एक विशेष कारण इन भाषाओं का अपना अज्ञान ही मैं समझता हूं। इसलिए, मैं मानता हूं कि मेरे-जैसे लोगों के लिए—और ऐसे लोगों की

संख्या अधिक है और रहेगी—ऐसी राष्ट्रभाषा का प्रयोग सहज है। आलिमों और पण्डितों के लिए उसमें अधिक कठिनाई है और रहेगी; क्योंकि जहां कहीं शब्द की कमी मालूम हुई, वे झट संस्कृत या अरबी की शरण में दौड़ जाते हैं और मेरे-जैसे लोगों की वहांतक पहुच नहीं होती; इसलिए हम अपनी छोटी निधि मे से ही काम की चीज खोज निकालने को बाध्य होते हैं, जो अधिकतर मेरे-जैसे लोगों के लिए विशेष परिचित ही होगी।

मैंने यहापर राष्ट्रभाषा-सम्बन्धी अपने विचारो को विस्तारपूर्वक कह दिया; क्योंकि सम्मेलन से इनका सम्बन्ध है। मैंने इसी प्रकार के विचारो को अपने भाषण मे रक्खा। सम्मेलन राष्ट्रभाषा-प्रचार का काम भी करता आया है। इसलिए उसे दो बातों पर ध्यान रखना पड़ता है। एक ओर उसे हिन्दी साहित्य मे उच्च कोटि के ग्रथों के निर्माण पर और दूसरी ओर भाषा के प्रचार पर भी दृष्टि रखनी पड़ती है। इन दोनो उद्देश्यो मे प्रायः पार्थक्य अथवा विरोध न होना चाहिए, पर कहीं-कहीं होना असम्भव भी नहीं है। आगे चलकर सम्मेलन के अन्दर कुछ इस विषय पर मतभेद हुआ भी। नागपुर मे ही वह मतभेद दीखने लगा। पर वहा के कार्यक्रम मे कोई अन्तर नहीं आया। सम्मेलन ने राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति बना दी, जिसका सभापति मैं बनाया गया। सम्मेलन मे एक प्रचार-समिति भी नियमानुसार हुआ करती है। नागपुर-सम्मेलन ने महसूस किया कि प्रचार-समिति हिन्दी-भाषी प्रान्तों मे साहित्य-प्रचार का काम किया करे और राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति उन प्रान्तों मे राष्ट्रभाषा का प्रचार करे, जहां की भाषा हिन्दी नहीं है। दक्षिण भारत मे—आन्ध्र, तमिल, केरल और कर्नाटक मे—दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा बहुत अच्छा काम करती आ रही है और उसके द्वारा प्रचार का काम खूब जोरों से चलाया गया है। पर दूसरे अ-हिन्दी प्रान्तों मे यह प्रचार-व्यवस्था नहीं हुई थी। इसलिए गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल, आसाम, उत्कल इत्यादि प्रान्तो मे प्रचार-कार्य करने का भार इस राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति को सौपा गया। मै इसका सभापति तो बना; पर इसके नीति-निर्देश का काम गाधीजी ने लिया और अर्थ-सग्रह का सेठ जमनालाल बजाज ने। इसमें सम्मेलन के कई प्रमुख व्यक्ति—श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन, पडित दयाशंकर दुबे, डाक्टर बाबूराम सक्सेना प्रभृति—सदस्य बनाये गए। कुछ अ-हिन्दी प्रान्तों के प्रतिनिधि-स्वरूप वहीं के हिन्दी-प्रेमी सम्मिलित किये गए। यह समिति तीन बरसों के लिए ही बनाई गई थी। पर वह तीन बरस बीतने पर फिर मनोनीत कर दी गई। १९३६ से १९४२ तक, छः बरसों में, इस समिति ने अ-हिन्दी प्रान्तों में—विशेषकर गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश के महाराष्ट्री जिलों, उत्कल

और आसाम मे—बहुत काम किया। विद्यार्थियों के लिए पुस्तकें बनवाईं, परीक्षाएं ली। हजारों की संख्या में विद्यार्थियों ने परिक्षाएं दीं, और उत्तीर्ण भी हुए। सेठ पद्मपत सिघानियां ने पांच बरसों तक पन्द्रह हजार रुपये वार्षिक—कुल पचहत्तर हजार रुपये—का दान देकर इसके अर्थाभाव को बहुत-कुछ दूर कर दिया। श्री काका कालेलकर, श्री सत्यनारायण, श्री श्रीमन्नारायण और दादा धर्माधिकारी के परिश्रम तथा उत्साह ने, गांधीजी के वरद हस्तो के नीचे, इसे एक व्यापक प्रभाववाली, उच्चाकांक्षावाली, सफल सस्था बना दिया।

नागपुर मे एक और सम्मेलन हुआ। गांधीजी ने देखा था कि हिन्दी-उर्दू का पारम्परिक वैमनस्य बढता जाता है। वह चाहते थे कि इन दोनों के समन्वय का प्रयत्न किया जाय। इसके लिए एक ऐसी संस्था की जरूरत थी, जिसमें दोनो भाषाओ के विद्वान् शरीक हों और जो बिना किसी खीच-तान के केवल भाषा की अभिवृद्धि की दृष्टि से काम करें। उन्होंने इसमें श्री कन्हैयालाल मुन्शी को, जो गुजराती साहित्यकारों मे बहुत ऊंचा स्थान रखते है, लगाना चाहा। मुन्शी प्रेमचन्द और मौलवी अब्दुल हकसाहब की सहायता भी लेनी चाही। सस्था (राष्ट्रभाषा-परिषद्) का अधिवेशन नागपुर मे ही किया गया। उपर्युक्त सज्जन तथा दूसरे लोग निमन्त्रित किये गए। उसी समा मे मौलवी अब्दुल हकसाहब से मतभेद हो गया। उन्होंने सम्मेलन के बाद कुछ ऐसे लेख लिखे, जिनमे गाधीजी पर भद्दा आक्रमण किया गया। इसलिए यह परिषद् मुसलमानो की सहायता न कर सकी। पर मुन्शी प्रेमचन्द और श्री कन्हैयालाल मुन्शी ने, काशी के हिन्दी-मासिक-पत्र 'हस' को परिषद् की ओर से कुछ दिनो तक चलाया। दुःख की बात है कि मुन्शी प्रेमचन्द थोड़े ही दिनों के बाद स्वर्गवासी हो गये। परिषद् बहुत दिनो तक जीवित न रह सकी।

: ११८ :

प्रान्तीय धारा-सभाओं का चुनाव

१९३६ का साल १९३७ में होनेवाले प्रान्तीय धारा-सभाओं के नये विधान के अनुसार चुनाव की तैयारी मे बीता। लखनऊ मे निश्चय हो चुका था कि काग्रेस अपनी ओर से उम्मीदवार खड़ा करे और चुनाव लड़े। यह पहला अवसर था जब इस नये विधान के अनुसार करोड़ो स्त्री-पुरुषों को चुनाव में भाग लेने का अवसर मिला था। उन करोड़ो मतदाताओ का इस प्रकार संगठन करना कि वे काग्रेस के सभी उम्मीदवारो को वोट दें, कोई आसान काम नहीं था। कांग्रेस १९३५-३६ में पुनः संगठित हो गई थी। १९३४ में वह केन्द्रीय असेम्बली के लिए चुनाव लड़ चुकी थी। उसमें वह बहुत बड़े अंश मे विजय भी प्राप्त कर चुकी थी। पर उस चुनाव के मुकाबले में यह चुनाव कही अधिक विस्तृत था। उसमे करीब सौ सदस्यों के चुनाव की बात थी। इसमें प्रायः दो हजार जगहो के लिए आदमी चुनवाने थे। इसमें खर्च भी बहुत पड़नेवाला था। उम्मीदवारो को नामजद करना भी कोई आसान काम न था।

सबसे पहला काम था एक ऐसा घोषणा-पत्र तैयार करना, जो कांग्रेस की ओर से मतदाताओं के सामने रक्खा जाय और जिसको पूरा करने के लिए उनसे वोट मांगा जाय। कांग्रेस के प्रस्तावों और इस प्रकार की घोषणाओं का मसविदा पहले महात्माजी तैयार किया करते थे। इधर जबसे पं० जवाहरलालजी सभापति हुए, यह काम उनको ही अधिक करना पड़ता था। उन्होंने दिल फड़कानेवाली भाषा में एक बहुत सुन्दर घोषणा तैयार की। अखिल भारतीय कमिटी ने उसे मंजूर कर लिया।

हमारे सामने एक दिक्कत थी। कांग्रेस ने अभीतक यह निश्चय नहीं किया था कि वह अपने सदस्यों को मन्त्रिमण्डल में शरीक होने देगी या नहीं। कुछ लोग चाहते थे कि प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बने और जो-कुछ भी अधिकार विधान द्वारा मिले हैं, उनका वे इस्तेमाल करें। दूसरे लोग ऐसे थे, जो चाहते थे, कि कांग्रेसी केवल अड़ंगा-नीति से ही काम लें—न मन्त्रिमण्डल बनावें और न बनाने दें, यदि वे बन भी जायं तो उनके कामों में अड़ंगा लगाते रहें। कांग्रेस ने विधान को नामंजूर कर दिया था,

पर साथ ही चुनाव में भाग लेने की इजाजत दी थी। हां, यह नहीं बतलाया था कि चुने जाने के बाद सदस्य क्या करेंगे। इसलिए इस घोषणा-पत्र में यह साफ कहा नही जा सकता था कि हम मन्त्रिमण्डल बनावेंगे और वहां रहकर अमुक-अमुक काम करेंगे। उसमे यह भी कहना मुश्किल था कि हम वहां कुछ नही करेंगे और न किसीको कुछ करने देंगे। उसमे बड़ी होशियारी से ऐसी बाते कही गई, जो कराची-काग्रेस मे अपने मौलिक और आर्थिक अधिकारोंवाले प्रस्ताव मे मजूर की गई थी। ऐसा करने से बिना इस बात का वादा किये कि हम मन्त्रिपद ग्रहण करेंगे या नही करेंगे, कौंसिल के लिए कार्यक्रम बतला दिया गया। यह घोषणा सारे देश के लिए थी। इसके अनुसार सभी काग्रेसी सदस्य, चाहे वे जिस सूबे मे हों, काम करेंगे। इसके अलावा, प्रान्तीय कमिटियो को अधिकार दिया गया कि वे अपनी-अपनी परिस्थिति के अनुसार यदि वहां के लिए कोई घोषणा निकालना चाहे तो निकाल सकती हैं।

इस घोषणा-पत्र में अधिकतर किसानों की दशा सुधारने की बात कही गई थी। उसके लिए लगान कानून मे तरमीम करके उनको अपनी जमीन पर, जिसे वे जोतते-बोते है, स्थायी स्वत्व देने की बात थी। लगान कम करने पर भी जोर था। मजदूरो की भी दशा सुधारने का वादा था—उनकी नौकरी को स्थायी बनाकर उनकी रहन-सहन की सुव्यवस्था कराकर और उनकी मजदूरी में वृद्धि कराकर। साथ ही, मजदूर-संघों के स्थापित और संगठित करने के अधिकार दिलवाने तथा दूसरे प्रकार से उनकी अवस्था सुधारने की बात भी कही गई थी। देश में मद्यनिषेध कराने का वादा था; अर्थात इसमे वे सब बाते थी जो कोई भी लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल कर सकता है। हम समझते थे कि यदि हमने मन्त्रिपद ग्रहण किया तो ये सब काम करेंगे ही; पर यदि न भी किया तो इस तरह की बाते, जो भी मन्त्रिमण्डल हो, उसके द्वारा करा सकेंगे और करायेंगे।

दूसरा कठिन कार्य था इतने अधिक उम्मीदवारों को चुनना। स्पष्ट है कि यह काम अखिल भारतीय कमिटी की वर्किंग कमिटी सारे देश के लिए नही कर सकती थी। एक तो उसके पास इतना मसाला न होगा कि वह यदि स्वयं इस बात पर विचार करने बैठे कि दो उम्मीदवारो में से किसको काग्रेस-टिकट देनी चाहिए तो इसका निर्णय वह कर सके। उसको ख्वाहमख्वाह प्रांतीय कमिटियों अथवा उनकी कार्यकारिणी पर ही अधिक भरोसा करना पड़ता। तो भी यह स्पष्ट था कि कही-कही स्थानीय कमिटियों में दलबन्दियां थीं, और हो सकता है कि इस दलबन्दी के कारण किसी उम्मीदवार के साथ बेइंसाफी हो जाय, अथवा ऐसे उम्मीदवार चुन लिये जायं जो

जनता के सामने जवाबदेह या कामयाब न हो सकें। कहीं-कहीं की प्रान्तीय कमिटियां चाहती भी थी कि अंतिम निर्णय अखिल भारतीय कमिटी के ही हाथों में रहे तो अच्छा होगा। इसलिए यह निश्चय हुआ कि अन्तिम निर्णय अखिल भारतीय कमिटी ही करेगी। पर वर्किंग कमिटी ने भी इस काम के लिए अपने सभी सदस्यो को एकत्र करना मुश्किल समझा। इसलिए उसने तीन सदस्यों की एक पार्लमेण्टरी कमिटी बना दी, जिसके जिम्मे यह सब काम सौप दिया गया। इस पार्लमेण्टरी कमिटी के प्रमुख बनाये गए सरदार वल्लभभाई पटेल। इसके सदस्य हुए मौलाना अबुलकलाम आजाद और मै। जब चुनाव का समय नजदीक आया तब अनुभव से पता चला कि इन सदस्यों का भी हमेशा मिलकर किसी बात का फैसला करना, समय की कमी और एक से दूसरेकी दूरी के कारण, असम्भव हो जाता था। यदि सारा वर्किंग कमिटी के जिम्मे यह काम रहता तो शायद उसे महीनों एक स्थान पर बैठे रहना पड़ता। शुरू मे मुझे बम्बई मे कुछ दिनों तक इस कमिटी के काम से रहना पडा था। पर वहां के जलवायु की प्रतिकूलता के कारण मैं बरसात में वहा न रह सका। हम तीनो ही अपने-अपने स्थान से काम करने लगे।

सदस्यों की नामजदगी प्रांतीय कमिटियों की कार्यकारिणी कमिटी ही करती। पर वह अपने मन से मंजूर किये गए सभी नामों को पार्लमेण्टरी कमिटी के पास भेज देती। कोई आदमी, जो प्रान्त के फैसले से नाराज हो, पार्लमेण्टरी-कमिटी के पास अपील कर सकता था और उस सम्बन्ध के सभी कागज-पत्र, रिपोर्ट इत्यादि प्रान्त से उसके पास जाते। जिस स्थानों के सम्बन्ध में कोई भी अपील या नाराजगी न होती तो वे बिना सकोच प्रांतीय कमिटी के निश्चयानुसार ही रह जाते। पर जिसके संबंध मे अपील होती, पार्लमेण्टरी कमिटी उसकी जाच करती। यदि आवश्यकता पड़ती तो उसके सदस्य उस स्थान पर जाकर, वहां के लोगो से मिलकर और उनसे दरियाफ्त करने के बाद, अंतिम फैसला कर देते। यह काम आसान नही था। पर सन्तोष की बात है कि बहुत कम निश्चयों के सम्बन्ध में ही पार्लमेण्टरी कमिटी तक अपील पहुंची। जो अपीले पहुंचीं भी उनमे से बहुतेरों का निबटारा लिखा-पढ़ी करके सबकी रजामन्दी से हो गया। थोड़े ही ऐसे स्थान थे, जिनके लिए किसी एक आदमी या दल के खिलाफ फैसला देना पड़ा।

चुनाव के मामले में दो बाते मुख्य थीं। एक तो यह थी कि मनोनीत उम्मीदवार, कांग्रेस के कार्यक्रम के अनुसार, ठीक सचाई और ईमानदारी के साथ, काम करेगा या नहीं। दूसरी बात यह थी कि उसके चुने जाने की पूरी आशा है या नहीं। एक तीसरी बात और थी, जो इन दो बातों के मुका-

बले में गौण समझी जा सकती है, पर जो अपना काफी महत्त्व रखती थी। वह यह कि उम्मीदवार चुनाव के लिए जरूरी खर्च खुद कर सकेगा या नहीं, और यदि नही तो उसके लिए पार्लमेण्टरी कमिटी को क्या मदद देनी पड़ेगी। पहली बात का निर्णय उम्मीदवार की पूर्वसेवाओं और कांग्रेस के साथ उसके सम्बन्ध तथा उसकी कार्रवाइयों पर विचार करके ही हो सकता था। दूसरी बात का निर्णय जनता मे उसकी लोकप्रियता पर निर्भर था। इस लोकप्रियता के बहुतेरे कारण हो सकते थे। कोई आदमी कांग्रेस द्वारा सेवा के कारण बहुत लोकप्रिय है; कोई किसी विशेष क्षेत्र में दूसरे प्रकार की सेवाओं द्वारा लोकप्रिय हो गया है। कोई क्षेत्र ऐसा था जहां किसी खास जाति अथवा समाज के लोगो का बाहुल्य था। वहा सेवा के अलावा उस विशेष जाति अथवा समाज का आदमी होना ही लोकप्रियता का—अर्थात वोट पाने की शक्ति का—कारण हो सकता था। कोई क्षेत्र ऐसा हो सकता था जहां अधिक काम नही हुआ है और जहां कांग्रेस का प्रभाव बहुत नही है, वहां और कारणों से ही उम्मीदवार के चुने जाने की आशा हो सकती थी। इन सभी बातों का निर्णय अधिकतर प्रांतीय कमिटिया ही कर सकती थी। इसलिए उनकी ही बाते मान्य होती।

सबसे बडी कठिनाई वहां पडती जहा कांग्रेस के दो सेवक एक ही स्थान के लिए उम्मीदवार हो जाते और उनमे से कोई हटने को तैयार न होता। सेवा की दृष्टि से दोनो मे भेद करना असंभव नही तो कठिन जरूर होता। जनता में भी दोनो के प्रति प्रेम और श्रद्धा होती। ऐसी अवस्था में किसी एक को नाराज करके ही फैसला देना पडता। पैसे का सवाल भी कुछ हल्का न था। दो हजार स्थानों के लिए चुनाव का खर्च बहुत पड़ता है। थोड़ा-थोड़ा भी खर्च पडे तो बहुत हो जाता है। प्रतिद्वद्विता के कारण भी कुछ खर्च बढ जा सकता है। यदि प्रतिद्वंद्वी धनी हुआ और अधिक खर्च करने पर उतारू हो गया, तो अपनी ओर से भी खर्च की मात्रा बढ़ा देनी पडती है; क्योंकि प्रतिद्वंद्वी के प्रचार का प्रतिकार करना आवश्यक है।

इस बात का संतोष है कि इन सब कठिनाइयों का पार्लमेण्टरी कमिटी, सरदार वल्लभभाई के नेतृत्व में, हल कर सकी। मुझे अखिल भारतीय चुनावों के अलावा अपने सूबे का काम भी देखना था। मैं जबसे कांग्रेस का सभापति हुआ था, सूबे में कांग्रेस का काम कुछ भी नही कर सकता था। जैसा पहले कहा है, बराबर सारे देश में दौड-धूप करता रह गया। अपने सूबे मे तो उस दौरे में भी नहीं आ सका था। १९३० से ही सत्याग्रह के काम में हमारा सूबा संलग्न था। उस समय मुझे अपने सूबे में बहुत घूमने का मौका मिला था। एक बार १९३१ मे गांधी-अर्विन-पैक्ट के समय में भी कुछ

स्थानों में भ्रमण कर सका था। १९३४ में, केवल भूकम्प-सम्बन्धी काम के लिए ही, जहां जा सका वहां गया। उसके बाद सभापति बनकर तो और-और सूबों में ही घूमता रहा। इस तरह प्रायः पांच-छः बरसों से मेरा और सूबे का सम्पर्क बहुत कम हो गया था। तो भी मुझे यह काम तो देखना ही था। शायद मैं इस साल सूबा-कमिटी का सभापति भी चुना गया था। इसलिए सूबे के उम्मीदवारो के चुनाव मे मुझे बहुत समय देना पड़ा और बहुत कष्ट भी उठाना पड़ा। ऊपर जितनी बातें मैंने कही हैं, सबका अनुभव और सब पर निर्णय सूबे की वर्किंग कमिटी को करना पड़ा, जिसका मैं सभापति था!

हमारे सूबे में एक और बात है जो प्रायः दूसरे सूबों मे शायद बहुत मात्रा में नही देखी जाती है। जिला-कमिटियां अधिकतर निर्णय प्रान्तीय वर्किंग कमिटी पर ही छोड़ना चाहती थी; क्योकि वे समझती थीं कि यदि वे फैसला करेगी तो आपस के मतभेद बढ़ जायंगे और इस कारण चुनाव में कठिनाई भी बढ़ जायगी। पर प्रान्तीय वर्किंग कमिटी के लिए फैसला देना आसान नहीं था; क्योंकि वह भी स्थानीय परिस्थिति से पर्याप्त परिचय नही रखती थी। तो भी मैं समझता हूं कि प्रान्तीय कार्यकारिणी के जिम्मे यह काम छोड़ना अच्छा न हुआ। उसके प्रायः सभी निर्णय सर्वसम्मति से हुए। कुछमें मतभेद हुआ और कभी-कभी यह मतभेद तीव्र भी हो गया, पर अन्त में सभी बातें सबकी राय से तय हो सकी। मुझे कई निश्चयों के सम्बन्ध में बड़ी कठिनाई से अपनेको मनाना पड़ा। पर मैंने अपने निजी विचारों को—जिनका सम्बन्ध व्यक्ति से ही था—दबा दिया और कमिटी के बहुमत को ही मान लिया। जहातक मुझे स्मरण है, मैंने कभी यह नौबत भी न आने दी कि मेरे किसी नाम के सम्बन्ध में मत लेने की जरूरत पड़े। हा, जहां जरूरत होती, अपनी राय बता देता; पर उसको संयत भाषा मे बतलाता जिसमें कटुता न आने पावे। जो हो, सूबे की नामजदगी एक प्रकार से हो गई।

सूबे में हमने इस बात पर जोर दिया कि ऐसे ही लोग विशेषकर लिये जायं जो कांग्रेस के काम करनेवाले सेवक हैं। एक तो ऐसे ही लोगों पर अधिक भरोसा किया जा सकता था; क्योंकि उन्होंने अपने काम से अपनी विश्वसनीयता का परिचय दे दिया था और उनसे आशा भी थी कि कांग्रेस की जैसी आज्ञा होगी वैसा ही वे करेंगे। पर कही-कही परिस्थिति ने इसके लिए भी मजबूर किया कि ऐसे लोग भी लिये जायं, जो कांग्रेस के साथ सहानुभूति तो रखते थे और जिन्होने उसकी सेवा भी कुछ की थी, पर जो कार्यकर्ताओं में नहीं समझे जा सकते थे—यह स्थानीय दिक्कतों के कारण, और कहीं-कहीं खर्च के खयाल से भी, करना पड़ा।

एक विशेष अवस्था हमारे सूबे में थी। यहांपर किसान-सभा काम करती आ रही थी। वह १९३३-३४ में, स्वामी सहजानन्द सरस्वती के अधिनायकत्व में प्रोत्साहित की गई। वह इन तीन-चार बरसों में कहीं-कहीं—गया और पटना जिलो मे विशेषकर—जनता में जोरों से काम कर सकी थी। कांग्रेस का और किसान-सभा का विरोध नही था। दोनों के अनेकानेक और प्रभावशाली कार्यकर्ता एक ही थे। जहां जैसी जरूरत पड़ती, काग्रेस उनकी मदद भी करती थी। जब चुनाव के लिए उम्मीदवार नामजद किये जाने लगे तो स्वामी सहजानन्द, जो प्रान्तीय वर्किंग कमिटी के सदस्य थे, कुछ ऐसे लोगों के ले लिये जाने पर जोर देने लगे जो किसान-सभा से विशेष सम्बन्ध रखते थे। और सदस्यो का ऐसे लोगों से कोई विशेष विरोध नही था; पर कही-कही ऐसा मौका आया कि किसान-सभा के कार्यकर्ता और कांग्रेस के कार्यकर्ता मे ही मुकाबला हो गया। तो भी, कार्य-कारिणी ने इस बात को भी संभाल लिया। अन्त में जो बाते तय हुईं, वे ऐसी ही हुई जिनको सब लोगो ने पसन्द और मंजूर किया।

एक और चीज है, जिसका जिक्र करना आवश्यक है। उम्मीदवारों के चुनने मे हमको इस बात पर ध्यान रखना पडा कि कौन उम्मीदवार किस जाति का है। काग्रेस के लिए यह कोई सन्तोष की बात नही थी; पर परि-स्थिति के कारण हम इससे अपनेको अलग नही रख सकते थे। इस सूबे के लिए यह दुख और शर्म की बात है कि हम इस नामजदगी में जाति को एकदम भूल न सके और हमे यह सोचना पड़ा कि अमुक स्थान में अमुक जाति के उम्मीदवार के चुने जाने की अधिक सम्भावना है तथा यह भी देखना पड़ा कि यदि अमुक उम्मीदवार को हम नही नामजद करते तो इसका असर उस जाति के लोगों पर तो बुरा पडेगा ही, चुनाव के लिए भी बुरा होगा। हमको यह भी सोचना पड़ता था कि जितने उम्मीदवार नामजद किये गए उनमें सभी जातियों के उम्मीदवार लिये गए वा नही—यदि लिये गए तो इतनी संख्या मे लिये गए या नही कि हम उस जाति के लोगों को सन्तुष्ट कर सकें। ये बातें राष्ट्रीय संस्था के लिए गौरवप्रद नही हैं। पर हमको चुनाव भी जीतना था और साथ ही हमको इस बात का सन्तोष भी था कि सभी जातियों में कांग्रेसी काम करनेवाले ऐसे मौजूद थे कि उनको हम कांग्रेस की नीति की दृष्टि से चुन भी सकते थे। इसलिए किसीके चुनने में हमें अधिक चोट भी नही लगती; क्योंकि जिनको हम नामजद करते, वे प्राय: और विचारों से भी योग्य होते। पर सिद्धान्त की दृष्टि से इस विचार का आने देना ही ठीक न था।

पूना में जो समझौता दलित जातियों (हरिजनों) के साथ हुआ था,

उसमें यह निश्चय हुआ था कि हरिजनों के निमित्त सुरक्षित स्थानों के लिए एक प्राथमिक चुनाव हो जिसमें केवल हरिजन ही भाग लेंगे। इस चुनाव मे यदि चार या इससे कम हरिजन उम्मीदवार हुए तो वोट लेने की जरूरत नहीं होगी, सबके सब नामजद समझे जायंगे। यदि इससे अधिक हुए तो केवल हरिजन लोग वोट देकर जिन चार को चाहें चुन लेंगे। फिर दूसरे चुनाव में हरिजन और दूसरे सभी लोग वोट देंगे और जिसको सबसे अधिक वोट मिलेगा वही चुना जायगा। इसका नतीजा यह होता था कि सवर्ण हिन्दुओं को अन्तिम चुनाव मे भाग लेने का मौका मिलता था, पर वे जिसको चाहें उसे नहीं चुन सकते थे, वे उन्ही चार मे से एक को वोट दे सकते थे, जिनको हरिजनो ने पहले चुनाव मे चुन लिया है। इस समझौते का यह फल होता था कि हरिजनो को दो बार वोट देने का हक मिल जाता था। साथ ही, हरिजन उम्मीदवारों को एक बार केवल हरिजन मतदाताओं में और दूसरी बार हरिजन मतदाताओ तथा सवर्ण मतदाताओं मे प्रचार करना पड़ता, जो आसान नहीं था; क्योंकि इसमे खर्च बहुत पड़ता। इस सूबे में हरिजनों की सोलह जगहे थी। हमने प्रयत्न किया कि उन सभी जगहों पर कांग्रेसी उम्मीदवार खडे किये जायं और वे ही जीते भी। इसलिए जो उनके प्रमुख काम करनेवाले और प्रभाववाले लोग थे, उनसे राय ले करके ही हमने अपने हरिजन उम्मीदवार खडे किये। इसका नतीजा यह हुआ कि कांग्रेस को ऐसे हरिजन मिल गए जो उसके नियमानुकूल काम करना चाहते थे। हरिजनो ने भी उन्हें पसन्द किया; क्योंकि वे उनकी राय से ही चुने गये थे। इसमें खर्च भी बहुत कम हो गया; क्योंकि अधिकांश स्थानों में केवल एक ही हरिजन उम्मीदवार खड़ा हुआ जो पहले चुनाव में बिना विरोध चुना गया और दूसरे चुनाव में एक ही उम्मीदवार होने के कारण उसके नाम पर वोट लेने-देने की बात ही नही हुई। हां, चन्द जगहें ऐसी हुईं जहां चुनाव लड़ना पड़ा, पर अन्त में सोलह मे से पन्द्रह जगहे कांग्रेस उम्मीदवारों को ही मिलीं। और सूबों मे यह इतनी खूबी से न हो सका, जिसका नतीजा यह हुआ कि हरिजनों के एक से अधिक दल हो गए। कुछ कांग्रेस के साथ हुए और कुछ कांग्रेस के विरोधी। इस विरोध के कारण हरिजनों को कांग्रेस के प्रति अश्रद्धा भी हुई। हम इनसब कठिनाइयों से बच गए। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि यहां उनमें शिक्षा का बहुत अभाव है; इसलिए उनमें ऐसे लोग बहुत नहीं थे, जो अपनी महात्वाकांक्षा के लिए अपना अलग संगठन आवश्यक समझते।

नामजदगी हो जाने के बाद सारे देश में प्रचार का काम संगठित करना आवश्यक था। इसके लिए पैसे जमा करने का काम भी पार्लमेण्टरी कमिटी

के ही जिम्मे था। यह काम विशेषकर सरदार वल्लभभाई ने ही किया। आवश्यकतानुसार प्रान्तीय कमिटियों को मदद दी गई। प्रान्तीय कमिटियों ने अपना-अपना अलग प्रबन्ध भी यथा-साध्य किया। बिहार मे, जैसा ऊपर कहा गया है, अधिक उम्मीदवार ऐसे ही थे, जो काग्रेस कार्यकर्त्ता थे। काग्रेस कार्यकर्त्ता, विशेषकर बिहार मे, पैसेवाले नही हैं। जिनके पास घर मे कुछ खाने-पीने लायक है भी, वे भी चुनाव के लिए बहुत ज्यादा खर्च करने योग्य नही हैं। तो भी, जिससे जहातक हो सका उसने अपना खर्च किया। प्रान्त की ओर से वही मदद दी गई जहा बहुत जरूरत समझी गई। सारे सूबे मे जो प्रचार हुआ, उसका खर्च प्रान्त ने दिया और विशेष क्षेत्रों का खर्च वहां के उम्मीदवार ने। जिस उम्मीदवार को मदद की जरूरत हुई, प्रान्त ने उसको मदद दी। इस तरह से प्रान्त को खर्च तो करना पड़ा, पर यदि हम विचार करे कि कितने क्षेत्रो मे प्रान्त ने कितने खर्च से सफलता प्राप्त की, तो वह खर्च बहुत नही जान पडता। कुछ खर्च तो अनिवार्य है। क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इतना तो अवश्य करना ही चाहिए कि उम्मीदवार और दूसरे काग्रेसी कार्यकर्ता सभी जगहो मे जाकर वहां की जनता तक काग्रेस का सन्देशा पहुचा दे तथा मतदाताओ के साथ उम्मीदवार की मुलाकात हो जाय। इसमे ही बहुत खर्च पडता था।

कांग्रेस का घोषणापत्र और काग्रेस-सम्बन्धी दूसरा साहित्य छापकर बांटना भी आवश्यक है। वह केवल चुनाव के लिए ही नही, जनता की शिक्षा और ज्ञानवृद्धि के लिए भी। इस प्रकार के खर्च तो हर हालत में अनिवार्य है। पर इसकी भी जरूरत थी कि केवल सभाओं द्वारा ही प्रचार न किया जाय। वोट के लिए प्रत्येक मतदाता तक भी कही-कही पहुंचना अधिक आवश्यक था—विशेषकर जहा कोई जबरदस्त प्रतिद्वन्द्वी था। इसमें बहुत खर्च पड़ता था। आजकल के चुनाव मोटर के बिना तो हो ही नहीं सकते; क्योकि बिना तेज सवारी के सभी जगहो मे पहुचना असम्भव-सा है। जब प्रतिद्वन्द्वी वहा बार-बार पहुच रहा है तो हमको भी वैसा ही करना पड़ता है। तो भी मेरा अनुमान है कि बिहार मे खर्च बहुत अधिक नहीं पड़ा और हमने अपना काम किफायत से निबाहा। फिर भी हमें यह तो मानना ही पड़ेगा कि हमने चाहे जितना भी कम खर्च किया, गाधीजी के आदर्श से तो वह बहुत नीचे ही दीख पड़ा।

गांधीजी का विचार तो यह था कि कांग्रेस पर लोगों का इतना विश्वास होना चाहिए—यह विश्वास कांग्रेस अपनी निःस्वार्थ सेवा द्वारा ही अर्जित कर सकती है—और उसके उम्मीदवार ऐसे सच्चे और लोकप्रिय सेवक होने चाहिएं कि कांग्रेस को अपनी ओर से केवल घोषणा-पत्र छापकर

बाट देना और अपने उम्मीदवारों के नाम प्रकाशित कर देना ही काफी हो—जनता में इतना उत्साह होना चाहिए कि वह, बिना किसी प्रेरणा और प्रोत्साहन के, ठीक समय पर जाकर अपना वोट कांग्रेस के उम्मीदवारों के पक्ष में दे दे। इसका अर्थ यह है कि चुनाव के समय का प्रचार उतना अधिक आवश्यक नही जितना जनता के बीच हमेशा रहकर उसकी सेवा करना। जनता की सेवा ही प्रचार का सबसे अधिक बलवान साधन होना चाहिए।

बात तो ठीक है; पर अभी हमने इतनी सेवा नही की है। जिस हद तक हमारी सेवा पहुची है उसी हद तक हम लोकप्रिय बन चुके है और उसी अनुपात से चुनाव मे हमको कम कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। पिछले बीस बरसों की सेवा बेकार नही गई है; पर उसको अधिक विस्तृत और स्थायी होना चाहिए। इसमे जहां स्वार्थ की मात्रा आती जायगी, हमारी कठिनाइयां आगे बढ़ती जायंगी।

यह खेद के साथ लिखना पडता है कि चुनावों के अनुभव ने मुझे यह मानने पर मजबूर कर दिया है कि बहुतेरे कांग्रेसी कार्यकर्ता अपनी सेवाओं का मूल्य आंकने लगे है—उनके बदले मे कुछ-न-कुछ खोजने लग है—चाहे वह असेम्बली या कौन्सिल की मेम्बरी हो, चाहे वह जिला-बोर्ड या म्युनिसिपैलिटी की सदस्यता या कोई दूसरा पद हो, चाहे और कुछ न हो तो कांग्रेस-कमिटियों के अन्दर ही कोई प्रतिष्ठा और अधिकार का स्थान हो। इसमें कोई शक नही कि इन स्थानों पर जाकर मनुष्य सेवा कर सकता है—कही-कही तो सेवा की शक्ति बढ़ भी जाती है। यदि इस भावना से उन पदों या स्थानों की इच्छा की जाय तो ठीक है। पर कौन कह सकता है कि इस इच्छा मे सेवा-भाव का प्राबल्य है अथवा अपनी महत्त्वाकांक्षा का? यह तो शायद मनुष्य का हृदय भी ठीक नही बता सकता; क्योंकि वह अपने को अक्सर ऐसे मामलों में धोखा दे देता है और इस प्रकार मनुष्य अपने मन को ही समझा लेता है कि वह महत्वाकांक्षा से प्रभावित न होकर सेवा के लिए ही लालायित है।

गांधीजी ने एक अवसर पर कहा था कि जो आदमी कांग्रेस के सभापतित्व के लिए लालायित हो, उसे सभापति नहीं बनाना चाहिए। जो इसे प्रतिष्ठा के लिए नही, सेवा के लिए स्वीकार करता है, वह इसके लिए इच्छा नहीं करता—अवसर आ जाने पर उसे शिरोधार्य कर लेता है। यही बात उन सभी स्थानों के लिए होनी चाहिए, जिनके लिए जनता चुनकर सेवक नियुक्त करती है। पर आज प्रचलित पद्धति ऐसी है कि अपना ढोल अपने राम को ही पीटना पड़ता है! स्वभाव का स्थान महत्त्वाकांक्षा लेती है। हम इन स्थानों को अपने जीवन में अपने लिए उन्नति का साधन मानते हैं

और संसार की होड़ में इन्हें अपनेको आगे बढ़ाने का एक जरिया समझते हैं। यह हमारी सभ्यता और संस्कृति के प्रतिकूल है; पर आधुनिक पाश्चात्य विचारों के अनुकूल ही है। आज इससे बचना कठिन हो गया है। हम देखते हैं कि हमारे सामने आज यह आदर्श रखने मे भी संकोच होता है कि चुनाव के लिए किसीको स्वयं नही खड़ा होना चाहिए—जिनको चुनने का अधिकार है उनपर ही योग्य व्यक्ति को खोज निकालने का भार डाल देना चाहिए—यदि उनकी दृष्टि हमपर पड़ जाय और वे हमें चुन ले तो उनकी आज्ञा मानकर अपनी शक्ति-भर उनकी सेवा, जो उस स्थान से सम्भव हो, कर देनी चाहिए। संसार में सच्ची प्रजातांत्रिक व्यवस्था तबतक नहीं हो सकती जबतक कुछ इस प्रकार की बात न चलाई जाय। इसके लिए त्याग की भावना दृढ़ होनी चाहिए, भोग की भावना कमजोर करनी चाहिए; हमारा ध्येय होना चाहिए—सेवा, न कि प्रतिष्ठा अथवा दूसरे प्रकार का स्वार्थ।

इधर पार्लेमेण्टरी कमिटी इस तरह से चुनाव की तैयारी में लगी थी, उधर पंडित जवाहरलालजी देश के भिन्न-भिन्न स्थानों का दौरा करके लोगों में उत्साह पैदा कर रहे थे। उन्होंने इस समय जैसे परिश्रम और उत्साह से दौरा करके लोगों को जगाया, शायद वैसा जबरदस्त प्रचार किसी सभापति ने अपने सभापतित्व-काल मे न किया होगा। उनका कहना था, और वह ठीक ही था, कि इस प्रकार के चुनाव मे, जहां करोड़ों आदमियों से वोट लेने थे, एक-एक वोटर तक पहुंचने की आशा व्यर्थ है; और अगर हम पहुंच भी सकें तो इसका भरोसा नही किया जा सकता कि ठीक समय पर हमारे पहुंचने का फल मिलेगा। सबसे अधिक आवश्यकता है वायुमण्डल को बदल देने की, जिससे यदि कोई बाहर निकलने का प्रयत्न भी करे तो न निकल सके। उन्होने ऐसा ही वायुमण्डल तैयार करने में अथक परिश्रम किया। नतीजा बहुत अच्छा हुआ।

: ११९ :

कांग्रेस का पहला ग्रामीण अधिवेशन

लखनऊ का अधिवेशन अप्रैल में हुआ था। वहां एक निश्चय यह भी हुआ था कि कराची का वह नियम बदल दिया जाय, जिसके अनुसार दिसम्बर में कांग्रेस का सालाना जल्सा न करके फरवरी-मार्च मे करने का निश्चय किया गया था। इसलिए इसके बाद का वार्षिक अधिवेशन १९३६ के दिसम्बर में ही होने को था। यह केवल आठ महीनों के भीतर ही पड़ता था। देश ने जवाहरलालजी को तीसरी बार सभापति फिर चुना। यह अधिवेशन फैजपुर में हुआ। यह स्थान बम्बई प्रान्त—कांग्रेसी महाराष्ट्र प्रान्त—के पूरब खानदेश-जिले मे है। यह एक गावमात्र है या कस्बा कहें तो एक छोटा कस्बा। गांधीजी ने विचार प्रकट किया था कि कांग्रेस का अधिवेशन गांवो में हुआ करे तो जनता को उससे विशेष लाभ पहुंच सकता है। पहली बात तो यह होगी कि गांव के लोगो को उसके प्रबन्ध मे भाग लेना पड़ेगा और इस तरह उनके लिए उसकी सब कार्रवाइयों मे रस पैदा होगा। दूसरी बात यह होगी कि अतिथियो के स्वागत-सत्कार और रहन-सहन के लिए जो इन्तजाम किया जायगा, उससे गांववालो को आर्थिक लाभ भी पहुंचेगा। गाधीजी चाहते थे कि प्रबन्ध भी ऐसा हो कि उसमे गांव की चीजों से ही काम लिया जाय। इस तरह वह ग्रामोद्योगो के प्रोत्साहन का कारण भी हो। उन्होंने महाराष्ट्र के लोगो से अनुरोध किया कि वे इस कांग्रेस का प्रबन्ध यथासाध्य ग्रामोद्योगो द्वारा उत्पन्न या उपस्थित की हुई वस्तुओं से ही करें। काम कठिन था, पर स्वागत-समिति ने यथासंभव प्रयत्न किया।

आजकल कांग्रेस का अधिवेशन एक बहुत बडे पैमाने पर करना पड़ता है। जहां-कहीं भी वह किया जाय, बहुत विशाल आयोजन करना पड़ता है। गावों में इस आयोजन का विस्तार और भी बढ़ जाता है। वहां तो कोई चीज मिलती नहीं, सबकुछ जुटाना ही पड़ता है। जहां लाखों आदमी जमा होनेवाले हैं, वहा उनके लिए केवल पानी ही जुटाना एक मुश्किल काम हो जाता है। उनके ठहरने और खाने का, रोशनी और सफाई का, प्रबन्ध कुछ कम कठिन नही होता। साथ ही, जहां इतने लोग इकट्ठे हों वहां उनके देखने योग्य कुछ कला की चीजो का होना भी आवश्यक होता

है। गांधीजी की आज्ञा से वहां यथाशक्ति गांव की चीजों का ही व्यवहार किया गया।

बंगाल की 'विश्वभारती' के प्रसिद्ध कलाकार श्री नन्दलाल वसु ने वहां जाकर कांग्रेस-नगर और पंडाल तथा प्रदर्शनी की सजावट इत्यादि का बहुत सुन्दर इन्तजाम कराया। तारीफ की बात यह थी कि सजावट के लिए गाव मे मिलनेवाले बास और लकड़ी से ही काम लिया गया था। जो फाटक बने थे, या दूसरी सजावट की चीजें बनी थी, उनकी सादगी में भी बड़ी खूबसूरती थी। यह देखकर लोगो को आश्चर्य हुआ कि इन छोटी-मोटी मामूली चीजो से कलाकार कितनी विचित्रता और रोचकता पैदा कर सकता है। आखिर प्रकृति की सुन्दरता तो इन्ही चीजों की बनी होती है। हम क्या प्रकृति से भी अधिक सुन्दर कोई चीज बना सकते हैं? पर हमारी दृष्टि आज दूषित हो गई है। हम प्रकृति के सौन्दर्य को ठीक समझ नही सकते। हम कला को प्रकृति से कोई अलग वस्तु मान बैठते हैं। जो हो, फैजपुर की विशेषता वहा की सरलता की सुन्दरता थी।

पानी के लिए वहां लोगो ने बहुत बडा कुआ खुदवाया, जो कांग्रेस के बाद भी वहा की जनता को लाभ पहुचाता रहेगा। रहने के लिए झोंपड़े बनवाये, जिनमे गांव के ही खर-पात, बास, चटाई इत्यादि का उपयोग हुआ था। इस प्रकार फैजपुर का अधिवेशन पहला ग्रामीण अधिवेशन हुआ, जिसमे ग्रामोद्योगो की ही प्रधानता रही। इनमें खादी का स्थान तो प्रमुख रहता ही, और खादी का ही सभी जगहों मे बोलबाला रहा।

पर अधिवेशन दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह मे हुआ, जब बहुत सर्दी पडा करती है। इसलिए बाहर के आये हुए हजारो-हजार लोगों को बहुत कष्ट हुआ; क्योंकि उस छोटे स्थान मे ऐसे आगन्तुको के ठहरने के लिए भी कोई मकान या धर्मशाला या झोपड़े तक भी नही मिल सकते थे। वे हजारों की संख्या मे यो ही खुले मैदान और खेतो मे रात को पड रहते थे। गांधीजी को यह बात बहुत खटकी। उन्होंने उस नियम को फिर बदलवा दिया। तब से फिर कांग्रेस मार्च (वसन्त) मे होती आ रही है।

फैजपुर का अधिवेशन चुनाव के चन्द दिन ही पहले हुआ था। इसलिए यहां चुनाव के सम्बन्ध मे बहुत उत्साह था। कई जगहो के कितने ही प्रमुख कार्यकर्ता, अपने स्थान पर चुनाव के प्रबन्ध में लगे रहने के कारण, नही आये। यहां भी नये विधान को नामंजूर करने तथा चुनाव में भाग लेने की बात की गई। इस चीज को अखिल भारतीय कमिटी के लिए छोड़ दिया गया कि चुनाव के बाद वह निश्चय करे कि मंत्रिमण्डल में शरीक होने के सम्बन्ध में कांग्रेस की क्या नीति होगी। जवाहरलालजी के विचार इसके

विरोधी थे और मालूम थे; पर वहीं पता लग गया कि कांग्रेस मंत्रिमण्डल बनाने के पक्ष में है और यदि प्रस्ताव उपस्थित होता तो उसे वह मंजूर करती। परन्तु अभी यह समय उस निश्चय तक पहुंचने का नहीं था; इसलिए वह अधिकार अखिल भारतीय कमिटी को ही देकर रख छोड़ा गया।

इसी अधिवेशन से कुछ पहले, श्री एम० एन० राय (मानवेन्द्रनाथ राय), विदेश से लौटने के बाद, सजा काटकर जेल से निकले थे। वह इस अधिवेशन में पहले-पहल शरीक हुए। हो सकता है कि जब वह इतने विख्यात नहीं थे, विदेश जाने के पहले, कांग्रेस में शरीक हुए हों; पर इधर यह उनका पहला ही अवसर उसमे शरीक होने का था। हमसे भी पहले-पहल वही मुलाकात हुई। अभी उनके विचारों से देश परिचित नही था और कांग्रेस में स्वाभाविक कौतूहल था। वह संयुक्तप्रदेश की ओर से प्रतिनिधि और अखिल भारतीय कमिटी के सदस्य चुन लिये गए थे। इस तरह उनको कांग्रेस में अच्छी तरह भाग लेने का सुअसवर मिल गया था।

: १२० :

चुनाव का दौरा और नतीजा

कांग्रेस के बाद सब लोग अपने-अपने सूबे के चुनाव मे भाग लेने के लिए गये। वही हमने पंडित जवाहरलाल से बिहार के कुछ भागों मे दौरा करने का वचन ले लिया। वह चन्द दिनों के बाद बिहार में दौरा करने आये। मैं भी दौरा करने योग्य हो गया था। अपने लिए भी मैंने यात्राक्रम बनाया। सभी जगहों में जवाहरलालजी का जाना सम्भव नही था ; क्योंकि उनको तो सारे देश में दौरा करना था। इसलिए हमने ऐसा प्रबन्ध किया कि जहां वह न जायं, वहां मै जाऊ। मै उनके साथ दौरे में नही गया। मैंने अपना दौरा अलग आरम्भ किया। इस तरह, हम दोनों ने मिलकर प्रायः सारे सूबे का दौरा कर लिया। पंडित गोविन्दवल्लभ पत प्रभृति दूसरे नेता भी आये। जहां-जहा कमजोरी दीख पड़ी, वहा वे गये। जनता में अपूर्व उत्साह था। दौरे के बाद हमारे दिल में सफलता के सम्बन्ध में किसी प्रकार का शक-शुबहा नही रह गया। जब चुनाव का नतीजा निकला तब मालूम हो गया कि हमने जितनी आशा की थी, उससे भी अधिक सफलता मिली। हरिजनों के सोलह सुरक्षित स्थानों मे से पन्द्रह काग्रेसी उम्मीदवार चुने गए। स्त्रियों के लिए जो सुरक्षित स्थान हैं उनमें तीनों गैर-मुस्लिम जगहें कांग्रेस को मिली। मजदूरो के लिए सुरक्षित जगहों मे से एक को छोड़ सभी कांग्रेस के उम्मीदवारो को ही मिली। आदिवासियो की जगहों में भी चन्द को छोड़कर सभी कांग्रेसी लोगों ने ही जीत ली। हां, जमीदारों की जगहें कांग्रेस को नही मिली। पर एक के सिवा और किसी के लिए कांग्रेस ने उम्मीदवार भी नही खडा किया था, उसमें भी काग्रेस की हार हुई। हम यह जानते भी थे, इसलिए हताश होने का यह कोई कारण न हुआ।

बिहार की असेम्बली में मुसलमानो के लिए उनचालीस या चालीस जगहें सुरक्षित हैं। चुनाव के बहुत पहले से ही काग्रेसी मुसलमानो और दूसरे राष्ट्रीय विचारवाले मुसलमानों में बातचीत चलती रही। कुछका विचार था कि जहांतक हो सके, कांग्रेस की ओर से ही सभी जगहों पर उम्मीदवार खड़े किये जायं। कुछ का विचार था कि राष्ट्रीय मुस्लिम जमायतों—जैसे जमीअत-उलेमा—के साथ समझौता कर लिया जाय, जिससे

कांग्रेसी और दूसरे दल में कोई विरोध न हो। परन्तु कांग्रेसी मुसलमान ही एकमत नही थे, इसलिए कांग्रेस-कमिटी कुछ मुश्किल मे थी। तो भी चन्द जगहों के लिए कांग्रेसी उम्मीदवार खड़े किये गए। इनमें से चन्द के लिए राष्ट्रीय मुसलमानो ने मुकाबले में उम्मीदवार नही खड़े किये। चन्द जगहो में मुकाबला हुआ भी। पर राष्ट्रीय मुसलमानो के अलावा कुछ दूसरे मुसलमान-दल भी थे—उन्होंने भी चुनाव में भाग लिया। मुस्लिम लीग का कोई जोर नहीं था। जहातक मुझे याद है, लीग की ओर से शायद ही कोई उम्मीदवार खड़ा किया गया था। जमीअत-उलेमा की मदद से एक दल बना, जिसके खास मददगार हुए जमीअत-उलेमा के मान्य नेता और इमातत-शरायत के नायब-अमीर मौलाना अबुल मुहासिन मुहम्मद सज्जाद। इसी दल मे मिस्टर मुहम्मद यूनुस शरीक हुए। मुसलमानो का यही दल सबसे जबरदस्त दल मालूम पड़ता था। इसी दल के साथ कांग्रेस की बात-चीत हुई, जिसका नतीजा यह हुआ कि कांग्रेस ने चन्द जगहो के लिए ही उम्मीदवार खड़े किये। कई ऐसे मुसलमान, जो हर तरह से कांग्रेसी समझे जा सकते थे और जिन्होंने कांग्रेस के कार्यक्रम के अनुसार जेल-यात्रा तक की थी, उस दल की ओर से खडे हुए। उस दल को काफी सफलता मिली। असेम्बली में मुसलमानो की सबसे अधिक सख्या इसी दल की थी। पीछे जब मुस्लिम लीग का जोर बढा तो शायद अब यह बात नही रह गई है; पर वह तो असेम्बली की बैठक होने पर ही मालूम होता कि किसके साथ अधिक मुसलमान सदस्य है। युनिवर्सिटी की जगह श्री सच्चिदानन्दसिह ने कांग्रेस-उम्मीदवार को हराकर ले ली।

बिहार का चुनाव पहले ही समाप्त हो गया। इसलिए यहा के कतिपय कार्यकर्ता संयुक्त-प्रांत मे चले गए। यहा की सफलता की बात वहा पहले पहुंच चुकी थी और इन लोगों ने भी जाकर कुछ काम किया। मैं भी चन्द दिनों मे वहां गया। चन्द दिनों के लिए मध्यप्रदेश मे भी गया। वहा के लोगो ने जहा मुझे ले जाना मुनासिब समझा, ले गए। मध्यप्रदेश मे विलासपुर-जिले मे मुझसे अधिक काम लिया गया। वहा से एक दिन के लिए जबलपुर-जिले मे कटनी के पास के क्षेत्र में भी जाना पड़ा। वहा विलासपुर के एक क्षेत्र मे श्री राघवेन्द्रराव कांग्रेस के उम्मीदवार का मुकाबला कर रहे थे। उसमें कांग्रेस की हार हुई; पर दूसरी जगहों में जहां मैं गया, कांग्रेस की जीत हुई। उसी तरह कटनी में भी कांग्रेस की जीत रही। संयुक्त प्रांत मे अवध के कई जिलों में मैं गया। फिर धामपुर-जिले में गया, जहां बहुत जोरदार मुकाबला था। धामपुर से कुछ दूर तराई में जाना था, जहां मुश्किल से मोटर पहुंच सकी। लोगों का कहना था कि वहां कोई

कांग्रेसी नेता पहले नही आया था। इसलिए वहां बहुत भीड़ जमा हुई थी। लोगों में काफी उत्साह था। जाना अच्छा रहा; क्योंकि वहां कांग्रेस की जीत महज चन्द वोटों से ही हुई।

युक्तप्रदेश से मै फिर महाराष्ट्र और कर्नाटक चला गया। महाराष्ट्र में कई दिनों तक दौरा किया। पर वहां उतनी सफलता नही मिली जितनी और जगहो मे। एक स्थान पर तो प्रतिद्वन्द्वी ने हमारे पहुंचने के पहले ही सभा मे, जो मेरे लिए एकत्र हुई थी, भाषण करके लोगो को अपने-अपने घर चले जाने के लिए कह दिया। उन्होंने कृपा करके कारण भी बता दिया कि मै नही पहुच सका और वहा नही आनेवाला हूं। शायद यह भी कह दिया हो कि कोई काग्रेसी कार्यकर्ता ही यह सन्देश लेकर आया है तो आश्चर्य नहीं! पर और जगहो में सभाए खूब हुई। बहुतेरी जगहें मिली भी; पर जितनी आशा थी उतनी नहीं। सबसे अधिक हार रत्नागिरि मे हुई, जहा से लोग बहुत आशा रखते थे। महाराष्ट्र से मैं कर्नाटक चला गया। कई जिलो मे घूमा। वहा अच्छी सफलता मिली। एक स्थान में हार हुई, जहा के सम्बन्ध मे वहा के लोग बहुत आशा रखते थे। वहां के उम्मीदवार भी कांग्रेस के अच्छे कार्यकर्ता श्री हनुमन्तराव कौजलजी थे। पर चुनाव मे इस तरह की बाते हुआ ही करती है।

इस समय तक और जगहो मे चुनाव का काम प्रायः समाप्त हो चुका था। मैं आन्ध्र के एक ही जिले—'बेलारी'—मे जा सका। वहीपर दौरा समाप्त करके वापस आ गया। इस तरह मेरा दूसरा दौरा महाराष्ट्र और कर्नाटक प्रदेशो के कई जिलो का हुआ। कई परिचित स्थानों को दुबारा देखने का अवसर मिला। इस तरह सारे देश मे चुनाव-संघर्ष समाप्त हुआ। काग्रेस की जीत बम्बई, मद्रास, मध्यप्रदेश, युक्त प्रदेश, बिहार, उडीसा और आसाम मे काफी हुई। पजाब, बंगाल और सिन्ध मे भी काग्रेसी लोग चुने गए; पर उनकी संख्या इतनी नही थी कि और दलों से वह अधिक हो। सीमाप्रान्त मे भी काग्रेस का सबसे बड़ा दल रहा। पर एकबारगी बहुमत काग्रेस को उस समय नही मिला।

चुनाव के बाद अब यह निश्चय करने का अवसर आ गया कि कांग्रेस मन्त्रिपद लेगी या नही। इतने सूबो में बहुमत पाकर क्या वह मन्त्रिपद लेकर काम करेगी या बिना पद लिये ही—इस विषय पर विचार करने के लिए अखिल भारतीय कमिटी की बैठक दिल्ली मे की गई। सभापति का विचार हुआ कि सभी कांग्रेसी मेम्बर वहां उस अवसर पर बुलाये जायं और सभी काग्रेस-सदस्यों का भी एक जल्सा किया जाय, जिसमें वे कांग्रेस के प्रति अपनी श्रद्धा और वफादारी की सौगन्ध लें। यह परिषद (con-

vention) बड़े उत्साह के साथ हुई। इस परिषद में सभी उपस्थित सज्जनों ने एक साथ कांग्रेस के आज्ञापालन और देशोद्धार के काम में लगे रहने की प्रतिज्ञा की। वहीं अखिल भारतीय कमिटी की भी बैठक हुई, जिसमें यह निश्चय हुआ कि कांग्रेस मन्त्रिमण्डल तभी बनायगी जब गवर्नर इस बात का वादा कर दे कि जो विशेष अधिकार उनको विधान द्वारा दिये गए हैं, उनका वह व्यवहार न करेंगे, बल्कि सब बातो में मन्त्रियो की सलाह से ही काम करेंगे। गांधीजी ने इस बात पर बहुत जोर दिया कि इस प्रकार का वादा कराये बिना काग्रेस को मन्त्रिपद नहीं लेना चाहिए; क्योंकि विधान में गवर्नरों के लिए बहुत अधिकार सुरक्षित रखे गए हैं—यदि वे उनका व्यवहार करेंगे तो काग्रेसी मन्त्रिमण्डल कोई बड़ा और महत्त्व का काम नही कर सकेगा; इसलिए यद्यपि काग्रेस को मन्त्रिमण्डल बनाने से इन्कार नही करना चाहिए तथापि वह तभी स्वीकार करे जब गवर्नर उपर्युत वादा कर दे।

जिस समय विधान बन रहा था, इन सुरक्षित अधिकारो के सम्बन्ध में बहुत टीका-टिप्पणी हुई थी। उस विधान के नामंजूर होने के कारणो में गवर्नर के इस प्रकार के अधिकार एक विशेष कारण थे। उस समय ब्रिटिश-सरकार ने भारत के इस विचार पर ध्यान नही दिया और अपनी इच्छा के अनुसार विधान बना दिया। अब गांधीजी की इस सूझ ने प्रान्तीय गवर्नरों के इन अधिकारों को निकम्मा कर देना चाहा; क्योंकि पुस्तक मे यदि ये अधिकार लिखे रह भी जायं और गवर्नर इन्हे काम मे न लावें, तो विधान की एक बहुत बड़ी शिकायत की बात दूर हो जाय। हममें से जो लोग मंत्रि-पद लेने के जबरदस्त हिमायती थे, वे भी इससे नाराज हुए; क्योंकि वे समझते थे कि इस अपरोक्ष रीति से ब्रिटिश सरकार विधान की उन धाराओं को रद नहीं करेगी और यदि काग्रेस इस शर्त पर अडी रही तो मत्रिमंडल नहीं बनेंगे। पर जो लोग मंत्रिमण्डल बनने के विरोधी थे, वे खुश थे; क्योंकि वे भी समझते थे कि ब्रिटिश सरकार इस शर्त को नही मानेगी और इस तरह मंत्रिमण्डल नही बनेगा। गांधीजी इसपर अड़े रहे। उन्होने साफ कह दिया कि उनके मत में मंत्रिपद न लेना बड़ी भूल होगी; पर उससे भी बढ़-कर यह भूल होगी कि मंत्रिपद बिना इस शर्त के लिये जायं। अन्त में यही बात मंजूर हुई। कांग्रेसी मेम्बरों को आदेश दिया गया कि वे अपने नेता चुन लें—जब नेता को गवर्नर मंत्रिमण्डल बनाने के लिए बुलावें तो वही यह शर्त पेश करें और कहें कि गवर्नर यदि अपने विशेष अधिकारों को व्यवहार में न लाने का प्रकाश्य रूप से वादा करें तो वह मंत्रिमण्डल बनाने के लिए तैयार हैं, अन्यथा नहीं।

१९३७ की पहली अप्रैल से नये विधान के अनुसार मंत्रिमण्डल बन जाने चाहिए थे। उसी दिन सभी सूबों का शासन भी उस विधान के अनुसार आरम्भ हो जाना चाहिए था। कांग्रेस के इस निश्चय के बाद, गवर्नरों को और उनको आदेश देनेवाले वायसराय को अब सोचना पड़ा कि वे क्या करें। विधान के अनुसार उन्हें उस दल के नेता को, जो सबसे बड़ा वहां की असेम्बली मे था, कह देना था कि वह मंत्रिमण्डल बनावें। असेम्बली के पार्टी-मेम्बरों को भी अपना नेता चुन लेना था। इसलिए सबसे पहले सभी सूबो के मेम्बरों के लिए यह आवश्यक था कि अपने-अपने स्थान पर एक बार मिलकर नेता चुन ले। बिहार मे पार्टी और प्रान्तीय कमिटी की बैठक एक ही दिन हुई, जिसमे नेता का चुनाव करना था। मै नही चाहता था कि इस विषय मे आपस मे दलबन्दिया हो। मै समझता था कि सर्वसम्मति से नेता का चुना जाना ही सबसे अच्छा होगा। मैंने देखा कि कुछ लोग किसी व्यक्तिविशेष के सम्बन्ध मे आपस मे बाते कर रहे थे। मेरे पास भी कुछ लोग आये। मैंने दलबन्दी करने की मनाही की और यही राय दी कि जिस किसीके सम्बन्ध में वे बाते करते हो, पहले उससे ही पूछ ले कि इस बात को क्या वह पसन्द करते हैं। जब सभा बैठी तो उसने यह निश्चय किया कि मैं ही हर जिले के प्रमुख लोगो से अलग-अलग बाते कर लू और जैसी लोगो की राय मालूम हो उसके अनुसार निर्णय दे दू तो वोटावोटी की नौबत न आवे।

मैंने विचार कर अपनी राय निर्धारित कर ली थी कि श्री श्रीकृष्ण-सिह ही पार्टी के नेता बनाये जाय। यह निश्चय करने मे मुझे इस बात से काफी मदद मिली थी कि दूसरे व्यक्ति भी—श्री अनुग्रहनारायणसिह, जिनके सम्बन्ध मे कुछ लोग बाते कर रहे थे—मुझसे निजी तौर पर कह चुके थे कि वह इस पद को नही चाहते और जो लोग उनके बारे में औरों से कह रहे है, वे उनकी इच्छा के अनुसार काम नही कर रहे हैं। तीसरे सज्जन, जिनके सम्बन्ध मे कुछ विचार होता था, डाक्टर सैयद महमूद थे। वह कई बरसों से अखिल भारतीय कमिटी और वर्किंग कमिटी के मेम्बर रह चुके थे। खिलाफत कमिटी के दिनो मे उसके प्रधानमत्री भी रहे थे। अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के मत्री रह चुके थे। राष्ट्रीय विचारों के वह पक्के और पुराने पोषक तथा समर्थक रहे है। उनका त्याग किसीसे कम नही रहा है। तथापि, वह बिहार सूबे में, विशेषकर सूबे के कांग्रेसी कार्य-कर्ताओं में, उपर्युक्त दो सज्जनों के मुकाबले कम लोकप्रिय रहे हैं। सूबे के बाहर अधिक काम करने के कारण उनसे सबका उतना परिचय नहीं है जितना इन दो सज्जनों से। इन दोनों में भी बाबू श्रीकृष्णसिह अपनी

वक्तृत्व-शक्ति के द्वारा अपनेको अधिक लोकप्रिय बना सके हैं। त्याग की मात्रा और निर्भीकता में भी वह लासानी है। अनुग्रहबाबू की संगठन-शक्ति और आफिस चलाने की शक्ति के सभी कायल है। इन्ही कारणों से मेरा विचार श्रीकृष्णबाबू के पक्ष में था। जब मैंने सभी जिलो के लोगों से बाते की तो अधिकांश लोगों की भी राय मेरी राय से मिल गई। श्री रामदयालु-सिंह भी प्रान्त के एक ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं कि उनके सम्बन्ध में भी कुछ लोगों का विचार हो सकता था; पर इसमे शक नहीं कि कुछ लोग उनका काफी विरोध भी करनेवाले थे, जिनमे उनके अपने जिले के भी कुछ लोग थे। कुछ लोग मुझसे नाराज हुए और कहने लगे कि मैंने एक सज्जन के सम्बन्ध में प्रचार करके जिले के लोगों से उनको मनवा लिया। बात ऐसी नहीं थी; पर यदि होती भी तो मुझे इसका अफसोस या इसकी शर्म नही होती; क्योकि जहांतक मैं समझ सकता और देख सकता था, जिले के लोग श्रीकृष्णबाबू और अनुग्रहबाबू में से ही एक को नेता बनाना चाहते थे, पर अनुग्रहबाबू इस होड़ मे पडना नही चाहते थे। इसलिए, यदि मैंने कुछ किया भी हो तो उसका असर इतना ही मात्र था कि मैंने दो नाम प्रस्तावित नही होने दिये। अन्त मे एक ही नाम आया और वह श्रीकृष्णबाबू का, जिसको लोगों ने सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया।

पीछे इस बात से मुसलमानों में—विशेषकर कांग्रेस के बाहर के मुसलमानों में—कुछ कटुता बढी। उन लोगों ने अपनी यह राय भी जाहिर की कि डाक्टर महमूद केवल मुसलमान होने के कारण नेता नही बनाये गए—यद्यपि वह अखिल भारतीय कमिटी मे औरों के मुकाबले अधिक विख्यात थे और अधिक काम कर चुके थे। यह बात मौलाना अबुल कलाम आजाद साहब तक पहुंचाई गई। मैं आज भी जब सब बातो पर विचार करता हूं तो मुझे ऐसा नही मालूम होता कि डाक्टर साहब को नेता न बनाने में मैंने कुछ भूल की। इसका अर्थ यह नही है कि उनके प्रति मेरा वह प्रेम और आदर नही है जो श्रीकृष्णबाबू के प्रति है। मैं उनके गुणो का कायल हूं। पर जब ऐसा समय आ जाता है कि दो या अधिक मित्रों मे से किसी एक को ही किसी स्थान के लिए देश की दृष्टि से चुनना पडता है, तो उनमे से भी एक को निकाल लेना ही पड़ता है। पर यदि कोई यह कहे कि एक-एक करके वे सब बातें बता और सुझा दी जायं, जिनके कारण 'क' लिया गया और 'ख' नहीं, तो यह असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। यह कठिनाई इस कारण से नहीं होती कि हम सब बातें किसीके सम्बन्ध में कहना नहीं चाहते। मेरा अनुभव है कि ऐसे मामलों में सब सोच-विचार करके आदमी एक निश्चय पर पहुंचता है और उसके सब कारणों को वह स्वयं भी इतना

नहीं जानता कि स्पष्ट रूप से सबके सामने उन्हें रख सके—तब भी उसके अपने हृदय में सन्तोष रहता है कि वह ठीक कर रहा है। यही बात यहां भी है। मुझे इस बात का सन्तोष है कि जब पीछे यह बात शिकायत के रूप में मौलाना अबुलकलाम आजाद के सामने रखी गई तो उन्होंने शिकायत करनेवालों से यही कहा कि यदि वह मेरे स्थान पर होते तो वह भी सब विचार करके शायद वही फैसला करते जो मैंने किया था।

बिहार में यह पहला मसला खूबी के साथ तय हो गया। पर सभी सूबों में ऐसा नहीं हुआ। कई जगहों में, जैसे मध्यप्रदेश और उड़ीसा में, आपस में काफी मनोमालिन्य हो गया, जिसका नतीजा पीछे मालूम हुआ जब आपस की दलबन्दियां फूटकर निकल आईं। संयुक्तप्रान्त में शायद किसी किस्म का मतभेद न हुआ। बम्बई में एक ऐसे सज्जन नेता बनाये गए, जिनके चरित्र और योग्यता के बारे में तो किसीको सन्देह न था, पर जो वहां के अधिक विख्यात लोगों में नहीं थे। यह थे बालासाहब खेर। यह हमेशा अपनेको पीछे रखा करते थे। यद्यपि विचार के पक्के और काम में निपुण थे तथापि इनको बाहर के लोग कम ही जानते थे। इसका एक घटना से प्रमाण मिलता है। फैजपुर-कांग्रेस के समय इनके जिम्मे स्टेशन पर कांग्रेस-यात्रियों से मिलने और उनका स्वागत करने का काम था। वहां भी जो लोग इनको पहले से नहीं जानते थे, वे शायद ही जान सके कि बम्बई-सूबे के भावी प्रधानमन्त्री—वह भी एक अत्यन्त सफल और कार्यदक्ष प्रधान-मन्त्री—उनका स्वागत कर रहे हैं, उनके असबाब को गाड़ियों पर लदवा रहे हैं अथवा खुद आगे बढ़कर उनको गाड़ियों पर सवार करा रहे हैं। युक्त-प्रदेश में भी पं० गोविन्दवल्लभ पंत को सभी जानते और चाहते थे। केन्द्रीय असेम्बली में उन्होंने जिस तरह काम किया था, उससे वहां या दूसरे सूबे के लोगों के दिल में यह खयाल ही नहीं उठ सकता था कि उनके सिवा वहां कोई दूसरा इस पद पर चुना जा सकता है। यही बात मद्रास प्रान्त के मन्त्री श्री राजगोपालाचारी के सम्बन्ध में थी।

गवर्नरों ने अपने-अपने सूबे में, जहां कांग्रेस का बहुमत था अथवा जहां सबसे बड़ा दल कांग्रेसियों का था, कांग्रेस-पार्टी के नेता को बुलाया और विधानानुसार उनको मंत्रिमण्डल बनाने में सहायता देने को कहा। उन नेताओं ने अपनी ओर से वही बात पेश की, जिसका आदेश अखिल भारतीय कमिटी से उनको मिला था। गवर्नर कहीं भी इस बात पर राजी नहीं हुए कि वे अपने विशेष और सुरक्षित अधिकारों को काम में नहीं लावेंगे। उनका कहना था कि विधान के बदलने का अधिकार उनको नहीं था और वे उसे इस तरह वादा करके परोक्ष रीति से नहीं बदल सकते। जहांतक मुझे

मालूम है, सबसे पहले मद्रास के गवर्नर ने ही राजाजी को बुलाया। जो बात वहां हो गई वही सभी जगहों मे दुहराई गई। वहां की खबर अखबारों में छप गई कि राजाजी ने गवर्नर के इन्कार करने पर मंत्रिमण्डल बनाने से इन्कार किया। यही सब जगहों में हुआ।

पर ब्रिटिश सरकार ने इस तरह से इस विधान को, जिसके बनाने में उसने कई साल लगाये थे और जिसके सम्बन्ध में इतना प्रचार किया गया था, जन्म लेने के पहले ही मरने देना पसन्द नहीं किया। उसके कर्मचारियों के हृदय मे शायद आशा लगी थी कि कांग्रेसवाले मंत्रिपद के लोभ का संवरण नही कर सकेंगे; इसलिए अगर १ अप्रैल को नही तो कुछ दिनों मे उनमे फूट डालकर पीछे उनका बहुमत इधर-उधर कर दिया जा सकेगा। इसलिए उन्होने निश्चय कर लिया कि चाहे जिस तरह से हो, जिस-किसी-का हो, चन्द दिनों के लिए ही सही, असेम्बली के बहुमत के विरुद्ध ही क्यो न हो, मंत्रिमण्डल बन जाना चाहिए—किसी-न-किसी को प्रधानमंत्री और उसके साथ कुछ औरो को जुटाकर १ अप्रैल को मंत्रिमण्डल के नाम अवश्य प्रकाशित करा देने चाहिए। अब यही कोशिश सभी सूबों में होने लगी। किन्तु यह काग्रेस के लिए बड़े गौरव की बात रही कि किसी भी सूबे मे एक भी कांग्रेसी ऐसा न मिला जो इस चकमे मे आकर मंत्रिपद स्वीकार करे! इसलिए, काग्रेस के बाहर के लोगो में से ही कुछ लोगों को नियुक्त करना अत्यावश्यक हो गया। गवर्नर ऐसा कर भी सकते थे; क्योंकि विधान के अनुसार, छह महीनों तक, असेम्बली की बैठक कराये बिना भी, शासन का काम, गवर्नर की अनुमति और उनके बजट मंजूर कर देने से, चल सकता था। उन्होंने इसी आशा से सभी जगहों में मत्रिमण्डल बना दिये कि इन पांच-छः महीनो में शायद हवा बदल जाय—शायद काग्रेसियों का कुछ दाव बदल जाय।

बिहार सूबे मे गवर्नर ने यह काम मि० मुहम्मद यूनुस को सुपुर्द किया। यह सज्जन मुसलमानो की इण्डिपेण्डेण्ट पार्टी की ओर से चुने गए थे, जिसके प्रमुख सहायक थे मौलाना अबुल मुहासिल मुहम्मद सज्जाद। मौलाना सज्जाद जमीअत-उलेमा के प्रमुख व्यक्ति थे। समझा जाता था कि कांग्रेस के साथ उनकी पूरी हमदर्दी है। चुनाव में भी उनसे यदि सुलह नहीं तो कोई झगड़ा भी नही हुआ था। कितने ही कांग्रेसी मुसलमानों ने उनकी पार्टी में इसलिए अपने नाम लिखाये थे कि वे उस तरह आसानी से चुने जा सकेंगे—विशेषकर जब वे यह समझते थे कि कांग्रेस की नीति से मौलाना सज्जाद बहुलांश में सहमत हैं। पर इस मौके पर मौलाना चूके। उन्होंने अपनी पार्टी में निश्चय किया कि वह मंत्रिमण्डल बनाये। मालूम नही कि

वहां क्या बातें हुईं। तरह-तरह की बातें उस समय की हवा में थीं। कुछ लोग कहते थे, कांग्रेसी विचारवाले मुसलमानों ने विरोध किया, पर उनकी संख्या औरों के मुकाबले एक या दो घटती थी। कुछ लोग कहते थे, पार्टी को आखिरी फैसला देने का मौका ही नही मिला; क्योंकि जब एक जगह में बैठकर पार्टी इस विषय पर विचार कर रही थी कि वह मन्त्रिमण्डल बनावे या न बनावे तब मि० यूनुस गवर्नर के पास जाकर वादा कर आये कि वह मंत्रिमण्डल बनाने के लिए तैयार है तथा गवर्नर ने मंजूर कर लिया, और तब उन्होने आकर पार्टी की सभा मे—जो उनका इंतजार कर रही थी—यह खबर दी कि मंत्रिमण्डल की नियुक्त हो गई! पार्टी इसके बाद कुछ न बोल सकी—शायद उसने भी अब इस विषय पर कुछ कहना फिजूल समझा। मालूम नही, सच क्या है!

इस सम्बन्ध मे बिहार मे एक बडी बात हो गई। हमको खबर मिली कि मि० यूनुस कांग्रेस के दूसरे मेम्बरों को तो नही फोड़ सके हैं, पर वह हरिजन-मेम्बर पर बहुत जोर डाल रहे हैं और उन्होंने श्री जगजीवनराम को मंत्रिमण्डल में एक स्थान देना मंजूर किया है। यह भी खबर लगी कि वह श्री जगजीवनराम को साथ लेकर गवर्नर के पास गए भी हैं अथवा कहीं अन्यत्र उनसे बाते करने के लिए उन्हे ले गए हैं! सब लोग कुछ चिन्तित होने लगे कि शायद एक कांग्रेसी आदमी को भी फोड़ने मे वह सफल न हो जायं! पर मुझे इस बात की चिन्ता नही थी; क्योंकि मुझे पहले ही खबर मिल चुकी थी कि मि० यूनुस की कोशिश जरूर है, मगर श्री जगजीवनराम इस तरह बहकावे में आनेवाले नही है। अन्त मे ऐसा ही हुआ। मंत्रिमण्डल बना; पर उसमें शामिल होने से श्री जगजीवनराम ने साफ इन्कार कर दिया—कोई भी दूसरा कांग्रेसी शरीक न हुआ। इस तरह यह पहला जबरदस्त प्रयत्न असफल रहा। मन्त्रिमण्डल बनने से हमे कोई चिन्ता नही थी; क्योंकि हम जानते थे कि छह महीनों के अन्दर या तो मंत्रिमण्डल टूटेगा या विधान ही रद होगा या उसे बदलना पड़ेगा। कारण यह कि इतने अधिक बहुमत से कांग्रेसी चुने है कि कोई दूसरी पार्टी या सभी दूसरे लोग मिलकर भी असेम्बली मे कांग्रेस का मुकाबला नहीं कर सकेंगे—यदि असेम्बली और कौन्सिल दोनो का सयुक्त अधिवेशन भी हो तो भी कांग्रेस का ही बहुमत रहेगा। जिस दिन मन्त्रिमण्डल बना उस दिन पटने में कुछ लोगो ने मि० यूनुस के विरुद्ध प्रदर्शन किया, जिनमें मुख्य थे श्री जयप्रकाश-नारायण। वह गिरफ्तार कर लिये गए। उनपर मुकदमा चलने के बाद उनको कुछ सजा भी मिली। पर पीछे मि० यूनुस ने म्याद पूरी होने के पहले ही उनको छोड़ दिया।

इसी तरह और सूबों में भी मंत्रिमण्डल बन गया। कम-से-कम यह दिखलाने के लिए हो गया कि नये विधान के अनुसार शासन होने लगा। पर यह बात गवर्नर लोग जानते थे और मंत्री लोग भी कि यह चन्दरोजा तमाशा है। वे लोग इस प्रयत्न में थे कि यदि वे फोड़फाड़कर बहुमत न बना सकेंगे तो कोई-न-कोई रास्ता काग्रेस के साथ मेल करने का निकालना ही चाहिए। कांग्रेस मे जो लोग मंत्रिमण्डल बनाने के विरोधी थे, खुश थे कि किसी तरह काग्रेस तो इसमें नही पड़ी और उनकी अड़गा-नीति के काम मे आने का अब भी मौका है। जो पक्ष में थे, वे यह समझते थे कि आज नही तो चन्द दिनो के बाद काग्रेसी मंत्री होगे ही और जब होगे तब गवर्नर के विशेषाधिकारो को स्थगित कग करके ही होगे। इसलिए, इस समय, इस सम्बन्ध मे, काग्रेसी निश्चिन्त थे। मत्रिमण्डल अपनेको लोकप्रिय बनाने की फिक्र मे था और गवर्नर लोग तथा वायसराय इस चीज के हल निकालने मे लगे थे। गवर्नमेण्ट की ओर से जब-तब विज्ञप्तियां निकलती और कांग्रेस की ओर से उनको ना-काफी बताकर छोड दिया जाता।

तीन महीनो के बाद वायसराय ने एक विज्ञप्ति निकाली, जिसपर वर्किंग कमिटी ने विचार करके कुछ और स्पष्टीकरण चाहा तथा काग्रेस-पार्टी के नेताओ को आदेश दिया कि वह स्पष्टीकरण उनको सतोषदायक मालूम हो तो वे मत्रिपद ग्रहण कर सकते है। बात यह थी कि ब्रिटिश सरकार यह बात साफ-साफ शब्दो में तो कह नही सकती थी कि विधान की कुछ धाराएं उड़ा दी गई; क्योकि उसको यह कहने का अधिकार भी नही था। पर उसने अपनी नीति घुमा-फिराकर बता दी कि अधिकार रखते हुए भी गवर्नर उनसे काम नही लेगे। चूकि यह बात स्पष्ट शब्दों में नही कही गई थी, स्पष्टीकरण आवश्यक था। वर्किंग कमिटी के इस निश्चय के बाद मालूम हो गया कि अब शीघ्र ही फिर काग्रेसी लोग मत्रिमण्डल बनाने के लिए बुलाये जायंगे।

इसी समय बिहार-प्रान्तीय कान्फ्रेन्स का अधिवेशन सारन जिले के 'मसरक' गांव मे करने का निश्चय हुआ था। प्रोफेसर अब्दुल बारी इसके सभापति मनोनीत हुए थे। वहा हम सब गए और कान्फ्रेन्स का काम समाप्त करके छपरे पहुंचे। वही मालूम हुआ कि गवर्नर ने श्रीबाबू को बुला भेजा है। वहा हम लोगों को मौका मिला कि मंत्रिमण्डल के सम्बन्ध मे हम कुछ बातें कर ले। पर अभीतक हम यही निश्चय कर सकते थे कि वर्किंग कमिटी के आदेशानुसार यदि स्पष्टीकरण संतोषजनक होता है तो हम मंत्रिमण्डल बनाने के लिए तैयार है—यदि गवर्नर मंत्रिमण्डल बनाने को कहें तो इसके लिए समय लेकर श्रीकृष्णबाबू वापस आ जायगे और तब हम लोग एकत्र

बैठकर विचार कर लेंगे कि कौन-कौन मंत्रिमण्डल में लिये जायं। छपरे में कुछ आरम्भिक बातें हो गईं। विचार-विनिमय भी हो गया, जिसके आधार पर हम चन्द आदमी, जो वहां मिले थे, इस बीच में सोच सकेंगे।

मंत्रियों को चुनना कठिन समस्या थी। पहली बात तो यह थी कि कितने मंत्री हों। मेरा विचार था कि इसके पहले चार आदमी थे, जो शासन के सारे काम को संभालते थे और जो सभी विभागों की निगरानी कर लिया करते थे। इनमें दो तो गवर्नर के एक्जिक्यूटिव-कौन्सिल-मेम्बर हुआ करते थे और दो मंत्री। इसलिए मैं समझता था कि जब इस नये विधान के पहले चार आदमी सब काम संभाल लेते थे तो अब भी चार मंत्रियों को ही सब काम संभाल लेना चाहिए। अधिक मंत्री बनाने से खर्च अधिक होगा और कुछ ऐसा मालूम होगा कि ये लोग अपने लिए पद पाने की अभिलाषा से आये हैं तथा जितना हो सकता है उतने पद पैदा करके आपस में बटवारा कर रहे हैं। जहां-जहां मंत्रिमंडल पक्के तौर पर बना था, मंत्रियों की संख्या अधिक रखी गई थी और हमने इस बात पर कुछ टीका भी की थी। यद्यपि कांग्रेस के मंत्रियों के लिए अखिल भारतीय कमिटी ने मकान और सवारी के अलावा पांच सौ रुपये मासिक नियत कर दिया था, और इस तरह खर्च बहुत कम हो जाता था, तो भी मैं इस विचार में दृढ था कि मंत्रियों की संख्या अधिक न होनी चाहिए—विशेषकर बिहार में चार से अधिक की गुंजाइश नहीं है। मुझे यह कह देना उचित मालूम होता है कि पीछे मैंने देखा कि मेरा विचार गलत था; क्योंकि हमारे सभी मंत्री इस प्रकार के काम में अभी नौसिखिए थे और पहले का कुछ विशेष अनुभव नहीं रखते थे। इसके अलावा हमारे मंत्रियों को पहले के चलाये हुए ढर्रे पर ही काम नहीं करना था—लकीर नहीं पीटनी थी, उनको बहुतेरे नये प्रोग्राम चलाने थे, इसलिए उन प्रोग्रामों के सम्बन्ध में जानकारी हासिल करने और विचार निश्चित करने में समय लगनेवाला था। अतः कुछ दिनों के अनुभव के बाद मैंने सोचा कि शायद चार से अधिक मंत्री रखना ही अच्छा होता। पर उस दिन मैं अपने विचार में दृढ था और सोचता था कि चार से अधिक मंत्री रखना बिहार के लिए उचित न होगा।

इसके अलावा एक बात और थी, जिसका कुछ-न-कुछ असर इस निश्चय पर पहुंचने में जरूर पड़ता था। हम लोग सोच रहे थे कि प्रान्त में कुछ ऐसे प्रमुख व्यक्ति हैं, जिनके सम्बन्ध में किसी किस्म का मतभेद नहीं हो सकता; पर जब हम उनसे आगे बढ़ते थे तो कुछ ऐसे लोग सामने आ जाते थे, जिनमें से चुनाव करने में—किनको लेना, किनको न लेना, यह निश्चय करने में—काफी कठिनाई सामने आती थी। इसलिए भी विचार होता कि उन प्रमुख

व्यक्तियों तक ही यदि हम अपना चुनाव परिमित रखें तो बुरा न होगा।

एक-दो और बातों का भी उल्लेख उचित होगा। इस विषय में प्राय सभी सहमत हो गए थे कि एक हरिजन का मंत्री बनना आवश्यक है। यदि और विचारो को छोड भी दिया जाय, तो भी उन्होंने मि० यूनुस की बात न मानकर—बहुत बड़े प्रलोभन का लोभ संवरण करके—मंत्रिपद के लिए अपना दावा साबित कर दिया है। इसलिए यह एक निर्विवाद बात सबके मन मे खुद-बखुद तय हो चुकी थी।

हजारीबाग के श्री रामनारायणसिह चाहते थे कि छोटा नागपुर की ओर से वहां का कोई मंत्री अवश्य नियुक्त किया जाय। उनका कहना था कि सूबे का वह हिस्सा पिछड़ा हुआ माना जाता है और कांग्रेस भी उसकी ओर पूरा ध्यान नही देती। इसकी शिकायत वह हमसे मित्र-भाव से बराबर किया करते थे कि मै भी उस हिस्से पर काफी ध्यान नही देता हूं। इसके समर्थन में वह कहा करते थे कि मैं वहां जाकर कभी कुछ दिनो के लिए नही रहता हूं। मैं भी उनसे मजाक में कहा करता था कि पिछले बीस-बाईस बरसों मे जितना मै एकसाथ छोटा नागपुर मे रहा हूं उतना किसी दूसरे एक स्थान मे नही; क्योंकि जेल-जीवन बराबर हजारीबाग मे ही काटना पड़ा है। यह मजाक के लिए तो ठीक उत्तर होता; पर उनको इससे संतोष नही हो पाता। इसलिए उन्होंने जोर लगाया कि छोटा नागपुर का भी एक मंत्री अवश्य होना चाहिए। वह स्वयं वहां के प्रमुख काम करनेवाले थे। उस समय वह केन्द्रीय असेम्बली के मेम्बर थे। प्रान्तीय चुनाव के समय वह प्रान्तीय असेम्बली के लिए खडे नही हुए थे। इसलिए, यदि वह मंत्री बनाये जाते तो इसका यह अर्थ होता कि कही जगह खाली करके उनके स्थान पर कुछ दिनो के अन्दर प्रान्तीय असेम्बली का मेम्बर भी बनवाना पडता। जो चुने हुए काग्रेसी लोग थे, वे इसे बहुत बुरा मानते; क्योंकि वे यह मानते, और ठीक ही मानते कि उनमें कोई इस पद के योग्य नही समझा गया, इसलिए चुने हुए लोगों को छोड़कर बाहर से एक आदमी लेना पड़ा है। इन विचारो से उनको मंत्रिमण्डल में लेना असम्भव हो गया। इससे वह बहुत असन्तुष्ट हुए। उन्होंने मेरे पास कई पत्र भी भेजे जिनका मैंने उत्तर तो दिया, पर शायद उन्हें सन्तोष न दे सका। सार्वजनिक जीवन में ऐसा कभी-कभी करना पड़ता है। मुझ-जैसे आदमी के लिए, जिसे किसीके साथ कटुता पैदा करने में बहुत दुख होता है, ऐसा अनचाहा काम भारी मुश्किल पेश कर देता है। पर कर्त्तव्य की दृष्टि से आज भी मैं समझता हूं कि इस सम्बन्ध मे मेरा जो निश्चय हुआ वह ठीक ही हुआ।

अन्त में, हमको एक और कठिनाई सुलझानी थी। हरिजनों में दो प्रमुख

कांग्रेसी थे—एक श्री जगलाल चौधरी, जो १९२० में कलकत्ता-मेडिकल-कालेज के अन्तिम दर्जे मे पढ़ रहे थे और कुछ महीनों में ही एम० बी० पास करके डाक्टर हो जानेवाले थे। वह कांग्रेस की पुकार पर परीक्षा छोड़कर, तबसे बराबर एकचित्त हो कांग्रेस की सेवा मे, विशेषत: रचनात्मक काम मे लगे रहे—वह सत्याग्रह मे भी भाग लेकर जेल-यात्रा कर आये थे; दूसरे थे श्री जगजीवनराम, जो बडे उत्साही और सुयोग्य कार्यकर्ता थे, थोड़े दिनों से ही कांग्रेस का काम करने पर भी काफी प्रभाव रखते थे और मि० यूनुस की दी हुई मिनिस्ट्री ठुकरा चुके थे। सब बातो पर बहुत सोचने के बाद हमने श्री जगलाल चौधरी को मंत्री और श्री जगजीवनराम को पार्लमेण्टरी सेक्रेटरी बनाने का निश्चय किया।

: १२१ :

कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों का निर्माण

इस तरह, हमने निश्चय कर लिया कि श्री श्रीकृष्णसिंह प्रधान मंत्री हों। उनके साथ डाक्टर सैयद महमूद, श्री अनुग्रहनारायणसिंह और श्री जगलालचौधरी मत्री हो तथा चार मंत्रियो के साथ आठ पार्लमेण्टरी सेक्रेटरी हो। श्री रामदयालुसिंह स्पीकर मुकर्रर हो ही चुके थे और प्रो० अब्दुल बारी डिप्टी-स्पीकर। पार्लमेण्टरी सेक्रेटरियो मे श्री कृष्णवल्लभसहाय, श्री शारंगधरसिंह, श्री जीमूतवाहन सेन, श्री विनोदानन्द झा, श्री शिवनन्दन मंडल, श्री जगजीवनराम और श्री सदीदुल हक नियुक्त किये गए। उस समय मैने समझा कि ये नियुक्तियां ठीक की गई थी और पीछे भी मुझे अपनी राय बदलने का मौका न हुआ—यद्यपि कुछ लोगो का विचार था कि इससे बेहतर चुनाव हो सकते थे। जहातक मै समझ सका, सभी मन्त्रियों की भी इस बात मे मेरे साथ सहमति थी।

मै दो बातों का कहना भूल गया—यद्यपि उनको पहले ही कहना चाहता था। एक बात का सम्बन्ध था प्रान्तीय लेजिसलेटिव-कौन्सिल के चुनाव के साथ और दूसरी बात थी असेम्बली के सभापति या स्पीकर के चुनाव की। कौन्सिल के मतदाता अधिकतर ऐसे ही लोग है, जो धनी-वर्ग के हैं, अर्थात जिनमे जमीदारी का अधिक मालिया देनेवालो अथवा काफी इन्कम-टैक्स देनेवालों की ही संख्या ज्यादा है। इसलिए हमको जैसे जमीदारी की जगहों के चुनाव मे जीतने की आशा नही थी, वैसे ही इन जगहो के जीतने मे भी कम आशा थी। पर इसमें दो तरह मे सदस्य चुने जाते है—कुछ तो ऐसे होते हैं जो मतदाता द्वारा चुने जाते है और कुछ असेम्बली के मेम्बरों द्वारा। असेम्बली द्वारा चुने जानेवाले लोगों में तो काग्रेसी लोग काफी लोगों को चुन ले सकते थे; पर मतदाताओं में उनके उतने अधिक मददगार शायद नही थे। इसलिए हमने पहले से ही सोच रखा था कि हम सभी जगहों के लिए उम्मीदवार नही खड़े करेगे। पर जो चन्द जगहें मिल सकती थी, उनके लिए हमने खड़े किये और जीते भी; पर हमारी शक्ति असेम्बली द्वारा ही प्रदर्शित हो सकती थी।

स्पीकर का चुनाव करने के लिए एक दिन असेम्बली की बैठक हुई।

उस दिन के लिए गवर्नर ने श्री सच्चिदानन्दसिंह को सभापति नियुक्त कर दिया था। मैं भी उसी एक दिन असेम्बली में गया। उसके पहले कभी बिहार-असेम्बली में नहीं गया था। उसके बाद भी फिर कभी जाने का मुअसवर नही मिला। खैर, श्री रामदयालुसिंह चुने गए। चुनाव के बाद श्री सच्चिदा-नन्दसिंह ने एक मजेदार भाषण किया, जिसमें उन्होने रामदयालुबाबू का स्वागत करते हुए मेरे एक भाषण का उद्धरण दिया था। उस उद्धरण में कहा गया था कि जो उम्मीदवार काग्रेस की तरफ से चुने जाते है वे तो कांग्रेस के नियन्त्रण मे और उसकी नीतियो तथा नियमो के बन्धन मे रहेंगे; पर जो स्वतन्त्र रूप मे चुने जाने के लिए खड़े हुए हैं, वे छुट्टे सांड़ है, जिनपर किसी प्रकार का बन्धन अथवा नियन्त्रण नही है। मेरे इसी वाक्य को लेकर उन्होने बड़ा मजाक किया था।

इस तरह मन्त्रिमण्डल मुकर्रर हो गया। मैंने नियुक्ति के दिन ही मन्त्रियो से कहा कि सबसे अच्छा तो यह होगा कि कुछ दिनों तक सभी मन्त्री एक ही साथ रहे, यदि ऐसा न हो सके तो किसी-न-किसी बहाने वे प्रतिदिन आपस मे मिलकर अपने सभी विभागो के सम्बन्ध मे बेजाब्ता तरीके पर विचार-विनिमय कर लिया करे; इस तरह सभी विभागों के काम से सबका परिचय रहेगा और सभीको किसी भी महत्वपूर्ण निश्चय पर पहुंचने के पहले दूसरो के विचारो एवं अनुभवों का लाभ मिल जायगा —विशेषकर जब कभी कोई महत्वपूर्ण विषय उपस्थित हो अथवा किसी विशेष स्थान के लिए कोई नई नियुक्ति करनी हो तो आपस मे जरूर विचार-विमर्श कर लिया करे। यह इसलिए भी आवश्यक था कि अभी इस तरह के काम मे सभी अनुभवहीन थे और सबके लिए यह आवश्यक था कि हमेशा चौकन्ने रहकर एक-दूसरे के अनुभवो से लाभ उठाते रहे। पर खेद है कि ऐसा हो नही सका! पीछे मालूम हुआ कि सब मन्त्रियों को अपने विभाग के सिवा दूसरे विभागों की जानकारी नही रहती थी। इससे कही-कही कुछ शिकायते भी पैदा हो गई। बम्बई मे श्री खेर ने इस नीति को शुरू से ही बर्ता। वहा के मन्त्री प्रायः प्रतिदिन एकत्र मिल लिया करते और इस प्रकार एक-दूसरे की कार्रवाइयों से पूरी तरह परिचित रहते। युक्त-प्रदेश और मद्रास में तो श्री गोविन्दवल्लभ पन्त और श्री राजगोपाला-चारी का ऐसा व्यक्तित्व ही था कि वे स्वयं मन्त्रियों की कार्रवाइयों से अपनेको पूरी तरह परिचित रखते; इस तरह वहां भी ठीक काम चलता रहा।

मुझे मिनिस्ट्री के सिलसिले में उड़ीसा भी जाना पड़ा। वहां पार्टी के नेता के चुनाव के समय आपस का मतभेद मालूम हुआ था। यह बात

पार्लमेण्टरी कमिटी तक आई थी। पं० नीलकण्ठदास उड़ीसा के प्रमुख व्यक्तियों में है। १९२१ से ही उन्होने काग्रेस मे बहुत काम किया था। वह स्वर्गीय पं० गोपबन्धुदास के सहकर्मियो मे से थे। १९३०-३४ के सत्याग्रह-आन्दोलन मे हम लोगों के साथ ही वह हजारीबाग-जेल मे थे। उन दिनों भी उनकी राय मालूम होती थी कि जो नया विधान बने, उसमे काग्रेस को मन्त्रिपद स्वीकार करना चाहिए। जब १९३४ मे केन्द्रीय असेम्बली के लिए चुनाव हुआ तो वह उड़ीसा के क्षेत्र से काग्रेसी सदस्य चुने गए थे। १९३७ मे नये विधान के अनुसार जब बिहार से उड़ीसा अलग हो चुका था, उसकी असेम्बली के लिए सदस्यों का चुनाव हुआ तो वह स्वयं किसी क्षेत्र से प्रान्तीय असेम्बली के लिए खड़े नही हुए। पर जब कांग्रेस का बहुमत हो गया और यह मालूम हो गया कि जब कभी काग्रेस मन्त्रिपद लेगी तो असेम्बली का नेता ही प्रधानमन्त्री होगा, तब उन्होने वहां के मेम्बरो से नेता चुने जाने की इच्छा प्रकट की। प्रान्तीय चुनाव मे उन्होंने परिश्रम भी किया था। उस चुनाव की सफलता मे उनका हाथ था। पर वहा के सदस्यो के सामने अब यह प्रश्न उपस्थित हो गया कि किसी ऐसे आदमी को, जो असेम्बली का सदस्य नही था, असेम्बली पार्टी का नेता कैसे चुने। असेम्बली-पार्टी के नेता को असेम्बली मे हाजिर रहना चाहिए। वहां रहकर ही वह अपना काम पूरा कर सकता है। इसके अलावा, यदि गवर्नर बुलावेगा तो वह असेम्बली के किसी सदस्य को ही बुलाना चाहेगा, और किसी बाहर के व्यक्ति को बुलाने में उसे दिक्कत होगी। यह दूसरी बात है कि बाहर का आदमी भी इस शर्त पर मन्त्री हो सकता है कि छः महीनो के अन्दर वह कही से सदस्य चुना जायगा। पर पं० नीलकण्ठदास केवल मन्त्री होना नही चाहते थे। वह प्रधानमन्त्री ही हो सकते थे; क्योंकि वही पद उनके योग्य था। पार्लमेण्टरी कमिटी की राय हुई थी कि मेम्बरों में से ही कोई नेता चुना जा सकता है। इसलिए श्री विश्वनाथदास ही नेता चुने गए, जो ब्रह्मपुर जिले के रहनेवाले है और जो पहले मद्रास-असेम्बली के मेम्बर रह चुके थे जब उनका यह जिला मद्रास-प्रान्त का भाग था।

मुझे इसलिए जाना पड़ा कि वहां आपस के इन झगड़ों से कुछ मतभेद होने का भय था। मैं वहां गया। सबसे नाजुक प्रश्न यह उठा कि मुसलमानों में मंत्री कौन बनाया जाय। वहां की असेम्बली में मुसलमानों की संख्या बहुत थोड़ी है। जो चन्द-रोजा मंत्रिमंडल बना था, उसमें एक मुसलमान सज्जन थे। दूसरा कोई ऐसा व्यक्ति नही नजर आया जो कांग्रेस की ओर से चुना गया हो और मंत्री का काम कर सकता हो। जो ऐसे व्यक्ति थे, जिनमें काम चलाने की योग्यता थी, कांग्रेस-टिकट पर चुने नहीं गए थे और अब

भी कांग्रेस में शरीक होने के लिए तैयार न थे। मैं दो या तीन दिनों तक कटक में ठहरा रहा। इस बात की पूरी कोशिश हुई कि कोई उपयुक्त मुसलमान मत्री बनाया जाय; पर इसमे सफलता नही हुई। अन्त में, बिना किसी मुसलमान के ही उस समय मत्रिमडल बना दिया गया; पर इस बात का अन्तिम निर्णय पीछे मौलाना आजाद से पूछ करके करने पर छोड़ दिया गया।

संयुक्त-प्रदेश में भी मुसलमान मंत्री के सम्बन्ध मे दिक्कत थी; क्योंकि वहां भी काग्रेस-टिकट पर एक ही दो मुसलमान चुने गए थे, दूसरे लोग स्वतन्त्र रूप से चुने गए थे। मौलाना आजाद ने वहा के सम्बन्ध में बातें की थी। कुछ मुसलमान—जो काग्रेस से सहानुभूति रखते थे, पर कांग्रेस की ओर से चुने नही गए थे—मौलाना के साथ कुछ समझौते के लिए तैयार थे। यदि वह समझौता हो गया होता, तो शायद जो झगडा लीग के साथ उठ खड़ा हुआ वह नही होता। पर उस समय प्रान्त के प्रमुख काग्रेसी इस बात पर राजी नही हुए। मौलाना को भी वहा ठहरने का पूरा समय न मिला—बम्बई चला जाना पड़ा। इसलिए वहां के मत्रिमडल मे एक कांग्रेसी मुसलमान श्री रफीअहमद किदवई और—दूसरे जो काग्रेस-टिकट पर नहीं चुने गए थे—हाफिज अहमद इब्राहिम मत्री बनाये गए। यहा यह कह देना उचित है कि हाफिजसाहब ने असेम्बली से इस्तीफा दे दिया और फिर काग्रेस-टिकट पर चुन लिये गए। बम्बई की दिक्कत मौलाना की राय से तय हो गई और मिस्टर नूरी मंत्री बने। इसी तरह मध्यप्रदेश में भी मि० शरीफ मंत्री हुए।

मुसलमान-मत्रियों के सम्बन्ध में इतना लिखना इसलिए आवश्यक हो गया कि पीछे चलकर मुस्लिम लीग ने इस विषय को लेकर बहुत हो-हल्ला मचाया। उस समय तक काग्रेसी और दूसरे लोग, चुनावों में तथा विधान के अनुसार बने हुए मत्रिमडलों मे, इंगलैंड के मत्रिमडल-जैसा ही चित्र देख रहे थे। वे लोग वहा की रीति-नीति के अनुसार ही यहा के मंत्रिमंडल का भी संगठन और उसकी कार्रवाइया करना चाहते थे। इसी कारण सभी संगठित दलो ने अपने-अपने उम्मीदवार खड़े किये थे। चुनाव के समय कुछ नये दल भी बने थे, जैसे बिहार की इंडिपेण्डेण्ट-पार्टी। चुनाव के बाद जब एक पार्टी यानी काग्रेस का बहुमत कई सूबों में जबरदस्त हो गया तो उसको अपने दल के बाहर से किसी मंत्री बनाने की बात इस प्रकार की विधान-कार्य-प्रणाली के विरुद्ध मालूम हुई। साथ ही, कांग्रेस-दल में भी मुसलमान थे। उनको छोड़कर बाहर जाना उनके प्रति अन्याय होता था। चुनाव तक मुस्लिम लीग का कुछ वैसा जोर भी नही था। बहुत कम जगहों के लिए

मुस्लिम लीग ने उम्मीदवार खड़े किये थे। जहां उसके उम्मीदवार खड़े हुए, बहुत सफल भी नही हुए थे। इस कारण, मुस्लिम लीग के लिए, मंत्री बनाना, प्रायः सभी जगहो मे, जहां कांग्रेस का बहुमत था, अवैध होता। कांग्रेस ने एक घोषणा-पत्र के अनुसार चुनाव को लड़कर जीता था। उसके अनुसार काम करना उसका कर्त्तव्य था। उसीके सभी मेम्बरो ने सौगन्ध ली थी कि उसके आज्ञानुसार वे काम करेगे और जब आज्ञा होगी तब पद-त्याग कर देगे।

काग्रेस के पास पद-त्याग का एक अस्त्र था, जिसके द्वारा वह, वैध रीति से मतभेद होने पर, गवर्नर को दबा सकती थी। यदि वह किसी गैर-काग्रेसी को, बिना इन शर्तो को कबूल कराये, मंत्री बना देती तो उसके हाथ मे कोई दूसरा अस्त्र रह ही नही जाता, जिसके द्वारा गवर्नर पर वह अपना प्रभाव जता सकती। वैधानिक मंत्रिमडल मे सभीकी समान जवाबदेही मानी जाती है, जिसका अर्थ यह होता है कि चाहे किसी भी मत्री ने कोई भी काम किया हो उसकी जवाबदेही उसके सभी साथियो पर है। इस तरह सभी एक-दूसरे की मदद करते है और एक-दूसरे की कार्रवाइयो पर अकुश भी रखते हैं। यदि मतभेद हो गया तो जो बहुमत से अलग राय रखता है, उसे हट जाना पड़ता है। यदि दो सस्थाओ की आज्ञाओ को मानने के लिए बाध्य अथवा वचनबद्ध मत्री कही किसी मत्रिमडल मे हो, और उन दोनो सस्थाओ ने एकसाथ मिलकर काम करने का निश्चय और प्रबन्ध न कर लिया हो, तो हो सकता है कि दोनों संस्थाओं की विरोधी आज्ञाएं आवे और मत्री लोग अपनी-अपनी संस्था की आज्ञा का पालन करे, तो मंत्रिमंडल की कार्रवाइयों मे ही विरोध पैदा हो जाय। इसलिए, यह आवश्यक था कि मंत्रिमंडल के सभी मत्री किसी एक ही संस्था के हुक्म मानने के लिए बाध्य या वचनबद्ध हो, अथवा आपस मे कम-से-कम कुछ ऐसा समझौता हो जिससे इस प्रकार के विरोधी कार्यक्रम उपस्थित न हो सके, और अगर हो भी तो उनका निपटारा शीघ्रता और बिना कटुता के हो जाय। जब किसी धारा-सभा मे, जहा इस तरह का वैधानिक मत्रिमडल काम करता हो, किसी एक दल का बहुमत नही होता और मंत्रिमंडल एक से अधिक दलो मे से लिये हुए लोगों से बनता है, तब वहां पहले से उन दलों में बातचीत करके इसके लिए रास्ता तय कर लिया जाता है। फिर जब कभी मतभेद हुआ तो जिस दल के मंत्री से मतभेद होता है वह मंत्रिमंडल से अपने मंत्री को हटा लेता है और दूसरे मंत्रियों को अपने दल की सहायता से वंचित कर देता है। यहांपर यह बात इसलिए नही हुई कि यहां कांग्रेस का इतना बडा बहुमत था कि और सभी दल यदि एकसाथ मिलते तो भी कांग्रेस अकेले ही उन

सबसे कहीं अधिक सदस्यों को अपनी तरफ से खड़ा कर सकती और सबको अकेले ही वोट में हरा देती। यहा किसी दूसरे दल के साथ समझौते का प्रश्न उठता ही नहीं था। तो भी जहांतक मुसलमानों का सवाल था, हमने प्रयत्न किया कि दूसरे दल के मुसलमानों के साथ हम समझौता कर लें, पर हुआ नहीं।

हमने उस समय समझा था और आज भी मेरी वही राय है कि वैधानिक विचार से कांग्रेस ने कोई गलती नही की। हा, यह दूसरी बात है कि उसको इगलैंड के विधान का अनुसरण नही करना चाहिए था और जो प्रजातन्त्र के प्रचलित नियम तथा रीति-नीति है, उनसे अलग अपना नियम और अपनी नीति-रीति बनानी चाहिए थी। किसीने उस समय इस तरह की बात कही भी नही और मै नही जानता कि मुस्लिम लीग के सिवा आज भी कोई विचारशील व्यक्ति अथवा संस्था है, जो यह कहे कि भारतवर्ष में प्रजातन्त्र नही चल सकता और नही चलना चाहिए। यदि प्रजातन्त्र न चलना हो तो देश कोई दूसरा विधान, जो उचित समझे, बनावे। पर जबतक प्रचलित प्रजातन्त्रो के रास्ते पर हमको चलना है, उस प्रजातन्त्र के नियमों और रीति-नीति से हम अपने को अलग नही कर सकते। मै यह भी मानता हू कि देश कभी प्रजातन्त्र को छोड़ किसी अन्य प्रकार के विधान को मानेगा और इसमे, मैं मानता हू, हिन्दू और मुसलमान तथा सभी दूसरे लोग सहमत होगे। प्रजातन्त्र छोड़ने का अर्थ होता है किसी एक व्यक्ति अथवा किसी एक गुट के हाथो मे भारत के भाग्य का निर्णय सौप देना—भारत के शासन की बागडोर दे देना। मै नही मानता कि मुसलमान भी यह चाहते है कि जनता के हाथो मे अधिकार न देकर किसी एक व्यक्ति या गुट के हाथो मे दे दिया जाय। दूसरे किसीकी ओर से किसी संस्था ने आजतक इस तरह की बात कही भी नही है कि भारत मे प्रजातन्त्र नही होना चाहिए और ना ही चल सकता है। वह थोड़े दिनों से केवल मुस्लिम लीग ने कहा है, और वह भी पूरे भारतवर्ष के लिए ही, केवल उसके सूबों के ही लिए नही; क्योंकि जबसे पाकिस्तान की बात उठाई गई है, तबसे उसमें भी यह बात नही कही गई है कि पाकिस्तान में अथवा उस दूसरे हिस्से में—जिसे लीग के लोग हिन्दुस्तान कहते हैं—प्रजातन्त्र से अलग कोई दूसरा शासन-विधान होगा। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान, दोनो में वही की जनता द्वारा मनोनीत सदस्य ही शासन करेगे—कोई एक व्यक्ति अथवा गुट नही। जो हो, मन्त्रिमण्डल बनने के बाद—सच पूछिये तो कांग्रेस-मंत्रिमंडल के इस्तीफा के बाद—इस तरह की बातें बहुत अधिक होने लगी हैं।

ठीक जुलाई १९३७ में तो नही—जब और सूबों में चन्दरोजा मन्त्रि-

मण्डलों ने इस्तीफे दे दिये और कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बन गए; पर उसके कुछ बाद सीमा-प्रान्त में भी, वहां के मन्त्रिमण्डल को इस्तीफा देना पड़ा। उस सूबे में, चुनाव के समय, काग्रेस-दल के लोग ही सबसे अधिक चुने गए थे; पर उनकी संख्या इतनी ज्यादा नहीं थी—जैसा दूसरे सूबों मे हुआ था—कि वह अकेले ही और सभी दलों को वोट में हरा दे। इसलिए वहां का मन्त्रिमण्डल और लोगों को मिलाकर कुछ देर तक चलता रहा; पर वह भी देर तक टिक न सका—उसे असेम्बली की बैठक के बाद इस्तीफा देना पड़ा। दूसरे सूबो में असेम्बली की बैठक के पहले ही चन्दरोजा मन्त्रि-मण्डलो ने इस्तीफे दे दिये। मौलाना अबुलकलाम आजाद के साथ मुझे वहां भी जाना पड़ा और वहां के मन्त्रिमण्डल के संगठन में मदद करनी पड़ी। इसमें कुछ अधिक कठिनाई नही पड़ी। जो कुछ करना था, मौलाना साहब ने ही किया। सबसे बड़ी बात यह थी कि डाक्टर खान साहब और खान अब्दुल गफ्फार खां के रहते कुछ अधिक करने की जरूरत ही नही थी। मैंने तो इस अवसर को उस सूबे में जाने के लिए एक बहाना मात्र माना।

: १२२ :

सीमा-प्रान्त की यात्रा

सरहदी सूबे में मेरे जाने का यह पहला ही अवसर था। हम लोग पहले सीधे एबटाबाद गये, जहां उन दिनों गवर्नर रहते थे और जहा मन्त्रिमण्डल बनने की बाते हो रही थी। यह एक पहाड़ी स्थान है, जहां गर्मियों के कारण वहां की असेम्बली की बैठक होती है। जाने के समय वहां पहुंचने पर बाजाब्ता जलूस की तैयारी थी। मौलानासाहब तो जलूस मे शरीक नहीं हुए—मुझे होना पड़ा। पर रास्ते मे ही पानी जोरों से बरसने लगा। हम सब भीग गये। जलूस भी तितर-बितर हो गया। मन्त्रिमण्डल के संगठन का काम पूरा करके हम लोग चन्द जगहो मे चले गए। मानसेहरा एक जगह है, जो पहाड़ पर है और जहांपर डाक-बगले से चारों ओर का बहुत ही सुन्दर दृश्य देखने मे आता है। हम लोग वहा थोड़ी देर के लिए गये। वहां से हम पेशावर आये। फिर खान साहब के गाव 'उत्मानजई' मे, चरसद्दा होते हुए, गये। उनके बंगले पर कुछ देर तक ठहरे। वहां से आजाद इलाके को देखते हुए फिर पेशावर लौटे। दूसरे दिन हम दूसरी तरफ एक चक्कर लगा आये। फिर खैबर की घाटी पार करके अफगानिस्तान की सरहद तक पहुंचे, जहां ब्रिटिश-सरकार और अफगान-सरकार के सन्तरी अपनी-अपनी सरहद पर डटे पहरा देते रहते है। खैबर की घाटी एक विचित्र सौन्दर्य से पूर्ण घाटी है—यों तो पहाड़ बिलकुल बिना घास-पात और पेड़-पौधे के हैं, गर्मियो मे मानो आग-से जलते रहते है; पर पहाड़ो के बीच होकर रास्ता बहुत ही सुन्दर और सुहावना मालूम होता है।

तमाम घाटी-भर में, जो कई मील लम्बी है, बचाव के लिए फौजी प्रबन्ध है। एक बडा किला बीच मे है और एक जमरूद में जहां घाटी आरम्भ होती है। सड़क के पास-ही-पास रेल भी चलती है, जिसके बनाने में बहुत बुद्धि, कौशल और पैसे लगे होंगे। सारी घाटी में, सड़क को छोड़कर, ब्रिटिश की कोई चीज नही है। सुना कि केवल सड़क और उसके आसपास दोनों ओर की कुछ फुट चौड़ी जमीन ही ब्रिटिश की है तथा पास की आबादी सारी-की-सारी आजाद कौमों की है, जो अपने स्थान पर स्वतन्त्र हैं। उस आजाद इलाके में ब्रिटिश कानून नही चलता। इसलिए सड़क से चन्द फुट

बाहर यदि कोई वाकया हो जाय तो उसकी जांच ब्रिटिश अधिकारी नहीं कर सकते। सुनने में आया कि कभी-कभी ऐसा भी होता है कि यदि कोई यात्री सड़क से हटकर आजाद इलाके में चला जाता है तो उसे वहां के लोग अपने हक को कायम रखने और जताने के लिए, गोली मार देते है। हमने यह भी देखा कि आजाद इलाके के लोग जब घर से बाहर जाते हैं तो अपने साथ बन्दूक उसी तरह ले जाते है जिस तरह हमारे सूबे मे कही-कही लोग लाठी-डण्डे लेकर निकलते है।

वहा के गांव भी कुछ अनूठे ढंग के है। हर गांव में एक ऊंचा स्थान बना होता है, जो प्राय: किसी मकान मे एक गुम्बद-जैसा रहता है जहां से आदमी चारो तरफ दूर तक देख सकता है। कबीले के लोग वहा से बराबर इस बात को देखा करते है कि कही किसी तरफ से कोई गाव पर हमला करने तो नही आ रहा है। वहां के लोग देखने मे बहुत गरीब मालूम होते थे; क्योकि जमीन उस पहाड़ी इलाके मे कुछ बहुत अच्छी नही मालूम होती थी। पानी की बहुत दिक्कत थी। ये आजाद कबीले विशेषकर इस पहाडी इलाके मे ही रहते है। पेशावर जिले के चरसद्दा के आसपास की जमीन, जहा स्वात और दूसरी नदिया है, बहुत अच्छी मालूम होती थी; मगर पहाडी जमीन उपजाऊ नही है। आजाद कबीलो की गरीबी ही उनकी अव्यवस्थित दशा का विशेष कारण है। मै नही जानता कि उनकी आर्थिक दशा सुधारकर कभी उनके जीवन को सुव्यवस्थित बनाने का कोई भी प्रयत्न किया गया है। शायद ब्रिटिश गवर्नमेण्ट की नीति उनको सदा अव्यवस्थित रहने देने की ही है; क्योकि यदि इस ओर ध्यान दिया गया होता तो जितना खर्च वहां फौजी काम के लिए किया है और किया जाता रहता है, उतने खर्च में अबतक वह भू-भाग हरा-भरा बन गया होता—कबीलेवाले दूसरे सूबा के लोगो के साथ सभी बातों मे मुकाबला करते होते। शायद जबतक वे आजाद है तबतक ऐसा करना ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के लिए सम्भव नही। पर सुव्यवस्थित जीवनवाले आजाद अच्छे पड़ोसी भी तो हो सकते है। उन्हें आजाद रहने देकर भी उनकी शिक्षा और सुव्यवस्था में वह खर्च किया जा सकता था, जो खर्च उनको समय-समय पर तोपों और हवाई-जहाजों के गोलों का शिकार बनाकर दबाने मे किया जाता है। वह खर्च उनके और भारत के—दोनो के लिए—ज्यादा लाभदायक होता।

सीमाप्रान्त से लौटते समय मैं और मेरे साथी बाबू मथुराप्रसाद, जो मेरे साथ वहां गये थे, दोनो ही, रास्ते में पड़े तक्षशिला के खुदे हुए खंडहरों को देखने गये। वहां खुदाई से निकली हुई चीजों को वहां के अजायबघर में देखा। खंडहरों को तो घूम-घूमकर देखा। देखने से मालूम हुआ कि एक

बहुत ही विस्तृत शहर वहां था, जिसमे चौड़ी सड़कें थीं और सड़कों के दोनों बगल मकान बने थे—मकानों में रहन-सहन और आराम के लिए सभी प्रकार का प्रबन्ध था। सबकुछ देखने से मालूम होता था कि ये एक अत्यन्त उन्नत स्थान के खडहर हैं। ये प्राचीन भारत के उन स्मारकों में हैं, जिनके कारण आज भी हम अपना सिर ऊचा रख सकते हैं। वहां एक जगत-प्रसिद्ध विद्यापीठ स्थापित था, जहा भारतवर्ष के बाहर से भी विद्यार्थी आया करते थे। यहां के विद्यार्थी भारतवर्ष के सभी स्थानों में जाकर अपनी कीर्ति फैलाये हुए थे। हमने यह भी सुना कि सारे सीमाप्रान्त में बौद्धकालीन स्मारक पाये जाते है। यदि हम वहा कुछ दिन ठहर सकते तो इस प्रकार के स्मारको को देख सकते, पर इसके लिए समय नही था। हमको इसके लिए भी समय न मिला कि हम कोहाट और डेरा-इस्माइल-खा के इलाके तक जा सके। इसलिए हम केवल हजारा और पेशावर के कुछ हिस्सों को देखकर ही अफसोस के साथ वापस आये।

हम-जैसे बिहारी के लिए, जिसको दानापुर की फौजी छावनी के सिवा और कही कोई विशेष फौजी सामान या सैनिक पडाव देखने का मौका नहीं मिलता, सीमाप्रान्त एक बडे फौजी अड्डे के समान जान पडा। जहां जाइये, जिधर जाइये, फौजी छावनी मौजूद है—फौजी सडके और फौजी अड्डे हर तरफ सामने आ जाते है। यह सिलसिला पजाब से ही शुरू होता है और जैसे-जैसे पश्चिम की ओर बढते जाइये, यह फौजी नजारे बढ़ते जाते है। सीमाप्रान्त तो मानो सारा-का-सारा फौजी अड्डा ही है।

खैबर की घाटी देखकर एक बात मन में आये बिना नहीं रह सकती। यह एक ऐसी घाटी है जहा बचाव बहुत आसानी से किया जा सकता था—विशेषकर जब हवाई जहाज नहीं थे। ईश्वर ने इस देश के उत्तर की ओर हिमालय खड़ा करके, पूर्वी और पश्चिमी सीमाओं पर पहाड़ी श्रेणियों की दीवारें खडी करके, एक ऐसी हदबन्दी कर दी है, जिसे तोड़कर कोई मनुष्य बाहर से भारत पर हमला नही कर सकता। इस तरह, एक तरफ प्रकृति ने जमीनी हमले से इस देश को सुरक्षित बना दिया और दूसरी तरफ समुद्र ने इसके लिए एक जबरदस्त खाई का काम किया। पर, तो भी, हम इस देश के लोग इतने अभागे है कि इस बनी-बनाई घाटी की भी, आपस की फूट के कारण, रक्षा न कर सके। अंगरेजों के पहले, आज तक जितनी चढाइयां भारत पर हुईं, प्रायः सभी इस घाटी के द्वारा ही हुई है। अंगरेज भी बराबर डरते रहे हैं कि कही रूस उस रास्ते से भारत पर चढ़ाई न कर दे। इसीलिए वहां फौज की इतनी तैयारी है। रूस का भय कम होने पर उनको जर्मनी का डर बना रहता है। शायद मुसलमानी देशों से भी वे डरते

हैं ! शायद अब, जब हवाई जहाजों का बोलबाला हो गया, उस घाटी का महत्व उतना न रहे; परन्तु इसपर दुख हुए बिना नहीं रह सकता कि रक्षा की सभी सामग्रियां ईश्वर जुटा भी दे और मनुष्य अपने निकम्मेपन से उनका सदुपयोग न कर सके, तो उसकी रक्षा नही हो सकती। खैबर की घाटी और भारत का इतिहास इसके साक्षी है कि जो अपनी मदद नहीं करता उसकी मदद ईश्वर भी नही कर सकता, और जो ईश्वर-प्रदत्त साधनों को भी काम में लाने की योग्यता नही रखता, उसका पतन अवश्य-म्भावी है। जैसे कन्याकुमारी में पहुचकर भारत की महत्ता का आभास आंखों के सामने झलक गया था, वैसे ही खैबर की घाटी को देखकर भारत-वासियों की अकर्मण्यता का चित्र आंखों के सामने नाचने लगा।

: १२३ :

मन्त्रिमंडल की कुछ वैधानिक कठिनाइयां

मन्त्रिमण्डल का काम आरम्भ हो गया और चलने लगा। बिहार में एक प्रश्न शीघ्र ही सामने आया, जिसका सुलझाना कुछ कठिन था और जिसने पीछे हमारे लिए दिक्कतें पेश की। जब मिस्टर यूनुस मन्त्री हुए, उन्होंने सर सुलतान अहमद को बिहार का एडवोकेट-जनरल नियुक्त कर दिया। सर सुलतान कई वर्षों से सरकारी एडवोकेट थे। नये विधान मे गवर्नमेंट-एडवोकेट की जगह एडवोकेट-जनरल नियुक्त करना था। वह उसी समय गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया में कुछ दिनों के लिए वायसराय के एक्जिक्यूटिव कौंसिल के मेम्बर नियुक्त हो गए। सुना गया कि उन्होंने वायसराय की कौंसिल में कांग्रेस के साथ समझौता कर लेने की बात पर जोर भी दिया था। जब वायसराय का वक्तव्य निकलने के बाद कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बना तब भी वह वाइसराय की कौन्सिल के मेम्बर थे। बिहार-मन्त्रिमण्डल के सामने यह प्रश्न आया कि वह नये सिरे से एडवोकेट-जनरल की नियुक्ति करे अथवा मिस्टर यूनुस की नियुक्ति को ही बहाल रखे।

एडवोकेट-जनरल सरकार और मन्त्रिमण्डल का प्रधान कानूनी सलाहकार होता है। नये विधान में उसको बिना मेम्बर हुए ही असेम्बली और कौन्सिल में किसी विषय पर भाषण करने का अधिकार है। यह अधिकार इसलिए दिया गया कि कोई कानूनी बहस उठ जाने पर एक ऐसा आदमी होना चाहिए, जो अधिकारपूर्वक सरकार और मन्त्रिमण्डल की ओर से बातें कर सके। इंगलैंड में सबसे बड़ा कानूनी अफसर, जो सभी जजों के भी ऊपर समझा जाता है, लार्डचान्सलर होता है। वह लार्ड-सभा मे सभापति का काम करता है। जब उस सभा के सामने कानूनी तौर पर अपील पेश होती है तब भी वह सभापतित्व करता है। इसलिए वह हमेशा एक नामी कानूनदां आदमी हुआ करता है। यह तो हुई जजों के सरदार की बात। सबसे बड़ा कानूनी सलाह देनेवाला अटर्नी-जनरल भी मन्त्रिमण्डल का एक सदस्य हुआ करता है। वह कामन्स-सभा का मेम्बर होता है। इन दोनों स्थानों पर मन्त्रिमण्डल के साथ ही नियुक्ति हुआ करती है, अर्थात जो प्रधान-मन्त्री होता है, वही अपने अन्य साथी मन्त्रियों के साथ-साथ इनकी नियुक्ति

के लिए भी नाम दिया करता है और उन्हें ही सम्राट मुकर्रर कर देते हैं।

हमारे यहां लोगों का विचार हुआ कि इंगलैंड मे जो अटर्नी-जनरल का स्थान है, वही स्थान एडवोकेट-जनरल का भी होना चाहिए, उसकी नियुक्ति और इस्तीफा भी मन्त्रिमण्डल के साथ ही होना चाहिए। यदि गवर्नर के साथ मतभेद होने के कारण, अथवा असेम्बली के अविश्वास प्रकट करने के कारण, मन्त्रिमण्डल इस्तीफा दे तो उसे भी हटाना चाहिए। और, जो नया मन्त्रिमण्डल बने उसे नये आदमी को उस स्थान पर नियुक्त करने का अधिकार होना चाहिए—जैसा इगलैंड में है। इसके लिए काफी कारण भी है। मन्त्रिमण्डल को ऐसा कानूनदा सलाहकार रखने का अधिकार होना चाहिए, जिसपर उसका विश्वास तो हो ही, वह उसके विचारो तथा कार्यक्रम से पूरी तरह परिचित एव सहमत हो, ताकि वह मन्त्रिमण्डल के कार्यक्रम चलाने में, कानूनी तौर पर हर तरह से, पूरी मदद कर सके। बिहार में मन्त्रिमण्डल के आगे सबसे बडा प्रश्न लगान-कानून के सशोधन का था। इस विषय में मतभेद की काफी जगह थी। मन्त्रिमण्डल का विचार था कि कोई पक्का काग्रेसी, जिसका विचार मन्त्रिमण्डल के विचारो से मिलता हो, एडवोकेट-जनरल होना चाहिए। सर सुलतान कुछ ऐसे आदमी नही थे, जो मन्त्रिमण्डल के 'हां' मे 'हा' मिलाया करेंगे। यदि कही किसी विषय में मन्त्रिमंडल से उनका मतभेद हो गया तो फिर मत्रिमण्डल को उनके विचारो और उनकी योग्यता का लाभ नही मिलेगा। इसी कारण, इगलैंड मे भी अटर्नी-जनरल मन्त्रिमण्डल की पार्टी का ही आदमी हुआ करता है। यह सोचकर मन्त्रिमण्डल ने मेरी राय से निश्चय किया कि वह अपना एडवोकेट-जनरल नियुक्त करेगा। वह इस परिपाटी को चलाना भी चाहता था कि उसको अपना कानूनी सलाहकार चुनने और मुकर्रर करने का अधिकार होना चाहिए। यदि यह परिपाटी चल जाय तो वह केवल कांग्रेस के लिए ही नही होगी—चाहे जिस दल के लोग हों, जब अपना मन्त्रिमण्डल बनावेंगे तब अपना सलाहकार मुकर्रर करेंगे, इस परिपाटी से लाभ उठायंगे।

यही प्रश्न बम्बई प्रान्त में भी उपस्थित हुआ। वहा एक अंगरेज एडवोकेट-जनरल थे। कांग्रेस जिनको नियुक्त करना चाहती थी, वह सज्जन उस समय कहीं विदेश गये हुए थे। जब यह बात गवर्नर से कही गई तो उन्होंने यह मंजूर करना नही चाहा कि मन्त्रिमण्डल को एडवोकेट-जनरल नियुक्त करने का अधिकार है। पर उन्होंने सर सुलतान को शायद सब बातें लिख भेंजी। सर सुलतान ने शिमले से इस्तीफा लिख भेजा। इत्तिफाक से केन्द्रीय सरकार में काम करनेवाली उनकी अवधि भी किसी कारण से बढ़ गई। इसलिए, देखने में तो मामला सुलझ गया और कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल

ने श्री बलदेवसहाय को एडवोकेट-जनरल नियुक्त कर दिया; पर आगे चलकर मुसलमानों ने इस बात को हिन्दू-मुसलमान झगड़े का रूप दे दिया। कुछ कहने लगे कि सर सुलतान केवल इसलिए हटा दिये गए कि वह मुसलमान है। मै तो इस विचार-विमर्श के समय मन्त्रिमण्डल के साथ बराबर रहा, इसलिए मैं कह सकता हूं कि इस नियुक्ति के समय हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्न किसी के ध्यान मे एक मिनट के लिए भी न आया। प्रश्न यही था कि राजनैतिक दृष्टि से, और विशेषतः लगान-कानून के सुधार को सामने रखते हुए, किससे अधिक मदद मिलेगी तथा कानूनी सलाहकार की नियुक्ति में इंगलैंड की परिपाटी चलाना अच्छा होगा या नही। उसी परिपाटी के अनुसार विधान में ऐसे संशोधन कराने का सबका विचार था कि गवर्नर केवल वैधानिक गवर्नर रह जाय और सभी अधिकार मन्त्रिमण्डल के हाथ मे आ जायं। जब विधान में संशोधन अभी नही हो सकता तो काग्रेस ने गवर्नरों से 'विशेष अधिकारों को न बर्तने का' वादा लेकर उस कमी को एक प्रकार से दूर कराया था। यह एक विषय और था, जिसमे यहां का विधान इंगलैंड के विधान के नजदीक पहुंचाया जा सकता और काग्रेस-मन्त्रिमण्डल ने उसी उद्देश्य से इस बात पर जोर दिया।

बम्बई मे अंगरेज एडवोकेट-जनरल ने इस्तीफा दे दिया। किसीने फिर इसकी कुछ शिकायत नही सुनी। पर बिहार मे इसका वैधानिक रूप तह में डाल दिया गया, इसका साम्प्रदायिक महत्व हो गया। अफसोस की बात है; पर हम इस बात को आज भी मानते है कि ऐसा करने मे मंत्रिमण्डल ने साम्प्रदायिक विचारों को अपने नजदीक नही आने दिया। जब लगान-कानून का संशोधन पेश हुआ तो यह बात स्पष्ट हो गई। पर जहां साम्प्रदायिक बाते उठा दी जाती हैं, वहां हमारी आखे और सब चीजो को देखने में असमर्थ हो जाती है।

: १२४ :

किसानों और जमींदारों का समझौता

मंत्रिमण्डल बनाने के बाद मेरे ऊपर इसकी जवाबदेही रही कि यथा-साध्य मै उनकी, विशेषकर बिहार मे, आवश्यकतानुसार सहायता करूं। शुरू मे ही मेरे सामने दो प्रश्न आ गए। संयुक्त प्रदेश मे प्रधानमंत्री पडित गोविन्दवल्लभ पन्त ने चाहा कि कानपुर मे मिल-मजदूरों की स्थिति के सम्बन्ध में जाच की जाय और उनकी हालत सुधारने का भी प्रयत्न किया जाय। इसके लिए वह एक कमिटी बनाना चाहते थे। उन्होने मुझे उसका अध्यक्ष बनाना चाहा। काम जरूरी था, पर मुझमें इसके लिए कोई विशेष योग्यता नही थी; क्योकि मैने न तो कभी मजदूरो के बीच कुछ काम किया था और न उनके विशेष प्रश्नों का अध्ययन ही। पन्तजी का विचार था कि एक प्रकार से यही मेरी विशेष योग्यता थी; क्योकि मै सब बातो को जानकर जो मुझे उचित जान पड़ेगा, कह सकूगा और पूर्वार्जित कर्मों या विचारों के बन्धन से मुक्त होने के कारण मै परिस्थिति के अध्ययन के आधार पर ही अपनी राय कायम करूंगा। इसके अलावा, वह यह भी समझते थे कि मुझमे मजदूर और मिल-मालिक दोनों पक्षो का विश्वास होगा और मेरी नियुक्ति से दोनो सन्तुष्ट होगे। मैं पहले तो बहुत इन्कार करता रहा, पर अन्त मे मुझे इस पद को स्वीकार करना पडा। जिस समय मै सीमाप्रान्त मे वहा के मंत्रि-मण्डल के सगठन के लिए जा रहा था, मैं लखनऊ मे कुछ देर के लिए ठहर गया। एक प्रकार से इस कमिटी के काम का श्रीगणेश उसी समय हो गया, यद्यपि कार्यारम्भ उधर से लौटने के बाद ही हुआ।

दूसरा काम जो मुझे शीघ्र शुरू करना पड़ा, वह था अपने सूबे के किसानों और जमींदारो मे बातचीत करके, लगान-कानून के संशोधन के लिए, यदि हो सके तो दोनों को एकमत कर देना। इसका आरम्भ भी मन्त्रिमण्डल बनने के थोड़े ही दिनों के बाद हुआ। जिस समय हम लोग १९३०-३४ के सत्या-ग्रह में लगे थे, बिहार के गवर्नर के प्रोत्साहन से यहां एक पार्टी बनी थी जिसका नाम था युनाइटेड-पार्टी। उस समय नये विधान के सम्बन्ध में इंग-लैंड में बातें चल रही थीं। यह समझा जाता था कि नये विधान में कुछ-न-कुछ अधिकार तो जनता के प्रतिनिधियों को मिलेगा ही। इसलिए यदि कोई

ऐसी पार्टी बने, जो जनता द्वारा निर्वाचित हो सके और जो कांग्रेस-जैसी बिलकुल स्वतन्त्र न हो, तो सरकार के लिए भी वह सुविधाजनक होगी। इसी विचार से उस पार्टी के जन्म देने में उस समय के गवर्नर ने हाथ बंटाया था। उसी उद्देश्य से उस समय की कौन्सिल में जमीदारों की ओर से एक बिल पेश किया गया था, जिसके द्वारा लगान-कानून में कुछ संशोधन पेश किये गए थे। ये संशोधन किसानों के हक मे ठीक थे। उम्मीद की गई थी कि इस तरह किसान, जिनकी सख्या स्वभावतः मतदाताओं में बहुत अधिक होगी, युनाइटेड-पार्टी के पक्ष मे कर लिये जायंगे और वह पार्टी चुनाव में सफल हो सकेगी। कुछ दूरदर्शी जमीदार यह भी जरूर सोचते थे कि जब इस प्रकार से किसानो के हाथ में अधिकार जा ही रहा है तो उनको खुश रखना ही हमारे लिए हितकर होगा। कुछ ऐसे भी जमीदार होंगे, जो किसानो की मांगों को न्याय्य मानते होंगे और इसलिए कानून में संशोधन जरूरी समझते होंगे। जो हो, कुछ ऐसे लोग भी, जो पहले किसानों मे कुछ काम किया करते थे और जो किसानों के पथ-प्रदर्शक तथा नेता समझे जाते थे, इस पार्टी में शरीक हो गए।

स्वामी सहजानन्द ने किसान-सभा को जाग्रत बनाकर इसी बिल का विरोध किया। उस विरोध के लिए किसान संगठित भी हो गए। उन दिनों कांग्रेस गैरकानूनी संस्था थी। उसके नाम से कोई काम नही हो सकता था। उसके कार्यकर्ता भी बहुत बडी सख्या मे, जो इस काम को कर सकते थे, जेलों मे बन्द थे। इस विरोध का नतीजा यह हुआ कि संशोधनों मे और संशोधन हुआ। अन्त मे, जब हम लोग १९३४ में जेल से बाहर निकले तो हम लोगो से भी बाते हुई कि संशोधन सबकी राय से किये जायं। हम लोगों के आदमी उन दिनों कौन्सिल मे नही थे। बात इतनी आगे तक पहुच गई थी कि हम कांग्रेस की ओर से विशेष कुछ कर भी नही सकते थे। जो कुछ संशोधन हुआ और उससे जो कुछ लाभ पहुंचा सकता था, वह किसानों को मिला, पर मामला तय नही हुआ। चुनाव के समय तक पार्टी भी कुछ असंगठित हो गई। चुनाव से यह भी पता चल गया कि किसानो को जमींदारों से मिलाने का प्रयत्न भी सफल नही हुआ। कांग्रेस के घोषणा-पत्र में किसानों की दशा सुधारने पर जोर दिया गया था। जमीदार भी जानते थे कि इस विषय मे मन्त्रिमण्डल जरूर और जल्दी कुछ-न-कुछ करेगा ही। वे भी चाहते थे कि यदि सलाह से कोई बात हो जाय तो उनके लिए भी अच्छा होगा; क्योंकि तब वे इस बदनामी से बच जायंगे कि वे अपने स्वत्वों पर चिपके रहे और कांग्रेस ने जबरदस्ती कानून बनाकर किसानों की भलाई की। मंत्रिमण्डल बनने के बाद ही उनके कुछ मुखिया मंत्रिमण्डल से मिले। उन्होंने

यह सवाल पैदा किया कि लगान-कानून और किसानों की दशा सुधारने के सम्बन्ध में सरकार जो कुछ करना चाहे, उसके लिए जमीदारो से बातें कर ले। वे तैयार भी थे कि यथासाध्य वे सहायता करेंगे। मंत्रिमण्डल की राय हुई, जिससे मैं भी सहमत था कि लगान-कानून के संशोधन के सम्बन्ध में यदि कोई चीज बातचीत से तय हो जाय तो अच्छा होगा; क्योंकि उस हालत मे जो भी कानून बनेगा वह जल्द और आसानी से असेम्बली तथा कौन्सिल मे पास हो सकेगा। उससे किसानो को सरकार जल्द-से-जल्द लाभ भी दिलवा सकेगी और आपस का वैमनस्य भी घटेगा। जमीदार विरोध करके कानून का बनाना रोक तो नही सकेंगे; क्योंकि काग्रेस का बहुत बड़ा बहुमत था, पर हर कदम पर हर वैध तरीके से बहस-मुबाहसे के द्वारा कुछ समय तक रोक सकेंगे।

कांग्रेस का निश्चय था नये विधान को नामंजूर करने अर्थात उसे विफल बनाने का। हो सकता है कि जल्द ही कुछ अनुभव के बाद मत्रिपद छोड़ देने का निश्चय करना पडे, इसलिए जो कुछ हो सके और जहांतक जल्द हो सके, जनता की सेवा और भलाई हो जाय तो ठीक रहेगा। इसके अलावा जमीदार धनी है, अपना प्रबन्ध कर लेने की शक्ति रखते है; पर किसान गरीब है और उतने संगठित नही है। कानून बनने पर भी उसको बेकार बनाने के हजारो तरीके वकील निकाल सकते हैं। यदि संशोधन झगड़े के बाद होगा तो सरकार की कोशिशों के बाद भी उससे लाभ उठाने में किसानों को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड सकता है। इन-सब विचारों से मंत्रिमण्डल ने, मेरी सम्मति से, चाहा कि यदि कोई बात सुलह से तय हो सके तो अच्छा होगा। हां, यदि सुलह के प्रयत्न से कोई सन्तोषजनक फल न निकले तो फिर जैसा मुनासिब होगा, किया जायगा। सुलह के प्रयत्न से, विशेषकर जब जमीदार भी उसे चाहते थे, लाभ ही होगा। इसलिए सोचा गया कि समय पाकर मैं उनसे बातचीत आरम्भ करूं। पार्लमेण्टरी-कमिटी के एक सदस्य मौलाना आजाद भी थे। जमींदार उनसे भी मिले। उन्होंने भी इस बात को पसन्द किया। इस तरह मौलाना आजाद और मैं, दोनों मिलकर, पटना में जमींदारों के प्रतिनिधियों से बातें करने लगे।

इस सम्बन्ध में एक प्रश्न यह भी था कि किसान-सभा अथवा उसके मुख्य कार्यकर्ताओं से हमारा क्या सम्बन्ध रहेगा। हम यह मानते थे कि कांग्रेस के प्रति किसानों का पूरा विश्वास था और हम भी उनके हितों का विचार करके, उनकी भलाई के लिए, जो कुछ हो सकता था, कर सकेंगे। हम जमीदारों और किसानों को छोड़ दें और वे आपस में समझौता कर

लें तो यह सबसे अच्छा होगा। पर जहांतक हम देख और समझ सकते थे, इसकी आशा नही होती थी कि दोनों पक्ष किसी बात पर राजी हो सकेंगे। इसलिए हमको बीच मे पड़ना ही पड़ेगा। हम कांग्रेस को इसके लिए योग्य भी समझते थे। हम जानते थे कि जब कोई बात समझौते से तय होती है तो उसमे किसी पक्ष की पूरी बात नही मानी जा सकती, दोनों को कुछ-न-कुछ उतरना या झुकना पड़ता है। इसलिए उन दोनों पर भार न छोड़कर यदि कांग्रेस ही यह काम कर ले तो बुरा न होगा। इसका एक नतीजा तो किसानो के हक मे यह जरूर रहेगा कि जो रियायत उनको मिलेगी उसे वे खुले पेशानी ले सकेंगे और उससे जो ज्यादा वे जरूरी समझेंगे उसे मांगते रहेंगे, क्योंकि वे किसी समझौते के बन्धन से बंधे नही होंगे। यह बात जमीदारो से भी कह दी गई। उन्होंने भी इसे समझ लिया कि हम किसान-सभा की ओर से बाते नही कर रहे है, यद्यपि उनके नेताओं से भी हम सभी बातो मे बराबर राय लेते रहेंगे।

एक दूसरी बात और तय कर लेनी थी। क्या यह समझौता केवल लगान-कानून के सम्बन्ध मे ही होगा अथवा यह अन्य विषयों से भी सम्बन्ध रखेगा? सरकार की आमदनी बढाने की जरूरत थी। इसके लिए वह एक नया 'कर' बैठाना चाहती थी, जिसमे जमीदारो को विशेष देना पडेगा। हमने सोच लिया कि हो सके तो उसको भी हम समझौता द्वारा ही तय कर लेंग। कई दिनों तक बातचीत चली। सदाकत-आश्रम मे ही बैठक होती। मै कुछ अस्वस्थ भी था; इसलिए लोग मुझे आने-जाने के कष्ट से बचा देना भी चाहते थे। सभी प्रश्नो पर हम जमीदारो की राय सुन लेते, मंत्रिमण्डल से भी बाते कर लेते, उनकी राय अच्छी तरह समझ लेते, किसानो के नेताओ से भी बाते करके उनकी राय भी जान लेते। इस तरह, सब दृष्टिकोणों से पूरी तरह विचार करने के बाद, कुछ तय कर लेते, जिसे हम और जमीदार दोनो स्वीकार करते।

तीन-चार प्रश्न मुख्य थे। लगान में जो कमी होनी चाहिए, वह किस तरह और किस परिमाण में हो कि किसीके साथ बेइन्साफी न हो और सबको लाभ भी पहुच सके। यह सरसरी तौर पर रुपये मे कुछ आने लगान कर देने से हो सकता था। पर सारे सूबे की एक-सी स्थिति नही थी। सूबे में काश्तकारी जमीन पर चार आने से बीस-पच्चीस रुपये बीघे तक लगान लगता है। कही हाल मे ही मालगुजारी मे बढ़ती या इजाफा हुआ है और कही नहीं हुआ है—कही इजाफा बहुत अधिक हुआ है, कही बहुत थोड़ा और कहीं बिलकुल नही। कही भावली लगान बदलकर नकदी कर दिया गया है और कहीं तो ऐसा हुआ ही नही है। यदि सभी जगहों में हरसट्ठे

एक ही दर से लगान घटा दिया जाय तो कुछ किसान बहुत मुनाफे में रह जायंगे, कुछ को केवल नाम-निहादी रियायत मिलेगी, कुछ जमीदारों के प्रति अन्याय हो जायगा और कुछ मजे में बच जायंगे। खासकर जो किसान, बहुत कड़ा लगान होने के कारण बहुत कष्ट में है, उनको बहुत थोड़ी रियायत मिलेगी; या इसे यों कहें तो अत्युक्ति न होगी कि जिस किसान पर अधिक बोझ है, वह तो प्रायः वैसा-का-वैसा ही बोझ ढोता रह जायगा और जिसपर बोझ कम है, उसपर और भी कम हो जायगा—जिसको रियायत की सबसे अधिक जरूरत है उसे वह नही के बराबर मिलेगी और जिसपर पहले से ही किफायती लगान है, उसको और भी अधिक रियायत मिल जायगी। इसलिए सरासरी लगान घटाने की बात जमीदारों ने और हमने नामंजूर कर दी। एक ऐसा नुस्खा निकाला गया, जिससे खासकर वहां अधिक रियायत मिले जहा बहुत अधिक लगान हो गया है, चाहे वह इजाफा के कारण हो या भावली से नकदी लगान कर देने के कारण; और जहां कम है, वहां कम रियायत मिले या बिलकुल न मिले। हमने मोटामोटी हिसाब लगाकर सोचा था कि इस तरह सारे सूबे के लगान मे एक रुपये मे चार आना घट जायगा। कही-कही तो रुपये मे आठ-दस आने तक की कमी होगी और कही-कही बिलकुल नही। जिस जमीदार ने जितनी शक्ति से काम लिया होगा और जितना लगान बढ़ाया होगा, उसकी आमदनी उसी मात्रा मे अधिक या कम होगी। जिसने कम बढ़ाया होगा उसकी आमदनी कम घटेगी। अन्त मे, जब सरकार के कर्मचारियो ने लगान में कमी की कार्रवाई की और लगान में कमी की गई तो मालूम हुआ कि हम लोगों का वह अन्दाजी हिसाब—कि सूबे में एक-चौथाई लगान कम हो जायगा—प्रायः ठीक ही निकलेगा।

दूसरा प्रश्न था किसानों के अपनी काश्तकारी हस्तान्तरित करने का। बंगाल-लगान-कानून के अनुसार, जो बिहार मे भी लागू होता था, यह हक उनको मामूली तौर पर नही था। इसलिए कोई काश्तकार काश्तकारी बेच नही सकता था। पर वकीलों की बुद्धि और जजों के फैसले ने कानून को घोल-मट्ठा बना रखा था। जो आदमी कानूनदां न होता उसके लिए यह समझ लेना आसान न था कि काश्तकारी जमीन किस हालत में किस तरह से हस्तान्तरित की जा सकती है—एकबारगी बेचकर या सूद-भरना लगाकर या जरपेशगी करके; और यदि हस्तान्तरित की जा सकती है तो किस मात्रा में—सब-की-सब जमीन या उसका कुछ हिस्सामात्र, और यदि हिस्सामात्र हो तो वह भी कितना? ऐसे बहुतेरे जटिल प्रश्न उठे थे। समय-समय पर हाइकोर्ट के फैसले भी हुए थे; कभी दो जजों ने फैसला किया तो उसपर

पुनर्विचार तीन या पाच जजों ने किया, कभी फैसला बदला गया तो कभी उसमें कुछ और नई बारीकी ला दी गई। बंगाल से बिहार के अलग हो जाने पर यहा के हाइकोर्ट ने अपना ही विचार रखा, जो हमेशा कलकत्ते के विचार से नही मिलता था। इसलिए यह आवश्यक था कि इस विषय मे कानून साफ हो जाय, जिसे सभी लोग, विशेषकर किसान, आसानी से समझ सकें। इसके दो तरीके थे, या तो हस्तान्तरित करने का अधिकार बिलकुल न दिया जाय और कानूनन इसे एकबारगी बन्द कर दिया जाय, या यह अधिकार पूरा-पूरा दे दिया जाय और इसमें किसी प्रकार की रुकावट न रहे। किसान-सभा के लोग निर्विवाद रूप से जमीन बेचने की मुकम्मिल आजादी चाहते थे। जमींदार इसे मंजूर नही करते थे; क्योंकि उनका दावा था कि जमीन उनकी है और उन्होंने केवल आबाद करने के लिए ही उसे किसानों को दी है, इसलिए किसानों को हक बेचने का नही है—हा, यदि जमींदार बेचने की अनुमति दे दे तो वे बेच सकें। इस विषय मे किसान-सभा का बहुत ही जोर था।

मेरा अपना विचार था, और आज भी है कि बिना रोक-टोक यदि जमीन बेचने का हक किसानों को दे दिया जाय, तो इसका नतीजा यह होगा कि छोटे-छोटे किसानो के हाथ से जमीन निकलकर दूसरे के हाथ मे चली जायगी; इसलिए उनकी रक्षा के खयाल से उनको यह अधिकार पूरी तरह नहीं मिलना चाहिए। मै समझता हू कि आज भी इस बात की यदि जांच की जाय तो पता लग जायगा कि इस तरह बहुत-सी जमीन कुछ दिनों के बाद गरीबों के हाथ से निकलकर धनी लोगो के हाथो मे चली जायगी और खेत-हीन मजदूरो की सख्या बहुत बढ जायगी। यह मेरा व्यक्तिगत विचार था। पर मै जानता था कि जितने बोलनेवाले किसान थे, इसके विरोधी थे। जमीदारों ने भी अपने सशोधनवाले कानून मे एक प्रकार से हस्तान्तरित करने के अधिकार को पूरा-पूरा मान लिया था—केवल एक शर्त रखी थी कि जमीन बिक्री करने पर उनको कुछ मिल जाया करे। हमने भी उनसे तय किया कि बेचने का अधिकार अवैध हो जाय, पर जो सलामी जमीदार को मिलती थी, वह और भी कम हो जाय।

तीसरी बात यह थी कि लगान यदि बाकी रह जाय तो जमीदार को बिहार मे यह हक नही था कि लगान बाकी रखने के कारण किसान को वह खेत से बेदखल कर दे। वह अदालत में बाकी लगान के लिए नालिश करके डिग्री हासिल कर सकता था और उस डिग्री को जारी कराकर उसके सारे जोत को नीलाम करवा सकता था। किसानों की शिकायत थी कि थोड़ा माल बाकी रह जाने पर भी सारा जोत नीलाम हो जाया करता है जिसमे

उनका बहुत नुकसान होता है। जमीदारों का कहना था कि बगल के सूबे संयुक्तप्रदेश में बाकी लगान के लिए रैयत अपनी जमीन से बेदखल किया जा सकता है, यहां तो उसे बहुत कम कड़ाई होती है; यदि किसानों पर इतना दबाव भी न रहेगा तो वे लगान देने में बहुत आनाकानी करेंगे और वसूल करने में जमीदार की दिक्कत और भी बढ़ जायगी। इसके बारे मे यह तय हुआ कि लगान जितना बाकी पड़े उतनी ही कीमत की जमीन नीलाम की जाय, सारा जोत नही। हा, जो रैयत बराबर लगान बाकी रखता चले और अदालत उसे इस तरह का हमेशा बाकी लगानवाला असामी करार दे तो उसका सारा जोत नीलाम किया जा सकता है।

चौथी बात भावली के सम्बन्ध मे थी। बिहार के पटना, गया और कुछ हिस्सा मुगेर के जिलों मे बहुत करके यह प्रथा जारी थी कि पैदा हुए गल्ले के एक हिस्से के रूप मे लगान नकदी होकर मिलता था। अक्सर आधी पैदावार जमीदार को और आधी किसान को बांट दी जाती थी। बांटने के भी दो तरीके थे। खेत मे जो कुछ गल्ला पैदा होता था, जमीदार के सामने ही दौनी-ओसौनी करके खलिहान मे तैयार किया जाता था। फिर तौल कर उसके दो हिस्से कर दिये जाते थे जिनमे से एक किसान लेता था और दूसरा जमींदार; इसे भावली-बटाई कहते थे। दूसरा तरीका यह था कि जब फसल पककर करीब-करीब तैयार हो जाती तो जमीदार का एक गुमाश्ता या खुद जमीदार खेत के एक छोटे हिस्से की फसल काटकर देख लेता कि कितना गल्ला हुआ और उसी हिसाब से सारे खेत की पैदावार कूत ली जाती, जिसका आधा जमीदार का समझा जाता जो वह समय पर वसूल कर लेता। इसे दानाबन्दी कहते थे। बटाई मे रैयतों की शिकायत थी कि जबतक जमीदार का आदमी हाजिर न रहे, वे फसल को काट नही सकते, जब जमीदार उनको कष्ट पहुचाना चाहते तब दानाबन्दी करने जाते ही नही अथवा और किसी कारण से यदि देर कर देते है तो वे (किसान) अपने खलिहान मे तैयार गल्ला रखकर भी अन्न के बिना कष्ट पाते है, और यदि वे जमीदार की गैरहाजिरी मे गल्ला तैयार करके अपने घर उठा ले जायं तो जमीदार उनपर दबाव डालकर उनसे मनमाना वसूल कर लेते हैं, और दबंग जमीदार तो कई तरह के झूठे दावे भी कर देते है। दानाबन्दी के सम्बन्ध मे भी रैयतों की शिकायत होती कि हमारे खेतों की पैदावार का मनमाना तखमीना लगाकर दानाबन्दी कर दी जाती है और नाम के लिए तो पैदावार का आधा ही जमींदार को देने की बात होती है, पर वास्तव में हमें उनको बहुत अधिक देना पड़ता है। कानून में पहले एक दफा थी उसके द्वारा रैयत और जमींदार दोनों को यह हक दिया गया था कि अगर वे भावली रखना

न चाहें तो अदालत के द्वारा भावली को नकदी बनवा सकते हैं। अदालत सब बातों पर विचार करके, जिनमें पिछले कई वर्षों की वसूली का औसत भी एक मुख्य जुज था, जो मुनासिब समझे, नकदी लगान मुकर्रर कर दे सकती है।

१९१४-१८ के यूरोपीय महायुद्ध के बाद बड़ी महंगी का समय आया। किसानों को गल्ले का आधा हिस्सा देना जब्र मालूम हुआ। बहुतेरों ने अदालत द्वारा नकदी लगान मुकर्रर करा लिया। पर महंगी में गल्ले की कीमत ज्यादा होने के कारण वसूली का औसत भी ज्यादा हुआ। जब १९२९-३० के बाद बहुत सस्ती आ गई तो वह नकदी लगान किसी तरह अब पैदावार से अदा नहीं हो सकता था। लगान घटाने के कारणों में यह एक मुख्य कारण था। ऊपर कहा गया है कि जहां लगान ज्यादा हो गया था वहां ज्यादा घटाया गया। अब इस संशोधन से निश्चय किया गया कि रैयत की दरख्वास्त पर भावली के बदले नकदी लगान जरूरी कर दिया जाय और मालिक का हिस्सा भी आठ आने के बदले कुछ कम कर दिया जाय। कुछ कम कर भी दिया गया।

लगान-कानून के मुख्य संशोधन यही थे। इसके अलावा सरकार एक नया 'कर'—एग्रिकल्चरल इन्कम टैक्स—लगाना चाहती थी। उसके सम्बन्ध में जमींदारों से समझौता हुआ कि वह किसपर लगाया जायगा, उनकी क्या दर होगी और उससे कौन बच सकेंगे। यह सब मैंने मोटा-मोटी बतला दिया। पर इन सबमें तफसीली बातें बहुत थीं, जिनके तय करने में बहुत समय लगा। मेरे और मौलाना आजाद के साथ बातें तय हो जाने के बाद कानून बनाने और कानून के शब्दों को ठीक करने में भी बहुत समय लगा। बहुत बातचीत भी करनी पड़ी। प्रधानमंत्री ने कानून बनाते समय उन लोगों से बातचीत तय की। इस समझौते का यह असर हुआ कि यह कानून दोनों पक्षों की सम्मति से चन्द महीनों के अन्दर ही पास हो सके, और १९३८ में ही सरकार ने अपने बहुतेरे अफसरों को—जो बिलकुल नये थे और केवल इसी काम के लिए बहाल किये गए थे—तैनात कर दिया कि वे नये कानून के अनुसार रैयत के लगान घटाकर उनके खतियान (Records of right) को दुरुस्त कर दें।

जब १९३९ के नवम्बर में कांग्रेसी मंत्रिमण्डल ने इस्तीफा दे दिया तो बिहार में लगान घटाकर खतियान दुरुस्त करने का काम प्रायः पूरा हो चुका था और नया 'कर' भी जमींदारों पर लग चुका था। ऐसा और किसी सूबे में नहीं हो पाया। युक्तप्रांत में सुलह नहीं हुई। वहां कानून बनाने में कदम-कदम पर जमींदारों के विरोध का मुकाबला करना पड़ा। यद्यपि इस्तीफा

के कुछ पहले तक कानून वहां पास हो चुका था तथापि उसपर सरकार की मंजूरी इस्तीफा के बाद मिली। मुझे नही मालूम कि उसके अनुसार कहां-तक और कब कार्रवाई की गई। उड़ीसा में कानून पास ही न हो सका। मद्रास में मंत्रिमण्डल ने एक कमिटी मुकर्रर की। उसने बहुत परिश्रम से रिपोर्ट तैयार की। लेकिन इसपर काम होने के पहले ही मंत्रिमण्डल ने इस्तीफा दे दिया। वह रिपोर्ट ज्यों-की-त्यों पड़ी रह गई। बंगाल मे यद्यपि कांग्रेसी मंत्रिमण्डल नही था तथापि वहां भी एक कमिटी बनी। उसने भी रिपोर्ट दी, जिसपर अभीतक कोई काम नही हुआ है। बिहार मे इस समझौते से किसानों को जल्द-से-जल्द रियायत दी जा सकी। चूकि सब बातें समझौते से तय हुई थी, इसलिए आपस मे वैमनस्य बहुत नही बढ़ा—यद्यपि यह मानना पड़ेगा कि मंत्रिमण्डल पर दोनों पक्ष वार करते रहे, जमीदार भी शिकायत करते और किसान-सभा के लोग भी! मेरा विश्वास है कि यदि किसान-सभा के लोग बुद्धिमानी से काम लेते और मंत्रिमण्डल की कार्रवाई से लाभ उठाते हुए अपनी और-और शिकायतो के भी दूर करने के प्रयत्न मे लगे रहते, तो मंत्रिमण्डल और भी काम कर सकता। पर उन्होंने ऐसा नही किया। वे जमीदारों से भी अधिक मंत्रिमण्डल पर ही वार करते रहे। उसकी दिक्कतों के बढाने मे उनका काफी हाथ रहा।

एक चीज के बारे मे कोई माकूल बात तय नही हो पाई थी, जिसके कारण मंत्रिमण्डल को काफी तकलीफ उठानी पड़ी और किसान-सभा को भी उसकी शिकायत या बदनामी करने का काफी मौका मिला। जो जमीन बाकी लगान के लिए नीलाम करकर जमीदार खरीद लेता है, वह अगर किसी भी काश्तकार रैयत के साथ बन्दोबस्त कर दी जाय, तो बन्दोबस्त के साथ ही उस रैयत को काश्तकारी का हक हो जाता है। कई जगहों में जमीदारों के पास इस तरह की नीलाम मे खरीदी हुई रैयती जमीन बहुत पड़ी थी। इसे कानूनी भाषा मे 'बकाश्त मालिक' कहते है। वे रैयतों को काश्तकारी हक नही देना चाहते थे; क्योंकि एक बार काश्तकारी हक हो जाने पर रैयत का जमीन पर पूरा हक हो जाता है। वह उसके मरने के बाद उसके वारिस को भी मिलती है। मालिक केवल लगान वसूल कर सकता है; रैयत को बेदखल नही कर सकता और अब तो वसूली मे सारे जमा को नीलाम नही करा सकता था। इसलिए जमींदार, यदि हो सके तो, उसे स्वयं जोतना चाहते थे अथवा किसी-न-किसी उपाय से बाजाब्ता बन्दोबस्त करके रैयत को काश्तकारी हक हासिल होने देना नहीं चाहते थे। उधर रैयत देखते थे कि अगर हम काश्तकारी हक पर बहुत जोर देते हैं तो जमींदार जमीन देता ही नहीं, अपने कब्जे मे रख लेता है। इसलिए

बहुतेरे रैयत इस हक की ओर ध्यान न देकर, साल-भर के लिए ही सही, जोतने के लिए जमीन लेते और फिर जमींदार साल के अन्त मे चाहे वापस ले लेता या इस शर्त पर छोड़ देता कि वे हक-काश्तकारी का दावा न करें। इस तरह, ऐसी जमीन बहुत थी जिसपर कानूनी तौर से तो हक-काश्तकारी हो गया होगा, पर उस हक के साबित करने का कोई साधन या प्रमाण रैयत के पास नही था। बड़ी जमींदारियों मे, नीलाम में खरीदी हुई जमीन अक्सर फिर बन्दोबस्त कर दी जाती होगी; क्योंकि वे सारी जमीन को खुद आबाद कराने का भार नही ले सकती। पर छोटे-छोटे जमीदार इसे आसानी से कर सकते थे। कुछ बड़े जमीदार भी अब मोटरवाले हलों के द्वारा बड़े पैमाने पर खेती करने की बाते सोच रहे थे। इसलिए वे वकाश्त जमीन को किसानो के कब्जे मे नही जाने देना चाहते थे। इस झगड़े का कोई निपटारा उस समय नही हो सका। कई जगहों मे किसानों ने इस तरह की वकाश्त जमीन पर जाकर सत्याग्रह द्वारा कब्जा करना चाहा। सरकार को यह रोकना पडा। जबतक कांग्रेस-मन्त्रिमण्डल रहा, यह झगड़ा जारी रहा। इसके कारण उसे बहुत शिकायतें और गालिया सुननी पडी। पर कांग्रेसी मंत्रिमण्डल के इस्तीफा देने के बाद यह झगड़ा खुद-बखुद खत्म हो गया-सा मालूम पडता है; क्योंकि इसके बाद सत्याग्रह की बात कही सुनने मे नही आई। इस समझौते के आधार पर किसान-सभा के कुछ लोगो ने मन्त्रिमण्डल के साथ मेरी भी काफी शिकायत जहा-तहा फैलाई। पर मैं समझता हूं कि इस समझौते के द्वारा हमने किसानो के लिए जितनी रियायत दिलवा दी उतनी किसी सूबे मे नही मिली।

किसान-सभा समझौते मे शरीक नही थी। उसको पूरा हक था कि इससे जो लाभ हो उसे वह ले ले और बाकी के लिए अपनी मागे बनाये रखे, मन्त्रिमण्डल और जमींदारों पर उनके लिए तकाजा करती रहे और बेकार झगडे मे अपनी शक्ति का अपव्यय न करके उसे रचनात्मक रीति से किसानों की दशा सुधारने में लगावे। पर दुर्भाग्यवश उसकी शक्ति का बड़ा हिस्सा मन्त्रिमण्डल के विरोध मे ही खर्च हुआ। जहा सत्याग्रह ठाना गया, वहां मन्त्रिमण्डल को काफी कष्ट उठाना पड़ा, बदनामी भी उठानी पड़ी।

: १२५ :

कानपुर की मजदूर-कमिटी व मेरी सख्त बीमारी

इस समझौते को पूरा करते-करते मैं बीमार पड़ गया। कुछ दिनों के लिए, १९३७-३८ के जाड़ों में, अपने गांव चला गया। कुछ आराम करके मुझे फिर कानपुर की मजदूर-कमिटी के काम में लगना था, जिसकी चर्चा पहले हो चुकी है। मैं वर्किंग कमिटी की बैठक मे वर्धा गया। वही से कानपुर आनेवाला था। रास्ते में शायद कुछ खाने मे गलती हो गई। पीछे शक हो गया कि खाने मे जहर का असर आ गया था। जब लखनऊ होते हुए कानपुर पहुंचा तो तबीयत खराब हो गई। पर कमिटी का काम करता गया। जहां तक जाच का काम था, समाप्त किया। इस कमिटी मे कुछ मुझ-जैसे तटस्थ लोगो के अलावा मिल-मालिक और मजदूर दोनो के प्रतिनिधि भी मेम्बर थे। जल्दी ही हमे इस बात का अनुभव हुआ कि दोनों पक्षो के प्रतिनिधियो को साथ लेकर कमिटी का काम पूरा करना कठिन होगा; यदि ऐसे लोग मेम्बर होते जो मिल-मालिको और मजदूरों की बात समझ-बूझकर अपनी राय दे सकते—जो सीधे उनके ऐसे प्रतिनिधि न होते, जिनको उनके कहने के मुताबिक ही राय देनी पडे, तो इतनी कठिनाई न होती। वहा भी शायद उनपर ऐसी मजबूरी नही थी। पर सारी जाच एक ही जगह और उस जगह के भी एक ही प्रकार के कारखानों के सम्बन्ध मे थी। वहीं के मिल-मालिको और वही के मजदूरों के प्रतिनिधियों के लिए अपनी नैतिक जिम्मेदारी भी आ जाती थी कि वे उनके ही विचारो का प्रतिनिधित्व करें। इन विचारों से सरकार ने श्री शिवराव को एक सदस्य मुकर्रर कर दिया, जिनको मद्रास-प्रान्त में मजदूर-सगठन का काफी अनुभव था। प्रो० रुद्र पहले से ही मेम्बर थे। यद्यपि मिल-मालिक और मजदूर-सभा के प्रतिनिधि जाच-कमिटी के सामने पेश होनेवाले कागजो और गवाहियों के सम्बन्ध मे पूछ-ताछ और जिरह वगैरह कर सकते थे, और उन्होने किया भी, तथापि अन्तिम रिपोर्ट का भार हम तीनों पर ही रह गया। मैं बीमार होने पर भी इजहार लेने वगैरह का काम समाप्त कर सका। हां, मिलों में घूमकर मैं सब बातें देख न सका; क्योंकि बहुत कमजोर हो गया था। इसलिए काम समाप्त करके मैं पटने आया। सोचा कि कुछ आराम करके, और मेम्बरों से मिलकर, रिपोर्ट तैयार की जायगी।

पटना में प्रान्तीय कमिटी की बैठक थी। उसमें उस लगान-कानून-सम्बन्धी समझौते पर विचार होनेवाला था। वहां बहुत बहस हुई। प्रान्तीय कमिटी ने उसे बहुत बड़े बहुमत से मंजूर किया। पर मुझे अभी कानपुर की कमजोरी सता रही थी। यहां भी काफी परिश्रम पड़ा। मैं प्रायः दो बार काम करते-करते बेहोश हो गया। पर मैंने अपनी इस दशा को किसी पर जाहिर नही होने दिया। मै चाहता था कि उसी दिन काम पूरा करके आराम करने के लिए, जीरादेई चला जाऊं। उसी इरादे से चला भी। अनुग्रहबाबू गया जिले मे किसी काम से गये थे। वहां दाऊदनगर के पास, रात के समय, उनकी मोटर सडक की पटरी मे उतरकर दरख्त से लड़ गई। वह बहुत सख्त घायल हो गए। उनके साथ पडित पारसनाथ त्रिपाठी थे, जो वही मर गए। मोटर चलानेवाला भी घायल हुआ, पर विशेष नही, अनुग्रहबाबू किसी तरह पटना लाकर अस्पताल मे रखे गए। मेरे कानपुर जाने के पहले ही यह घटना हो चुकी थी। मै उनके कष्ट को देखकर बहुत दुखी रहता। मैंने सोचा कि जीरादेई जाने के समय उनको अस्पताल में देखकर उधर ही से स्टीमर पर चला जाऊगा—ऐसा ही किया भी। पर स्टीमर पर पहुचते-पहुंचते कुछ ऐसा परेशान हो गया कि वहा जाकर तुरन्त लेट गया। बडी कठिनाई से किसी तरह सोनपुर की गाड़ी मे सवार हो सका। पर इत्तिफाक से मेरे भतीजे जनार्दन जमशेदपुर से छुट्टी मे उसी गाड़ी से घर आ रहे थे। उन्होंने मेरे लिए जगह बनाई।

हम दोनो भंटापोखर-स्टेशन पर रात के नौ बजे पहुचे। वहा रेल से उतरते ही जोरों मे कै आना शुरू हो गया, जैसा कानपुर मे भी हुआ था। मैं किसी तरह पालकी पर जीरादेई पहुंचा। सोचता था कि वहा कुछ दिन आराम कर लेने से सब अच्छा हो जायगा। पर रात को हालत खराब हो गई। जनार्दन और मृत्युञ्जय उस दिन वही थे। हालत बिगड़ती देख पटने में खबर कर दी। सीवान के डाक्टर सवेरे पहुचे। कुछ देर बाद छपरे से भी डाक्टर सूर आ गए। सबको शक था कि खाने मे जहर का असर था। वे उसीकी चिकित्सा करने लगे। रात मे पटने से डाक्टर बनर्जी और डाक्टर शरण भी पहुंच गए। दो-तीन दिनों मे हालत सुधरी। मगर अब जोरों से दमा का दौरा शुरू हो गया। डाक्टर घोषाल भी पटने से पहुंच गए थे। एक सप्ताह तक वहीपर दवा होती रही। ज्योंही डाक्टरों ने देखा कि मैं पटना लाने लायक हो गया हूं, वे मुझे पटना ले आये। वहां मैं अस्पताल में ही रखा गया। घर के लोग भी साथ थे। बीमारी कुछ दिनों तक जोर पर रही। पर आहिस्ता-आहिस्ता कम हुई। कुछ दिनों मे मैं भी उसी काटेज में ले जाया गया जहां अनुग्रहबाबू थे। यद्यपि हम दोनों

एक ही जगह थे—वह नीचे के कमरे में और मैं ऊपर के, तथापि हम लोग कई दिनों तक मिल नहीं सके। वह तो चारपाई पर करवट भी नहीं बदल सकते थे। मैं सीढ़ी पर उतर-चढ़ नही सकता था। वही प्रायः दो महीनों तक मैं रहा। आहिस्ता-आहिस्ता कुछ शक्ति भी शरीर में आई। कुछ दिनों के बाद मै नीचे उतरकर आता और अनुग्रहबाबू के पास बैठता। वह चारपाई पर लेटे-लेटे सरकारी कागजों को देखकर उनपर हुक्म लिखा करते। शुरू के चन्द दिनों को छोडकर, जब वह एकदम लाचार थे और कुछ काम नही कर सकते थे, उन्होने बराबर काम जारी रखा।

: १२६ :

मंत्रिमण्डल का इस्तीफा और हरिपुरा-कांग्रेस

जब हम दोनों उसी मकान में थे, हरिपुरा-कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। हम दोनो नहीं जा सके। कांग्रेस ने जुलाई १९३७ मे मंत्रिमण्डल बनाया था। हरिपुरा-अधिवेशन १९३८ की फरवरी मे हुआ। उन सात-आठ महीनो में मंत्रिमण्डल ने अपना काम सभी सूबो मे जोरो मे शुरू कर दिया था। पर अभीतक कोई काम पूरा नही हो सका था। इसी समय एक अड़चन आ पड़ी। कांग्रेस के चुनाव-पत्र मे एक वादा यह भी था कि हम राजबन्दी लोगों को छुडायगे। इसका प्रयत्न वे करने लगे, पर पूरी सफलता न होती। इसी बीच अण्डमन-टापू के राजबन्दियो ने अनशन आरम्भ कर दिया। बहुत कष्ट के बाद भारत-सरकार इस बात पर राजी हुई कि वे टापू से हटाकर हिन्दुस्तान में अपने-अपने सूबे मे भेज दिये जायं। जब वे यहा आ गए तो अब प्रायः प्रान्तीय सरकारो के अधिकार मे हो गए। इस तरह उनको मुक्त करने का प्रश्न आया। मत्रिमण्डल उन्हे छोड़ना चाहता था। पर गवर्नर इसपर राजी नही होते थे। मेरी बीमारी की हालत मे ही मौलाना अबुलकलाम आजाद पटने आकर मुझसे अस्पताल मे मिले। मैं उनसे बहुत बातें न कर सका। वह यहा से जाकर सरदार वल्लभभाई और महात्माजी से मिले। सबका फैसला हुआ कि गवर्नर यदि राजबन्दियों को छोडने पर राजी न हों तो मंत्री लोग इस्तीफा दे दें। सयुक्तप्रदेश और बिहार मे, मंत्रिमण्डल ने बहुत जोर लगाया, पर गवर्नर राजी न हुए। अन्त मे, हरिपुरा-कांग्रेस में जाने के पहले, मत्रिमण्डल ने दोनो जगहो मे इस्तीफा दे दिया। उसे गवर्नर ने उस समय मंजूर नही किया। यह कहकर बात टाल रखी कि जबतक वह इस बात पर विचार करते हैं और दूसरे मंत्री ढूंढ़ते है, तबतक वे काम जारी रखे। बिहार के और मंत्री लोग तो हरिपुरा चले गये, सिर्फ अनुग्रहबाबू चारपाई पर पड़े काम करते रहे। मैं भी वहीं उनका साथ देता रहा।

इस इस्तीफे का असर देखना था। यद्यपि एक प्रकार से वायसराय और गवर्नरों ने अपने विशेष अधिकार को काम में न लाने का वचन दे दिया था तथापि यह पहला ही अवसर था, जब उन्होंने उसे काम में लाना

चाहा। कांग्रेसी मंत्रिमण्डल ने, युक्तप्रान्त और बिहार में, उसे नहीं माना, पदत्याग कर दिया। यह बात सारे देश में और ब्रिटिश सरकार पर भी जाहिर हो गई कि कांग्रेसी मंत्रिमण्डल अपनी बात पर अड़ा रहेगा, यदि वह ऐसा न करने पावेगा तो पद-त्याग कर देगा—अपनी बात न छोड़ेगा। वह पहला इम्तहान था जिसमें ब्रिटिश सरकार और मत्रिमण्डल दोनो की परीक्षा हो रही थी। ब्रिटिश सरकार ने मंत्रिमण्डल की बात मान ली और राजबन्दियो को छोड़ने का भार उनपर ही दे दिया। वहां हरिपुरा मे इस्तीफा की खबर पहुंचते ही वायुमण्डल एकदम बदल गया। जो लोग मंत्रिपद के विरोधी थे, और कहा करते थे कि मत्रि-पद ग्रहण कर लेने पर ये लोग अपनी जगहो के साथ चिपके रह जायंगे तथा अपने वादे भी भूल जायंगे, उनकी भी आंखे खुल गई—यदि वे सचमुच ऐसा मानते थे तो उनको भी अपने विचार बदलने पड़े। मै तो काग्रेस मे जा ही न सका; पर जो कुछ सुना उससे मालूम हुआ कि इस इस्तीफा के कारण जो थोड़ा-बहुत विरोध मंत्रिपद ग्रहण करने के सम्बन्ध मे था, वह अब जाता रहा।

हरिपुरा-कांग्रेस का समारोह भी अपूर्व था। श्री सुभाषचन्द्र बोस सभापति थे। वहां का प्रबन्ध इतने बड़े पैमाने पर और इतने खर्च के साथ किया गया था कि उसका मुकाबला अभीतक और किसी अधिवेशन ने नही किया। हम लोगो के अस्पताल मे रहते-रहते ही हरिपुरा से लोग वापस आ गए। इस्तीफे भी वापस हो गए। मत्रिमण्डल फिर काम करने लगा। अभीतक जो कार्यक्रम बन चुके थे, उनका काम सात-आठ महीनों में पूरा नही हो पाया था, इसलिए मत्रिमण्डल का फिर अपनी जगह पर आ जाना अच्छा ही हुआ। अब अधिक उत्साह के साथ काम होने लगा; क्योकि कोई कह नहीं सकता था कि कब और किस विषय को लेकर फिर इस्तीफा देना पड़े, इसलिए जो कुछ हो सके, कर गुजरना ही अच्छा होगा।

: १२७ :

बिहार की मजदूर-कमिटी

मन्त्रिमण्डल ने निश्चय किया कि बिहार के मजदूरों की हालत जांचने और सुधारने के लिए एक कमिटी बनाई जाय। कानपुर का काम एक प्रकार से समाप्त हो चुका था। इसलिए मै अब इस काम को अपने हाथ मे ले सकता था। कमिटी नियुक्त हुई। मै उसका अध्यक्ष बनाया गया। अपनी अस्वस्थता के कारण कानपुर का काम मैं अपने सन्तोष के लायक नही कर सका था। वहा की रिपोर्ट पर जब सरकार ने कार्रवाई करनी चाही तो मिल-मालिको का विरोध हुआ। मजदूरो की ओर से हडतालें हुई। ननीजा यह हुआ कि बहुत दिनो तक कशमकश चलती रही। मुझे मालूम नही कि हमारी सिफारिशो मे कितनी मजूर हो सकी। मुझे इसका अफसोस बना ही रह गया कि यदि मैं स्वस्थ होता और समय कुछ अधिक लगा सकता तथा कानपुर जाकर रिपोर्ट देने के पहले दोनो पक्षो से खुलकर बाते कर लेता, तो शायद रिपोर्ट का इतना जबरदस्त विरोध न होता; हो सकता है कि सिफारिशो मे भी कुछ हेरफेर होता—कम-से-कम जो भी सिफारिशे होती, मिल-मालिको मे इतना कड़वापन नही आता।

जो हो, अब तो वह बात बन नही सकती थी। पर बिहार मे फिर उसी प्रकार का काम मुझे करना पडा और वहा से भी यहा की समस्या अधिक जटिल थी; क्योंकि वहा तो केवल एक ही शहर के एक ही प्रकार के कारखानों के मजदूरो की हालत जाचनी थी। पर यहा कमिटी के जिम्मे सभी प्रकार के मजदूरों की—जो कारखानो में काम कर रहे थे—हालत जांची गई। जहांतक मैं समझता हू, जितने प्रकार के कारखाने हिन्दुस्तान में हैं, प्रायः सभी प्रकार के बिहार में मौजूद है। शायद बहुत चीजों में बिहार और सभी सूबों से इस बात मे बढा हुआ है। यहांपर खानो का काम बहुत फैला हुआ है। कोयले की खानें इतनी है जितनी किसी भी दूसरे प्रदेश में नही, या यो कहें कि कोयले की जितनी खानें बिहार में है उतनी सारे हिन्दुस्तान के अन्य सभी सूबों को मिलाकर भी नही हैं तो ठीक ही होगा। यही हालत लोहे और ताबे की खानों की है। अबरक की खानें भी इतनी हैं कि और किसी भी सूबे में उतनी नही है, सब सूबों को मिलाकर भी नहीं—

शायद सारे संसार के और किसी देश में इतनी नही जितनी बिहार में हैं। और कई चीजे भी थोड़ी-बहुत बिहार की खानो से ही निकलती हैं।

ऊख की खेती भी यहा काफी होती है। पिछले बारह वर्षो मे चीनी के कारखाने भी बहुत बन गए है। सयुक्त प्रदेश को छोड़कर और किसी सूबे में उतने कारखाने नही है, जितने बिहार मे। जमशेदपुर मे टाटा-कम्पनी का लोहे का कारखाना हिन्दुस्तान का ही नही, एशिया का सबसे बड़ा कारखाना माना जाता है और ससार के बड़े-से-बड़े कारखानो मे एक है। वहा और भी बहुत किस्म के कारखाने है—टिन के पत्तर बनाने के लिए—तार, टेलीफोन और बिजली के तार बनाने के लिए—खेती के औजार (फावडा, गैता वगैरह) बनाने के लिए—लोहे के तार और काटे बनाने के लिए, अनेकानेक कारखाने है। कई तो जमशेदपुर के आस-पास भी बने है। इसके अलावा और भी लोहे के कारखाने दूसरे स्थानो मे है। लाह की खेती छोटा नागपुर के जंगलों मे विशेष होती है। जितनी लाह बिहार मे पैदा होती है उतनी और कही नही। लाही से लाह बनाने के कारखाने स्वाभाविक रीति से छोटा नागपुर और संथाल-परगने मे है, जहा जगलो से काफी लाही मिलती है। जहां-तहा जूट बुनने और रुई से कपड़ा बनाने के कुछ कारखाने भी है; पर और सूबों के मुकाबले मे कम है।

इस तरह बिहार की कमिटी को प्रायः सभी प्रकार के मजदूरो की हालत जांचनी थी। जमशेदपुर के कारखानो के मजदूर एक आधुनिक ढग के नये बने हुए बड़े शहर मे रहते है। वहां के कारखाने दिन-रात चौबीसो घंटे काम करते है, साल मे एक दिन भी बन्द नही होते। कुछ मजदूर ऐसे हैं, जो गांवों मे अपने-अपने घरो मे रहते है और साल में चार-पाच महीने ही चीनी के कारखानो मे काम करते है। कुछ मजदूर और जगहो की तरह विभिन्न कारखानों मे आवश्यकतानुसार बराबर कुछ-न-कुछ करते रहते हैं। फिर खानो के अन्दर काम करनेवालो की हालत इन सबसे भिन्न है; क्योंकि वहां का काम ही दूसरे ढंग का है। खानो मे भी सब काम करनेवाले न तो एक तरह का काम करते है और न उनके रहन-सहन का एक-सा तरीका ही है। झरिया मे कोयले की खानों का जमघट है। चन्द मीलों के अन्दर बहुतेरी खाने है। इसलिए वहां मजदूरों की आबादी कुछ मिली-जुली-सी है। अबरक की खाने, एक-दूसरी से अलग, जंगलों मे और पहाडियो पर दूर-दूर हैं। इसलिए उनके मजदूरों के रहने का किसी एक स्थान में प्रबन्ध नहीं है। झरिया में तमाम कारखानों के मजदूरों के लिए एकही पानी-कल से पानी मिलने का प्रबन्ध है। ऐसा अबरक-खानवालों के लिए नही है और शायद हो भी नहीं सकता है। इस तरह बहुत प्रकार के कामों के कारण

बहुत तरह के मजदूर है। उनके रहन-सहन के प्रबन्ध में और मजदूरी में भी स्वभावतः बहुत अन्तर है। बिहार-कमिटी को इन सबकी जांच करके सिफारिश करनी थी। काम के विस्तार और गुरुता को देखकर मैं सहम गया, पर छुटकारा न पा सका। मैंने भी सोच लिया था कि समय अधिक लगे तो लगे, पर इसे अच्छी तरह से और पूरा-पूरा करना चाहिए। ऐसा ही किया भी गया।

इसके अलावा और भी प्रश्न उपस्थित थे, जिनके सम्बन्ध में मुझे कुछ-न-कुछ करना पड़ा। मंत्रिमण्डल बनते ही ऊख-सम्बन्धी एक प्रश्न उसके सामने उपस्थित हो गया, जिसपर उसे शीघ्रता से कुछ करना ही था। बिहार में चीनी के बहुतेरे कारखाने बन जाने के कारण यहां के किसान ऊख की खेती बहुत करते हैं और ऊख को कारखानों के हाथ बेच देते है। कारखानों के बनने के पहले काश्तकार उतनी ही ऊख की खेती करता था जितनी को वह खुद अपने कोल्हू मे पेरकर गुड़ बना सकता था। खेती के काम का कुछ ऐसा सिलसिला है कि जिन दिनों मे ऊख पेरने का काम होता है उन दिनों मे बैलों को और दूसरा काम बहुत नहीं रहता, क्योंकि ऊख पेरने का काम कार्तिक के बाद शुरू होता है, जब रबी बोने का काम खत्म हो गया रहता है। इसलिए किसान उतने ही अन्दाजे मे ऊख बोया करते थे, जितने को वे अपने बैलों मे पेर सकें। इस तरह ऊख की खेती का दूसरी फसलों के साथ एक स्वाभाविक निपात हो जाया करता था। जबसे कारखाने बन गए, किसान ऊख पेरने के झगड़े से छुट्टी पा गए। वे उसे कारखाने तक या नजदीक के स्टेशन तक पहुंचा देने का ही काम करते और पेरने का काम कारखाने कर लेते। ऊख मे नकद पैसे भी मिलते है। इसलिए ऊख की खेती बहुत बढ़ गई। अगर किसी कारण कारखाने ऊख न ले तो किसान बिलकुल बेबस हो जाते हैं। उनकी साल-भर की कमाई बरबाद हो जाती है। ऐसी परिस्थिति १९३४ मे हुई थी जब भूकम्प के कारण बहुतेरे कारखाने बेकार हो गए थे। सरकार और रिलीफ-कमिटी को, खेतों मे लगी ऊख की फसल बचाने के लिए, काश्तकारो को फिर कोल्हू चलाने के लिए प्रोत्साहन देना पड़ा था। लाखों रुपये खर्च करके कोल्हू बांटे गए थे। तो भी इन कोल्हुओं से काम पूरा होनेवाला न था। पर कुछ दिनों के बाद कारखानों की मरम्मत हो सकी। वे चालू हो गए। किसानों की फसल का कुछ हिस्सा बच सका। किसानों को ऊख का दाम कारखानेवाले दिया करते है। सरकार ने देखा कि किसान कारखानों के इतने परवश हैं कि वे जब चाहें तब दाम घटा सकते हैं। इसलिए कांग्रेसी मंत्रिमण्डल बनने के बहुत पहले से ही ऊख का दाम मुकर्रर करने का अधिकार कानून द्वारा सरकार ने अपने ही हाथ

में ले रखा था। वह कह दिया करती कि इतने आने फी मन से कम दाम पर कोई ऊख नहीं खरीद सकता—हां, कोई यदि अधिक देना चाहे तो दे सकता है। इस तरह किसानों को एक रकम अवश्य मिल जाती। यदि कारखानों मे होड़ हुई तो उससे अधिक भी मिल सकती थी।

१९३६ मे किसी कारण ऊख की खेती कम हुई। कारखानों में खूब होड़ हुई। इससे किसानों को अधिक दाम मिले। उन्होंने दूसरे साल ऊख की खेती अधिक कर दी। १९३७ मे इतनी ऊख थी कि मालूम होता था, कारखाने सब ऊख नही ले सकेंगे। चीनी का दाम भी इतना गिर गया कि सरकार का मुकर्रर किया हुआ दाम भी बहुत कम था; कारखाने उतने दाम पर भी ऊख लेने को तैयार नही थे। नतीजा यह हुआ कि किसान बहुत तबाह हुए। उसी समय चन्दरोजा मन्त्रिमण्डल बना था। उसने भी कुछ कोशिश की थी, पर वह अप्रैल में आया, जब ऊख का काम प्रायः समाप्ति पर रहता है। उसके पहले से ही हमने कारखानेवालों से बातचीत करनी शुरू कर दी थी कि वे किसी तरह से ऊख जरूर ले लें। कुछ राजी भी हुए। अपने इलाके की ऊख उन्होंने ले ली। जबतक वह खत्म न हुई, कारखाने चलते रहे, यद्यपि मामूली तौर पर आधे अप्रैल के बाद ऊख से चीनी की मात्रा कम निकलती है। जब जुलाई मे काग्रेसी मन्त्रिमण्डल बना तो उसे इस विषय पर विचार करना था कि जो अनुभव किसानों को १९३७ के मार्च-अप्रैल मे हुआ था और उन्हे जो कार्रवाई उस समय करनी पड़ी थी, उसका सामना उनको फिर न करना पड़े। इस सम्बन्ध में मेरी और इस विभाग के मन्त्री डाक्टर महमूद से बाते हुई और फिर कान्फ्रेन्स भी की गई। देखा गया कि ऊख की खेती सबसे अधिक युक्तप्रान्त और बिहार मे ही होती है। इसलिए जो-कुछ करना हो, दोनों सूबे मिलकर करे, तो ठीक होगा। दोनो के सामने समस्या एक थी। दोनों में काग्रेसी मन्त्रि-मण्डल थे। इसलिए दोनो सूबे के मन्त्रिमण्डलो ने मिलकर एक कान्फ्रेन्स की। उसीमें अपना कार्यक्रम भी ठीक किया। मुझे भी उसमे भाग लेना पड़ा था। चूकि हिन्दुस्तान मे जितनी चीनी बनती है, उसका तीन-चौथाई से भी ज्यादा हिस्सा इन्ही दोनों प्रान्तों मे बनता है, इसलिए लोगो ने सोचा कि ये दोनों मिलकर जैसा प्रबन्ध चाहेगे, कर सकेंगे।

दोनों सूबों ने कानून बनाये। उसके अनुसार केवल ऊख का ही नहीं, चीनी का भी दाम ठीक करने का अधिकार सरकार ने अपने हाथों में लिया। कुछ कारखानेवालों ने विरोध किया। पर अन्त में सब राजी हुए। कारखानेवालों का एक संघ बना। वही सभी कारखानों पर नियन्त्रण रखता। जो कारखाना संघ में शरीक न हो, उसे ऊख पेरने की सनद

(लाइसेंस) सरकार न देगी। इस तरह जो न भी चाहते थे, उनको भी मजबूरन उस संघ मे शरीक होना पड़ा। किसानों को उस साल दाम ठीक मिले। मेरे दिल में कुछ सन्देह था; क्योंकि मैं समझता था कि कारखानों के साथ यदि ज्यादा सख्ती की जायगी तो हो सकता है कि वे इन दो सूबों के बाहर के कारखानों के साथ, जहां किसी तरह का हस्तक्षेप या प्रतिबन्ध नही था, मुकाबला न कर सकें। इसलिए मैंने कहा कि बेहतर हो यदि सभी सूबों के साथ मिलकर कुछ किया जाय। भारत-सरकार कुछ करने पर तैयार नही थी। इसलिए सूबों के साथ ही बातचीत हो सकती थी। दूसरे सूबों के मन्त्रिमण्डल—कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल भी—इन दोनो के साथ मिलकर अपने यहां के कारखानो को नियन्त्रित करने पर राजी न हुए। इसका नतीजा यह हुआ कि उन सूबो के कारखानो को, विशेषकर देशी रियासतों के कारखानो को, बहुत सुविधा मिल गई। वहां नये कारखाने बने। पुरानो ने बहुत मुनाफा किया। बिहार के एक-दो कारखाने बिककर सूबे से बाहर चले गए। पर इसमे कुछ सन्देह नही कि जो-कुछ कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल ने किया, उससे किसानों को उस समय बहुत लाभ पहुंचा। और, जबतक कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल रहा, लाभ होता रहा।

: १२८ :

बिहार में शिक्षा-सम्बन्धी कार्य और बाढ़-सम्मेलन

शिक्षा का विषय अत्यन्त महत्व रखता है। डाक्टर महमूद इस विभाग के चार्ज में थे। उन्होंने चाहा कि मुझे वह पटना-युनिवर्सिटी के सिनेट का मेम्बर बना दे। मैंने सिनेट की मेम्बरी से सन् १९२१ मे इस्तीफा दे दिया था। उन्होंने बहुत जिद की कि मुझे यह फिर से स्वीकार कर लेना चाहिए। श्री सच्चिदानन्दसिंह वाइस-चान्सलर थे। उन्होंने भी आग्रह किया। इसलिए मैंने मेम्बरी स्वीकार कर ली। सिनेट की बैठक मे मैंने एक प्रस्ताव पेश किया। उसका आशय यह था कि सरकार शिक्षा की योजना सुधारने के प्रश्न पर विचार करे और इसके लिए एक कमिटी नियुक्त करे जो प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक की योजना बनावे। इस प्रस्ताव के उपस्थित करने के समय मैं बीमार था। बड़ी मुश्किल से सिनेट की बैठक मे जा सका। पर मैंने अपना भाषण लिख लिया था। एक मित्र ने उसे पढ़ दिया। उसमें प्रचलित शिक्षा-पद्धति की कड़ी आलोचना थी। कुछ सदस्यो ने, जिसमे विशेष शिक्षक ही थे, टीका की। पर प्रस्ताव सर्वसम्मति से मंजूर हुआ। कुछ दिनों के बाद जब वह प्रस्ताव सरकार के पास भेजा गया तो उसे मंजूर करके मंत्रिमण्डल ने एक कमिटी बना दी। मै भी उसका एक सदस्य बनाया गया। अध्यक्ष बनाये गए बम्बईवाले श्री के० टी० शाह।

मेरे प्रस्ताव के उपस्थित होने के पहले ही महात्मा गांधी ने एक योजना उपस्थित करके शिक्षा-सम्बन्धी प्रश्न को सारे देश की जनता के सामने ला दिया था। उन्होंने कई लेख 'हरिजन' में लिखे। उनकी योजना की मुख्य बात यह थी कि बच्चो की शिक्षा, जो आज केवल अक्षरों द्वारा दी जाती है, केवल अक्षरों अर्थात पुस्तकों द्वारा ही न दी जाकर कुछ हुनर या हाथ की कला द्वारा दी जाय। उनका कहना था कि यदि ऐसा किया जायगा तो बच्चे जो काम करके कमायंगे उसीसे प्राथमिक शिक्षा का खर्च भी निकल आवेगा। उन्होंने इस तरह एक तीर से दो शिकार करने की योजना बना दी। उसके अनुसार शिक्षा भी आज की शिक्षा से बेहतर होगी और उसके लिए खर्च

भी सरकार को नही करना पड़ेगा। इसके पहले जब कभी यह प्रश्न उठाया जाता था कि सभी बच्चों की निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय तो सरकार की ओर से यही उज्र पेश किया जाता था कि उसके पास इतने रुपये नही कि वह इसे कर सके। स्वर्गीय गोखले के समय से ही इस बात पर जनता की ओर से जोर दिया जाता रहा और सरकार द्रव्याभाव के बहाने से विरोध करती आ रही थी। कही-कही नि शुल्क शिक्षा का और कही-कही निःशुल्क एव अनिवार्य शिक्षा का भी प्रयोग किया गया था। पर वह इतने कम स्थानो में और इतने छोटे पैमाने पर ब्रिटिश भारत में हुआ था कि उससे यह आशा नही की जा सकती थी कि यह प्रयोग सारे भारत मे कभी पूरा हो सकेगा।

बिहार के छपरा-जिले मे कुछ हद तक नि शुल्क शिक्षा का प्रबन्ध किया गया था। इसमे मुख्य दिलचस्पी लेनेवाले दो व्यक्ति थे, मेरे भाईसाहब बाबू महेन्द्रप्रसाद और छपरा-जिले के स्कूलो के उन दिनो के डिस्ट्रिक्ट-इस्पेक्टर बाबू राधिकाप्रसाद। पर सरकार ने यद्यपि इसे नामजूर नही किया तथापि कभी इसे बहुत प्रोत्साहन भी नही दिया। किसी तरह से यह प्रयोग चल रहा था। गाधीजी ने अपनी योजना से हलचल-सी मचा दी। उन्होने कुछ ऐसे लोगो का, जो शिक्षा से प्रेम रखते है और उसके प्रचार मे तत्पर रहते है, एक सम्मेलन वर्धा मे किया। वहा उनकी योजना पर विचार हुआ। सम्मेलन ने एक उपसमिति बना दी। जामिया-मिलिया (दिल्ली) के प्रमुख डाक्टर जाकिर हुसेन उसके अध्यक्ष हुए। सब कमिटी ने एक योजना तैयार की। वह वर्धा-योजना के नाम से प्रख्यात हुई। गाधीजी की योजना का ही उस सब-कमिटी ने बहुत अशो मे समर्थन किया और प्राथमिक शिक्षा दस्तकारियो द्वारा देने की सिफारिश की। सब-कमिटी खर्च के सम्बन्ध में उस हद तक जाने को तैयार नही थी, जहातक गाधीजी का विचार था; पर वह भी इसका विरोध नही करती कि खर्च का कुछ अंश यदि बच्चो की दस्तकारियो से निकल आवे तो निकाल लेना चाहिए।

इस तरह जो शिक्षा-शास्त्री वहां जमा हुए, उन्होंने यूरोप और अमेरिका के शिक्षा-शास्त्रियो के विचारो से गाधीजी के विचारो की पुष्टि दी। और मालूम हुआ कि बिना उनके विचारो और पुस्तको का मनन किये ही गाधीजी ने जो कुछ कहा है, वही आधुनिक शिक्षा-शास्त्रियो के भी विचार हैं। इसलिए जब मैंने अपना प्रस्ताव पेश किया था तो मेरे दिल में यह बात भी थी कि वर्धा-योजना पर भी यह कमिटी विचार करेगी। यदि इसकी राय भी उससे मिल गई तो गांधीजी जो कराना चाहते थे, वह बिहार में सरकार आसानी से कर सकेगी। मैंने इस कमिटी का मेम्बर होना स्वीकार

कर लिया। इसका काम भी जारी हो गया। पर इस कमिटी के काम का भार इसके अध्यक्ष श्री के० टी० शाह पर ही अधिक रहा।

बिहार-सरकार के शिक्षा विभाग ने एक और कमिटी मुकर्रर की। उसका भी मैं एक सदस्य बनाया गया। हिन्दी-हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध मे, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के नागपुर-अधिवेशन में, मैंने अपने विचार प्रकट किये थे। बिहार में यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि यहा कि पाठ्य-पुस्तको मे ऐसी भाषा कहांतक चल सकती है, जिसे हिन्दी और उर्दू जाननेवाले दोनो ही मान्य समझे, और इसके लिए शब्दकोश बनाने का भी प्रयत्न किया जाय। डाक्टर महमूद ने मुझे ही इसका प्रमुख बनाया; पर मैंने इसे स्वीकार नही किया; क्योकि मेरे पास दूसरे काम बहुत हो गए थे, इसलिए मै इसमे न तो काफी समय दे सकता था और न ऐसे गुरुतर काम की योग्यता अपने मे समझता था। इसलिए इसके अध्यक्ष मौलाना अबुलकलाम आजाद साहब बनाये गए। इसका काम भी आरम्भ हुआ। इस प्रकार मेरे जिम्मे अपने सूबे में बहुत काम आ गया। वर्किंग कमिटी द्वारा नियुक्त पार्लमेण्टरी कमिटी का मेम्बर तो मै था ही। १९३७ से १९३९ तक का बहुत समय प्रायः इन्ही कामों मे लगा। समय काफी लगा; क्योकि जिन प्रश्नो पर विचार करना था, वे गम्भीर थे और उनका निपटारा आसानी से नही किया जा सकता था। जो सिफारिशे होती उनका भी असर काफी पड़ता। इसलिए यद्यपि मैं मन्त्रिमण्डल मे नही था तथापि अपनी शक्ति और बुद्धि के अनुसार यथासाध्य मदद देना मेरा आवश्यक कर्तव्य हो गया था।

एक और विषय था, जिसपर बहुत विचार किया गया, पर कुछ रास्ता अभीतक नही निकला। वह है बिहार के कुछ हिस्सो मे बाढ़ के प्रकोप का। छपरा और पटने के बीच मे सरयू, गगा, सोन और गंडक नाम की चार बड़ी-बड़ी नदियो का सगम है। जब कभी इन नदियो के उद्गम-स्थान अथवा रास्ते मे लगातार बहुत बरसात हो जाती है तो इनमे एक साथ ही बाढ़ आ जाने से इनके आसपास के स्थानों की हालत बहुत ही खराब हो जाया करती है। ऐसा पहले से ही होता चला आ रहा है। पर १९३४ के भूकम्प के बाद से बाढ़ का प्रकोप बढ गया है। कुछ लोगों का अनुमान है कि भूकम्प के कारण नदियो की गहराई कम हो गई है, उनमे उनका पानी निकाल ले जाने की अब शक्ति नही रह गई, जितना वे पहले निकाल ले जाया करती थी। इसलिए अब पानी दूर तक बाहर फैल जाता है और जहा जाता है, वहां पानी की गहराई भी अधिक होती है।। पर इस इलाके के अलावा, जहां नदियों के जमघट के कारण अक्सर बाढ़ आया करती है, बिहार के—विशेषकर उत्तर बिहार के—और भी हिस्से हैं, जहां बाढ़ बहुत

आया करती है। बाढ़ के कारणों में, लोगों का मत है, एक जबरदस्त कारण रेलवे के बांध भी है, जो पानी को रोक देते हैं और उसे आसानी से बहकर निकलने नहीं देते। इन बांधों में काफी पुल और पानी के निकास के रास्ते नहीं हैं। कहीं-कहीं तो इन बांधों के कारण बहुत अनर्थ हो जाया करता है। रेलवेवाले लोगों की कुछ सुनते नहीं। रेलवे के अलावा दूसरे भी बांध हैं, जो खास तौर से पानी रोकने के लिए ही बनाये गए हैं। उनके असर के सम्बन्ध में भी मतभेद की गुंजाइश है। इसमें सन्देह नहीं कि बाढ़ का प्रश्न बिहार के लिए बहुत महत्व रखता है। मैंने इस सम्बन्ध के कुछ लेख लिखे थे और जब कांग्रेसी मंत्रिमण्डल बना तो उसको इस प्रश्न पर भी विचार करना आवश्यक जान पड़ा। उसने एक सम्मेलन किया, जिसमें अनुभवी इंजीनियरों और जनता के प्रतिनिधियों को बुलाया। बहुत विचार-विमर्श हुआ; पर कोई सन्तोषजनक फल नहीं निकला; क्योंकि न तो कारण के सम्बन्ध में सब एकमत हो सके और न उपाय के सम्बन्ध में। कान्फ्रेन्स में मैं बीमारी के कारण शरीक न हो सका। पर मेरे विचार वहां पेश हुए थे। बिहार के ये बड़े-बड़े प्रश्न थे, जिनसे मेरा विशेष सम्बन्ध था। इनके अलावा और बहुतेरे छोटे-मोटे प्रश्न हुआ करते, जिनके सम्बन्ध में मेरी राय लोग पूछ लिया करते। दूसरी जगहों के मंत्रिमण्डलों से मेरा उतना सम्बन्ध न रहा जितना बिहार के। यह स्वाभाविक था।

: १२९ :

गांधी-सेवा-संघ

मैं अस्पताल में मार्च के अन्तिम सप्ताह तक रह गया। जब तबीयत कुछ अच्छी हो गई और ताकत भी आ गई तो वहां से निकला। गांधी-सेवा-संघ का वार्षिक सम्मेलन उस साल उड़ीसा मे पुरी के पास 'डेलाग' गांव में, होनेवाला था। वही मै सीधे चला गया। महात्माजी भी वहां आनेवाले थे। मेरी बहन, मृत्युञ्जय की मां और मेरी भौजाई भी साथ गई। वहां हम लोग कई दिनो तक रहे। दूसरे सम्मेलनों की तरह यहां भी तात्त्विक विषयों पर चर्चा होती रही। सब लोग मिलकर एक साथ चर्खा चलाते। संध्या के समय जनता जमा हो जाती तो कुछ लोग व्याख्यान देते। गांधी-सेवा-संघ-सम्मेलन चार-पांच ही बार हुए, पर इनका महत्व यह था कि वहां गांधीजी के समक्ष सभी सदस्यो को कई दिनों तक रहने का सुअवसर मिल जाता। सिद्धान्त की बातो पर आपस मे बहुत बहस होती। उपस्थित विषयों पर गांधीजी की सम्मति मिल जाती। जो सदस्य जहां और जिस काम में लगा रहता, वहां उत्साह के साथ जाकर फिर काम करता।

संघ के सदस्य अधिकतर रचनात्मक काम मे ही लगे थे। कोई चर्खा-संघ द्वारा अथवा स्वतन्त्र रूप से खादी और चर्खे के प्रचार-कार्य में लगा था, तो कोई हरिजन-सेवा में अपना समय लगा रहा था। कोई ग्राम्य उद्योगों को ही पुनः जीवित और सगठित करना अपना मुख्य कर्तव्य मानकर उसीमें सलग्न था, तो कुछ लोग वर्धा-योजना के प्रचारार्थ स्थापित तालीमी संघ में शिक्षा-प्रचार का काम कर रहे थे। कुछ लोग गो-सेवा में लगे थे, जिसमे मुर्दा पशुओं की खाल निकालने, पकाने और उससे जूते, बाक्स इत्यादि सामान बनवाना भी शामिल थे। विशेषकर इन्ही सब प्रवृत्तियों में, जिनके लिए गांधीजी ने प्रेरणा दी थी, संघ के लोग दत्तचित्त थे। कुछ ऐसे भी जरूर थे, जो कांग्रेस के संगठन का काम करते थे, जहां-तहां कांग्रेस-कमिटियों की सेवा कर रहे थे। पर ऐसे सदस्यों की संख्या बहुत कम थी। वहां भी उनसे अधिकतर रचनात्मक काम करते रहने की ही अपेक्षा रहती थी। जब कौन्सिलों का चुनाव होने लगा और कुछ सदस्य उम्मीदवार बनाये गए तो इस विषय पर संघ के सम्मेलन में बहुत चर्चा हुई थी। कुछ

लोगों का विचार था कि संघ के लोगों को इस काम में नही पड़ना चाहिए। पर सघ ने कुछको इजाजत दी थी। इस विषय पर, मुझे जहातक स्मरण है, दो सम्मेलनो मे विचार होता रहा। अब तो उसके सदस्य श्री जगलाल चाधरी मत्री और श्रीकृष्णवल्लभ सहाय पार्लमेण्टरी सेक्रेटरी हो गए थे। सघ ने उनसे वादा ले लिया था कि सघ से उनको जो निर्वाह-व्यय मिलेगा उसीसे उनको सन्तुष्ट रहना पड़ेगा। इसलिए जब उनको कुछ वेतन के रूप मे मिलने लगा तो उन लोगो का निर्वाह-व्यय सघ की ओर से बन्द कर दिया गया। जो वेतन उन्हे मिलता था, उसका भी पूरा-पूरा हिसाब वे संघ को देने लगे। सघ की सदस्यता, नैतिक दृष्टि से, मनुष्य को—यदि वह सचाई से काम लेता—ऊचा उठा सकती थी। उससे आशा रखी जाती थी कि गाधीजी के सत्य-अहिसा-सम्बन्धी सिद्धान्तो को वह यथासाध्य अपने जीवन मे उतारने और प्रचारित करने का प्रयत्न करेगा। सघ-सदस्यो मे से बहुतेरो का जीवन हम सबके लिए आदर्श हो सकता है।

इस सघ का उद्देश्य कभी कोई राजनैतिक दल तैयार करने का नहीं था। इसने कभी ऐसा किया भी नही। कभी इस सघ की ओर से किसीने किसी चुनाव मे भाग नही लिया, चाहे वह काग्रेस का हो या म्युनिसिपैलिटी या डिस्ट्रिक्टबोर्ड या असेम्बली या कौन्सिल का। अधिकाश तो इन सभी सस्थाओ से अपनेको अलग रखते थे। वे किसी चुनाव से सम्बन्ध नही रखते थे। अगर कही कोई चुनाव मे आता भी तो व्यक्तिगत रूप से, अपनी सेवा के बल पर, न कि सघ की सदस्यता से लाभ उठाकर। संघ मे सेठ जमनालाल बजाज, सरदार वल्लभभाई पटेल और मुझ-जैसे लोग भी थे, जो काग्रेस की वर्किंग कमिटी के सदस्य थे तथा अपने-अपने स्थान में काग्रेस के काम मे प्रमुख भाग लेते थे। स्वयं गाधीजी सदस्य तो नही थे, पर मार्ग-प्रदर्शक तो थे ही। तो भी यह कहना बिलकुल बेबुनियाद था कि जैसे काग्रेस के अन्दर स्वराज्य-पार्टी अथवा काग्रेस-सोशलिस्ट-पार्टी बनी थी, वैसी ही सस्था यह भी थी। इसका उद्देश्य सेवक तैयार करना था, उनके द्वारा रचनात्मक काम मे यथासाध्य मदद पहुचाना था। उन सेवकों से अपेक्षा की जाती थी कि वे अपने जीवन और उदाहरण से गांधीजी के सिद्धान्तों का यथासाध्य प्रचार करते रहेगे। पर कुछ लोगो ने उसपर यह आक्षेप लगाया कि वह भी एक दल है। रामगढ़-कांग्रेस के कुछ पहले, जो सघ का वार्षिक अधिवेशन बंगाल मे हुआ था, उसमें संघ को विघटित करने का निश्चय कर लिया गया।

: १३० :

ग्रामसुधार-योजना और नासिक में निवास

उड़ीसा में ही हम लोगों को मालूम हुआ कि वहा की असेम्बली की काग्रेस-पार्टी के अन्दर बहुत मतभेद चल रहा है—मंत्रिमण्डल के विरुद्ध कुछ लोगों को शिकायतें है। सरदार वल्लभभाई और मैं, पार्लमेण्टरी कमेटी के दो मेम्बर वहा मोजूद थे। हमने उचित समझा कि दोनों पक्षों से बातें कर ली जायं और हो सके तो इस झगडे को तय कर दिया जाय। एक तरफ मन्त्रिमण्डल था और दूसरी ओर पंडित नीलकण्ठदास, पडित गोदावरीश मिश्र प्रभृति थे। श्री गोपबन्धु चौधरी किसी दल के नही थे। वहापर हमने सभी बातें सुनकर अपनी राय दे दी। श्री गोपबन्धुदास को, जो गाधी-सेवासंघ की ओर से वहीं कटक मे आश्रम बनाकर रचनात्मक काम मे लगे हुए थे और काग्रेस-कमिटी से अलग हो गए थे, काग्रेस का काम संभालने के लिए, दोनों पक्षों की राय से, कहा गया। हम समझते थे कि झगड़ा शात हो जायगा। पर ऐसा हुआ नही। पीछे इसके बहुत बुरे फल देखने मे आये, जिसका जिक्र समय पर आवेगा।

एक घटना वहां हो गई, जो वर्णनीय है। जो लोग सम्मेलन में गये थे, उनमें से कुछ श्री जगदीश के दर्शनार्थ पुरी चले गए। उनमे हमारे घर की स्त्रियां भी थीं। उनके संबध मे तो नही, पर दूसरों के संबंध में महात्माजी को इससे बहुत दुख हुआ। श्री जगन्नाथजी का मन्दिर अभी तक हरि-जनों के लिए नही खुला है, अर्थात हरिजन वहां उस तरह दर्शन-पूजा नही कर सकते, जिस तरह सवर्ण हिन्दू। महात्माजी स्वयं ऐसे मंदिर मे नही जा सकते हैं। उनका विचार है कि यदि उनको दर्शन-पूजा का अधिकार नही है, तो हमें भी नही होना चाहिए। इसलिए जब सम्मेलन में आये हुए निकटवर्ती लोगों के सम्बन्ध में उन्होने सुना कि वे भी दर्शनार्थ गये तो उनको चोट लगी। पुरी जाना वह बुरा नही मानते थे और न दर्शन-पूजा ही। पर दर्शन-पूजा हम वहींतक करें जहांतक करने का अधिकार हरि-जनों को भी है। इस बात की चर्चा वहां चली। जो लोग अपनेको गांधीजी का अनुयायी समझते हैं, उनको भी इतनी सख्ती कुछ खटकी, पर इससे हरि-जनों के प्रति गांधीजी के प्रेम और सहानुभूति की गहराई का पता लग गया।

अस्पताल से निकलने पर डाक्टरों की राय थी कि मुझे अभी कुछ और आराम कर लेने की जरूरत है। इसलिए जब गर्मी शुरू हुई तो मैंने निश्चय किया कि कुछ दिनों तक किसी स्वास्थ्यकर स्थान में जाकर रह जाऊं। इसलिए मैंने नासिक में जाकर रहने का निश्चय किया। वहापर सेठ बिडला का एक मकान था, जिसका वह 'खासकर हवा बदलने के लिए निवासस्थान' की तरह इस्तेमाल करते है। मैंने वही जाकर ठहरने का निश्चय किया। सेठ रामेश्वरदास बिड़ला ने बम्बई से भी सब प्रबन्ध कर दिया। नासिक जाने का विचार एक और कारण से हुआ। मई के महीने में बम्बई मे अखिल भारतीय कमिटी की बैठक होनेवाली थी। सोचा कि नासिक बम्बई के नजदीक है, वहां से आसानी से सभा मे शरीक हो सकूगा।

नासिक जाने के पहले एक और काम था, जिसके सम्बन्ध मे मुझे कुछ कर लेना था। बिहार-मन्त्रिमण्डल का विचार था कि गावो के सुधार के लिए सरकारी तौर पर कुछ काम किया जाय। इसके लिए वह एक विभाग बनाना चाहता था। इसके लिए एक ऐसी योजना बनानी थी, जिसके अनुसार काम किया जाय। इस काम के लिए एक ऐसा आदमी भी चाहिए था, जो उस दृष्टि से इस काम को चलावे, जिसे मन्त्रिमण्डल पसन्द करता था। अबतक ग्राम-सुधार का काम सरकार की ओर से कुछ भी नही हुआ था। यह पहला कार्यक्रम था। इसमे विशेषकर गावो के रहनेवालो की हालत हर तरह से सुधारने का ही विचार था। अबतक जो लोग सरकारी काम किया करते थे, वे एक प्रकार से जनता के मालिक और शासक बनकर ही किया करते थे। जरूरत थी कि कुछ लोग सेवक बनकर काम करे। यही काम इस विभाग के जिम्मे लगाने का निश्चय किया गया। मैंने एक योजना बनाई। सरकार ने पडित प्रजापति मिश्र को इस विभाग का चार्ज दिया। दूसरे कार्यकर्ताओ की नियुक्ति भी हुई। इनमे बहुतेरे काग्रेसी कार्यकर्ता नियुक्त किये गए। इसका यह कारण नही था कि काग्रेसी लोगों को नौकरी देनी थी। वह काम ही ऐसा था, जिसका थोड़ा-बहुत अनुभव अगर किसीको था तो कांग्रेसी कार्यकर्ताओ को ही, दूसरो को नही, क्योंकि किसीने बिहार-प्रान्त में इस प्रकार का कोई काम किया ही न था। पर इनके साथ-साथ दूसरे लोग भी नियुक्त किये गए। समझा गया कि सबको कुछ दिनो के लिए शिक्षा देकर तैयार कर दिया जायगा। जो योजना मै बना रहा था, वह पूरी नहीं हो पाई थी, इसलिए पडित प्रजापति मिश्र नासिक में जाकर मुझसे मिले। वहीं पर हमने उसे पूरा किया। जबतक यह विभाग काम करता रहा, उसी सांचे पर काम हुआ। मेरा विचार है कि इससे जनता की भलाई हो रही थी; पर मन्त्रिमण्डल के इस्तीफा देने के बाद इसका रुख आहिस्ता-

आहिस्ता बदलने लगा। अन्त में सरकार ने इसे तोड़ दिया।

नासिक-यात्रा में मेरे साथ श्री चक्रधरशरण नहीं जा सके। उनका स्थान श्री अम्बिकादत्तसिंह ने लिया। एक और साथी मिले, जिनका कुछ जिक्र कर देना आवश्यक मालूम होता है। वह थे एक सज्जन, जिनका नाम था, श्री देवरातजी ब्रह्मचारी। वह कर्नाटक-प्रदेश में समुद्र के किनारे पर बसे गोकर्ण नामक तीर्थस्थान के ब्राह्मण थे। मुजफ्फरपुर में सुहृद-संघ के वार्षिकोत्सव में मैं गया था। वहीं उनसे पहली मुलाकात हुई थी। वहां उन्होंने एक प्रशस्ति की तरह की चीज तैयार की थी, जिसको पढ़-सुनाया था। संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। पर वहां उनसे अधिक बातें या परिचय नहीं हो सका था। एक दिन मैं सदाकत-आश्रम में बैठा था। मेरी बहन भी थीं। उस दिन कोई पुण्य-तिथि थी, जिस कारण बहुत लोग गंगास्नान के लिए आये थे। मैंने देखा कि वह सज्जन भी उनमें थे। बहन का खयाल उनकी ओर गया। उनका आदर-सत्कार उन्होंने किया। जब बातें हुईं तो विद्वत्ता इत्यादि का कुछ पता चला। मैंने उनको निमन्त्रण दिया कि आप मेरे साथ कुछ दिनों तक रहें। उन्होंने उसे स्वीकार किया। वह योंही भ्रमण करते-करते बिहार आ गए थे। मैं जीरादेई गया। वह भी वहां आये। कुछ दिनों तक हम लोग साथ रहे। उनको मैंने नासिक भी बुला लिया। वह वैदिक ब्राह्मण थे। वेद उनको प्रायः मुखस्थ थे। उपनिषद् तो वह बिना पुस्तक देखे ही सुना जाते थे। उनसे मालूम हुआ कि कर्नाटक में आज भी यह परिपाटी है। वहां ब्राह्मण वेदों और उपनिषदों को कठस्थ कर लेते हैं। वे अपना काम करते हुए, खेती करने के समय भी, इनका पाठ किया करते हैं। उस समय वह एक नक्शा बना रहे थे, जिसमें वह वेदों के अनुसार सृष्टि-क्रम एक चंद्रमा के रूप में दिखलाना चाहते थे। उसीमें वह उपयुक्त ऋचाओं और मन्त्रों को इस प्रकार लिखते थे कि समझनेवाला पुरुष मंत्रों को भी पढ़ सके और बहुत-कुछ उस चित्र से भी समझ ले। उनका कहना था कि इस काम में उन्होंने कई बरस लगाये हैं, पर वह अभीतक पूरा नहीं हुआ था। वह इस काम को अपने पर्यटन में ही कर रहे थे। उनकी अद्भुत स्मरण-शक्ति और विद्वत्ता का यह एक दृश्य प्रमाण था; क्योंकि उनके पास एक भी पुस्तक नहीं थी और उन्होंने सब-कुछ अपनी स्मृति से ही तैयार किया था। नासिक में हम लोग घूमते-फिरते, खूब टहलते और वह संध्या के समय उपनिषद् की व्याख्या करते। वह योगी थे। उनका विचार था कि मैं यदि कुछ क्रिया नियमपूर्वक किया करूं तो दमा छूट जाय। मैंने धौति-क्रिया उनकी देख-रेख में आरम्भ की। पर नासिक में कुल पन्द्रह-सोलह दिन ही रह सका। उसके बाद बम्बई जाना पड़ा। वहां बहुत बीमार पड़ गया।

देवरातजी का समागम बहुत ही अच्छा रहा। वहीं मालूम हुआ कि वह पहले कुछ दिनों तक श्री रमण महर्षि के साथ तिरुवन्नमलय में भी रह चुके हैं। श्री महर्षि की जीवनी में उनकी विद्वत्ता और उनके प्रेममय नाटक का जिक्र है। वह महर्षि के साथ रहनेवाले उद्भट विद्वान गणपति शास्त्री के शिष्य थे। इसी सम्पर्क से वहां आश्रम में जाकर कुछ बरस पहले रहे थे। वह गोकर्ण में एक पाठशाला और गोशाला चला रहे हैं। उत्तर भारत में तो भ्रमण के लिए वह चले आये थे। हिन्दी उन्होंने अच्छी सीख ली थी। उनकी भाषा सुनकर उनके सम्बन्ध में कोई ऐसा नहीं कह सकता था कि वह दक्षिण भारत के रहनेवाले हैं। उनके साथ नासिक से हम त्र्यम्बक भी दर्शनार्थ गये। यह स्थान गोदावरी का उद्गम-स्थल समझा जाता है। पहाड़ पर मुझे कुर्सी पर बिठाकर ले गये; क्योंकि मैं इतनी ऊंचाई पर चढ़ नहीं सकता था। आसपास की पहाड़ियों में पुरानी गुफाएं हैं, जिनको मैंने जाकर देखा। इनसे ही उन पुराने दिनों की कला के साथ उस युग के तपस्वियों के जीवन का भी कुछ पता चलता है। मैंने इस तरह बहुत जगहों का भ्रमण किया है और उन्हें देखा है; पर मेरा काम दूसरा है और जी हमेशा उसीकी ओर लगा रहता है। इसलिए इन दृश्यों पर न तो मैं बहुत ध्यान देता हूं और न मुझे इनका बहुत स्मरण ही रहता है।

नासिक में कई और चीजें देखने को मिलीं। वहीं वह सरकारी छापाखाना है, जहां नोट, सभी प्रकार के अदालती और पोस्ट-आफिस के स्टाम्प छपते हैं। कारखाना बहुत बड़ा है। पहरा सख्त है। कागज की कीमत बहुत है; क्योंकि कागज के टुकड़ों से ही ये सब बनते हैं। वहां एक अंगरेज अफसर था, जो योरपवाली १९१४-१८ की बड़ी लड़ाई में फौजी था। वहां घायल होकर लगड़ा हो गया था। उसने हमको सभी जगहों में ले जाकर सब-कुछ एक-एक करके दिखलाया। हमने पोस्ट-कार्ड और लिफाफे छपते और बनते देखे। पोस्ट-आफिस के टिकट भी बनते देखे। नोट छपते देखे। उस सारी प्रक्रिया को देखा, जहां सबसे पहले नोट का मान-चित्र बनाया जाता है। इसके लिए कलाकार लोग नियुक्त हैं, जो हमेशा इसी काम में लगे रहते हैं। उसी मान-चित्र के आधार पर, जब वह मंजूर हो चुकता है, नोट छापने का सामान तैयार किया जाता है।

दूसरी एक और चीज देखी, जो छोटी है, पर जिसका महत्व भी इन्हीं चीजों-जैसा है। दियासलाई पर 'कर' लगाया गया है। उसके वसूल करने का तरीका यह है कि प्रत्येक दियासलाई की पेटी या डिब्बी पर एक कागज की पतली धारी-सी साट दी जाती है और जबतक वह न तोड़ी जाय, अन्दर से सलाई नहीं निकाली जा सकती। कारखाने से कोई पेटी उस धारी के

साटे बिना बाहर नहीं जा सकती। कारखानेवाले 'कर' अदा करते ही उस धारी को सरकार से खरीदा करते हैं। वह धारी भी, जो लम्बे फीते के रूप की होती है, इसी कारखाने में छपती है। मैंने ऊपर कहा है कि यहां कागज की बहुत कीमत है। कागज का हिसाब बड़ी कड़ाई से रखा जाता है। एक इंच कागज भी इधर से उधर नहीं हो सकता; क्योंकि यदि ऐसा न किया जाय तो कौन कह सकता है कि खोये हुए कागज पर नोट छपकर निकल नहीं गया है। इसलिए यदि कही छपाई की गलती से या किसी दूसरे कारण से कोई टुकड़ा खराब भी हो जाता है तो वह भी उतनी ही हिफाजत से रखा जाता है जितनी हिफाजत से ठीक छपा हुआ नोट। सभी काम करने-वालों को कारखाने मे जाने के समय और वहां से निकलने के समय सब कपड़ा खोलकर अपनी पूरी जामा-तलाशी देनी पडती है। कोई आदमी बिना वैसी तलाशी के अन्दर नही जा सकता है। हमारे साथ उन्होंने इस नियम का सख्ती से बर्ताव नही किया; पर हमारे साथ भी उनके कई अफसर सभी जगहों में रहे। एक विचित्र बात यह थी कि यद्यपि वहा काम करनेवाले न मालूम कितने लाखों-करोड़ो के नोट छापते होगे और प्रतिदिन छापकर जहां-तहां भेजते होगे; पर उन बेचारो की मजदूरी प्रायः वही है, जो दूसरे कारखानों में मिलती है। उनमें बहुतेरे काफी गरीबी की जिन्दगी काटते हैं। जो प्रतिदिन लाखों का कागजी नोट बनाता है वह शायद एक रुपया रोजाना पाता होगा। कैसी विचित्र लीला है! कैसा आज का संसार है!

: १३१ :

मध्यप्रदेश के मंत्रिमण्डल का दुःखद झगड़ा

नासिक से मैं बम्बई गया। वहा वर्किंग कमिटी और अखिल भारतीय कमिटी की बैठक होनेवाली थी। हरिपुरा-कांग्रेस के बाद अखिल भारतीय कमिटी का यह पहला अधिवेशन था, जिसमें श्री सुभाषचन्द्र बोस सभापतित्व करनेवाले थे। आठ-दस महीनों से कांग्रेसी-मन्त्रिमण्डल काम करते आ रहे थे। कुछ लोग उसकी कड़ी टीकाएं करते आ रहे थे। कहीं-कहीं कांग्रेसी लोग ही उनके विरुद्ध आपस में दलबन्दी कर रहे थे, जिससे उनके काम में कुछ कठिनाई भी पड़ रही थी। मुमकिन था कि इस विषय पर वहां विचार हो, यद्यपि हरिपुरा के समय दो सूबों में उनके इस्तीफा देने से वायुमण्डल में बहुत फर्क पड़ गया था। तो भी, जो लोग असन्तुष्ट थे, अपनी हरकतों से बाज नहीं आ रहे थे। मैं तो वहां जाकर बीमार हो गया। अधिवेशन में शरीक न हो सका। एक काम महत्व का हुआ। वही निश्चय हुआ कि सारे देश-भर के लिए एक प्लानिंग कमिटी बनाई जाय, जो सभी सूबों से राय और मदद लेकर कार्यक्रम बनावे, जिसके अनुसार सभी सूबों में मंत्रिमंडल काम करे। पंडित जवाहरलाल नेहरू इसके सभापति और प्रोफेसर के० टी० शाह मंत्री बनाये गए। सभी सूबों के कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल इस कमिटी की पूरी मदद करने लगे। दूसरे सूबों के लोगों ने भी मदद देना मंजूर किया। यह कमिटी कई उपसमितियों में बटकर काम करती रही। इसकी रिपोर्ट प्रायः तैयार हो चुकी थी। पर पूरी तैयारी होने के पहले ही कांग्रेस का सरकार से झगड़ा छिड़ गया। वह रिपोर्ट पास होकर देश के सामने न आ सकी।

बम्बई में मुझे 'ब्रोङ्को न्युमोनिया' हो गया। ज्वर बहुत बढ़ गया। खांसी भी काफी जबरदस्त हो गई। मैं वहां बिड़ला-हाउस में ठहरा था। उन लोगों ने हर तरह से मेरी शुश्रूषा का प्रबन्ध किया। एक छोटी घटना उल्लेखनीय है। उन दिनों हिटलर द्वारा निकाले गए बहुतेरे यहूदी इधर-उधर देश छोड़कर चले गए थे। इनमें कुछ डाक्टर थे, जो बम्बई आकर अपना पेशा कर रहे थे। उनमें से एक बिड़ला-हाउस में आया-जाया करता था। उसीने मेरी चिकित्सा आरम्भ की। दो-तीन दिनों तक उसकी दवा

हुई। पर अभी कुछ आराम नहीं हो रहा था। सुना कि बम्बई के कुछ मित्र डाक्टर, जिनमें श्री पुरुषोत्तम पटेल भी थे, यह जानकर कुछ रुष्ट हुए हैं कि उन लोगों को न बुलाकर एक जर्मन डाक्टर की चिकित्सा हो रही है। जब यह खबर मिली तो वे बुलाये गए। पीछे डाक्टर गिल्डर भी आये, जो उन दिनों बम्बई के एक मंत्री थे। उन लोगों की दवा होने लगी। जब मैं अच्छा न हुआ तो महात्माजी की राय हुई, और मैं भी उससे सहमत हुआ कि मैं वर्धा चला जाऊं। बम्बई की हवा मे नमी रहती है, जो मैं बर्दाश्त नही कर सकता। इसलिए मैं वर्धा चला गया। डाक्टरों की रजिश इस बात से थी कि उन लोगों के रहते किसी अनजान विदेशी डाक्टर की चिकित्सा क्यो कराई गई। इसमें उनका प्रेम टपकता था। साथ ही यह भी इससे जाहिर होता था कि वहां के डाक्टर अपने कौशल पर इतना विश्वास रखते है और इतने देशाभिमानी है कि वे मेरे-जैसे एक देश-सेवक की चिकित्सा दूसरों के हाथो देखना सहन नही कर सके। वर्धा मे पहुचकर मै तुरन्त अच्छा नही हुआ। वहां से तार देकर पटने से डाक्टर बनर्जी और डाक्टर शरण को बुलाना पड़ा। डाक्टर शरण तो नही आ सके, पर डाक्टर दामोदरप्रसाद के साथ डाक्टर बनर्जी वर्धा आये। वे दो या तीन दिनों तक वहा ठहरे। तबीयत अच्छी होने पर मै वही ठहर गया।

बम्बई में ही मालूम हुआ था कि मध्यप्रदेश के मन्त्रिमण्डल मे आपस का बहुत मतभेद हो गया है। एक-दूसरे की शिकायतें करते है। उसी समय पार्लमेण्टरी कमिटी ने निश्चय किया कि वह इस बात की जाच करेगी। उन दिनो पचमढ़ी मे सरकार रहा करती थी। इसलिए सरदार वल्लभभाई और मौलानासाहब वहां गये। मै नही जा सका; क्योकि मै बीमार था। झगड़ा प्रधान-मन्त्री डाक्टर खरे और पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र मे था। हिन्दुस्तानी मध्यप्रदेश मे मन्त्रिमण्डल बनने के पहले दो दल थे—एक मे पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र समझे जाते थे, और दूसरे मे पंडित रविशंकर शुक्ल। जिस समय १९३७में असेम्बली का चुनाव हुआ था, उसी समय एक मुकदमा पंडित द्वारकाप्रसाद के खिलाफ चलने की खबर निकली। उन्होंने वर्किंग कमिटी को खबर दे दी कि चूकि उनके विरुद्ध मुकदमे की बात चल रही है, इसलिए जबतक वह उससे निकलकर अपने चरित्र की सफाई न दे दें, तबतक वह कांग्रेस के सभी पदों से अलग रहने को तैयार हैं। वहा कोई भी काग्रेस-पार्टी का नेता नहीं हो सकता था जबतक उसे हिन्दुस्तानी विभाग के मेम्बरो की पूरी सहायता न मिले। पंडित द्वारकाप्रसाद ने डाक्टर खरे की मदद की, उनकी मदद से ही वह नेता चुने गए। जब मंत्रिमण्डल बनने का समय आया तो उनको ही गवर्नर ने मंत्रिमण्डल बनाने का आदेश

किया। जो मुकदमा पंडित द्वारकाप्रसाद पर चलनेवाला था, उसे बेबुनियाद समझकर वहां के हाकिमों ने उठा लिया। उसके बाद पंडित द्वारकाप्रसाद भी मंत्रिमण्डल में आये। इस तरह यह समझा जाता था कि उनकी और डाक्टर खरे की बड़ी मित्रता थी। बात भी ऐसी ही थी। पंडित रविशंकर शुक्ल भी मंत्री बने थे। कांग्रेस के काम में वह पंडित द्वारकाप्रसाद के प्रति-द्वन्द्वी समझे जाते थे। मंत्रिमण्डल के काम में शुक्लजी और मिश्रजी की राय बहुत-सी बातों में एक हुई। दोनों का डाक्टर खरे से मतभेद हुआ। यदि इतना ही रहता तो कोई हर्ज नहीं; क्योंकि मित्रता एक अलग चीज है और देश-सेवा-सम्बन्धी मतभेद दूसरी चीज। डाक्टर खरे ने मिश्रजी की शिकायत की और मिश्रजी ने भी डाक्टर साहब की।

इन्हीं शिकायतों को दूर करने के लिए सरदार पचमढ़ी गये। वहांपर कुछ बातें तय हुईं। आशा की गई कि मामला तय हो जायगा और दोनों काम चलाने लगेंगे। पर बात ऐसी नहीं हुई। डाक्टर खरे अपना विचार नहीं बदल सके। उन्होंने सोच लिया कि मिश्रजी के साथ उनकी नहीं निभेगी। उधर मिश्रजी के साथ काम करते-करते शुक्लजी उनके साथ अधिक मिल-जुल गए। ऐसा मालूम हुआ कि डाक्टर खरे इन दोनों को किसी-न-किसी तरह मंत्रिमण्डल से हटावेंगे। पर जो प्रयत्न इस झगड़े को हटाने का हुआ वह विफल हुआ। आपस का वैमनस्य बढ़ता ही गया। मैं अच्छा होकर वर्धा में ही आराम कर रहा था कि एक दिन अचानक खबर मिली कि झगड़े ने उग्र रूप धारण कर लिया है! पार्लमेण्टरी कमिटी और वर्किंग कमिटी की बैठक उसके दो ही दिनों के बाद होनेवाली थी। डाक्टर खरे उसके पहले ही मंत्रिमण्डल तोड़कर अपनी पसन्द का नया मंत्रिमण्डल बना लेना चाहते थे। उन्होंने इसके लिए गवर्नर की मदद ली। जब मुझे खबर मिली तो मैंने उनको एक पत्र लिखा कि वह ऐसी कोई कार्रवाई न करें—दो ही दिनों में होनेवाली पार्लमेण्टरी कमिटी और वर्किंग कमिटी का इन्तजार कर लें। वह पत्र उनके पास रात को गया। उस रात को उन्होंने मन्त्रिमण्डल का इस्तीफा देकर गवर्नर से मंजूर करा लिया और नया मन्त्रिमण्डल बना भी लिया। मेरा पत्र उनके पास किसी तरीके से रात में पहुंचने न पाया। दूसरे दिन सवेरे नया मन्त्रिमण्डल बन गया। उसमें पहले के ये दोनों मन्त्री नहीं थे। कुछ नये लोग लिये गए थे। सब बातें इतनी जल्दबाजी में रातों-रात हुईं कि नागपुर के नजदीक रहते हुए भी हमको पूरी खबर मन्त्रिमण्डल के पुनः संगठित हो जाने के बाद मिली। जब दूसरे दिन पार्लमेण्टरी कमिटी की बैठक हुई तो इसे सब लोगों ने बहुत बुरा माना। दोनों पक्षों के लोग बुलाये गए। जो नये मन्त्री बने थे, वे भी

बुलाये गए। श्री सुभाषचन्द्र बोस भी पहुंच गए थे। यद्यपि वह पार्लमेण्टरी कमिटी के मेम्बर नही थे तथापि वह काग्रेस के अध्यक्ष थे, इसलिए सबके ऊपर थे। उनकी हाजिरी मे दोनों पक्षों की बातें सुनी गईं। कमिटी का विचार हुआ कि इस तरह से नया मन्त्रिमण्डल बना लेना बेजा हुआ है, विशेषकर जब तुरत ही पार्लमेण्टरी कमिटी और वर्किंग कमिटी की बैठक होनेवाली थी। नये मंत्रिमण्डल के मन्त्रियो से कहा गया कि वे इस्तीफा दे दें। ये बाते होते-हवाते रात बहुत बीत गई थी। पर उसी समय टेली-फोन द्वारा डाक्टर खरे ने गवर्नर को खबर दे दी कि वह और उनके साथ नये मन्त्री इस्तीफा दे रहे है। दूसरे दिन उन्होंने इस्तीफा लिखकर भेज भी दिया। वैसा ही दूसरो ने किया। अब नया मन्त्रिमण्डल बनाने का निश्चय हुआ। उसमे पडित रविशंकर शुक्ल प्रधान-मन्त्री बने और पण्डित द्वारका-प्रसाद भी एक मन्त्री हुए। डाक्टर खरे उसमे नही आये। वहां की असेम्बली की कांग्रेस-पार्टी की बैठक वर्धा मे हुई, जिसमे सुभाषबाबू और हम लोग भी हाजिर थे। उसने शुक्लजी को ही अपना नेता चुना, इसलिए वही प्रधान-मन्त्री बने।

इस सारी कार्रवाई से वहा बड़ी हलचल मच गई। डाक्टर खरे बहुत गुस्से मे आ गए। उन्होंने बहुत जोरों से पार्लमेण्टरी कमिटी और महात्माजी की शिकायत की। सारी कार्रवाई की कड़े शब्दो मे निन्दा भी की। वह अ-महाराष्ट्री ब्राह्मण है। शुक्लजी और मिश्रजी उत्तर भारत के हिन्दीभाषी कान्यकुब्ज ब्राह्मण है। वहा और दूसरे स्थानो में भी महाराष्ट्री और अ-महाराष्ट्री का झगड़ा उठ खड़ा हुआ। कुछ दिनों तक ऐसा मालूम होता था कि कांग्रेस के अन्दर बड़ी भारी फूट फैल जायगी। डाक्टर खरे की कार्र-वाइयां ऐसी हुई कि कुछ दिनो बाद उनपर अनुशासन की कार्रवाई करनी पड़ी। उनको कांग्रेस मे बहिष्कृत करना पड़ा। यह झगड़ा चल ही रहा था कि एक पुस्तिका निकली। उसमे डाक्टर खरे की बातों का समर्थन किया गया था। जो कार्रवाई वर्किंग कमिटी ने की थी, उसकी निन्दा भी थी। सारी बातें अखिल भारतीय कमिटी के सामने आनेवाली थीं। सुभाषबाबू कई दिनो तक वर्धा में और उसके बाद नागपुर मे ठहरे रहे। उन्होंने एक बहुत बड़ा बयान तैयार किया, जिसमें सारी बाते लिखी हुई थीं। वह बयान एक पुस्तक के रूप में छाप दिया गया। अखिल भारतीय कमिटी की बैठक के समय वह बांटा भी गया। इस सारे मामले पर विचार हुआ। डाक्टर खरे को कांग्रेस से निकालने का निश्चय हुआ। मैं डाक्टर खरे को १९३४ से ही अच्छी तरह जानने लगा था, जब उन्होंने केन्द्रीय असेम्बली के चुनाव में डाक्टर मुंजे का मुकाबला किया था। उस समय

उन्होंने बहुत जोश के साथ कांग्रेस के पक्ष का समर्थन किया था। जब श्री अम्बेकर का स्वर्गवास हो गया तो मराठी-भाषी मध्यप्रदेश के वही नेता माने जाने लगे। हम सबके साथ उनका बहुत अच्छा व्यवहार था। प्रान्तीय असेम्बली के चुनाव के समय उनकी ही राय से सब बातें पार्लमेण्टरी कमिटी ने की। मन्त्रिमण्डल के सगठन मे भी वही बराबर मुख्य समझे जाते रहे। इस प्रकार पार्लमेण्टरी कमिटी के लोगों का उनपर विश्वास था और उनके साथ व्यवहार भी अच्छा था। जब मैं सभापति की हैसियत से उनके सूबे मे गया था तो उन्हीके यहा ठहरा था। उन्होंने ही दौरे में मेरा साथ दिया था। इस तरह वह सबके मान्य थे। पर इस मामले में, न मालूम क्यो उन्होंने ऐसा विचार बना लिया। जो झगडा उनका मिश्रजी के साथ हुआ, उसमें पार्लमेण्टरी कमिटी को भी घसीटकर उन्होंने नाथ दिया। महात्मा गाधी को भी उन्होने अछूता न छोड़ा। यह सारी घटना बड़ी दुःखद हुई, क्योंकि उनके जैसा एक योग्य आदमी काग्रेस का विरोधी बन गया। उसके बाद उन्होंने कांग्रेस को हर मौके पर नीचा दिखाने का प्रयत्न किया है। उनके ऐसे-ऐसे बयान हुए है और ऐसी-ऐसी बातें उन्होंने काग्रेस के सम्बन्ध मे कही है, जैसी शायद काग्रेस के कट्टर विरोधी भी नही कहते होंगे। हम लोगों की नजरो के सामने काग्रेस की प्रतिष्ठा और उसके अनुशासन की रक्षा के सिवा कोई दूसरी बात नही थी। सच पूछिये तो मै जितना डाक्टर खरे को जानता था और उनके प्रति जितनी श्रद्धा रखता था, उतनी मिश्रजी के प्रति नही, क्योकि मिश्रजी के साथ काम करने का उतना मौका नही आया था। डाक्टर खरे भी मिश्रजी के बडे श्रद्धालु थे और उनपर बहुत भरोसा किया करते थे। पर कुछ विषयो मे मतभेद हो जाने के कारण वह उनसे इतने बिगड़ गए कि दोनों का एक मत्रिमण्डल मे रहना असम्भव हो गया। उनको वहा से निकलवा देने पर वह तुल गए और वह निकलवाना भी गवर्नर की मदद से! जो हो, इस दुःखद घटना का परिणाम अच्छा नही हुआ। जो झगड़ा उस समय खड़ा हुआ वह अभीतक खत्म नही हुआ है—यद्यपि अब वह मराठी और अ-मराठी झगडे का रूप नही रह गया है। हां, दूसरे तरीके से समय बीतते-बीतते बातें ठण्डी पड गई। पर डाक्टर खरे कांग्रेस से अलग हो ही गए है और शायद रहेंगे ही।

: १३२ :

आसाम-उड़ीसा के मन्त्रिमंडल की कुछ बातें

अखिल भारतीय कमिटी की उसी बैठक में, जिसमें डाक्टर खरे के हटाये जाने का प्रस्ताव पास हुआ, कुछ बहस मन्त्रिमण्डलों के सम्बन्ध मे भी हुई थी। इससे यह पता चला कि कुछ लोग काग्रेस के अन्दर भी मन्त्रि-मण्डलों से नाखुश थे और चाहे जिस तरह हो उनपर कुछ-न-कुछ आरोप लगाना ही चाहते थे। पर यद्यपि उस बहस मे बहुत बाते कही गई और जो लोग अपने को वामपन्थी कहा करते थे, उन्होंने बहुत जोर लगाया, तथापि अखिल भारतीय कमिटी ने मंत्रिमण्डलो की निन्दा नही की और काम चलने दिया।

एक तरफ तो जहां मंत्रिमण्डल बन गये थे वहां इस तरह उनपर हमले किये जा रहे थे, दूसरी तरफ जहा कांग्रेसी मंत्रिमण्डल नही था, वहां कांग्रेसी मंत्रिमण्डल बनाने का प्रयत्न भी चलता रहा। आसाम उन सूबो मे है, जहां विधान के अनुसार हिन्दू और मुसलमान के अलावा अगरेजों और आदि-वासियों की खासी सख्या असेम्बली मे है। काग्रेस ने अ-मुस्लिम जगहों में काफी सफलता चुनाव के समय पा ली थी, काग्रेसी लोग ही सबसे अधिक संख्या में चुने गए थे, सारी असेम्बली मे उनकी ही पार्टी सबसे बड़ी थी; पर सारी असेम्बली में उनका अकेला बहुमत नही था। जब और काग्रेसी सूबों मे चन्दरोजा मंत्रिमण्डल बना था तब वहा भी बना था; पर और जगहों से वहा यह विभिन्नता थी कि अकेले काग्रेसी लोग वहां बहुमत नहीं रखते थे, इसलिए यदि दूसरे लोग सबके-सब मिल जायं तो वे अल्पमतवाले हो जाते थे। अतः जब कुछ महीनों के बाद दूसरी जगहों मे मंत्रिमण्डल बने, तब वहां नही बन सका और कुछ दिनों तक वहां का गैर-काग्रेसी मंत्रिमण्डल दूसरो को मिलाकर अपना बहुमत कायम रख सका। यह बहुमत स्थायी नहीं था। १९३८ के पिछले भाग मे वहा की स्थिति ऐसी हो गई कि उस मंत्रिमण्डल के साथ बहुमत नही रह गया। वहा भी ऐसा मौका आ गया कि दूसरे दलों के लोगों के साथ मिलकर कांग्रेस अपना बहुमत बना सकती थी और इस तरह कुछ दूसरे लोगों के साथ वह मंत्रिमण्डल भी बना सकती थी। ऐसी स्थिति उपस्थित होने पर वहां के लोगों ने पार्लमेण्टरी कमिटी

और कांग्रेस के सभापति की आज्ञा जाननी चाही। स्वयं सभापति सुभाषचन्द्र बोस और पार्लमेण्टरी कमिटी के सदस्य मौलाना आजाद, जिनके जिम्मे उस सूबे की देखभाल सौंपी गई थी, वहां गये। मंत्रिमण्डल बनाने के पक्ष में श्री सुभाषचन्द्र बोस बहुत जोरों से थे। पर मौलानासाहब इसे नापसन्द करते थे। मुझसे और सरदार वल्लभभाई पटेल से टेलीफोन द्वारा राय पूछी गई। हम दोनों दो स्थानों में थे। इसलिए बात करके कोई राय नहीं दे सकते थे। जो जहां था, वहीं से उसने अपनी राय दे दी। मैंने मौलानासाहब के साथ अपनी राय दी। सरदार ने सुभाषबाबू की बात मान ली। हमारे सामने प्रश्न सिद्धान्त का था। कांग्रेस ने मंत्रिपद सिद्धान्ततः लिया था। वह केवल पद के लिए पद नहीं लेना चाहती थी। जहां उसका अपना बहुमत नहीं था, वहां उसे दूसरे विचारवाले लोगों के ऊपर भरोसा करना पड़ता था। हम समझते थे कि वहां उस तरह स्वतन्त्रता और निर्भीकता के साथ काम नहीं हो सकता था, जिस तरह उन सूबों में जहां कांग्रेस के पास अपना बहुमत था। इसी बहुमत के बल पर बिहार और युक्तप्रान्त में इस्तीफा देकर मंत्रिमण्डल राजबंदियों को रिहा करा सका था। इसी बहुमत के बल पर उड़ीसा में सर जौन डेन को गवर्नर होने से रोक दिया था। क्या ऐसा अवसर आने पर आसाम में दूसरों के बल पर कांग्रेस इस तरह का कोई जबरदस्त काम कर सकेगी? इसमें संदेह था। इसलिए मैं समझता था कि वहां पद तो मिलेगा और हो सकता है कि मामूलीतौर पर मंत्रिमण्डल का काम भी चले; पर किसी गंभीर अवसर पर हम कांग्रेस की नीति को न चला सकेंगे। पर सुभाषबाबू का विचार था कि पद ले लेने से कांग्रेस की शक्ति बढ़ जायगी और जो लोग उस समय अलग थे, वे उसके साथ आ जायंगे, इसलिए पद ले लेना ही ठीक होगा। सरदार ने सभापति की बात रख दी। वहां ठीक उसी समय मंत्रिमण्डल बना, जब दो-चार दिनों के अंदर ही अखिल भारतीय कमिटी की बैठक होनेवाली थी। आसाम से लौटते रास्ते में सुभाषबाबू की तबीयत कुछ खराब हो गई। वह उस बैठक में देर करके पहुंचे थे।

ऊपर उड़ीसा का जिक्र आया है। वहां मि० डेन सिविल सर्विस के ऊंचे पदाधिकारी थे। वहां के गवर्नर छुट्टी पर जाने लगे; मि० डेन की नियुक्ति उनके स्थान पर कुछ महीनों के लिए की गई। मंत्रिमण्डल ने कहा कि जो अफसर हमारे अधीन काम करता रहा है और हो सकता है कि गवर्नरी की अवधि पूरी हो जाने पर फिर उसे हमारी अधीनता में ही काम करना पड़े, उसे गवर्नर नहीं बनाना चाहिए; क्योंकि जो आज हमारे अधीन है, वह कल हमारे ऊपर हो जाय तो उसीके अधीन हमें काम करना पड़ेगा,

यह ठीक नहीं है—काम करने में कठिनाई आ सकती है और सिविल सर्विस के लोगों पर मंत्रिमण्डल का अनुशासन ठीक नही चल सकेगा। मंत्रिमण्डल ने धमकी दी कि यदि मि० डेन गवर्नर नियुक्त किये जायंगे तो मंत्री अपने पद पर नहीं रह सकेंगे, मंत्रिमण्डल इस्तीफा दे देगा। मि० डेन से मंत्रियो का कोई व्यक्तिगत झगड़ा नही था, यद्यपि कुछ दिन पहले उनसे किसी विषय पर मतभेद हो गया था। वे इस बात का केवल सिद्धान्ततः विरोध कर रहे थे। नतीजा यह हुआ कि गवर्नर ने छुट्टी नही ली। अतः स्थानापन्न गवर्नर की नियुक्ति का मौका उस समय नही आया। दूसरे सूबो मे, जहा-कही गवर्नर ने छुट्टी ली और स्थानापन्न गवर्नर की नियुक्ति का मौका आया, उस सूबे के सिविलियन को यह पद न मिला; दूसरे सूबे से ही कोई लाया गया। खैर, सिद्धान्त की बात तो ठीक थी। पर यह विचारने की बात है कि यदि किसी सिविलियन को ही गवर्नर होना है तो चार महीनों के लिए। इतने दिनों के लिए ही अक्सर गवर्नर छुट्टी लिया करते हैं। दूसरे सूबे से किसी सिविलियन को लाकर गवर्नर बनाना सूबे के लिए कहांतक हितकर है? चार महीनो मे तो वह सूबे की हालत की वाकफियत भी नही हासिल कर सकता है। इसका नतीजा यही होगा कि वह केवल जगह टांड़कर बैठेगा, कुछ कर नही सकेगा। सबसे अच्छा तरीका तो यह होगा कि उसी सूबे का कोई गैर-सरकारी आदमी गवर्नर बन जाय, जो सूबे की सब बाते जानता हो और अन्य प्रकार से भी योग्य हो। पर यह तो एक छोटी त्रुटि विधान में है—इससे बहुत बड़ी-बड़ी त्रुटिया उसमे है, जिनके कारण वह सारा-का-सारा बदलना ही पड़ेगा।

: १३३ :

त्रिपुरी-कांग्रेस के पहले और बाद

अखिल भारतीय कमिटी की बैठक समाप्त हुई, पर अभी वर्किंग कमिटी के सदस्य वही थे—जब यूरोप की खबर आई कि हिटलर चेकोस्लोवाकिया पर चढाई करना चाहता है और इगलैंड के प्रधान मंत्री मि० चेम्बरलेन वहा हिटलर से मिलने गये है। जो समाचार मिले, उनसे इसका भय हुआ कि इगलैंड और जर्मनी मे कही युद्ध न छिड जाय। वर्किंग कमिटी इसीलिए वहा ठहर गई और इस बात पर विचार करने लगी कि लड़ाई यदि छिड़ जाय तो कांग्रेस को क्या करना चाहिए। इससे शक नही मालूम होता था कि हिटलर का चेकोस्लोवाकिया पर चढाई करना अनुचित है। यह उतना ही अनुचित है जितना इटली का अबीसीनिया पर चढाई करना अनुचित था—यद्यपि यहा हिटलर को यह कहने का बहाना था कि कुछ जर्मन चेकोस्लोवाकिया में है, जिनके साथ वहा की सरकार का बर्ताव ठीक नही था और जो जर्मनी के साथ रहना चाहते थे। चेकोस्लोवाकिया मे तीन प्रकार के लोग बसते थे—कुछ जर्मन, कुछ चेक, कुछ स्लावेक। यह देश प्रथम यूरोपीय महासमर के पहले आस्ट्रिया के साम्राज्य के अधीन था। उस युद्ध के बाद यह स्वतन्त्र हुआ था। वह साम्राज्य जब टुकड़े-टुकड़े किया गया था, तब यह एक टुकड़ा अलग स्वतन्त्र देश के रूप मे कायम कर दिया गया था। जिस समय अबीसीनिया की लड़ाई चल रही थी और इटली उसपर आक्रमण करके उसे अपने कब्जे मे कर लेने के प्रयत्न में लगा था, कांग्रेस ने अबीसीनिया के साथ हमदर्दी दिखाई थी। हमदर्दी तो ब्रिटिश-सरकार भी दिखलाती थी! कांग्रेस ने निश्चय किया था कि साम्राज्य की लड़ाई में वह ब्रिटेन की मदद नही करेगा। उस समय भी प्रश्न उठा था कि यदि ब्रिटिश साम्राज्य अबीसीनिया-जैसे कमजोर देश की मदद के लिए इटली से युद्ध ठान दे तो कांग्रेस मुश्किल मे पड़ेगी; क्योंकि कांग्रेस को अबीसीनिया की सहायता अभीष्ट थी, पर ब्रिटिश साम्राज्य की सहायता नहीं। वही प्रश्न इस समय फिर उपस्थित हुआ। साथ ही, यह भी विचारने की बात थी कि कांग्रेस क्या मदद दे सकती है। एक तो कांग्रेस ने अहिंसा के सिद्धान्तों को मान लिया है। उस सिद्धान्त को मानते हुए वह सशस्त्र युद्ध में मदद कर

सकती है या नहीं, यह जटिल प्रश्न उपस्थित होता था। साथ ही, हम यह भी देखते थे कि काग्रेसी मंत्रिमण्डल कई सूबों में काम कर रहे हैं और उनका सारा काम अहिंसा के सिद्धान्त पर नहीं चल रहा है। कही-कही बलवा-फसाद के समय कांग्रेसी मत्रिमण्डल के आधिपत्य में भी गोली चलानी पड़ी थी। पुलिस और जेलखाने अपने-अपने काम कर ही रहे थे। भारतीय शासन में कांग्रेस का अधिकार नही था, पर वहां भी उसकी ओर से फौज का विरोध इस आधार पर कभी नही किया गया था कि हम अहिंसा के माननेवाले है और सशस्त्र फौज हमको नही चाहिए। इसके अलावा, यदि सचमुच लड़ाई छिड़ जाय तो वह हमारे काबू के बाहर की चीज होगी और कांग्रेस को मजबूरन उसकी मदद या विरोध करना ही पड़ेगा। ये सब प्रश्न एकसाथ अचानक हमारे सामने आ गए। महात्माजी भी वहां उपस्थित थे, पर उन दिनों पं० जवाहरलाल नेहरू यूरोप गये हुए थे। इसलिए महात्माजी की राय तो मिल सकती थी, पर जवाहरलालजी की राय नहीं मालूम हो सकती थी। सब पहलुओं पर विचार होता रहा। विशेषकर यह सवाल तो सामने था ही कि हम कांग्रेसी मंत्रिमण्डल को क्या आदेश देगे। उसी समय वर्किंग कमिटी के मेम्बरों के बीच इस विषय पर मतभेद मालूम हुआ। पर बहुत कोशिश के बाद भी समापति की क्या राय थी और वह क्या आदेश देते, हम नही जान सके। हम अभी विचार कर ही रहे थे कि उधर से खबर आ गई कि उस समय इंगलैंड और फ्रान्स ने किसी तरह जर्मनी के साथ अपनी बात बना ली और अब लड़ाई नहीं छिड़ेगी।

यह वर्ष भी प्राय: समाप्त होने पर आ गया। इस वर्ष मे कांग्रेस के लोग विशेषकर मंत्रिमण्डल के काम मे ही लगे रहे। जहा-तहा काग्रेस-कमिटियो मे भी झगड़े हुए। काग्रेस के चुनाव बहुत जोश के साथ लडे गए। इन दो-तीन वर्षों में कांग्रेसी मेम्बर खूब बने; क्योंकि कार्यकर्ताओं ने इसमें बहुत जोर लगाया। पहले तो कुछ दिनों तक काग्रेस गैर-कानूनी हो गई थी, इसीलिए जब वह फिर काम करने लगी तो लोगो मे बहुत जोश था। उसके बाद नये विधान के अनुसार असेम्बली का चुनाव होनेवाला था। कांग्रेस की ओर से नामजदगी के लिए लोगों ने उत्साह दिखलाया। कुछने यह भी शायद सोचा कि उनके विचारवाले यदि कांग्रेस में आ जायंगे तो वे अपने विचारवालों को नामजद करा सकेंगे। इसी तरह के और कारण भी होते गए और कांग्रेस की मेम्बरी बहुत बढ़ गई थी। अब कांग्रेस के प्रतिनिधियो, अखिल भारतीय कमिटी और कांग्रेस के सभापति के चुनाव का समय भी नजदीक आ गया। कुछ लोगों का विचार था कि इस बार मौलाना अबुल-कलाम आजाद ही सभापति चुने जायं। कुछ लोग सुभाषबाबू को चाहते थे

कि वही फिर चुने जायं। सुना गया कि सुभाषबाबू की भी इच्छा थी कि वह दुबारा चुने जायं। पर यह बात वर्किंग कमिटी के सदस्यों के सामने नहीं आई थी। हरिपुरा-कांग्रेस के पहले सबकी राय से और विशेषकर महात्माजी की अनुमति तथा आशीर्वाद के साथ सुभाषबाबू सर्व-सम्मति से चुने गए थे। यदि वह अपनी इच्छा महात्माजी से प्रकट करते और हम सब मिलकर राय करते तो शायद कोई रास्ता निकल गया होता और बात आगे न बढ़ती। पर उन्होने या उनके समर्थकों ने ऐसा नहीं किया। पीछे इस कारण बहुत बुरी तरह झगड़ा उठ खड़ा हुआ।

१९३९ के मार्च में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन मध्यप्रदेश मे, जबलपुर के नजदीक त्रिपुरी मे, होनेवाला था। जनवरी में वर्किंग कमिटी की एक बैठक बारदोली मे हुई। महात्माजी इधर कई वर्षों से हर साल के जाड़े का एक महीना बारदोली मे बिताते है। उन दिनो वह वहीं थे। इस लिए बैठक भी वही की गई। जहातक मुझे स्मरण है, वहां कोई विशेष महत्व का प्रश्न उपस्थित नही था। वहा से रवाना होने के समय हमने जो थोड़ी-बहुत आपस में चर्चा की, उससे मैंने समझा कि इस बार मौलाना साहब को ही सभापति हम लोग चुने। सुभाषबाबू से इस सम्बन्ध में कोई बात नही हुई थी। शायद उन्होंने महात्माजी से भी बाते नही की। पर हमने यह सुना कि वह जहा-कहीं गये थे, अपने विचारवाले कांग्रेसी लोगो से वह अपने सम्बन्ध मे बाते करते थे। महात्माजी से मौलाना की बाते हुई और वह राजी भी हुए कि वही सभापति चुने जाय। पर हमने सुना कि पीछे उन्होने अपनी राय बदल दी और महात्माजी से अपनी अनिच्छा प्रकट की। मै पटने मे पहुंच गया था। सरदार वल्लभभाई का तार मिला कि डाक्टर पट्टाभि सीतारमैया के समर्थन के लिए वक्तव्य पर मेरा दस्तखत चाहिए। मैने मजूर कर लिया। तब मुझे मालूम हुआ कि डा० पट्टाभि ही चुने जाने चाहिए। यह निश्चय सरदार ने महात्माजी की सम्मति से किया था। अब बात जाहिर हो गई कि मौलाना सभापति होना नही चाहते और मुकाबला डा० पट्टाभि सीतारमैया और श्री सुभाष बोस में है।

यों तो हर साल दो-चार नाम सभापति के चुनाव के लिए उपस्थित किये जाते हैं और उन्हीमे से एक चुना जाता है; पर इधर कई वर्षों से कभी दो का मुकाबला नही होता था। प्रायः सभी सूबों के लोग, योही बिना किसीके बतलाये, मान लेते थे कि इस बार अमुक व्यक्ति को चुनना चाहिए; वही चुना भी जाता था। जो दूसरे नाम रहते थे, उनके सम्बन्ध में कोई खास प्रयत्न नही किया जाता था। जहां-तहां कुछ वोट उनको मिल भी जाते तो उसका अर्थ कोई यह नही लगाता कि दूसरे के मुकाबले में एक

आदमी चुना गया है। इस बार चुनाव का रूप दूसरा हो गया। मालूम हुआ कि दो आदमियों मे मुकाबला है। इतना ही नही, कुछ ऐसा भी मालूम हुआ कि एक ओर उस विचार के लोग है, जो गाधीजी के विचारों से सहमत है और दूसरी ओर वे लोग है जो गांधीजी के कार्यक्रम मे विश्वास नही रखते। यद्यपि गांधीजी बम्बई-काग्रेस के समय से ही कांग्रेस से अलग हो गए थे तथापि अभीतक उनकी ही विचारधारा कांग्रेस में काम कर रही थी, सब बातों में उनकी राय से ही काम होता आ रहा था। जब कभी मतभेद होता तो वही सब मुश्किलो का हल निकालने और अन्त मे सभी झगड़ों का वही निपटारा करते। इस बार मालूम हुआ कि मानो कुछ नया होनेवाला है और इसीलिए ऐसे आदमी का चुनाव होना चाहिए जो अपना कार्यक्रम खुद बनावेगा और अपने बनाये रास्ते से काग्रेस को ले चलना चाहेगा। ये बाते थी तो सही, पर चुनाव के समय स्पष्ट नही हुई। गाधीजी ने अपनी ओर से कोई वक्तव्य नहीं निकाला। यदि मौलाना रह गए होते तो इसमे कोई सन्देह नही था कि वह बहुत बड़े बहुमत से चुने जाते, क्योंकि साधारण काग्रेसी लोग उनको चाहते थे और वह गांधीजी के कार्यक्रम से अलग होना भी नही चाहते थे। उन्होंने यह नही समझा कि इस चुनाव मे डाक्टर पट्टाभि सीतारमैया एक विचारधारा और एक कार्यक्रम के प्रतीक-स्वरूप चुनाव के उम्मीदवार है। खैर, चुनाव हुआ। नतीजा यह हुआ कि एक बड़े बहुमत से श्री सुभाषचन्द्र बोस चुने गए।

कई बरसो से काग्रेस के कुछ पहले वर्किंग कमिटी की बैठक हुआ करती है, जिसमे काग्रेस के समय होनेवाली विषय-निर्वाचिनी के लिए प्रस्तावो का मसविदा तैयार किया जाता है। इस बार भी वैसा ही होना था। वर्किंग कमेटी मे जो लोग थे, उनमे बहुत ज्यादा ऐसे ही लोग थे, जो सुभाष-बाबू की राय से—जहातक वह मालूम थी—सहमत नही थे। हमने सोचा कि अच्छा हो यदि सुभाषबाबू अपने विचार के लोगों से सलाह करके प्रस्ताव तैयार करे; क्योंकि उनको ही काग्रेस का भार लेना होगा और उनके लिए भी, जो गाधी-विचारधारा मे विश्वास करनेवाले थे, यही अच्छा होगा। वर्किंग कमेटी के सदस्य रहकर और उन प्रस्तावों के तैयार करने मे मदद देकर यदि हम काग्रेस के अधिवेशन के समय उन प्रस्तावों का विरोध करेगे तो यह हमारे लिए अनुचित होगा। सुभाषबाबू को भी हमारी हाजिरी मे सकोच होगा और अपनी इच्छा के अनुसार वह प्रस्ताव नही बनवा सकेगे; क्योंकि वर्किंग कमिटी मे हम लोगों का बहुमत था। इसलिए हमने वर्किंग कमिटी से इस्तीफा दे दिया और इस तरह उनको पूरा मौका दे दिया कि वह अपनी इच्छा के अनुसार अपनी वर्किंग कमिटी बना लें और उसीकी

मदद से प्रस्ताव भी तैयार करें। ऐसा होने से, उन प्रस्तावों को देखने के बाद यदि हम भी उनसे सहमत न होंगे, तो कांग्रेस मे उनका विरोध करने के लिए स्वतन्त्र रहेंगे। प्रजातन्त्र का साधारण नियम भी यही है कि जिसके साथ बहुमत हो, वही उसके चलाने का भार ले और बहुमत की मर्जी के मुताबिक कार्यक्रम बनावे।

हम लोग वर्धा गये, जहां वर्किंग कमिटी होनेवाली थी। गये भी समय पर ताकि सब बाते मुकाबले मे हो जायगी और हमारी इस कार्रवाई मे कोई गलतफहमी नहीं होगी। पर अभाग्यवश सुभाषबाबू बीमार हो गए, वहा गये ही नहीं। वर्किंग कमिटी के सदस्यों का इस्तीफा ज्यों-का-त्यों पड़ा रहा। यदि चाहते तो उनकी गैरहाजिरी मे हम अपने विचार के अनुसार प्रस्ताव तैयार कर लेते और उन्हे विषय-निर्वाचिनी के सामने उपस्थित करने का प्रयत्न करते। पर हमने यह मुनासिब नही समझा; क्योंकि सभापति के चुनाव का अर्थ हमने यह समझा कि प्रतिनिधियों का बहुमत सुभाषबाबू से सहमत है और हमारे लिए उचित है कि हम उनको पूरा मौका दे, ताकि वह जिस तरह मुनासिब समझे, काम चलावे। नतीजा यह हुआ कि वर्किंग कमिटी की बैठक स्थगित करनी पडी। हम त्रिपुरी का इन्तजार करने लगे। कांग्रेस के लोगों मे इस चुनाव और उसके बाद की घटनाओं के सम्बन्ध में चर्चा और वाद-विवाद हो रहा था।

उधर काठियावाड में एक दूसरी परिस्थिति पैदा हो रही थी। वहां कई रियासतों मे प्रजा और राजा के बीच मन-मुटाव हो गया था। सरदार वल्लभभाई इसमे दिलचस्पी ले रहे थे। वहा के लोग उनकी राय मे ही काम कर रहे थे। कांग्रेस की नीति अभीतक यही थी कि वह स्वयं सीधे तौर पर रजवाड़ों के मामलों मे हस्तक्षेप नही करेगी; पर देशी राज्यों की जनता की प्रजातन्त्रात्मक इच्छा के साथ वह सहानुभूति रखती है और कांग्रेसी लोग व्यक्तिगत रूप मे उनकी सहायता भी कर सकते है। इसी नीति के अनुसार डा० पट्टाभि सीतारमैया रियासती प्रजामण्डल के सभापति हुए थे और पण्डित जवाहरलालजी भी सभापति। महात्माजी तो मानो सभी बातों मे पूछे जाते थे और अपनी सम्मति तथा आदेश मे उनको चलाते थे। गुजरात और काठियावाड की रियासतों में सरदार वल्लभभाई बडी तत्परता और लगन से काम करते थे। जहा जरूरत पड़ती वहां जाते भी थे। सेठ जमनालालजी विशेषकर राजपूताने के रजवाड़ों के सम्बन्ध में काम करते और प्रजामण्डल स्थापित कराने मे सहायता देते।

इस समय काठियावाड़ की रियासत राजकोट मे जो राजा-प्रजा में अनबन हुई, उसमें सरदार वल्लभभाई पड़े। उनके मध्यस्थ होने से कुछ बातें

तय हुई, जिन्हें राजा ने मंजूर किया। इस समझौते से महात्माजी भी सहमत थे। पीछे राजा और राज्याधिकारी समझौते की शर्तों को पूरा करने से मुकर गए। महात्माजी को यह बात बुरी मालूम हुई। वह प्रतिज्ञा और वचन की बड़ी मर्यादा रखते हैं। किसीकी की हुई प्रतिज्ञा को भंग होते देख उनको आन्तरिक कष्ट होता है। विशेषकर सार्वजनिक मामलों में की गई प्रतिज्ञाओं की प्रतिष्ठा और भी ज्यादा है। उन्होंने चाहा कि जो बात एक बार तय हो गई है, उसे रियासत को पूरा करना चाहिए। इसके लिए उन्होंने पूरा प्रयत्न किया। स्वयं राजकोट चले गये। जब वह सफल नहीं हुए तो उन्होंने अनशन आरम्भ कर दिया। अनशन उनके लिए कोई नई चीज नहीं थी। जब वह दक्षिणी अफ्रीका से लौटकर हिन्दुस्तान में काम शुरू कर रहे थे तब अहमदाबाद के मजदूरों ने हड़ताल की थी। उस हड़ताल में मजदूरों ने प्रतिज्ञा की थी कि जबतक उनकी मांगे पूरी न होंगी, वे काम नहीं करेंगे। प्रतिज्ञा करते समय शायद मजदूरों ने प्रतिज्ञा का महत्व नहीं समझा था। भारतवर्ष के लिए भी गांधीजी बिलकुल नये थे। किसीने प्रतिज्ञा पर इतना जोर उस समय तक नहीं दिया था। जब मजदूरों को कष्ट होने लगा तो वे काम पर वापस जाने लगे। गांधीजी इस बात को बर्दाश्त नहीं कर सके। उन्होंने अनशन शुरू कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि एक ओर मजदूर भी अड़ गए और दूसरी ओर मिल-मालिक भी नरम हो गए। संतोषप्रद समझौता हो गया। उसी नीति के अनुसार उन्होंने राजकोट-राज्य से प्रतिज्ञा पूरी कराने के लिए अनशन आरम्भ कर दिया। यह अनशन ठीक उन्हीं दिनों में हुआ जब त्रिपुरी में कांग्रेस हो रही थी। इसी कारण गांधीजी त्रिपुरी मे नहीं आ सके। वहां जो कुछ हुआ, उनकी गैरहाजिरी में ही हुआ।

गांधीजी के अनशन का नतीजा यह हुआ कि इस मामले में वायसराय लार्ड लिनलिथगो पडे। एक तरह से उस समय मामला तय हो गया। गांधीजी ने अन्न-ग्रहण किया; पर उन्होंने इस अनशन से मार्मिक नैतिक सिद्धान्त निकाले, जिनका जिक्र उन्होंने अधिकतर 'हरिजन' साप्ताहिक में किया। उनका विचार हुआ कि यह अनशन अहिंसात्मक नहीं था। उन्होंने पुनर्विचार के बाद अपनी भूल समझी और इस बात को प्रकाशित भी कर दिया। जिस सूक्ष्मता के साथ वह ऐसे नैतिक प्रश्नों पर विचार करते हैं और जहां-कहीं उनके हृदय में किसी विषय की कोई कार्रवाई बाल-भर भी सत्य से हटी हुई मालूम होती है, उसे तुरन्त स्वीकार करके उससे बाज आने में जरा भी नहीं हिचकते। यह वही करते हैं और कर सकते हैं; दूसरा कोई राजनैतिक पुरुष इन विषयों पर उस उच्च नैतिक दृष्टिकोण से न तो नजर

डालता है और न छोटी-से-छोटी त्रुटि के कारण कार्यक्रम को बदल देता है।

त्रिपुरी-कांग्रेस का अधिवेशन एक अजीब और दुखद स्थिति में हुआ। चुनाव के बाद समाचार-पत्रों में जो वाद-विवाद हुआ, उससे आपस में काफी कटुता आ गई थी। सुभाषबाबू के समर्थक हम लोगों पर यह दोषारोपण कर रहे थे कि उनके बहुमत से चुने जाने के कारण हम लोग रुष्ट हो गए हैं, उनको नीचा दिखाना चाहते हैं, इसीलिए हमने वर्किंग कमिटी से इस्तीफा दे दिया है और हर तरह उनके रास्ते मे अड़गा लगा रहे हैं। हम यह समझते थे कि यदि सचमुच बहुमत उनके साथ है तो कांग्रेस चलाने का पूरा भार उनको उठाना चाहिए और ऐसे ही लोगों की वर्किंग कमिटी बनाकर कार्यक्रम निश्चित करना चाहिए जो उनसे पूरी तरह सहमत हों; हम उनसे बहुत बातों मे सहमत नही थे और हमारे लिए उनके साथ मिलकर काम करना कठिन था—यदि सिद्धान्त और कार्यक्रम मे हमारे साथ उनका मतभेद नही था तो उनको चुनाव मे लड़ना ही उचित नही था—यदि उनके साथ बहुमत नही था और वह लोगो की गैर-समझ के कारण अथवा किसी दूसरे कारण से चुने गए थे तो वह चुनाव ही गलत था। जो हो, हम चाहते थे कि बात साफ हो जाय। हम नही चाहते थे कि कार्यक्रम वह और उनके विचार के लोग बनावे, और उसकी जवाबदेही हमारे सिर पर रहे; हम यह भी न कह सके कि हम उसमे सहमत नही हैं। इन्हीं विचारों से हमने कांग्रेस के जल्से से पहले ही इस्तीफा दे दिया था। पर जैसा ऊपर कहा गया है, वह इस्तीफा मजूर नही हुआ; त्रिपुरी-कांग्रेस के समय पुरानी वर्किंग कमिटी बनी रही।

त्रिपुरी मे अधिवेशन के पहले और अधिवेशन के समय आपस मे बहुत कशमकश थी। कार्यकर्ताओं मे तीव्र मतभेद था। दुर्भाग्यवश सुभाषबाबू बीमार भी थे। त्रिपुरी मे वह खिन्नावस्था मे पहुचे थे। वहां की स्वागत-कारिणी ने बहुत बड़े समारोह का प्रबन्ध किया था। सभापति के जलूस के लिए सारे सूबे से उतने हाथी जमा किये थे, जितने वर्षों से कांग्रेस के अधिवेशन होने जा रहे थे। बहुतेरे हाथी उस सूबे के रजवाड़ों के थे। प्रतिनिधियों के रहने आदि का भी अच्छा प्रबन्ध हुआ था। सभापति के लिए एक अलग ही कैम्प था, जिसमे काफी लोग ठहरे थे। वर्किंग कमिटी के सदस्य दूसरे कैम्प में ठहराये गए थे और प्रतिनिधि अपने-अपने सूबे के लिए बने कैम्पों में ठहरे थे। प्रतिनिधियों के कैम्पो में गरमागरम बहस चल रही थी। वर्किंग कमिटी की बाजाब्ता बैठक होनी भी कठिन थी; क्योंकि मनोनीत सभापति बीमार थे और आपस का मनमुटाव भी काफी बढ़ गया था। हमने वहां भी बहुत प्रयत्न किया कि मनोनीत सभापति

सभापति नई कार्यकारिणी बना ले और हम लोगों को मुक्त कर दें; ताकि हम स्वतन्त्रतापूर्वक काग्रेस के काम मे भाग ले सकें। पर ऐसा नही हुआ। जो कार्यक्रम वह देना चाहते थे, वह पहले तो हमको पूरा मालूम ही नहीं था और जहांतक मालूम था, हम उससे सहमत नही थे। ऐसी अवस्था मे कार्यकारिणी को अपना प्रस्ताव तैयार करना पड़ा। उसमे हमने सारी स्थितिका दिग्दर्शन कराते हुए यही कहा कि सभापतिजी यदि चाहें तो अपनी मर्जी के अनुसार कार्यकारिणी बनाकर अपना कार्यक्रम कांग्रेस मे मंजूर करा ले, और यदि वह ऐसा करने को तैयार नही है तो कार्यक्रम और कार्यकारिणी गाधीजी की राय से बनावे। इन दोनो मे से वह कोई भी नही करना चाहते थे; क्योंकि वह जानते थे कि यद्यपि बहुमत मे वह चुने गए है तथापि उनके कार्यक्रम को खुली काग्रेस मजूर नही करेगी। ऐसी स्थिति मे उनको या तो फिर गांधीजी के कार्यक्रम को स्वीकार करके उसीके अनुसार चलना होगा या इस्तीफा देना पडेगा। वह गाधी-मतवालो के कार्यक्रम को भी स्वीकार नही करना चाहते थे और उनको छोडना भी नही चाहते थे। वह चाहते थे कि वे लोग उनके कार्यक्रम की जवाबदेही ले और उसे चलावे। हम लोगो मे से कुछ आदमी जब-तब जाकर इन बातो के सम्बन्ध मे उनसे परामर्श करते; पर कोई रास्ता न निकला और अन्त में यही निश्चय हुआ कि हम लोग अपना प्रस्ताव विषय-निर्वाचिनी समिति के सामने रख दें—सभापति जो उचित समझ करें।

विषय-निर्वाचिनी की बैठक मे सुभाषबाबू अस्वस्थावस्था मे किसी तरह लाये गए। वह मंच पर लेटे रहे। उनकी पूजनीया माता और उनके परिवार की लड़कियां उनकी देखभाल करती रही। उनके भाई डाक्टर सुनील बोस तथा दूसरे डाक्टर भी बराबर उन्हे देखते रहे। उन्होंने लेटे-लेटे छोटा-सा भाषण भी दिया जिसमें अपनी राय और अपना दृष्टिकोण बतला दिया। हम लोगो का प्रस्ताव भी रखा गया और बहुमत से वही स्वीकृत हुआ। बात स्पष्ट हो गई कि विषय-निर्वाचिनी समिति मे, जिसके सदस्य अखिल भारतीय काग्रेस कमिटी के सदस्य ही हुआ करते है, उनका बहुमत नहीं है और उन्ही लोगों के साथ अखिल भारतीय कमिटी के रूप मे जबतक दूसरा अधिवेशन न हो और नये सदस्य न चुन लिये जाय, सभापति को काम करना होगा। पर अभी कांग्रेस के खुले अधिवेशन मे प्रतिनिधियों का क्या रुख होगा—मालूम नहीं था। हम जानते थे कि वहां भी बहुत बड़ा बहुमत हमारे साथ होगा, तो भी, जबतक अधिवेशन न हो ले, इसको कोई निश्चित रूप से नहीं कह सकता था। अब अधिवेशन के समय दो प्रस्ताव पेश होंगे—एक सभापति की ओर से, दूसरा हम लोगों की ओर

से, और यही देखना था कि खुले जलसे में क्या नतीजा निकलता है।

खुले अधिवेशन का समय आ गया। सुभाषबाबू अधिवेशन में शरीक नहीं हुए। इसलिए उनके स्थान पर मौलाना अबुलकलाम आजाद बैठे। यह तभी हुआ जब बहुत इन्तजार के बाद भी मनोनीत सभापति नहीं पहुचे। उनकी अस्वस्थता का हाल सब लोगों को मालूम था और वहां भी सब बातें बता दी गई। अधिवेशन आरम्भ हुआ। सभापति का भाषण पढ़कर सुना दिया गया। मिस्र से कुछ प्रतिनिधि कांग्रेस देखने आये थे, उनका स्वागत किया गया। उन्होंने मिस्र की ओर से कांग्रेस के प्रति और भारत के आजादी-आन्दोलन के साथ सहानुभूति दिखलाई। उसके बाद बाजाब्ता कार्यक्रम होने को था जब कुछ लोगों की ओर से कहा गया कि सभापति की गैरहाजिरी में प्रस्ताव न पेश किया जाय। सारे देश के लोग एकत्र थे। इतने बड़े अधिवेशन को स्थगित करना ठीक नहीं मालूम पड़ा। सभापति ने कहा कि प्रस्ताव उपस्थित कर दिया जायगा और ज्यादा बहस तथा मत-प्रदर्शन दूसरे दिन होंगे, जब आशा की जाती थी कि सभापति आ जायंगे। उनकी इस बात को कुछ लोगों ने पसन्द नहीं किया। कुछ लोगों ने शोर मचाना शुरू किया। शोर करनेवालों की सख्या बहुत नहीं थी। पर बड़ी सभा को भी थोड़े लोग गड़बड़ी में डाल दे सकते है। उस समय प० जवाहरलालजी मच पर खड़े थे। उन्होंने लोगों को शान्त करने का पूरा प्रयत्न किया। पर शोर मचानेवाले शान्त होने के बदले अपने स्थान से आगे बढ़ने लगे और मच के नजदीक आ पहुचे तथा अधिक शोर मचाने लगे। जवाहरलालजी अपने स्थान से हटे नहीं। वह लाउड-स्पीकर द्वारा पचास हजार उपस्थित जनता से और दूसरे प्रतिनिधियों से आग्रह करते रहे कि वे अपने-अपने स्थान पर शान्त बैठे रहे। इसका नतीजा यह हुआ कि जो थोड़े लोग शोर मचा रहे थे, वे आगे तो बढ़े, पर उनका साथ दूसरों ने नहीं दिया और उस समूह में वे मुट्ठी-भर दीखने लगे। वे मंच के नजदीक पहुचकर कुछ देर तक शोर करते रहे; पर जवाहरलालजी अपने स्थान से डिगे नहीं। अन्त में वे लोग थककर चुप हो गये। उसके बाद सभा की कार्रवाई ठीक चली। दोनों प्रस्ताव उपस्थित कर दिये गए। बहस और मत लेने की बात दूसरे दिन के लिए रख छोड़ी गई।

हमने देखा कि इस प्रदर्शन से उपस्थित जनता और दूसरे प्रतिनिधि रुष्ट हुए। जिन लोगों ने प्रदर्शन द्वारा जनता और प्रतिनिधियों को अपनी ओर खींचने की बात सोची थी उनका प्रयत्न केवल निष्फल ही नहीं हुआ, बल्कि उनके लिए हानिकारक भी हुआ; क्योंकि जो थोड़े लोग उनका साथ भी देनेवाले थे वे भी उनकी इस कार्रवाई से रंज होकर दूसरी ओर

चले गये। दूसरे दिन इस विषय पर विचार करने के लिए अधिवेशन उस खुले पंडाल में न करके विषय-निर्वाचिनी के खीमे में किया गया। वहां केवल प्रतिनिधि ही आने दिये गए जिससे मत लेने में सुविधा हो और किसीको शिकायत न रह जाय। वहां पूरी बहस के बाद मत लिया गया। बहुत बड़े बहुमत से हम लोगोंवाला प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। खुले अधिवेशन में दूसरे प्रस्ताव, जिनके सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं था, पास करके अधिवेशन समाप्त हुआ।

अधिवेशन तो समाप्त हुआ पर कटुता और भी बढ गई। किसी बात को हम तय नहीं कर सके। कांग्रेस के अधिवेशन ने ऐसा प्रस्ताव स्वीकार किया, जिसको सभापति नहीं चाहते थे। इतना ही नहीं, उसने सभापति के प्रस्ताव को नामंजूर कर दिया। अब प्रश्न यह था कि सभापति क्या करते हैं। यदि उस प्रस्ताव को वह मान लेते हैं तो उनको नई कार्यकारिणी ऐसी बनानी होगी, जिसपर गांधीजी का विश्वास हो और जिससे वह सहमत भी हों। त्रिपुरी में बीमार रहने के कारण सुभाषबाबू ने वहां नई कार्यकारिणी नही बनाई, जैसा सभापति किया करते है। वह तथा हम सब लोग अपने-अपने स्थान को वापस गये।

त्रिपुरी में जो निश्चय हुआ, उसके अनुसार सुभाषबाबू काम नहीं करना चाहते थे। उनका स्वास्थ्य भी ऐसा नही था कि इस विषय में कुछ दिनो तक उनके साथ विचारकर कोई फैसला किया जा सके। शायद महात्माजी के साथ उनका कुछ पत्र-व्यवहार होता रहा, पर कोई बात तय नही हो पाई। उन्होंने अखिल भारतीय कमिटी की बैठक करनी चाही, जो कलकत्ते में होनेवाली थी। उसके पहले मैं उनसे एक बार उनकी बीमारी की हालत मे, झरिया के जामादूवा-कोलियरी मे जाकर, मिला भी जहां वह अपने भाई के साथ स्वास्थ्य सुधार रहे थे। पर मुझसे कोई खुलकर बाते नही हुई। अखिल भारतीय कमिटी कलकत्ते में हुई। महात्माजी भी कलकत्ते गए, यद्यपि वह कमिटी की बैठक में शरीक नहीं हुए। महात्माजी सोदपुर के खादी-प्रतिष्ठान में ठहरे और हम लोग शहर में, सुभाषबाबू और महात्माजी में कई बार बातें हुईं, जिनमें हम भी अक्सर शरीक रहे। पर कोई नतीजा नहीं निकला। साफ हो गया कि सुभाषबाबू सभापति नहीं हो सकेंगे, क्योंकि अखिल भारतीय कमिटी का बहुमत उनके साथ नही था। अब प्रश्न हुआ कि सभापति बने कौन। सरदार वल्लभभाई से सुभाषबाबू तथा दूसरे लोग भी असन्तुष्ट थे; क्योंकि वह सबसे साफ-साफ बातें करते थे। और किसी की खुशामद करके उसे सन्तुष्ट करने की कला कभी उन्होंने सीखी ही नही है। पं० जवाहरलालजी इन सारी बातों से कुछ ऊब-से गये थे। यद्यपि उनके

सामने भी कोई दूसरा रास्ता नजर नही आता था, तथापि वह सभापति का पद लेना पसन्द नही कर सकते थे। मौलाना अबुलकलाम आजाद हम लोगों के विचारो से पूरा सहमत थे; पर दुर्भाग्यवश प्रयाग-स्टेशन प्लेट-फार्म पर गिर जाने से पैर के जख्मी होने के कारण चारपाई पर पड़े थे। उनपर भार डालना मुनासिब नही मालूम होता था और इस अस्वस्थता में वह उसे स्वीकार भी नही करते।

लोगो का खयाल हुआ कि सुभाषबाबू के इस्तीफा देने पर मैं ही सभापति बनाया जाऊं। मुझे यह बात बिलकुल पसन्द नही थी। एक तो मैं इस तरह के झगड़े से हमेशा बचना चाहता हूं—मै समझता था कि जबतक फिर कांग्रेस न हो और नया सभापति न चुन लिया जाय तबतक गड़बड़ी मचती ही रहेगी और मैं इस झंझट को नही सभाल सकूगा, क्योंकि मेरा मिजाज ही ऐसा नही है कि झगड़े कर सकू; दूसरे त्रिपुरी के बाद बिहार मे ही कांग्रेस आमन्त्रित थी और मुझे उसके लिए भी प्रबन्ध करना था, मुझे उसीमें समय लगाना पड़ेगा, और यदि मैं अखिल भारतीय काम में ही फंसा रहा तो अपने सूबे का काम बिगड जायगा। इन सब विचारों से मैं नही चाहता था कि सभापति मैं बनाया जाऊ। पर जब महात्माजी ने दूसरा कोई उपाय न देखकर मुझे आज्ञा दी कि मुझे यह भार उठाना ही पड़ेगा तब मै इन्कार नही कर सका।

अखिल भारतीय कमिटी की पहले दिन की बैठक किसी तरह समाप्त हुई, जिसमें कोई विशेष काम नही हुआ। हम सब जब पंडाल से अपने-अपने स्थान के लिए रवाना हो रहे थे तो हमने सुना कि पंडित गोविन्दवल्लभ पंत के साथ, जिन्होंने त्रिपुरी का प्रस्ताव कांग्रेस के सामने उपस्थित किया था, और श्री भूलाभाई देसाई के साथ कुछ लोगों ने बुरा बर्ताव किया तथा श्री कृपालानीजी को भी कुछ लोगो ने घेर लिया था और मालूम होता था कि उनके साथ भी कुछ बुरा वर्ताव करेगे। इन बातों की खबर मुझे उस समय तो नही मिली, पर शहर मे यह खबर फैल गई। उत्तर भारत के रहनेवाले बहुत रोष में आ गये। जवाहरलालजी को इसका पता लग गया और उन लोगो ने समझा-बुझाकर रोक लिया, नही तो दूसरे दिन सभा के पहले ही मारपीट हो जाती। दूसरे दिन सभा में सुभाषबाबू नही आये। उन्होंने अपना इस्तीफा भेज दिया। कमिटी ने उसे मंजूर कर मुझे सभापति चुन लिया। मैं ज्योंही खडा हुआ और आगे की कार्रवाई शुरू ही करनेवाला था कि कुछ लोग जोरो से शोर मचाने लग गये। जो दृश्य त्रिपुरी में हुआ था वही फिर छोटे पैमाने पर होने लगा। मै अपने स्थान पर खड़ा रहा। जबतक शोरगुल खत्म नहीं हुआ, मैं खड़ा ही रह गया। जब शोर-

गुल खत्म हो गया, तो कुछ थोडा काम करके मैंने सभा बर्खास्त कर दी। वहां से चलने के समय कुछ वालण्टियर मेरी रक्षा के लिए मेरे चारों ओर हो लिये। उनमें से एक-दो ने रक्षा के बहाने मेरी बंडी पकड़ ली और खीचातानी करने लगे। तबतक दूसरे बचाने लगे। मुझे कुछ चोट नही लगी, परन्तु बंडी का बटन टूट गया। मैं गाडी पर सवार कर अपने स्थान पर पहुचा दिया गया। मैंने इसका जिक्र किसीसे नही किया; क्योकि इससे वैमनस्य और बढता। रात की गाड़ी से जब मै रवाना हुआ तो मुझे स्टेशन पर मालूम हुआ कि डाक्टर विधानचन्द्र राय के घर पर कुछ लोगो ने जाकर शोर-गुल मचाया और चीजे तोड़-फोड़ भी दी। जो नई वर्किंग कमिटी बनी, उसके सदस्यो मे बंगाल के डाक्टर विधानचन्द्र राय और डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र घोष थे। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने उस समय सदस्य होना स्वीकार नही किया, यद्यपि उन्होने हर तरह से मदद देने का वचन दिया।

: १३४ :

एक अत्यन्त अप्रिय कार्य

कलकत्ते की बैठक में कोई विशेष काम नहीं हो सका था। इसलिए अखिल भारतीय कमिटी की एक दूसरी बैठक करना आवश्यक था। एक बैठक बम्बई में थोड़े ही दिनों के बाद की गई ! त्रिपुरी में, जैसा ऊपर कहा गया है, मुख्य प्रस्ताव में पंडित गोविन्दवल्लभ पंत ने मुख्य भाग लिया था। पंतजी संयुक्तप्रान्त के प्रधान मन्त्री थे। हम लोगों के विरोधियों ने इस बात का वहां और पीछे भी बहुत प्रचार किया था कि कांग्रेसी मंत्रिमंडल सुभाषबाबू के विरोधी थे और उन लोगों ने ही त्रिपुरी में अपने प्रभाव से तथा अपनी पद-मर्यादा से अनुचित लाभ उठाकर त्रिपुरी का प्रस्ताव पास कराया है। कुछ और कारणों से कुछ लोग मंत्रिमंडलों से असन्तुष्ट थे। इस प्रकार से एक दल ऐसा पैदा हो गया था, जो मंत्रिमण्डलों की शिकायत और उनके रास्ते में अड़चनें पैदा किया करता था। मंत्रिमण्डल सभी प्रान्तों में, जहां कांग्रेसी मेम्बरों का बहुमत था, कांग्रेस की आज्ञा के अनुसार काम कर रहे थे। पार्लमेण्टरी कमेटी कभी उनके कामों में हस्तक्षेप नहीं करती थी, पर इस बात पर निगहबानी रखती थी कि जो घोषणा और वादा हमने चुनाव के पहले कांग्रेस की ओर से किया था वह पूरा किया जाय। मंत्रिमण्डल भी यथासाध्य इस प्रयत्न में लगे हुए थे। मेरा विचार है कि अपने अधिकार के अन्दर और विद्यमान परिस्थिति में जो कुछ हो सकता था, वे कर रहे थे। पर कांग्रेस के अन्दर के लोगों में से ही कुछ उनका विरोध करने लगे थे। वह विरोध क्रियात्मक रूप धारण करता जाता था। हम लोग कांग्रेस-विरोधियों के विरोध को समझ सकते थे। कांग्रेसियों के विरोध-विचार भी समझ में आते थे। यथासाध्य उनको मिलाने का प्रयत्न मंत्रिमण्डल किया करते थे। पर अब परिस्थिति कुछ इस तरह की पैदा कर दी गई कि सुभाषबाबू के सभी अनुयायी और मंत्रिमण्डलों के विरोधी एक साथ होकर काम करने लगे। लोगों की मनोवृत्ति ऐसी दीखने लगी कि कांग्रेस के अन्दर जो झगड़ा त्रिपुरी के पहले और बाद में हुआ, उसको मंत्रि-मण्डलों के विरुद्ध काम में लाकर मंत्रिमण्डलों को तिरस्कृत किया जाय और इस तरह उनकी अप्रतिष्ठा की जाय। इसमें डाक्टर खरे और उनके

कुछ साथी भी, जैसे मध्यप्रदेश के मंत्रिमण्डल के विरोधी, शरीक हो गये। कुछ लोगों का विचार दीखने लगा कि मंत्रिमण्डलों को तोड़ना सुभाषबाबू के विरोधियों को नीचा दिखाना होगा। हम लोगों के खिलाफ कुछ कहना-करना मुश्किल था, पर मंत्रिमण्डलों के खिलाफ कुछ कह देना और कर देना आसान था; क्योंकि उनको दिन-रात कुछ-न-कुछ करना पड़ता था, और किसी चीज को लेकर उसमें छिद्र निकालना कुछ मुश्किल नहीं है। हम लोगों का कहना था कि यदि मंत्रिमण्डल के विरुद्ध किसी कांग्रेसी को कोई शिकायत हो तो कांग्रेस की कमिटियों के सामने पेश करें। पार्लमेण्टरी कमिटी, वर्किंग कमिटी और जरूरत पड़ने पर अखिल भारतीय कमिटी भी उन शिकायतों की जांच करके उन्हें दूर करने के लिए तैयार थी। पर उन शिकायतों को लेकर केवल मत ही प्रकट करना नहीं, बल्कि मंत्रिमण्डल को नीचा दिखाने की कार्रवाई करना किसी भी कांग्रेसी के लिए अनुचित था। इस तरह के प्रदर्शन देश में बढ़ते जा रहे थे, जिससे मंत्रिमण्डलों को और उनके साथ-साथ कांग्रेस की प्रतिष्ठा को भी धक्का पहुंचता था।

बम्बई की बैठक में एक प्रस्ताव रखा गया, जिसमें इस तरह के क्रियात्मक विरोध की निन्दा की गई और उसे न करने का कांग्रेसियों को आदेश दिया गया। इस प्रस्ताव का जोरों से विरोध सुभाषबाबू और उनके अनुयायियों ने किया। पर प्रस्ताव बहुत बड़े बहुमत से स्वीकार हो गया। हम समझते थे कि कांग्रेसी लोग इस प्रस्ताव को मान लेंगे और इस तरह की बात और कार्रवाई अब नहीं होगी। पर ऐसा हुआ नहीं। बहुत जल्द इस तरह की बातें हुईं, जिनमें हमको अनुशासन-भंग के लिए सुभाषबाबू के विरुद्ध कार्रवाई करनी पड़ी।

इस दुःखद कहानी के पहले एक सुखद घटना का उल्लेख आवश्यक है। इधर कई वर्षों से गांधी-सेवा-संघ का एक सालाना उत्सव हुआ करता था, जिसमें उसके सभी सदस्य सभी प्रान्तों से एक निश्चित स्थान पर इकट्ठे होकर कई दिनों तक महत्व के सिद्धान्तों और प्रश्नों पर चर्चा किया करते थे। इसमें गांधीजी भी शरीक होते थे। जहां बैठक होती थी उस स्थान में सदस्य लोग कुछ सार्वजनिक सेवा का काम किया करते थे। खादी, सूत-कताई आदि का प्रदर्शन भी हुआ करता था। इस बार गांधी-सेवा-संघ का अधिवेशन बेतिया (चम्पारन) के पास वृन्दावन में होनेवाला था। वहां कुछ दिनों से पंडित प्रजापति मिश्र ने एक आश्रम खोल रखा था। उसी इलाके में वर्धा-योजना के अनुसार, बिहार-सरकार की ओर से, प्राथमिक पाठशालाएं भी खोली गई थीं। वहां के कार्यकर्ताओं ने बड़े उत्साह के साथ अधिवेशन के लिए बड़ी तैयारी की थी। महात्माजी को एक थैली भेंट करने

की योजना बनाई गई थी। इस अधिवेशन की तिथि इस तरह रखी गई थी, कि कलकत्ते से अखिल भारतीय कमिटी की बैठक के बाद महात्माजी और हम सब सीधे वहां आ जायं। इसीलिए अखिल भारतीय कमिटी की बैठक समाप्त करके महात्माजी के साथ ही मैं भी कलकत्ते से बेतिया के लिए रवाना हुआ। बहुतेरे सदस्य, जो गांधी-सेवा-संघ के मेम्बर नहीं थे, अधिवेशन में शरीक होने के लिए आये। उस अवसर पर संघ के अधिवेशन के अलावा तालीमी संघ की भी, जो वर्धा-शिक्षा-योजना को कार्यान्वित करने में लगा था, बैठक वहां की गई थी। उसके सभापति होनेवाले थे बम्बई प्रान्त के प्रधान और शिक्षा-मन्त्री श्रीयुत खेर। वह भी हमारे साथ कलकत्ते से वहां आये थे। अधिवेशन बड़े समारोह से हुआ। लोगों ने भी बड़ा उत्साह दिखाया। एक तो गांधीजी को चम्पारन की जनता खूब प्रेम और भक्तिभाव से देखती है; दूसरे, इस प्रकार की इतनी बड़ी कोई दूसरी सभा वहां कभी हुई नहीं थी, इतने लोग बाहर से वहां कभी आये नहीं थे। दोनों पक्षों में, आनेवालों और स्वागत करनेवालों में, काफी उत्साह था। सभी बातें बहुत अच्छी तरह से समाप्त हुईं। गांधीजी को थैली भी दी गई, जिसको उन्होंने कुछ हरिजन-सेवा और कुछ दूसरे कामों के लिए बांट दिया। हरिजन-सेवा के लिए रुपये तो हरिजन-सेवक-संघ को दे दिये गए। स्थानीय कामों के लिए जो था, वह स्थानीय आदमियों के हाथों में दे दिया गया। एक अच्छी रकम बिहार में मजदूर-संगठन करने के लिए अलग करके रख दी गई।

अखिल भारतीय कमिटी की उस बैठक के थोड़े ही दिनों के बाद, जिसमें निश्चय किया गया था कि कोई भी कांग्रेसी किसी ऐसे क्रियात्मक कार्य में भाग न ले जिससे कांग्रेस तथा मन्त्रिमण्डलों की प्रतिष्ठा में ठेस लगे, श्री सुभाषचन्द्र बोस ने घोषणा की कि कांग्रेस-कमिटी के इस निश्चय के विरुद्ध सारे देश में जबरदस्त प्रदर्शन किया जाय। ऊपर कहा जा चुका है कि यह निश्चय बहुत बड़े बहुमत से स्वीकृत हुआ था। अब उस निश्चय की सीधी अवहेलना कर प्रदर्शन करनेवाले तुल गये। घोषणा समाचार-पत्रों में पढ़कर मैंने सभापति की हैसियत से सुभाषबाबू को तार दिया कि इस प्रकार की अवहेलना उचित नहीं है और वह इससे बाज आयें। पर उन्होंने ऐसा करने से इन्कार कर दिया और अपने निश्चय के अनुसार इस प्रकार के प्रदर्शन कराये, जिनमें कांग्रेसी कार्यकर्ता भी बहुत जगहों में शरीक हुए। हमारे सामने अब यह विकट प्रश्न उपस्थित हो गया कि इस तरह की अवहेलना कांग्रेस कबतक बर्दाश्त कर सकती है। कांग्रेस के अन्दर मतभेद निपटाने का एकमात्र रास्ता यह है कि उस प्रश्न पर सम्मति ले ली जाय। पर जब-

तक उसका निश्चय बहुमत द्वारा बदलवा न दिया जाय तबतक किसी कांग्रेसी को, कांग्रेस के निश्चय के विरुद्ध विचार रखते हुए और मतभेद प्रदर्शित करते हुए भी, कोई विरोधी कार्रवाई नही करनी चाहिए—विशेषकर ऐसी कोई कार्रवाई, जिससे कांग्रेस की प्रतिष्ठा को ठेस लगती हो। इस प्रदर्शन में भाग लेनेवालो ने ठीक ऐसा ही किया था। हमारे लिए अनिवार्य हो गया कि हम अनुशासन की कार्रवाई करे।

वर्किंग कमिटी की बैठक की गई। सुभाषबाबू से कैफियत मांगी गई। उन्होने कैफियत मे अपनी कार्रवाई की पुष्टि की और उसका समर्थन किया। वर्किंग कमिटी ने बहुत विचार के बाद निश्चय किया कि सुभाषबाबू का काम ऐसा है, जिसपर उसको मजबूरी अनुशासन की कार्रवाई करनी चाहिए। यह निश्चय कुछ आसान नही था; क्योकि सुभाषबाबू काग्रेस के एक प्रमुख व्यक्ति थे। वह काग्रेस के सभापति दो बार चुने गये और हो चुके थे। मतभेद के कारण इस समय वह उस पद से हट गये थे। पर उनकी देश-सेवा, निर्भीकता और त्याग के सभी कायल थे। ऐसे आदमी पर अनुशासन की कार्रवाई कैसे की जाय? सबको खटकता था। न मालूम क्यो, मेरा कुछ भीतरी प्रेम भी उनके साथ था, यद्यपि मुझे उनके साथ मिलकर कोई काम करने का मौका नही मिला था और न हम दोनो मे किसी समय उतनी घनिष्ठता हुई थी। हा, उनके भाई श्री शरत्चन्द्र बोस को मै पढने के समय से ही जानता था; क्योकि हम दोनो एक ही समय प्रेसिडेसी-कालेज मे पढ़ते थे और एक ही होस्टल मे रहा करते थे—उनके साथ कुछ घनिष्ठता थी और उनके प्रति मेरा कुछ आदर और प्रेम भी था। पर प्रश्न यह था कि काग्रेस के सारे सगठन मे इस प्रकार के धक्के लगने देना क्या उचित होगा—क्या अपने व्यक्तिगत भावो के कारण इस सार्वजनिक और सार्वदेशिक संस्था की प्रतिष्ठा को धक्का पहुंचानेवाले के साथ अनुशासन की कार्रवाई न की जाय? जैसा ऐसे अवसरो पर हुआ करता है, सस्था के प्रति कर्तव्य-पालन की भावना व्यक्तिगत भावो को दबाने के लिए मजबूर करती है। हम सबने बहुत दु ख के साथ, पर कर्तव्य-भावना की प्रेरणा से विवश होकर, सुभाषबाबू को काग्रेस-कमिटी से एक अवधि के लिए खारिज कर दिया। जिन दूसरे लोगों ने उनका उस प्रदर्शन मे साथ दिया था, उनके साथ भी कुछ कार्रवाई करना आवश्यक था। पर वर्किंग कमिटी ने इसको खुद न करके प्रातीय कमिटियों पर छोड़ दिया कि वे जाच कर जहां जैसा मुनासिब समझें कार्रवाई करें।

सुभाषबाबू त्रिपुरी के समय से ही नये दल का संगठन कर रहे थे, जिसको उन्होने 'फारवर्ड ब्लाक' नाम दिया था। अब वह अधिक जोरों से

संगठित किया गया। इसके बाद उस दल और कांग्रेस के बीच खुल्लम-खुल्ला विरोध चलने लगा। प्रांतीय कमिटियों ने भी जहा-तहां कुछ लोगों पर अनुशासन की कार्रवाइयां की। आपस का झगड़ा और भी बढ़ गया। कांग्रेस का विरोध उस दल की ओर से सब जगहों मे होने लगा।

: १३५ :

उड़ीसा और मध्यप्रदेश के मन्त्रिमंडल

मेरा इस बार सभापति होना मेरे लिए दुःखद रहा ; क्योंकि ऐसा वातावरण पैदा हो गया कि सभी जगहों में झगड़े ही चलते रहे और दूसरा काम कठिन हो गया। दो झगड़े और हुए, जिनका जिक्र कर देना अच्छा होगा। एक उड़ीसा का और दूसरा मध्यप्रदेश का। इनके सम्बन्ध की कुछ बातों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। यह बतलाया गया है कि कुछ लोग जहां-तहां मन्त्रिमण्डलों के विरुद्ध बहुत बातें करने लग गये थे। इसी तरह के कुछ लोग उड़ीसा में थे, जिन्होंने वहां के मन्त्रिमण्डल की शिकायत शुरू कर दी थी। यह भी मैं ऊपर कह चुका हूं कि जब 'डेलाग' में, १९३८ के मार्च या अप्रैल में, हरिपुरा-कांग्रेस के बाद ही, गांधी-सेवा-संघ की वार्षिक बैठक हुई थी, तो इस तरह की शिकायतें आई थीं। वहां सरदार वल्लभभाई मौजूद थे। मैं भी था। हमने दोनों पक्षों को बुलाकर आपस में मेल-मिलाप करा देने का प्रयत्न किया। जो कुछ शिकायतें थीं, उनकी थोड़ी-बहुत सरसरी जांच भी कर ली। हम आशा करते थे कि मामला निबट जायगा; पर भीतर-ही-भीतर आग सुलगती रही। पार्लमेण्टरी कमिटी के सामने बात आई। उसके सभापति सरदार पटेल ने अन्त में यह कहा कि शिकायत करनेवाले शिकायतें ठीक-ठीक लिखकर दें तब वह जांच करायेंगे, पर दोनों पक्षों को समझ लेना चाहिए कि शिकायत यदि ठीक निकलेगी तो मन्त्री पर और अगर झूठी साबित होगी तो शिकायत करनेवाले पर कार्रवाई की जायगी। त्रिपुरी-कांग्रेस के कुछ पहले कांग्रेस के प्रेसिडेंट के नाते सुभाषबाबू के पास भी शिकायत पहुंची। इन सब कारणों से जांच करना आवश्यक हो गया। सुभाषबाबू ने जांच करने का काम मेरे सुपुर्द किया। मैंने जांच शुरू की, पर वह पूरी नहीं हो सकी। मुझे एक बार से अधिक उड़ीसा जाना पड़ा। कई दिनों तक दोनों पक्षों की शिकायतें सुननी पड़ीं। गवाहियां लेनी पड़ीं। बहुत कागजों को पढ़ना पड़ा। जब मेरी रिपोर्ट तैयार हुई, सुभाषबाबू सभापतित्व से इस्तीफा दे चुके थे—मैं प्रेसिडेंट हो चुका था। मेरी लम्बी रिपोर्ट एक अदालती फैसले का रूप रखती थी। उसे पार्लमेंटरी कमेटी और वर्किंग कमिटी ने मंजूर किया। मुख्य शिकायतें गलत साबित

हुई। शिकायत करनेवालों पर कार्रवाई की गई। पर कुछ दिनों के बाद उनके माफी मांग लेने पर अनुशासन की सजा उठा दी गई।

इस चीज को यहा इतने विस्तार के साथ लिख देना इसलिए आवश्यक था कि शिकायत करनेवालो के पीछे जो लोग मददगार थे, उन्होंने पीछे चलकर काग्रेस के विरुद्ध खुलेआम काम किया। पंडित नीलकंठदास और पडित गोदावरीश मिश्र उनमें मुख्य थे। वे श्री विश्वनाथदास प्रधान मंत्री का विरोध आरम्भ से ही करते थे। ये दोनो सज्जन १९२०-२१ से ही काग्रेस की सेवा करते आ रहे थे। उड़ीसा-प्रान्त के लोगो में दोनो की प्रतिष्ठा थी। जब १९३८ मे प्रान्तीय असेम्बली के लिए चुनाव हुआ, पंडित नीलकंठदास केन्द्रीय असेम्बली के मेम्बर थे। उन्होंने प्रान्तीय असेम्बली के लिए उम्मीदवारी की दर्खास्त नही दी, पर चुनाव मे उन्होंने पूरा भाग लिया। काग्रेस की ओर से प्रचार मे काम भी किया। पंडित गोदावरीश मिश्र प्रान्तीय असेम्बली के लिए खड़े हुए और चुने भी गये। चुनाव हो जाने के बाद जब मंत्रिमण्डल बनने का अवसर आया तो वहां असेम्बली के सदस्यो ने पंडित नीलकठदास को, जो उस समय असेम्बली के सदस्य नही थे, नेता न चुनकर श्री विश्वनाथदास को नेता चुन लिया। जब मंत्रिमण्डल बना तब नेता चुने जाने के कारण स्वभावतः वही प्रधान मंत्री बने। पंडित नीलकंठदास इससे बहुत रुष्ट थे। जो शिकायतें आती थीं, वे ऐसी होती थी जिनसे श्री विश्वनाथदास के नैतिक चरित्र और ईमानदारी पर हमला होता था। इसीलिए जाच के पहले इस बात की चेतावनी देनी पड़ी थी कि यदि शिकायत साबित न होगी तो मुद्दई पर कार्रवाई की जायगी। शिकायत करनेवाले मुद्दई पडित नीलकठदास के साथ काम करनेवाले सज्जन थे, पीछे शायद वह उनसे अलग हो गये। उस समय उन लोगों का कुछ बस न चला, क्योंकि शिकायत गलत और बेबुनियाद साबित हो गई। काग्रेस से सुभाषबाबू के अलग हो जाने पर पंडित नीलकंठदास ने उनका साथ दिया और केन्द्रीय असेम्बली मे भी उनकी कार्रवाई ऐसी हुई जैसी कांग्रेसी सदस्य द्वारा नही होनी चाहिए थी। वह काग्रेस के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करके केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य चुने गए थे। उसमें उन्होंने वादा किया था कि वह काग्रेस के अनुशासन को मानेगे। पर कुछ दिनो के बाद उन्होंने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। काग्रेस पार्टी से वह अलग हो गये। जब यूरोपीय महायुद्ध आरम्भ होने के बाद काग्रेसी मंत्रिमण्डलों ने इस्तीफा दिया तो उडीसा का मत्रिमण्डल भी, और जगहों की तरह टूट गया। पंडित नीलकंठदास और पंडित गोदावरीश मिश्र इस बात की चिन्ता में लगे रहे कि किसी-न-किसी तरह वहां मंत्रिमण्डल बने। पर

जब कांग्रेसी सदस्यों के बहुमत ने उनका साथ नही दिया तो वहां की जमींदार-पार्टी के साथ मिलकर, जिसके नेता पारलाकिमेडी के महाराज बहादुर थे, उन्होने मंत्रिमण्डल कायम कराया, जिसमें श्री गोदावरीश मिश्र मंत्री हुए और महाराजा प्रधान मंत्री! कुछ कांग्रेसी लोगों को उन्होने फोड़ लिया, पर अधिकाश को जेलों में बन्द करके किसी प्रकार उन्होने अपना बहुमत कर लिया है और अब भी मंत्रिमण्डल कायम है। पर जिस समय ये पंक्तिया लिखी जा रही है (१९ जून, १९४४), समाचार-पत्रों से मालूम होता है कि महाराज और मिश्रजी में कुछ अनबन हो गई है और मंत्रिमण्डल संकट मे है। सुना है कि पडित नीलकठदास और पंडित गोदावरीश मिश्र मे भी अब वह सद्भाव नही है, जो काग्रेस के प्रति विरोध करके मत्रिमण्डल बनाने के समय दोनो मे था।

मध्यप्रदेश की भी कुछ इसी प्रकार की शिकायतें थी, जिसका संकेत पहले दे चुका हू। कुछ तो ऐसी बाते थी जो मंत्रिमण्डल बनने के पहले की थी। मत्रिमण्डल बनने के समय डाक्टर खरे और पडित द्वारकाप्रसाद मिश्र एक साथ थे, दोनो में काफी घनिष्ठता थी; प्रतिद्वंद्वी उस समय समझे जाते थे श्री रविशकर शुक्ल। पर डाक्टर खरे की नीति और तौर-तरीके से मिश्रजी तथा दूसरे इतने ऊब गये थे और डाक्टर खरे उनसे इतने विरक्त हो गये थे कि अब मिश्रजी और शुक्लजी एक साथ होकर काम कर रहे थे और डाक्टर खरे उनके विरुद्ध! इसी कारण से वहा का मत्रिमण्डल टूटा था। डाक्टर खरे को अलग होना पडा था और आपस के झगड़े अभीतक उसी गति से चल रहे थे। डाक्टर खरे हट तो गये थे, पर उनके कुछ साथी और सहयोगी अभी तक उस झगड़े को चलाये जा रहे थे। उसमे से कुछ लोगों ने पुरानी गन्दी शिकायतो और कुछ नई बातों को लेकर, पार्लमेण्टरी कमिटी तथा वर्किंग कमिटी के सामने, मत्रिमण्डल और विशेषकर मिश्रजी के विरुद्ध, शिकायतें पेश की। पहले श्री भूलाभाई देसाई को इन शिकायतो की जांच का भार सौपा गया। पर उनसे मुद्दई लोगो का मतभेद हो गया। अन्त में मुझे प्रेसिडेंट की हैसियत से इस मामले को भी देखना पड़ा। मैंने इसमें भी दोनों पक्षों की बाते सुनकर, बहुत-से कागजों को देखकर, फैसला दिया जो वर्किंग कमिटी के सामने पेश होकर मजूर किया गया। कुछ लोग फैसले के बाद भी बहुत-कुछ लिखते-बोलते रहे, पर एक बार फैसला हो जाने और पत्रों में छप जाने पर मामला ठडा पड़ गया।

मेरा अधिक समय इस प्रकार के कामों में ही लगा, जिससे जी घबराता था और ठीक तरह से रचनात्मक काम करने का मौका नही मिलता था। इस बार प्रेसिडेण्ट होने का एक और नतीजा यह निकला कि अपने सूबे के

साथ जो घनिष्ठ सम्बन्ध रहा करता था, वह कम हो गया। समयाभाव से मैं सूबे के कामों और बातों में उतनी दिलचस्पी न ले सका और न सूबे का दौरा कर सका। १९३४-३५-३६ में भी जब प्रेसिडेण्ट था और सूबे के दौरे मे ही सारा समय लगा दिया था, विहार मे कुछ भी समय न दे सका। वही बात इस बार भी हुई, यद्यपि इस बार दौरा करने का मौका नही मिला। किन्तु इस बार बिहार में कांग्रेस का अधिवेशन होनेवाला था। इसलिए, रुपये जमा करने के लिए कही-कही जरूर जाना पडा। जब अखिल भारतीय काम से छुट्टी मिलती, इधर दौड जाता, या यों कहिये कि दोनों के बीच मे मैं इधर-उधर दौड़ता रहा।

: १३६ :

रामगढ़-कांग्रेस के लिए स्थान का चुनाव

त्रिपुरी से लौटते ही हमको यह सोचना था कि बिहार में कांग्रेस का अधिवेशन कहां किया जाय। इधर कई बरसो से जल्सा किसी गांव में हुआ करता था। हम भी चाहते थे कि कही गांव में ही करें। मेरा विचार पहले यह हुआ कि अधिवेशन सोनपुर मे किया जाय। वह तीन जिलों के सीवाने पर है। वहां प्रतिवर्ष बहुत बड़ा, भारत-प्रसिद्ध मेला लगा करता है। उसमें देश-भर से लाखो आदमी आते है। लाखों की सख्या मे मवेशी, घोड़े-हाथी और दूसरे जानवर, बिक्री के लिए लाये जाते है। इसीलिए वहां बहुत बगीचे हैं। लाखों लोगों के लिए जल का प्रबन्ध आसान नही है, इसलिए बहुतेरे कुएं बनाये गए है। मेले के समय पानीकल भी जारी किया जाता है, जिसको जिला बोर्ड ने बना रखा है। मेला कार्तिकी पूर्णिमा को हुआ करता है। कांग्रेस का अधिवेशन प्रायः तीन महीने बाद होता। इसलिए मेले मे हम बांस, खर, चटाई इत्यादि बहुत सामान सस्ता खरीद सकते थे। प्रतिनिधियों के निवास-स्थान का निर्माण मेले के बाद भी शुरू करके आसानी से पूरा कर सकते थे। इन सुविधाओं के सिवा गण्डक नदी के किनारे होने के कारण बांस, लकड़ी, फूस वगैरह नदी द्वारा आसानी से लाये जा सकते थे। गंगा से उत्तर के जिले, बिहार मे काग्रेस के कार्य-कलाप के लिए, बहुत जानदार जिले समझे जाते हैं। पहले दो बार काग्रेस के अधिवेशन बिहार में हो चुके थे; पर दोनों बार गंगा से दक्षिण ही—पटने और गया में। उत्तर के लोग बहुत चाहते थे कि उत्तर बिहार मे भी एक अधिवेशन हो। इनसब विचारों से मेरा खयाल था कि यही अधिवेशन किया जाय। पर सबकी राय लेनी थी। सबसे अधिक यह देखना था कि जो नगर हम बसायंगे उसके बसाने मे स्वास्थ्य की दृष्टि से कहां अधिक सुविधा होगी। इसलिए त्रिपुरी से लौटकर हम दो-चार आदमी उन सभी जगहों को देखने गये, जो अधिवेशन के लिए उपयुक्त समझी जाती थी। त्रिपुरी में ही मैंने एक अनुभवी इंजीनियर श्री रामदास गुलारी को आमन्त्रित कर दिया था कि बिहार के कांग्रेस-नगर-निर्माण में सहायता देने के लिए उनको आना चाहिए। उन्होंने इस निमन्त्रण को सहर्ष स्वीकार कर लिया था। फैजपुर में जब

पहले-पहल देहात में कांग्रेस का अधिवेशन करने का महात्माजी का विचार हुआ तो वहां निर्माण-कार्य में मदद देने के लिए गुलारीजी ही गये थे। त्रिपुरी में भी उन्होंने ही कांग्रेस-नगर-निर्माण का कार्य कराया था। उनके अनुभव से लाभ उठाने के लिए ही मैंने उनको निमन्त्रण दे दिया था। वह ठीक समय पर आ गये। स्थान चुनने में भी शरीक रहे। वह भी उन सभी जगहों पर गये, जिनको हम उपयुक्त समझते थे।

हम लोगों ने पटना जिले मे राजगृह को भी इस काम के लिए देखा। वह बहुत ही प्राचीन और ऐतिहासिक स्थान है। उसको जरासंध की राजधानी और बुद्धदेव का निवास-स्थान होने का गौरव प्राप्त है। बौद्ध और जैन-काल मे भी उसे बडी प्रसिद्धि मिल चुकी है। नालन्दा का वह महान् विद्यापीठ भी वहां से थोड़ी ही दूर है जहा किसी समय हजारो विद्यार्थी और भिक्षु विद्याभ्यास किया करते थे—जहा से विद्वान् भिक्षु और परिव्राजक प्रचारक बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ निब्बत, चीन प्रभृति देशो मे गये थे—जहा के ध्वस्त बिहारो और भग्नावशेषो की खुदाई से निकली हुई इमारतें और किस्म-किस्म के सरजाम आज भी लोगो को चकित करते है। ऐतिहासिक दृष्टि से जगह बहुत ही उपयुक्त और प्राकृतिक दृष्टि से भी रमणीय तथा स्वास्थ्य-प्रद थी, पर आधुनिक सुविधाओ का अभाव! सबसे अधिक वहां पहुंचने की कठिनाई! पानी की भी कमी! इन कारणों से उसे छोड़ देना पडा। पीछे यह भी खयाल हुआ कि पटने के पास ही फुलवारीशरीफ मे अधिवेशन किया जाय। पर यह स्थान पटने के इतना निकट था कि वह शहर का ही अधिवेशन समझा जाता, पर शहर की सुविधाए वहां नही मिलती।

उधर छोटा नागपुर के लोगों का, विशेषतः हजारीबाग के बहादुर कांग्रेसी बाबू रामनारायणसिह का, बहुत जोर था कि कोई स्थान छोटा नागपुर में ही चुना जाय। उनकी हमेशा शिकायत रहा करती थी कि हम लोग छोटा नागपुर के साथ लापरवाही बरतते है। छोटा नागपुर भी ध्यान मे रखा गया। हम लोगो ने अन्त मे हजारीबाग जिले के रामगढ़ को ही पसन्द किया। इसका विशेष यश श्री रामदास गुलारी को ही है; क्योंकि उन्होंने इस स्थान को स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक उपयोगी समझा। मेरी भी धारणा थी कि उन सुन्दर सुहावने जंगलों के बीच दामोदर नदी के किनारे का अधिवेशन अपने ढंग का निराला होगा।

स्थान चुन तो लिया गया पर अधिवेशन के लिए निश्चित स्थान पर जंगल था! उसको साफ कराना था और वहां प्रायः सबकुछ जुटाना था। आरम्भ से ही मैने श्री अम्बिकाकान्तसिह को वहां भेज दिया और वह वहां

जब रहकर बड़े परिश्रम और लगन के साथ काम करने लगे। मैं भी कुछ दिनों तक रांची में ठहरा रहा, जहां से रामगढ प्रायः तीस-बत्तीस मील की दूरी पर है। नक्शा वगैरह गुलारीजी बनाने लगे। जंगल कटने लगा। काम आगे बढ़ने लगा। मैं इधर-उधर रुपया जमा करने के लिए और-और भाइयों के साथ घूमने लगा। उनमें मुख्यतः, मेरे साथ प्रायः सभी जगहों में जाने-वाले, बाबू मथुराप्रसाद थे। दौड़-धूप करता रहा। बरसात में काम बहुत आगे नही बढ़ सकता था। पर तो भी सबका खाका तो तैयार ही कर लिया गया। मै रामगढ़ में ही था। उस समय भी दमा से रुग्ण था। उसी जगह यह खबर मिली कि जर्मनी ने पोलैंड पर चढ़ाई कर दी और इंगलैंड तथा फ्रान्स के साथ भी उसकी लड़ाई छिड़ गई! उस समय जर्मनी ने, लड़ाई के कुछ दिन पूर्व, रूस के साथ समझौता कर लिया था।

: १३७ :

कांग्रेस और यूरोप का दूसरा महायुद्ध

इस विषय पर बहुत विचार करने के बाद, १९३८ के सितम्बर में, बिना किसी फैसले पर पहुंचे हुए ही, वर्किंग कमिटी ने बात वही छोड दी थी, क्योंकि लड़ाई छिडी नही और चेम्बरलेन ने चेकोस्लोवाकिया को हिटलर का शिकार छोड़कर सुलह कर ली। अब काग्रेस को कुछ निश्चय करना होगा! उधर जवाहरलालजी इस समय चीन गये हुए थे। गांधीजी की वाइसराय से मुलाकात हुई। वर्किंग कमिटी की बैठक वर्धा में की गई। मै बीमार तो था, पर किसी तरह से वर्धा पहुच गया। महात्माजी ने श्री महादेव देसाई को भेजा कि चाहे जिस तरह हो सके, मुझे वह जरूर वर्धा ले आवे। वर्किंग कमिटी की बैठक कई दिनो तक चली। इसी बीच श्री जवाहरलाल नेहरू भी चीन से वापस आ गये। मामला बहुत गहन था। यह सोचा गया कि यद्यपि श्री सुभाषचन्द्र बोस काग्रेस से अलग है तो भी इस मौके पर उन्हे भी बुलाना चाहिए और उनकी राय भी लेनी चाहिए। काग्रेस के दूसरे प्रमुख व्यक्ति भी, जो वर्किंग कमिटी के सदस्य नही थे, बुला लिये गए।

गाधीजी ने वाइसराय से मुलाकात के बाद एक वक्तव्य प्रकाशित किया था, जिसमें उन्होंने इंगलैंड के प्रति सहानुभूति दिखलाई थी और यह भी कहा था कि हमको इंगलैंड की मदद बिना शर्त करनी चाहिए। इससे कुछ लोगों को गलतफहमी हुई। पीछे जब काग्रेस-कमिटी की ओर से इस बात की माग पेश की गई कि ब्रिटिश सरकार युद्ध-विषयक और युद्धोत्तर शान्ति-सम्बन्धी अपने विचार तथा उद्देश्य साफ बतला दे तभी हिन्दुस्तान दिल खोलकर मदद कर सकेगा, तो अगरेजों को यह कहने का मौका मिला कि गाधीजी अपने प्रकाशित वक्तव्य से हट गये। काग्रेसियों में बहुतों को यह बात पसन्द नहीं आई कि इस तरह बिना शर्त मदद इस साम्राज्यवादी लडाई में देना उन्होने स्वीकार कर लिया था। बात यह थी कि दोनों पक्षों का विचार आशिक था। गांधीजी ने यह कभी नही सोचा था कि हिन्दुस्तान से रुपये और आदमी की मदद दी जायगी। वह समझते थे कि इस युद्ध में हिन्दुस्तान-ऐसे पराधीन देश की सहानुभूति अंगरेजों के लिए एक ऐसी कीमती

चीज होगी जो सारे संसार की सहानुभूति उनके साथ ला सकेगी। उन्होंने इसी सहानुभूति की बात सोची थी, पर इसमे शक नही कि उस समय इस तरह के बयान से लोगों में कुछ खलबली पैदा हुई थी।

वर्किंग कमिटी के सामने प्रश्न था कि वह इस युद्ध के सम्बन्ध में क्या रुख रखेगी; कांग्रेस युद्ध में मदद करेगी कि नही, यदि करेगी तो बिना शर्त के अथवा किसी शर्त के पूरा होने पर? मदद का रूप क्या होगा? काग्रेस ने अपने ध्येय मे अहिंसा को ही साधन माना है। इस हिंसात्मक युद्ध में एक अहिंसक सस्था कैसे और कौन-सी मदद कर सकती है? इत्यादि-इत्यादि। कमिटी कई दिनों के विचार के बाद एक निश्चय पर पहुंची और एक ठहराव स्वीकार किया। उसमें नात्सीवाद और फासिस्टवाद के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हुए कमिटी ने साम्राज्यवाद के प्रति भी अपना विरोध जताया और ब्रिटिश-राज्य से आग्रह किया कि भारतवर्ष की जनता को इस युद्ध में दिल से मददगार बनाने के लिए वह युद्ध-सम्बन्धी अपने उद्देश्यो को साफ-साफ बतला दे।

इस प्रस्ताव की भाषा बहुत ही सुन्दर और भाव भी अत्यन्त परिष्कृत तथा उपयुक्त थे। इसका श्रेय विशेषकर प० जवाहरलाल को ही था, जिन्होंने मसविदा तैयार किया था। उसी अधिवेशन मे यह स्पष्ट हो गया कि काग्रेस अपनी अहिंसा की नीति के कारण इस युद्ध मे ब्रिटिश सरकार की मदद करने से इन्कार नही कर सकती और यदि मौका मिला तो वह हथियार की मदद करने से भी नही हिचकेगी। यह कह देना इसलिए आवश्यक है कि इसके बाद जब-जब मौका आया, काग्रेस के अंग्रेज विरोधी—विशेषकर भारतमंत्री मि० एमरी और भारत-सरकार के उच्च कर्मचारी, जिनमे लार्ड लिनलिथगो भी शामिल थे—यह कहने से न हिचके कि गाधीजी की अहिंसा के कारण ही काग्रेस मदद नही देती। यह ठीक है कि उस बैठक मे यह बात इतनी स्पष्ट नही हुई थी, पर उस प्रस्ताव से यह स्पष्ट था कि ब्रिटिश-सरकार यदि सन्तोषजनक तरीके से अपने उद्देश्यो को प्रकट कर देगी तो कांग्रेस को मदद देनी ही पड़ेगी और उस मदद का रूप हिंसात्मक हुए बिना नही रहेगा। उस समय सारे देश मे—विशेषकर काग्रेसी लोगों मे से बहुतेरों में—ब्रिटेन के प्रति सहानुभूति थी और यदि ब्रिटिश साम्राज्यवादी इसका थोड़ा भी परिचय दे देते कि वे सचमुच यह लड़ाई प्रजातत्र के लिए कर रहे थे, जैसाकि उस समय इंग्लैंड के कुछ प्रमुख राजनीतिज्ञ और समाचारपत्र गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रहे थे, तो भारत के प्रायः सभी लोग उनके साथ दिल खोल करके हो जाते। परन्तु दुनिया की सहानुभूति पाने के लिए तो यह लड़ाई प्रजातन्त्र स्थापित करने के लिए की जा रही थी,

और वास्तविक रूप में वह ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा तथा पुष्टि के लिए ही की जा रही थी, जैसा पीछे स्पष्ट होता गया !

इस प्रस्ताव के बाद मुझे प्रेसिडेण्ट की हैसियत से दो बार लार्ड लिनलिथगो से मिलने का मौका मिला—एक बार पं० जवाहरलालजी के साथ और दूसरी बार महात्मा गाधी तथा मि० जिन्ना के साथ। उस समय लार्ड लिनलिथगो भारत के सभी दलो और सभी तरह के विचारवाले लोगो से मिलकर लड़ाई में हिन्दुस्तान की मदद की बात करते थे और चाहते थे कि हिन्दुस्तान के लोग राजी-खुशी से मदद करे और किसी प्रकार की गड़बड़ी न होने दे। लड़ाई शुरू होते ही बिना किसीसे पूछे और परामर्श किये ही उन्होंने ब्रिटिश सरकार की ओर से घोषणा कर दी थी कि हिन्दुस्तान भी लड़ाई मे शरीक है ! हिन्दुस्तान की धारा-सभा कायम थी। सभी सूबों में १९३५ के विधान के अनुसार मत्रिमण्डल काम कर रहे थे, जिनमे ग्यारह मे से आठ सूबों मे काग्रेसी मंत्रिमण्डल स्थापित थे। किसीसे न पूछा गया और न राय ली गई, मानो हिन्दुस्तान की किसी सस्था अथवा किसी व्यक्ति का इस लड़ाई से कोई सम्बन्ध ही न था ! बिना पूछताछ के ही हिन्दुस्तान को भी लड़ाकों मे दाखिल कर दिया गया ! काग्रेस-कमिटी भी बहुत क्षुब्ध थी। हिन्दुस्तान के दूसरे लोग भी इसे पसन्द नही करते थे। ऐसी अवस्था मे जबतक उनका मतलब स्पष्ट न हो जाय, कुछ भी किसीके लिए करना न सम्भव था और न उचित। लार्ड लिनलिथगो पीछे इसीलिए लोगो से राय-बात करने लगे। उन्होंने देश की राजनैतिक सस्थाओ को सन्तुष्ट करने के लिए यह योजना भी रखी कि उनकी (वाइसराय की) कार्यकारिणी परिषद की सदस्य-संख्या बढ़ा दी जायगी और उसमे अधिक हिन्दुस्तानी ले लिये जायंगे, पर साथ ही वह इस बात पर दृढ रहे कि उनके नये या पुराने सदस्यों के अधिकार में कोई परिवर्तन नही होगा, उनके विचार से ये सदस्य अपने-अपने विभाग के सरदारमात्र है, उनको कोई स्वतन्त्र अधिकार प्राप्त नहीं है और कौसिल की बैठक तो केवल सभी सदस्यों को एक-दूसरे विभाग की कार्रवाइयों से परिचित कराने के लिए ही होती है, वहा कुछ बातों पर वे सिर्फ विचार कर सकते है, पर सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों के निपटारे का भार अन्त में वाइसराय पर ही है और उनको ही अधिकार भी प्राप्त है—लड़ाई के जमाने में वह कोई वैधानिक परिवर्तन करने की सम्भावना नही देखते थे और इसलिए जो कुछ हो सकता था वह १९३५ के विधान के अन्दर ही हो सकता था।

कांग्रेस की मांगें दो थी। ब्रिटिश-सरकार के लड़ाई के उद्देश्यों के स्पष्टीकरण के साथ-साथ भारत की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में कांग्रेस चाहती

थी कि भविष्य की योजना के लक्ष्य को स्पष्ट तरीके से स्वतन्त्रता का रूप दे दिया जाय और साथ-ही-साथ अभी तत्काल भारत के प्रतिनिधियों को ऐसे शासन-सम्बन्धी अधिकार मिल जायं, जिनके द्वारा वे सचमुच भारत की इच्छा के अनुसार यहां प्रबन्ध कर सकें और लड़ाई मे भी सच्ची मदद कर सकें। भविष्य की घोषणा के महत्व को कुछ कम भी कर दिया जाय तो भी जबतक तत्काल अधिकार न मिल जायंगे, लड़ाई मे जनता की दिलचस्पी न होगी और वह दिल से मदद नही कर सकेगी। उस समय से आज तक कांग्रेस की नीति लड़ाई मे बाधा पहुंचाने की कभी नही रही है। काग्रेस ब्रिटिश साम्राज्यवाद को भी संसार के लिए कोई श्रेयस्कर वस्तु नही मानती है। उसने कम-से-कम पिछले बीस-पच्चीस बरसो में कभी नही माना है—वह साम्राज्यवाद के बदले मे सच्चे प्रजातन्त्रवाद की हिमायती रही है और है—यह चाहती है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद परिवर्तित होकर सच्चे प्रजातन्त्रवाद का रूप उन देशो और उपनिवेशो के लिए धारण कर ले जो आज इस साम्राज्यवाद की एड़ियो के नीचे कुचले जा रहे हैं, जिनमे भारत मुख्य है और स्वाभाविक रीति से भारत की राष्ट्रीय संस्थाएं इसी उद्देश्य को प्राप्त करना अपना कर्त्तव्य मानती है। अंगरेज भी इस उद्देश्य की निन्दा नही करते, वे भी इनकी स्वतन्त्रता अपना उद्देश्य मानते है। वे केवल यह कहते है कि अभी भारत तथा दूसरे देश, जो उनके कब्जे मे है, इस योग्य नही हुए है कि उनको स्वतन्त्रता दी जा सके और इसलिए अगरेज अपना कर्तव्य समझते है कि उनको जबतक यह योग्यता प्राप्त न हो जाय तबतक उनके शासन का भार अपने ऊपर वे रखे। हम भारतवासी इस बात को मानने के लिए तैयार नही है और यही हमारे मतभेद तथा संघर्ष का कारण है। लड़ाई के आरम्भ में प्रजातन्त्र की लम्बी-चौडी बातें की गई, कांग्रेस ने एक प्रश्न करके इस प्रचार का भडाफोड़ कर दिया। प्रश्न केवल इतना ही था कि क्या यह प्रजातन्त्र भारत के लिए भी होगा—एशिया और अफ्रीका की पददलित जातियों के लिए भी होगा—अथवा केवल अंगरेजों और यूरोपनिवासियों के लिए ही होगा—यदि एशिया और अफ्रीका के लोगों के लिए भी होगा तो खुलकर स्पष्ट शब्दों में कह दिया जाय, और इसका आश्वासन अभी यथासाध्य अधिकार सौपकर अमली तरीके से सभी लोगों को दे दिया जाय।

१९३९ के नवम्बर से १९४२ तक इसी प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर कांग्रेस और हिन्दुस्तान को नही मिला। शब्दों के आडम्बर में पहले असली मकसद को छुपा रखने का प्रयत्न किया गया। वह मकसद था ब्रिटिश साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाये रखने का। जैसे-जैसे समय बीतता गया, यह बात

साफ होती गई। उस समय लार्ड लिनलिथगो ने हजार कोशिशें कीं; पर कोई भी राजनैतिक दल उनके प्रस्ताव से सन्तुष्ट नही हुआ। हां, मुस्लिम लीग को खुश करने के लिए उन्होंने कुछ दिन के बाद एक घोषणा कर दी कि १९३५ के विधान पर लड़ाई के बाद नये सिरे से विचार किया जायगा। उस विधान का कांग्रेस ने भी जबरदस्त विरोध किया था और शायद कुछ नरमदलवालो के सिवा किसी राजनैतिक दल ने उसके अनुसार काम करने की रजामन्दी जाहिर नही की थी। इसलिए, लड़ाई के बाद उसको एक प्रकार से आमूल सशोधित और परिवर्तित करने का वादा करके उन्होंने केवल मुस्लिम लीग को ही नही, शायद दूसरो को भी सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया हो। पर ऐसा मालूम नही होता; क्योकि उनकी उस समय की और पीछे की कार्रवाइयो से एक ही नतीजा निकलता है। वह चाहते थे कि कांग्रेस के मुकाबले मे वह एक दूसरी सस्था खड़ी कर दे और इधर हिन्दुस्तान से कहे कि जबतक ये दोनो मिलकर एक माग पेश नही करती, हम कुछ भी करने से मजबूर है तथा उधर दूसरी ओर दुनिया को भी बता सके कि अंग्रेज तो अधिकार देने के लिए तैयार है, मगर हिन्दुस्तान के लोग इतने नालायक है कि वे आपस मे मेल ही नही कर सकते, इसलिए वहा ब्रिटिश सरकार का अधिकार अक्षुण्ण रखना आवश्यक एव अनिवार्य है। इसमे लार्ड लिनलिथगो अपने समय मे बहुत हद तक सफल भी हुए है। उस समय इन मुलाकातो का नतीजा यही निकला कि कोई सन्तोषजनक उत्तर हमको ब्रिटिश सरकार की ओर से नही मिला। जो घोषणा उन्होने सरकार की तरफ से निकाली थी, उसके सम्बन्ध मे हमको साफ-साफ कह देना पड़ा कि उससे हम सन्तुष्ट नही है।

वायसराय से मिलने के बाद हमको यह भी निश्चय करना पड़ा कि कांग्रेसी लोग मंत्रिमण्डल में नही रह सकते और शासन का भार सूबो मे भी अपने ऊपर नही रख सकते। इस निश्चय पर बहुत सोच-विचार के बाद ही *वर्किंग कमिटी और अखिल भारतीय कमिटी पहुची थी। कुछ लोग कांग्रेस* के अन्दर ऐसे थे जो इस नीति को पसन्द नही करते थे। उनका विचार था कि जो थोडे-बहुत अधिकार हमारे हाथ मे आये है, उनको छोड़ना नही चाहिए। वे यह भी सोचते थे कि अपने हाथ मे इन अधिकारो को रखकर हम देश की अधिक सेवा कर सकेंगे और लडाई से जो नुकसान हमें पहुच सकता है उससे बचने में अथवा लड़ाई से जो लाभ हम उठा सकते हैं उसे प्राप्त करने मे—दोनो ही मे अधिकार रखकर ही हम अधिक कारगर हो सकते है। पर ऐसे लोगों की सख्या बहुत कम थी। अधिक लोगों का विचार था कि जैसे-जैसे लड़ाई बढ़ती जायगी, सूबों के

अधिकार केन्द्रीय सरकार अपने हाथों में लेती जायगी; मन्त्रिमण्डल अपने सूबों में कुछ काम बनाने का अधिकार तो रख नही सकेंगे, पर जो-कुछ बिगड़ेगा उसकी जवाबदेही उनके सिरपर आती जायगी—केन्द्रीय सरकार में हिन्दुस्तानियों को कोई अधिकार मिलता नही दीखता, इसलिए वहां से जो-कोई भी हिन्दुस्तानी सदस्य वाइसराय के साथ काम करेगा उसे युद्धमन्त्री और वाइसराय की 'हां' में 'हा' मिलाने के सिवा और कुछ करने का मौका नही मिलेगा, वह चाहे भी तो प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलों की कोई विशेष मदद न कर सकेगा; लडाई के लिए जनता से पूरी मदद की आशा की जायगी, जनता खुशी से मदद देगी नही, क्योकि उसके सामने न तो भविष्य की कोई उज्ज्वल आशा है और न वर्तमान मे उसके प्रतिनिधियों को कोई अधिकार है, इसलिए जब वह ब्रिटिश सरकार के आज्ञानुकूल मदद नही दे सकेगी तो मन्त्रिमण्डलों को जनता के साथ कुछ जोर-जबरदस्ती भी करनी पड़ेगी, यह कोई भी सच्ची लोकसेवा का व्रत लेनेवाली संस्था ऐसी अवस्था में नही करेगी; इसलिए कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल भी ऐसा करने मे असमर्थ होगे—ब्रिटिश गवर्नमेण्ट को भी लड़ाई लड़नी ही है और उसे मदद – चाहे वह खुशी से दी जाय अथवा जबरदस्ती ली जाय—मिलनी ही चाहिए, वह मन्त्रिमण्डलो से इस मदद की आशा रखेगी ही और यदि उसकी आशा पूरी न होगी तो स्वभावतः क्षोभ होगा—अतः अच्छा यही होगा कि हम इस सूखी जवाबदेही को अपने ऊपर न ले, नही तो हमको जनता और ब्रिटिश सरकार दोनों के लात-जूते सहने पड़ेगे और अगर वह न सहना पड़ा तो कम-से-कम दोनो की फटकार अवश्य खानी पड़ेगी—विशेषकर ऐसी दशा मे जब हम काग्रेसी लोग उस परिस्थिति को, जो आज कायम है और जो लड़ाई के कारण और भी जटिल हो जानेवाली है, संभालने की शक्ति से वंचित रखे जा रहे है; और यदि किसीका यह विचार हो कि ब्रिटिश सरकार सचमुच भारतवर्ष के साथ न्याय करना तथा उसे स्वतंत्र बना देना चाहती है, तो इसका सबूत उसकी कार्रवाइयों से मिल जायगा और यदि वह नही चाहती है तो काग्रेस का हट जाना ही ठीक होगा।

वर्किंग कमिटी और अखिल भारतीय कमिटी ने निश्चय कर लिया कि कांग्रेस के प्रश्नों का यदि सन्तोषजनक उत्तर नही मिला तो उसे कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों को इस्तीफा देकर हट जाने के लिए मशविरा देना पड़ेगा। वर्धा में अखिल भारतीय कमिटी की बैठक हुई। उसने वर्किंग कमिटी को अधिकार दे दिया कि इस बात का वह निर्णय करे और आवश्यकता पड़ने पर मन्त्रिमण्डलों को इस्तीफा देने का आदेश दे। जब वाइस-

राय से बातचीत और सरकार की घोषणा के बाद से वर्किंग कमिटी को सन्तोष नही हुआ तो उसने कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलो को सूचना दे दी कि अपने-अपने प्रान्त की धारा-सभाओं में वे देश की मांग का समर्थन करायं और उसके बाद इस्तीफा दे दें। उन्होंने ऐसा ही किया। १९३९ के नवम्बर मे सभी सूबों के कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल टूट गये। कांग्रेस का बहुमत इतना था कि कोई दूसरा मन्त्रिमण्डल बन नही सकता था; क्योंकि बनते ही उसपर अविश्वास प्रकट किया जा सकता था। साथ ही, शायद गवर्नर लोग और वाइसराय यही पसन्द करते थे कि इस प्रकार के मन्त्रिमण्डल के बनिस्बत, जो कभी चू-चें ही कर सकते थे, किसी भी मन्त्रिमण्डल का न रहना ही उनके लिए अच्छा होगा—उनको अपनी मनमानी करने का पूरा मौका रहेगा। इसलिए उन्होंने उन सभी सूबो में विधान की ९३वीं धारा के अनुसार अनुशासन अपने हाथो मे ले लिया। अब केवल काम-काज चलाने का ही नही, नये कानून बनाने और पुराने को बदलने या रद करने का भी पूरा अधिकार गवर्नरो के हाथ में आ गया। लड़ाई आरम्भ होते ही ब्रिटिश सरकार ने १९३५ के विधान मे एक दिन में सशोधन कर लिया था, जिसका नतीजा यह होता था कि जब कभी वाइसराय चाहें, प्रान्तीय सरकारो के अधिकार अपने हाथो मे कर सकते है अथवा उनसे अपनी आज्ञाओ का पालन करा सकते है। यह युद्ध की नाजुक परिस्थिति के नाम पर किया गया था, पर मतलब साफ था और जब मन्त्रिमण्डलों ने इस्तीफा दे दिया तो उनका रास्ता और भी साफ हो गया।

कुछ लोग आज भी जोर देकर कहते हैं कि यदि मन्त्रिमण्डलों ने इस्तीफा न दिया होता और अपने स्थानो पर डटे रहते तो जो धांधली और ज्यादतिया लड़ाई के नाम पर सूबो में हुई हैं और की गई है वे नही होने पाती। जो लोग इस तरह की बाते करते है वे विधान के इस सशोधन को भूल जाते है और यह भी भूल जाते है कि जहा मन्त्रिमण्डल कायम रहे है वहां भी केन्द्रीय सरकार की धाधली चली है—बगाल का मन्त्रिमण्डल इसका जीता-जागता सबूत है। वहां मन्त्रिमण्डल बनाने और तोड़ने में गवर्नर ने पूरा हाथ बटाया है। वहा की जनता लाखों की संख्या मे दाने-दाने के लिए मोहताज होकर मरी है—मन्त्रिमण्डल न उन कारणों को ही दूर कर सका, जिनसे वहा का भयंकर दुर्भिक्ष पैदा हुआ और न अकाल पड़ जाने पर तबतक जनता की कुछ सहायता ही कर सका जबतक केन्द्रीय सरकार ने इसमें हाथ नहीं लगाया—सब तथाकथित अधिकारों के रहते हुए भी न श्री फजलुल हक का और न सर नाजिमुद्दीन का मन्त्रिमण्डल बंगाल को इस विपत्ति से बचा सका। इसी सिलसिले में पंजाब और सिन्ध के मन्त्रिमण्डलों की

बेकसी भी साफ साबित हो गई। उनको केन्द्रीय सरकार ने दबाकर उनसे महंगी और गल्ले के निर्यात के सम्बन्ध मे कार्रवाई कराई। जब हम सूबा-सरकार के अधिकार के विषय मे विचार करते है तो हमें इससे मतलब नहीं है कि वह सरकार सही काम कर रही थी या गलत। अगर अधिकार है तो सही करने का है और गलत करने का भी। गलत करने पर ही, अधिकार है या नही, ठीक पता चलता है। हो सकता है जिन मामलो मे केन्द्रीय सरकार ने उनको दबाया, उसने ठीक ही दबाया और वह गलत काम कर रही थी। पर इससे यह बात साबित हुए बिना नही रह सकती कि प्रान्तीय सरकारो के अधिकार सीमित है और लडाई के आर्डिनेंसो के जमाने मे केन्द्रीय सरकार उनसे जो चाहे करा सकती है। याद रहे, ये मन्त्रिमण्डल ब्रिटिश सरकार की मदद करने का दावा बराबर करते रहे है और मदद करते भी रहे है। तो भी केन्द्रीय सरकार ने उनको दबाने मे हिचक नही दिखलाई। कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल अगर अपनी जगह पर रह गये होते और कांग्रेस का ब्रिटिश सरकार के साथ समझौता सन्तोषप्रद नही हुआ होता—जैसा नही हो सका—तो इसमे जरा भी सन्देह की गुजाइश नही है कि उनको बहुतेरे ऐसे कामो के करने पर मजबूर किया जाता, जिनको न तो कांग्रेस और न वे स्वय पसन्द करते। उनको मजबूर होकर कुछ दिनो मे ही इस्तीफा देना पड़ता और नही तो गवर्नर के 'हा' मे 'हा' मिलाकर अपने विचार और सिद्धान्तो के विरुद्ध उनकी फरमा-बरदारी करनी ही पड़ती।

इस निश्चय के प्रायः पाच बरसो के बाद जब ये पक्तिया लिखी जा रही है, उन घटनाओ का और ब्रिटिश नीति का सिंहावलोकन करके हम एक ही नतीजे पर पहुच सकते है और वह यह कि इगलेड साम्राज्यवाद की लड़ाई लड़ रहा है, दूसरे जो चाहे समझते हो। उसका उद्देश्य है—श्री चर्चिल के शब्दों में, 'जो उसका है उसे अपने कब्जे मे रखना।' इतना ही नहीं, ब्रिटिश साम्राज्यवाद यदि जर्मनी को हराकर निष्कंटक, एकछत्र और अधिक जबरदस्त न बनाया जा सके, तो कम-से-कम इसको अपना स्थान यूरोप, एशिया और अफ्रीका मे ज्यों-का-त्यों कायम रखना चाहिए। ऐसी अवस्था में भारत के लिए कौन-सी आशा हो सकती थी? कांग्रेस के दिल में जो सन्देह १९३९ मे था, उसका समर्थन उसके बाद की घटनाओ ने और ब्रिटिश राजनीतिज्ञों के शब्दजालो ने—विशेषकर श्री चर्चिल और श्री एमरी के कलाबाजीभरे उद्गारों ने—स्पष्ट रूप से गला फाड़-फाड़कर किया है। इसलिए मैंने उस समय भी समझा था, और आज यह धारणा और भी दृढ़ हो गई है कि हम मंत्रिमण्डल में रहकर देश का हित करने मे बिलकुल असमर्थ थे—हम अपनेको देश के लिए अनर्थ का साधन ही बना सकते थे।

इन धारणाओं के बावजूद मैं यह नहीं कह सकता कि मैं उन दिनों इंगलैंड की हार को पसंद करता। चाहे जिन कारणों से हो, जर्मनी की जीत मंजूर नहीं थी। उसने चेकोस्लोवाकिया के साथ ज्यादती की थी, इसलिए कि वह उसके मुकाबले कमजोर देश था। जब जर्मनी ने उस देश के साथ ज्यादती की तब दूसरे लोग भी कुछ-न-कुछ लाभ उठाने के लोभ का संवरण न कर सके। उनमें हंगरी और पोलैंड मुख्य थे। इसलिए जब जर्मनी ने उलटे पोलैंड पर भी ज्यादती शुरू कर दी तब मन में कुछ ऐसा भी भाव उठता था कि ठीक ही किया—पोलैंड को, 'जैसे को तैसा' मिला! फिर जब उसने हालैंड, बेलजियम, डेनमार्क और नार्वे पर भी चढ़ाई कर दी तो मेरे दिल पर इसका बहुत असर पड़ा। मुझे मालूम होने लगा कि किसी भी कमजोर देश को जर्मनी स्वतन्त्र नहीं रहने देगा। अंगरेजों के प्रति जो थोड़ा-सा गुस्सा था वह कम हो गया और मुझे ऐसा भान होने लगा कि हमको ब्रिटिश की मदद करनी चाहिए, जिससे वह जर्मनी को हरा सके और इस अन्यायी शक्ति का दमन कर सके। यह भाव इतना प्रबल हो गया कि मैंने एक छोटे बयान में अपने उद्‌गार को प्रकाशित भी कर दिया। मेरा खयाल है कि बहुतेरे दूसरे कांग्रेसी लोगों के विचार भी इसी प्रकार के थे। हम ब्रिटिश सरकार की त्रुटियों और हिन्दुस्तान के प्रति उसके अन्यायों को याद रखते हुए भी जर्मनी की धांधली से इतने स्तम्भित हो गये कि ब्रिटिश साम्राज्य की करतूतों को प्रायः भूल-सा गये। इसलिए यह कहना—जैसा आज बहुतेरे अंगरेज और उनके पिट्ठू कह दिया करते हैं—कि कांग्रेस के लोग इंगलैंड की कमजोरी को महसूस करके अपने पुराने वैर का बदला लेना और उसकी विपत्ति से लाभ उठाना चाहते थे, बिलकुल असत्य है। बावजूद हजार शिकायतों के, लड़ाई के आरम्भ के समय से १९४० की जुलाई तक—जब बम्बई में अखिल भारतीय कमिटी की बैठक में कांग्रेस की ओर से यह कहा गया कि अगर ब्रिटिश सरकार हिन्दुस्तान की भावी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दे और उसे शासन में तत्काल अधिकार दे दे तो भारत एकमत होकर लड़ाई में मदद करेगा—प्रायः किसी कांग्रेसी के दिल में ब्रिटिश सरकार के प्रति कटुता नहीं थी और उस समय तक सभी कांग्रेसी लोग ब्रिटेन की मदद करना अपना कर्तव्य ही मानते थे। हां, उस कर्तव्य की पूर्ति के लिए अधिकार चाहते थे, जिसके बिना जनता को उत्साहित करना संभव नहीं था।

जब बम्बई की उस बैठक के बाद, जिसके कारण गांधीजी को कांग्रेस से अपनेको अलग कर लेना पड़ा था और उनको अलग करके भी वर्किंग कमिटी तथा अखिल भारतीय कमिटी ने लड़ाई में सक्रिय मदद की प्रतिज्ञा

की थी, ब्रिटिश सरकार ने उस प्रस्ताव को इतनी जल्दी में ठुकरा दिया, तब बहुतेरों के दिल में क्षोभ पैदा हुआ, और वह क्षोभ श्री एमरी तथा श्री चर्चिल की बातों से दिन-दिन बढ़ता ही गया है। इसमें भी सन्देह नहीं कि जितने कम दाम पर इगलैंड उस वक्त सौदा कर सकता था उतने पर शायद फिर कभी न कर सकेगा। हां, दूसरी बात है कि अपने पशुबल से वह भारतवर्ष को कुछ दिनो तक दबाये रखे। यदि उस समय समझौता हो गया होता तो शायद जापान को भी इस लड़ाई में कूदने के पहले कुछ और विचार कर लेना पड़ता। यदि जापान को यह विश्वास हो जाता कि हिन्दुस्तान ब्रिटिश सरकार के साथ हर तरह से, तन-मन-धन से, है तो उसकी हिम्मत पूर्व एशिया पर एकबारगी धावा बोलने की उसी तरह नही होती जिस तरह हुई। यदि वह ऐसी हिम्मत करता भी तो कौन कह सकता है कि उसे उतनी सफलता मिलती जितनी मिली। हिन्दुस्तान की आजादी के साथ-साथ बरमा की स्वतन्त्रता का मसला भी तय हो गया होता। यदि बरमा की बात हो गई होती तो मलाया और सिंगापुर की वह दशा न होती, जो हुई। इसलिए, मैं मानता हूं कि जितनी अदूरदर्शिता ब्रिटेन ने उस समय की उतनी शायद उसने अपने इतिहास में एक अवसर को छोडकर और कभी नही की। वह अवसर था जब उसने अमेरिका के उपनिवेशों की मांग अठारहवीं शताब्दी मे ठुकराई थी। उसका नतीजा उनके लिए अच्छा नहीं हुआ, यद्यपि वह संसार के लिए शायद अच्छा ही हुआ। और, इसका नतीजा, कौन कह सकता है, क्या होगा? हो सकता है, इगलैंड के लिए यह उससे भी बुरा हो जो अमेरिका मे हुआ और संसार के लिए भी उससे अधिक लाभकर। अस्तु, यह तो भविष्य की बात है, सस्मरण की नही, और इसके लिए यह स्थान भी नही है। यहां तो इतना ही कह देना काफी है कि प्रचार के लिए चाहे कांग्रेस पर जो भी दोष लगाया जाय, सत्य का तकाजा यही रहेगा कि कांग्रेस ने हर कदम पर इस बात की कोशश की है कि भारत प्रतिष्ठापूर्वक और सफलतापूर्वक अधिकार के साथ ब्रिटिश सरकार और प्रजातन्त्रवादी देशों की सहायता देने के योग्य बना दिया जाय, लेकिन हर कदम पर उसको केवल नकरात्मक उत्तर ही मिला, हमेशा उसका तिरस्कार ही किया गया। अन्त में, ऊबकर उसे १९४२ के अगस्त का निश्चय करना पड़ा, जिसका जिक्र आगे आयगा।

लड़ाई आरम्भ हो जाने के बाद कुछ समय तक यह अनिश्चित-सा हो गया कि कांग्रेस का अधिवेशन होगा कि नहीं और होगा तो कब होगा। कांग्रेस का नियम फिर बदल गया था और निश्चय हो गया था कि दिसम्बर में ही सालाना बैठक हो। यह साफ हो गया कि अब दिसम्बर में बैठक

नहीं होगी। पर थोड़े ही दिनों में यह भी साफ हो गया कि बैठक अवश्य करनी चाहिए। इसलिए, अब निश्चय हुआ कि मार्च में सालाना इजलास किया जाय। रामगढ़ मे अब फिर जोरो से तैयारी होने लगी। मैं वहां बहुत समय नही दे सकता था; क्योंकि मुझपर अखिल भारतीय कमिटी के काम का बोझ भी था। पर अब वहा केवल श्री अम्बिकाकान्त ही नही रह गये, मंत्रिमण्डल के इस्तीफा के बाद दूसरे लोग भी वहां जाने के लिए फुर्सत पा गये—विशेषकर अनुग्रहबाबू, श्री कृष्णवल्लभसहाय और श्री रामनारायण-सिंह की सेवा भी उपलब्ध हो गई। इसलिए मैं बहुत हद तक निश्चिन्त भी हो गया।

: १३८ :

रामगढ़-कांग्रेस का बरसाती अधिवेशन

रामगढ़ में लकड़ी-बांस की कमी नहीं थी। मजदूर भी काफी मिलते थे। इसलिए जगल साफ करके झोपड़ी बनवाने का काम जोरों से जारी हो गया। पर श्री रामदास गुलारी अस्वस्थ हो गये। अब उनका वहा रहना कठिन हो गया। सौभाग्य से ठीक उसी समय विलायत से इजीनियरी की उच्च परीक्षा पास करके श्री रामजीप्रसाद वर्मा वापस आ गये। यह लड़कपन से ही कांग्रेस के साथ थे। १९३० मे जेल गये थे। वहा बेत भी खाये थे। पढ़ने में तेज थे, इसलिए कालेज के प्रिंसिपल ने उनको फिर इजीनियरिंग कालेज मे, जहा वह पहले पढ़ रहे थे, भरती कर लिया। वहा से अच्छी तरह से अन्तिम परीक्षा में उत्तीर्ण होकर इंजीनियर हो गये। कुछ दिनों तक, इधर-उधर कुछ पैसे कमाकर, अधिक शिक्षा के लिए इगलैंड जाने का इनका विचार हुआ। वहां जाकर खूब अच्छी तरह से बडी-बड़ी परीक्षाएं पास कर लीं। ठीक वहा से इनके चलने के समय ही लडाई शुरू हो गई। पर किसी तरह हिन्दुस्तान पहुंच गये। पहुचते ही रामगढ के मुख्य इजीनियर का काम इन्होने सभाल लिया। इसलिए जो चिन्ता और दिक्कत श्री गुलारीजी के चले जाने पर होती वह बहुत अशो तक न होने पाई। रहने के लिए झोपड़े, खुले अधिवेशन के लिए पडाल और विषय-निर्वाचिनी के लिए भी पडाल बनवाने के अलावा प्रदर्शनी के लिए भी झोपडे बनवाने थे। पानी का प्रबन्ध करना था। रोशनी के लिए इन्तजाम करना था। प्रत्येक का भार किसी-न-किसी पर दिया गया। पर निर्माण का सारा काम इजीनियरिंग-विभाग पर ही रहा। वह ठीक तरह से समय के अन्दर पूरा भी हो गया।

हमने जिस जगह को कांग्रेस के लिए चुना था वहा एक-दो छोटे-मोटे कुएं तो थे, पर इस योग्य नही थे कि जितने आदमी आयेंगे उतने में से शतांश के लिए भी पूरा पानी दे सकेंगे। दामोदर नदी के किनारे पर स्थान था, पर दामोदर उन दिनों प्राय: सूखी-सी रहती है—वही दामोदर जो बाढ आने पर भयंकर रूप धारण कर लेती है और बिहार से निकलकर बंगाल में, विशेषकर बर्दवान-जिले में, भारी विपत्ति और संकट का कारण बन जाती है। रामगढ़ में, जाड़े और गर्मियों में, एक पतली धारा द्वारा ही—

जिसे आदमी बिना धोती भिगाये आसानी से पार कर सकता है—वह अपना अस्तित्व जताती रहती है। पर यद्यपि ऊपर की धारा पतली और छिछली रहती है तथापि बालू के नीचे जल की मात्रा काफी रहती है। यदि पानी निकालने और रोकने का प्रबन्ध किया जा सके तो वह स्रोत अटूट होता है। इसलिए यह निश्चय किया गया कि नदी से ही पानी का प्रबन्ध किया जाय। कुए द्वारा भी शायद हो सकता था, पर पथरीली पहाड़ी जमीन होने के कारण यह निश्चय करना कठिन था कि वह कुंआ कहां खोदा जाय और खोदने पर भी उसमे काफी पानी मिलेगा। नदी मे कुंआ खोदना आसान था और बहुत नजदीक पानी मिल जाता था, इसलिए नदी मे कुंआ खोदकर पम्प लगाया गया। पानी साफ करने के लिए बड़ी-बड़ी टकियां पक्की बनाई गई, जिनमे एक समय एक लाख आदमियों के लिए दो या तीन दिनों तक के खर्च-भर को काफी पानी रह सके। सारे 'नगर' में पाइप लगाकर पानी पहुंचाने का प्रबन्ध किया गया। इस प्रबन्ध के लिए गया-म्युनिसिपैलिटी और भागलपुर-म्युनिसिपैलिटी के पानी-कल के विशेषज्ञ इंजीनियरों ने बहुत परिश्रम से काम किया। पानी का प्रबन्ध ठीक हुआ। उसमे केवल एक त्रुटि रह गई। वह यह थी कि कुए नदी मे थे और नदी मे अचानक पानी आ जाने पर कुए और पम्प दोनो बेकार हो जा सकते थे। पर यह कौन जानता था कि मार्च मे इतनी वर्षा होगी कि दामोदर में बाढ़ आ जायगी!

पानी के खयाल से, और शोभा बढ़ाने के लिए भी, हमने एक और प्रबन्ध किया। जहा कांग्रेस-नगर बसा था, उसके पास होकर एक छोटी नदी 'हुरहुरी' बही दामोदर मे मिलती थी। इस नदी को हम लोगो ने पक्के बाध से बाध दिया। नतीजा यह हुआ कि एक ओर खूब तैरने लायक गहरा पानी जमा हो गया और दूसरी ओर बाध की ऊचाई पर से जो पानी बहता वह एक छोटे जल-प्रपात की शोभा के साथ-साथ नहानेवालो के लिए एक कौतूहल की वस्तु भी हो गया।

इरादा तो था कि गाव की कांग्रेस में, जहांतक हो सके, गांव की चीजों का ही इस्तेमाल किया जाय; पर ऐसा न हो सका। इस नियम का उल्लंघन सबसे पहले जल-कल द्वारा किया गया। अब रह गई रोशनी की बात। इसके लिए या तो बिजली का प्रबन्ध किया जाता या किटसन-बत्तियों का। दोनों में से एक भी देहात की चीज नही थी। तेल की मशालों, पनसाखों और गेंदों से काम चलाना कठिन मालूम हुआ। पर हमने यथासाध्य कोशिश की कि कोई ऐसा ही प्रबन्ध किया जाय। किन्तु न हो सका। अन्त मे बिजली की शरण लेनी पड़ी। इसमें एक सुविधा भी अनायास और

अचानक मिल गई। गया-कॉटन-मिल्स के मालिकों ने ठीक उसी समय नया इंजन और डाइनमो वगैरह मंगाया था। उन्होंने उन सब चीजों का बंधा-बंधाया और लदा-लदाया पार्सल गया में न खोलकर अपने इंजीनियर के साथ सीधे रामगढ़ भेज दिया! काम आसान हो गया। बिजली लग गई।

प्रदर्शनी का काम कठिन हुआ करता है; क्योंकि उसमें बहुत चीजें जुटानी पड़ती है। चर्खा-सघ के मंत्री श्री लक्ष्मीनारायण ने इसका भार उठाया। उन्होंने अखिल भारतीय चर्खा-संघ तथा ग्रामोद्योग-संघ की सहायता से खासा इन्तजाम कर लिया। हा, उन्होंने सिद्धान्ततः प्रदर्शनी के अहाते के अन्दर बिजली नही जाने दी; क्योकि प्रदर्शनी एकमात्र ग्रामोद्योग पर ही निर्भर थी।

कुछ मित्रों का विचार था कि आनेवाले प्रतिनिधियो के लिए बिहार का एक इतिहास हिन्दी में तैयार करा दिया जाय। मुझे यह बात पसन्द आई। त्रिपुरी में भी इस प्रकार का इतिहास तैयार हुआ था। बिहार का इतिहास तो गौरवपूर्ण है। यह काम श्री जयचन्द्र विद्यालंकार के जिम्मे किया गया। उसके छापने का भार लहेरिया-सराय के श्री रामलोचनशरण बिहारी ने लिया। इतिहास छपकर तैयार हो गया।

बिहार मे कुछ होनहार चित्रकार तैयार हो रहे है। सबकी इच्छा हुई और मेरी भी राय हुई कि बिहार के इतिहास की कुछ गौरवपूर्ण घटनाए चित्रों द्वारा चित्रित कर दिखलाई जायं। इस काम को वयोवृद्ध सिद्धहस्त-कलाकार बाबू ईश्वरीप्रसाद वर्मा के नेतृत्व का लाभ मिला। वह कलकत्ता-आर्ट-स्कूल के वाइस प्रिंसिपिल थे। अब वह वहां पेन्शन पाकर अपने जन्म-स्थान पटना मे रह रहे है। कुछ सुन्दर मौलिक चित्र बनाये और प्रदर्शनी में रखे गये। उनकी प्रतिलिपियां पुस्तकाकार प्रकाशित की गईं, जिसमे चित्रित दृश्यों का ऐतिहासिक विवरण दे दिया गया। यह पुस्तक लोगों को बहुत पसन्द आई। चित्रो को लोगो ने बहुत चाव से देखा।

कांग्रेस का आयोजन बहुत बड़े पैमाने पर, जैसा हुआ करता है, किया गया। मौलाना अबुलकलाम आजाद प्रायः एकमत से सभापति चुने गये—प्रायः एकमत से इसलिए कहा कि श्री मानवेन्द्रनाथ राय (एम० एन० राय) भी उम्मीदवार थे! पर उनको थोड़े ही वोट मिले। बहुत बड़ा बहुमत मौलाना के पक्ष में था।

कांग्रेस के अधिवेशन के कुछ पहले ही पटने में वर्किंग कमिटी की बैठक हस्बमामूल की गई। यह बैठक इसलिए की जाती है कि कांग्रेस में उपस्थित करने के लिए कुछ प्रस्तावों का मसविदा पहले से तैयार कर लिया जाय

ताकि ठीक कांग्रेस के समय इस काम में जल्दी न करनी पड़े। इस बैठक के बाद ही मैं रामगढ़ के लिए रवाना हो गया। मुझे लोगों ने स्वागत-समिति का अध्यक्ष चुन लिया था। वह भी कुछ अजीब ढंग से हो गया था। स्वागत-समिति के लोगों को ऐसा मालूम हुआ कि स्वागताध्यक्ष के चुनाव के लिए कई नाम पेश किये जा सकते हैं। यह बात लोगों को पसन्द नहीं थी; क्योंकि वे इस मामले में मतभेद का प्रदर्शन करना नहीं चाहते थे। किसी व्यक्ति विशेष के सम्बन्ध में कुछ कहना उचित नहीं है, इसलिए मैं नाम नहीं देता हूं। इस प्रकार के मतभेदों में कोई डरने की बात नहीं होनी चाहिए—विशेषकर स्वागताध्यक्ष की जिम्मेदारी केवल स्वागत और प्रबन्ध की होती है। कांग्रेस की नीति से उसका कोई, स्वगताध्यक्ष की हैसियत से, सम्बन्ध नहीं होता। तो भी कुछ लोगों की राय हुई कि मैं यदि इस पद को स्वीकार कर लूं तो मतभेद नहीं होगा। मजबूरी मुझे मान लेना पड़ा। अस्तु, मैं पटने से मोटर पर रवाना हुआ। रास्ते में नालन्दा में उतर गया। वहां की खुदाई से निकली हुई इमारतों और म्युजियम में संग्रह की हुई चीजों के देखने का सुअवसर प्राप्त हो गया। मुझे खेद और लज्जा से कहना पड़ता है कि नालन्दा यद्यपि पटना-जिले में ही है, जहां मैं रहा करता हूं, मैंने इसके पूर्व उन इमारतों और सामग्रियों को नहीं देखा था। मुझे देखकर आश्चर्य ही नहीं हुआ, बिहार के अतीत गौरव के प्रति श्रद्धा और भी बढ़ गई। नालन्दा से कुछ आगे बढ़कर रजौली-डाक-बंगला पर मैं दो दिनों के लिए ठहर गया। वहां ठहरने के दो कारण थे—एक तो कुछ आराम कर लेना जरूरी था, दूसरा था स्वागत का भाषण तैयार कर लेना। जगह भी अपने ढंग की अच्छी मिल गई। थोड़ी ही दूर पर जंगल और पहाड़ उस स्थान की शोभा बढ़ाते हैं। हम लोगों के मित्र और पुराने कांग्रेसी श्री गौरीशंकरशरणसिंह का घर उसी गांव में है। इसलिए बिना तरद्दुद और चिन्ता के वहां एकांत में रहकर भाषण लिखने में सुविधा हुई। भाषण में मैंने बिहार के इतिहास का ही थोड़ा-सा सिंहावलोकन किया था। चलते प्रश्नों और मसलों के सुलझाने अथवा उनपर मत प्रकट करने का प्रयत्न मैंने जानबूझकर छोड़ दिया था।

रामगढ़ पहुंचकर, तैयारी में जो कमी थी उसको पूरा कराने में ही दिन-रात लगा रहा। महात्माजी समय से पहुंच गये। उनको प्रदर्शनी का उद्घाटन करना था। इसलिए वह कुछ पहले ही आये। उनके पहुंचने के एक दिन पहले बहुत पानी बरस गया। कुछ आंधी भी आ गई। प्रदर्शनी के काम में कुछ बाधा पड़ी। पर बात संभाल ली गई। महात्माजी ने समय पर उद्घाटन किया। आशा की जाती थी कि अब इस वर्षा के बाद आस-

मान साफ रहेगा और जो कुछ होना था, हो चुका। पर होनेवाला कुछ दूसरा ही था।

हुरहुरी और दामोदर के किनारे नेताओं के लिए झोंपड़े बने थे, जिनमें से एक मे महात्माजी, दूसरे में सभापतिजी और अन्यान्य झोंपड़ो में और-और लोग हराये जानेवाले थे। झोंपड़ों की बनावट अच्छी और सुन्दर थी। बांस की चटाई की दीवार, होगला की छाजन और माखू के खम्भे। इसी तरह सभी झोंपडों का निर्माण किया गया था—चाहे वह ठहरने के लिए हो अथवा प्रदर्शनी के लिए या कमिटी की बैठक के लिए। बीच में अच्छी चौड़ी सड़क बनाई गई थी। बीच-बीच मे आवश्यकतानुसार गलिया बनी थी।

यह स्थान पटना-रांची के रास्ते पर ही था। उसपर दामोदर नदी पर एक बड़ा पुल बना हुआ है। पुल और सड़क से नगर की शोभा खूब देखने में आती थी। सड़क बराबर चलती रहती है। उस समय तो और भी अधिक चालू थी। वहां रेल के दो स्टेशन है—एक बी० एन० आर० का स्टेशन रामगढ, नगर से आधा मील दक्षिण; दूसरा स्टेशन ई० आइ० आर० का राची-रोड, जो वहां से प्रायः चार मील उत्तर था। दोनो रेलवे के अधिकारियों ने, भीड की सुविधा के लिए, स्टेशनों पर काफी प्रबन्ध किया था। महात्माजी रामगढ-स्टेशन पर उतरे और सभापतिजी राची-रोड स्टेशन पर। बड़े जलूस के साथ सभापति कांग्रेस-नगर मे पहुचाये गए। नगर का नाम स्वर्गीय मजहरुलहक साहब के नाम पर रक्खा गया था। एक विशेष फाटक स्वर्गीय दीपनारायणसिंह के नाम पर था।

अखिल भारतीय कमिटी और विषय-निर्वाचिनी की बैठकें दो-तीन दिन पहले ही आरम्भ हुईं। उन्होने अपना काम प्राय. कांग्रेस के खुले अधिवेशन के दिन तक पूरा कर लिया था। जन-समूह वहा एकत्र हो गया था। पंडाल बहुत सुन्दर बना था। उसको प्रकृति ने ही सुन्दर बनाया था। हमारा काम तो था स्थान चुनकर जमीन बराबर करा देना, नेताओ का मच अर्थात् प्लाटफार्म बनवा देना, रोशनी लगा देना और चारों ओर घेरा बनवा देना। पंडाल के पास में ही घनघोर जंगल प्रायः दो तरफ था। जंगल था पहाड़ पर, इसलिए वहा से दो ओर सुन्दर उठते हुए पहाड और जंगल, जहातक आंखे जा सकती थीं, नजर आते थे। दूसरी ओर कांग्रेस के प्रतिनिधियो के निवास-स्थान आदि दूर तक फैले हुए थे, जो रात के समय रोशनी से जग-मग-जगमग करने लगते। प्लाटफार्म सबसे नीचे था और प्रतिनिधियों तथा दर्शकों के बैठने की जगह प्राकृतिक गलरी-जैसी बनी थी। चाहे कोई भी दर्शक कितनी ही दूरी पर क्यों न हो, वह मंच पर बैठे सभापति तथा दूसरे

नेताओं को ठीक देख सकता था। लाउड-स्पीकर के कारण उनकी बातें सुनने में कोई कठिनाई तो थी ही नहीं।

कांग्रेस के अधिवेशन का दिन आ गया। दर्शकों के टिकट बड़ाधड़ बिक रहे थे। शायद घंटे में छ:-सात हजार या इससे भी अधिक आमदनी हो रही थी। अधिवेशन संध्या-समय पांच या छः बजे से होनेवाला था। मैं सभापतिजी को लाने के लिए चला गया। पंडाल के अहाते में एक सायादार झोंपड़ा कुछ दूर पर बना था, जहां से मुख्य नेताओं को सभापति के साथ जलूस बनाकर ले जाने का प्रबन्ध था। कुछ लोग वहांतक पहुंच गये, कुछ लोग आ ही रहे थे कि इतने में अचानक आकाश के एक कोने में बादल उमड़ आया और पानी बरसना आरम्भ हो गया! सभापतिजी उस झोंपड़े तक पहुंच गये थे, पर अभी जलूस नहीं निकला था। पानी पड़ने लगा। चन्द मिनटों के अन्दर इतने जोर की मूसलाधार वर्षा होने लगी कि वह नीची जमीन पानी से भर गई। सभी दर्शक और प्रतिनिधि अपने-अपने स्थान पर बैठे रहे—भीगते रहे—इस आशा से कि अब पानी रुक जायगा और अधिवेशन हो सकेगा। पर ऐसा नहीं हुआ। वर्षा का जोर बढ़ता ही गया। अन्त में मंच के पास नीची जमीन में इतना पानी भर गया कि वहां लोगों का खड़ा रहना भी कठिन हो गया। लाउड-स्पीकर का सारा प्रबन्ध उसी स्थान पर था। इसलिए वह बिलकुल बेकार हो गया। अन्त में उसी वर्षा में सभापतिजी मंच पर गये। मैं भी साथ गया। मैंने दो-चार शब्दों में स्वागत कर दिया—भाषण पढ़ने का न कोई मौका ही था और न कोई उसे सुन ही सकता। सभापतिजी ने भी दो-चार शब्द कहकर उस दिन का अधिवेशन समाप्त कर दिया। जिन लोगों ने महीनों से दिन-रात परिश्रम करके इस शुभ दिन की तैयारी की थी, वे लोग बहुत निराश हुए, पर करना क्या था? अब तो देखना यह था कि प्रतिनिधियों के रहने के स्थान का क्या हाल है। यह सन्तोष का विषय है कि झोंपड़े इस मूसलाधार पानी को भी बर्दाश्त कर गये। प्रतिनिधि उनमें रात को पानी बरसते रहने पर भी सो सके। उनको कष्ट तो अवश्य हुआ, पर मैं समझता हूं कि हम लोगों के साथ सबकी सहानुभूति रही, किसीको हमसे या हमारे प्रबन्ध की त्रुटियों से रंज नहीं हुआ।

दूसरे दिन पानी नहीं बरसा, यद्यपि कुछ बूंदाबांदी होती रही। झंडा-अभिवादन के लिए खुले मैदान में एक स्तम्भ बनाया गया था, जो पक्का सीमेण्ट का था। उसके सिरे पर अशोक-स्तम्भ की तरह सिंहों की मूर्ति थी। उसी स्तम्भ के चारों तरफ लोग जमा हो गये। कांग्रेस का अधिवेशन वहीं किया गया। पंडाल में तो पानी जमा होने के कारण बैठना या खड़ा रहना

भी असम्भव था। इस खुले मैदान में स्तम्भ के चबूतरे पर सभापति, महात्माजी तथा कुछ दूसरे मुख्य लोग बैठे और सब लोग चारों ओर जमीन पर बैठ गये। जो प्रस्ताव विषय-निर्वाचिनी ने उपस्थित किये थे, बाजाब्ता उपस्थित किये गए। पूरी बहस के बाद वे स्वीकृत हुए। जो कुछ बाजाब्ता अधिवेशन में होता वह सब किया गया, पर कुछ कम पैमाने पर; क्योंकि हमेशा आसमान का डर बना रहता था कि कहीं फिर पानी न बरसने लगे। महात्माजी का भी भाषण हुआ। अन्त मे मैंने सब लोगो से असुविधाओं के लिए माफी मांगते हुए निवेदन किया कि लोग अब अपने-अपने स्थान को चले जायं; क्योंकि नदी मे पानी आ जाने के कारण हमारा पानी-कल का प्रबंध बेकार हो गया था, लोगो को अब नदी मे गदले पानी पर भरोसा करना पड़ेगा, हमारे खजाने मे चौबीस घटे से अधिक के लिए अब पानी नहीं रह गया था! लोगो ने बात मान ली। अधिवेशन समाप्त होते ही लोग जहां-तहां के लिए रवाना होने लगे। उसी दिन, रात की गाड़ी से, सभापतिजी तथा मुख्य-मुख्य नेता भी जहां-तहा चले गये।

रामगढ-कांग्रेस का निश्चय भी महत्व रखता है। लड़ाई के आरम्भ मे जो नीति वर्किंग कमिटी और अखिल भारतीय कमिटी ने कांग्रेस की ओर से बरती थी उसका समर्थन कांग्रेस ने कर दिया। साथ ही, यह भी साफ बता दिया कि भविष्य मे स्वराज्य के लिए हमे कुछ करना पड़ेगा, उसके लिए अभी से रचनात्मक कार्यक्रम को जोरो से चलाकर लोगो को तैयार किया जाय।

रामगढ़-कांग्रेस के समय रामगढ मे ही एक दूसरी बड़ी सभा भी हुई। उसका नाम था समझौता-विरोधी-सभा (Anti-compromise Conference)। उसके मुखिया थे श्री सुभाषचन्द्र बोस। इस सूबे के प्रबन्धको मे मुख्य थे श्री स्वामी सहजानन्द सरस्वती और धनराज शर्मा। जबसे सुभाषबाबू से मतभेद हो गया था, उन्होंने एक दूसरा नया दल कायम किया था, जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। वे लोग कांग्रेस-कार्यकारिणी-समिति के विरुद्ध यही प्रचार कर रहे थे कि वह ब्रिटिश सरकार के साथ समझौता करने पर तुली हुई है और देश का अहित करके भी समझौता कर लेगी। इस दल में बहुत प्रकार के लोग शरीक थे, जिनमे कुछ ऐसे लोग भी थे जो सुभाषबाबू के मत और विचारों से कोई सम्बन्ध नही रखते थे, पर जो कार्यकारिणी से रुष्ट थे और यह अच्छा मौका देखकर उसके विरोध में लग गये थे। कांग्रेस न समझौते से कुछ डरती थी और न उसके लिए देश का अहित करना चाहती थी। यदि उसमें किसी प्रकार की उत्सुकता थी तो सिर्फ इतनी ही कि देश का हित हो। पर उस समय

इस 'स्लोगन' को खूब चलाया गया। वह कांफ्रेन्स भी अच्छे समारोह से हुई। उसमें और कांग्रेस के अधिवेशन मे यह अन्तर रहा कि उसका अधिवेशन, कांग्रेस के पहले होने के कारण, वर्षा शुरू होने के पहले ही समाप्त हो चुका था।

: १३९ :

बिहार की तीन महत्वपूर्ण कमिटियां

रामगढ़ के निश्चय के अनुसार हम लोगों को रचनात्मक काम पर जोर देना जरूरी था। इसलिए वहां का काम समाप्त होते ही हमने सोच लिया कि अपने सूबे में इसका प्रबन्ध करना चाहिए। महात्माजी के आदेशानुसार हमारे सभी स्वयंसेवकों को चर्खा चलाने इत्यादि की शिक्षा ले लेनी चाहिए और सगठित जीवन बिताने का भी पाठ सीख लेना चाहिए। इसलिए हमने निश्चय कर लिया कि एक शिविर खोला जाय, जिसमे प्रान्त-भर से प्रमुख लोग आकर एकसाथ कम-से-कम एक सप्ताह रहें। जो चर्खा चलाना इत्यादि पूरी तरह न जानते हों, उनको इसकी शिक्षा मिल जाय और प्रतिदिन विचार-विमर्श करके अपने विचार भी सुस्पष्ट तथा दृढ बना लिए जाय और साथ ही, शिविर-जीवन से जो ऐक्य और समता का सबक मिलता है वह भी ले लिया जाय। इसके लिए स्थान हमने सोनपुर चुन लिया। तिथि मुकर्रर कर दी गई, जिस दिन वहा शिविर खोला जायगा। वहां के लोगों को इससे सन्तोष भी हुआ; क्योंकि वे कांग्रेस के पहले ही आशा करते थे कि अधिवेशन यहीं होगा। वह तो न हुआ; पर शिविर से ही उनको कुछ सन्तोष मिल गया।

मैं समझ गया था कि हो-न-हो, कुछ-न-कुछ करना ही पड़ेगा। इसलिए अपने हाथ के कामों को जल्द-से-जल्द समाप्त करके छुट्टी पा लेना आवश्यक समझता था। कांग्रेस-मन्त्रिमण्डल ने तीन भारी कामों मे मुझे लगा दिया था। बिहार-मजदूर-जांच-कमिटी मुकर्रर करके उसके जिम्मे बिहार के मजदूरो की हालत जांचने और तत्सम्बन्धी सिफारिशे करने का भार सुपुर्द कर दिया था। मैं ही उसका प्रमुख था। शिक्षामन्त्री डाक्टर महमूद के बहुत जोर लगाने मे पटना-युनिवर्सिटी मे फिर सीनेट का सदस्य होना पड़ा, जिससे मैं १९३० के नवम्बर से ही अलग हो गया था। इसका कुछ जिक्र पहले भी आ चुका है। सीनेट में शिक्षा-सुधार-सम्बन्धी प्रस्ताव उपस्थित करते समय वर्तमान शिक्षा-प्रणाली की तीव्र आलोचना करते हुए मैंने बताया था कि इस सूबे में, विशेषकर शिक्षा में, हम हर तरह से पीछे है—कुछ कानूनदां और क्लर्की-पेशावालों तथा डाक्टरों को छोड़कर हम

और किसी तरह के लोगों को तैयार नही कर रहे हैं और न किसी विषय में कोई नई खोज करके अपनी बुद्धि की तीक्ष्णता का ही परिचय देते हैं—कृषि-प्रधान प्रदेश होने पर भी यहा वनस्पति-शास्त्र की पढाई और कृषि-सम्बन्धी शिक्षा की कोई प्रधानता अथवा व्यवस्था नही है—खनिज पदार्थों में भारत-वर्ष में, सबसे अधिक धनी होने पर भी इस सूबे के लोगों को न तो तत्सम्बन्धी शिक्षा की कोई विशेष सुविधा प्राप्त है और न उन पदार्थों से लाभ उठाने की कोई प्रेरणा ही दी जाती है। खैर, प्रस्ताव पास हुआ और सरकार ने एक कमिटी भी बना दी, जिसका पूरा विवरण पहले दिया जा चुका है। एक तीसरी हिन्दुस्तानी कमिटी भी मेरे सभापतित्व मे थी, पर जिससे मैंने अपने हाथ में बहुत काम होने के कारण इस्तीफा दे दिया था और मौलाना अबुल-कलाम आजाद उसके सभापति बनाये गए थे। इसकी भी चर्चा पहले हो चुकी है। इन तीनों कमिटियों के काम को पूरा कर देना था। शिक्षा-समिति के प्रमुख बम्बई के अर्थशास्त्री और शिक्षाशास्त्री श्री के० टी० शाह महाशय बहुत ही परिश्रमी और विचारशील पुरुष है और उन्होंने ही उसके काम को सभाला, यद्यपि मुझे भी काफी परिश्रम करना पड़ा; पर उनके तथा दूसरे सदस्यों के सहयोग से परिश्रम बट जाने के कारण मैंने उतना अधिक महसूस नही किया। शिक्षा-कमिटी की रिपोर्ट तीन भागो मे तैयार की गई। पहले भाग मे प्रारम्भिक शिक्षा के सम्बन्ध में सिफारिश की गई। हमारी मुख्य सिफारिश वर्धा की शिक्षा-योजना से मिलती-जुलती थी—या यों कहे कि वर्धा-योजना की नीव पर ही बनी थी तो अतिशयोक्ति न होगी। ऐसा होना स्वाभाविक भी था; क्योंकि चाहे वर्धा-योजना गाधीजी के अपने मस्तिष्क की उपज ही क्यो न हो, पर इसमें कोई सन्देह नही कि आधुनिक प्रगतिशील शिक्षाशास्त्र उसीका समर्थन करता है। शिक्षा-शास्त्रियो मे डाक्टर जाकिर हुसेन, प्रोफेसर सैयदैन और स्वय श्री के० टी० शाह उसके मुख्य सिद्धान्त के हामी थे; और जब यूरोप तथा अमेरिका के शिक्षाशास्त्री भी उसी सिद्धान्त के समर्थक है तो कोई कारण नही था कि कमिटी के दूसरे सदस्य उसे मजूर न करे। मुझे यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई कि गाधीजी की यह योजना इस प्रकार सबके द्वारा समर्थित हो सकी। केवल एक विषय में मेरा मतभेद रहा। मै गाधीजी के साथ इस बात को भी मानता था कि भारत-जैसे गरीब देश मे विद्यार्थियों के हुनर और कला से जो कुछ स्कूलों मे हम पैदा कर सकेंगे वह इतना काफी होगा कि उसकी आमदनी से ही पूरा नही तो अधिकाश खर्च निकल आयेगा। दूसरे सदस्य इतना मानने को तैयार नही थे। कुछका तो यह भी विचार था कि यदि हम आमदनी पर नजर रखेंगे तो उन कलाओं की ओर से ध्यान खिचकर

आमदनी पर ही केन्द्रित हो जायगा और शिक्षा से बच्चों को यथोचित लाभ नहीं पहुंच सकेगा। जो हो, इस सम्बन्ध के मतभेद को भी हमने इस तरह मिटा दिया कि यद्यपि आमदनी की उपेक्षा नही की जा सकती तथापि वह हमारा उद्देश्य नहीं है—हुनरो का सीखना शिक्षा के लिए ही होगा न कि आमदनी के लिए। दूसरा भाग स्कूली शिक्षा से सम्बन्ध रखता था और तीसरा युनिवर्सिटी की ऊंची शिक्षा के साथ। तीनों भागों को तैयार करने के लिए अलग-अलग उपसमितियां बना दी गई थी, जिनमे से प्राथमिक शिक्षा और युनिवर्सिटी की शिक्षा से सम्बन्ध रखनेवाली उपसमितियों का सदस्य मैं था। उपसमितियों की रिपोर्ट पूरी कमिटी के सामने पेश होकर मंजूर की जाने पर सरकार के पास भेज दी गई।

श्री शाह से मेरी पहले की अधिक मुलाकात नहीं थी। इसी सिलसिले में उनको अधिक जानने का सौभाग्य हुआ। उनकी विद्वत्ता, परिश्रमशीलता और सौहार्द से तबीयत खुश हो गई। इसी प्रकार डाक्टर जाकिर हुसैन और प्रो० सैयदैन से, विशेषकर प्रो० सैयदैन से, इसी विषय को लेकर अधिक मुलाकात हुई। डाक्टर जाकिर हुसैन से मिलने के और भी मौके मिलते रहे है। इन दोनों के प्रति भी प्रेम और प्रतिष्ठा के भाव उत्पन्न हो गये। डाक्टर सच्चिदानन्दसिंह के सम्बन्ध मे कुछ कहना मुश्किल है। वह मेरे विद्यार्थी-जीवन के समय से ही मेरे अभिभावक की तरह रहे है। उन्होंने मुझे हमेशा छोटे भाई-सा प्यार किया और स्नेह दिया है। राजनैतिक विषयो मे हजार मतभेद होने पर भी उनकी इस स्नेहमयी कृपा में कुछ भी अन्तर मैंने नही आने दिया है। इस कमिटी मे एकसाथ काम करने से भी हम दोनों में इससे और अधिक क्या हो सकता था। वही बात श्री बदरीनाथ वर्मा के साथ भी है। यदि डा० सिंह बड़े भाई की तरह रहे है तो श्री वर्मा छोटे भाई की तरह। उनसे राजनैतिक प्रश्न पर भी कोई मतभेद नही हुआ है। उनसे भी केवल इसी कार्य के कारण कोई विशेष परिचय की बात नही थी। डाक्टर अमरनाथ झा से इस कमिटी में कम ही काम पड़ा। कमिटी के मंत्री श्री भवनाथ मुखर्जी मेरे पुराने परिचित सज्जन थे। जब मैं कुछ दिनों के लिए मुजफ्फरपुर के भूमिहार-ब्राह्मण-कालेज में अध्यापक था वह तब वहां विद्यार्थी थे। मैंने भी कुछ उनको पढ़ाया था। अब भी वह मेरे प्रति वही भाव रखते हैं, जिसका बहुत परिचय कमिटी के कामों में मिला। इस कमिटी का काम तो समाप्त हो गया।

मजदूर-जांच-कमिटी का काम अभी पूरा नहीं हुआ था। इसके सम्बन्ध में कमिटी के सदस्यों को प्रायः उन सभी जगहों में जाना पड़ा था, जहां बड़े-बड़े कारखाने हैं और जहां बहुत मजदूर काम करते हैं। यदि विचार करके

देखा जाय तो मालूम होगा कि जितने प्रकार के और जिस पैमाने पर रंग-बिरंग के काम इस सूबे मे मजदूर करते हैं उतने शायद ही किसी दूसरे प्रान्त मे करते हों। खेतिहर मजदूर की बात अलग है—वे इस कमिटी के बाहर रखे गये थे—इसको केवल कारखानो के मजदूरों की हालत की जाच करने का अधिकार दिया गया था। पर कारखाने भी अनेक प्रकार के है। उत्तर-बिहार मे ऊख से चीनी बनाने के कारखाने अधिक है। दूसरे प्रकार के कारखाने विशेषकर शहर मे या उसके आस-पास रहते है अथवा मजदूरो के जमाव के कारण स्वयं शहर बना लेते है, जो कारखानो के साथ-साथ बढ़ते और उन्नति करते जाते है; क्योंकि देखादेखी और सुविधाओं की उपलब्धि के कारण एक बड़े कारखाने के खुलते ही अनेकानेक कारखाने उस स्थान पर खुल जाते है। किन्तु ऊख के कारखाने इसके ठीक विपरीत अलग-अलग गावो मे होते है; क्योंकि उनको ऊख से काम चलाना पड़ता है और वह छोटे दायरे मे पैदा नही की जा सकती है और न बहुत दूर से लाई जा सकती है। इसलिए कारखाने को कच्चे माल के पास जाना पड़ता है अर्थात् ऐसे स्थान मे कारखाना कायम करना पडता है, जहा कच्चा माल पैदा हो सकता है; क्योंकि वह बहुत दिन ठहर नही सकता और बहुत दूर से ढोकर लाया नही जा सकता। कारखाना भी साल-भर नही चलता, प्रायः चार-पांच महीनो तक ही चलता है। गाव मे कारखाना होने के कारण अधिकतर मजदूर अपने गावो मे जाकर ही काम करते है और छुट्टी के समय अपने घर चले जाते है। यह हुई एक किस्म। दूसरी किस्म बिहार की कोयला-खानों मे पाई जाती है। वहा का काम साल-भर चलता है। बहुतेरे मजदूर कुछ दूर से आकर खानो के नजदीक ही झोपडों मे रहते हैं, जो उनके निमित्त खानो के मालिक बनवाते है। यह काम भी कुछ फैला हुआ है, यद्यपि यह फैलाव ऊख की खेती के मुकाबिले नही के बराबर है। तीसरी किस्म जमशेदपुर के बडे कारखाने मे पाई जाती है। इसमे प्राय. सभी प्रान्तो के लोग काम करते है, जो वही रहते है। वहा उनकी सुविधा के लिए कम्पनी की ओर से प्रबन्ध है। प्रान्त के दूसरे हिस्सो में कुछ और भी कारखाने है, जो तरह-तरह की चीजे बनाते है। जैसे—लोहा और लाह के, कपड़ा और पाट बुनने के, चावल और तेल के इत्यादि। अबरख की खानें और कारखाने भी बहुत है। दूसरी धातुओ की खाने भी है। इन सब प्रकार के कारखानों के मजदूरों की हालत जानने और जाचने के लिए सभी प्रकार के कारखानों और खानों को कमिटी के सदस्यो ने जाकर देखा। मजदूरों और पूजीपतियों की बाते सुनी तथा उनके बयान लिये। मैं ऊख के और कुछ दूसरे प्रकार के कारखानों को छोड़कर प्रायः सभी जगहों में कमिटी के साथ-

साथ गया। बयानों और इजहारों के लेने में शरीक रहा। यह काम खत्म करके रिपोर्ट-सम्बन्धी बहुत बातें भी हो चुकी थीं। रिपोर्ट लिखने का भार कमिटी के मन्त्री प्रोफेसर राजेन्द्रकिशोरशरण को दिया गया था। उन्होंने उसे तैयार किया था; पर उसपर कमिटी ने बैठकर अभीतक विचार नहीं किया था। रामगढ़-कांग्रेस समाप्त होते ही इस कार्य को पूरा कर देने का निश्चय मैंने कर लिया था, इसलिए कमिटी की बैठक कांग्रेस-अधिवेशन के तीन-चार दिन बाद ही मुकर्रर कर दी गई थी। रामगढ़ से मैं पटने आया और इस कमिटी के काम में लग गया।

कमिटी की बैठक प्रायः चौदह-पन्द्रह दिनों तक चलती रही। सवेरे साढ़े सात बजे से एक बजे तक और फिर ढाई बजे से सन्ध्या सात-आठ बजे तक प्रतिदिन हम बैठते। इसके अलावा रात को अथवा सवेरे और दोपहर को जो थोड़ा समय मिल जाता, उसमें अकेले तत्सम्बन्धी अध्ययन करते। इस सिरतोड़ परिश्रम के बाद रिपोर्ट मंजूर हुई। मुझे इस बात से बहुत प्रसन्नता हुई कि रिपोर्ट की सभी बड़ी सिफारिशें सर्वसम्मति से हुईं। कुछ छोटी-मोटी बातों में चाहे थोड़ा-बहुत मतभेद रहा हो, पर रिपोर्ट एक स्वर से पास हुई। इसका महत्व इस कारण से बढ़ जाता है कि उसमें पूंजीपतियों के प्रतिनिधि भी थे और मजदूर-संघों के भी। कुछ लोग तटस्थ समझे जानेवाले भी थे। तीनों का मतैक्य यह बतलाता है कि हम सब इसपर तुले हुए थे कि हम ऐसी सिफारिशें करें, जिनको एक तरफ से मजदूर और दूसरी तरफ से कारखानों के मालिक एकबारगी अयोग्य अथवा समझकर नामंजूर न कर दें। इसमें सबने पूरी मदद की। सबकी सदिच्छा और सद्भावना का ही फल यह मतैक्य हुआ। हम जानते थे कि लड़ाई के कारण स्थिति में बहुत परिवर्तन हो सकता है और यद्यपि अभी उस समय तक (१९४० के अप्रैल तक) भारत में कोई उतना बड़ा आर्थिक परिवर्तन देखने में नहीं आता था, पर इसकी सम्भावना आंखों से ओझल नहीं थी। इसलिए हम जानते थे कि शायद ही हमारी सिफारिशें पूरी तरह काम में लाई जायं, तो भी हमने अपना कर्तव्य पूरा किया। हमने सोचा कि जो मसाला हमने तैयार किया है, जो जानकारी हासिल की है, वह इस विषय पर विचार करनेवालों के लिए काम की अवश्य होगी और यदि कांग्रेस को फिर अधिकार मिल सकेगा तो वह जरूर कुछ-न-कुछ करेगी। हमारी उम्मीदें पूरी नहीं हुईं। जहांतक मैं जानता हूं, कमिटी की सिफारिशें दफ्तर में ही रह गईं, उनपर कोई काम नहीं किया गया। हमने मजदूर-विभाग की स्थापना की सिफारिश की थी। सुना कि इस विषय में कुछ किया जा रहा है, पर वह भी शायद अधूरा और नाम के वास्ते ही। मजदूरों की सुविधा-सम्बन्धी एक भी सिफारिश

शायद काम में नहीं लाई गई। सरकार इस विषय को शायद कुछ महत्व नहीं देती। इस कमिटी के मेम्बरों मे श्री हेमैन पहले से मुझसे बिलकुल अपरिचित थे। उन्होंने रेलवे-बोर्ड में काम करके, अवसर प्राप्त कर, टाटा-कम्पनी के हिसाब-विभाग के प्रधान निरीक्षक का काम उठाया था। इस तरह वह उस बड़े कारखाने के मुख्य लोगो मे एक थे। कमिटी में मैंने देखा कि उनकी परिश्रम-शक्ति अद्भुत है और उनके विचार भी प्रगतिशील हैं। यदि वह और श्री एम० बी० गाधी, जो पूजीपतियों के प्रतिनिधि-स्वरूप थे, साथ न देते तो मतैक्य न होता। उसी तरह प्रो० अब्दुल बारी यदि मजदूरो की ओर से हमारी बात को न मानते तो मतैक्य दुर्लभ हो जाता। इसलिए इन लोगो के प्रति विशेष कृतज्ञता का कारण है। अन्य लोगों में भी श्री राधाकमल मुखर्जी और श्री राजेन्द्रकिशोर ने अपनी विद्या और अपने अध्ययन से कमिटी की रिपोर्ट मे बहुत मदद पहुचाई। इसके अलावा श्री वाखले के बम्बई मजदूर-सघ के अनुभवो का और श्री जगतनारायणलाल तथा श्री हरेन्द्रबहादुरचन्द्र के बिहार-सम्बन्धी ज्ञान से लाभ उठाकर कमिटी ने रिपोर्ट तैयार की थी।

इस प्रसग मे एक दु खद घटना हो गई। कमिटी की रिपोर्ट तैयार होने के थोडे ही दिनो बाद प्रोफेसर राजेन्द्रकिशोर का अचानक देहान्त हो गया। उनको पेट की बीमारी पहले ही से थी। हम जानते थे कि वह बहुत तकलीफ सहा करते है। कमिटी के काम मे उनको काफी परिश्रम करना पड़ा था। उस काम को बहुत योग्यता और उत्साह से उन्होंने किया था। बीमारी बढ जाने के कारण वह चिकित्सा के लिए बम्बई गये। सुना कि वही पेट चीरा गया और उसके बाद वह जाते रहे। मुझे यह बात रह-रहकर पीड़ा पहुंचाती है कि शायद कमिटी के परिश्रम ने ही बिहार के एक होनहार, योग्य और उत्साही विद्वान को हमसे इतना जल्द अकाल में ही अलग कर दिया!

तीसरी कमिटी थी हिन्दुस्तानी कमिटी जिसका काम लम्बा था; क्योकि वह एक पारिभाषिक शब्दो का कोश, और दूसरे ऐसे शब्दो का कोश, जो हिन्दी और उर्दू दोनो मे ग्राह्य है, तैयार करने मे लगी थी। इसके अलावा ऊचे दर्जो की पाठ्य-पुस्तके तैयार कराने और हिन्दुस्तानी का व्याकरण बनाने का काम भी उसने अपने हाथो मे लिया था। यह सब अलग-अलग उपसमितियों को सौपा गया था और उस समय तक पूरा नही हो सका था। यह काम १९४३ में जाकर समाप्त हुआ। १९४२ के अगस्त से ही जेल मे रहने के कारण मैं कमिटी के कामों में शरीक न हो सका। प्रायः उस प्राथमिक कार्य के सिवा, जिसको उपसमितियों की नियुक्ति के सम्बन्ध में करना

पड़ा था, और किसी महत्व के काम में भाग न ले सका। महत्व के काम थे दोनों कोशों और व्याकरण की तैयारी। मैं इनमें से किसी एक को भी न देख सका। इस हिन्दुस्तानी कमिटी के सम्बन्ध में हमारे प्रान्त में और उसके बाहर भी बहुत तरह की बातें हुई और की गई। हिन्दीवालों ने इसको हिन्दी का विरोधी समझा और पीछे उर्दूवालों ने भी उसका अनुसरण किया। मैं इस बात को नहीं मान सकता कि मैं हिन्दी का विरोधी हूं और उसका अहित चाहता हूं। इसी तरह उर्दूवाले भी डा० अब्दुल हक को उर्दू का विरोधी किसी तरह नहीं कह सकते; क्योंकि वह उर्दू के केवल बड़े हामी ही नहीं हैं, उन्होंने उसकी बहुत सेवा भी की है। एक प्रकार से वह उर्दू-सम्बन्धी सभी आन्दोलनों के प्रमुख कहे जा सकते हैं। तो भी दोनों पक्षों के लोगों ने कमिटी का विरोध किया। विरोध की कोई शिकायत नहीं, पर इस बात की शिकायत जरूर है कि बहुत बातें अनर्गल और बेबुनियाद कही गईं और उन निर्मूल बातों से जनता में बुद्धि-भेद पैदा किया गया। जो हो, उसका काम भी समाप्त हो गया है। मालूम नहीं, जो कोश और व्याकरण बने उनके सम्बन्ध में लोकमत क्या कहेगा। मैं यह भी नहीं कह सकता कि मैं खुद ही क्या कहूंगा; क्योंकि उनको देखने का अभीतक मौका नहीं मिला है।

मजदूर-जांच-कमिटी का काम समाप्त करके मैं सीधे वर्धा चला गया जहां वर्किंग कमिटी की बैठक होनेवाली थी। पहले कह चुका हूं कि सोनपुर में शिविर खोलने का विचार हो गया था और तिथि भी निश्चित हो गई थी। मैं वर्धा से ठीक उसी दिन वापस आया, जिस दिन शिविर खोलना था और सीधे सोनपुर चला गया। वहां एक सप्ताह तक रहा। सूत कातने के अलावा वहां एकत्र हुए लोगों के साथ प्रतिदिन बहुत बातें करनी पड़ती। इस तरह वह समय भी परिश्रम का ही समय रहा। प्रायः १५०-२०० प्रमुख कार्यकर्ता वहां ठहरे थे। जब-तब संध्या को सार्वजनिक सभा भी हो जाती, जिसमें आस-पास के गांवों के लोग भी आ जाते। मुख्यतः रचनात्मक कार्यक्रम पर ही जोर दिया गया; क्योंकि उसीको तैयारी का साधन हम मानते हैं। हम साधन इसलिए नहीं मानते कि हम उसके द्वारा लोगों को विद्रोह सिखाते हैं, पर इसलिए कि उसके द्वारा कार्यकर्ताओं में वह संयम आता है जो सत्याग्रह के लिए अनिवार्य है और जनता के साथ वह सम्पर्क पैदा होता है, जो किसी भी जनसमूह को साथ लेकर काम करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

शिविर का काम समाप्त करके मैं पटने लौटा। वहां एक दूसरा काम करने में लग गया, जिसको पूरा कर देना मैं अपना कर्तव्य समझता था।

यह काम था एक पंचायत का, जिसको मैंने कबूल कर लिया था। सार्वजनिक दृष्टि से इसका महत्व उतना ही है जितना किसी पंचायत का हो सकता है। पर इसमें जो परिश्रम पड़ा वह मेरे स्वास्थ्य के लिए असह्य हो उठा। रामगढ़ के परिश्रम के बाद से ही जो लगातार अथक परिश्रम करना पड़ा था—मजदूर-जांच-कमिटी, वर्किंग कमिटी, सोनपुर-शिविर और पंचायत में—उसने मुझे क्लान्त कर दिया; काम करते-करते सिर मे चक्कर के कारण मैं बेहोश-सा हो गया। डाक्टर शरण और डाक्टर बनर्जी आये। हालत देखकर कुछ चिन्तित हो गये। कई दिनों तक मैं सिर के चक्कर से परेशान रहा। कुछ स्वस्थ होने पर आराम करने के लिए जीरादेई चला गया। वहां प्रायः एक महीने तक पड़ा रहा। तब जाकर फिर कुछ काम के लायक हो सका।

: १४० :

मुस्लिम लीग की कुछ बातें

कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों के जमाने में ही मुस्लिम लीग ने उनका जोरों से विरोध करना आरम्भ कर दिया था। उसने यह बात उठाई कि मंत्रिमण्डल मुसलमानों के साथ न्याय नहीं करते, ज्यादतियां किया करते हैं। उसने एक कमिटी मुकर्रर की, जिसके सभापति पीरपुर के राजा थे। उस कमिटी ने एक रिपोर्ट तैयार की, जिसमें कांग्रेस द्वारा किये गए यथा-कथित जुल्मों की तालिका दी गई। बिहार में मि० शरीफ बैरिस्टर ने इस प्रकार की रिपोर्ट दो जिल्दों में दो बार करके प्रकाशित की। इन रिपोर्टों में बहुतेरी गलत, बेबुनियाद और अनर्गल बातें लिखी थीं। मंत्रिमण्डलों ने इनका खण्डन छपवाया। जहां असेम्बली में बातें पेश हुईं, इनका पूरा-पूरा उत्तर दिया। पर मंत्रिमण्डल जो कुछ करता या कहता उसका तो प्रचार मुसलमानों में हो नहीं पाता, और लीग जो चाहती और कहती उसका प्रचार जोरों से होने लगता! लीग ने हिटलर की उसी नीति का अवलम्बन किया, जिसमें प्रति-द्वन्द्वी के विरुद्ध झूठी शिकायतों का—और अगर उनमें कुछ सत्य भी हो तो उसे बहुत बढ़ा-चढ़ाकर तथा बार-बार दुहराकर—प्रचार किया जाता है, और वह प्रचार इतना जबरदस्त होता है कि जनता उससे प्रभावित हुए बिना रह नहीं सकती। इस तरह कांग्रेस के प्रति और हिन्दुओं के प्रति मुसलमानों में विद्वेष का विष फैलाया गया—इनके बीच एक बड़ी खाई बनाई गई। जिस समय चुनाव हुआ था और जिस चुनाव के फलस्वरूप कांग्रेसी मंत्रिमण्डल बने थे, लीग का जोर बहुत कम था। बिहार में तो लीग की ओर से कोई उम्मीदवार ही न हुआ। इसी तरह बहुत सूबों में लीग का अस्तित्व ही नहीं था। जहां था भी वहां एक कमजोर संस्था थी। इसलिए जब कांग्रेस को मंत्रिमण्डल बनाना पड़ा तो वह लीग के लोगों को मंत्रिमण्डल में न ले सकी; दूसरे मुसलमानों में से ही उन लोगों को, जो चुने गये थे, मंत्रिमण्डल में शरीक होने का आमंत्रण दिया।

संयुक्त-प्रदेश में इस बात की कोशिश हुई कि लीग के सदस्य मंत्रि-मण्डल में लिये जायं और आज ऐसा अनुमान होता है कि ऐसा अगर कर लिया गया होता तो शायद लीग को इतनी शक्ति नहीं मिलती। पर कांग्रेस

के अन्दर ही कुछ लोग इसको पसन्द नहीं करते थे, इसलिए लीग के साथ समझौता नहीं हो सका। लीग इससे बहुत क्षुब्ध हुई। कांग्रेस के विरुद्ध प्रचार करना उसने अपना मुख्य कर्तव्य बना लिया। जो शिकायतें पीरपुर-रिपोर्ट और शरीफ-रिपोर्ट में छपी थीं, उनकी जांच कभी किसी निष्पक्ष अदालत अथवा व्यक्ति द्वारा नहीं हुई थी। मैंने कांग्रेस के प्रधान की हैसियत से मि० जिन्ना को लिखा कि हम इस बात पर तैयार हैं कि इनकी जांच फेडरल-कोर्ट के चीफ-जस्टिस सर मौरिस ग्वायर अथवा किसी ऐसे ही दूसरे निष्पक्ष व्यक्ति द्वारा कराई जाय और वह अपनी शिकायतें उनके पास पेश करे। उत्तर में उन्होंने इसे मंजूर नहीं किया और कहा कि मामला वाइसराय के सामने पेश है, वही जो मुनासिब समझेंगे करेंगे।

वाइसराय कांग्रेस से कुछ खुश नहीं थे। वह तो मुस्लिम लीग की सहायता करके उसे कांग्रेस के विरुद्ध खड़ा करने और इस तरह उसे शक्तिशाली बनाने के लिए तैयार बैठे थे। उन्होंने इस शिकायत के सम्बन्ध में जांच कराने की बात पर कुछ कहा ही नहीं और न शायद मि० जिन्ना ने ही इसपर जोर दिया। बात जहां-की-तहां रह गई। पर अखबारों, परचों और व्याख्यानों में उन अप्रमाणित शिकायतों के प्रचार का सिलसिला जारी रहा। लार्ड लिनलिथगो ने लीग की यह बात मान ली थी कि १९३५ के बाद फिर नये सिरे से विचार किया जायगा और उसमें जो सारे भारत के लिए एक संघ बनाने की बात कही गई है, वह छोड़ दी जायगी। मुस्लिम लीग इसी संघ का विरोध कर रही थी और उसे मनचाहा आश्वासन ब्रिटिश सरकार ने दे दिया। इनसब बातों से प्रोत्साहित होकर, जब कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल ने इस्तीफा दे दिया तो, मि० जिन्ना ने मुस्लिम लीग की ओर से खुशियां बनाने की आज्ञा दी और मन्त्रिमण्डलों का इस्तीफा मुसलमानों का नजात (छुटकारा) समझा गया। इस प्रचार का इतना असर समझदार मुसलमानों पर भी पड़ा था कि बिहार के मन्त्रिमण्डल के इस्तीफा दे देने के बाद मौलवी खुरशीद हसनैन ने मेरे पास मुबारकबाद का तार भेजा!

लीग ने अभीतक भारत के विभाजन की बात मंजूर नहीं की थी। पर बहुतेरे मुसलमान इस बात को कई रूपों में पेश कर रहे थे। जब मैं १९३९ के नवम्बर-दिसम्बर में वर्धा में ठहरा था तब मैंने इस विषय का विशेष अध्ययन किया। उस समय तक मैं पाकिस्तान के सम्बन्ध में कुछ विशेष रूप से नहीं जानता था। वहांपर इस विषय के साहित्य को मंगाया और पढ़ा। फिर एक लम्बा नोट तैयार किया, जो रामगढ़-कांग्रेस के समय 'हिन्दुस्तान-टाइम्स' में एक विशेष लेख के रूप में छपा। पीछे वह एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुआ। बहुतेरों ने उसे पढ़कर पाकिस्तान की बात जानी।

उधर मुस्लिम लीग भी चुप नहीं बैठी थी। रामगढ़-कांग्रेस के चन्द दिनों के बाद ही, १९४० के मार्च में ही, लीग का सालाना जल्सा लाहौर में हुआ। वहांपर लीग ने पाकिस्तान के पक्ष में प्रस्ताव स्वीकार किया। उसके बाद से पाकिस्तान ही मुस्लिम लीग का मुख्य उद्देश्य रह गया। एक बरस बाद मद्रास के सलाना जल्से में उसने पाकिस्तान की स्थापना को मुस्लिम लीग का उद्देश्य मान लिया। इस उद्देश्य को नियमावली में भी ध्येय के रूप में शामिल कर लिया।

१४१ :

वैयक्तिक सत्याग्रह : कारण और परिणाम

यूरोपीय युद्ध का रूप इंगलैंड के लिए भयंकर होता जा रहा था। जर्मनी बड़े वेग से यूरोप के एक देश के बाद दूसरे पर कब्जा करता जा रहा था। पोलैंड, बेलजियम, हालैण्ड, डेनमार्क, नार्वे इत्यादि १९४० की गर्मी के पहले ही उसके कब्जे मे आ गये। अब फ्रान्स की बारी थी। फ्रान्स भी बहुत दिनो तक टिक न सका। अन्त मे उसे भी हथियार डाल देने पड़े। डंकर्क से अंग्रेजों की सेना बहुत नुकसान उठाकर किसी प्रकार इंगलैंड भाग सकी। इंगलैंड मे इससे लोगों मे बहुत क्षोभ पैदा हुआ। चेम्बरलैन की मिनिस्ट्री गिर गई। उसके स्थान पर सर्वदल मंत्रिमण्डल कायम हुआ, जिसके प्रधान मंत्री विन्स्टन चर्चिल हुए और भारत मंत्री मि० एमरी। इंगलैंड बहुत बहादुरी के साथ जर्मनी के हवाई हमलों का मुकाबला कर रहा था। इटली ने, यह समझकर कि अब इगलैंड हार ही जायगा और फ्रान्स ने हथियार डाल ही दिया है, युद्ध मे शरीक हो जाना मुनासिब समझा। इगलैंड के लिए यह बहुत ही कठिन घड़ी थी। अभीतक अमेरिका लड़ाई में नही आया था और न रूस से ही जर्मनी का युद्ध छिड़ा था।

हमारी वर्किंग कमिटी मे इस गम्भीर स्थिति पर विचार होता रहा। वहां यह राय ठहरी कि एक बार और साफ-साफ इगलैंड से कहा जाय कि वह हिन्दुस्तान का मामला निपटा ले तो यथासाध्य हर प्रकार से कांग्रेस उसकी मदद करेगी। वर्किंग कमिटी में इस विषय पर बहुत वाद-विवाद हुआ। महात्माजी युद्ध मे क्रियात्मक रूप से मदद करने के पक्ष मे नही थे। वह समझते थे कि ऐसा करना काग्रेस के अहिंसा के ध्येय के विरुद्ध होगा। उन्होंने जो इंगलैंड की मदद की बात कही थी, वह केवल नैतिक मदद की थी। उनका मानना था और इसमें कोई सन्देह नहीं था कि इंगलैंड यदि भारतवर्ष को स्वतन्त्र बना देता तो उसका नैतिक स्थान इतना ऊंचा हो जाता और संसार के सामने उसका प्रभाव इतना बढ़ जाता कि कोई उसका मुकाबला न कर सकता—कांग्रेस का इतना कहना मात्र कि इगलैंड का हिन्दुस्तान के साथ समझौता हो गया और भारतवर्ष सन्तुष्ट है, काफी होता—यों तो ब्रिटिश सरकार बिना कांग्रेस की सक्रिय मदद के भी जो कुछ

चाहेगी हिन्दुस्तान से ले सकेगी और लेगी, जैसा वह कांग्रेस के तटस्थ रहने पर भी कर रही थी; अतएव हमारे लिए अपने ध्येय को छोड़ना उचित नहीं, इसके अलावा यदि हिन्दुस्तान अपने ध्येय पर डटा रहेगा तो युद्धोत्तर काल में सारे संसार पर इसका गहरा असर पड़ेगा। उधर दूसरों का विचार था कि हम यदि अपनी आजादी की मांग पेश करते हैं तो साथ ही हमको मदद भी करनी चाहिए; कांग्रेस का ध्येय केवल इतना ही था कि अंगरेजों से स्वराज्य लेने के प्रयत्न मे वह अहिसात्मक उपायो से ही काम लेगी। उसमें किसी विदेशी शक्ति के आक्रमण करने पर—अथवा भारत के स्वतन्त्र हो जाने के बाद भी—अहिसात्मक रहने की न तो कोई बात थी और न हमको अपनी कार्रवाई से देश के हाथ को किसी प्रकार बाधना ही चाहिए; ऐसा करने का हमको हक भी नही है। किन्तु एक बात पर सभी सहमत थे कि स्वराज्य-प्राप्ति के काम मे और आपस के झगड़ो मे अहिंसा को नही छोडना चाहिए।

इस प्रकार, कुछ लोग अहिंसा के सिद्धान्त को सीमित और मर्यादित करके ब्रिटिश सरकार को मदद देने के लिए तैयार थे। पर गाधीजी और कुछ दूसरे लोग अहिंसा को अक्षुण्ण रखना भारत और संसार के लिए आवश्यक समझते थे। मेरा निजी विचार इसी पक्ष मे था, यद्यपि मुझे भी युद्ध की स्थिति से कुछ घबराहट तो थी और कभी-कभी शका भी उठती थी कि हम कुछ कर सकेंगे या नही। खान अब्दुलगफ्फार खा बहुत ही दृढ़तापूर्वक अहिसा के सिद्धान्त पर डटे रहे। जब वर्किंग कमिटी ने दिल्ली की बैठक में निश्चय कर लिया कि इस शर्त पर कि भारत की आजादी की घोषणा की जाय और तत्काल सरकार को ऐसा रूप दिया जाय कि भारतीय नेताओं के हाथ में अधिकार आ जायं कांग्रेस सक्रिय मदद लड़ाई मे देगी, तो खां साहब ने और मैंने तथा कुछ और मित्रों ने वर्किंग कमिटी से इस्तीफा दे दिया। परन्तु प्रेसिडेंट मौलाना अबुलकलाम आजाद के इस आश्वासन पर कि अभी जबतक ब्रिटिश सरकार हमारी मांग मजूर नही करती तबतक सक्रिय मदद की और अहिंसा छोडने की बात नही आती, इसलिए हमको इस्तीफा वापस ले लेना चाहिए और जब ब्रिटिश सरकार हमारी यह मांग मान लेगी और हमको मदद करनी पड़ेगी तब हम इस्तीफा दे सकते हैं—मैंने और कुछ साथियों ने इस्तीफे वापस ले लिये; पर खा साहब इससे सन्तुष्ट नही हुए। महात्माजी ने निश्चय कर लिया कि उनका अब कांग्रेस के साथ सम्बन्ध नहीं रहेगा। इससे वर्किंग कमिटी में तथा बाहर भी लोगों के दिल में बडी खलबली मची।

वर्किंग कमिटी की एक दूसरी बैठक वर्धा में बुलाई गई। उसीके बाद

पूना में, इस विषय पर विचार करने के लिए, अखिल भारतीय कमिटी की बैठक बुलाई गई। मतभेद रह ही गया और जब पूना मे बैठक हुई तो वर्किंग कमिटी के प्रस्ताव को उसने बहुमत से मंजूर कर लिया। उस बैठक मे हम लोग भी शामिल थे। गांधीजी पूना नही गये थे। हमने मित्रों की ओर से अपनी राय बता दी और यह भी कह दिया कि हम वर्किंग कमिटी के प्रस्ताव का विरोध नही करेंगे, तटस्थ रह जायंगे। ऐसा होने पर भी बहुत लोगो ने विरोध किया ही। यदि हम तटस्थ न रह गये होते तो शायद वह प्रस्ताव गिर गया होता। इस तरह ब्रिटिश सरकार को कांग्रेस की ओर से बाजाब्ता मदद देने का प्रस्ताव भेजा गया। आशा की जाती थी कि वह उसपर विचार करेगी और कुछ बातचीत फिर हमारे साथ करेगी। पर ऐसा नही हुआ। प्रस्ताव पास होने के चन्द दिनो के बाद ही उसकी ओर से उसकी नामजूरी की घोषणा कर दी गई। लार्ड लिनलिथगो ने एक विज्ञप्ति में यह कहा कि ब्रिटिश सरकार लड़ाई के जमाने मे कानून नहीं बदल सकती; पर उसके अन्दर रहकर वह वाइसराय की कार्यकारिणी परिषद् मे हिन्दुस्तानियों मे से—विशेषकर प्रमुख राजनैतिक दलो के मुख्य लोगो मे से—चुनकर नये मेम्बर नियुक्त करेगे तथा कौन्सिल में अधिकाश मेम्बर हिन्दुस्तानी होंगे, पर उनके अधिकार वही होंगे जो अब तक कौन्सिलरो के रहे है, इसके अलावा युद्ध-सम्बन्धी बातो में राय-मशविरा देने के लिए एक दूसरी कमिटी वह बनायेंगे, जिसमे भी ऐसे प्रमुख भारतीयों को स्थान देंगे। इस विज्ञप्ति मे यह बात स्पष्ट हो गई कि वह भारतीयों को कोई अधिकार नही देना चाहते है, सब अधिकारो को अपने ही हाथो मे रखना चाहते है। कांग्रेस की माग के मानने की तो कोई बात ही नहीं थी। इस तरह जो नक्शा वर्किंग कमिटी और अखिल भारतीय कमिटी ने बनाया था वह बात की बात मे टूट-फूट गया !

हिंसा-अहिंसा-सम्बन्धी वाद-विवाद बहुत हो चुका था। इसलिए पूना मे अखिल भारतीय कमिटी ने इस सम्बन्ध मे भी एक प्रस्ताव पास किया। उसमें यह बात साफ-साफ कह दी गई कि जहातक स्वराज्य-प्राप्ति के लिए ब्रिटिश सरकार के साथ हमारा प्रयत्न चल रहा है, उसमें तथा भारत के अन्दर आपस के झगड़ों के सम्बन्ध मे कांग्रेस अपने अहिंसात्मक उपायों के अवलम्बन की नीति और ध्येय पर कायम है और उसमे किसी प्रकार का परिवर्तन अथवा हेरफेर न समझा जाय। यद्यपि यह प्रस्ताव सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ, मुझे सन्देह है कि कांग्रेस के अन्दर बहुत लोगों को इसका स्मरण होगा, और युद्ध-सम्बन्धी प्रस्ताव के कारण अहिंसा की नीति में जो ढील आ गई, उसका असर दिन-दिन बढ़ता ही गया है। ऐसा होना भी

स्वाभाविक है। अहिंसा का सिद्धान्त अनोखा सिद्धान्त है। इतने बड़े पैमाने पर—विशेषकर एक बड़ी शक्ति के हाथों से स्वराज्य प्राप्त करने में—उसका उपयोग और भी अनोखा है। बहुतेरों ने इसे नीति-रूप से माना है और वे सचाई से इसे बर्तते हैं। थोड़े ही लोग इसे एक धार्मिक विश्वास रूप से मानते हैं। इसलिए इसपर लोगों को अटल रखना कुछ सहज काम नहीं है। चूकि अबतक कांग्रेस के अन्दर सक्रिय रूप से इसके सम्बन्ध में कोई मतभेद नही हुआ था, इसलिए जन-साधारण में इसके प्रति किसी तरह का बुद्धि-भेद नही पैदा हुआ था। अब, जब वर्किंग कमिटी और अखिल भारतीय कमिटी में ही मतभेद पैदा हो गया और वह स्पष्ट रीति से लोगों को दीखने भी लगा तब, जन-साधारण में और विशेषकर साधारण कांग्रेसी कार्यकर्ताओं में बुद्धि-भेद होना आश्चर्य की बात नही है। ऐसे मामलो में ठीक वही हाल होता है, जो जल-राशि को बांध द्वारा रोक रखने के बाद उस बांध में एक छोटा छेद हो जाने पर होता है, अर्थात् जल उस छेद को खुद-ब-खुद बढ़ाता जाता है और थोड़े ही काल मे जो रोक जल पर रहती है वह हट जाती है, फिर तो एक प्रकार से बाढ़-सी आ जाती है। ऐसा ही हुआ भी।

मैं पूना में ही बहुत बीमार पड गया। न्यूमोनिया-जैसा कुछ हो गया। किसी तरह वर्धा पहुचा। बरसात के दिन थे, जो मेरे लिए बराबर खराब हुआ करते हैं। वहा कुछ दिनो में आराम हुआ तो सेठ जमनालालजी का विचार हुआ कि आराम करने के लिए मैं कुछ दिन राजपूताना की सूखी हवा में जाकर रहूं। उन्होने वहां खुद मुझे ले जाने का प्रबन्ध कर लिया। पूज्य बापू ने भी उसे अच्छा समझा। मै सेठजी के साथ जयपुर गया। इत्तफाक से वहां भी उस समय पानी पड़ रहा था। रास्ते की गड़बड़ी और बरसात के कारण कुछ तबीयत खराब हो गई। इसलिए जयपुर में मुझे कुछ दिनों तक ठहर जाना पड़ा। पहले तो डाक्टरों की और फिर वैद्य श्रीनन्दकिशोर शर्मा की दवा होने लगी। सबकी राय हुई कि जयपुर से अधिक लाभ सीकर-जैसे बालुकामय स्थान में ठहरने से होगा। इसलिए सेठजी के साथ मैं सीकर चला गया। वहां प्रायः एक महीना रहा। सीकर में ही इन आत्म-संस्मरणों का लिखना आरम्भ हुआ। उसी सहवास में मुझे सेठ जमनालाल बजाज के जन्मस्थान को, काशीकेवास नामक गांव में जाकर, देखने का सुअवसर मिला। वहां से नजदीक ही एक स्थान है लोहागरजी, जिसे लोग तीर्थस्थान मानते हैं। वह पहाड़ियों के बीच बहुत सुन्दर बसा हुआ है। जमनालालजी एक दिन वहां हमको ले गये। तबीयत बहुत सुधर गई। हर तरह से चंगा हो गया, ऐसा मालूम पड़ने लगा। वहां हमारे रहते-

रहते ही बम्बई में अखिल भारतीय कमिटी की फिर बैठक हुई, जिसमें ब्रिटिश सरकार की घोषणा पर विचार किया गया और यह निश्चय हुआ कि इसे कांग्रेस मंजूर नहीं कर सकती; अब कांग्रेस को क्रियात्मक रूप से संसार के सामने अपनी नीति बता देनी चाहिए। और, वैयक्तिक सत्याग्रह का भी निश्चय हुआ।

सत्याग्रह के संचालन का भार गांधीजी पर दिया गया। उन्होंने निश्चय किया कि यद्यपि यह सत्याग्रह वैयक्तिक होगा, सामूहिक नहीं, तथापि कोई व्यक्ति उनसे मंजूरी पाये बिना सत्याग्रह नही कर सकेगा और वह अनुमति ऐसे ही लोगो को देंगे, जिन्होंने रचनात्मक कार्यक्रम के किसी भी एक अंग को अपनाया हो तथा उसमें काम किया हो। साथ ही, यह भी निश्चय हुआ कि ऐसे ही लोगों को अनुमति दी जायगी जो प्रतिनिधित्व कर रहे हों—अर्थात् जिनकी हैसियत ऐसी हो कि वह केवल व्यक्ति न हों, अनेकों के प्रतिनिधि हों, जैसे असेम्बली और कौन्सिल के मेम्बर, जिला और म्युनिसिपल बोर्डों के मेम्बर, कांग्रेस कमिटियों के पदाधिकारी और चुने हुए मेम्बर इत्यादि। नतीजा यह हुआ कि केवल ऐसे ही लोगों को अनुमति मिली, जो स्वयं सूत कातते हो, अछूतपन की भावना से अपनेको मुक्त कर चुके हों और कही-न-कही के चुने हुए सदस्य हों। आरम्भ मे असेम्बली और कौन्सिलो के मेम्बरों तथा काग्रेस-कमिटी के पदाधिकारियों को ही इजाजत मिली। प्रान्तीय कमिटिया ऐसे लोगो की सूची तैयार करतीं और गांधीजी के पास मंजूरी के लिए भेज देती। जब वह मंजूर कर लेते तभी सूची में दर्ज लोग सत्याग्रह करते।

सत्याग्रह का रूप यह होता कि सत्याग्रही घोषणा करते कि हम युद्ध में किसी प्रकार से मदद नही कर सकते। लोगों ने इसके लिए एक नारा बना लिया—'न एक भाई न एक पाई', अर्थात् न हम अपने मे से एक भाई को भी लड़ाई मे भेजना चाहते है और न लड़ाई के लिए एक पाई की भी आर्थिक सहायता देना चाहते हैं। लोगों को इस बात की कड़ी ताकीद कर दी गई थी कि सत्याग्रह मे कोई प्रदर्शन न किया जाय, क्योंकि हम सत्याग्रह द्वारा अपने लिए यह स्वत्व प्राप्त करना चाहते है कि हम जो भी उचित समझें, देश के सामने प्रचार कर सकते हैं, और हमारे इस स्वत्व में किसी प्रकार की बाधा नही पड़नी चाहिए; यहातक कि लड़ाई के नाजुक जमाने में भी हम चाहें तो हमको उसके विरुद्ध प्रचार का हक होना चाहिए।

इस सत्याग्रह का कुछ लोगों ने तो विरोध किया और कुछ लोगों ने मजाक उड़ाया। गर्म विचारवाले वामपंथी लोगों का कहना था कि इस प्रकार के ठंडे सत्याग्रह से कोई लाभ नहीं पहुंच सकता, इससे ब्रिटिश

सरकार किसी प्रकार प्रभावित नहीं हो सकती और न उसके काम में हम इसके द्वारा कोई अड़चन ही पेश कर सकते हैं। कुछ लोग कहते थे कि प्रचार-स्वातन्त्र्य और विचार-स्वातन्त्र्य की बात केवल धोखे की टट्टी है—हम लड़ाई का विरोध करना चाहते है, पर हमको खुलकर ऐसा करने की हिम्मत नही होती है, इसलिए यह ढकोसला फैला रखा गया है। बात यह थी कि हमे ससार को दिखलाना था कि हम ब्रिटिश सरकार की लड़ाई मे उसका साथ नही दे रहे है और यह हम बिना किसी प्रकार के शोर-गुल और हंगामा के दिखला देना चाहते थे। यदि सामूहिक सत्याग्रह किया जाता तो बहुत शोर-गुल के बिना काम होना कठिन था, और प्रतिनिधित्व करनेवालो को ही सत्याग्रह की अनुमति देकर हम यह दिखला रहे थे कि वह केवल एक व्यक्ति नही है, उसके पीछे उसे चुननेवाले लोग अर्थात् असख्य नर-नारी भी हैं और यह सत्याग्रह उन सबकी ओर से हो रहा है; वह व्यक्ति केवल निमित्तमात्र है, सत्याग्रह सब कर रहे है। इन्ही कारणों से प्रदर्शन सख्ती से रोका गया था। साथ ही, प्रतिनिधियो के चुनने मे भी पूरी कडाई बरती गई थी। ऐसे लोग, जिनका जाना अपेक्षित था, पर जो किसी कारण से सत्याग्रह मे शरीक नही हो सकते थे, दर्खास्त देकर छुट्टी ले लेते थे।

बिहार में, अपने स्वास्थ्य के कारण, मेरे लिए सत्याग्रह मे शरीक होने का अर्थ अपनी बीमारी की देखभाल का भार सरकार के ऊपर डालना था। इसलिए गाधीजी ने मुझे स्वयं रोक लिया। पहले दिन, जब श्रीबाबू और अनुग्रहबाबू का, पटना मे दो स्थानों पर, एक के कुछ देर बाद दूसरे का, सत्याग्रह करना निश्चित हुआ था और निश्चय के अनुसार श्रीबाबू सत्याग्रह करने के लिए बांकीपुर के मैदान मे पहुचे, तो वहा बहुत लोग जमा हो गये, जिनमें विद्यार्थी अधिक थे। वहापर कुछ शोर-गुल हुआ, जो जेल के फाटक तक, जहां श्रीबाबू को गिरफ्तार करके ले गये, जारी रहा। मैंने देखा कि यह आरम्भ गांधीजी की हिदायतों के खिलाफ हुआ, और यदि इसे प्रोत्साहन मिला तो पीछे इसे समालना मुश्किल हो जायगा तथा अपने ही लोग अनुशासन की धज्जी उडा देंगे। यह सोचकर मैंने अनुग्रहबाबू के सत्याग्रह को और सारे सूबे के सत्याग्रह को उस समय तक के लिए बन्द कर दिया जबतक लोग सत्याग्रह के मर्म को पूरी तरह समझ न लें और गाधीजी के आज्ञानुसार अक्षरशः सब बातें ठीक-ठीक करने को तैयार न हो जायं। यह बात सारे सूबे में फैल गई। लोगों ने समझ लिया कि इस तरह की बातें नहीं चलने पावेंगी। मेरे पास दूसरे ही दिन लोगो ने आकर बतलाया कि अब वैसी गलती नहीं होने पायेगी और सारे सूबे में सत्याग्रह स्थगित हो जाने से सारे सूबे की बदनामी होगी। मैंने देख लिया कि वातावरण दुरुस्त

हो गया, दो दिनों के बाद से ही फिर इजाजत दे दी। इसका फल यह हुआ कि सारे सूबे में पूरी शान्ति के साथ, जैसा गांधीजी चाहते थे, सत्याग्रह चलता रहा।

प्रधान मन्त्री (श्रीबाबू) से आरम्भ करके असेम्बली और कौन्सिलों के अधिकांश मेम्बर, जिला-बोर्डों और म्युनिसिपैलिटियो के बहुतेरे सदस्य, कई हजार की सख्या मे, सत्याग्रह करके जेल चले गये। सरकार की कुछ ऐसी नीति थी कि प्राय: सभी लोगों को एक बरस की सजा दी जाती थी। इसमे से प्राय. सभी लोगों को तीन महीने की माफी, जिसको जेल की भाषा मे 'मार्की' कहते है, मिलती गई! सभी लोग सजा पाने के प्राय: नौ महीनों के बाद छूटते गये। मैं तो बाहर रह गया था और अधिक समय गांधीजी के साथ ही वर्धा मे बिताना पडा। इसका एक कारण यह भी था कि काग्रेस के प्रेसिडेण्ट के जेल चले जाने के बाद काग्रेस के सगठन का सारा भार एक प्रकार से उनपर ही आ पडा—यद्यपि मत्री आचार्य कृपालानीजी भी बाहर रख लिये गये थे। काम मे सहायता पाने के लिए कृपालानीजी के और मेरे वही रहने का आग्रह महात्माजी करते थे। हमने ऐसा ही किया भी।

काग्रेस के लोगों ने मत्री का पद तो छोड़ ही दिया था। अब, जहां-जहा पहले काग्रेसी मत्रिमण्डल थे वहा दफा ९३ के अनुसार गवर्नर शासन कर रहे थे। कुछ दिनो तक उन्होंने रास्ता देखा कि शायद काग्रेसवाले फिर वापस आ जाय, पर जब इसकी कोई आशा नही दीख पडी तो असेम्बली इत्यादि के मेम्बरो को जो वेतन मिलता था, उसे उन्होंने बन्द कर दिया। यद्यपि असेम्बली के स्पीकर लोगों के साथ के चपरासी इत्यादि नही हटाये गए और वे कुछ-न-कुछ काम भी करते रहे तथापि उनके भी मुशाहरे बन्द कर दिये गए। काग्रेस ने जिला-बोर्डों और म्युनिसिपैलिटियो से काग्रेसी लोगों को हट जाने का आदेश नही दिया था। बहुतेरी जगहो में काग्रेसी लोग इनके चेयरमैन और वाइस-चेयरमैन थे। इनका काम सभी काग्रेसी सदस्य मिलकर करते रहे। ऐसा भी देखा गया कि कुछ लोग, सत्याग्रह के कारण अच्छे सदस्यो के हट जाने से नाजायज लाभ उठाकर उनके स्थानों पर जा बैठे! कुछ हम लोगो की ऐसी भूल भी हुई कि जहा हमारे चेयरमैन इत्यादि के सत्याग्रह में चले जाने के कारण जगह खाली हुई वहा हमने उन रिक्त स्थानों को ऐसे लोगों से भर देने की इजाजत दे दी, जिनसे आशा की जाती थी कि वे हमारे अनुशासन को मानेगे। कही-कही नये चुनाव भी हुए और उन स्थानों पर, अगर साफ-साफ नही तो परोक्ष रीति से, कांग्रेसी लोग आ गये। नतीजा यह हुआ कि इन बोर्डों पर जैसा चाहिए वैसा कांग्रेस का अनुशासन नही रह सका। बहुत तरह की शिकायतें भी सुनने मे आने लगीं।

कांग्रेस के अन्दर जो दलबन्दियां थीं, वे भी अब बाहर फूट पड़ीं। इस प्रकार कांग्रेस की बदनामी होने लगी।

मेरे अपने सूबे में सबका भार मेरे ऊपर था। मैं अधिकतर वर्धा में रहने के कारण बहुत-कुछ कर नहीं सकता था। इसलिए मैंने रोक-थाम के खयाल से एक छोटी कमिटी बना दी। उसीको इन बोर्डों की निगरानी का काम सौंप दिया। मुझे खेद है कि बहुत प्रयत्न के बाद भी अवस्था नहीं सुधरी। मैंने निश्चय किया कि बिहार में इन सभी बोर्डों से कांग्रेसी लोगों को हटा लेने में ही कल्याण है। पर इस निश्चय पर पहुंचने के कुछ ही दिनों के बाद प्रान्त के प्रमुख लोगों के छूटने का समय था। इसलिए उनके छूटने तक इसको स्थगित रखा कि उनकी भी राय ले लेना उचित होगा। उनके छूटने पर उनसे राय लेकर मैंने यह आज्ञा दे दी कि सभी कांग्रेसी लोग जिला-बोर्डों और म्युनिसिपैलिटियों से हट जायं। उसके बाद ही फिर अस्वस्थता के कारण मैं वर्धा चला गया। वहां रिपोर्ट पहुंची कि अधिकांश लोगों ने तो आज्ञा का पालन किया, पर कुछ लोगों ने उसे नहीं भी माना। ऐसे लोगों की संख्या बहुत ज्यादा नहीं थी। जिला-कमिटियों तथा प्रान्तीय कमिटी ने ऐसे लोगों के विरुद्ध अनुशासन की कार्रवाई की। बहुतेरे लोग कांग्रेस से निकाल दिये गए। यह सब १९४१ के नवम्बर-दिसम्बर की बात है। १९४० के नवम्बर से १९४१ के बीच तक कुछ और बातें हुईं, जिनका जिक्र कर देना उचित होगा।

: १४२ :

मेरी मैसूर-यात्रा

उन दिनों मेरा बहुत समय वर्धा में ही बीता। जब मैं वहां था, मैसूर-कांग्रेस के श्री दासप्पा वर्धा आये। उन्होंने महात्माजी से कहा कि वह अपना सालाना जल्सा करना चाहते हैं, जिसमें मुझे जाना चाहिए। मेरे जिम्मे उसके उद्घाटन का काम सौंपा गया। महात्माजी ने उनके अनुरोध को मान लिया। मुझे वहां जाने की आज्ञा मिली। यह सम्मेलन 'हरिहर' नामक स्थान पर तुंगभद्रा नदी के किनारे हुआ था। दृश्य सुन्दर था। लोगों में उत्साह भी काफी था। सम्मेलन, प्रदर्शनी इत्यादि के काम के अलावा श्री दासप्पा मुझे मैसूर के कुछ सुन्दर और पुरातत्व-सम्बन्धी महत्व रखने-वाले स्थानों को दिखला देना चाहते थे। मैं भी यह चाहता ही था। वहां जाने के पहले ही श्री दासप्पा से बातें हो चुकी थीं। उन्होंने कार्यक्रम भी बना लिया था। बंगलौर और मैसूर के अलावा मैं उन प्राचीन मन्दिरों को भी देखने गया, जो जैन-काल और हिन्दू-काल की स्थापत्य-कला के अच्छे-से-अच्छे नमूने हैं। श्रवणबेलगोल और हलेबीड के दृश्य अद्भुत हैं। वे संसार के उन चकित करनेवाले स्थानों में हैं, जिनको न देखना मानो मनुष्य की कृतियों के उत्तमोत्तम नमूनों को न देखना है। बाहुबली की सत्तावन फुट ऊंची बहुत विशाल मूर्ति एक पहाड़ की चोटी पर पहाड़ काटकर बनाई गई है, जो बहुत दूर से, प्रायः दस-पन्द्रह मीलों से, नजर आने लगती है। तारीफ यह कि उतनी बड़ी मूर्ति कुछ अलग से तैयार करके वहां चोटी पर बैठाई नहीं गई है, बल्कि वह पहाड़ की ऊंची चोटी को ही काटकर बना दी गई है और चारों ओर की पहाड़ी काटकर समतल कर दी गई है। मूर्ति ऐसी सुन्दर बनी है कि चाहे आप मीलों की दूरी से देखिये या नजदीक जाकर, उसके सभी अंग ऐसे अनुपात से बनाये गए मालूम होंगे कि कहीं कुछ भी त्रुटि नजर न आयेगी। प्रत्येक अंग, पैर की अंगुलियों से लेकर नाक-कान तक, अपने-अपने स्थान पर ठीक अनुपात में बना दीख पड़ता है। यह जैनों का एक बहुत बड़ा तीर्थ है, जहां समस्त भारतवर्ष के जैन दर्शन करने जाते हैं। मुझे यह बात जानकर प्रसन्नता हुई कि आरा के श्री निर्मलकुमार जैन, परिवार के साथ, वहां अक्सर जाया करते हैं। वहां के लोग उनके सम्बन्ध

में मुझसे पूछताछ कर रहे थे। यह जानकर मुझे और भी अचम्भा हुआ कि उसी मूर्ति की नकल पर, कुछ छोटे पैमाने पर, उन्होंने आरा के नजदीक कही जैनी विधवाओं के लिए जो आश्रम खोल रखा है उसमें भी एक मूर्ति बनवाई है; फर्क इतना ही है कि जहां यह पहाड़ी प्रायः साठ-सत्तर फुट की होगी वहां आरा की मूर्ति बीस-बाईस फुट की। यह दृश्य तो विशाल मूर्ति-निर्माण-कला का नमूना है।

अब हलेवीड मे कुछ ऐसे नमूने मिले जिनमें, बारीकी की हद हो गई है। वहां के मन्दिरो मे पुराणो की कथाए मूर्तियो द्वारा अंकित एव प्रदर्शित की गई है। ये मूर्तिया अत्यन्त सुन्दर और मधुर हैं। कुछ पन्द्रह-बीस फुट की ऊचाई पर एक मूर्ति बनी थी, जिसमे कोई फल या फूल दिखलाया गया था और उसपर एक मधुमक्खी बैठी थी। नीचे देखने से ऐसा मालूम होता था कि यह सचमुच मधुमक्खी है, जिसके पांव और पख भी है। पर वास्तव मे उसी पत्थर पर, जिसको काटकर फूल या फल बनाया गया था, यह मधु-मक्खी भी उसी प्रकार बनाई गई थी—कोई अलग से बनाकर वहा बैठाई नही गई थी। दक्खिन के मन्दिरो मे पत्थर की बनी जजीरे अक्सर देखने मे आती हैं। किसी धातु की जजीर बनाना मुश्किल नही है; क्योंकि उसकी एक-एक कडी अलग-अलग बनाकर एक-दूसरे में गूथ दी जाती है और तब जोड़ या मुह दबाकर बन्द कर दिया जाता है। किन्तु पत्थर की जजीर म ऐसा नही हो सकता। उसमे कडिया अलग-अलग नही बनाई जा सकती। एक ही पत्थर के लम्बे टुकड़े को काटकर एक-दूसरे मे गुथी हुई कडिया बनानी पडती है। काम काफी मुश्किल है; क्योंकि यदि कही एक टाकी या छेनी भी जोर की लग गई और कड़ी टूट गई तो सारी जजीर बिखरकर खराब हो गई। दूसरे मन्दिरों में मैंने जजीरें देखी थी; पर आकार बडा था। हलेवीड मे मैंने एक मूर्ति कुछ ऊचाई पर देखी। वह अनेक आभूषणो से सुसज्जित की गई थी। सब आभूषण पत्थर के थे और उसी एक पत्थर के टुकड़े में से, जिसमे से मूर्ति बनाई गई थी, काट करके बनाये गए थे। वह मूर्ति एक बहुत छोटी-सी झुलनी या नकबेसर पहने हुई थी, वह भी पत्थर की थी, बहुत ही छोटी और नाक मे एक छोटे-से छेद मे लटक रही थी। जो बाली नाक मे थी, वह भी बहुत बारीक थी और नाक के छेद में वह चारो तरफ घुमाई जा सकती थी। उस नथुनी का व्यास आध इच से ज्यादा न होगा और इसीसे नाक के छेद का भी अंदाजा किया जा सकता है। विशालता और बारीकी, दोनों के सुन्दर नमूनों का वर्णन पढ़कर पाठक समझ सकते है कि वहां थोड़े में ही कितनी कला और कलाकारों की कितनी कृतियों के नमूने हम देख सकते हैं। पत्थरों पर इस प्रकार के विशाल और सूक्ष्म काम

हम अजन्ता और एलोरा में देख सकते है। अजन्ता में चित्रणकला का अद्भुत विकास देखने मे आता है और एलोरा मे पहाड़ काटकर बनाया गया महान् मन्दिर तथा सुन्दर एवं बारीक मूर्ति-निर्माण-कला का चमत्कारपूर्ण नमूना !

तीसरा अद्भुत दृश्य प्राकृतिक था। वह है गिरिसप्पा का जलप्रपात। यह ऐसे स्थान में हैं जहां ब्रिटिश और मैसूर राज्यों की सरहद मिलती है। प्राय: एक हजार फुट की ऊचाई से जल गिरता है। इसको एक ओर ब्रिटिश राज्य के एक कोने से और दूसरी ओर मैसूर-राज्य के एक कोने से हम देख सकते हैं। पर मैसूर-राज्य मे से देखने पर दृश्य अधिक सुन्दर और सुहावना मालूम होता है। वहा ठहरने और बैठकर दृश्य देखने का भी अच्छा और सुन्दर स्थान राज्य की ओर से बना दिया गया है। मै कुछ देर तक बैठकर इस प्राकृतिक चमत्कार को देखता रहा। उन दिनों वहा से बिजली निकालने के लिए कारखाना बनाने और दूर-दूर तक बिजली पहुंचाने का प्रबन्ध मैसूर-राज्य की ओर से किया जा रहा था। बहुत-से मजदूर वहा से कई मील की दूरी तक काम करने मिले। मालूम नही कि इस प्राकृतिक चमत्कार पर इस मानुषिक बलात्कार का क्या असर पडा है और वह शोभा अब भी है या नही।

: १४३ :

बिहार-शरीफ का दंगा

मैं चन्द दिनों के लिए पटना आया था और फिर वर्धा वापस गया। जिस दिन पटना से जानेवाला था उसी रात को यह सुना कि बिहार-शरीफ में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच कुछ अनबन है, पर ऐसा मालूम हुआ कि कोई बड़ी बात है, जिसका नतीजा भयंकर खून-खराबा हो सकता है। वर्धा पहुंचने के एक दिन बाद ही अखबारों से मालूम हुआ और फिर तार पहुंचा कि बिहार में भयंकर दंगा-फसाद हो गया है। गांधीजी की राय हुई और मैंने सोचा कि ऐसी अवस्था में तुरन्त बिहार जाना चाहिए। मैं वापसी गाड़ी से रवाना हो गया। पटने पहुचने पर मालूम हुआ कि शाह मुहम्मद उजैर मुनीमी और मथुराबाबू कई दिनो से बिहार-शरीफ मे ही है और वहां की स्थिति बहुत खराब हो गई है, कई हिन्दू और मुसलमानों का खून हो चुका है तथा बलवा केवल बिहार-शरीफ शहर मे ही—जहा आरम्भ हुआ था—सीमित न रहकर गांवो में भी फैलता जा रहा है। मुझे याद था कि १९१८ में इसी प्रकार शाहाबाद के एक गाव (पीरो) मे आरम्भ होकर उस जिले के सिवा आसपास के जिलो के कुछ भागो मे भी फसाद फैल गया था। इसलिए मैं और भी चिहुंका। इत्तफाक से उसी दिन प्रोफेसर अब्दुल बारी भी, जो बाहर थे, पटना पहुंच गये। हमने मोटर-लारी साथ ली। उनपर बिहार-विद्यापीठ के अध्यापकों और विद्यार्थियों को तथा कुछ दूसरे कार्यकर्ताओं को सवार करा लिया। उसी दिन बिहार-शरीफ की ओर चल दिया। वहां पहुंचने पर जब शाह उजैर मुनीमी और मथुराबाबू से भेट हुई तो सब हाल मालूम हुआ। बहुतेरे खून हो चुके थे; पर अब स्थिति कुछ सुधरने लग गई थी। सरकार ने पुलिस का भी काफी प्रबन्ध कर लिया था। जिला-मजिस्ट्रेट और कमिश्नर तथा पुलिस के बड़े-बड़े अफ़सर भी पहुंच गये थे। शाहसाहब और मथुराबाबू अपनी जान की बाजी लगाकर जहां-जहां हंगामा होता, पहुंच जाते और बलवा-फसाद रोकते। कही-कही बलवाइयों के उपद्रव के बाद पहुंचते और वहा लाशों को स्वयं उठा-उठाकर यथास्थान भिजवाने में सहायता करते।

हम लोग पहुंचते ही चारों ओर के गांवों में, जहां-जहां से कुछ खराब

खबर आती, फैल गये। लोगों में ढाढ़स पैदा करने और गलत अफवाहों को रोकने तथा शान्ति स्थापित करने में सबके-सब लग गये। तीन-चार दिनों मे स्थिति काफी सुधर गई। वही पर प्रान्तीय मुस्लिम लीग के सभापति खानबहादुर मुहम्मद सैयद इसमाइल से बाते हुई। हम दोनो एक दिन के लिए पटने आये। वहा एक बड़ी सार्वजनिक सभा मे हम दोनों ने भाषण किये। मै फिर बिहार-शरीफ वापस गया। कुछ दिनो तक वहा रहकर, जहा-जहां लूट-मार और खून-खराबा हुआ था वहा जाकर, लोगों से भेंट की और उन्हे शान्त किया। जो दृश्य देखने मे आये, बहुत ही भयानक और दर्दनाक थे। हिन्दू या मुसलमान जब इस प्रकार के झगड़े में पड़ जाते है तब धर्म और मनुष्यता दोनो भूल जाते है। वे एक-दूसरे के खून के प्यासे हो जाते है। इस झगड़े मे हिन्दू और मुसलमान दोनों मारे गये थे, पर मुसलमानो की संख्या अधिक थी। यदि यह झगड़ा रुका न होता तो स्थिति और भी भयंकर हो गई होती। शान्ति-स्थापना के बाद मै फिर वर्धा वापस गया।

यहा एक और काम मैने अपने ऊपर ले लिया था अथवा यह कहना बेहतर होगा कि मेरे ऊपर वह काम डाल दिया गया था। सिंधिया-स्टीम-नाविगेशन-कम्पनी हिन्दुस्तानियो की जहाजी कम्पनी है। उसके जहाज विशेषकर हिन्दुस्तान और बरमा के बीच तथा हिन्दुस्तान के समुद्रतट के बन्दरगाहों मे ही अधिक आया-जाया और माल ढोया करते है। वह कम्पनी चाहती थी कि जहाज बनाने का एक कारखाना खोला जाय। उसने विशाखापट्टनम् (विजगापटम) को, जो आन्ध्र-प्रदेश मे है, इसके लिए उपयुक्त स्थान चुन लिया था। उसके डाइरेक्टरो मे प्रमुख है, सेठ बाल-चन्द हीराचन्द और सेठ शान्तिकुमार नरोत्तम मुरारजी। उनकी यह राय हुई कि मै इसकी नीव डालू। मै उस समय कोई भी काम गाधीजी की आज्ञा के बिना नही करता था। इसलिए उन्होने गाधीजी से कहा। मुझे आज्ञा मिली कि मै वहा जाऊं। इस सिलसिले मे मुझे भारतीय जहाजी वाणिज्य के इतिहास के अध्ययन का मौका मिला। यो तो थोडा-बहुत जानता था कि ब्रिटिशो ने किस तरह इस फैले हुए व्यापार को हिन्दुस्तानियों के हाथ से जबरदस्ती छीन लिया था, पर इस बार के अध्ययन से मेरा इस विषय का ज्ञान और भी अधिक बढ़ गया। इसके अध्ययन मे कम्पनी के लोगों ने पुस्तकें आदि भी पहुंचा दी थी, इसलिए स्वाध्याय में बहुत सुविधा भी हो गई थी। मैने उस अवसर पर वहां जो भाषण किया, उसमें सारे इतिहास और वर्तमान स्थिति इत्यादि का सिंहावलोकन किया। कम्पनी की ओर से बड़ा समारोह किया गया था। उसके सभी डाइरेक्टर

वहां आये थे। सारे हिन्दुस्तान से बहुतेरे प्रमुख लोग आमन्त्रित किये गए थे। सरकारी नौ-सेना के अफसर भी उपस्थित थे। बहुत धूमधाम के साथ यह महोत्सव समाप्त हुआ। उन लोगों ने सार्वजनिक काम के लिए मुझे रुपये भी दिये, जिनको मैंने उनकी इच्छा के अनुसार उन संस्थाओं को दे दिया, जो उस काम में लगी थी। कुछ सामान उन्होंने मेरे साथ कर दिया जिसको मैंने वापसी ट्रेन में कुछ दूर चले आने पर देखा।

: १४४ :

ढाका जिले में दंगे की जांच

वालटेयर से, जो विशाखापट्टनम् के पास में ही है, रवाना होकर मथुराबाबू के साथ मै सीधे ढाका जाने के लिए कलकत्ते पहुंचा। रास्ते मे कटक में भी कुछ देर के लिए ठहरा था। ढाका जाने का कारण यह था कि वहां भी भयकर हिन्दू-मुस्लिम-दगा हो चुका था। वहां दगा ढाका शहर से आरम्भ होकर कई गावो तक में जा पहुचा था। गाव-के-गांव लूट लिये गए और जला दिये गए थे। ढाका मे तो खून भी काफी हुए थे। जिस दिन मै पहुंचा, वातावरण शान्त था। वहा जाने के पूर्व ही कलकत्ते मे उस समय के प्रधानमन्त्री श्री फजलुल हक और सर नाजिमुद्दीन से मेरी मुलाकात हो गई थी। श्री फजलुल हक को मै उसी समय से जानता था जब मैं कलकत्ता हाइकोर्ट मे वकालत किया करता था। सर नाजिमुद्दीन से, बंगाल की जेलों मे अनशन कर रहे राजनैतिक कैदियो के सम्बन्ध में बाते करने के लिए, भेट हो चुकी थी।

मै ढाका मे वहां के प्रमुख लोगो से मिला। हिन्दुओं पर बहुत जुल्म हुए थे। अतः उनमे स्वाभाविक रोष था। मुसलमानो ने वहां के नबाव-साहब के महल मे मुझसे मुलाकात के लिए एक चाय-पार्टी दी। वही सबसे बाते हुई। पुराने काग्रेसी, जो उस समय वहा की जिला-कमिटी के सभापति थे, श्रीशचन्द्र चटर्जी के घर पर मै ठहरा था। ढाका से कुछ दूर उन गावो को जाकर देखा जो लूट लिये और जला दिये गए थे। दृश्य भयंकर था। बंगाल के मकान अक्सर पक्के नही होते, फूस या टिन से छाये जाते है। दीवार बांस आदि की टट्टी की होती है, जो लकडी के खम्भो के सहारे खड़ी रहती है। जमीन की नमी या सील से बचने के लिए मकान के भीतर का फर्श कही-कही सिमेण्ट का बना होता है। ऐसे गांव भी देखने में आये, जहां केवल लकड़ी के जले हुए खम्भो के टुकडो अथवा निशान तथा सिमेण्ट के फर्शों के सिवा और कुछ भी देखने को न मिला। हालत बिहार-शरीफ से भी खराब थी, पर ढाका जिले का उससे किसी तरह मुकाबला नही हो सकता था। बिहार में हिन्दुओं की आबादी अधिक है, वहा मुसलमान ही अधिक मारे या लूटे गये थे। ढाका मे मुसलमानों की आबादी अधिक है,

वहां हिन्दू ही अधिक मारे या लूटे गये थे। पर जिस तरह लूटना और जलाना ढाका मे हुआ था, उसका कुछ भी मुकाबला बिहार नही कर सकता था।

दो-तीन दिनों तक उन देहातों में घूम-घूमकर देखने के बाद मै फिर ढाका लौटा। देहातो में घूमते-घूमते दो गावो में मेरी अपने गांव जीरादेई के दो आदमियों से मुलाकात हो गई। ये यहा काम की तलाश में आये थे। बहुतेरे बिहारियो की तरह ये भी यहा से कुछ पैदा करके आया-जाया करते थे। मुझे देखकर आश्चर्य हुआ कि जिस तरह आसाम की यात्रा में सारन जिले के आदमियों से मुलाकात हो गई थी, उसी तरह बगाल के देहातो मे भी हमारे प्रदेश के लोग फैले हुए है। गरीब बिहारी मजदूरों मे बहुत हिम्मत और अध्यवसाय है, जो वहां के पढ़े-लिखे लोगों मे नही देखा जाता। शिक्षितवर्ग के लोग प्रान्त के बाहर बहुत कम मिलते है, पर अशिक्षित मजदूर एक ओर बम्बई में मुझे इत्तफाक से मिल गये है तो दूसरी ओर बरमा और बंगाल तथा आसाम में फैले हुए है। अंगरेजी शिक्षा हमारे प्रान्त के लोगों को कायर और निकम्मा बना देती है क्या?

इस सम्बन्ध में एक और बात याद आ जाती है। ये गरीब बेचारे सुदूर बरमा, बंगाल, आसाम इत्यादि में जाकर मजदूरी करते हैं, वहां के खेतों को आबाद करते है और फसल तैयार होने पर काटते है; पालकी ढोते हैं; बैलगाड़ी हांकते है; मिट्टी काटने के काम पर तो मानो इन लोगों का एकक्षत्र राज्य है—गांवो मे तालाब खोदना, कुआं बनाना, मकान बनाना इत्यादि जितने आवश्यक काम है सभी करते है —धनी घरो मे नौकरी करते हैं, खिदमतगारी और पहरेदारी दोनो काम बहुत करके इनके ही हाथों मे है। इस तरह बगाल, आसाम इत्यादि से बिहार के गावो मे बहुत पैसे आया करते है—विशेषकर सारन जिले मे। जीरादेई गाव के पोस्ट-आफिस मे, जब कमासुत लोग बाहर गय रहते हैं तब, प्रायः प्रति-सप्ताह चार-पाच हजार रुपये मनीआर्डर के जरिये आया करते है। लोगो ने हिसाब लगाया है कि इस प्रकार से बिहार के गांवो में बाहर से प्रायः पांच करोड़ सालाना आया करता था। कुछ बंगाली भाइयों का कहना था कि बिहार के लोग बंगालियों की शिकायत करते है कि वे बिहार में आकर बहुत धन पैदा किया करते हैं—जब बिहारी इतने अधिक पैसे बंगाल से लाते है। यह बात सच है कि बिहारी इस बात की शिकायत किया करते हैं—विशेषकर शिक्षित बिहारी, जिनको बंगालियो के साथ सरकारी दफ्तरों और वकालतखानों में मुकाबला करना पड़ता है। मालूम नहीं कि इस तरह सरकारी दफ्तरों के क्लर्क, राजे-रजवाड़ों की नौकरी करनेवाले

बाबू, कालेजों और स्कूलों के शिक्षक, वकील, डाक्टर इत्यादि बिहार से कितना ले जाते है, क्योंकि इनके रुपये तो गरीबो की तरह छोटे-छोटे मनी-आर्डरों द्वारा जाते नही है, और यह कहना कठिन है कि हिसाब लगाने पर बिहार मुनाफे मे पाया जायगा या बगाल। पर एक बात स्पष्ट है। बिहारी लोग बंगाल मे जाकर ऐसे आवश्यक काम करते है, जिनके बिना वहां के लोगो का जीवन-निर्वाह ही कठिन हो जाय और जिनकी जरूरत बगाली भाई महसूस करते है। किन्तु बिहार में बंगाली ऐसे काम करते है, जिनके सम्बन्ध मे शिक्षित बिहारी चाहते है और कहते है कि बगाली अगर उन कामो पर न आये तो बिहारियो का कुछ नुकसान नही होगा और वे खुद ही सभी कामो को संभाल लेगे। इसके अलावा, जितना सैकड़ों बिहारी एड़ी चोटी का पसीना एक करके और मलेरिया इत्यादि के शिकार बनकर पैदा करते है उतना एक बगाली हुकूमत की कुर्सी पर बैठकर आराम करते हुए पैदा कर लेता है। जो हो, इस प्रकार का मनमुटाव बहुत दिनों से चला आ रहा है। नौकरी-पेशा लोगो मे बिहारी और बगाली की काफी होड़ है। गरीबो की बात तो शायद ही किसीके ध्यान मे आती है।

इसी झगड़े के कारण, काग्रेस-मिनिस्ट्री के समय मे, बिहार में, बहुत आन्दोलन हुआ। एक ओर बिहारियों की शिकायत थी कि अनेक विभागों के दफ्तरो मे और सरकारी ओहदो पर उसी समय से—जब बगाल और बिहार एक साथ थे—बंगालियो ने कब्जा कर लिया है और अलग सूबा कायम होने के प्रायः तीस बरसों के बाद भी उनका वैसा ही आधिपत्य है। दूसरी ओर बगालियो का कहना था कि बहुतेरे बगाली प्रायः भाषा तो बंगला बोलते है, पर वे बिहार के निवासी है अथवा बिहार मे बस गये हैं, इसलिए उन्हें सरकारी नौकरिया देने मे किसी प्रकार का बंगाली-बिहारी भेद-भाव करना अनुचित है—उनकी शिकायत थी कि इस प्रकार का भेद-भाव किया जाता है। यह शिकायत काग्रेस तक पहुची और जिस समय श्रीसुभाषचन्द्र बोस काग्रेस-प्रेसिडेण्ट थे उस समय वर्किंग कमिटी ने जाच करके रिपोर्ट देने का भार मेरे ऊपर डाला। मैने सब बातो की जाच-पड़ताल करके एक लम्बी रिपोर्ट दी, जिसमे इतिहास के अलावा आगे के लिए भी सुझाव पेश किये कि सबके साथ इन्साफ का बर्ताव किस तरह किया जा सकता है। वर्किंग कमिटी ने मेरी रिपोर्ट को न्याययुक्त समझकर मंजूर किया और कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल को उसीके अनुसार काम करने का आदेश दिया। मेरा अनुमान है कि मेरी सिफारिशो को दोनों पक्षों ने मंजूर किया। यद्यपि किसी एक पक्ष की सभी मागे उसमें मंजूर नही की गई थीं तथापि लोगों ने यह समझ लिया कि जो मैने कहा है वह एक प्रकार से ठीक ही है।

जब मैं देहातों से लौटकर ढाका शहर में पहुंचा तो मालूम हुआ कि ढाका के दंगे के सम्बन्ध में सरकार ने जांच कराने का निश्चय किया है और सरकार की ओर से बंगाल के स्टैंडिंग कौंसल मेरे पुराने दिली दोस्त श्रीयोगेन्द्रनारायण मजुमदार पैरवी के लिए भेजे गये हैं। बहुत दिनों से भेंट नहीं हुई थी और इस सुयोग को अच्छा समझकर मैं उनसे मिलने गया। वह नदी में एक छोटे स्टीमर पर ही ठहरे हुए थे। उनसे बातें कर ही रहा था कि खबर आई, ढाका शहर में फिर खून-खराबा शुरू हो गया और एक या दो आदमियों को छुरा भोंक दिया गया। मुझे दूसरे ही दिन चला आना था। रात को भी यह काम जारी रहा। सवेरे मालूम हुआ कि शहर में काफी हलचल है और कई आदमी छुरों के शिकार हो गये है। ऐसा मालूम होता था कि हिन्दुओं को यदि यह पता लग गया कि मुसलमानों ने किसी मुहल्ले में एक या दो हिन्दुओं को छुरा भोंक दिया तो दो-चार घंटों के भीतर ही कहीं-न-कहीं किसी मुहल्ले में उतने ही मुसलमानों को छुरे भोंक दिये जाते थे। इसी तरह की होड़ हिन्दू-मुसलमान कर रहे थे। इस प्रकार की होड़ के कारण ही छुरा मारनेवाले इस बात का विचार नहीं करते थे कि जो मारा गया उसने क्या कसूर किया था। मारनेवाले तो सुरक्षित बच जाते थे और चुपचाप अपनी राह जानेवाले निरीह बेकसूर—हिन्दू हों या मुसलमान—बिना कारण मारे जाते। दोपहर को हमारे रवाना होने तक आठ-दस खून हो चुके थे। जांच का काम इस परिस्थिति में होना असम्भव था। इसलिए वह स्थगित कर दिया गया और जिस जहाज से मैं लौटा उसी जहाज से योगेन्द्रबाबू भी कलकत्ते आये।

कलकत्ते से मैं सीधा पटना वापस आया। मैं पटने में १९४१ के जून के अन्तिम दिनों में पहुंचा। रास्ते में ही जो खांसी-दमा शुरू हुआ था वह बहुत बढ़ गया। ज्वर भी हो आया। मैं पटना में ही रुक गया। बरसात भी शुरू हो गई, जो मेरे स्वास्थ्य के लिए बहुत खराब होती है। प्रायः दो महीनों तक मैं वहीं पड़ा रहा। अन्त में व्यक्तिगत सत्याग्रह में कैद हुए लोग छूटने लगे, विशेषकर श्रीबाबू, अनुग्रहबाबू इत्यादि प्रमुख लोग छूट गये। उनसे भेंट करके और जिला-बोर्डों तथा म्युनिसिपैलिटियों से कांग्रेसी मेम्बरों को निकल आने का आदेश देकर मैं स्वास्थ्य-सुधार के लिए वर्धा चला गया।

: १४५ :

क्रिप्स-योजना

जब मैं ढाका में था, तभी जर्मनी ने रूस के साथ युद्ध की घोषणा कर दी। बहुत जोरों से रूस में जर्मन-सेना प्रवेश करके आगे बढ़ने लगी। थोड़े ही दिनों में रूस के बहुत बड़े हिस्से पर जर्मनों ने कब्जा कर लिया। यह लड़ाई बहुत बड़े पैमाने पर हो रही थी। रूस के उत्तरी छोर से लेकर दक्षिणी छोर तक जर्मन और रूसी सेनाओं की भिड़न्त हो रही थी। जर्मनी ने पश्चिम में स्पेन और पुर्तगाल, उत्तर में स्वीडन और दक्षिण में इटली को छोड़कर योरोप के प्राय. सभी देशों पर कब्जा कर लिया था। स्पेन में फ्रांको का आधिपत्य था, जिसको डिक्टेटर बनाने में जर्मनी ने बहुत मदद दी थी, इसलिए वह जर्मनी का बहुत कृतज्ञ था। स्वीडन बहुत-कुछ दब गया था। इटली भी जर्मनी के साथ लड़ाई में शरीक हो गया था। उक्त विजित देशों में कुछ लोग लुक-छिपकर छापे मारने की गोरिल्ला-लड़ाई जहां-तहां जर्मनों के साथ कर रहे थे, पर अधिकतर स्थानों में जर्मन शासन चल रहा था अथवा जर्मनी ने ऐसे लोगों के हाथों में अधिकार दे रखा था, जो उसकी ओर से शासन कर रहे थे।

अमेरिका की सहानुभूति इंगलैंड के साथ थी। जहाज, हथियार इत्यादि द्वारा वह अंगरेजों को मदद भी पहुंचा रहा था; पर खुले-खजाने अभी लड़ाई में नहीं उतरा था। इधर जापान भी चीन के बहुत बड़े हिस्से को अपने पंजे में कस चुका था और दिन-दिन आगे बढ़ता जा रहा था। अमेरिका तो चीन की मदद करना चाहता था, पर उसको मदद पहुंचाने का एक ही रास्ता था, जो खतरे से खाली न था। वह रास्ता था बरमा होकर। अंगरेज जापान को नाखुश नहीं करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने बरमा का रास्ता बन्द कर दिया। चीन एक प्रकार से लाचार होता जा रहा था। जापान इस ताक में था कि मौका पाकर अमेरिका से बदला ले। यह मौका १९४१ के जाड़ों के आरम्भ में उसने ढूंढ निकाला और अमेरिका के पर्ल-हार्बर पर धावा बोलकर अमेरिका की जल-सेना को भारी क्षति पहुंचाई। उसने इंगलैंड और हालैंड से भी लड़ाई ठान दी तथा जर्मनी और इटली के साथ दोस्ती गांठ ली। १९४१ के नवम्बर से आरम्भ करके थोड़े ही दिनों

में उसने दक्खिन-पूरब एशिया के बहुत बड़े हिस्से पर सिक्का जमा लिया। डच-उपनिवेश—जैसे जावा, सुमात्रा, बोर्नियो और दूसरे टापू—उसकी धाक में आ गए। अंगरेजो से सिंहपुर (सिंगापुर) उसने जल्द ही जीत लिया। मलाया पर दखल जमाते हुए वह बरमा की ओर आगे बढ़ा। शीघ्र ही मोलमीन, रंगून, माड़ले प्रभृति बरमी शहरो को हथियाकर प्रायः सारे बरमा को हडप लिया। लड़ाई छेड़ने के एक-दो दिनों के अन्दर ही उसने ब्रिटिश जल-सेना को सिंगापुर के नजदीक कही एक लड़ाई मे गहरी शिकस्त दी। 'प्रिन्स आफ वेल्स' नामक बहुत बड़े जहाज पर अंगरेजी एडमिरल फिलिप बहुत गर्व करके यह घोषणा करते हुए निकला था कि वह जापानी जलसेना की तलाश मे जा रहा है। उसे जापान ने डुबो दिया।

उत्तर-अफ्रीका मे इटालियन लोगों के कुछ उपनिवेश है ही। वहा भी अंगरेजो से लड़ाई ठन गई और जर्मन पहुच गए। उन्होंने चन्द महीनों के भीतर ही उत्तर-अफ्रीका को, प्रायः इजिप्ट (मिस्र) की सीमा तक, अपने चंगुल मे कर लिया। ऐसा मालूम होता था कि कोई भी देश अब जर्मनी और जापान की सेनाओं की बाढ़ को रोक न सकेगा। जाड़ो के कारण रूस में जर्मन-सेना को कुछ रुक जाना पड़ा, पर वह पीछे न हटी, जहातक पहुच गई थी वही डटी रही। १९४२ के आरम्भिक महीनों मे ऐसी परिस्थिति मालूम होती थी कि लड़ाई मे अमेरिका के आ जाने से ब्रिटेन की जान तो लौट आई, पर अभी जापानी और जर्मन सेना का मुकाबला कोई नही कर सकता था। अमेरिका बहुत बड़े पैमाने पर युद्ध-सामग्री, जल-सेना और स्थल-सेना तैयार करने लगा। वह उन सभी देशों को अस्त्र-शस्त्रों की मदद पहुंचाने लगा, जो मित्रों की ओर से लडना चाहते थे। उसकी पूरी शक्ति के संगठित रूप मे लड़ाई मे पूरी मदद पहुंचाने में समय अपेक्षित था और १९४२ के आरम्भिक महीनो तक वह समय नही पहुंचा था।

जर्मनी के खिलाफ यह शिकायत की जाती थी कि जो देश उसका साथ देने को तैयार नही होते उनपर धावा बोलकर वह कब्जा कर लेता। पर इस दोष से अंगरेज और मित्र-देश भी बरी नही थे। उनको डर था कि जर्मन और जापानी सेनाओं का संगम हिन्दुस्तान मे किसी समय हो सकता है। उसीको रोकने के लिए अंगरेज एक ओर बरमा की सीमा पर लडना चाहते थे और दूसरी ओर इजिप्ट के पास दूसरा मोरचा बनाना चाहते थे। एक और भी मोरचा अरब और ईरान में बनाना चाहते थे। इसलिए अरब और ईरान पर कब्जा कर लिया। ईरान के बादशाह रजाशाह पहलवी को, जिसने १९१४-१८ के युद्धोत्तर-काल में ईरान को शक्तिशाली बनाने का पूरा प्रयत्न किया था और जो वहां के लोगों की उन्नति करने में

बहुत-कुछ सफल भी हुआ था, तख्त से उतारकर निर्वासित कर दिया। फिर क्या, रूसी और अंगरेजी तथा अमेरिकन सेनाओं का एक बहुत बड़ा अड्डा उस देश में बन गया। विपत्ति-काल में दुश्मन भी दोस्त बन जाते हैं! मि० चर्चिल ने रूस के साथ, जिसका विरोध उन्होंने अपने सारे जीवन में किया था और जिसको न मालूम कितनी गालियां दी थीं, दोस्ती कर ली। ऐसा मालूम हुआ कि सारी पिछली बातें दोनों भूल गए!

ऐसी स्थिति में इंगलैंड ने यह सोचा कि हिन्दुस्तान के साथ कुछ तय कर लेना चाहिए। सर स्टैफोर्ड क्रिप्स, जो इंगलैंड के राजदूत बनाकर उस समय रूस में भेजे गए थे, जब रूस और जर्मनी के बीच मित्रता थी तथा जिन्होंने रूस को बहुत कुछ-जर्मनी के विरुद्ध उभाड़ने में मदद की थी, लड़ाई ठन जाने पर इंगलैंड वापस आ गए। तब वहां की युद्ध-परिषद के वह प्रमुख सदस्य बन गए। अपने प्रगतिशील विचारों के कारण वह लेबर-पार्टी (मजदूर-दल) में भी अलग कर दिये गए थे। पर इस कठिन समय में, अपनी योग्यता के कारण, और विशेषकर रूस में जो कीर्ति कमा चुके थे उसके कारण, वह बहुत ही लोकप्रिय हो गए। उन्होंने ब्रिटिश कैबिनेट को इस बात के लिए तैयार किया कि भारत के साथ कुछ समझौता कर लेना चाहिए। कैबिनेट ने, जिसमें लेबर-दल और लिबरल-दल के लोग भी शरीक थे, एक योजना तैयार की। उसे लेकर सर क्रिप्स हिन्दुस्तान आये। यह योजना पहले प्रकट नहीं की गई। बहुत ही धूमधाम के साथ यह कहते हुए कि भारतवर्ष के लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण योजना है—इसे भारतवर्ष द्वारा मंजूर करा लेने का बीड़ा उठाकर वह १९४२ के मार्च में हिन्दुस्तान पहुंचे। पहुंचते ही कांग्रेस-प्रेसिडेण्ट मौलाना आजाद और गांधीजी तथा दूसरे नेताओं से मुलाकात शुरू कर दी गई। वर्किंग कमिटी की बैठक दिल्ली में हुई। हम सभी वहां प्रायः दो-तीन सप्ताह इसपर विचार करते रहे। आरम्भ में कुछ समय तक गांधीजी भी दिल्ली में रहे। पर कस्तूरबा गांधी की अस्वस्थता के कारण वह सेवाग्राम चले गए। कांग्रेस की ओर से बातचीत मौलाना आजाद और पंडित जवाहरलाल नेहरू करते रहे। वर्किंग कमिटी के सभी सदस्य दिल्ली में ठहरे थे। जो बातें होतीं, उनपर विचार करने के लिए बराबर वर्किंग कमिटी की बैठकें होती रहीं।

क्रिप्स-योजना दो मुख्य भागों में विभक्त की जा सकती है। उसके पहले भाग में हिन्दुस्तान का भावी विधान बनाने का तरीका बतलाया गया है। दूसरे में यह बतलाया गया है कि तत्काल भारत-सरकार का काम चलाने के लिए वाइसराय की वर्तमान कौन्सिल में क्या परिवर्तन होगा। इसमें भविष्य के सम्बन्ध में यह साफ-साफ कह दिया कि लड़ाई के बाद हिन्दुस्तान

सन्तोष किया जा सकता है। परन्तु यह जान लेना चाहिए कि वह भी कहां तक वास्तविक रूप मे मिलता है। पूछने पर सर क्रिप्स ने कहा कि इस सम्बन्ध में वाइसराय से ही बात करनी होगी; क्योंकि यह बात उनकी कौन्सिल से सम्बन्ध रखती है और जब कानून नही बदलता है तो प्रचलित विधान के अनुसार उनके जो अधिकार है, उनके सम्बन्ध में वही कुछ कह सकते है। जब यह कहा गया कि कैबिनेट उनको आदेश दे कि वह अपने अधिकारो को काम मे न लायें और उन विषयो मे कौन्सिल की राय के अनुसार ही काम किया करे, तो उत्तर मिला कि कैबिनेट इस प्रकार का आदेश नही दे सकता है। हम लोगों को यह पूरा-पूरा मालूम था कि कौन्सिल के मेम्बरो की कोई हैसियत वाइसराय नही मानते थे। वह मानते और कहा भी करते थे कि मेम्बरों को कोई अधिकार नही है, अन्त मे सारा अधिकार वाइसराय को ही है और उसे वह छोडना नही चाहते है।

जब यह जाहिर हो गया कि उन विभागो मे भी अधिकार नही मिलना और जो बाते सर क्रिप्स ने पहले कही थी कि कैबिनेट की तरह कौन्सिल भी अधिकार रखेगी और काम करेगी, वह केवल वागाडम्बर था, उसमे कुछ भी तथ्य नही था, तो वर्किंग कमिटी उसे नामजूर करने के सिवा दूसरा कुछ नही कर सकी; वैसा ही प्रस्ताव पास करके भेज दिया गया। सर क्रिप्स ने भी उसी दिन घोषणा कर दी कि वह वापस जा रहे है और जो बात कैबिनेट की ओर से हिन्दुस्तान के सामने पेश की गई थी वह वापस ली जाती है। मुस्लिम लीग कांग्रेस के फैसले का इन्तजार कर रही थी और जैसे ही हमारा फैसला हो गया उसने भी योजना को नामजूर किया; पर कारण यह बतलाया कि उसमे पाकिस्तान नही दिया गया है, केवल उसकी सम्भावना है और वह इतने ही मात्र से सन्तुष्ट नही है।

इस तरह, कांग्रेस और लीग, दोनो ही ने योजना को नामंजूर किया। कांग्रेस वर्किंग कमिटी मानती थी कि पाकिस्तान की सम्भावना बताना भी ठीक नहीं था—यदि कोई प्रान्त सचमुच अलग होने की इच्छा रखता है और इसका पूरा सबूत मिल जाय तो उसे जबरदस्ती साथ रखना आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के विरुद्ध होगा, तो भी उसने योजना को इस कारण से नामंजूर नही किया था। उसकी नामजूरी का कारण यह था कि तत्काल कुछ अधिकार नहीं मिल रहे थे, यद्यपि कौन्सिल पर लड़ाई मे मदद करने का भार पूरा-पूरा आ जाता था, जिसका अर्थ इतना मात्र था कि चन्दा और 'कर' उगाहने तथा रंगरूट भर्ती करने और कराने के अलावा उसको कोई दूसरा अधिकार नही मिलता! लीग की नामंजूरी का कारण तत्काल मिलनेवाले अधिकार से सम्बन्ध नहीं रखता था। वह कारण तो केवल लीगी मुसलमानों

की राय के अनुसार तुरन्त पाकिस्तान कायम न करना मात्र था।

वर्किंग कमिटी के अन्दर श्री राजगोपालाचारी का विचार था कि क्रिप्स-योजना को मान लेना चाहिए। उन्होंने ही इस बात पर जोर दिया था कि उसके द्वारा वाइसराय की कान्सिल के मदस्यों को फौज और लड़ाई छोड़कर अन्य सब विभागों पर पूरा अधिकार मिल जाता है। पर जब अन्त में यह साफ हो गया कि उस विषय में भी कुछ अन्तर होनेवाला नहीं है और वाइसराय अपनी मनमानी करने के अधिकार मे किसी प्रकार की कमी आने देना नहीं चाहते है, तो उनका मुह भी बन्द हो गया। वर्किंग कमिटी के इस निश्चय के सम्बन्ध मे कांग्रेस के अन्दर भी कुछ लोगों को बहुत गलतफहमी रही, जैसा पीछे जाकर मालूम हुआ। पर हमारे दिल मे कभी कोई सन्देह नही रहा। सर क्रिप्स ने भी कुछ ऐसी बाते कही जो निराधार थी। उन्होंने अपने एक बयान मे कह दिया कि इसकी नामंजूरी हिन्दू-मुस्लिम झगड़ो के कारण हुई, कांग्रेस और मुस्लिम लीग एक राय न हो सकी तो दोनो ने इसे नामजूर कर दिया। उनके बयान का आशय था कि इस नामजूरी का दोष कांग्रेस पर ही है। बात यह थी कि वर्किंग कमिटी के सामने इस विषय मे हिन्दू-मुस्लिम झगडे या मतभेद की बात उस रूप में आई ही नही, जिस रूप मे लोगो ने बताया। पाकिस्तान-सम्बन्धी घोषणा के सम्बन्ध मे वर्किंग कमिटी का योजना से मतभेद जरूर था, पर उसने उस कारण से उसे नामजूर नही किया था। उनकी नामजूरी का कारण, जैसा पहले भी सक्षेप में कहा गया है, बस एक ही था और वह यह कि इसके द्वारा हिन्दुस्तानी कौन्सिलरो के हाथों मे कोई अधिकार नही मिलता था, इसलिए इस युद्ध-काल मे यह जवाबदेही लेकर वह देश का हित नही कर सकेंगे और लडाई की मदद करने की जिम्मेदारी उनके सिर पर आ जायगी। यह भी गलत है कि उसमें हिन्दू और मुसलमानों की सख्या कितनी होगी—इस बात पर मतभेद हुआ, जैसा कुछ विरोधियों के बयान से मालूम होता था। पर कौन्सिल मे कितने मेम्बर होंगे, उनमे कितने हिन्दू और कितने मुसलमान होंगे, कितने कांग्रेसी और कितने लीगी रहेंगे—यह सवाल एक बार भी हमारे सामने नही आया। इसका मौका भी नही था; क्योंकि यह सवाल तो तब उठता जब हम निश्चय कर लेते कि कौन्सिल में हमे जाना चाहिए। हमने जब वहां जाने से इन्कार कर दिया तब हमारी सख्या उसमें कितनी होगी, यह प्रश्न कैसे उठ सकता था और कभी उठा भी नही था। पर हमारे विरुद्ध इस प्रकार का प्रचार बहुत किया गया।

: १४६ :

क्रिप्स-योजना की नामंजूरी के बाद

क्रिप्स-योजना की नामजूरी वर्किंग कमिटी ने की थी। अब उसपर विचार करने के लिए अखिल भारतीय कमिटी का जलसा होना आवश्यक हो गया। वह इलाहाबाद मे थोड़े ही दिनों के बाद हुआ। यह बात अब स्पष्ट दीखने लगी कि मामला नामजूरी तक ही नहीं रहेगा, काग्रेस को अपनी नीति बताने के लिए कुछ और भी करना पड़ेगा। जापान तेजी मे आगे बढ़ता आ रहा था। अगरेजी फौज उसका मुकाबला नही कर सकती थी। हिन्दुस्तान मे उस मुकाबले के लिए पूरी तैयारी भी नही थी। खूब तेजी के साथ अंगरेजी और अमरीकी फौजे यहां लाई जा रही थी। अस्त्र-शस्त्र भी लाये जा रहे थे। पर अभी ऐसा नही मालूम होता था कि मुकाबला कामयाब हो सकेगा। देश के सामने प्रश्न यह था कि जापान यदि आ गया तो क्या हिन्दुस्तान उसके सामने सिर नवाकर उसका स्वागत करेगा अथवा उसका मुकाबला करेगा। अगरेजी सरकार, जिसने हिन्दुस्तान की रक्षा का भार अपने ऊपर ले रखा था, असमर्थ मालूम पड़ती थी। पर इस असमर्थता के बावजूद वह हमारे साथ कुछ समझौता करके हमको इसका मौका नही देना चाहती थी कि हम भी अपने देश की रक्षा मे हाथ बटा सकें। गांधीजी की, अहिंसात्मक रूप से मुकाबला करने की नीति को वर्किंग कमिटी ने एक तरह से छोड़ दिया था। वह शस्त्र के साथ, अंगरेजी फौज के कंधे-से-कंधा मिलाकर जापान का मुकाबला करने की अपनी तैयारी घोषित कर चुकी थी और करना भी चाहती थी। पर वह ऐसा तभी कर सकती थी जब वह भी ब्रिटिशों की बराबरी में अधिकार पूर्वक काम करे। ब्रिटिश यह पसन्द नही करते थे, वे चाहते थे कि हिन्दुस्तान जो कुछ मदद दे सकता है दे, पर उसे वे अपनी गुलामी से बरी करना नही चाहते थे। मिस्टर चर्चिल ने ऐसा बार-बार कहा भी था कि ब्रिटेन किसी नये देश को अपने कब्जे में करने की लालच नही करता, पर साथ-ही-साथ जो उसका है, उसे छोड़ना भी नही चाहता। यह स्पष्ट था कि भारत तो उसका था ही और उसे इस विपत्ति-काल में भी वह छोड़ना नहीं चाहता था। कठिन घड़ी में उन्होंने फ्रान्स से कहा था कि ब्रिटिश-साम्राज्य और फ्रेंच-साम्राज्य दोनों मिला दिये जायं—

वही ब्रिटिश साम्राज्य जिसको कितनी लड़ाइयों और कितनी खूंरेजियों के बाद ब्रिटेन ने फ्रान्स से जीता था! पर भारतीयों का अपने मुकाबले में बैठना ब्रिटेन नहीं सह सकता था—उनको अपने देश में अधिकारपूर्वक जापानियों के साथ मुकाबला करने का मौका देने के लिए वह तैयार नहीं था!

ऐसी अवस्था में हमारे सामने प्रश्न यह था कि हम अपनी रक्षा किस प्रकार करें। लोगों में उत्साह यदि न रहा तो जापानी आसानी से कब्जा कर लेंगे। हो सकता है कि कुछ लोग ऐसे हों जो यह समझते हों कि इंगलैंड अगर किसी तरह हटा और जापानी आकर बैठ भी जायं, तो विशेष चिन्ता की बात न होगी, उनके साथ हम पीछे निपट लेंगे। हो सकता है कि कुछ लोग जापान से मदद लेकर अंगरेजों को हटाने में कोई हानि न देखते हों। पर वर्किंग कमिटी के अन्दर अथवा प्रमुख कांग्रेसी लोगों में कोई भी ऐसा न था, जो जापान को मदद देकर अथवा तटस्थ रहकर ब्रिटिश सरकार को इस देश से बाहर करना चाहता हो। इसका कारण यह नहीं था कि वे ब्रिटेन को जापान से बेहतर समझते थे। हम जापान को ब्रिटेन से कदापि बेहतर नहीं समझते थे। उसका जो बर्ताव चीन के साथ हुआ था, वह जिस तरह चीन को दबाकर उसके बहुत बड़े भूभाग को अपनी मुट्ठी में किये हुए था, उसका एक ही अर्थ हो सकता था और वह यह था कि वह भी ब्रिटेन की तरह अपना साम्राज्य विस्तृत और स्थिर करना चाहता था। एक साम्राज्य से निकलकर दूसरे साम्राज्य के कब्जे में जाने में कोई बुद्धिमानी नहीं थी। वह तो चढ़ी कड़ाही से उछलकर आग में कूद पड़ने के समान ही था। इसलिए हमारा निश्चय था कि हमको जापान का मुकाबला करना ही होगा। अपने सिद्धान्त छोड़ने पर भी ब्रिटिश सरकार कांग्रेस को सशस्त्र और साधिकार मुकाबले का मौका देना नहीं चाहती थी। हमारे लिए अपने तरीके से मुकाबला करने के सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं था। उस मुकाबले की तैयारी का, जनता में शत्रु के मुकाबले के लिए उत्साह बढ़ाने के सिवा, दूसरा कोई तरीका न था। क्या वह देश नवागन्तुक जापानियों के मुकाबले के लिए तैयार किया जा सकता था, जो स्थापित ब्रिटिश साम्राज्य का मुकाबला करने में असमर्थ था अथवा मुकाबला नहीं करना चाहता था? हम समझते थे कि ऐसी स्थिति में, मुकाबले के लिए भारतीयों के हृदय में स्वतन्त्रता की आग धधकाने के अतिरिक्त, दूसरा कोई उपाय नहीं हो सकता।

किन्तु इसका नतीजा ब्रिटिश और जापान दोनों के विरुद्ध पड़ता था। फिर भी इसका दोष हमारे सिर पर नहीं था, वह था ब्रिटिश के सिर पर। उन्होंने हमें स्वतन्त्रता देने से—वह सीमित स्वतन्त्रता भी, जिसपर हम

तत्काल के लिए राजी थे—इन्कार कर दिया। ब्रिटिश में और जापानी में हमारी नजरों के अन्दर क्या अन्तर रह जाता था ? एक ने हमारी स्वतंत्रता छीन रखी थी, और इस विपत्ति-काल में जापान से मुकाबला करने के लिए भी उसे हमें देने पर राजी नहीं था; दूसरा हमारी स्वतन्त्रता छीनकर अपना साम्राज्य कायम करना चाहता था ! हमारी आंखों में दोनों एक-से ही थे। कहने के लिए तो अगरेज कहते थे, लडाई में हमारी मदद करो, लड़ाई के बाद औपनिवेशिक स्वतन्त्रता तुमको मिलेगी; और जापानी भी कहते थे, हमारी मदद करो, हम तुमको स्वतन्त्र बना देगे ! किसकी बात हम मानते ? इसलिए हमने निश्चय किया कि दोनो मे किसीकी बात पर हम विश्वास नही कर सकते, हमको अपनी स्वतन्त्रता लेने के लिए खुद तैयार हो जाना चाहिए—चाहे अंगरेज इसे बुरा क्यो न माने !

गांधीजी ने इन विचारो से प्रभावित होकर जोरदार लेख लिखना आरम्भ कर दिया। इलाहाबाद में होनेवाली आल इण्डिया काग्रेस-कमिटी के लिए एक प्रस्ताव का मसविदा तैयार करके उन्होंने श्री मीरा बहन के हाथ वहा भेजा। वर्किंग कमिटी मे इसपर बहुत वाद-विवाद हुआ। ऐसा मालूम हुआ कि वहा दो मत है—एक तो गाधीजी के मसविदा के पक्ष में और दूसरा वह जो उतनी दूर नही जाना चाहता था, उसे मजूर नहीं करता था। उसमे सशोधन करने का बहुत प्रयास किया गया, पर वह सफल न हुआ। अन्त मे, ऐक्य कायम रखने के लिए, हमने अपना विरोध हटा लिया और जो कुछ भी औरों ने मुनासिब समझा, उसे ही मंजूर कर लिया। यह बात वर्किंग कमिटी मे हुई। देश का रुख अधिक गाधीजी के साथ था। यदि वही मसविदा आल इण्डिया कमिटी मे पेश कर दिया गया होता तो शायद वह मंजूर तो हो जाता, पर आपस का मतभेद भी खूब प्रदर्शित कर देता। अगर अपनी ओर से कुछ करना ही था तो वह इस तरह आपस की फूट को घोषित करके नहीं किया जा सकता था। इसलिए इस मतभेद को दबा देना ही उचित जान पड़ा और गांधीजी का प्रस्ताव किसी रूप मे पेश न हुआ। हां, जो प्रस्ताव हुआ उसमें भी गांधीजी के भावो का काफी समावेश था। जब गांधीजी ने उसे देखा तो उन्होंने कहा कि यद्यपि वह उसे पूरा पसन्द नहीं करते थे तो भी उसमे उनके लिए काम करने का काफी मौका था, इसलिए वह उसे एक प्रकार से मंजूर करते है।

: १४७ :

युद्धकाल में देश की स्थिति

मैं प्रयाग से सीधे वर्धा चला गया। मुझे ऐसा मालूम होता था कि अब ब्रिटिश सरकार के साथ मुठभेड़ हुए बिना न रहेगी। गांधीजी जबर्दस्त लेख लिख ही रहे थे। देश में बड़ी अशान्ति थी। हम लोगों के दिल में भी जलन थी। मैंने सोच लिया था कि एक बार सारे सूबे का दौरा करना उचित है। एक तो लोगों को गांधीजी की बातें बता देना आवश्यक था और आनेवाले विकट समय के लिए लोगों को तैयार करना था। दूसरे, जापान के आगे बढ़ते जाने के कारण लोगों में जो आतंक फैलता जाता था, उसका प्रतिरोध करना था और जनता को यह भी बताना था कि यदि वह कहीं हिन्दुस्तान की भूमि पर पहुंच गया तो हमारा क्या कर्तव्य होगा।

इन दिनों सरकार की ओर से भी काफी खलबली मच रही थी। समुद्र के किनारे के गावों में, जहां यह भय था कि जापानी सेना उतर सकती है, जो थोड़ी-बहुत फौजी तैयारी हो रही थी, उसके अलावा यह नीति भी बरती जा रही थी कि जापानी सेना अगर पहुंच ही गई तो ऐसा कर दिया जाय कि उसे कोई चीज हाथ न लगने पाय। इसलिए नावों की जब्ती हो रही थी। कहीं-कहीं उन्हें बर्बाद कर देने का काम भी जारी था। विशेषकर बंगाल में, जहां नावों द्वारा ही सब काम हुआ करते हैं, इसका असर बहुत बुरा पड़ रहा था। लोगों का आना-जाना, या सामान को ढोकर एक जगह से दूसरी जगह ले जाना, यहांतक कि छोटे-छोटे बाजारों में मामूली खरीद-फरोख्त का काम भी, एक प्रकार से सब रुक गया था। जो धान या चावल गावों में था, उसे भी सरकार अपने कब्जे में कर रही थी ताकि वह दुश्मन के हाथ न लगने पावे। जिसे अंगरेजी में 'स्कार्च्ड अर्थ पालिसी' (Scarched earth policy) अर्थात दुश्मन के हाथ में कोई चीज न पड़ने देने के लिए सभी चीजों को भस्मीभूत कर देनेकी नीति—कहते हैं, उसकी पूरी तैयारी की जा रही थी। बिहार में छोटानागपुर से लेकर सोन नदी तक एक बड़े मोरचे की तैयारी हो रही थी। इसके लिए बहुत जगहों पर हवाई अड्डे और हवाई जहाज के उतरने के लिए रास्ते बनाये जा रहे थे। हजारों बीघे जमीन जहां-तहां सरकार ले रही थी। उसपर बसी हुई प्रजा और उसे जोतनेवाले किसान

परेशान थे। कहा जाता था कि जमीन और मकान वगैरह जो उनको खाली करने पड़ते थे, उसके लिए उन्हें मुआवजा मिलेगा; पर अभी तक कहीं किसीको कुछ मिल नहीं रहा था। सब काम बहुत तेजी से चलाया जा रहा था। उत्तरी बिहार और छोटा नागपुर में बहुत बड़ी अंगरेजी और अमरीकी सेना जुट रही थी। मालूम नहीं, कितने लाख लोग आ चुके थे—कितने और आनेवाले थे। आसाम की सीमा पर लड़ाई पहुंच जाने के कारण उधर सेना के काम मे ही रेलगाडियो के अधिक लग जाने से जन-साधारण का कही रेल पर आना-जाना कठिन हो गया था। विशेषकर बी० एन० डब्लू० रेलवे (अब ओ० टी० रेलवे) मे, जो उत्तर-बिहार (तिरहुत) होकर अवध में जाती है, बड़ी तकलीफ थी। उसमे फौजी गाड़ियां बहुत चलती थीं। उनमें कई तो घायलों को आसाम के मोर्चे से लाद-लादकर उत्तर-भारत के किसी स्थान पर ले जाया करती। बहुतेरे लोग पूरब की तरफ से बिहार, संयुक्तप्रान्त तथा इनसे भी और पच्छिम की ओर भागे जा रहे थे। इनसब चीजों को देखकर लोगों मे और भी घबराहट फैल रही थी। स्थान-स्थान पर भागते हुए लोगों के ठहरने के लिए अड्डे बनाये जा रहे थे, नई सडकें निकाली जा रही थी और स्थान-स्थान पर उनके लिए अन्न-पानी वगैरह जमा रखने का प्रयत्न हो रहा था। इसमें दूरदर्शिता तो अवश्य थी, पर साथ ही जनता कुछ ऐसा समझने लगी कि लड़ाई न करके यह सब तैयारियां भागने के लिए ही हो रही है! जन-साधारण क्या जाने कि आज का मोर्चा कितना फैला हुआ होता है और उसमे कितने प्रकार की लड़ाइया हुआ करती हैं!

सबका नतीजा यह था कि सारे देश में भारी खलबली थी। मैंने पहले ही निश्चय कर लिया था और वह निश्चय वर्धा में और भी दृढ हो गया कि मुझे सारे प्रान्त का दौरा करना चाहिए। अब मेरा स्वास्थ्य ऐसा नहीं था कि मैं जैसे पहले सूबे के छोटे-छोटे स्थानो में भी जाया करता था, वैसे अब भी जा सकू और तूफानी दौरे मे एक दिन में सात-सात आठ-आठ सभाओं में भाषण करूं। इसलिए मैंने निश्चय किया कि हर जिले के एक या दो मुख्य स्थानों मे ही जाऊंगा, वहां सार्वजनिक सभा के अलावा कांग्रेस-कार्यकर्ताओ की विशेष सभा की जायगी। अन्न और वस्त्र का संकट भी बढ़ रहा था। इस सम्बन्ध में भी व्यापारियों तथा जन-साधारण से राय-बात करके जानकारी हासिल करना आवश्यक था। इसलिए यह भी सोचा गया कि ऐसे लोगों के साथ अलग मुलाकात की जाय। ऐसा ही कार्यक्रम बनाकर मैंने सारे सूबे का दौरा अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में आरम्भ कर दिया और जून के अन्तिम सप्ताह तक समाप्त किया।

यह बात प्रकट हो गई थी कि गांधीजी ने वर्किंग कमिटी के लिए कोई प्रस्ताव प्रयाग में भेजा था। पुलिस इसकी ताक में थी कि उसकी नकल किसी तरह उसे मिल जाय, पर उस समय शायद उसे नहीं मिली। कुछ दिनों के बाद एक दिन अचानक 'स्वराज्य-भवन' की तलाशी हुई। वहां से पुलिस न केवल मसविदा की नकल ले गई, बल्कि उसके साथ वर्किंग कमिटी में हुई बहस का वह संक्षिप्त नोट भी ले गई, जो आफिस के काम के लिए रखा गया था। इस मसविदे और नोट का, सरकार अपनी पुस्तिका में, जिसे अगस्त के क्रान्तिकारी आन्दोलन पर मन्त्री रिचर्ड टोटनहम ने लिखा था, खूब इस्तेमाल किया। मुझे कुछ सन्देह होता है कि पुलिस को मसविदे का पता लगने देने का कारण कुछ हद तक मैं हूं। मैंने ऊपर बताया है कि गांधीजी के मसविदे मे कुछ संशोधन करने का प्रयत्न मैंने किया था। मेरी प्रति, जिसपर यह संशोधन मैंने किया था, आफिस मे रह गई। मै प्रयाग से सीधे वर्धा गया। रवाना होने के समय इस प्रति को साथ लेना भूल गया। स्टेशन पर अथवा रास्ते मे यह बात याद आयी। मैंने आफिस के लोगो से कह दिया या लिख दिया कि उसे वे तुरन्त वर्धा भेज दे, क्योंकि मैं समझता था कि गांधीजी शायद उसे देखना चाहे। आफिस से वह प्रति उसी दिन डाक से भेज दी गई। अगर रास्ते मे पुलिस उसे रोक न लेती तो मेरे वर्धा पहुचने के बाद दूसरे ही दिन वह पहुच जाती। पर वह मुझे मिली नही। मैंने मान लिया कि आफिसवालो ने उसे भेजा ही न होगा। पीछे जब आफिस की तलाशी हुई तब मैंने दरियाफ्त किया। मालूम हुआ कि उन्होंने उसे उसी दिन डाक से मेरे पास वर्धा भेज दिया था। शायद, इसी प्रति को देखकर पुलिस ने निश्चय किया होगा कि तलाशी लेने से कुछ मसाला मिल जायगा।

जो हो, वर्धा से बिहार लौटकर मैंने दौरा शुरू किया। इस बात में किसी तरह का सन्देह मेरे दिल मे नही रह गया था कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के साथ हमारा टंटा होगा ही। मैंने खुलकर साफ-साफ अपने सभी भाषणों में यह बात कही। अभी तक हमारे पास कोई कार्यक्रम नही था। इसलिए मैं कार्यक्रम नहीं बता सकता था और ना ही बतलाया। पर इतना अवश्य कहा कि यह भद्र-अवज्ञा का ही रूप धारण करेगा। साथ ही, बिलकुल अहिंसात्मक होगा। और यह भी कहा कि पहले के आन्दोलनों से यह कहीं अधिक उग्र होगा। उन दिनो जापान की ओर से रेडियो द्वारा इस बात का जोरों से प्रचार किया जा रहा था कि जापान भारत को आजाद करने का प्रयत्न कर रहा है और वह हर तरह से भारत की मदद करेगा। इस बात पर भी मैंने अपने सभी भाषणों में कहा कि जापान की बात का विश्वास

नही करना चाहिए—विशेषकर जब हम देखते है कि उसने अपने पडोसी चीन का गला दबा रखा है और अधिकाधिक प्रचण्ड होता जा रहा है—हमको ब्रिटिश और जापान दोनों के चुगलों से भारत को आजाद करना है, उसे एक से बचाकर दूसरे के कब्जे मे जाने देना हम हरगिज पसन्द नही कर सकते; इसलिए हमारा संग्राम दोनों के साथ होगा और वह अहिंसात्मक ही होगा। मेरे भाषण जोरदार और उग्र हुआ करते थे। मैं भी समझता था और लोग भी मुझसे कहा करते थे कि पहले मेरे भाषण बहुत ठंडे हुआ करते थे, पर इस बार तो मै आग उगला करता हूं।

१९३० के सत्याग्रह के आरम्भ के पहले एक बार पटने के युवकों मे कुछ गर्मी आई। वे कोई छोटी-सी बात लेकर, जिसका मुझे आज स्मरण नही है, सत्याग्रह की बात करने लगे। सार्वजनिक सभा में गरमागरम भाषण हो रहे थे। कई वक्ताओं के बाद मुझे कुछ कहने का मौका मिला। जब मै उठा तो एक युवक साथी ने आहिस्ता से कहा कि अब लोगों के उत्साह पर मैं भीगा कम्बल डाल दूगा। मैंने यह सुन लिया और इसीको लेकर लोगों को बतलाया कि मेरे भीगा कम्बल डालने के बाद भी अगर गर्मी ज्यो-की-त्यों बनी रही, तो मै समझूगा कि वह स्वस्थ एव शक्तिशाली आदमी की गर्मी है और जो उत्साह प्रदर्शित किया जा रहा है, वह सच्चा उत्साह है, नही तो मै उस गर्मी को त्रिदोष से पीड़ित मनुष्य का ज्वर समझूगा और उस प्रदर्शन को उसका प्रलापमात्र।

इस बार मेरे भाषणो मे वह भीगा कम्बल कही किसी तरह देखने मे नही आया। उसके विपरीत उसमे काफी उत्साहवर्धक और उन्मादोत्पादक मसाला रहा करता था। साथ ही, मैं रचनात्मक काम भी करता जाता था। व्यापारियो और जनता मे अन्न-वस्त्र के सकट से बचने और बचाने की बात भी करता जाता था। मेरा विश्वास है कि यदि सरकार जनता का सहयोग लेती तो इस सकट का वह भयंकर रूप नही होता, जो हुआ और आज तक भी है। हमारा उद्देश्य ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध लोगों को उभारने का नही था और न यह था कि उसके रास्ते मे हम रोड़े अटकाये अथवा जैसे-तैसे उसको परेशान करे। हमारा उद्देश्य था कि लोगों को हम इस बात के लिए तैयार करे कि वे जापान का मुकाबला कर सकें; और चूकि ब्रिटिश सरकार इसका मौका हमको नहीं देती, हम उससे भी समय पाकर लड़कर यह मौका लेना चाहते थे। इसलिए हम अव्यवस्थित तरीके से उसे हैरान करना नहीं चाहते थे। अपनी इस नीति को इसलिए क्रियात्मक रूप से दिखला देने और प्रमाणित कर देने का एक मौका मुझे मिल गया।

उन दिनों स्थान-स्थान पर हवाई जहाज के अड्डे तथा फौज के लिए

छावनियां बनाने को जनता की जमीन ली जा रही थी। मैं गया में पहुंचा तो सुना कि शहर से थोडी ही दूर पर, जहां पहले से ही अड्डा था, और भी बहुत-सी जमीन ली जा रही है और हजारों आदमी बेघरबार और बेखेत के हो गए है, उनको कुछ मुआवजा भी नही मिला है, इन कारणों से उनमें रोष है। मै वहां गया। सुनते ही हजारो की तादाद मे लोग जमा हो गए। उनकी दशा सचमुच दयनीय थी। कई गाव पस्त कर दिये गए थे। कई और पस्त किये जाने को थे। खेतो की आबादी रोक दी गई थी। अड्डे बनाने के लिए जमीन तैयार की जा रही थी। वहा हजारो मजदूर काम कर रहे थे। बहुत-सी लारिया सामान ढोकर पहुंचा रही थी। जिनके घर और जमीन ले ली गई थी, वे इधर-उधर मारे-मारे फिर रहे थे। उनका कोई पुरसा-हाल न था। मेरे पहुचते ही लोगो ने अपना सब दुखड़ा कह सुनाया। अगर सरकारी अथवा लड़ाई के काम मे रोड़े अटकाना हमारा उद्देश्य होता तो इससे बढ़कर दूसरा अच्छा अवसर नही मिलता। पर मैने लोगों को समझाया कि लड़ाई के काम के लिए सरकार ऐसा किये बिना बचाव का इन्तजाम नही कर सकती, इसलिए उनको मुआवजा लेकर अपना कुछ दूसरा प्रबन्ध सोचना चाहिए और मै मुआवजा दिलाने काप्रयत्न करूंगा। मैने कह तो दिया, पर मैं नही जानता था कि सरकार मेरी बात सुनेगी!

मैंने पटना लौटते ही गवर्नमेण्ट-एडवाइजर को पत्र लिखा, जिसमें सब बाते साफ-साफ बता दी, और मुआवजा किस तरह का होना चाहिए, यह भी बतलाया—यह भी लिखा कि मुआवजा बाटने में भी गड़बड़ी हुआ करती है, इसलिए बाटने के समय कांग्रेस के आदमी बुला लिये जायं और उनके सामने रुपये बाटे जाय। कुछ जमीन तो ऐसी थी, जिसपर मकान बननेवाले थे अथवा जहाज उतरने के लिए मजबूत सड़के बनानी थी, वह तो वापस होने पर भी किसान के काम की नही रह जायगी; पर अधिकांश जमीन केवल समतल करके रखी जायगी और उसमे घास उग जायगी, दूसरा कोई परिवर्तन नही होगा। सरकार को मैंने यह लिखा कि लड़ाई का काम जब खत्म हो जाय तब जमीन जिसकी थी, उसीको वापस कर दी जाय और यह यथासाध्य किसान के काम लायक बनाकर वापस की जाय, इस बीच उस जमीन से किसान जो पैदा करता वह भी उसे दिया जाय—जो जमीन वापस नही होने को है और जो मकान वगैरह गिरा दिये जा रहे थे, उनकी कीमत नकद दे दी जाय तथा नकद बाटने और फसल का मुआवजा निर्धारित करने और चुकाने के समय कांग्रेस के कार्यकर्ताओं से मदद ली जाय।

मेरा पत्र पाते ही कमिश्नर ने इसपर कार्रवाई की। मेरी सिफारिशों

को उन्होंने मान लिया और मेरे पास धन्यवाद का पत्र भेजा, जिसमें यह लिखा था कि वहां की जटिल परिस्थिति को मैंने बहुत ठीक तरह से संभाल लिया।

मैं जब मानभूम-जिले में गया तो वहां भी ऐसी ही स्थिति थी। वहां के कलक्टर ने भी वैसा ही किया जैसा पटना-डिवीजन के कमिश्नर ने किया था। इन बातों को इतने विस्तार से इसलिए लिखना पड़ा कि जब आन्दोलन आरम्भ हुआ तो सरकार ने हम लोगों पर झूठा इलजाम लगाया कि हम लोग जापान की मदद करना और ब्रिटिश सरकार को हर तरह से परेशान करना चाहते थे। पीछे सरकार ने जापान की मदद करने के अभियोग को निराधार होने के कारण वापस ले लिया। पर हमारे मुस्लिम लीग के भाई अब भी उसे ढोये जा रहे है और वैसा कहने से बाज नहीं आते!

मैं दौरे पर था, तभी वर्धा में वर्किंग कमिटी की बैठक का नोटिस मिल गया। मैंने दौरे का कार्यक्रम भी ऐसा बना लिया था कि उसे समाप्त करके सीधे वर्धा चला जाऊ। जून के अन्तिम दिनो मे वहा चला भी गया। वहां पहले तो चर्खा-संघ की बैठक थी और उसके बाद वर्किंग कमिटी की। कई दिन वहीं रह जाना पड़ा। खादी की उत्पत्ति का बहुत विस्तार करने का आयोजन सोचा गया; क्योंकि ऐसा दीखने लगा था कि मिलों से जो कपड़ा जन-साधारण को मिला करता था, वह लड़ाई के कारण बहुत अशों मे अब उपलब्ध नही था, कारण यह कि अधिकतर फौजी काम के लिए ही उनको कपड़ा बनाना पड रहा था और जो वस्त्र-संकट था वह चर्खा-कर्घा द्वारा दूर किया जा सकता था। इसलिए कई दिनो के विचार के बाद चर्खा-संघ ने बहुत बड़े पैमाने पर काम बढाने का निश्चय किया। वर्किंग कमिटी की बैठक कई दिनों तक होती रही। अन्त में हम इस निश्चय पर पहुंचे कि अहिंसात्मक भद्र-अवज्ञा हमको करनी ही होगी, और इस बात की आज्ञा देने के लिए अगस्त के आरम्भ में बम्बई मे अखिल भारतीय कमिटी की बैठक की जाय।

: १४८ :

१९४२ की क्रान्ति के पूर्व

वर्किंग कमिटी में बहुत बहस हुई। वहां मतभेद कुछ स्पष्ट हो गया। यहांपर यह कह देना अनुचित न होगा कि डाक्टर सैयद महमूद सत्याग्रह के विरुद्ध थे। जुलाई का महीना करीब-करीब आधा बीत चुका था। पानी बरसना जोरों से आरम्भ हो चुका था। हब्बमामूल दमा का दौरा भी उसके साथ-ही-साथ शुरू हो गया था। पर मैं सभी बैठकों में शामिल होता रहा। इतनी बातें हुईं, पर वर्किंग कमिटी ने सत्याग्रह का कोई कार्यक्रम निर्धारित नहीं किया। मुझे यही बात खटकती थी। गांधीजी से मैंने कहा भी कि कार्यक्रम का कुछ निर्देश भी वह करें; पर उन्होंने साफ-साफ उत्तर दिया कि उनका दिमाग इस तरह काम नहीं करता—जब एकबारगी निश्चय हो जायगा कि सत्याग्रह करना ही होगा तभी वह कार्यक्रम के सम्बन्ध में सोच सकेंगे और उसे निर्धारित कर सकेंगे, अभी तो अखिल भारतीय कमिटी को फैसला करना है—वर्किंग कमिटी बिलकुल एकमत नहीं है और उसके बाद सरकार क्या करेगी, यह भी मालूम नहीं—ऐसी अनिश्चित अवस्था में वह कार्यक्रम के सम्बन्ध में अभी कुछ भी निर्धारित नहीं कर सकेंगे; पर इतना अवश्य था कि इस बार का सत्याग्रह बहुत उग्र होगा, केवल जेल जाना ही काफी न होगा, उससे कहीं अधिक त्याग की जरूरत पड़ेगी, आवश्यकता होने पर धन-धान्य, घर-द्वार सब-कुछ स्वाहा करना होगा—चर्खा-संघ में जो पच्चीस-तीस लाख या इससे भी अधिक रुपये लगे हैं, उनपर भी हमला हो सकता है और यद्यपि हमने काम बढ़ाने का निश्चय किया है तथापि सारा चर्खा-संघ और उसके धन-जन दोनों ही आहुति में पड़ जा सकते हैं; पर अभी सत्याग्रह के रूप का चित्रण उनके सामने नहीं आया है और उसपर वह अभी अपना दिमाग भी लगाना नहीं चाहते हैं, क्योंकि जबतक निश्चय न हो जाय कि सत्याग्रह अनिवार्य है और करना ही पड़ेगा तबतक कार्यक्रम बनाने में उनका दिमाग काम ही नहीं करेगा। हम लोगों को यह एक भारी त्रुटि मालूम होती थी, पर कार्यक्रम तो गांधीजी को ही बनाना था और हमको मजबूरन उनकी बात मान लेनी पड़ी।

वर्धा से रवाना होने के पहले मैं गांधीजी से विदा लेने सेवाग्राम गया। वहां और कई आदमी थे। उनमें से किसीने कार्यक्रम की बात छेड़ दी, यह प्रश्न किया कि तार और टेलीफोन का तार काटना अथवा रेल की पटरी उखाड़ देना अहिंसा के अन्दर आ सकता है या नही। प्रश्न सामयिक था, क्योकि मै जानता हूं कि जब-जब सत्याग्रह की बात चली है, कुछ लोगों का ध्यान इस ओर गया और उन्होंने इस प्रश्न को छेड़ा है। प्रश्न पूछते ही मैने गाधीजी से कहा कि यह प्रश्न बार-बार उठा करता है—१९३० के आन्दोलन मे भी, जब महात्माजी और दूसरे बहुत-से लोग जेल मे चले गये थे तथा पंडित मोतीलालजी स्थानापन्न प्रेसिडेण्ट थे और मैं वर्किंग कमिटी के मेम्बर की हैसियत से प्रयाग गया था, तो लोगो ने इस प्रश्न को उठाया था और जहां-तहां तार और टेलीफोन के तार लोगों ने काट भी दिये थे; पर यह सब बहुत कम जगहों में ही हो पाया था और उस समय यह रोक दिया गया था, इसलिए इसमे कोई आश्चर्य की बात नही कि आज भी जब हम सत्याग्रह की बात सोच रहे है तो इस तरह का विचार कुछ लोगो के दिल मे उठ रहा हो—महात्माजी को चाहिए कि कार्यक्रम बनाते समय इस सम्बन्ध मे कुछ साफ-साफ आदेश दे। गांधीजी ने कहा कि लोहा-लकड़ी काटने-तोड़ने मे हिसा-अहिसा की बात नही उठती है, हम तो रोज साधारण रीति से लोहा-लकड़ी काटते-तोड़ते रहते है; पर रेल की पटरी उखाड़ लेना अथवा तार काट देना दूसरी बात है—किस उद्देश्य से यह काम किया जाता है, किस तरह से किया जाता है और इसका फल क्या होना है, इन बातों पर इसका हिंसात्मक और अहिंसात्मक होना निर्भर है; यदि इससे हत्या हो अथवा बेकसूर लोगों पर विपत्ति आये तो यह हिंसात्मक होगा, पर हम ऐसी परिस्थिति का अनुमान कर सकते हैं जब यह अहिंसात्मक भी हो सकता है।

हमने उनके कहने का आशय यह समझा कि इसे अहिंसात्मक होना बहुत करके इसपर निर्भर होगा कि इसके कारण किसीकी जान पर खतरा न हो और जो कोई भी ऐसा काम करे, वह उसकी जवाबदेही अपने ऊपर साफ-साफ और सीधे ले ले, ताकि दूसरो को, जिनका इससे कोई सरोकार न रहा हो, इसका फल भुगतना न पड़े। ये बाते योंही हो गईं, कोई कार्यक्रम उस समय निर्धारित न हुआ, न होने की बात ही थी। जब सरकार ने यह अभियोग लगाया कि हम लोगो ने रेल-तार तोड़ने का कार्यक्रम बनाया था तो गांधीजी ने उत्तर में कहा था कि सरकार ने एक बातचीत अथवा सैद्धान्तिक चर्चा को कार्यक्रम मान लेने की भूल की है। गांधीजी की यह बात बिलकुल सत्य थी और हमने उस समय इस कार्यक्रम को अथवा किसी

भी कार्यक्रम को निर्धारित नही किया था।

वर्धा से मैं पटने के लिए रवाना हुआ। पहले से ही दो-तीन जगहों में जाने का वादा कर रक्खा था। उनमें गोंदिया एक स्थान था, इसलिए गोंदिया में उतर गया और वहां से सभा इत्यादि करके रात की गाड़ी से रवाना हो गया। दूसरे दिन रात को बनारस पहुचा। वहांपर भारतीय इतिहास-परिषद् की कार्यकारिणी की बैठक कर लेनी थी। अब यह एक प्रकार से निश्चित-सा था कि थोड़े ही दिनो मे आन्दोलन उग्र रूप धारण कर लेगा। इसलिए परिषद्-सम्बन्धी कुछ काम कर लेना जरूरी था। उसमे एक आवश्यक काम कुछ रुपये जमा कर लेना था और जो जिल्दें प्रायः तैयार कही जाती थी, उनके छपवाने इत्यादि के सम्बन्ध मे श्री जयचन्द्र विद्यालंकार से बाते कर लेनी थी। कुछ रकम गोंदिया में मिली थी, उसे जमा कर दिया और दूसरे कामों का प्रबन्ध करके काशी से मै पटने मे न ठहरकर सीधे मुंगेर जिले मे तारापुर चला गया। वहां किसान-कान्फ्रेन्स होनेवाली थी, जिसको लोगो ने मेरे लिए ही कई बार स्थगित कर रक्खा था। श्री कृपालानी-जी भी वहां उसका उद्घाटन करने के लिए आये थे और श्री कृष्णवल्लभ-सहाय सभापति होनेवाले थे। दूसरे प्रमुख व्यक्ति श्रीबाबू, अनुग्रहबाबू प्रभृति भी आये थे। रास्ते-भर सभी जगहो मे खूब पानी बरसता आया और बरसात का जो असर मेरे स्वास्थ्य पर पडता है वह अपना काम कर ही रहा था। मै तारापुर पहुंच तो गया, पर दमे का दौरा हो रहा था। कान्फ्रेंस का काम शुरू हुआ। मेरे कुछ कहने की बारी आई। मैने कुछ कहना आरम्भ किया कि इतने मे अचानक घटा उमड़ आई और जोरो से वर्षा होने लगी। रामगढ़-कांग्रेस की तरह कान्फ्रेन्स का काम रुक गया। हम लोग किसी तरह भीगते-भीगते डाक-बगले मे पहुचे, जहां ठहरे हुए थे। रात वहां बिताकर दूसरे दिन सवेरे ही मै पटने के लिए रवाना हो गया। पटना पहुचते-पहुंचते दमा खूब जोर पकड गया और ज्वर भी हो आया। उस दिन से बारह या पन्द्रह दिनों के बाद ही बम्बई में अखिल भारतीय कमिटी की बैठक होनेवाली थी। मुझे यह चिन्ता लगी कि उस समय तक अच्छा हो जाना चाहिए।

बम्बई जाने के पहले प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी की एक बैठक कर लेना उचित मालूम हुआ, जिसमें वर्धा के प्रस्ताव के सम्बन्ध मे, जिसपर बम्बई में विचार होनेवाला था, प्रान्त के लोगों की राय मालूम हो जाय। प्रान्तीय कमिटी का जलसा सदाकत-आश्रम मे ३१ जुलाई को हुआ। मेरी तबीयत बहुत खराब थी, बहुत कमजोर था। मैने कमिटी के सामने एक जोरदार भाषण किया, जो उन्हीं भाषणों का सारांश-मात्र था जो सारे सूबे के दौरे में

हुए थे। एक बात और थी, वह यह कि वर्धा में जो बातें हुई थीं, उन्हें भी मैंने लोगों को सुना दिया। सभी लोग समझ गये थे कि बम्बई मे जो निश्चय होगा, वह अत्यन्त महत्वपूर्ण होगा। इस जल्से के बाद एक-दो दिनों के अन्दर ही, अखिल भारतीय कमिटी के सदस्य तथा अनेक काग्रेसी, दर्शक होकर बम्बई के जल्से में शरीक होने को, रवाना हो गये। मै इतना बीमार था कि वहां जा न सका और पटने में ही पडा रहा।

अखबारों मे जोरों से खबर छपा करती थी कि सरकार की ओर से तैयारियां हो रही है और बम्बई मे ही सब लोग गिरफ्तार कर लिये जायंगे। इधर-उधर से यह भी खबर पहुंच रही थी कि बिहार मे भी तैयारी है और जो कैम्पजेल बन्द थी वह साफ करके तैयार कर ली गई है। बम्बई मे ५ अगस्त (१९४२ ई०) से वर्किंग कमिटी की बैठक शुरू हुई और ७ अगस्त से अखिल भारतीय कमिटी की बैठक होनेवाली थी। मै रेडियो और अखबारो मे खबरें सुना और पढा करता था। जो प्रस्ताव ८ अगस्त की रात को अखिल भारतीय कमिटी में पास किया गया वह भी वर्किंग कमिटी द्वारा स्वीकृत होने के बाद अखबारो मे आ गया। खबर बहुत गर्म थी कि बम्बई में ही सबको गिरफ्तार कर आन्दोलन आरम्भ होने के पहले ही दबा दिया जायगा। मैंने सोचा कि यदि ऐसा हुआ तो जनता के सामने कोई कार्यक्रम नही रह जायगा। इसलिए, कम-से-कम अपने सूबे के लिए, मैं कुछ कार्यक्रम बना दू। इतनी शक्ति नही थी कि बैठकर बहुत लिख सकू। इसलिए जो मित्र वहां मौजूद थे, उनसे बातें करके मसविदा तैयार करने को कहा। इनमें मुख्य थे प्रान्तीय कमिटी के मन्त्री श्री दीपनारायणसिंह और श्री मथुराप्रसाद। अनुग्रहबाबू भी बम्बई नही गये थे, पटने मे ही थे। जब मसविदा तैयार किया गया तो उसे अनुग्रहबाबू के साथ मैंने देखकर कुछ अदल-बदलकर ठीक कर दिया। उसे छपवाने का प्रबन्ध भी कर दिया गया। यह निश्चय हुआ कि अगर सचमुच सब लोग गिरफ्तार हो गये तो जो लोग रह जायंगे वे उसीके अनुसार काम करेंगे। यो तो गांधीजी ने बार-बार कह रक्खा था कि नेता लोग अगर गिरफ्तार हो गये और कोई कार्यक्रम न दे सके तो उस हालत में हरेक कांग्रेसी अपनेको नेता समझे और अहिंसा के इस सिद्धात के अंदर रहकर जो कुछ भी सत्याग्रह के रूप मे कर सकता हो करे—इस संग्राम को अन्तिम संग्राम समझकर कोई कुछ उठा न रक्खे, पर अहिंसा को किसी तरह न छोड़े। हमने जो कार्यक्रम बनाया, उसमें भी इस बात पर जोर दिया कि अहिंसा को नहीं छोड़ना चाहिए। उसमें सत्याग्रह के लिए कार्यक्रम भी बताया जो पूर्व के सत्याग्रहों के कार्यक्रम से सिद्धान्ततः भिन्न नही था, पर अधिक उग्र जरूर था।

इसी बीच में एक दिन दिल्ली से एक समाचार छपा कि ८ अगस्त के बाद कांग्रेस के लोगों की गिरफ्तारी नही होगी और सरकार इस बात का इन्तजार करेगी कि कांग्रेस क्या करती है—कांग्रेस की ओर से भी यह बात कही जा रही थी कि कोई कदम उठाने के पहले गांधीजी वाइसराय से एक बार और बातचीत करेंगे; जब वहां कुछ नही होगा तभी कोई कदम उठाने की राय देंगे। इस समाचार को हमने सच मान लिया और समझ लिया कि अब तुरन्त कुछ होनेवाला नही है, बम्बई गये हुए लोगों के लौटने तक हमको इन्तजार करना चाहिए—हो सकता है कि वे लोग वहां से निर्धारित कार्यक्रम भी साथ लावें; यदि ऐसा हुआ तो हमारे द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रम को काम मे लाना अनुचित नही तो अनावश्यक होगा। इस तरह हमने निश्चय कर लिया कि अब ११ अगस्त के पहले, जब बम्बई से लोगों के लौटने की आशा थी, हमको कुछ नही करना है। इसी निश्चय के अनुसार अनुग्रहबाबू रायबरेली चले गये जहा उनके भाई बीमार थे और दीपबाबू मुजफ्फरपुर-जिले मे पहले से मुकर्रर किये गए कुछ काम को पूरा करने। मैं, मथुराबाबू और श्री चक्रधरशरण के साथ आश्रम मे ठहरा रहा।

: १४९ :

१९४२ के तूफानी दिन

८ अगस्त (१९४२ ई०) की रात को प्रायः १० बजे के बाद भारतीय कमिटी ने प्रस्ताव मजूर किया। सुना कि गांधीजी का लम्बा भाषण हुआ, जिसमे उन्होने 'करो या मरो' का मंत्र लोगो को दिया। साथ ही, उन्होने वाइसराय से मिलने तथा एक बार और समझौते के लिए प्रयत्न करने की बात भी कही। अन्य नेताओं के भी भाषण की लोगों ने बहुत प्रशंसा की। ९ अगस्त (१९४२ ई०) को सवेरे मै 'सर्चलाइट' मे बम्बई की कार्रवाई पढ़ रहा था, मथुराबाबू शहर चले गये थे कि इतने में डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मि० आर्चर पहुंचे। मैं चारपाई पर था। उन्होने मुझे देखकर मेरे स्वास्थ्य के सम्बन्ध में पूछताछ की और यह पूछा कि मेरा कार्यक्रम क्या है। मैं तो समझ गया था कि इनके आने का कारण क्या था; क्योंकि रेडियो मे गांधीजी तथा वर्किंग कमिटी के सदस्यों की गिरफ्तारी की खबर संक्षेप मे आ चुकी थी। मेरी बीमारी देखकर उन्होने सरकार से पूछा कि ऐसी अवस्था मे क्या किया जाय। वहा से हुक्म आया कि सिविल सर्जन से दिखलाओ और पूछो कि वहा से वह दूर ले जाने योग्य है या नही। सिविल सर्जन को मि० आर्चर जाकर ले आये।

इसी बीच में मेरे घर के डेरे पर खबर पहुंच गई। वहां से बहन और मृत्युजय की मां वगैरह पहुच गई। सिविल सर्जन की राय हुई कि मैं सफर के लायक नही हूं। इसलिए मुझे ११-१२ बजे दिन के करीब बांकीपुर-जेल में ही ले गये। पानी खूब बरस रहा था। खबर शहर में फैल गई। सदाकत-आश्रम से मेरे रवाना होने के पहले ही कुछ लोग, जिनमे विद्यार्थी मुख्य थे, आश्रम पहुंच गये। केवल मुझे ही गिरफ्तार करने का हुक्म था। मि० आर्चर का तौर-तरीका अच्छा था। उन्होने किसी तरह की न तो जल्दी की और न कोई बेअदबी या बदतमीजी। जेल में मेरे लिए सब प्रबन्ध ठीक करके मथुराबाबू और चक्रधर वापस गये कि इतने में ही श्री फूलनप्रसाद वर्मा भी गिरफ्तार होकर वहां पहुंच गये। इस तरह प्रायः एक-डेढ़ बजे के पहले ही निश्चित हो गया कि मैं अकेला नहीं रहूंगा और कम-से-कम एक साथी रात को मेरी देखभाल करने के लिए जरूर रहेंगे। मथुराबाबू ने भी

मि० आर्चर से बातचीत की और वह भी संध्या के पहले ही आ पहुंचे। दूसरे दिन तो और लोग भी आने लगे। बम्बई से लौटने पर श्रीबाबू, सत्यनारायणबाबू, महामायाबाबू आदि भी आ गये। अनुग्रहबाबू भी आये। पटने में जोरों से प्रदर्शन होने लगा। बड़े-बड़े जलूस निकलने लगे। कचहरियां बन्द हो गईं और एक बहुत बडा जलूस गवर्नमेण्ट-हाउस के दरवाजे तक नारा लगाता हुआ जा पहुचा। रात हो गई थी, इसलिए और उस दिन कुछ नहीं हुआ; पर खबर मशहूर थी कि दूसरे दिन सेक्रेटेरियट पर झंडा चढ़ाने के लिए जलूस जायगा।

जेल मे खबर मिलने का साधन एक ही था और वह था गिरफ्तार होकर नये लोगो का आना। अखबार अभीतक बन्द नहीं थे, पर उनसे थोडी खबर मिलती। सेक्रेटेरियट पर जलूस गया। गोली चली। आठ-नौ युवक शहीद हो गये। बहुतेरे घायल हुए, जिनको लोगो ने अस्पताल पहुंचाया। उस जलूस मे से चालीस-पचास लडके गिरफ्तार करके बांकीपुर-जेल में उसी रात को लाये गए। उनसे गोलीकाड की बातें मालूम हुईं। रात-भर सारे शहर मे जलूस निकलते रहे। जेल के अन्दर भी जुलूसों की आवाज पहुचती रही। उसी दिन तार और टेलीफोन तोड़ने का काम आरम्भ हो गया। हमने सुना कि पटने मे टेलीफोन बन्द हो गया। जेल-आफिस में भी टेलीफोन का आना-जाना रुक गया। जो लडके सेक्रेटेरियट के जुलूस से गिरफ्तार करके लाये गए थे, वे किसी तरह बाकीपुर-जेल मे रात-भर रक्खे गये, दूसरे दिन उन्हे कैम्प-जेल मे भेजने की तैयारी होने लगी। जेल की कैफियत यह थी कि पहले से ही वह ठसाठस भरी थी। मामूली कैदियों की सख्या सारे सूबे मे बहुत बढी हुई थी, क्योकि डकैतियां कई बरस पहले से ही लडाई के जमाने मे बहुत बढ गई थी और चोरी इत्यादि भी ज्यादा हो रही थी। कैदियो मे बहुतेरे अभी हाजती (Undertrial) थे, जिनके मुकदमे की जाच अभी तक नहीं हुई थी। इसलिए जब राजनैतिक कैदियो की सख्या बढ़ने लगी तो उनके लिए स्थान कम पड गया। जो ऊचे दर्जे मे रक्खे जानेवाले थे, वे तो बाकीपुर-जेल मे रखे गए और दूसरो को कैम्प-जेल भेजने का प्रबन्ध था। जबतक लडके कैम्प-जेल मे नही भेजे गये, शहर की बड़ी जमात जेल के फाटक पर और सडको पर खड़ी थी। बांकीपुर-जेल में दोमहला मकान सड़क के किनारे की ओर ही है। उसपर से लड़कों ने सड़क पर जमी हुई भीड़ से कुछ बातें भी की। जब तीन बजे के करीब उनको ले जाने के लिए लारिया लाई गईं, उनमें वे सवार कराये गए। पहली लारी आगे बढ़ी तो जनता लारी पर टूट पड़ी; लड़कों को छुड़ा लिया और लारी में आग लगा दी। दूसरी लारियों को फिर आगे नहीं

बढ़ाया, उनमें सवार लड़कों को उतारकर फिर जेल में ले आये। कुछ देर में फौज बुलाई गई। उसने रास्ता साफ किया। आगे-पीछे फौजी गाड़ियो के बीच में कैदियों की लारियां कैम्प-जेल पहुंचाई गईं।

जो लोग 'ए' वर्ग में रखे जाते थे, उनकी संख्या भी बढ़ती ही जाती थी और उनके लिए जेल के अस्पताल के सिवा दूसरा स्थान नहीं था। उनको भी हजारीबाग ले जाने की बात थी; पर तबतक रेलगाड़ियों का आना-जाना बन्द हो गया, इसलिए उनका वहा जाना अनिश्चित काल तक के लिए रुक गया। प्रायः एक महीना बाद तक वे लोग उस छोटे-से अस्पताल में ही रहे और कुछ लोग इधर-उधर भी रखे गये। बाकीपुर की जेल पटना-जंकशन-स्टेशन के नजदीक ही है। वहां से गाड़ियो के आने-जाने और विशेषकर रेल की सीटी की आवाज खूब सुनने में आ जाती है। यह सब महीनो तक बन्द रहा। केवल एक इंजिन की सीटी सुनने मे आया करती, जो डब्बों को इधर-उधर स्टेशन पर हटाया करता होगा। उसकी आवाज भी हम लोगो ने पहचान ली थी। हम उससे इस भ्रम मे नही पड़ते थे कि गाडिया चलने लगी। प्रायः एक महीने के बाद सभी लोग हजारीबाग ले जाये गए। मैं वहां जाने के लायक नही था। वहा का जलवायु भी मेरे अनुकूल नही पड़ता। इसलिए मैं पटने में ही रक्खा गया।

जेल मे पहुचने के दो-चार दिनो के बाद यह खबर उड़ी कि मुझे कही बाहर ले जायगे जहां वर्किंग कमिटी के दूसरे सदस्य रक्खे गये थे। रेलो का चलना बन्द हो चुका था, इसलिए ले जाने का एक ही उपाय था—हवाई-जहाज। डाक्टरों से राय ली गई तो उन्होने राय दी कि मेरी अवस्था ऐसी नही कि हवाई जहाज का सफर बर्दाश्त कर सकू। इसलिए यह विचार भी स्थगित हो गया। प्रायः दस महीनों के बाद, जून १९४३ में, एक दिन अचानक मेजर मर्डक—जिन्होंने मुझे गिरफ्तारी के समय देखा था और हजारीबाग न ले जाने की राय दी थी—जेल में आ गये। उन्होंने मुझसे कहा कि हमे सरकार का हुक्म मिला है कि मुझे देखकर मेरे स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे तुरन्त रिपोर्ट दें। गर्मियों मे, विशेषकर जून के शुरू मे, मैं बहुत स्वस्थ रहा करता हूं। उस समय बहुत अच्छा था। इसलिए, ऐसे समय मे, जब स्वास्थ्य के बारे मे कोई खराब रिपोर्ट नही गई होगी, डाक्टर का आना आश्चर्य-जनक अवश्य था। मैंने ताड़ लिया कि मुझे कहीं दूसरी जगह भेजना चाहते हैं। मैंने डाक्टर से पूछा तो उसने कहा कि बाजाब्ता खबर तो उसको नही लेकिन बेजाब्ता तौर से वह कह सकता है कि कुछ ऐसी ही बात थी। कुछ और अधिक पूछने पर उसने यह भी कहा कि मैं हजारीबाग नही भेजा जाऊंगा, दक्खिन पूना की ओर जाना होगा। पीछे जेल से निकलने पर यह

खबर मिली कि अहमदनगर के किले मे भी मेरे भेजे जाने की बात थी और मेरे लिए वहा कमरा ठीक किया गया था; पर न मालूम क्यो, फिर कुछ हुआ नही। कुछ दिनो के बाद, जब डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट मिलने आया, पूछने पर उसने कहा कि न मालूम क्यो बात आगे न बढ़ी।

जेल जाने के समय मेरी चिकित्सा वैद्यराज ब्रजविहारी चौबेजी कर रहे थे। जेल मे उनकी चिकित्सा होना सम्भव नही था। न मालूम सरकार कहने पर भी इसकी इजाजत देगी या नही, और मै कोई खास सहूलियत मागना पसन्द भी नही करता था। इसलिए वहा पहुंचते ही डाक्टरी दवा शुरू हो गई। बाहर रहने पर पटने के नामी डाक्टर श्री त्रिदिवनाथ बनर्जी (टी० एन० बनर्जी), जो उन दिनो मेडिकल-कालेज के प्रिन्सिपल थे, और डाक्टर रघुनाथशरण तथा डाक्टर दामोदरप्रसाद मुझे देखा करते हैं। सरकार ने आज्ञा दे दी कि जब कभी जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट, जो वहां के सिविल सर्जन उन दिनो हुआ करते थे, जब जरूरत समझे तब डाक्टर बनर्जी को बुला लिया करे। इसलिए जब-तब डाक्टर बनर्जी आया करते थे। तबीयत कुछ ज्यादा खराब हुई तो डाक्टर शरण और डाक्टर दस्तीदार भी खास करके बुला लिये जाते थे। इस तरह, मै जब-जब बीमार पड़ा, वे डाक्टर आते रहे, जो पटने मे सबसे अच्छे समझे जाते है और जिन्होंने बहुत बरसों से मेरी चिकित्सा की है। इस बात की शिकायत कभी न हुई कि मेरी बीमारी का पूरा ध्यान नही दिया गया। इसी तरह मेरे खान-पान, रहन-सहन इत्यादि के सम्बन्ध मे भी कभी किसी किस्म की शिकायत नही हुई। सरकार के हुक्म से, मेरे साथ रहने के लिए, शुरू से ही मथुराबाबू और चक्रधरबाबू बांकीपुर-जेल मे ही रहने दिये गए। पीछे वाल्मीकि को भी मेरे साथ रहने दिया। दूसरे लोग आते-जाते रहे, पर मेरी खातिर नही। कुछ तो गिरफ्तार करके वहा सीधे लाये जाते। पर कुछ दिनो के बाद यह बन्द हो गया और गिरफ्तार करके लोग सीधे कैम्प-जेल भेज दिये जाते थे। कुछ लोग कभी-कभी बीमार पड जाने पर हजारीबाग-जेल से, अथवा किसी दूसरी जेल से भी, पटने के बडे अस्पताल भेजे जाते। वे पहले बाकीपुर-जेल मे आते, वहा से फिर अस्पताल भेजे जाते। इसी तरह अस्पताल से लौटने के समय भी बाकीपुर-जेल होकर ही वापस जाते। हजारीबाग से आनेवाले इन बीमार कैदियो के सिवा दूसरा कोई जरिया हालचाल मिलने का नहीं था। कुछ दिनो के बाद यह भी बन्द हो गया। जिनको अस्पताल जाना होता, वे सीधे अस्पताल में ही भेज दिये जाते। तो भी जेल मे न मालूम किस तरह बिना पूछे, जानने की कोशिश किये बिना ही, खबर पहुंच ही जाती है। सरकार समझती थी कि ससार को यह बात मालूम नही है कि

वर्किंग कमिटी के मेम्बर कहां रखे गये हैं। पता नहीं कि बाहरवालों को कब मालूम हुआ कि वे लोग अहमदनगर-किले में हैं, पर हम लोगों को तो बांकीपुर-जेल में गिरफ्तारी के चन्द दिनों के अन्दर ही यह मालूम हो गया था। स्थानीय अखबार हमारी गिरफ्तारी के चन्द दिनो बाद तक तो निकलते रहे, पर बहुत जल्द सब-के-सब बन्द हो गये। बिहार-सरकार 'पटना-डेलीन्यूज' के नाम से एक दैनिक (अंगरेजी) पर्चा निकालने लगी, जिससे कुछ खबरें मिल जाती। एक विशेष बात उससे यह मालूम हुई कि सरकार ने किस जिले पर कितना सामूहिक जुर्माना किया या प्युनिटिव-टैक्स लगाया। हमने देखा कि चन्द महीनो के अन्दर प्राय: छब्बीस लाख जुर्माना किया गया!

: १५० :

१९४२ के जेल-जीवन की कुछ बातें

बांकीपुर का जेल-जीवन मेरे लिए किसी तरह कष्टप्रद न हुआ। यों तो किसी एक जगह बन्द रहना ही कष्टप्रद होता है, पर मैंने अपनेको कुछ ऐसा बना लिया या ऐसा पाया है कि जेल में पहुचने के बाद मैं बाहर की चिन्ता भूल जाता हूं—जो कुछ बाहर होता है अथवा हो सकता है, उससे कोई सम्पर्क नहीं रखता। बाहर से कोई कैदी आता और उससे भेंट होती तो वह बाहर का हाल कहता। दूसरी जेलों से आये हुए लोग उन जेलों का हाल कहते। जब अखबार फिर निकलने और हम लोगों को मिलने लगे तो उनसे भी देश की बातें मालूम हो जाती। पर मैं एक प्रकार से इन बातों को केवल सुन लेता, दूसरा कोई सम्बन्ध नहीं रखता। एक-दो मित्रों ने बाहर से खबर भेजने और वहां से मेरी राय जानने का भी प्रयत्न किया, पर मैंने इसे प्रोत्साहन नहीं दिया, तबसे फिर किसीने ऐसा प्रयत्न नहीं किया। शुरू में कई महीनों तक बीमार रहा। बरसात और जाड़ों में अक्सर अस्वस्थ रहा। केवल मार्च के बाद से जून तक अच्छा रहा करता। पर हमेशा अस्वस्थता ऐसी नहीं होती कि बिलकुल चारपाई पर पड जाऊं। ऐसा भी हुआ, पर हमेशा नहीं। इसलिए सून कातने और लिखने-पढने का समय मिला। आगे चलकर यह सहूलियत और भी अधिक हो गई—जब बाहर से कैदियों का आना-जाना बन्द हो गया और मेरे साथ भी दो-तीन आदमियों से अधिक न रह गये।

घर के लोगों से बराबर मुलाकात होती रही। छोटे-छोटे बच्चे भी उनके साथ आ जाया करते; उनको इसका ज्ञान तो शायद नहीं था कि मैं कहां कहां हूं और क्यों एक जगह मे बन्द हूं; पर सुना कि मुलाकात के दिन मेरे पास आने के लिए वे उत्सुक रहा करते थे। चिरंजीव अरुण मेरा पोता ढाई साल का था, पर वह जब जेल के फाटक के अन्दर घुसता तो वहां से सीधे दौड़ता हुआ अस्पताल-वार्ड के मेरे कमरे में आ जाता। दो-चार बार आने के बाद ही उसने रास्ता भी पहचान लिया और मेरा कमरा भी। उससे बड़ी जो लड़कियां थी, वे तो रास्ता और कमरा जानती थीं। मेरे पास पहुंचकर उन बच्चों की फर्माइश होती—बाबा, कुछ खिलाओ!

मैं उनके लिए कुछ तैयार रखता। आध घंटे तक रहकर और इधर-उधर दौड़-धूप करके कुछ खाकर वे चले जाते। जाने के समय जेल के अहाते मे खिले हुए सुन्दर फूल, अगर पसन्द आ जाते तो, तोड़ लेते। जेल के अधिकारी हरकतों से रुष्ट नहीं होते थे, बल्कि बच्चों की चंचलता देखकर खुश होते और हँसते। जब-तब अरुण मेरा हाथ पकडकर चलते समय कहता—'तुहूं चलऽबाबा'। छोटी अवस्था का बचपन भी कैसा सुन्दर, निरीह और निश्चिन्त हुआ करता है!

जेल में एक समय बहुत चिन्ता का बीता। वह था जब महात्माजी ने उपवास किया। इसकी खबर तो अखबारो से मिल गई। हमने सरकार को लिखा कि वहा की खबर मुझे तार द्वारा दी जाती रहे। कुछ मित्रो को तार भिजवाने के लिए भी कहला भेजा। तार आने लगे। पर जबतक वह सी० आई० डी० (खुफिया पुलिस) द्वारा पास न हो जाय, मुझे न मिलता। इसमें देर लगती और जेल-आफिस मे पहुचने के प्रायः २४ घंटे बाद तार मिलता। उधर भी उतनी ही खबर लोग भेजने को पाते जितनी सरकार की बुलेटिन में छपती, वह तो 'पटना डेलीन्यूज' मे सवेरे ही हमको मिल जाती; इसलिए तार और भी बेकार हो गया। चन्द दिनों के बाद तार मगाना बन्द कर दिया। एक दिन एक यह खबर पहुच गई कि महात्माजी की हालत बहुत खराब है। शहर मे तो खबर उड गई कि वह अब रहे ही नही! हम लोगो को यह खबर जेल मे नही मिली। जब 'पटना-डेलीन्यूज' आया तो मालूम हुआ कि अभी वह बचे है और हालत कुछ सुधरने लगी है। हम लोग चिन्ता करने और प्रार्थना करते। ईश्वर की दया से खतरे के घंटे निकल गये। मालूम होने लगा कि वह अब सकट की अवधि को पार कर जायंगे। अन्त मे यह शुभ समाचार सुनने को मिला कि यह यज्ञ भी सम्पूर्ण हुआ। ब्रिटिश गवर्नमेण्ट और लार्ड लिनलिथगो की नीति और कड़ाई का पूरा प्रदर्शन हो गया।

जेल का जीवन एक प्रकार से बिना किसी महत्वपूर्ण घटना के बीतता रहा। बाहर जो कुछ जनता, सरकारी कर्मचारियो, पुलिस, फौज और मजिस्ट्रेटों द्वारा हुआ उसकी खबर कुछ-कुछ मिलती रही। वह भयंकर और रोमाचकारी थी। पर हम लाचार थे और सुन लेने के सिवा दूसरा कुछ हो नहीं सकता था। जो नये आर्डिनेन्स बन गये थे, उनके द्वारा धांधली खूब चल रही थी। वह धांधली केवल राजनैतिक मामलों मे ही नहीं, मामूली मुकदमों में भी। यहां दो उदाहरण देता हूं।

हमारे जेल चले आने के चन्द दिनों के अन्दर ही पटना-जिले के किसी गांव में दो दलों में, किसी जमीन या किसी और चीज के लिए, मार-पीट

हुई। एक आदमी मारा गया। पुलिस के लिए, उन दिनों किसी भी मुकदमे में सजा दिलवा देने का, सबसे सीधा रास्ता यह था कि उसे वह राजनैतिक करार दे दे। उसने इसे भी राजनैतिक जामा पहना दिया। खून का कारण यह बताया गया कि जिस आदमी का खून किया गया था, वह फौज में भरती हुआ था, चूंकि दूसरे पक्ष के लोग काग्रेसी थे, इसलिए उन्होंने उसे फौज में भरती होने से मना किया, जब उसने उनकी एक न सुनी तो उसका खून कर दिया! मामला सीधे स्पेशल जज के सामने पेश हुआ। उसका फैसला हुआ कि जिस आदमी का खून हुआ था, वह कभी फौज मे भरती हुआ ही न था, इसलिए उसके खून का कारण वह नही हो सकता—पर कारण जो हो, खून तो हुआ ही है, इसलिए आठ आदमियों को फासी की सजा दी जाय। आर्डिनेन्स के अनुसार भी फासी की मजूरी हाइकोर्ट के एक जज द्वारा होनी चाहिए थी। इसके लिए एक जज खास करके नियुक्त किये गए थे। उन्होने सात आदमियो को छोड दिया, पर एक की फासी की सजा बहाल रक्खी। उसकी ओर से प्रीवी कौन्सिल मे भी अपील की गई, पर वह नामंजूर हो गई। जेल मे जबतक हम लोग रहे, एक काम हममे से किसीको करना पडता था। उसे हम खुशी से कर भी देते थे। जब किसी मामूली कैदी को जेल से अपील करने का इरादा होता तो वह किसी-न-किसी तरह हम लोगो के पास पहुच जाता और अपील की दर्खास्त लिखवा ले जाता। फासीवाले आदमी की ओर से दया की दर्खास्त मुझे ही लिखनी पडती। जेल के अधिकारी, फासीवालो की ओर से दया की दर्खास्त भिजवाने मे, मैंने देखा, अक्सर कुछ दिलचस्पी लेते हैं। मुझे याद है कि उन्होंने दो मामलो मे मुझसे दर्खास्त का ममविदा लिख देने को कहा था। यह पहला फांसी का मामला था। इसको पुलिस ने पोलिटिकल करार दिया था। पोलिटिकल होने के कारण ही फासी की सजा हुई थी। मैने दर्खास्त लिख दी। गवर्नर ने फांसी की जगह डामल-हौस की सजा कर दी। उसकी जान बच गई। पुलिस ने जो पोलिटिकल शक्ल देकर सजा दिलवा दी, उसका एक अच्छा फल यह हुआ कि जब फिर १९४६ मे काग्रेस-मिनिस्ट्री हुई तो दूसरे राज़-नैतिक कैदियों के साथ वह आदमी भी छूट गया। छूटते ही मेरे पास आकर सदाकत-आश्रम मे मुझसे भेट कर गया। एक औरत को भी फासी की सजा हुई थी। उसकी दर्खास्त जेलर ने खुद आकर मुझसे लिखवाई थी। उसकी सजा भी फांसी की न रहकर कालापानी की हो गई थी।

एक दूसरा मुकदमा डकैती का था। मुजरिम पोलिटिकल करार नहीं दिया गया था। पर उन दिनों मामूली मुकदमों की जाच भी आर्डिनेन्स के अनुसार ही हुआ करती थी। मैजिस्ट्रेट के अधिकार बढ़ा दिये गए थे। वे

लम्बी-लम्बी सजाएं दे सकते थे। एक आदमी था, जिसकी उम्र साठ से कम न होगी। उसके हाथ में कुछ ऐब था, जिससे उसकी अंगुलिया पूरी खुलती न थीं। पैर का लंगड़ा होने के कारण मुश्किल से चल सकता था, दौड़ने की तो बात ही नहीं हो सकती थी। जेल में भी बीमार था। अस्पताल में ही था, जहां मैं था। मुकदमा यह था कि पटना-रांची-रोड पर, जो बहुत चालू सड़क है, एक आदमी बैलगाड़ी पर बोरों मे भरकर चावल ले जा रहा था। कुछ डाकुओं ने गाड़ी रोककर चावल लूट लिया। वे बोरों को पीठ पर लेकर खेतों से होकर भाग निकले। गाड़ीवाले ने शोर मचाया तो कुछ आस-पास के लोग आ गये। सबने डाकुओं का पीछा किया। प्रायः एक-डेढ मील दूर जाने पर खेतों में बोरे फेककर डाकू चम्पत हो जाना चाहते थे, पर लोगों ने उन्हें पकड़ लिया। उन्ही डाकुओं मे से उपरोक्त अष्टावक्रजी भी थे! चूंकि वह बहुत बीमार था, इसलिए मजिस्ट्रेट ने जेल के अस्पताल मे आकर ही उससे बयान लिया और उसे सात साल की सजा दे दी। मैं जब अस्पताल के अपने वार्ड से बाहर निकला तो वह पैर पकड़कर रोने लगा। मैने उसे अपील करने को कहा। उसने जेलर से कहकर फैसले की नकल मंगाई। मैंने अपील की दर्खास्त लिख दी। वह हाइकोर्ट से छूट गया। जजो ने सारी घटना को असम्भव समझा और इन गरीबों की गिरफ्तारी का कारण भी डकैती के बदले कुछ और ही समझा। मुझे यह देखकर पूरा विश्वास हो गया कि इन्साफ सचमुच अन्धा होता है—कम-से-कम आर्डिनेन्सों के मातहत काम करनेवाले मजिस्ट्रेटों ने तो उसे अन्धा बना दिया था। अगर ऐसा न होता तो अष्टावक्र को देखने के बाद कोई भी आंखवाला आदमी इस बात का विश्वास नही कर सकता कि वह गाड़ी पर से लूटकर चावल का बोरा पीठ पर लादे एक-डेढ़ मील तक धान के खेतों से होते हुए भागने के बाद पीछा करनेवालो द्वारा पकड़ा जाय। जिस आदमी के हाथ की अंगुलिया नही खुलती, जिसका हाथ सीधा नही हो सकता, जिसके पैर ऐसे लगडे थे कि वह मुश्किल से चल सकता और जिसकी अवस्था साठ बरस की हो, वह दो मन चावल का बोरा पीठ पर लेकर एक-डेढ मील भाग सका होगा, इसका विश्वास अन्धा ही कर सकता था। पर मजिस्ट्रेट ने विश्वास करके सात साल की सजा उसे दे दी थी!

राजनैतिक मुकदमों का तो कहना ही क्या! पटना-जिले का कुछ हिस्सा बरसात में भी भर जाता है। उसे 'टाल' कहते हैं। बरसात में रेल पर से ही, जहांतक आंखें देख सकती हैं, जल-ही-जल नजर आता है। इस टाल में जो गांव हैं, वे बरसात में दुनिया से एक प्रकार से अलग हो जाते हैं। वहां से बाहर निकलने के लिए नाव के सिवा दूसरा कोई जरिया नही।

यों ही दूसरे मौसम में भी इन गांवों में हफ्ते में एक बार डाकिया डाक ले जाया करता है। बरसात मे तो शायद महीने में एक-आध बार डाकिया पहुंच जाता हो तो बहुत है। ऐसे ही एक छोटे गांव के लोगों का, वहां के एक जुजवी जमींदार के साथ कई बरसों से झगड़ा चला आता था। इस आन्दोलन को गनीमत समझकर उन्होंने वहां के प्रमुख किसानों पर पुलिस से राजनैतिक मुकदमा चलवा दिया। वे गिरफ्तार कर जेल में लाये गए। जब उनका मुकदमा दौरा-सुपुर्द हो गया तो वे बांकीपुर-जेल में ही रक्खे गये। सेशन मे इतने मुकदमे थे कि इस मुकदमे की सुनवाई १९४४ के जून-जुलाई के पहले न हो सकी। वे लोग प्राय. दो बरसों तक तो हाजत में ही पड़े रहे। उनपर जुर्म बड़े संगीन लगाये गए थे—उस गांव के लोगों ने, बम्बई के ८ अगस्त के प्रस्ताव के बाद कांग्रेस के हुक्म से, अपने और आसपास के गांवों मे ब्रिटिश राज्य उठाकर अपना राज्य कायम कर लिया है—एक आदमी राजा हो गया था, दूसरा मन्त्री, तीसरा सेनापति, इस तरह और लोग भी इस राज्य-स्थापना मे मदद करते थे और इस राज्य को चलाने के लिए लोगों पर 'कर' लगाया था। जो कड़ी-से-कड़ी दफाएं हो सकती है, सभी उनपर लगाई गई थी और उनकी सजा फांसी तथा माल-जायदाद की जब्ती हो सकती थी। राजा, मन्त्री और सेनापति अपने अन्य साथियो के साथ बांकीपुर-जेल मे लाये गए। सेनापति इतने बीमार थे कि इन दो बरसों मे उनका अधिक समय अस्पताल मे ही बीता। मुकदमा सेशन-जज के सामने पेश हुआ। पुलिस का बयान यह हुआ कि बम्बई की खबर पाकर इन लोगों ने अपना राज्य कायम कर लिया, उस गाव मे तथा आस-पास के गावो मे लोगो से 'कर' वसूलने लगे और जो 'कर' नही देता उसका घर-माल लूट लेते। उन लोगो का जवाब था कि सारा मुकदमा झूठा है, वे लोग कांग्रेस के साथ कोई सम्बन्ध नही रखते थे, बम्बई के फैसले का उनको कुछ पता ही न था, गाव के उस छोटे जुजवी जमीदार ने अपना वैर साधने के लिए उन्हे झूठे मुकदमे मे फंसा दिया है। सेशन-जज का फैसला हुआ कि मुकदमा बिलकुल झूठा और बे-बुनियाद है, उस जमींदार ने ही इसे खड़ा कराया है; क्योंकि ऐसे गाव में—जिसका सम्बन्ध बरसात में बाकी दुनिया से एक प्रकार से टूट जाता है—बम्बई के फैसले और आन्दोलन की खबर भी न पहुची होगी; क्योंकि जिस दिन वहां स्वतन्त्र-राज्यस्थापना की बात कही जाती थी, उस दिन तक पटना-शहर में भी आन्दोलन ने अभी जोर नहीं पकड़ा था। अन्त में सबके सब छूट गये; पर दो बरसों तक हाजत में रहने और मुकदमे में बहुत खर्च करने के बाद!

एक दूसरी मिसाल और लीजिये। अठारह-बीस बरस का एक लड़का

था। राजनीति से उसका कोई सम्बन्ध न था। देखने में ज़रा अच्छा था। पुलिस की उससे कुछ रंजिश थी। वह छोटी-मोटी मामूली चोरियां करने-वाला अथवा पाकिटमार-सा होगा। ९ अगस्त का आन्दोलन आरम्भ होने के कुछ पहले ही वह बिना टिकट रेल पर जाने के लिए गिरफ्तार हुआ। इसी बीच मे आन्दोलन शुरू हुआ। पुलिस ने उसे कुछ दिनों के लिए जेल मे रख देने का सीधा उपाय यह समझा कि थाना लूटने, रेल तोड़ने, तार काटने इत्यादि के मुकदमों में वह मुजरिम बना दिया जाय। पुलिस ने शायद सोचा कि इस तरह एक पाकिटमार की निगरानी का भार कुछ बरसों के लिए उसके सिर से उतर जायगा। टिकटवाले मुकदमे मे उसकी एक हफ्ते कैद की सजा हुई, जो बहुत जल्द समाप्त हो गई। किन्तु उसपर और कई मुकदमे थे। वह राजनैतिक हाजतियो के साथ जेल में रक्खा गया। एक मुकदमा हुआ, जिसमे उसने बयान किया कि वाकये के बहुत पहले से वह जेल मे रहा है। मजिस्ट्रेट ने उसकी बात मान ली और रिहाई कर दी। परन्तु उसपर और भी इस प्रकार के आन्दोलन-सम्बन्धी मुकदमे थे, इस-लिए वह छूटा नही। दो-तीन मुकदमे हुए और सबमे वह बरी होता गया, पर छूटा नही। इस तरह कई महीने बीत गये। एक और मुकदमा चला। उसका सम्बन्ध भी आन्दोलन से था। पर उसके यह बयान करने पर भी कि वह वाकये के बहुत पहले से ही जेल में रहा है और जेल का रजिस्टर मांगकर देख लेने से ही यह बात साबित हो जायगी, मजिस्ट्रेट ने कई बरसों की कैद की सजा उसे दे दी! अपील भी नामंजूर हो गई! पर उसकी ओर से एक दर्खास्त तैयार की गई, जिसमे सब बातें लिखी गई—उसकी गिरफ्तारी की तारीख, वाकये की तारीख, दूसरे मुकदमों का हाल, जिनमे वह छोड़ दिया गया था, सब बातें खोलकर लिखी गई और कहा गया कि जेल का रजिस्टर मंगाकर देखा जाय कि वाकये के दिन वह जेल में था या नही। जिला-मजिस्ट्रेट जेल देखने आया तो उसने दर्खास्त उसको दी। जिला-मजिस्ट्रेट को आश्चर्य हुआ; पर वह दर्खास्त साथ लेता गया। मालूम हो गया कि वह आदमी गलत सजा पाकर जेल में सड़ रहा है। उसने सर-कार को लिखा और उसकी रिहाई का हुक्म मंगवाया।

इस तरह की धाधलियां न मालूम कितनी ही हुई, जिनके शिकार राजनैतिक लोग तो हुए ही, दूसरे लोगों की संख्या भी कम न रही। राज-नैतिक लोगों की सजा की बात क्या कहूं! कहांतक कहूं? ऐसे लोगों को भी देखा, जिनको पच्चीस-पच्चीस साल की सजा मिली थी। ऐसे भी थे जिनको पचास बरस से भी अधिक लम्बी सजा मिली थी। ऐसे लोगों की संख्या भी कम न थी, जिनको दस बरस अथवा दामुल (डामल-हौस) की

सजा दी गई थी। साल-दो साल और चार साल की तो बात ही क्या! जब कलकत्ता हाइकोर्ट ने उस आर्डिनेन्स को, जिसके अनुसार ये मुकदमे चलाये गए थे, गैर-कानूनी बता दिया और लार्ड लिनलिथगो को नया आर्डिनेन्स बनाना पड़ा तथा इन मुकदमों के अभियुक्तों को अपील का मौका मिला, तो हाइकोर्ट ने बहुतेरो को छोड़ दिया। बहुतेरों की सजाएं कम कर दी गई। बहुतेरे तो यह कहकर छोड़ दिये गए कि जितनी सजा वे भुगत चुके हैं, काफी है। शुरू मे ही जब आन्दोलन जोरो पर था और मुकदमों का अभी आरम्भ ही हो रहा था, इस धाधली के कुछ नमूने सामने आ गये, जिनमे से एक का जिक्र ऊपर किया गया है, जिसमें आठ आदमियों को फासी की सजा जिला-जज ने दे दी थी।

इसके पहले के आन्दोलनों मे काग्रेसी लोग आदालतों मे अपना बचाव नही किया करते थे। उस समय भी धाधलिया तो हुआ करती थी, पर सजाओ मे कुछ मर्यादा रहती और इतनी लम्बी-लम्बी सजाएं नहीं होतीं। जुर्माने मे बडी-बड़ी रकमे कही-कही ली जाती, पर आमतौर से लोग इन बातो की परवा न करते और गाधीजी ने बचाव करने की जो मनाही कर दी थी, उसे मानते। इस बार के मुकदमो का रुख कुछ दूसरा था। इनमे बहुत लम्बी-लम्बी सजाए—फासी तक की—होती या होनेवाली थी, इसलिए यह प्रश्न उठा कि बचाव किया जाय या नही। बांकीपुर-जेल मे ही ऐसे लोग थे, जिनको फासी की सजा मिली। १९३०-३१ और १९३२-३४ के सत्याग्रह-आन्दोलन मे भी जुर्मानो की वसूली में बहुत धांधली होने लगी थी। थोड़ी रकम के लिए घर का सब धन-माल कानूनी तरीके पर केवल जब्त ही नहीं किया जाने लगा, बल्कि गैर-कानूनी तौर पर लूटा भी जाने लगा। किसीने बिना किसीसे राय लिए ही हाइकोर्ट तक मामले को पहुचा दिया। वहा से हुक्म हो गया कि इजमाल हिन्दू-खानदान का माल किसी एक आदमी के जुर्माने मे जब्त नही किया जा सकता। नतीजा इसका यह हुआ कि जुर्माने की वसूली की धाधली बहुत कम हो गई; क्योकि सभी जगहों में लोगों को मालूम हो गया कि ऐसी नजीर कायम हो गई है। इस बार जब मुझसे लोगो ने पूछा कि ऐसे सगीन मुकदमों मे बचाव किया जाय या नही, तो मैंने राय दी कि बचाव जरूर किया जाय। कुछ लोगों को यह बात पसन्द नहीं आई और कुछ लोगों को इसका पता ही न था कि मैंने ऐसी राय दी है। इसलिए कुछ लोगो ने कोई बचाव नहीं किया और जो सजा हुई, वह हँसते-हँसते झेल ली। इनमे श्री जगलाल चौधरीजी थे, जिनको दस साल की सजा मिली—और यह भी तब, जब उनका एक जवान लड़का गोलियों का शिकार बन चुका था और उनकी गिरफ्तारी थाने पर हुई थी,

जहां उसके शव की तलाश में वह गये थे !

जब नये आर्डिनेन्स के अनुसार अपील का मौका मिला तो उसमें भी मैंने राय दी कि अपीलें की जायं। मैंने यह राय दो कारणों से दी—एक कारण तो यह था कि मै समझता था कि बचाव करने से मजिस्ट्रेटों की घांधली शायद कुछ कम हो और दूसरा कारण यह था कि मैंने देखा कि इस आन्दोलन मे बहुतेरे ऐसे लोग भी गिरफ्तार हुए थे, जिनका कांग्रेस से कोई सरोकार नही था और जो हर हालत मे अपना बचाव करते ही। कांग्रेसी लोगों में भी ऐसे लोग थे, जो अपना बचाव करना चाहते थे। सजाएं भी कडी होनेवाली थी। इसलिए मैने सोचा कि इनको यदि रोका गया तो असन्तोष फैलेगा और हो सकता है कि रोकने पर भी बहुतेरे लोग बचाव करें। ऐसी अवस्था में बचाव करने देना ही ठीक मालूम हुआ। मै जानता था और अपने विश्वास को, जिनसे भेट होती थी उनसे, कह भी देता था कि यद्यपि उनकी सजाएं लम्बी है तथापि वे और मेरे ऐसे लोग भी जो बिना मियाद के जेल मे रक्खे गये है, छूटेंगे सब एक ही समय। हो सकता है कि हम कुछ पहले छूट जाय, पर हम जबतक उनको भी छुड़ा न लेंगे, बाहर नही रह सकेंगे। बात भी ऐसी ही थी। हम इतने लोगों को लम्बी सजा भुगताने के लिए छोड़कर खुद कैसे बाहर रह सकते थे ? मुझे इस बात से सन्तोष हुआ कि जब महात्मा गाधी बाहर निकले तो उन्होंने भी मुकदमो में बचाव करने का ही आदेश दिया। चिन्ता उन लोगों के बारे में होती, जिनको फांसी की सजा होती। जो कैद हैं, वे तो कुछ आगे-पीछे जेल से निकाले जा सकते हैं, पर जिनको फासी की सजा दी गई है, वे तो सदा के लिए चले जायंगे। पटने मे कई आदमियो को फासी की सजा हुई, पर किसी-न-किसी तरह सबके-सब बच गये। कुछ समय तो अपील वगैरा मे लगा। पीछे जब हम लोग छूट गये और महात्मा गांधी फासीवाले मुकदमों के बारे मे लार्ड वेवल से बातें करने लगे, तो औरो के साथ पटनावालों की फासी की सजा भी डामल-हौस (दामुल) में बदल दी गई, और कांग्रेस-मंत्रिमंडल आने पर वे छूट गये। पर मुजफ्फरपुर, भागलपुर, मुंगेर इत्यादि में कई आदमी फासी चढ़ ही गये। अगर वे भी सहसा लटका न दिये जाते तो अन्त में छूटते ही; पर यद्यपि उनके साथ एक ही मुकदमे में सजा पाये हुए लोग पीछे छूट गये तथापि वे लोग चले ही गये। उन लोगों को, जो फांसी की सजा पा चुके थे, आज बाहर देखकर एक प्रकार की प्रसन्नता होती है और इस बात पर अफसोस भी होता है कि दूसरों को इसी तरह हम लोग नहीं बचा सके।

: १५१ :

१९४२ की उत्तेजनाओं के परिणाम

इस बार जेल में ९ अगस्त (१९४२) को मैं लाया गया। वहां से १९४५ में १५ जून को निकला। शुरू मे मथुराबाबू और श्री चक्रधरशरण मेरे साथ रहे; दूसरे लोग आते-जाते रहे, पर मेरे लिए नही। १९४३ के अक्तूबर में श्री चक्रधरशरण हजारीबाग भेज दिये गए। मार्च १९४४ में मथुराबाबू की रिहाई हो गई। उसके बाद ३ दिसम्बर १९४४ तक मेरे साथ केवल वाल्मीकि ही रहे। नये आर्डिनेन्स के अनुसार, सरकार की ओर से, एक कमिटी हर छठे महीने आती और नजरबन्द लोगों से मिलती। जिनके लिए वह सिफारिश करती वे छोड़ दिये जाते। यह कमिटी पहली बार १९४४ के मार्च मे आई। मथुराबाबू उसीकी सिफारिश पर अचानक छोड दिये गए। मुझसे कमिटी के मेम्बरों ने पूछा था कि क्या मैं छूटना चाहता हू, तो मैने उत्तर दिया था कि अकेला नही, सब लोगो के साथ ही। इसपर उन्होंने पूछा कि यदि छोड़ दिया जाऊ तो मुझे आश्चर्य होगा क्या? मैंने उत्तर दिया था कि जरूर—बहुत आश्चर्य होगा। उन्होंने पूछा कि तोड़-फोड़ का कार्यक्रम अगर कांग्रेस ने नही किया तो लोगों को कैसे मालूम हुआ और यह बात सारे देश में एक छोर से दूसरे छोर तक इतनी जल्दी कैसे फैल गई? मैंने उत्तर दिया कि ८ अगस्त के प्रस्ताव के साथ-साथ सरकार की एक विज्ञप्ति ९ अगस्त (१९४२) के सवेरे के समाचार पत्रो मे निकली थी, जिसमे सरकार ने गाधीजी और वर्किंग कमिटी के लोगों की गिरफ्तारी के कारण बताकर लोगो को यह समझाने की कोशिश की थी कि सरकार की यह कार्रवाई उचित है—उसीमे यह बात साफ-साफ लिखी थी कि कांग्रेस की ओर से इस बार रेल-तार आदि तोड़ने-काटने का भी कार्यक्रम दिया गया है—उसी दिन या उसके दूसरे दिन मि० एमरी ने रेडियो पर भाषण किया था, जिसमें भी यह बात कही गई थी और यह भाषण भी अखबारों में छपा था—कांग्रेस की ओर से कोई कार्यक्रम नही निकला था—लोगों ने समझ लिया कि यही कार्यक्रम होगा और सरकार की ही बात पर विश्वास करके लोगों ने काम शुरू कर दिया।

मेरा आज भी विश्वास है कि इस कार्यक्रम का इतना अधिक और

इतनी तेजी से प्रचार इसी कारण से हुआ। लोगों के दिल में पहले से ही, १९३० से ही, इस तरह की बातें उठा करती थी; इस बार उसको पुष्टि मिल गई और जन-साधारण ने उसे ठीक मान लिया। इसके दो जबरदस्त प्रमाण मुझे जेल मे उसी समय मिल गये। मै समझ गया कि यह बात जोरों से चलेगी। मेरी गिरफ्तारी के थोडे ही दिन बाद फूलनबाबू जेल मे पहुचे थे। उन्होंने कहा कि मेरी गिरफ्तारी की बात शहर में पहुंची तो कुछ लोग उनके (फूलनबाबू के) पास पहुचे और उनसे पूछा कि कार्यक्रम क्या है। लोग समझते थे कि मेरे साथ उनकी मुलाकात हुई होगी और मैंने कुछ बताया होगा। पर उनकी मेरी बहुत दिनो से मुलाकात हुई ही न थी, इस लिए वह कुछ नही बता सके। पर उसी दिन कुछ घण्टे पहले पत्रों मे सरकार की विज्ञप्ति छप चुकी थी और लोगों का ध्यान उस ओर आ गया था। दो दिनो के बाद जब कुछ लडके सेक्रेटेरियट के गोली-काण्ड के बाद गिरफ्तार होकर बांकीपुर-जेल मे लाये गए तो मैंने देखा कि वे सबके-सब तार-टेली-फोन और रेल तथा सडको को तोडना-काटना और किसी तरह यातायात बन्द कर देना कार्यक्रम मे दाखिल समझते थे। जब जेल के फाटक के नज-दीक एक लारी मे गिरफ्तार कुछ विद्यार्थी कही भेजे जा रहे थे तो जनता द्वारा वे बचा लिये गए और लारी जला दी गई, फिर बाकी लारियो से उतारकर दूसरे छात्र कुछ देर के लिए जेल के अन्दर पुन. लाये गए। मैं बीमार तो था, पर तो भी मैने उनको यह समझाने की कोशिश की कि यह अच्छा नही हुआ। इसपर उनका उत्तर यही मिला कि जब टेलीफोन-तार आदि तोडना और रेल रोकना ठीक है तब तो लारी को भी बेकार कर देना उसी कार्यक्रम के अन्दर है, इसलिए यह भी ठीक होना ही चाहिए। मेरे बहुत कहने पर भी मेरी बात उनको जची नही, यद्यपि मेरे लिहाज से वे कुछ अधिक बोले नही। वे तो जेल मे कुछ दिनों तक बन्द रहे, इसलिए उन्होंने तो कार्यक्रम को नही चलाया होगा। पर यह स्पष्ट था कि लोगो को यह विश्वास हो गया था कि यह तोड़-फोड भी कार्यक्रम में है।

इसी कारण इतना जल्द, प्रायः मुगलसराय से आसनसोल तक, ई० आई० आर० की मुख्य लाइन मे, गाड़ियों का आना-जाना बहुत दिनो तक बन्द रहा। इसी तरह पटना-गया ब्राच-लाइन भी बेकार कर दी गई थी। केवल ग्रैण्डकौर्ड-लाइन में बहुत नुकसान नही हुआ था, इसलिए उसकी गाड़ियों का आना-जाना बन्द नहीं हुआ। गंगा के उत्तर तरफ बी० एन० डब्ल्यू रेलवे अब (ओ० टी० रेलवे) में, इधर बनारस से लेकर कटिहार तक और उधर गोरखपुर-बस्ती से लेकर वहांतक की लाइन, जहा छपरे में वह बनारस लाइन से मिल जाती है, बहुत तोड़-फोड़ हुई थी—प्रायः सभी

जगहों पर इतने स्टेशन तोड़-फोड दिये गए थे और लाइन भी इस कदर बरबाद कर दी गई थी कि कई महीनो तक गाड़िया न चल सकी। इन्ही कारणो से, बिहार के बाहर के लोगों का विचार है कि समस्त बिहार और सयुक्त-प्रान्त के पूर्वी जिलो मे ही आन्दोलन का रूप सबसे ज्यादा उग्र और जबरदस्त रहा, अत. यही सबसे अधिक सरकार की सख्ती भी हुई। न मालूम कितने ही आदमी पुलिस और फौज की गोलियों के शिकार हुए। कितनो के घर जलाये और लूटे गए। कितनो को अन्य प्रकार की अकथनीय यातनाएं सहनी पड़ी। जेल जानेवालो की सख्या का तो हमें कुछ ठीक पता भी न चला। हम इतना ही जानते है कि बिहार मे बहुतेरे मामूली कैदियों को राजनैतिक कैदियो के लिए जगह खाली करनी पड़ी और इस तरह मीयाद से पहले ही बहुतेरे छोडे गये। बहुतेरे तो, जिनपर सगीन जुर्म लगे हुए थे, हाजत से ही छोड दिये गए। लोगो का कहना है कि भागलपुर जिले मे बाका-सबडिविजन के तीस-चालीस डकैत इसलिए छोड़ दिये गए कि वे बाहर जाकर डकैतिया करे, ताकि जनता कांग्रेस से ऊब जाय! सुना कि उनमे से कुछने बाहर निकलकर आन्दोलन मे भाग लिया—एक को तो फासी की सजा हुई और दूसरे कइयो को दूसरी कड़ी सजाएं मिली। मैंने जेल से छूटने के बाद गवर्नर से मुलाकात होने पर यह बात कही थी। उन्होने जांच भी कराई थी। मालूम हुआ कि बहुतेरे डकैत इस तरह बाका मे छोड दिये गए थे! मैंने सुना कि आरम्भ मे, जबतक आन्दोलन जोरो पर था, चोरी-डकैती एकबारगी बन्द हो गई थी!

आन्दोलनकारी लोगो ने कुछ डाकखाने या रजिस्टरी-आफिस वगैरह दखल कर लिये। कही-कही कुछमे उन्होने आग भी लगा दी। पर शुरू मे जब आन्दोलन जोरो पर था तो यह भी सुनने मे आया कि जहां-कही रुपये मिले उन लोगो ने उनमे से एक नही लिया। चादी के रुपये तो उन दिनों देखने को भी कम ही मिला करते थे; इसलिए प्रायः नोट ही मिलते। लोग उन नोटो को जला देते, उनसे व्यक्तिगत लाभ उठाने का अथवा उन्हें आन्दोलन के लिए खर्च करने का खयाल भी किसीको न होता। पर कुछ दिनो के बाद यह बात न रही। कुछ लोग इस तरह से आये हुए धन का सग्रह आन्दोलन के लिए करने लग गये। यहांतक कि आन्दोलन के नाम पर डकैतियां भी की गई। मालूम नही, कि इन डकैतियो मे मिला हुआ धन किसके पास गया और किसने उसे किस तरह खर्च किया। पर यह सब बहुत बाद में हुआ। अब आन्दोलन एक प्रकार से बन्द हो गया था। आन्दोलन के जोर के दिनों मे तो सरकारी कर्मचारी ही लोगो को लूट-खसोट के लिए आमन्त्रित करते! डाकखानावाले तो डाकखाने का लुट जाना ही अच्छा

समझते—उनको यह कहने का बहाना मिल जाता कि जो रुपये जमा थे, लोग लूट ले गये; चाहे वे रुपये सचमुच लुटे हों या नहीं, पर गवर्नमेंट को नही मिले। बहुत जगहों में, शुरू मे, थानावाले भी जनता के साथ मिल गये। लोगों के पहुंचते ही वे थाने पर झंडा फहराने देते और उनके साथ मिलकर नारे लगाते। ऐसे थानेदारों के साथ जनता का भी अच्छा व्यवहार होता। सुना है कि कही-कही थानेदार को नाव या किसी दूसरी सवारी पर सवार कराकर जिले के सदर शहर में लोगों ने पहुंचवा दिया और थाने पर कब्जा कर लिया। जहां थानेदार की ओर से ज्यादती हुई वहीपर थानेदार के साथ जनता ने सख्ती की। कुछ जगहों में वे मार डाले गए, पर ऐसी कम जगहें थी। कोई-कोई थानेदार बहुत जालिम साबित हुए, और जब फौज आ गई तब तो पुलिस का रुख ही बदल गया—उन्होंने बहुत जुल्म किया, जिसका वर्णन करना भी कठिन है। इस जुल्म मे अधिकतर दारोगा वगैरह ऊपर के अफसर अधिक भाग लेते थे—सिपाही और कान्स्टेबुलो ने कम भाग लिया।

यह सबकुछ जानने के बाद यह मानना पडेगा कि जनता ने रेल-तार तो खूब तोड़ा और सरकारी मकानो को भी क्षति पहुचाई; पर जितना विस्तार आन्दोलन का था, उतने अनुपात मे जनता ने सरकारी कर्मचारियो के साथ ज्यादा सख्ती नही की। जान ले लेना या मारपीट करना भी बहुत कम ही हुआ। ऐसा मालूम होता है कि जनता की धारणा हो गई थी कि किसी आदमी को मारना-पीटना अथवा जान से मार डालना अहिंसा के सिद्धांत के विरुद्ध है, पर रेल-तार-मकान इत्यादि बेजान चीजों को तोड़ना-फोड़ना अथवा जला देना भी अहिंसा के अन्दर ही है! यद्यपि सरकार के कुछ आदमी मारे गये तथापि उनकी सख्या बहुत कम थी। जब हम देखते हैं कि बहुत दूर-दूर तक और बहुत समय तक आन्दोलन फैला और चलता रहा तब ध्यान मे आता है कि जनता अगर चाहती तो बहुत-से लोगो को आसानी से मार सकती थी। इससे तो यही मालूम होता है कि जनता ने जान-बूझकर कितनो ही को छोड दिया। अगर वह ऐसा न करती तो न मालूम कितने और थानेदार कत्ल हो गये होते। फिर भी इन थोड़े-से लोगों के बदले में सरकार ने न मालूम कितनों को गोलियों का शिकार बना डाला। यदि दोनों ओर के मरे हुओं की संख्या का ठीक पता लगता तो अनुपात एक के बदले ७५ नही तो ५०-६० जरूर पड़ता। पर यह तो अनुमानमात्र है। ठीक संख्या न मालूम हुई है और न शायद मालूम होगी ही। तो भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि आन्दोलन बिलकुल अहिंसात्मक न रह सका और जनता भी इस बन्धन से बाहर निकल गई।

आन्दोलन का जोर तो प्रायः एक से दो महीने तक ही रहा। उसके

बाद उसका असर जो कुछ रह गया हो, पर लोग आक्रमण न करके अपने बचाव में ही लग गये और सरकार के दमनचक्र का शिकार बनते रहे। कुछ लोगों ने पट पड़े हुए आन्दोलन को फिर से उभाड़ने का बहुत प्रयत्न किया, पर उस प्रयत्न का कोई विशेष फल देखने में नही आया—वह फिर उठा या चला नही। इक्के-दुक्के वाकया कही-कही हुए, पर उनका असर न तो सरकार पर कुछ पड़ा और न जनता की ही उनमें कोई विशेष दिलचस्पी रही—हां, उनके कारण दमन का जोर जारी रहा और जनता को बहुत-कुछ सहते रहना पड़ा। कुछ लोग जेल में नही आये, बाहर ही काम करते रहे। कुछ लोग जेल से निकलने पर इस प्रकार के प्रयत्न में लगे रहे। पर थोड़े ही समय के बाद यह स्पष्ट हो गया कि प्रयत्न करनेवाले लोग अब इस समय जनता मे फिर जोश नही पैदा कर सकेंगे और आन्दोलन फिर जारी नही किया जा सकेगा। जो लोग इस तरह के प्रयत्न में लगे हुए थे वे लुक-छिपकर ही काम कर सकते थे। इस आन्दोलन मे इस प्रकार के बहुतेरे लोग थे। कुछ दिनों के बाद तो उन लोगो को अपनी रक्षा के सिवा दूसरा काम करने का न तो समय मिलता और न साधन। फरार रहना ही एक ऐसा काम हो गया, जो उनकी सारी शक्ति और सारा समय ले लेता। तब भी बहुतेरों ने बहुत बहादुरी से काम लिया। कही-कही जबरदस्त संगठन भी कर दिया, जिसको हजार कोशिश के बाद भी सरकार तोड़ न सकी और उनका पता भी न पा सकी। जब कांग्रेस-मन्त्रिमण्डल बन गये, उन सब लोगो पर से मुकदमे और गिरफ्तारी के वारंट उठा लिये गए, तभी वे बाहर निकले या तभी सरकार के कर्मचारी उनका पता पा सके। इस कार्यपटुता और बहादुरी के लिए वे प्रशसा के पात्र है। पर मेरा अपना विश्वास है कि यदि लुक-छिपकर काम न किया गया होता तो उनमें से कुछ लोग जरूर मारे जाते, फासी पर चढते अथवा दूसरे प्रकार के कठोर दमन के शिकार बनते; परन्तु निरीह जनता पर जितना जुल्म हुआ उतना न होता और आन्दोलन भी कही अधिक आगे बढ गया होता तथा जल्द दबाया भी न जा सकता। जनता के सामने भी ऐसे लोग हमेशा मौजूद पाये जाते, जिनको वह अपना नेता मानती—जिनकी बातो पर वह खुशी-खुशी जान देती और धन लुटाती। लुक-छिपकर काम करने का यह असर हुआ कि काम बहुत व्यापक रूप में न हो सका—थोड़े लोगों की कार्रवाइयो का प्रतिफल बहुतेरे बेकसूर लोगों को भोगना पड़ा। इसलिए मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि रेल-तार तोड़नेवाले लोग सामने आकर काम करते और अपने कामों को कबूल कर लेते तो दूसरे लोगो की हिम्मत कहीं अधिक बढ़ जाती—मुमकिन है कि एक के बदले सैकड़ों दूसरे लोग उसी काम के लिए तैयार हो जाते और

सजा भी उन्हीं लोगों को मिलती जो कबूल करते, बेकसूर बहुत-कुछ बच जाते। जो हो, यह तो अहिंसा के सिद्धान्त की बात है। जो लोग उसमे विश्वास नही रखते, उनको भला उसकी पाबन्दी कैसे पसन्द हो सकती है। जहांतक जनता की हिम्मत बढी थी, वह खुले-आम विद्रोह के कारण ही बढ़ी थी—वह नीति जारी रहती तो और भी बहुत-कुछ बढ़ती।

: १५२ :

बंगाल का अकाल और भारत की अखंडता

जेल में रहते-रहते बंगाल के भयंकर अकाल का हाल हमारे सुनने में आया। १९४३ की गर्मियों में चावल और खुराक की चीजों का दाम इतना बढ़ गया कि लोगों के लिए अन्न खरीदना कठिन होने लगा। जब मैं बचपन में छपरे और पटने में पढ़ता था तो एक बार अकाल पड़ा था। मुझे याद है कि सरकार की ओर से जहां-तहां लोगों को काम कराकर मदद देने के लिए बड़े-बड़े तालाब खुदवाये गए थे। मेरे गांव से कुछ दूर पर एक बड़ा तालाब खोदा गया था। जहां-तहां गरीबों के लिए पका हुआ अन्न भी बांटा जाता था। उस समय तक अच्छा चावल रुपये में पन्द्रह सेर बिका करता था। उसके बाद से घटकर नौ-दस सेर का हो गया। उसके बाद एक बार और कुछ महंगी हुई तो वह और भी घटकर रुपये में पांच-छः सेर बिकने लगा। १९४३ में रुपये में सवा सेर या डेढ़ सेर मामूली तौर से चावल का दाम हो गया। जेल में हम लोगों को अखबारों से कुछ खबर मिलने लगी। आहिस्ता-आहिस्ता बंगाल की हालत और भी बिगड़ी। कुछ लोगों के वहां भूखों मरने की खबर होने लगी। थोड़े ही दिनों में यह बात मालूम होने लगी कि कलकत्ते की सड़कों पर लोगों की लाशें मिलती हैं। कुछ दिन बाद अखबारों में मृतकों की तसवीरें भी छपने लगीं। इस दिशा में सबसे पहले 'स्टेट्समैन' ने काम शुरू किया। दूसरे हिन्दुस्तानी पत्रों में भी बहुत तसवीरें छपीं। जनता की ओर से लोगों को मदद पहुंचाने का प्रयत्न होने लगा। मैं शुरू में अखबारों में इन खबरों को पढ़ता और तसवीरें भी देखता। पर कुछ दिन बाद स्थिति की भयंकरता इतनी बढ़ गई कि मेरे लिए तसवीरों को देखना और खबर पढ़ना भी असह्य हो गया। मैंने अखबार पढ़ना बन्द कर दिया। जेल में बैठे-बैठे कोई कर भी क्या सकता था। पटने में श्री प्रफुल्लरंजन (पी० आर०) दास ने पीड़ितों की सहायता के लिए कुछ रुपये जमा करने का प्रयत्न किया। उन्होंने एक अपील निकाली। मैंने सोचा, यह काम ऐसा है, जिसमें और कुछ नहीं तो अपने पत्र द्वारा लोगों की कुछ सेवा कर सकूं तो थोड़ा सन्तोष होगा। मैंने एक पत्र श्री दास महाशय के नाम लिखा, जिसमें उनकी अपील का समर्थन किया। फसल तैयार होने के समय जनता

से अन्न-दान के लिए अपील करके कुछ अन्न जमा करने का रास्ता भी सुझाया। कुछ दिनों के बाद सरकार का हुक्म आया कि मेरा पत्र श्री दास के पास नहीं भेजा गया, रोक लिया गया। इसकी खबर बाहर किसीको शायद आज तक न होगी।

बंगाल की स्थिति इतनी बिगडी कि न मालूम कितने लाख लोग मरे। जन-नायकों का मत है कि पचास लाख के लगभग लोगों को अकाल ही काल का कवल बनना पडा। सरकारी अनुमान भी शायद पन्द्रह-बीस लाख का है। जो दर्दनाक घटनाएं हुई, वे अवर्णनीय है। कारण जो हो, शुरू में गवर्नमेण्ट कुछ नहीं कर सकी। सर नाजिमुद्दीन प्रधान मन्त्री थे और खूराक के मंत्री श्री सोहरावर्दी। गवर्नर थे सर हर्बर्ट, बडे लाट थे लार्ड लिनलिथगो। मुझे आश्चर्य होता कि इतनी दुरवस्था में भी वहां की जनता चुपचाप कैसे सबकुछ सह रही है। कम-से-कम मन्त्रिमण्डल कैसे खुद काम कर सकता है और असेम्बली के मेम्बर ही उसे कैसे चलने देते है। पर लडाई का जमाना था। आर्डिनेन्सों की हुकूमत थी। मुस्लिम लीग के हाथों में अधिकार था। कोई कुछ कर न सका। लार्ड लिनलिथगो ने कांग्रेसी लोगों को दबाने में तो काफी तेजी और तनदेही से काम किया था; पर जब बंगाल में इतने लोग मरे जितने इस महायुद्ध-भर में दुनिया के सभी देशों को मिलाकर भी न मारे गये होंगे, तो उनसे इतना भी न हो सका कि एक दिन के लिए भी वह बंगाल जाते! उनके चले जाने पर जब लार्ड वावेल गवर्नर-जनरल (वाइसराय) होकर आये तो आते ही बंगाल गये। वहां फौज को उन्होंने हुक्म दिया कि लोगों को मदद पहुचाने का काम वह करे। सर हर्बर्ट बीमार पड़ गये। उनकी जगह पर बिहार के गवर्नर वहां भेजे गये। उन्होंने भी स्थिति संभालने में मदद की। किसी तरह से, कई महीनों के बाद, हालत कुछ बदली। लोगों का सडकों पर बे-मौत मरना बन्द हुआ।

जन-श्रुति कहती है कि इस विपत्ति से बहुतेरों ने, जिनका काम जनता की रक्षा करना था और जिनके जिम्मे यह काम दिया गया था, बहुत रुपये कमाये और कितने तो मालामाल हो गये। इसके कारणों में एक प्रधान कारण यह भी कहा जाता है कि सरकार ने लडाई के कारण लोगों से धान-चावल ले लिया था और उनकी छोटी-छोटी नौकाएं भी ले ली थी। शत्रु को कुछ न मिलने देने के लिए समुद्र-तट के स्थानों को साधन-हीन अथवा मरुभूमि बना देने की जो नीति जापानी आक्रमण के कारण, बरती गई थी वह इस अकाल के लिए कम जवाबदेह नहीं थी। उस समय लार्ड वावेल ही फौजी लाट थे। उस नीति की जवाबदेही उनपर ही थी। इसीलिए बड़े लाट होकर पहुंचते ही उन्होंने उस नीति के कारण उपस्थित स्थिति के

संभालने में, फौज द्वारा मदद करना आवश्यक माना। इसीसे स्थिति कुछ सभली भी।

विहार मे भी अन्न का दाम वैसे ही बहुत बढ़ गया था। तीस रुपये मन चावल बिकने लगा था। पर विहार मे बगाल-जैसी हालत नहीं हुई। यहां भूखो मरनेवालो की खबर अखबारो मे कम-से-कम देखने मे नही आई। एक बात इस अकाल से स्पष्ट हो गई और वह यह कि इस विपत्ति मे सारे भारत के लोग बगाल की मदद के लिए ठीक उसी तरह दौड पडे जैसे विहार मे भयकर भूकम्प के बाद। फर्क इतना ही था कि इस समय लड़ाई के कारण लोगो के पास साधन नही थे। रुपये होने पर भी लोगो को सरकारी मदद बिना अन्न नही मिल सकता था। अगर कही दूर अन्न मिलता भी तो सरकारी आज्ञा और मदद बिना वह बगाल पहुचाया नहीं जा सकता; क्योकि रेल-स्टीमर इत्यादि यातायात के सभी साधनो पर नियत्रण था। इसलिए इच्छा रहने भी जितनी मदद की जरूरत थी उतनी लोग न पहुचा सके। इसके अलावा यह विपत्ति बहुत दूर मे फैली हुई थी और बहुत दिनों तक टिकी रही। भूकम्प तो चन्द मिनटो का मामला था। उसके बाद केवल उसके असर को ही दूर करना था। यहा तो विपत्ति ही महीनों तक अपना काम करती रही। उसके ऊपर युद्ध-कालीन नियंत्रण अपनी करामात कर ही रहा था। भारतवर्ष एक है। उसकी जनता एक है। इसका एक अकाट्य प्रमाण इस विपत्ति ने दिया। पर क्या इसका असर उन पर भी पड़ा जो इसे विभाजित करना चाहते है?

: १५३ :

जेल में ग्रन्थ-लेखन का काम

इस बार जेल में मैंने कुछ लिखा भी। यों तो १९३० में भी मैंने कुछ लिखने का प्रयत्न किया था, पर वह पूरा न हो सका था—पीछे जो कुछ लिखा भी था वह खो गया। मैंने पहले से पाकिस्तान-सम्बन्धी कुछ अध्ययन किया था। वहां जाकर विचार हुआ कि इस विषय का विशेष रूप से अध्ययन करूं। कुछ ऐसी पुस्तकें, जो पाकिस्तान के समर्थन में लिखी गई थीं, मंगाई गईं। उनके पढ़ने के बाद विचार हुआ कि इस बात को देखना चाहिए कि जिस आधार पर यह मांग पेश की जाती है वह कहां-तक ठीक है। इसके बाद यह विचार हुआ कि यह भी देखना जरूरी है कि 'मुस्लिम लीग' पाकिस्तान किसे कहती है—उसकी मांग यदि कोई मान लेना चाहे तो उसे क्या देना होगा और मुस्लिम लीग को क्या मिलेगा—क्या पाकिस्तान अपने पांवों पर खड़ा हो सकेगा? अन्त में मैंने सोचा कि इस विषय पर कुछ लिखने की गुंजाइश है—यद्यपि इसका पता नहीं था कि हम लोग कब जेल के बाहर जा सकेंगे और जो कुछ मैं लिखूंगा वह कभी छपेगा या नहीं, तो भी अपने विचारों को साफ-साफ ऐसे रूप में लिपिबद्ध कर देना, जो दूसरों की समझ में आ जाय, ठीक जंचा। मैंने निश्चय किया कि कुछ लिखूं। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि यदि इस सम्बन्ध की सभी बातें देश के सामने—विशेषकर मुसलमानों के सामने—आ जायं तो जिस तरह विशेष अध्ययन के बाद उसके चलने में मुझे शक हो गया है, उसी तरह दूसरे भी इसे अव्यवहार्य समझ लेंगे। इसलिए मैंने निश्चय किया कि उन्हीं बातों को कलमबन्द करूं, जिनसे यह अव्यवहार्यता मालूम हो जाय। पाकिस्तान को अव्यावहारिक सिद्ध करनेवाला वह भाग लिख जाने के बाद इसके आधार के सम्बन्ध में भी लिखना उचित जान पड़ा, अर्थात् भारत में हिन्दू-मुसलमान दो-दो राष्ट्र हैं, इसलिए उसका विभाजन करके दो स्वतंत्र देश और राष्ट्र स्थापित कर देना चाहिए। इस तरह, जैसे-जैसे लिखता गया, पुस्तक का आकार बढ़ता गया। काम बहुत तेजी से नहीं हो रहा था। एक तो स्वास्थ्य ऐसा नहीं था कि बहुत परिश्रम कर सकूं। जब बीमार पड़ जाता तो महीनों न कुछ पढ़ पाता और न लिख पाता। जब

अच्छा रहता तो पढ़ता और लिखता। कुछ जल्दी करने की जरूरत भी नहीं जान पड़ती थी, क्योंकि इसकी आशा तो थी नहीं कि जेल में रहते-रहते कोई पुस्तक प्रकाशित करने की इजाजत मिलेगी, और अभी छूटने का कोई करीना भी नहीं नजर आता था। इसलिए आहिस्ता-आहिस्ता थोड़ा-थोड़ा करके लिखा।

इसी बीच कोई साथी जेल से रिहा होकर बाहर निकले। उन्होंने किसी समाचारपत्रवाले से कह दिया कि मैं पाकिस्तान के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिख रहा हूं। यह बात प्रकाशित हो गई। सरकारी कर्मचारी कभी-कभी जेल में आया करते हैं। कमिश्नर आये। उन्होंने पूछा कि मेरी पुस्तक कहा-तक लिखी जा चुकी है। मैंने कहा कि करीब-करीब पूरी हो चुकी है। उन्होंने उसे देखना चाहा। मैंने हस्तलिखित बहियां उनके हाथ में दे दीं। एक तो मैं कुछ महीन छोटे अक्षरों में लिखने का आदी हूं, दूसरे—कागज की कमी के कारण, पन्ने के दोनों ओर लिखा था। चूंकि पुस्तक थोड़ा-थोड़ा करके लिखी गई थी—जहां कोई नई बात सामने आ गई अथवा किसी नई पुस्तक से मालूम हो गई, उसे यथास्थान चस्पां कर देना, इस तरह जहां थोड़ी भी जगह छोड़ी गई थी, वह भी बिलकुल भर गई थी और कहीं-कहीं तो पढ़े जाने की सुविधा के लिए दूसरे रंग की रोशनाई से भी काम लेना पड़ा था—इसलिए किसी भी दूसरे के लिए हस्तलिखित पुस्तक पढ़ना काफी मुश्किल था। कमिश्नर ने पूछा कि क्या पुस्तक छपवाने का इरादा है। मैंने उत्तर दिया कि अगर सरकार इजाजत देगी तो छपाई जायगी! इसपर उन्होंने कहा कि पुस्तक गौर देखे सरकार इजाजत नहीं देगी—जैसी हस्तलिखित पुस्तक की हालत है वैसी हालत में उसे सरकार का देख सकना भी कठिन है—सरकार तो टाइप की हुई प्रति ही देख सकेगी। इसपर मैंने कहा कि टाइप कराने का साधन तो मेरे पास नहीं है; पर यदि सरकार इसकी सुविधा देगी तो टाइप करा लूंगा।

इस बातचीत के बाद मैंने सरकार को लिखा कि टाइप कराने के लिए मुझे सुविधा दी जाय और इसके लिए तीन तरीकों में सरकार जो चाहे अख्तियार करे। पहला तरीका यह होगा कि मेरे सहायक श्री चक्रधरशरण को टाइप करने का मौका दे जो मेरे अक्षरों से खूब परिचित हैं। वह उस समय तक रिहा हो चुके थे। इसलिए वह जेल के अन्दर तो आ नहीं सकते थे, न उनसे मेरी मुलाकात हो सकती थी, न जबतक सरकार मंजूरी देगी तबतक पुस्तक जेल के बाहर भेजी जा सकेगी। इसलिए उनको जेलर के दफ्तर में बैठकर टाइप करना होगा और हस्तलिखित तथा टाइप की हुई प्रति को जेलर के पास ही रख छोड़ना होगा। दूसरा तरीका यह हो सकता

है कि सरकार अपने किसी कर्मचारी को इस काम के लिए नियुक्त कर दे और इसका जो खर्च होगा वह मैं दूगा। तीसरा तरीका यह हो सकता है कि अगर कोई टाइप करना जाननेवाला कैदी हो तो उसे बाकीपुर-जेल मे बुला दिया जाय और वह टाइप कर दे। सोचने के बाद मुझे स्मरण हो आया कि कांग्रेसी कार्यकर्ता जमशेदपुर-लेबर-यूनियन के मत्री श्री माइकेल जौन टाइप करना जानते हैं—वह आन्दोलन के कारण इस समय दूसरी बार गिरफ्तार होकर और सजा पाकर हजारीबाग-जेल मे है। मैने लिखा कि यदि वह बाकीपुर बुला दिये जाय तो वह इस काम को कर सकेंगे। मैंने इसे ही सबसे अधिक सुविधाजनक बताया, क्योंकि जैसा घना और बारीक लिखा गया था वैसा पढ़ने मे टाइप करनेवाले को काफी दिक्कत होगी, उसको बार-बार मुझसे पूछना पड़ेगा। इसलिए यदि वह मेरे नजदीक रहे तो सुविधा होगी। इसके अलावा एक सुविधा यह भी होगी कि गवर्नमेण्ट की मजूरी के पहले बाहर के किसी आदमी को पुस्तक देखने का मौका नहीं मिलेगा।

सरकार ने मेरी बात मान ली और श्री जौन को बाकीपुर-जेल मे भेज दिया। उन्होंने बहुत परिश्रम करके, जहांतक मै लिख चुका था, टाइप कर दिया। इत्तफाक से यह काम सन् १९४५ ई० मे तारीख १४ जून की सन्ध्या को समाप्त हुआ। उसी दिन, रात को, हम लोगों को मालूम हो गया कि मैं कल पन्द्रह जून को ही सवेरे छोड़ दिया जाऊगा। अब यह प्रश्न हुआ कि हस्तलिखित और टाइप की हुई प्रतियों का क्या होगा? क्या दोनों मेरे साथ बाहर आने पायगी या सरकार उनको देख लेने के बाद ही बाहर जाने की इजाजत देगी? सुपरिण्टेण्डेण्ट, बिना सरकारी आज्ञा के बाहर ले जाने की इजाजत, अपनी जवाबदेही पर नहीं देना चाहते थे। पर सरकार से पूछने पर उन्होंने जाने देने की आज्ञा दे दी। इस तरह, जब मै बाहर निकला, तैयार पुस्तक के साथ निकला।

ऊपर मैं कह चुका हू कि १९४४ के मार्च से नवम्बर तक मै प्रायः अकेला ही बाकीपुर-जेल मे था, केवल वाल्मीकि ही मेरे साथ था। जब जाच-कमिटी के लोग अक्तूबर मे आये तो उनको यह बात मालूम हुई कि मै अकेला ही हूं। उन्होंने सरकार के पास लिखा कि एक साथी मेरे पास रखना उचित होगा। नाम पूछने पर मैंने कई मित्रों के नाम बताये। सरकार ने श्री फूलनप्रसाद वर्मा को भेज दिया। वह भी १९४५ के आरम्भ में रिहा हो गये। उसके बाद श्री मणीन्द्रकुमार घोष को हजारीबाग से बाकीपुर मेरे साथ रहने के लिए भेजा। वह एक बड़े परिश्रमी और विचारशील सज्जन हैं। आंकड़ों से डरते नहीं हैं। मेरी पुस्तक देखकर उनकी इच्छा हुई

कि वह हस्तलिखित प्रति पढ़े। मैंने उसे पढ़ने को दिया। साथ ही, यह बेगार उनपर लाद दिया कि वह आंकड़ों को जांच जाय, ताकि अगर कहीं कोई भूल रह गई हो तो वह दुरुस्त हो जाय। बहुत परिश्रम करके उन्होंने इस काम को पूरा किया। पुस्तक पढ़ते-पढ़ते उनको ऐसा जचा कि एक कमी रह गई है—मैंने पुस्तक में यह नहीं दिखलाया है कि हिन्दू-मुस्लिम समस्या किस तरह जटिल होती गई है और किस तरह वह यहांतक पहुंच गई कि मुस्लिम लीग को उसे सुलझाने का एकमात्र उपाय देश का विभाजन ही सूझ रहा है।

मैं पहले कह चुका हूं कि जेल से मेरे छूटने के दिन ही टाइप करने का काम समाप्त हुआ था। जब टाइप हो रहा था तो मुझे कुछ नया लिखने का समय नहीं मिलता था, क्योंकि जो टाइप होता जाता था, उसे एक बार देख लेना जरूरी मालूम होता था। टाइप करने के समय में भी कुछ नया जोड़ना ही जाता था। श्री जौन को भी अक्सर मुझसे कुछ-न-कुछ पूछते ही रहना पड़ता था। इसलिए मैं वहां पुस्तक का एक भाग और लिखकर मनी-बाबू की बात को पूरा न कर सका, पर उसे भूला नहीं। जेल से बाहर निकलने के बाद जब १९४५ के अगस्त में स्वास्थ्य सुधारने के लिए पिलानी (राजपूताना) गया तब उस भाग को लिखकर पूरा किया। श्री चक्रधर-शरण ने टाइप किया। पिलानी से बम्बई जाते हुए, रेल में, उसका अधिकांश देखकर, मथुराबाबू की मदद से प्रेस के लिए तैयार कर सका। बम्बई पहुंचने तक प्रायः पुस्तक प्रेस के लिए तैयार हो गई। वहीं उसका नामकरण हुआ—'इण्डिया डिवाइडेड' (India Divided)। छपने के लिए पुस्तक प्रेस में दे दी गई। १९४६ की जनवरी के आरम्भ में ही पुस्तक छपकर प्रकाशित हुई। एक महीने के अन्दर ही पहले संस्करण की सभी प्रतियां बिक गईं। तीन-चार महीनों में दूसरी बार वह छपी और बिकी।

जेल में मैंने एक चीज और लिखी। जब मैं १९४० में स्वास्थ्य-सुधार के लिए सीकर (जयपुर-राज्य) गया था तो मैंने एक दिन अपने संस्मरण लिखने का विचार किया और लिखना भी आरम्भ कर दिया। किसीसे यह बात कही नहीं। मथुराबाबू को भी, जो दिन-रात साथ रहते थे, इसका पता कुछ दिनों तक नहीं लगा कि मैं कुछ लिख रहा हूं। मेरी आदत है कि सवेरे चार-साढ़े चार बजे जाग जाया करता हूं। उसी समय उठकर प्रतिदिन कुछ-न-कुछ लिख देना और दूसरों के जागने के पहले ही लिखना खत्म कर देता। वहां थोड़ा ही लिखा जा सका। वहां से लौटने पर फिर समय ही न मिला। दो बरसों के बाद जब जेल में कुछ तबीयत सुधरी तो साथ के लोगों ने आग्रह किया कि मैं उसे पूरा करदूं। मैंने कहांतक लिखा था, यह भी ठीक याद न

था। हस्तलिखित प्रति को घर से जेल में मंगाना अच्छा नही मालूम हुआ; क्योंकि बिना सी० आई० डी० के पढ़े कोई चीज मुझे मिल नही सकती थी और मालूम नही कि पढने के बाद भी सरकार उसे अन्दर लाने की इजाजत देती या नही। इसलिए मैंने अन्दाज से ही वहां से आगे की बातें लिखना आरम्भ कर दिया, जहांतक मैं समझता था कि सीकर में लिख चुका हूं। आहिस्ता-आहिस्ता वह भी बहुत-कुछ लिखा जा चुका। समाप्त भी शायद हो जाता, पर पीछे 'इण्डिया डिवाइडेड' में ही सारा समय लगने लगा। अत: संस्मरण को रख छोडा।

कभी-कभी दिल मे यह विचार भी उठता कि इस सस्मरण की जरूरत या उपयोगिता ही क्या है। मैंने जो कुछ किया है या पाया है वह दूसरों के साये में रहकर ही—पहले अपने भाई के और पीछे महात्मा गांधीजी के। मेरी कोई ऐसी हस्ती नही कि मेरा हाल दूसरो के लिए जानना जरूरी हो अथवा उससे दूसरे कुछ सीख सकें। हा, मैं सार्वजनिक कामो में, विशेषकर कांग्रेस-सम्बन्धी कामों में लगा रहा हूं। यदि उनके सम्बन्ध मे अपने सस्मरण लिख दूं तो शायद लोगो को कुछ बातें मालूम हो जाय। पर इतिहास की दृष्टि मे इस सस्मरण का कुछ मूल्य नही; क्योंकि मैंने इतने लम्बे सार्वजनिक जीवन मे बहुत-कुछ लिखा नही है। अगर कुछ लिखा भी है तो उसकी प्रतिलिपि अपने पास सुरक्षित नही रखी। और लोगो ने सार्वजनिक घटनाओं के सम्बन्ध की सामयिक सामग्री जमा कराई है, मैंने वह भी नहीं किया है। कुछ लोगो के महत्वपूर्ण पत्र-व्यवहार दूसरों के साथ हुए है। मैंने स्वभाव से ही ऐसा कुछ नही किया है। और यदि कुछ किया भी हो तो उसकी भी प्रतियां मेरे पास नही है। कुछ लोग रोजनामचा लिखा करते है, जिसमे सभी घटनाओं का प्रतिदिन उल्लेख हुआ करता है। मैंने यह अभ्यास ही नही किया कि रोजनामचा लिखा करू। इसलिए अपनी स्मरण-शक्ति के सिवा संस्मरण लिखने का कोई दूसरा साधन भी मेरे पास नही था। इतिहास की दृष्टि से, केवल स्मरण-शक्ति पर निर्भर संस्मरण की भी, कोई विशेष प्रामाणिकता नही हो सकती है। इन्ही कारणों से कभी-कभी यह विचार उठता कि मेरा सस्मरण लिखना केवल अहम्मन्यता है, इससे दूसरो को कोई लाभ नहीं पहुंच सकता। तो भी, जब एक बार काम शुरू कर दिया तो उसे पूरा कर देना ही ठीक जंचा; प्रकाशित करने और न करने की बात पीछे देखी जायगी।

इस प्रकार, रामगढ़-कांग्रेस के समय तक के संस्मरण मैं जेल में लिख सका। एक प्रकार से यह संस्मरण सच्चा संस्मरण है; क्योंकि इसमे केवल उन्हीं बातों का उल्लेख है, जो लिखते समय स्मृति में आ गईं। इसलिए बहुत

सम्भव है कि बहुतेरी महत्वपूर्ण बातों और घटनाओं का जिक्र ही न हो—कही-कही देश-काल के निर्देश में भी भूल हो—कुछ बातों का जो गलत असर दिल पर रह गया है, वही इसमें आ गया हो। पर एक बात मैं कह सकता हूं—जान-बूझकर कोई गलत बात नहीं लिखी गई है। मित्रों का अनुरोध है कि यह संस्मरण प्रकाशित किया ही जाय। उन्होंने दूसरों को इसे दिखलाया। जो ऐसी चीजों के परखने के अधिकारी हैं, उनकी भी राय हुई कि इसे प्रकाशित करना ही चाहिए—विशेषकर इसलिए कि मैंने इसे हिन्दी में लिखा है। इसीलिए बाकी हिस्सा, जेल से बाहर निकलने के बाद, १९४६ के जुलाई-अगस्त में, पिलानी में बैठकर लिख रहा हूं।

: १५४ :

मेरी रिहाई और कुछ दुःखद मौतें

जेल मे रहते हुए ही एक और भयकर एव दु खद विपत्ति आई। यह बिहार पर ही आई। मलेरिया का प्रकोप १९४४ मे बहुत जोरो से हुआ। बहुतेरे लोग मरने लगे। अखबारों मे इसकी खबर छपने लगी। इत्तफाक से श्रीबाबू, अनुग्रहबाबू और दूसरे प्रमुख कांग्रेसी लोग इस समय तक रिहा हो चुके थे। उन्होंने जनता की मदद का काम शुरू किया। डाक्टरो ने डाक्टर टी० एन० बनर्जी की अध्यक्षता मे अपनी कमिटी बनाकर सेवा-कार्य आरम्भ किया। भूकम्प के समय के कुछ रुपये बच गये थे, जिन्हे इस प्रकार की विपत्तियों के समय जनता की सेवा के लिए एक ट्रस्ट बनाकर रख छोड़ा था। जब कही बाढ वगैरह आती तो थोडा-बहुत सहायतार्थ उसमे से खर्च होता था। यह खर्च कुछ ज्यादा नही होता था। जो रुपये थे, उनके ब्याज से ही यह काम हो जाया करता था। रुपयों का बहुत अश चर्खा-सघ को कर्ज दे दिया गया था। उसीसे समय पर ब्याज के रुपये आ जाते, जो बैंक मे पडे रहते और समय-समय पर खर्च किये जाते। १९४२ के अगस्त मे चर्खा-सघ का काम बिहार मे सरकार ने एक प्रकार से बन्द कर दिया था। बैंक मे मेरे नाम के सभी खाते जब्त थे, जिनमे एक खाता सहायता-कोष का भी था। मलेरिया का हाल पढकर मैंने सरकार को लिखा कि जब्त रुपयो को सहायतार्थ खर्च करने की इजाजत दी जाय, और पहली रकम मैंने डाक्टरो की कमिटी को देने के लिए मागी। सरकार ने इसे मंजूर कर लिया। रुपये उनको दे दिये गए। पीछे अनुग्रहबाबू ने जब सहायता-समिति का निर्माण किया तो उनको भी रुपये देने की इजाजत सरकार ने दी। अन्त में तो जो भी ट्रस्ट का पावना चर्खा-सघ के जिम्मे था, सरकार ने सहायता-कार्य के लिए चर्खा-संघ के जब्त रुपयों मे से सब रकम दे दी। पर उतना सब खर्च नही हुआ। रुपयों का अधिकाश अब भी जमा है। मुझे इससे सन्तोष हुआ कि इस बार बंगाल के अकाल के समय की तरह सरकार ने जेल के अन्दर से कुछ सहायता पहुंचाने की इच्छा को विफल नही होने दिया।

इसी सिलसिले में 'इण्डियन नेशन' ने यह लिखना शुरू किया कि सहायता-कार्य को संगठित रूप से चलाने के लिए यह आवश्यक है कि मैं रिहा

कर दिया जाऊं। उसने मेरी रिहाई पर बहुत जोर दिया। जहां-तहां से जनता की ओर से भी ऐसी आवाज उठने लगी। मुझे यह बात अच्छी न लगी। मैं राजनैतिक कारण से जेल में लाया गया था। जबतक उसका कुछ निपटारा न हो जाय और हमारे सभी साथियों के छोड़े जाने का रास्ता साफ न हो जाय, मैं इस तरह मलेरिया-पीड़ित लोगों की सहायता के बहाने छूटना नहीं चाहता था। मैं यह भी समझता था कि जो लोग बाहर हैं—जिनमें श्रीबाबू, अनुग्रहबाबू, मथुराबाबू प्रभृति हैं—सब काम सम्हाल सकते हैं, मेरी कोई खास जरूरत भी नहीं है। मुझे ऐसा भी लगा कि कहीं सरकार यह न समझ ले कि यह आन्दोलन मेरे छूटने के लिए ही एक बहाना ढूंढकर किया जा रहा है और यह मेरी अनुमति से अथवा कम-से-कम मेरे मित्रों की अनुमति से किया जा रहा है। मैंने सरकार को एक पत्र लिख दिया कि यह आन्दोलन मेरी दृष्टि में अनावश्यक है और मैं इस तरह छूटना नहीं चाहता हूं। पर जब मैं बाहर निकला तो मालूम हुआ कि उस समय गवर्नर मुझे छोड़ देने का विचार कर रहे थे। किन्तु गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया, जिसके हुक्म से ही वर्किंग कमिटी के लोग नजरबन्द रखे गये थे, शायद वर्किंग कमिटी के सदस्यों को अभी छोड़ना नहीं चाहती थी। यह भी मालूम हुआ कि गवर्नर ने कुछ लोगों से कहा भी कि मैं खुद नहीं चाहता कि छोड़ दिया जाऊं तो छूटने का प्रश्न ही कैसे उठ सकता है। जो हो, उस समय अर्थात् १९४४ की बरसात में, छूटने की जो बात थी वह पूरी नहीं हुई। मैं निश्चिन्त अपना काम करता रहा। इस तरह, समय कटने कुछ देर न लगी। १९४५ में १५ जून को मैं छोड़ दिया गया।

इस बार गिरफ्तारी के समय ही हम समझ चुके थे कि जेल-यात्रा लम्बी होगी। उसके लिए अपने चित्त को तैयार कर लिया था। जैसे-जैसे आन्दोलन बढ़ा और लम्बी-लम्बी सजाएं लोगों को दी जाने लगीं तो यह धारणा और भी पुष्ट हो गई। हर बार जेल-यात्रा में कुछ लोग जेलों में मर भी जाते हैं। इस बार भी ऐसे लोगों की संख्या काफी रही। यह जानकर हमको विशेष दुःख हुआ कि रांची-जिले के टाना भगत लोगों में बहुतेरे जेल में मरे। इनके अलावा और लोग भी काफी मरे। पर जेल के अन्दर मारे-जानेवाले लोगों की संख्या कहीं ज्यादा थी। जिन लोगों ने इस प्रकार देश-हित के लिए अपने प्राणों को निछावर किया, उनमें बहुत कम ऐसे थे, जिनको मैं जानता था। इसका विशेष कारण यह था कि मुख्य कांग्रेसी कार्यकर्ता गिरफ्तार करके जेलों में रख दिये गए। जो बाहर रह गये, वे बहुत ख्याति पाये हुए लोग नहीं थे। इनके अलावा इस लहर में बहुतेरे नये लोग आये थे, जो पहले कभी कांग्रेस में काम तो नहीं करते थे, पर इसे स्वराज्य के लिए

गांधीजी की अन्तिम लड़ाई समझकर आ जुटे थे। यह तो मैंने अपने सूबे के बारे में कहा। सूबे के बाहर कुछ ऐसे प्रमुख व्यक्तियों की मृत्यु हुई, जिनका स्थान कभी भरा नहीं जा सकता। इनमें सबसे पहले, गिरफ्तारी के चन्द दिनों के अन्दर ही मरनेवाले श्री महादेवभाई देसाई थे। वह गांधीजी के साथ ही गिरफ्तार होकर आगाखां के महल (पूना) में उनके साथ ही रखे गये थे। वहां अचानक एक दिन हृदयगति रुक जाने से वह चल बसे। इसका असर पूज्य महात्माजी के दिल पर बहुत ही भारी पड़ा, क्योंकि वह उनके दाहिने हाथ थे। जबसे महात्माजी की सेवा में आये थे, तबसे उन्होंने अपने जीवन को गांधीजी की शिक्षा और सिद्धांतों के अनुसार ढालने का सतत प्रयत्न किया था। इसमें बहुत सफलता भी प्राप्त की थी। साथ ही उनकी लिखने की शैली भी अद्भुत थी। उसे भी उन्होंने गांधीजी की शैली से मिला लिया था। परिश्रम इतना ज्यादा कर सकते थे कि शायद दो-तीन आदमी मिलकर भी उनके बराबर काम नहीं कर सकते थे। काम भी सब प्रकार के। कपड़े और कमोड साफ करना, नाजुक-से-नाजुक बातों को लेकर दूत का काम करना और सुन्दर-से-सुन्दर लेखों के लिखने का काम भी, उनके लिए सब बराबर था। सबकुछ समान सहूलियत और तेजी के साथ खुशी-खुशी कर लिया करते थे। स्वभाव के इतने सरल और सहृदय थे कि शायद ही कभी किसीसे उनका कोई झगड़ा हुआ हो। हमारा उनसे परिचय पहले-पहल चम्पारन में हुआ था जब महात्माजी ने उनको, उनकी पत्नी श्रीमती दुर्गाबहन के साथ ही, वहां अपनी खोली हुई एक पाठशाला में काम करने के लिए भेजा था। जो प्रेम और सद्भाव उस समय पैदा हुआ वह बराबर बना रहा। उनकी इस प्रकार अचानक मृत्यु से मुझे भी काफी चोट लगी।

दूसरी मृत्यु श्री कस्तूरबा गांधी की थी, जो १९४४ की फरवरी में हुई। वह भी आगाखां-महल में महात्माजी के साथ थीं। बहुत दिनों तक बीमार थीं। अन्त में चल बसीं। गांधीजी की सहधर्मिणी होने का उनको सौभाग्य उनके जीवन के अन्तिम दिन तक बना रहा। गांधीजी की गोद में ही उनका महाप्रस्थान हुआ। वैसी सौभाग्यवती दूसरी कौन हो सकती है? उनको सभी लोग 'बा' कहा करते थे। वह सचमुच सबकी 'बा' (माता) थीं। वह पहले-पहल १९१७ में चम्पारन पहुंची। उसी समय हम लोगों का उनके साथ पहला परिचय हुआ। वहां उनके पहुंचने के पहले हम लोगों के लिए भोजन बनाने के वास्ते एक ब्राह्मण रखा गया था। उनके पहुंचते ही गांधीजी की आज्ञा हुई कि अब ब्राह्मण की जरूरत नहीं रही, वही सबके लिए रसोई बना लेंगी। हम लोगों की संख्या भी काफी थी। शायद चौदह-पंद्रह आदमी

थे। हम लोगों को यह अनुचित मालूम हुआ कि हम सबकी रसोई का भार उनपर डाला जाय। हमको ऐसा भी मालूम हुआ कि जैसी दुबली-पतली और कमजोर वह दीखती थी, उनसे यह काम हो भी न सकेगा। पर गांधीजी हमारे उज्र को सुननेवाले कब थे। उन्होंने कहा कि चिन्ता न करो, वह सब कर सकती है, उनको ऐसे काम का अभ्यास है। दूसरे लोग उनकी कुछ मदद कर दिया करते थे—खासकर भारी कड़ाही और बटलोई के उतारने इत्यादि में। पर बहुत प्रेम से वह सबके लिए रसोई बनाती। उस समय जिस प्रेम से उन्होंने हमको पहले-पहल खिलाया था, उसी प्रेम के साथ जबतक वह जीती रही और जब-जब हमसे भेंट हुई, उन्होंने खिलाया। साबरमती के सत्याग्रह-आश्रम में हो, चाहे मगनवाड़ी या सेवाग्राम के आश्रम में हो, अथवा कहीं सफर में ही क्यों न हो, बापू के पास पहुंचने पर, विशेष-कर अगर साथ रहने का सुअवसर मिला तो, माता का स्नेह उनसे हमेशा मिलता। उनके अन्तिम दिनों की दुःखद कहानी गांधीजी के उन पत्रों में पढ़ी जा सकती है, जो उन्होंने सरकार को लिखे थे। वे पत्र श्री वनमाला पारिख तथा डाक्टर सुशीला नैयर द्वारा लिखित 'हमारी बा' नामक पुस्तिका में छपे हैं। वह हिन्दू महिला की आदर्श मूर्ति, भारतीय संस्कृति की प्रतीक और प्रेम की पुतली थी। वह सचमुच 'बा' थी और 'बा' बनी रही। एक बार गांधीजी ने मुझसे कहा— बा को बा कहने में मुझे भी बड़ा आनन्द आता है।" पति-पत्नी का जो प्रचलित सम्बन्ध हुआ करता है, वह तो दोनों ने स्वेच्छापूर्वक छोड़ दिया था। वह सचमुच उनकी भी 'बा' बन गई थी।

हम लोगों को जेल में ही मौलाना अबुलकलाम आजाद के पत्नी-वियोग का समाचार मिला था। यह जानकर और भी दुःख हुआ था कि अन्त काल में मौलाना से उनकी मुलाकात नहीं होने दी गई। वह पर्दे में रहा करती थीं, इसलिए उनसे हमारी मुलाकात नहीं थी; पर मौलाना के दुःख का मैं अनुमान कर सकता था। श्री रंजीत पंडित (आर० एस० पंडित) से तो काफी घनिष्ठता थी और उनकी मृत्यु भी एक बहुत दुःखद घटना हुई। जेलों में सरकार की नीति कुछ ऐसी हुआ करती है कि उसका समझना कठिन हो जाता है। नियम था कि केवल निकट के सम्बन्धियों के साथ ही पत्र-व्यवहार हो सकता है। मेरे पास कभी-कभी ऐसे लोगों के पत्र आ जाया करते जिनसे किसी प्रकार का मेरा ताल्लुक नहीं था। पर मौलाना के पास और बहन विजयालक्ष्मी के पास मेरे संवेदना के तार नहीं जा सके!

अपने सूबे के मित्रों में सबसे दुःखद वियोग श्री रामदयालुसिंह का हुआ। पढ़ने के समय ही उनसे परिचय हुआ था, जो पीछे घनिष्ठ प्रेम के रूप में परिणत हो गया। उनका स्वास्थ्य कई बरसों से खराब रहा करता

था। इसी कारण से वह आन्दोलन में भाग लेने योग्य न थे। सरकार ने भी यही समझकर उनको गिरफ्तार नही किया था। हमारी रिहाई के कुछ महीने पहले ही उनकी भी मृत्यु हो गई। जो मित्रता प्रायः पैंतीस-छत्तीस बरसों से चली आ रही थी, उसका ऐहिक धागा टूट गया! हमारे प्रान्त की वह एक विभूति थे। उनका स्थान भी खाली रहेगा। कांग्रेस के बाहर, पर जिनसे हमारा बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध था, ऐसे दो सज्जन थे, जिनसे भी फिर मुलाकात नही हुई। एक तो वैद्यराज ब्रजबिहारी चौबे थे, जो आयुर्वेद के अगाध विद्वान् थे और जिनकी कृपा हमपर बराबर बनी रही थी। मैं कह चुका हूं कि मेरी गिरफ्तारी के समय वही मेरी चिकित्सा कर रहे थे और जिस समय गिरफ्तारी हुई, उस समय वह सदाकत-आश्रम पहुच गये थे। मुझे यह कभी नही भूल सकता कि मेरी गिरफ्तारी से वह कितने दुःखी और चिन्तित हुए। उन्होंने औषधि आदि साथ रख दी और अपनी सरलता से यह भी कहा कि अगर आप बुरा न माने तो मै गवर्नर से जाकर मिलू और आपके बारे में कहू। वह यह जानते थे कि गिरफ्तारी का हुक्म गवर्नर ने ही दिया था और गवर्नर को भी उसे स्थगित रखने का अधिकार नही था। दूसरे सर गणेशदत्तसिह थे। उनसे कलकत्ते मे, जब मैं पढता था, पहले-पहल परिचय हुआ था। वहा वह वकालत करते थे। उसी समय से उन्होंने मेरे ऊपर जो प्रेम दरसाना आरम्भ किया, वह अन्त तक ज्यो-का-त्यो बना रहा। पीछे राजनैतिक बातो को लेकर उनसे काफी मनभेद हुआ और मैंने कई कार्रवाइयो की काफी बडी टीका की, पर उस प्रेम मे कोई अन्तर नही आया। अन्त मे वह बहुत बीमार रहा करते थे। मैं जबतक बाहर था तबतक जब कभी पटने मे रहने का मौका होता, जाकर उनसे बराबर भेंट किया करता था। वह बहुत दिनों तक मन्त्री रहे। उसमे उनकी कार्रवाइयो की ठीक टिप्पणी करनेवाले बहुत हुए, जिनमे एक मै भी था। पर मैंने यह देखा कि चाहे वह मिनिस्टर रहे तब, चाहे अपने अन्तिम दिनों में जब वह सारे काम-धाम से अलग हो गये थे, वह इसकी चिन्ता हमेशा किया करते थे कि हमारे ऐसे सार्वजनिक कामो मे लगे लोगो का स्वास्थ्य ठीक रहे। इसलिए हम लोगो का जेल जाना वह पसन्द नही करते थे। जब कभी उन्हें जेल से किसीकी बीमारी की खबर मिलती तो वह और भी चिन्तित हो जाया करते। अपने मन्त्रिमण्डल के समय मे अपने वेतन का बहुत बड़ा अंश सार्वजनिक काम में लगा देने का निश्चय उन्होंने शुरू में ही कर लिया। इस तरह से कई लाख की रकम ट्रस्ट में दे डाली। यह हमारे लिए एक नमूना था, जिसका अनुसरण और किसीने नही किया। कांग्रेसी मन्त्रियों का तो वेतन ही पांच सौ रु० कर दिया गया, जिसमे से बचाने की

गुंजाइश कम थी, पर तो भी मैं जानता हू कि कुछ ऐसे हैं, जिन्होंने पैसे-पैसे का हिसाब रक्खा और उसमे से बचाकर सार्वजनिक कामों मे लगाया। तीसरे साथी, जिनसे फिर भेंट होनेवाली नही थी, श्री निरसूनारायणसिंह थे। इनमे भी पढने के समय से ही परिचय था। सार्वजनिक प्रश्नों पर बहुत मतभेद रहते हुए भी प्रेम बराबर बना रहा। अपने घर में सबसे बड़ी भतीजी गिरिजा भी मेरे जेल मे रहते-रहते ही चली गई। उसका भी स्वास्थ्य बहुत दिनों से खराब ही रहा करता था। मेरे होश होने के बाद मेरे घर मे वही सबसे पहले पैदा हुई थी। मैंने उसीको सबसे पहले बचपन मे खेलाया था। वह प्रेम बहुत रखती थी। जेल मे आकर मिली थी। पर कौन जानता था कि वह आखिरी मुलाकात थी। वह बड़ी भाग्यशालिनी थी। पति और पुत्रों को अपने सामने देखते-देखते चली गई। अपने घर मे गृहिणी रहकर उसने जिस प्रकार सब लोगों को सुख पहुचाया था, उसे सभी याद रखेंगे।

: १५५ :

अस्थायी केन्द्रीय सरकार की स्थापना से पूर्व

जेल मे समय काटना बहुतों के लिए बड़ा कठिन काम हो जाया करता है। इसलिए अगर कुछ दिलबहलाव का सामान मिल जाय तो उसे बहुत लोग पसद करते है। हजारीबाग-जेल मे हमारे साथियों ने एक बिल्ली के बच्चे को पाल रखा था। वह लोगों से इतना हिल-मिल गया था कि निःसंकोच चारपाई पर जाकर सो रहा करता था। खाने के समय कही से घूमता-फिरता आकर गोद में बैठ जाता और जो-कुछ दिया जाता उसे खाता। लिखने-पढ़ने के समय हाथ में से कलम-पेन्सिल छीन लेने मे भी न हिचकता। अपने जन्म से ही वह कभी जेल के बाहर नही गया था। हमेशा बड़े और जवान लोगों की सगति मे ही रहा। उसने आदमी के बच्चे को कभी देखा ही न था। हजारीबाग जेल मे हमारे साथियों मे से एक आदमी बीमार पड़े। उनके बाल-बच्चे उनसे मिलने आये। उन छोटे बच्चों को देखते ही वह इतना डर गया कि किसीकी गोद मे से, जहा वह उस समय बैठा था, कूदकर भागा और कही दूर जाकर छिप रहा। उन बच्चों के चले जाने के बाद भी कुछ देर तक वापस नही आया!

इस बार बांकीपुर-जेल में कुछ मामूली कैदियों ने मैना चिड़िया के बच्चे को पाल रखा था। वह आदमियों के हाथ पर, कंधे पर, सिर पर निडरता से बैठ जाता। कैदी काम करते रहते, वह वहां डटा रहता। उसका हम लोगों से भी परिचय हो गया। वह हमारे कमरे में भी आने लगा। कुछ दिनों के बाद अधिकतर वही रहने लगा। चर्खा चलाने के समय सामने बैठ जाता और निकलते हुए धागे को चोंच से मारकर तोड़ देता। रात को मसहरी पर बैठ जाता और वही रात-भर रहता। सवेरे उड़कर बाहर जाता और फिर घूम-घामकर वापस आ जाता। एक दिन उड़कर कही गया और फिर नही लौटा। न मालूम कही उड़ता चला गया अथवा किसी चिड़िया या दूसरे जानवर ने उसे मार डाला। दूसरी मैना भी लोगो ने पालने का प्रयत्न किया, पर हमने प्रोत्साहन नही दिया। इस तरह लिखते-पढ़ते, चर्खा कातते, बीमार पड़ते, लोगों के और आन्दोलन के समाचार सुनते-सुनाते और पुराणों की कथा सुनते—जिनमें वाल्मीकीय रामायण,

अध्यात्म रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत, चैतन्यचरित इत्यादि ग्रन्थ मुख्य थे—समय बीतते कुछ मालूम न हुआ। प्रायः तीन बरस के बाद १५ जून को हम छूटे।

हम लोगों के रिहा होने के कुछ दिनों पहले से ही इस बात की बहुत चर्चा चल रही थी कि अब वर्किंग कमिटी के सदस्य छोड़ दिये जायंगे। अहमदनगर-किले में जो लोग थे, उनमें से कुछ लोग दूसरे स्थानों में भेजे जा चुके थे। ऐसा मालूम होता था कि यह सब छोड़ने की तैयारी है। इस बात की घोषणा हुई कि १४-६-४५ की सन्ध्या को लार्ड वावेल अपनी कोई नई योजना देश के सामने रखेंगे—यह योजना रेडियो द्वारा सारे देश को उसी रात में बतलाई जायगी। ऐसा ही हुआ। योजना के साथ-साथ यह भी उन्होंने रेडियो पर कहा कि वर्किंग कमिटी के सदस्यों को छोड़ने की आज्ञा दे दी गई है, तारीख १५ जून के सवेरे सब छोड़े जायंगे। रेडियो की बात सुनकर कुछ लोग तो उसी रात को हमारे छोड़े जाने की आशा से जेल के दरवाजे पर आये। अधिकारियों के यह कहने पर भी कि उस रात को छोड़ने का हुक्म नहीं है, वे कुछ देर तक वहां ठहरे रहे। १५ जून को एक भारी भीड़ जमा हो गई। जेल में इतने दिनों तक रहने के बाद वहां से निकलने के समय मन में कितनी भावनाएं उठने लगी। हम लोग जिस दिन जेल में गये थे उसी दिनसे मामूली कैदियों को हम लोगों के साथ, न मालूम किस कारण से, प्रेम-सा हो गया—हमारे ऊपर उनका बहुत विश्वास हो गया। वे हम लोगों को जेल के अधिकारियों से भी बड़ा समझते थे। जब कोई कष्ट होता तो हजार पहरा रहने पर भी किसी-न-किसी तरह हमारे पास पहुंच जाते। हमारे हजार समझाने पर कि हमारा कोई अधिकार नहीं है, वे यह बात मानने को तैयार नहीं होते। मैं इतना और भी कहूंगा कि जब-तक हम उस जेल में रहे, उनके साथ अधिकारियों का बर्ताव भी अच्छा ही रहा। यों तो जेलों में कैदियों के साथ बर्ताव सख्ती का—प्रेम का नहीं, सजा देने का—सुधारने का नहीं, हुआ करता है। पर उनमें जो पुराने थे वे कहा भी करते थे कि बहुत-से अधिकारियों का रुख बहुत-कुछ बदल गया था। इत्तफाक से उस जेल के अधिकारी भी अधिकांश अच्छे ही रहे। वे उन लोगों में से नहीं थे, जो सारे सूबे में अपनी करतूतों के कारण बदनाम हो चुके थे। इस तरह, यद्यपि मामूली कैदियों के साथ हमारा कोई सम्बन्ध होना आवश्यक नहीं था तो भी एक अजीब सम्बन्ध हो गया था। हमारे छूटने की खबर से न मालूम उनके दिल में खुशी हुई या तकलीफ। मैं इतना कह सकता हूं कि बहुतेरों को आशा जरूर हुई कि वे भी कुछ दिनों में छूट जायंगे। हमने इस तरह की आशा उन्हें किसी तरह से दिलाई नहीं थी। पर उनमें

से बहुतेरों को हमारे छूटने के बाद निराशा हुई होगी।

जेल से बाहर निकलते ही हमको बम्बई जाना पड़ा; क्योंकि वहां वर्किंग कमिटी की बैठक हुई, जिसमें वावेल-योजना पर विचार करना था। बम्बई में बाते थोड़ी ही हुई और शिमले से महात्माजी तथा सभापति मौलाना आजाद की बुलाहट आ गई। उनको वहां जाना पड़ा। मैं पटना लौट आया। पर यहां दो-चार दिन भी ठहर न सका; क्योंकि शिमले से मेरी बुलाहट आ गई—वही वर्किंग कमिटी की बैठक होगी। शिमला में प्रायः दो सप्ताह तक रहना पड़ा। हमारी ओर से लार्ड वावेल के साथ कभी मौलाना, कभी पंडित जवाहरलाल और कभी महात्मा गांधी की बातें होतीं। मुस्लिम लीग की ओर से मिस्टर जिन्ना, और उनके साथी, वाइसराय से बातें करते। पर मुख्य काम तो वहा एक कान्फ्रेंस का था, जिसमें कांग्रेस और मुस्लिम लीग के सभापतियो के अलावा सूबो के प्रधान मंत्री बुलाये गए थे। जहां मंत्रिमण्डल टूट गया था—जैसा उन सभी सूबों मे हुआ था, जहां कांग्रेसी मंत्रिमण्डल था—वहां के टूटने के समय के प्रधान मत्री बुलाये गए थे।

योजना पर और दूसरी बातो पर विचार किया गया। ऐसा मालूम हुआ कि वाइसराय की कार्यकारिणी-समिति को एक प्रकार से राष्ट्रीय सरकार का रूप दिया जायगा। काग्रेस की ओर से हमने योजना को एक प्रकार से मंजूर कर लिया। नौबत काग्रेस की ओर से नाम देने की आई। कान्फ्रेंस में ग्यारह सूबों में से सात के प्रधान मंत्री कांग्रेसी थे। बाकी चार में से तीन की ओर से लीगी प्रधान मंत्री थे, जिनमे एक आसाम का था। आसाम में कांग्रेस के हट जाने के बाद मंत्रिमण्डल में हेरफेर हुआ था। वहां उस समय यद्यपि लीगी मंत्रिमण्डल नही था तथापि प्रधान मंत्री सर सदाउल्ला लीगी थे। चौथे सूबा—पंजाब के प्रधान मंत्री सर खिजिर हयात खां लीग से झगड़कर अलग हो गए थे। योजना की एक शर्त यह थी कि वाइसराय की कौन्सिल में हिन्दुओं और मुसलमानों की संख्या बराबर होगी—इनके अलावा दूसरे लोग भी कुछ होंगे, जिनमें हरिजनों के प्रतिनिधि भी रहेंगे। योजना ने एक तरह से हरिजनों के प्रतिनिधियों को हिन्दू-प्रतिनिधियों से अलग मान लिया था और जो समानता हिन्दू-मुस्लिम प्रतिनिधित्व में दी गई थी वह अ-हरिजन अथवा सवर्ण हिन्दुओ के साथ ही थी।

अभीतक लड़ाई चल रही थी। देश की स्थिति कुछ अच्छी नहीं थी। हमने सोचा कि इस योजना को मानकर शायद हम उस स्थिति के सुधारने में कुछ सफल हो सकेंगे। हमने यह कहा कि कौन्सिल, वाइसराय और कमाण्डर-इन-चीफ के अलावा, पन्द्रह आदमियों की हो, जिनमें पांच सवर्ण

हिन्दू, पांच मुसलमान, दो हरिजन और तीन सिख, क्रिस्तान, पारसी इत्यादि दूसरी जातियों के प्रतिनिधि हों। हमने पन्द्रह नाम भी दिये, जिनमें और नामों के अलावा पाच मुसलमानों के भी नाम दिये। इनमे तीन मुस्लिम लीगी लोगों के अलावा एक कांग्रेसी मुसलमान और एक लीग के बाहर के दूसरे मुसलमान के नाम थे। यह भी कह दिया गया कि लीग यदि अपनी ओर से दूसरे नाम देना चाहे तो वह दे सकती है, उसमें हमको उज्र नहीं होगा। मिस्टर जिन्ना ने यह दावा पेश किया कि मुसलमानों के सभी प्रतिनिधियों को नामजद करने का लीग को ही अधिकार होना चाहिए, वह दूसरे किसी मुसलमान का होना पसन्द नही करेंगे! लार्ड वावेल को इस कठिनाई का सामना करना पड़ा। वह कांग्रेसी मुसलमान को तो छोड़ सकते थे, पर सर खिजिर हयात की पार्टी को नही। वह समझते थे कि सर खिजिर हयात ने और उनके पहले उस दल के नेता सर सिकन्दर हयात ने लड़ाई में बहुत मदद की थी, इसलिए उनको छोड़ना पंजाब के मुसलमानों को गवर्नमेण्ट के विरुद्ध कर देना होगा। हम लोगो को यह तो मालूम नही हुआ कि वाइसराय किन लोगों को रखना चाहते थे, पर हम समझते थे कि कांग्रेस और लीग की ओर से वे ही लिये जायगे जिनके नाम ये सस्थाए देंगी, चाहे दूसरों में कुछ हेरफेर भी हो। ऐसा अनुमान किया जाता था कि उन्होंने मुसलमानो में चार नाम लीग के और एक मुसलमान पजाब की युनियनिस्ट पार्टी का लेना चाहा था। पर मिस्टर जिन्ना इसपर राजी नही हुए। कान्फ्रेन्स टूट गई!

कान्फ्रेन्स के टूटने पर मिस्टर जिन्ना ने एक बयान दिया, जिसमें उन्होंने लीग के दावे बताये। उन कारणो को भी बताया, जिनसे लीग को योजना नामंजूर करनी पड़ी थी। मुख्य कारण यह था कि एकमात्र लीग ही मुसलमानो की प्रतिनिधि सस्था है और उसीको मुसलमान मेम्बरों के नामजद करने का पूरा अधिकार होना चाहिए—चूंकि लार्ड वावेल इस बात को नही मानते, इसलिए योजना मंजूर नही की जा सकती। दूसरी महत्वपूर्ण बात उन्होंने यह कही कि उस प्रस्ताव के अनुसार पन्द्रह गैर-सरकारी आदमियों की कौन्सिल में केवल पांच ही मुसलमान होनेवाले थे—उनके विरुद्ध कांग्रेसी हिन्दू लोग होते, और दूसरी अल्पसख्यक जातियों के जो प्रतिनिधि होते वे हमेशा हिन्दुओं के साथ ही जाते, क्योकि दूसरी जातियों के विचार और मनोभाव काग्रेस के ही साथ थे —इस तरह कौन्सिल में मुसलमान केवल एक-तिहाई की अल्पसंख्या में रह जाते, जो लीग मंजूर नही कर सकती। मार्के की बातें इसमें दो थी—एक तो यह कि आजतक सभी अल्पसंख्यक जातियों के संरक्षण का भार मिस्टर जिन्ना हमेशा अपने ऊपर लिया

करते थे—कहा करते थे कि कांग्रेस केवल सवर्ण हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व करती है, बाकी सबकी रक्षा लीग ही कर सकती है, और करती है। ऐसा कहने का कोई कारण नही था; क्योंकि बार-बार अन्य अल्पसंख्यक जातियों ने अपनी संस्थाओ में लीग और भारत-विभाजन तथा पाकिस्तान की बात का स्पष्ट रीति से विरोध किया था और कांग्रेस के साथ अपनी सहानुभूति बतलाई थी। पर वह इस तरह की बाते कहते आ रहे थे। इन अल्पसंख्यकों मे वह हरिजनो को भी गिनाया करते थे और अपनेको उनका हिमायती बतलाया करते थे। अब, जब कौन्सिल मे सवर्ण हिन्दुओं की संख्या केवल एक-तिहाई, मुसलमानो की भी एक-तिहाई, और बाकी तिहाई मे दो हरिजन तथा दूसरे अल्पसख्यको के रखने की बात हुई तो भण्डाफोड़ हो गया। उन्होंने साफ-साफ कह दिया कि दूसरे सब-के-सब कांग्रेस और हिन्दुओ के साथ है और रहेंगे, वह केवल मुसलमानों पर ही भरोसा रख सकते थे और मुसलमानों मे भी केवल उन्ही मुसलमानों पर जिनको लीग ने अर्थात् उन्होंने स्वयं नामजद किया हो। दूसरी बात यह साफ हो गई कि वह इसपर राजी नही थे कि कौंसिल मे हिन्दुओं और मुसलमानो मे समानता हो। वह यह चाहते थे कि एक ओर केवल मुसलमान और दूसरी ओर बहुसंख्यक सवर्ण हिन्दू—हरिजन तथा दूसरी सभी अल्पसंख्यक जातिया—हो, और मुसलमानों की समानता उन सभी जातियो के साथ हो! इसके साथ यह भी स्पष्ट था कि मुसलमानों का अर्थ सभी मुसलमान नही, केवल वही मुसलमान जो लीग मे शरीक थे!

लीगी मुसलमानो की उस समय यह हालत थी कि उन दो बड़े-बड़े सूबों मे, जहा उनकी आबादी ज्यादा है—पजाब और बंगाल मे, लीगी मत्रिमण्डल टूट गया था। पंजाब मे लीग से अलग होकर, मिस्टर जिन्ना से झगड़कर, सर खिजिर हयात ने अलग मत्रिमण्डल बना लिया था—वह भी तब, जब भूतपूर्व प्रधान मंत्री सर सिकन्दर हयात खा के लडके सरदार शौकत हयात खा लीग के साथ हो गये थे और सर खिजिर का जोरों से विरोध कर रहे थे। बंगाल का मंत्रिमण्डल हारकर टूट गया था। यदि उस समय विपक्षी दल को मौका दिया जाता, जैसा देना न्याय और वैधानिक नियम के अनुसार आवश्यक था, तो वहां गैरलीगी मंत्रिमण्डल बन गया होता। पर गवर्नर ने उस समय की नीति के अनुसार लीग को नाखुश करना नही चाहा—जब लीगी मंत्रिमण्डल न चल सका, तो बार-बार कहने पर भी, कोई दूसरा मंत्रिमण्डल बनाने का किसीको मौका न देकर, दफा ९३ के अनुसार, अधिकार अपने हाथों में कर लिया था। सीमाप्रान्त में कांग्रेसी मंत्रिमण्डल के हट जाने के कुछ दिनों बाद लीगी मंत्रिमण्डल बन गया था,

पर वह अपनी कार्रवाइयों से इतना बदनाम हो गया कि हम लोगों के छूटने के कुछ दिन पहले ही कांग्रेसी मेम्बरों ने असेम्बली में भाग लेकर उसे तोड़ डाला था, जिससे वहां कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल कायम हो चुका था। एक सिन्ध ही ऐसा सूबा था, जहां लीगी मन्त्रिमण्डल काम कर रहा था, यद्यपि वहां भी राष्ट्रीय मुसलमानों के नेता अल्लाहबख्श को प्रधान मन्त्री के पद से हटाने में गवर्नर का सिर्फ हाथ ही नहीं था, बल्कि उसके लिए गवर्नर को बहुत-से अवैधानिक काम भी करने पड़े थे और पीछे अल्लाहबख्श कत्ल भी कर डाले गये थे!

यह तो उन सूबों का हाल हुआ जहां मुसलमानों की आबादी ज्यादा है। वह तो पाकिस्तान में आसाम को भी मिलाते हैं, पर वहां मुसलमानों की आबादी एक-तिहाई से ज्यादा नहीं है। कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल के हट जाने के कुछ दिनों बाद वहां भी लीग के सरदार सर सादुल्लाह ने मंत्रिमण्डल बनाया था; पर वह भी इतना बदनाम हो चुका था कि वह अन्तिम सांस गिन रहा था। ऐसी अवस्था में यह दावा करना कि लीग ही एकमात्र मुसलमानों की प्रतिनिधि जमायत है और उसके ही नामजद किये लोग कौन्सिल में लिये जा सकते हैं तथा उनकी संख्या भी इतनी होनी चाहिए कि वे अकेले ही सवर्ण हिन्दू एवं हरिजन और तमाम दूसरी अल्पसंख्यक जातियों के प्रतिनिधियों का अपनी संख्या के कारण विरोध कर सकें, केवल मुस्लिम लीग और मि० जिन्ना के लिए ही सम्भव था! इस दावे पर शिमला-कान्फ्रेन्स को असफल बतलाकर तोड़ देना ब्रिटिश सरकार के लिए ही सम्भव था! याद रखना चाहिए कि अभी लड़ाई चल रही थी और इंगलैंड में प्रधान मन्त्री के पद पर मिस्टर चर्चिल और भारत-मन्त्री के पद पर मिस्टर एमरी विराजमान थे!

शिमला-कान्फ्रेन्स के सम्बन्ध में एक-दो बातें और कह देना आवश्यक जान पड़ता है। ऊपर कहा जा चुका है कि कांग्रेस की वर्किंग कमिटी ने अपनी ओर से कौन्सिल के लिए नाम भी दे दिये थे। इनमें श्री भूलाभाई देसाई का नाम नहीं था। वह उस समय तक केन्द्रीय असेम्बली में कांग्रेस-दल के नेता थे। उन्होंने उस हैसियत से काम भी बहुत अच्छा किया था। जब से, बारदोली-सत्याग्रह के समय (१९२८) में, वह कांग्रेस में खुलकर आये थे तबसे जब-जब मौका हुआ, वह जेल जाने से हिचके नहीं थे। रुपये-पैसे से भी बराबर मदद करते आये थे। अपनी योग्यता और अपने त्याग के कारण वह बराबर वर्किंग कमिटी के भी मेम्बर रहे थे। कांग्रेस की ओर से उनका न लिया जाना उनके लिए बहुत ही दुःखदायी हुआ। यद्यपि नाम प्रकाशित नहीं किये गए थे तथापि बहुतों को यह बात मालूम हो गई थी कि

उनका नाम नहीं दिया गया था। दूसरे लोगों को भी, विशेषकर केन्द्रीय असेम्बली के मेम्बरों को, यह बात बहुत खटकी थी। उनका नाम न दिये जाने का कारण यहां लिखना जरूरी नहीं है और न उचित ही है। मैं इस फैसले से सन्तुष्ट नहीं था, दुःखी था। पर कोई दूसरा रास्ता नहीं दीखा। श्री भूलाभाई का मेरे साथ बहुत प्रेम था। मुझपर वह विश्वास भी रखते थे, जिसको उन्होंने कई मित्रों से कहा था। कुछ दिनों के बाद, जब वह उस रोग से ग्रस्त थे, जिसके कारण उनकी मृत्यु हुई, मैं उनसे बम्बई में मिला। उन्होंने अपना दुःख बहुत दर्द-भरे शब्दों मे कहा भी। यहां इतना कह देना ठीक होगा कि इसके थोड़े ही दिनो के बाद, जब आजाद-हिन्द-फौज के मेजर-जनरल शाहनवाज और उनके साथियों पर दिल्ली के लाल किले मे राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया और श्री भूलाभाई को उनकी ओर से पैरवी करने को कहा गया तो, उन्होने खुशी से इस मुश्किल काम को अपने हाथो में ले लिया—यद्यपि उनका स्वास्थ्य उन दिनो कुछ अच्छा नही था। इसी मुकदमे का घोर परिश्रम एक तरह से उनकी मृत्यु का कारण हुआ; क्योंकि वह मुकदमे का काम किसी तरह खत्म करके बीमार पड गये और फिर चारपाई से उठ नही पाये। मुकदमे मे उनकी प्रखर योग्यता और अद्भुत शक्ति का पता लगा। उनकी बहस संसार के बडे-से-बड़े मुकदमो के बड़े-से-बड़े वकीलों की बहस का मुकाबला करती रहेगी। चारपाई पर पड़े श्री भूलाभाई को एक सन्तोष रहा—उनके सभी मवक्किल छूट गये। उनके मरने से भारत की एक विभूति चली गई। उनका स्थान लेनेवाला दूसरा कोई अभी नही दीखता। मुझे उनके अन्तिम दिन हमेशा स्मरण रहेंगे—विशेषकर वह करुणापूर्ण भावना कि इतनी सेवा के बाद भी वर्किंग कमिटी ने उनको कौन्सिल के योग्य नही समझा! उनके मन मे पद की लालसा नही थी। यदि कांग्रेस मे वह न आये होते तो उसे वह अनायास ही बहुत पहले पा सकते थे। उनको दुःख इस बात का था कि हमने उनको अयोग्य समझा!

दूसरी बात जिसका जिक्र करना चाहता हूं, निजी है। वर्किंग कमिटी के सामने नामों के चुनाव का जब प्रश्न आया तो उन नामों मे मेरा नाम भी आया। मैं इसके लिए बिलकुल तैयार नही था। एक तो मेरा स्वास्थ्य ऐसा नहीं कि बहुत परिश्रम कर सकू। दूसरे, इस प्रकार के काम का मुझे बिलकुल तजरबा नहीं था। ऐसे कठिन समय में इस भार को लेना ठीक नही जंचता था। तीसरे, मैं समझता था कि बाहर रहकर जैसे मैं उस समय तक काम करता आ रहा था वैसे ही काम करते रहना मेरे स्वभाव के अनुकूल था। चौथे, दिल में कुछ नैतिक दुविधा भी मालूम होती थी। मैंने

अपनी कठिनाइयों को पूज्य महात्माजी के पास अकेले में जाकर कहा। उन्होंने राय दी कि मुझे मंजूर कर लेना चाहिए। इसके बाद मेरे लिए कुछ कहने को नही रह गया। पर चित्त मे शान्ति पूरी नही आई। इसलिए जब शिमले मे बातचीत खत्म हो गई तो मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मेरे सिर से भी एक बोझ टल गया—देशहित की दृष्टि से यद्यपि उसका टूटना अच्छा नही लगा तथापि व्यक्तिगत विचार से अच्छा ही हुआ जान पड़ा।

: १५६ :

पीड़ित राजबन्दियों के लिए अर्थ-संग्रह

शिमले से मैं दिल्ली आया। वहां बीमार पड़ गया। तबीयत बम्बई जाने पर ही कुछ खराब हो गई थी। इसीलिए बम्बई से जल्द पटने चला आया था। पर पटने मे भी ठहर न सका। वहा से शिमला जाना पड़ा। शिमले में किसी तरह काम खत्म किया। डाक्टर बिधानचन्द्र राय ने, जो शिमला गये हुए थे, सलाह दी कि किसी सूखे स्थान मे कुछ दिनो के लिए चला जाना अच्छा होगा। मैं इस विचार से दिल्ली में ठहर गया कि वहां से पिलानी जाकर कुछ दिन आराम कर लू। पर दिल्ली मे अधिक बीमार हो जाने के कारण प्रायः दो सप्ताहो तक ठहर जाना पडा। वहा से अगस्त की पहली या दूसरी तारीख को पिलानी गया, जहा एक महीने से कुछ अधिक ठहरा। पिलानी में, बिडला-बन्धुओ की ओर से, हमारे ठहरने का अच्छा प्रबन्ध था। वहा बहन और मृत्युञ्जय की मा के साथ बहुत आराम से रहा। मुझे आराम पहुचाने का प्रबन्ध बिडला-बन्धुओ के मैनजर श्री हरिश्चन्द्र ने बड़ी खूबी से किया था। बिडला-कालेज के प्रिन्सिपल श्री शुकदेव पाण्डेयजी तथा दूसरे अध्यापको और आचार्यो की संगति भी बहुत अच्छी रही।

जो पुस्तक (डिवाइडेड इण्डिया) जेल मे लिखी गई थी, उसका एक भाग लिखना बाकी रह गया था, यह कहा जा चुका है। पिलानी मे यह काम कर लिया गया। वहां बिड़ला-कालेज के पुस्तकालय में पुस्तको का अच्छा सग्रह है। मेरे काम की प्रायः सभी पुस्तकें वहां मिल गई। इसलिए इसे पूरा करने में सुविधा हुई। परिश्रम तो करना पडा, पर काम हो गया। वही से वर्किंग कमिटी और अखिल भारतीय कमिटी की बैठक के लिए बम्बई जाना पड़ा। बम्बई की हवा मेरे लिए इतनी हानिकर होती है कि वहां पहुंचते ही फिर खासी-दमा हो गया। आखिर वर्किंग कमिटी बम्बई में न होकर पूना मे हुई। हम लोग पूना चले गए। वहां भी बराबर पानी बरसता रहा। इसलिए स्वास्थ्य अच्छा नही रहा। बम्बई में अखिल भारतीय कमिटी की बैठक के बाद मैं पटना वापस आ गया। बम्बई मे किताब (डिवाइडेड इण्डिया) के छपने और प्रकाशित करने का प्रबन्ध कर लिया।

ऐसा मालूम हुआ कि दो-तीन महीनों के अन्दर पुस्तक प्रकाशित हो जायगी। शिमले मे ही हम लोग समझ गये थे कि प्रान्तीय और केन्द्रीय असेम्बलियों का नया चुनाव शीघ्र ही होगा। मैं समझता था कि चुनावों के पहले ही पुस्तक प्रकाशित हो जाय तो अच्छा होगा। केन्द्रीय असेम्बली के चुनाव के पहले तो नहीं, पर प्रान्तीय चुनावों के पहले वह प्रकाशित भी हो गई।

जब मैं जेल में था, मुझे उन लोगों की चिन्ता हुई जिनको १९४२ के आन्दोलन के कारण बहुत प्रकार के कष्ट उठाने पड़े थे—विशेषकर उनके सम्बन्ध में भी चिन्ता होती, जिनपर संगीन मुकदमे चल रहे थे जिसके फल-स्वरूप फांसी अथवा लम्बी कैद की सजा मिलनी थी। मुकदमों की पैरवी मे खर्च पड़ता था और जो लोग बाहर थे, उन्होंने यथासाध्य इसका प्रबन्ध किया था। दूसरे लोगो मे बहुतेरे ऐसे थे, जिनके कैद हो जाने पर उनके परिवार को बहुत कष्ट सहना पड़ रहा था। बहुतेरे तो ऐसा स्वास्थ्य लेकर छूटते कि उनकी चिकित्सा करना आवश्यक होता। बाहर निकलने पर जब कुछ और बाते मालूम हुई तो मैंने तय कर लिया कि इनके सहायतार्थ कुछ रुपया जमा करना चाहिए। पर बम्बई और शिमले की बातों तथा उसके बाद बीमार पड़ जाने के कारण बम्बई से लौटने तक मै कुछ विशेष नही कर पाया था। बम्बई में मैंने इस सम्बन्ध मे कुछ मित्रो से बाते की थी, पर वहां कुछ उत्साहवर्द्धक स्थिति नही थी। वहा के लोगो ने इसके पहले बहुत पैसों से देश की मदद की थी। अब एक खास सूबे के लिए अलग चन्दा उगाना कठिन था। हा, यदि सारे देश के लिए कुछ किया जाता तो हो सकता पर केवल एक सूबे की बात लेकर मै उनसे कैसे कुछ कह सकता था। दूसरे लोगो का ध्यान इस ओर अभी नही गया था। इसलिए मैंने सोच लिया कि पहले अपने सूबे मे कुछ कर लिया जाय तो फिर बम्बई और कलकत्ते-जैसे बड़े स्थानों मे प्रयत्न करूंगा।

मैंने पिलानी में ही पैसे जमा करने का काम शुरू कर दिया था। अगर यो कहा जाय कि अनायास ही शुरू हो गया तो ज्यादा ठीक होगा। वहा के कालेज के प्रिंसिपल श्री शुकदेव पाण्डेयजी तथा दूसरो से बातो-ही-बातो जिक्र आ गया था; मैंने कुछ मागा नही था। पर ९ अगस्त (१९४५ ई०) को कालेज मे एक सभा हुई, जिसमे ९ अगस्त के सम्बन्ध मे कुछ कहने के लिए मुझे बुलाया गया। वहीपर कालेज के आचार्यो और विद्यार्थियो की ओर से एक हजार रुपये की थैली राजनैतिक पीड़ितो के सहायतार्थ मुझे भेंट की गई। पिलानी से रवाना होने के पहले मैं शेखावाटी के कुछ स्थानों मे गया, जहा के लोगों का बड़ा आग्रह था। चिडावा, सूर्यगढ़, फतहगढ इत्यादि कई स्थानों में गया। सभी स्थानों मे थैलिया भेंट की गई। इस तरह, वहा से

चलने के पहले, पन्द्रह-सोलह हजार रुपये कोष में आ गये। पटना लौटकर मैंने सारे सूबे में दौरा करने का कार्यक्रम बनाया। पर अभी बरसात समाप्त नही हुई थी। मेरा स्वास्थ्य भी ठीक नही था। इसलिए निश्चय किया कि दस दिनों के लिए जीरादेई जाकर आराम करूं और फिर दशहरे के दिन से दौरे पर निकलू। जीरादेई जाते समय कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि जिससे मेरे दिल में रुपये जमा होने के सम्बन्ध में जो थोड़ा सन्देह था वह दूर हो गया।

गंगातट के पहलेजाघाट-स्टेशन पर स्टीमर से उतरकर मैं रेल पर जा रहा था। वहां लोगो की भीड़ लग गई थी। इस बात की सूचना लोगों को मिल गई कि मैं उसी गाड़ी से जीरादेई जा रहा हू। इसलिए वहा के कांग्रेसी लोग जमा हो गये थे। मैने बिना सोचे-विचारे भीड देखकर लोगो से कह दिया कि मैं राजनैतिक पीड़ित कोष के लिए पैसा चाहता हू, जिससे जो कुछ हो सके वह दे दे। पटना से ही सभी जिलो को खबर दे दी गई थी कि मैं दौरे पर इस काम के लिए निकलूगा। हरेक जिले से एक निश्चित रकम मांगी गई थी जिससे कम उनको कोष के लिए नही देना था। पहलेजाघाट के कार्यकर्ताओ ने सोचा था कि इस अवसर पर ही कुछ जमा कर लेना चाहिए। इसलिए वे जिले के 'कोटा' मे से अपना हिस्सा पूरा करने का प्रबन्ध कर रहे थे और कुछ जमा करके लाये भी थे। वह उन्होंने भेट की। पर इसके अतिरिक्त उपस्थित जनता ने छोटी-छोटी रकमों से एक अच्छी रकम खड़ी कर दी। मैंने देखा कि लोगों मे उत्साह अद्भुत है, इससे लाभ उठाना चाहिए। इसलिए हर स्टेशन पर मैंने रुपये जमा करने शुरू कर दिये। जीरादेई मे लोगो ने स्वागत के लिए तैयारी की थी, क्योंकि तीन-चार बरसो के बाद मैं अपने गाव जा रहा था। वहा लोगो को यह भी मालूम था कि मै पीडित-कोष के लिए रुपये भी जमा कर रहा हूं। अत. कुछ जमा करके थैली भी रखे हुए थे। इस प्रकार जीरादेई पहुचते-पहुंचते लोगों ने एक अच्छी रकम भेट कर दी। इससे मेरा उत्साह बहुत बढ़ गया। मैं समझ गया कि रुपये काफी मिल जायंगे।

जीरादेई में गया तो था आराम करने के लिए, पर बहुत आराम न कर सका। बहुत लोग भेट करने आते और उनपर जो कुछ बीता था, उसे कह सुनाते। वहां रहते-रहते मैंने कुछ आसपास के लोगों के ऐसे घरो को देखा जो १९४२ में सरकारी कर्मचारियों द्वारा जला दिये गए थे और ऐसे लोगों के परिवार से भेंट भी की, जो गोलियों के शिकार हुए थे। हमारे खानदान के पुराने सम्बन्धी नरेन्द्रपुर के बाबू कृष्णकुमारसिंहजी थे, जिनके भतीजे की मृत्यु पटना-सेक्रेटेरियट के गोलीकांड में हुई थी। जिस बेरहमी से

घर जलाये गए थे, देखकर बहुत दुःख होता और इसका अन्दाजा मिलता कि तीन बरस पहले जब ये घटनाएं हुई थीं तब लोगों की क्या हालत हुई होगी। जीरादेई का भी एक आदमी गोली से मारा गया था। उसके परिवार के लोगों को सहायतार्थ कुछ दिया भी। जीरादेई रहते-रहते रुपये जमा करने का काम भी जारी रहा। जो लोग भेंट करने आते, उनमें बहुतेरे कोष के लिए कुछ दे जाते और विस्तारपूर्वक लोगों के कष्टों का हाल सुना जाते।

एक और काम जीरादेई में हुआ। जबलपुर के श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्रजी ने १९४०-४१ में व्यक्तिगत सत्याग्रह के समय जेल में 'कृष्णायण' लिखना आरम्भ किया था। एक बार मुझे वर्धा से पटना लौटते समय कुछ घण्टों के लिए उनके साथ ठहरने का अवसर मिला था तो उन्होंने मेरे आग्रह से उसका कुछ अंश मुझे सुनाया था। मुझे वह बहुत पसन्द आया था। उसे उन्होंने १९४२-४५ की जेल-यात्रा में पूरा किया था और जेल से मेरे निकलने पर बम्बई में अखिल भारतीय कमिटी के समय कहा था कि चन्द रोज मेरे साथ रहकर उसे पढ़कर सुनाना चाहते है। मैंने उनको जीरादेई में बुला लिया। उनके भाई और वह स्वयं वहां आ गये थे। पुस्तक का कुछ अंश उन्होंने सुनाया था। मुझसे एक छोटी भूमिका लिखने का आग्रह किया, जो मैंने वहीं लिख दी। पुस्तक श्री तुलसीकृत रामायण की शैली पर दोहा और चौपाइयों में लिखी गई है। जिस तरह रामायण में श्री रामचन्द्र का चरित्र-चित्रण है उसी तरह इसमें श्रीकृष्ण की जीवनी और चरित्र का चित्रण है। पुस्तक बहुत ही हृदयग्राही और सुन्दर ढंग से लिखी गई है। सुनकर बहुत आनन्द आया। मिश्रजी का सत्संग बहुत अच्छा रहा।

जीरादेई से मैं सीधे दौरे पर निकल गया। प्रायः छः-सात हफ्तों तक दौरा करता रहा। लोगों में उत्साह बहुत था। १९४२ के दमन का कुछ भी असर देखने में नहीं आता था। मालूम होता था कि जैसे रबर की गेंद जितने जोर से पटकी जाती है, वह उतने ही जोर से ऊपर उठती है, वैसे ही दमन के कारण लोगों का जोश और भी ज्यादा हो गया है। सभाओं में रुपयों की वर्षा होती। जो-कुछ थैली के लिए लोग जमा करके पहले से रखते उसके अलावा सभाओं में भी अच्छी रकम जमा हो जाती। दौरा बहुत सस्त था, क्योंकि बहुत स्थानों में जाना था और सभी जगहों में भाषण करना पड़ता था। यद्यपि तबीयत ठीक हो गई थी तथापि कमजोरी अभी काफी थी। भाषणों में लोगों का उत्साह बढ़ाने के अलावा आनेवाले चुनावों के सम्बन्ध में भी मैं कुछ कह देता और फिर रुपयों के लिए अपील करता। जितना 'कोटा' निश्चित था, उससे कम किसी जिले ने नहीं दिया। अधिकांश ने 'कोटा' से कहीं अधिक रकम दी। हम लोगों ने सोचा था कि तीन

लाख रुपये सूबे से जमा किये जायं और दो लाख रुपये बम्बई-कलकत्ता-जैसे बाहर के बड़े-बड़े स्थानों से। पर सूबे के अन्दर ही पांच लाख से अधिक रुपये आ गये। बाहर मांगने की जरूरत न रही। अभी दौरा पूरा नहीं हुआ था और मैं थक-सा गया। दो-तीन जिले अभी बाकी थे कि कटिहार मे पहुंचकर मैं बहुत बीमार पड़ गया। न्युमोनिया जैसा कुछ हो गया। कई दिनो तक वहां ठहर जाना पड़ा। पटने से डाक्टर बनर्जी बुलाये गए। कुछ अच्छा होने पर वहां से स्पेशल ट्रेन द्वारा मैं पटना पहुंचाया गया; क्योंकि वहां से गाड़ियों का सिलसिला ऐसा था कि कहीं-न-कहीं रात गाडी मे बितानी पड़ती और डाक्टर लोग इससे बचाना चाहते थे। पटने पहुंचकर भी मैं बहुत दिनो तक बीमार रहा। आहिस्ता-आहिस्ता अच्छा हुआ। इसी बीच कलकत्ते में वर्किंग कमिटी की बैठक होनेवाली थी। मैंने यात्राक्रम ऐसा बनाया था कि स्वास्थ्य यदि मेरा साथ दिये होता तो दौरा समाप्त करके मैं कलकत्ते पहुंच जाता, पर बीमार पड़ जाने के कारण न दौरा ही समाप्त कर सका और न कलकत्ते ही जा सका। जो जिले दौरे से वंचित रह गये थे, उनका दौरा कई महीनो के बाद किसी तरह कर सका; पर वह बात न रही जो उस समय थी। उस समय का उत्साह और जोश अद्भुत था।

: १५७ :

असेम्बली का चुनाव और कुछ पार्टियों के कारनामे

केन्द्रीय असेम्बली के लिए पहले चुनाव हुआ। यह जनवरी तक समाप्त हो गया। इसके बाद प्रान्तीय असेम्बली का चुनाव आया। केन्द्रीय असेम्बली के लिए बिहार में जितने गैर-मुस्लिम खड़े किये गए थे, आसानी से जीत गये, अधिकांश तो निर्विरोध चुने गये। एक जगह विरोध हुआ, पर वहा भी विरोधी की जमानत जब्त हुई। पर मुस्लिम जगहो के लिए कांग्रेस की ओर से खड़े उम्मीदवार हार गये, सब जगहें मुस्लिम लीग को मिल गईं। यह कैफियत केवल बिहार में ही नहीं रही, प्राय: देश-भर में ऐसा ही हुआ! गैर-मुस्लिम जगहों में कांग्रेसी और मुस्लिम जगहो में लीगी चुने गये।

अब प्रान्तीय चुनाव के लिए तैयारियां हुईं। इसमें भी मुस्लिम लीग के साथ मुकाबला हुआ। कांग्रेस तीन मुस्लिम जमायतों के साथ मिलकर लीग का मुकाबला बिहार में कर रही थी। ये तीन जमायतें थीं—जमीअत उलेमा, जमीअत मोमिन और इण्डिपेण्डेण्ट पार्टी। इनमें इण्डिपेण्डेण्ट पार्टी की कोई खास हैसियत नहीं थी और मोमिन लोगों का संगठन बहुत फैला हुआ था। उम्मीदवार चुनने में बहुत देर हो गई; क्योंकि कई जमायतों को साथ चलना था। तय हुआ कि कुछ जगहो के लिए कांग्रेसी, कुछके लिए जमीअत उलेमा के और कुछके लिए मोमिन उम्मीदवार खड़े किये जायं। सबसे ज्यादा जगहें मोमिनों को दी गईं। बहुत धूमधाम से मुकाबला हुआ। लीग की ओर से हर तरह की जोर-जबरदस्ती भी की गई। खर्च भी काफी किया गया। अन्त में नतीजा यह हुआ कि चालीस जगहों में से चौंतीस लीग ने ले लीं, पांच मोमिनों को मिलीं और एक कांग्रेस को! जमीअत उलेमा का एक उम्मीदवार भी कामयाब नहीं हुआ। जिस जगह के बारे में यह कहा जाता था कि उस इलाके के सभी वोटर जमीअत उलेमा के उम्मीदवार के मुरीद थे वहा भी जमीअत उलेमा के उम्मीदवार हार गये। कांग्रेस को सबसे भारी धक्का यह लगा कि प्रोफेसर अब्दुलबारी हार गये। कांग्रेसी उम्मीदवारो में डाक्टर सैयद महमूद जीते।

गैर-मुस्लिम जगहो में और कहीं कोई विशेष विरोध नहीं हुआ। केवल

छोटा नागपुर में—रांची और सिंहभूम जिलों में जोरदार विरोध हुआ। जमींदारी जगहों पर हमने किसीको खड़ा ही नही किया था। छोटा नागपुर के आदिम निवासियों के बीच कुछ दिनो से काम करती 'आदिवासी-महा-सभा' का मुख्य कार्यक्रम यह था कि छोटा नागपुर बिहार से अलहदा सूबा बना दिया जाय। इसके नेता श्री जयपालसिंह स्वयं राची-जिले के खूटी-इलाके से खड़े हुए। और-और जगहों में—सिंहभूम, रांची, संथाल-परगना इत्यादि मे—इस सभा की ओर से उम्मीदवार खड़े किये गए। कुछ जगहें आदि-वासियों के लिए, विधान के अनुसार, सुरक्षित हैं। जो दूसरी गैर-मुस्लिम जगहें हैं, उनमे भी उनको खडा होने का अधिकार है। उन्होंने सुरक्षित जगहों के लिए, और कुछ आम जगहो के लिए भी, उम्मीदवार खड़े किये। कांग्रेस की ओर से तो सभी आम जगहो के लिए, और आदिवासियों के निमित्त सुरक्षित जगहों के लिए भी, उम्मीदवार खड़े किये गए। इन्ही जगहों मे कड़ा विरोध हुआ। कही-कही आदिवासियों के अतिरिक्त, मुगेर और शाहाबाद की कुछ जगहों से, और मजदूरों के लिए सुरक्षित स्थानों से भी, रेडिकल-डेमोक्रा-टिक-पार्टी (श्री एम० एन० राय की पार्टी) और कम्युनिस्ट पार्टी की ओर से उम्मीदवार खड़े किये गए थे।

१९४२ के क्रान्तिकारी आन्दोलन के समय में श्री एम० एन० राय और उनकी पार्टी ने कांग्रेस की बड़ी निन्दा की थी। केवल इसी देश मे उन्होने उस आन्दोलन का विरोध नही किया था—विदेशों में भी, विशेष-कर अमेरिका में। उनके आदमियों ने जाकर काग्रेस की बहुत झूठी और गलत शिकायतें की थी—सरकार को भी कांग्रेस को दबा देने और उसके गंगठन को चूर-चूर कर देने की सलाह दी थी। सरकार को उनकी सलाह की जरूरत नही थी, वह खुद सबकुछ कर रही थी। पर उनके प्रचार से उसको अपना दमनचक्र चलाने मे सहारा जरूर मिला। जेल में हम लोगों के रहते-रहते ही केन्द्रीय असेम्बली मे एक प्रश्न के उत्तर मे सरकार की ओर से कहा गया कि उस पार्टी को सरकार की ओर से तेरह हजार रुपये की मासिक मदद दी जा रही है। उस दल के लोगों में आपस में भी इस विषय में झगड़ा हो गया और एक दल ने इस खबर से लाभ उठाकर दूसरे को जनता की नजरो में गिराना चाहा। हम लोग जब बाहर थे तब ऐसी बातें सुना करते थे। उस दल के लोग बहुत खर्च करते भी देखे गये थे, पर निश्चयपूर्वक कोई कुछ कह नही सकता था। १९४२ के आन्दोलन के समय उन लोगों में कुछ मतभेद हो गया था। कुछ लोग आन्दोलन में शरीक होना पसन्द करते थे, पर श्री एम० एन० राय और दूसरे लोग उनका जोरों से विरोध करना चाहते थे। जेल में ही हम लोगों को इसका पता लग गया

था। यह भी मालूम हो गया था कि वह पार्टी सरकार के रुपये से काम कर रही है। असेम्बली में तो सरकार ने ही भण्डाफोड़ कर दिया। वही पार्टी को भारत का सच्चा प्रतिनिधि बताती थी और कांग्रेस को देश-विदेश में गालियां दिया करती थी।

कम्युनिस्ट लोगों का भी हाल कुछ विचित्र रहा। लड़ाई आरम्भ होने के चन्द दिन पहले रूस और जर्मनी में सुलह हो गई। जब लड़ाई शुरू हुई तो एक ओर से जर्मनी ने पोलैण्ड पर चढ़ाई कर दी और दूसरी ओर से उसके कुछ हिस्से पर रूस ने कब्जा कर लिया। इस प्रकार दोनों में बड़ी आवभगत हो गई। हिन्दुस्तान के कम्युनिस्ट लोग, जो अधिकतर रूस के इशारे पर ही काम किया करते है, आरम्भ में ब्रिटेन के खिलाफ ही बोलते-लिखते रहे, जिसके कारण उनकी संख्या गैर-कानूनी करार दे दी गई थी और उनके प्रमुख व्यक्ति लुक-छिपकर काम कर रहे थे। जबतक रूस और जर्मनी के बीच लड़ाई नहीं छिड़ी, हिन्दुस्तान के कम्युनिस्ट लोग जर्मनी के हिमायती और ब्रिटिश के विरोधी बने रहे। जब रूस और जर्मनी में लड़ाई छिड़ गई तबसे उन्होने अपना रुख बिलकुल बदल दिया। जैसे ही ब्रिटेन और रूस एक ओर होकर जर्मनी से लड़ने लगे, उन्होने यह कहना शुरू कर दिया कि यह लड़ाई जनयुद्ध है और ब्रिटेन की मदद करना सबका फर्ज है। इस तरह कांग्रेस के आन्दोलन के प्रति उनका विरोध अनिवार्य हो गया। उन्होने विरोध किया भी। इस कारण कांग्रेसी लोगों में—विशेषकर कांग्रेस के अन्दर सोशलिस्ट पार्टी में—इन दोनो उक्त पार्टियों के विरुद्ध बहुत जबरदस्त भावना पैदा हो गई थी। जेल के अन्दर तो इसका कुछ पता चलता ही था, पर बाहर निकलने पर जब सब बातो का पूरा पता चलने लगा तो वह भावना और भी जबरदस्त हो गई।

इन्हीं पार्टियों की ओर से कांग्रेस के विरुद्ध उम्मीदवार खड़े किये गए थे। उनके जीतने का तो कोई सिलसिला था ही नहीं, पर एक मुठभेड़ का मौका जरूर पैदा हो गया। कम्युनिस्टों के साथ मुठभेड़ हुई भी। मुझे इस बात का अफसोस रहा कि कांग्रेसी लोग उनके प्रहारों को अहिंसात्मक रीति से बरदाश्त नहीं कर सके, कम्युनिस्टो के एक नेता को बहुत पीट भी दिया। वातावरण बहुत दूषित हो गया। हमारे सिद्धान्त को भी बहुत धक्का पहुंचा। अन्त में दोनों दलों के लोग खूब हारे। बिहार में एक स्थान से भी उनका उम्मीदवार नहीं चुना गया। कई जगहों में तो उनकी जमानत भी जब्त हुई।

आदिवासियों का विरोध भी हिंसा से खाली न रहा। जब मैं दौरे पर निकला तो रांची-जिले में कई आदमी मेरे सामने पेश किये गए, जिनको

आदिवासी-सभा के लोगों ने खूब पीटा था। वे सभाओं में बड़ी तादाद में जमा होते और कांग्रेसी लोगों को मारते-पीटते। उनका विशेष ध्यान उन आदिवासियों पर होता, जो कांग्रेस की ओर से खड़े थे अथवा जो कांग्रेस की मदद कर रहे थे। ऐसे लोगों को उन्होंने बहुत पीटा। कुछ घायलों को तो बहुत समय तक अस्पताल मे रहना पड़ा था। खूटी-इलाके में उनकी धांधली बहुत ज्यादा थी। मैंने इन बातों की सूचना सरकार को दी, पर वहा के स्थानीय अफसरों का रुख कुछ ऐसा था कि सरकार ने इन बातों पर कुछ ध्यान नही दिया। एक स्थान पर पाच आदिवासी मार डाले गए। इस चुनाव के आन्दोलन मे मुस्लिम लीग और आदिवासी-सभा का गठबन्धन हो गया था। दोनो मिलकर काम कर रहे थे। आदिवासी-सभावाले भी 'पाकिस्तान-जिन्दाबाद' के नारे लगाया करते थे। मुस्लिम लीग के कुछ नेताओं ने पीछे इन पाच मृत्युओं की संख्या बढाकर सौ-डेढ सौ बना दी और सबके लिए कांग्रेस को दोषी ठहराया। कांग्रेसी लोगों ने इससे बराबर इन्कार किया।

चुनाव का नतीजा यह हुआ कि श्री जयपालसिंह स्वयं तो हार गये, पर उनके दल के तीन आदमी चुने गये—दो सिंहभूम जिले से और एक रांची-जिले से। सात सुरक्षित जगहों मे से उनके दल को दो जगहें मिली—एक रांची मे और एक सिंहभूम मे तथा आम जगहो मे से एक जगह सिंहभूम में। पांच सुरक्षित जगहे और दूसरी सभी जगहे, जहांपर उन्होने मुकाबला किया, कांग्रेस के हाथ आई। ईसाइयो के लिए जो सुरक्षित जगह है, उसमे भी एक क्रिस्तान आये, जो शायद उनके दल के थे अथवा उनके मददगार।

चुनाव-सम्बन्धी दौरे पर मैं निकला और अधिकाश जगहों में, जहा जाने का विचार था, गया। पर अन्तिम तीन-चार दिन दौरा न कर सका। फिर तबीयत कुछ ढीली पड गई। उसी समय जोरों से पानी भी बरसने लगा। इत्तफाक से इन्ही दिनो मुंगेर-जिले में जाना था। वहां नही जा सका। पीड़ित-कोष के लिए दौरा करते समय भी मुंगेर पहुंचने के पहले ही बीमार पड़ जाने के कारण वहां नही पहुंच सका था। बहुत दिनों के बाद मुंगेर-जिले के अन्य स्थानो में तो जा सका, पर खास मुंगेर में अभी तक नही जा सका हूं। मेरे दौरे की विशेष जरूरत नही थी; क्योंकि जनता में बडा उत्साह था और कांग्रेस की जीत निश्चित थी। तो भी एक बार फिर से बहुत स्थानों में जाना अच्छा ही रहा।

चुनाव समाप्त हो जाने पर मंत्रिमण्डल बनना था। यद्यपि कांग्रेस की ओर से कोई बाजाब्ता निश्चय नहीं हुआ था कि कांग्रेस मंत्रिमण्डल बनाने



प्रेसीडेन्सी कालेज कलकत्ता
के चतुर्थ वर्ष के विद्यार्थियों
का दल-चित्र का वर्ग
(१९०६)



विद्यार्थी अवस्था में
(१९०६)



सहपाठियों के साथ
(जस्टिस जे एन मजमदार के सौजन्य से)

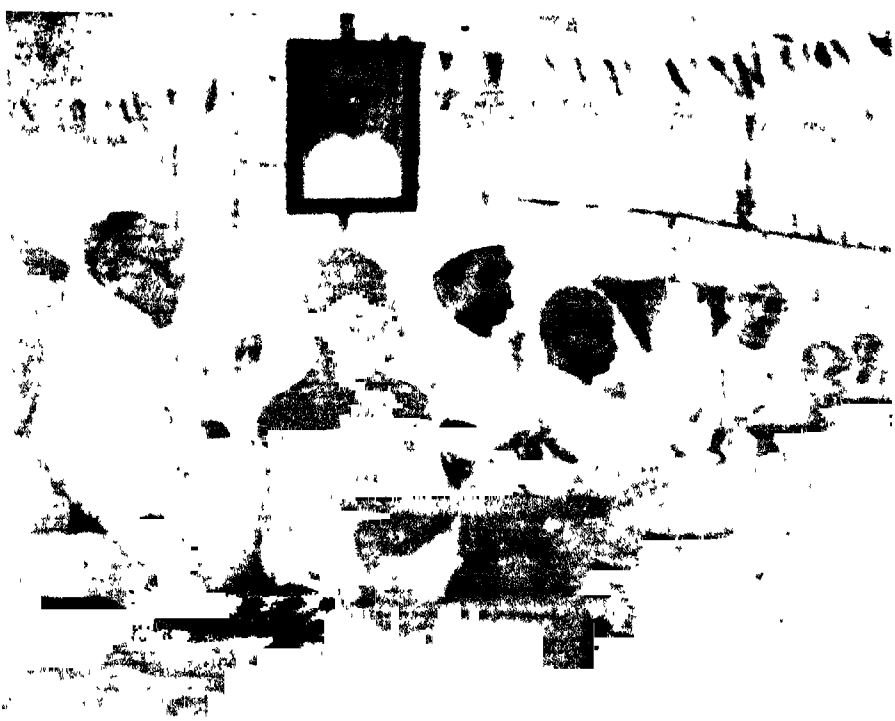


बीहपुर-सत्याग्रह के समय पुलिस
लाठियों से घायल (१९३०)



दूसरी गोलमेज कानफ्रेंस के बाद जेल से छूटने पर स्वराज्य भवन, इलाहाबाद में
(१९३१)

बर्दर-कांग्रेस के अवसर पर (१९३४)





बापू के साथ

सहधर्मिणी के साथ





परिवार के बीच





लाल किले पर (१५ अगस्त, १९४७)



सार्वज
सभा
अ
१९



प्रथम राष्ट्रपति
(२६ जनवरी १९५१)



सरलता की मूर्ति



'राजेन्द्रबाबू का जैसा विनम्रतापूर्ण व्यवहार और प्रभाव है वैसा कहीं भी किसी भी नेता का नहीं है।'

—मो. क. गांधी

शरीक होगी, पर अब तो लड़ाई समाप्त हो चुकी थी। कांग्रेस ने लड़ाई कारण ही मंत्रि-पद छोड़ा था। अब वह कारण नहीं रहा। देश की परि-थति भी ऐसी थी कि सभी लोग चाहते थे कि कांग्रेस फिर मंत्रि-पद ण करे। इस तरह कांग्रेसी लोग तथा कांग्रेस के बाहर के लोग, सभी मझे बैठे थे कि कांग्रेसी मंत्रि-मण्डल बनेगा ही। ऐसा ही हुआ भी। ोमा-प्रान्त, युक्तप्रान्त, बिहार, मध्यप्रान्त, आसाम, उड़ीसा, मद्रास और म्बई में तो कांग्रेस का बहुमत था। इनमें मंत्रिमण्डल बनने में कोई न्देह नहीं था। पजाब में किसी एक दल का बहुमत नहो था, पर लीग के अधिक मेम्बर चुने गये थे। वहा काग्रेस, सिख और युनियनिस्ट-पार्टी—तीनों मिलकर लीग से ज्यादा थे। इसलिए वहा इन तीनों की सम्मिलित पार्टी बन गई और मंत्रिमण्डल इनका ही बना, लीग का नहीं। सिन्ध में लीग और दूसरे दलो का प्रायः बराबरी का मुकाबला था। कहा जाता था कि लीग के साथ तीन अंगरेज मेम्बरो के मिल जाने पर भी दूसरों का एक या दो अधिक बहुमत था। पर सिन्ध के गवर्नर ने लीग को ही मंत्रिमण्डल बनाने का निमंत्रण दिया। वहां लीगी मत्रिमण्डल बना। केवल एक बगाल मे ही यूरोपियनो के साथ मिलकर लीग का बहुमत था। वहां भी लीगी मत्रिमण्डल बना। बाकी सभी सूबों मे काग्रेसी मत्रिमण्डल बने। बिहार में पुराने चारो मंत्री आरम्भ मे नियुक्त हुए। श्री जगनलाल चौधरी दस बरस की सजा पाकर जेल में थे, इसलिए चुनाव मे खड़े नही हुए थे। श्रीबाबू, अनुग्रहबाबू और डाक्टर महमूद अपनी नियुक्ति होते ही उनको जेल से निकाल लाये और चौथी जगह पर उनको नियुक्त करा दिया। कुछ दिनों के बाद पांच मिनिस्टर और भी नियुक्त किये गए।

: १५८ :

गो-सेवा-सम्बन्धी कार्य

महात्मा गांधी बहुत दिनों से गो-सेवा-सम्बन्धी अपने विचार प्रकाशित करते आ रहे हैं। साबरमती-आश्रम में और सेवाग्राम में भी गोशालाएं चलती आई है। सेठ जमनालाल बजाज की देख-रेख मे, वर्धा के पास ही नालवाड़ी में, श्री राधाकृष्ण बजाज कई बरसों से गोशाला चला रहे हैं। पारनेरकरजी ने गांधीजी के विचारों के अनुसार गो-सेवा का विशेष अध्ययन और सक्रिय अनुभव प्राप्त किया। अपने मरने के कुछ दिन पूर्व सेठ जमनालालजी ने गो-सेवा को अपना एक मुख्य कार्यक्षेत्र बना लिया था। उन्होंने वर्धा में इसके लिए नालवाड़ी की गोशाला को केन्द्र बनाकर एक संस्था कायम कर ली थी। इसकी स्थापना के समय वहां एक सम्मेलन हुआ था, जिनमें विशेषज्ञ लोग दूर-दूर से आमन्त्रित होकर आये थे। मैं भी हाजिर था। मैं सब प्रवृत्तियों का कुछ-कुछ अध्ययन करता आया था। पर गो-सेवा पर मैंने विशेष ध्यान नही दिया था। मैं इसके महत्व और उपयोगिता को भली भांति समझ गया था; पर कोई सक्रिय अनुभव मैंने नही पाया था। श्री बालुंजकर द्वारा संचालित नालवाड़ी के चर्मालय को भी जानता था। जब-तब वहां जाकर उसे देख आया करता था। गोशाला के साथ चर्मालय के सम्बन्ध को समझता भी था। इस विषय पर जब-तब कुछ लेख भी लिखे थे। गोशालाओं को, विशेषकर दरभंगे की गोशाला को, इस ओर प्रवृत्त करने का प्रयत्न भी किया था। इतना होते हुए भी मै गो-सेवा-संघ का सदस्य नही बना था और न ऐसी किसी संस्था के साथ कोई विशेष सम्बन्ध ही जोड़ा था।

१९४६ के आरम्भ में वर्धा से श्री जानकीदेवी बजाज और श्री राधाकृष्ण बजाज का पत्र आया कि इस बार के गो-सेवा-सम्मेलन का मैं सभापति बनूं। उसमें यह भी लिखा था कि पूज्य बापूजी की भी इच्छा है कि मैं यह पद स्वीकार करूं। यों तो श्री जानकीदेवीजी का कहना ही काफी था, तिसपर पूज्य बापू की आज्ञा! मैंने स्वीकार कर लिया। ठीक समय पर वर्धा पहुंच भी गया। वहां पद के भार को संभालने के लिए इस विषय पर कुछ विशेष ध्यान देना पड़ा। सम्मेलन में अच्छे-अच्छे विशेषज्ञ आये थे,

जिनमें सर दातारसिंह, लाला हरदेवसहाय (हिसार, पंजाब) और मध्यप्रान्त के सरकारी विशेषज्ञ श्री शाहीजी मुख्य थे। वहीपर सब बातों को देख-सुनकर और बिहार से गये हुए दरभंगा-गोशाला के प्रतिनिधि से बातें करके यह निश्चय कर लिया गया कि इस तरह का काम बिहार में भी किया जाय तथा इसके लिए एक प्रान्तीय गो-सम्मेलन किया जाय। इसी निश्चय के अनुसार पटने में एक गो-सम्मेलन हुआ, जिसमे बिहार की सभी गोशालाओं की ओर से प्रतिनिधि आये। इनके अतिरिक्त दूसरे लोग भी आये। सर दातारसिंह, लाला हरदेवसहाय, दिल्ली के सैयद रहीमतुल्लाह काजी (हिन्दू-मुस्लिम गो-रक्षा-सभा के सभापति), रावलपिंडी के नजीर अहमद शेरवानी और बिहार-सरकार के विशेषज्ञ लोग, जो गो-सेवा में दिलचस्पी रखते हैं, आये। मैं ही सभापति बनाया गया। भागलपुर के रायबहादुर वंशीधर ढानढनिया स्वागताध्यक्ष थे। पटना सिटी की गोशाला में सम्मेलन हुआ। श्री जानकीदेवीजी भी पधारीं।

मैंने विषय का विशेष अध्ययन करके एक लम्बा भाषण लिखा। विशेषज्ञों ने तथा दूसरों ने उसे बहुत पसन्द किया। सम्मेलन ने निश्चय किया कि सूबे-भर की गोशालाओं और पिंजरापोलों का एक संघ कायम किया जाय, उसके साथ सभी गोशालाओं को सम्बद्ध हो जाना चाहिए, संघ का एक स्थायी दफ्तर भी रहना चाहिए, जिसकी रजिस्ट्री करा ली जाय और संघ के दफ्तर की देखरेख मे नमूने के लिए एक आदर्श गोशाला खोली जाय। इन्हीं निश्चयों के अनुसार दफ्तर खुल गया। सदाकत-आश्रम में एक छोटी गोशाला भी हो गई। उसको बढ़ाकर आदर्श गोशाला का रूप देने का प्रयत्न किया जा रहा है। आशा है कि दरभंगा-गोशाला के प्रबन्धक श्री धर्मपालसिंह के परिश्रम और लगन से यह काम आगे बढ़ निकलेगा। यह एक नया काम है। इसका भार मैंने उन मित्रों के भरोसे पर लिया, जिन्होंने इसमें काफी दिलचस्पी दिखलाई है।

मैं गो-सेवा को धार्मिक दृष्टि से नहीं फैलाना चाहता। भारत की आर्थिक स्थिति को ध्यान मे रखकर ही इसकी आवश्यकता और उपयोगिता को समझता हूं। इसी तरह से हम इसमे उनकी भी मदद पा सकते हैं, जिनमें इसके लिए वैसी धार्मिक भावना नहीं है जैसी हिन्दुओं, जैनों और सिखों में पाई जाती है। मैं मानता हूं कि यही आर्थिक लाभ और उपयोगिता की भावना कुछ काम कर सकती है और सफल भी हो सकती है। निरी धार्मिक भावना मुसलमानों में द्वेष और हिन्दुओं में आडम्बर तथा दम्भ पैदा करती है, जिससे सच्ची गो-सेवा पीछे रह जाती है और दिखावे की मात्रा बढ़ जाती है। इसलिए, मैंने अपने भाषण में भी आर्थिक दृष्टि-

कोण से ही इसपर विचार किया। मैने बतलाया कि कृषि-प्रधान देश में गो-जाति और गोवंश का कितना महत्व है—किस तरह हम अपने अन्ध-विश्वास और अज्ञान के कारण उसकी सेवा के बदले उसका अहित कर रहे है—दूसरों की सहानुभूति प्राप्त करने के बदले उनका द्वेष एवं विरोध मोल ले रहे है। हमारा विश्वास है कि ठीक तरह से, वैज्ञानिक रीति से, यदि इस विषय का अध्ययन और प्रचार किया जाय तो हम निस्संदेह उसकी सहानुभूति और मदद पा सकते है।

उदाहरण के लिए एक मोटी बात ही ले लीजिये। साल-भर मे बकरीद एक या दो दिन हुआ करती है। उसी दिन जहा-तहा मुसलमान कुछ गौओं की कुर्बानी किया करते है। इसके लिए बहुत जगहो पर काफी खून-खराबा हो जाया करता है। पर हिन्दुओ की दृष्टि इस ओर नही जाती कि कसाई-खानो में रोज-रोज हजारो गाये कत्ल की जाती हैं—विशेषकर लश्करी छावनियों के लिए तो अच्छी-अच्छी गाये ही कत्ल की जाती है। महायुद्ध मे विदेशी फौजों के लिए तो न मालूम हिन्दुस्तान के कितने जानवर कत्ल कर दिये गए। धार्मिक प्रवृत्ति से प्रभावित होकर कुर्बानी करनेवालों के साथ तो इतनी सख्ती और पेट या जीभ के लिए अथवा कुछ पैसे कमाने के लिए कत्ल करानेवालों को कोई पूछता भी नही! बूढी, लगडी और बेकार गायों की रक्षा के लिए गोशालाओं में करोड़ो रुपये खर्च किये जा रहे है; पर इस ओर किसीका ध्यान ही नही जाता कि गायें किस तरह एक मुनाफा देनेवाला जानवर बना दी जाय कि किसी हिन्दू या गैर-हिन्दू को न तो बेचने की जरूरत रहे और न कत्ल करने की। आज तो गाय के दूध और बछड़े से जो कुछ मिल सकता है, उससे अधिक उसे वध के लिए बेच देने से मिल सकता है। जो वध करने के लिए उसे खरीदता है, वह उसके मांस, चमड़े, हड्डी, चर्बी और सीग से उससे अधिक पैदा कर सकता है, जो वह उसे पालकर उसके दूध-बछड़े इत्यादि से पैदा कर सकेगा। इन्ही कारणों से गो-सेवा में आस्था रखनेवाले हिन्दू भी वध के लिए गाय बेच डालते हैं और वध करनेवाले उसे खरीद लेते हैं। मेरा विश्वास है कि गाय यदि शास्त्रीय ढंग से पाली-पोसी जाय; उसके दूध की वृद्धि की जाय; उसके गोबर-मूत्र इत्यादि का ठीक इस्तेमाल किया जाय; उसके मर जाने पर उसके चमड़, मांस, चर्बी, पुट्ठे, हड्डी, सीग इत्यादि का ठीक-ठीक उपयोग किया जाय; तो गो-पालन नुकसान के बदले मुनाफा देनेवाला पेशा हो जाय।

इसी विचार और ध्येय को सामने रखकर काम करना है। केवल बहुत दूध देनेवाली गाय, जिसके बछड़े हल जोतने और गाड़ी खीचने के काम के योग्य न हों, ऐसे ही देशों में काम दे सकती है जहां बैलों से मांस-लाभ के

सिवा दूसरा काम नहीं लिया जाता—जहां बछड़े भी केवल मांस के लिए ही पाले जाते है, जैसे हिन्दुस्तान मे खस्सी। पर हिन्दुस्तान में—जहां लोग गो-मांस नही खाते, जहा बैलो से दूसरे बहुत-से आवश्यक काम लिये जाते है, जहा बैलों के बिना किसान का कोई काम चल ही नहीं सकता—हमे ऐसी गाये चाहिए, जो काफी दूध भी दे और अच्छे बछड़े भी। यह तो नस्ल पर ध्यान देने से ही हो सकता है। हमारे देश के लोग इस विषय पर काफी ध्यान देते थे। वे जरूरत के मुताबिक मवेशी पैदा कर लेते थे। आज भी हम देख सकते है कि एक नस्ल के जानवर बहुत बोझा ढो सकते हैं और बहुत परिश्रम के काम भी कर सकते है; पर वे बहुत तेज भाग नही सकते। दूसरे प्रकार के जानवर बहुत तेज भाग सकते है, पर उतना बोझ नही ढो सकते और न उतना अधिक परिश्रम ही कर सकते है, जितना पहले प्रकार के। कुछ गाये ऐसी है, जो बहुत दूध देती है, पर उनके बछड़े इतने अच्छे नही होते। कुछ ऐसे है, जिनके बछडे तो अच्छे होते है, पर वे अधिक दूध नही देती। भारत का किसान एक गाय दूध के लिए और दूसरी बछड़े के लिए नही रख सकता। उसको तो एक ही गाय से दोनो काम लेना है। इसलिए हमको ऐसी नस्लो को ही प्रोत्साहन देना होगा, जो इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक हो सकें। इस प्रकार की गोशालाएं हो जाय, जो अधिक दूध देनेवाली गाये रखे—जिनसे अच्छे काम लायक बछड़े भी पैदा हो। यदि गो-सेवा का ठीक प्रबन्ध किया जाय तो गाय मुनाफा देनेवाली हो जायगी—उसका वध खुदबखुद बन्द हो जायगा। साथ ही, जो गाये बूढी और कमजोर पड जायगी, उनकी रक्षा भी, अच्छी गायों के दिये हुए मुनाफे से तथा उनके अपने मास-चाम इत्यादि के दाम से, हो सकेगी। ऐसी अवस्था मे ही गो-रक्षा और गो-सेवा मे मुनाफा और गोवध मे नुकसान होगा। तभी सब लोग—चाहे वे हिन्दू हो या मुसलमान, धार्मिक भावना से उत्तेजित हो अथवा स्वार्थभावना से प्रेरित—गोरक्षा के काम को अपना हितकर काम मानने लगेगे। तभी सच्ची गो-सेवा और यथार्थ गो-रक्षा हो सकेगी।

: १५९ :

भारतीय इतिहास-परिषद्

१९४२ में, जेल जाने के पहले, वर्धा से लौटते समय, इतिहास-परिषद् की बैठक के लिए मैं काशी में उतर गया था। उस समय इतिहास लिखने का काम कई सज्जनों के सुपुर्द किया जा चुका था। कहा जाता था कि अकबर-सम्बन्धी एक जिल्द करीब-करीब तैयार है। १९४२ में अकबर के जन्म के चारसौ बरस पूरे होते थे। ऐसा विचार था कि अकबर के जन्म-दिन पर यह खण्ड प्रकाशित हो जाय। जेल जाने के समय तक ऐसा होने में काफी अड़चने आ गई थी। छपाई और कागज की दिक्कत तो थी ही बमबारी के कारण कलकत्ता-मद्रास आदि शहरों में पुस्तकालयों और संग्रहालयों के सामान भी जहां-तहां सुरक्षित स्थानों में हटा दिये गए थे। इस कारण, सहायक-ग्रन्थों के अभाव से, पुस्तक लिखने में भी कठिनाई उपस्थित हो गई थी। तो भी मैं आशा करता था कि पुस्तक प्रकाशित हो सकेगी, पर ऐसा हो नहीं सका। मेरी गिरफ्तारी के कुछ दिनों बाद श्री जयचन्द्र विद्यालंकार भी गिरफ्तार करके नजरबन्द कर दिये गए। इससे सब काम रुक गया। मेरे बाहर निकलने के कुछ पहले ही सर यदुनाथ सरकार और श्री मथुराप्रसाद ने चाहा कि इतिहास-प्रकाशन का काम फिर चलाया जाय। विद्वानों ने कुछ लिख तो डाला ही था, सिर्फ प्रकाशन की बात थी। दो जिल्दें तैयार थीं। बम्बई के भारतीय विद्या-मन्दिर के संचालक श्री कन्हैयालालजी मुन्शी से कुछ बात चली कि प्रकाशन का भार विद्या-मन्दिर ले ले; पर अन्त में कुछ तय न हो सका। इसलिए यह प्रबन्ध किया गया कि दो जिल्दें जो तैयार हो गई थीं, वे प्रकाशित कर दी जायं—डाक्टर रमेशचन्द्र मजुमदार और डाक्टर अलटेकर-लिखित 'वाकाटक'-युग-सम्बन्धी छठी जिल्द तथा श्री नीलकंठ शास्त्री-लिखित गुप्त-कालीन चौथी जिल्द। छठी जिल्द छापाखाने में भेज दी गई थी। जेल से निकलते ही मैंने सोचा कि इस काम में विलम्ब नहीं होने देना चाहिए। शिमले से लौटते ही मैं कलकत्ते गया। वहां यदुनाथ सरकार तथा डाक्टर मजुमदार से भेंट की। सब बातें तय हुईं। एक बार और इसी सम्बन्ध में चन्द घंटों के लिए कलकत्ते में ठहरा। छठी जिल्द तो प्रकाशित हो गई, चौथी अभी छापेखाने में है।

कुछ दिनों बाद श्री जयचन्द्र विद्यालंकार जेल से रिहा हुए। मैंने समझा कि अब काम तेजी से आगे बढ़ेगा। पर कुछ कारणों से सर यदुनाथ सरकार रुष्ट हो गये। उन्होंने इस्तीफा दे दिया। बहुत कहने पर भी उन्होंने उसे वापस नहीं लिया। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार भी अभीतक इस काम को पूरी तरह अपने हाथों मे नहीं ले पाये है। इसलिए काम रुका पड़ा है। मैं इस काम में श्री जयचन्द्रजी की प्रेरणा से, अपने स्वर्गीय मित्र श्री काशीप्रसाद जायसवाल की स्मृति के प्रति श्रद्धा के कारण, पड़ा था। इतिहास में दिलचस्पी रखते हुए भी अन्य कामों का इतना बोझ था कि यदि ये बातें न होतीं तो मैं शायद अपनी प्रेरणा से यह बोझ न उठाता। तिसपर सर यदुनाथ सरकार का प्रोत्साहन मिला। आज कुछ ऐसी स्थिति हो गई है कि यह मालूम ही नहीं होता कि यह काम कब पूरा हो सकेगा। पर इसे तो पूरा करना ही है। सभी विघ्न-बाधाओं के रहते हुए भी इसे पूरा कराना होगा। आगे ईश्वर जाने।

: १६० :

१९४६ की घोषणा और सरकारी योजना

१९४६ के मार्च मे ब्रिटिश सरकार की ओर से घोषणा हुई कि भारत के मसले को सुलझाने के लिए भारत-मंत्री लार्ड पेथिक लारेन्स, सर स्टैफर्ड क्रिप्स और मिस्टर ए० बी० अलेक्जेण्डर भारत आयगे और यहां के नेताओं तथा वाइसराय से बाते करेगे। इस बात की घोषणा करते हुए प्रधान मंत्री मिस्टर क्लिमेण्ट एटली ने यह भी कहा कि यद्यपि अल्पसख्यक लोगों के स्वत्वों की रक्षा का प्रबन्ध किया जायगा, तथापि किसी अल्पसख्यक दल को भारतीय राजनैतिक प्रगति मे बाधा नहीं डालने दिया जायगा और इंगलैड इस बात के लिए तैयार है कि हिन्दुस्तान आजाद हो जाय—इंगलैड यह चाहता है कि हिन्दुस्तान उसके साथ रहे, पर यह निश्चय करने का अधिकार कि वह साथ रहेगा या एकदम अलग हो जायगा हिन्दुस्तान को ही होगा। इस प्रकार घोषणा बहुत अशों मे सतोषजनक मालूम हुई। थोडे ही दिनों के बाद मत्रिमण्डल के तीनों सदस्य पहुच गये। वाइसराय से तथा सरकार के दूसरे उच्च कर्मचारियों से बाते करने के बाद उन्होंने विभिन्न दलों के प्रमुख लोगों से बाते शुरू की। कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना आजाद तथा महात्मा गांधी से भी उनकी बाते हुई। इस तरह सब दलों के लोगों से बाते करते बहुत दिन लग गये। तब उन्होंने कांग्रेस के प्रेसिडेण्ट और लीग के प्रसिडेण्ट को लिखा कि वे अपने-अपने चार-चार प्रतिनिधि दे, जिनके साथ बैठकर वे शिमले मे बातें करना चाहते है। दोनों पक्षों के आठ आदमी और वाइसराय को मिलाकर वे चार आदमी शिमले मे एकत्र हुए। कई दिनो तक बाते होती रही, पर कुछ फल न निकला। इसपर उन्होंने कान्फ्रेन्स खत्म करके घोषणा की कि दिल्ली मे वे देश के सामने अपनी योजना रखें। सब लोग दिल्ली वापस आ गये। दिल्ली लौटकर उन लोगों ने सरकार की ओर से १६ मई वाला वक्तव्य निकाला, जिसमे अपनी योजना देश के सामने रखी।

योजना के मुख्य तीन भाग थे। पहले में युक्तियुक्त कारणों के साथ उन्होंने मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की मांग को अव्यवहार्य्य बतलाया और कहा कि यह नही हो सकता है—इसलिए भारत का विधान ऐसा

होगा कि उसमें भारत के सूबों का एक संघ बनेगा, जिसमे देशी रियासतें भी शरीक हो सकेंगी; इस केन्द्रीय संघ के अधिकार मे तीन विभाग होंगे—फौज और बचाव, विदेशों के साथ सम्बन्ध रखनेवाले मामले, रेल-तार इत्यादि; इन तीनों विभागो के लिए जो रुपयों की जरूरत हो, उसको वसूल कर लेने का अधिकार भी होगा—अन्य विषयो मे सूबों को स्वतन्त्रता रहेगी। जो ऐसे विषय है, जिनका कहीं जिक्र न हो और जो बच गये हों, वे सब सूबों के अधिकार मे होंगे। दूसरे भाग मे उस विधान-निर्माण-समिति की योजना बतलाई गई, जिसके जिम्मे विधान बनाने का काम सुपुर्द किया जायगा। तीसरे मे तत्काल सरकार कायम करने की बात कही।

वक्तव्य मे यह स्पष्ट कह दिया गया था कि भारतवर्ष को अधिकार होगा कि वह यदि चाहे तो ब्रिटिश साम्राज्य से अपनेको अलग कर सकता है। विधान-निर्माण-समिति के सगठन का रूप निम्नलिखित प्रकार का होगा। सभी प्रान्तो की असेम्बलिया अपने-अपने प्रान्त की आबादी के प्रत्येक दस लाख पर एक आदमी को चुन लेगी और ये लोग ही विधान-निर्माण-समिति के सदस्य होंगे। उस चुनाव मे मुसलमान सदस्य तथा पजाब मे सिख सदस्य अपनी जाति के प्रतिनिधि अलग-अलग वोट देकर चुनेंगे। बाकी सब लोग इकट्ठे ही वोट देकर प्रतिनिधि चुनेंगे। दिल्ली-अजमेर-मेरवार के प्रतिनिधि वे ही लोग समझे जायगे, जो वहा से चुनकर इस समय केन्द्रीय असेम्बली मे भेजे गये है और कुर्ग तथा बलूचिस्तान के प्रतिनिधि अलग से चुन लिये जायगे। ये लोग मिलकर देशी रजवाड़ो के प्रतिनिधियो से बात करके तय कर लेगे कि उनके कैसे और कौन प्रतिनिधि होंगे। उनकी सख्या भी दस लाख आबादी पर एक प्रतिनिधि के अनुपात से ही होगी। इस प्रकार ब्रिटिश भारत के कुल २९२ प्रतिनिधि होंगे, जिनमे २१० गैर-मुस्लिम, ७८ मुस्लिम और ४ सिख होंगे। सूबे तीन भागो मे विभक्त होंगे। पहले विभाग मे मद्रास, बम्बई, सयुक्तप्रान्त, बिहार, मध्य-प्रान्त और उड़ीसा होंगे। दूसरे विभाग मे पजाब, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त, सिन्ध और बलूचिस्तान तथा तीसरे विभाग मे बगाल और आसाम होंगे। ब्रिटिश भारत की विधान-निर्माण-समिति की प्रारम्भिक बैठक मे सभी सदस्य शरीक होंगे। उस बैठक मे सभापति इत्यादि पदाधिकारी चुन लिये जायगे और कार्य-पद्धति निश्चित कर ली जायगी। इसके बाद तीनों विभागों के सदस्य अलग-अलग बैठेंगे। उनमे से प्रत्येक अपने विभाग मे सम्मिलित सूबों के लिए विधान तैयार करेगा। तब वह इस बात का निश्चय करेगा कि उस विभाग के लिए किसी सम्मिलित विधान की भी आवश्यकता है या नहीं, और यदि है तो उसके क्या विषय होंगे और उसका क्या रूप होगा।

अन्त में विधान-निर्माण-समिति की फिर बैठक होगी, जिसमें देशी रजवाड़ों के प्रतिनिधि भी शरीक होंगे और अखिल भारतीय संघ का विधान तैयार किया जायगा। विधान तैयार हो जाने के बाद जब उसके अनुसार प्रान्तो की असेम्बलियों का चुनाव हो जायगा तब प्रत्येक सूबे को अधिकार होगा कि वह यदि चाहे तो अपनी असेम्बली के वोट से जिस विभाग में वह सम्मिलित किया गया है, उसमें शरीक न रहकर अलग हो जाय। अल्पसंख्यक जातियों के स्वत्व-संरक्षण के लिए एक अलग समिति बनाई जायगी, जिसमें उनके प्रतिनिधि रहेंगे और जो संरक्षण के उपाय और तरीके बतायेगी; उसके निश्चयों पर विधान-निर्माण-समिति विचार करके विधान मे उचित प्रबन्ध रखेगी। तत्काल के लिए वाइसराय फिर नये सिरे से अपनी कौन्सिल की नियुक्ति करेंगे और उसमें यथासाध्य भारत के विभिन्न दलो के प्रतिनिधियों को रखेंगे। यद्यपि १९३५ का विधान आज बदला नही जायगा और उनके अनुसार वाइसराय के हाथों मे ही अन्तिम अधिकार रहेंगे तथापि जहांतक हो सकेगा, कौन्सिल की राय से ही काम चलाया जायगा और उसमें यथासाध्य हस्तक्षेप नही होगा।

इस योजना में किसी भी दल की सभी मागे न मजूर की गई थी और न सब एकबारगी नामंजूर ही की गई थी। सब दलो को कुछ-न-कुछ देकर खुश करने का प्रयत्न किया गया था! लीग की पाकिस्तान की माग नामंजूर तो की गई थी, पर उसके साथ ही सूबो को इस तरह तीन विभागों मे बांट दिया था कि जिन सूबो को मुस्लिम लीग पाकिस्तान मे मिलाना चाहती थी, उनको दो विभागों मे रख दिया था और बाकी सूबो को अलग एक विभाग में। पाकिस्तान की नामंजूरी से लीग नाखुश और दूसरे लोग सन्तुष्ट थे; पर इस प्रकार सूबों का विभाजित होना लीग को पसन्द था और वह इस विभाजन में पाकिस्तान के बीज देखने लगी। दूसरे लोग इस विभाजन को नापसन्द करते थे और इसमें पचरी की उस बारीक नोक को देखते थे, जो आग चलकर आहिस्ता-आहिस्ता घर करती हुई शायद फिर पाकिस्तान का रूप धारण कर लेगी। इस बात से यह विरोध और भी तेज हो जाता था कि इन दोनों मुस्लिम विभागों में पंजाब और बंगाल के वे अंश भी शरीक रखे गये थे, जिनमे हिन्दुओं की बहुत अधिक आबादी थी तथा आसाम का सूबा भी उसमें शरीक किया गया था, यद्यपि आसाम मे मुसलमानों की आबादी एक-तिहाई से अधिक नही है।

इस योजना पर विचार करने के लिए वर्किंग कमिटी की बैठक कई दिनों तक होती रही। बीच-बीच में कैबिनेट-मिशन और वाइसराय से कांग्रेस-प्रेसिडेण्ट तथा कभी-कभी कुछ दूसरे मेम्बरों की मुलाकात भी होती

रही। वर्किंग कमिटी ने योजना की उन त्रुटियों की ओर ध्यान आकर्षित किया, जिनको वह महत्वपूर्ण समझती थी। उसने यह राय जाहिर की कि उसके मत के अनुसार सूबे बाध्य नही हैं कि उन विभागों में वे सम्मिलित हो, जिनमें वे जोड़ दिये गए थे। यह तो जाहिर था कि विधान बन जाने के बाद प्रत्येक सूबे को अधिकार होगा कि अपनी असेम्बली की राय मे वह उस विभाग से अलग हो जाय; पर वर्किंग कमिटी का कहना था कि उसके अलावा विधान बनाने के लिए विभागों की अलग बैठक में शरीक न होने का भी प्रत्येक सूबे को अधिकार है। सूबा सरहदी और आसाम, दोनों ही, जबरदस्ती विभाग में मिलाये जाने के विरुद्ध थे—इसलिए उनको यह अधिकार मिलना चाहिए कि वे आरम्भ से ही विभागों से अलग रह सकें। वर्किंग कमिटी का कहना था कि सारी योजना के पढ़ने से यही अर्थ निकलता था।

मिशन ने अपनी सम्मति दी कि उसका इरादा ऐसा नही था कि आरम्भ से ही सूबे शरीक न हो, पर विधान बनने के बाद सूबों को अलग हो जाने का अवश्य अधिकार था।

वर्किंग कमिटी अपनी राय पर डटी रही। उसने निश्चय किया कि राय के अनुसार वह योजना काम मे लायेगी। उधर मुस्लिम लीग ने योजना की कड़ी आलोचना की। कहा कि पाकिस्तान नामंजूर करना न्याययुक्त नही, पर तो भी सूबों के विभाजन में वह पाकिस्तान का अंकुर देखती है और अपने ध्येय-साधन के लिए वह योजना को मजूर करती है।

इसके बाद कुछ दिनों तक तात्कालिक सरकार के सम्बन्ध मे बातचीत चलती रही। शुरू में वाइसराय की राय थी कि बारह आदमियों की सरकार बने, जिनमें पांच मुसलमान, पाच हिन्दू और दो दूसरे हों। कांग्रेस को यह बात किसी तरह मजूर नही थी। एक तो, हिन्दुओं और मुसलमानों की संख्या बराबर होती थी, यद्यपि हिन्दुओं की संख्या आबादी में मुसलमानों की संख्या से तिगुनी है। दूसरे शिमला-कान्फ्रेन्स के समय, १९४५ लाई में, लार्ड वेवल की योजना मे, पाच मुसलमान और हरिजन-प्रतिनिधि के अलावा, पाच हिन्दुओं को स्थान दिया गया था और दूसरे अल्पसंख्यकों की संख्या भी दो से अधिक थी। इस तरह, केवल हिन्दू-मुस्लिम समानता का ही सवाल न था, बल्कि लार्ड वेवल के प्रस्ताव से भी यह कहीं अधिक बुरा था। वेवल-प्रस्ताव को भी कांग्रेस ने, लड़ाई का जमाना होने के कारण, किसी तरह मंजूर कर लिया था। अब वह लड़ाई का जमाना नही था। उस दबाव से कांग्रेस इस समय मुक्त थी, तो वह कैसे मंजूर कर सकती थी? कांग्रेस का विचार था कि पन्द्रह सदस्यों की सरकार जब

बनेगी तभी अल्पसंख्यको के यथेष्ट प्रतिनिधि लिये जा सकेंगे और सबको सन्तुष्ट किया जा सकेगा।

वाइसराय ने बारह के बदले तेरह की सरकार बनाने की बात कही जिनमें पाच मुसलमान, एक हरिजन, पांच दूसरे हिन्दू और दो अन्य अल्पसख्यकों के प्रतिनिधि होते। काग्रेस ने इसे भी नामंजूर कर दिया। तब मिशन और वाइसराय ने विज्ञप्ति निकाली कि काग्रेस और लीग दोनो की राय से सरकार बनाने का प्रयत्न विफल हो गया—अब वे अपनी ओर से प्रस्ताव रखेंगे। तारीख १५-६-४६ को उनका प्रस्ताव प्रकट किया गया, जिसमें उन्होने चौदह आदमियो के नाम दिये, जिनको वाइसराय ने सरकार मे शरीक होने का निमन्त्रण दिया। इनमे पाच लीगी मुसलमान, पाच काग्रेसी गैर-हरिजन हिन्दू, एक काग्रेसी हरिजन, सिख, एक ईसाई और एक पारसी के नाम थे। बातचीत के दरम्यान वाइसराय ने पडित जवाहरलालजी से, जो कभी-कभी वहा आया-जाया करते थे, नाम पूछे थे। उन्होंने कुछ नाम बताये भी थे। हरिजन और दूसरे काग्रेसी लोगो के, एक के सिवा, वही नाम थे, जो पंडितजी ने बताये थे—ईसाई और सिख के भी नाम उनके बताये हुए थे—मुसलमानो मे भी चार नाम वही थे, जो पंडितजी ने बताये थे। पर एक गैर-लीगी मुसलमान के बदले मे लीगी मुसलमान का नाम और एक काग्रेसी हिन्दू के बदले मे दूसरे कांग्रेसी हिन्दू का नाम तथा एक पारसी का नया नाम वाइसराय ने दिया था।

हम इस बात पर विचार कर ही रहे थे कि यह प्रस्ताव स्वीकार किया जाय या नही कि इसी बीच में मिस्टर जिन्ना से वाइसराय की बातें हुई और उनके कहने पर वाइसराय ने उनकी कई बातें मान ली, जो पत्रों में किसी-न-किसी तरह प्रकाशित हो गई। इसपर हम लोग चिहुक गये! मागने पर वाइसराय ने अपने पत्र के उस अश की नकल भेज दी, जिसमें मिस्टर जिन्ना की मांगों को उन्होंने मजूर किया था। इसमे महत्व की बातें यह थी कि चौदह से अधिक सरकार की संख्या नही होगी—अल्पसंख्यको की जो जगहे खाली होगी, उनकी नियुक्ति मे लीग की राय ली जायगी—सरकार कोई ऐसा काम नही करेगी, जिसमें लीग का बहुमत भी शरीक न हो। इस तरह, सरकार के संगठन मे ही नही, उसकी प्रतिदिन की कार्रवाइयों में भी लीग की अनुमति के बिना कुछ न हो सकेगा। जब हमारे दिये हुए गैर-लीगी मुसलमान के नाम को वाइसराय ने छाट दिया और यह साफ हो गया कि पाच लीगी मुसलमानों की संख्या में कमी न हो सकेगी, तो वर्किंग कमिटी यह विचार करने लगी कि काग्रेस अपनी पाच जगहों में से एक में किसी राष्ट्रीय विचारवाले मुसलमान का नाम दे। हम

ऐसा सोच ही रहे थे कि वाइसराय का पत्र मिल गया कि मुसलमान का नाम कांग्रेस न दे, क्योंकि उसकी मजूरी नही हो सकेगी। वर्किंग कमिटी इस स्थिति को कभी मंजूर नही कर सकती थी; क्योंकि इसके मंजूर करने का अर्थ हो जाता था कि काग्रेस केवल हिन्दुओं की जमात है और केवल मुस्लिम लीग को ही मुसलमानो का प्रतिनिधित्व प्राप्त है।

सब बातों पर विचार करके वर्किंग कमिटी ने तात्कालिक सरकार बनाने की १६-६-४२ वाली योजना को नामजूर कर दिया। अब उसके सामने प्रश्न यह था कि विधान-निर्माण-समिति-सम्बन्धी योजना के बारे मे क्या किया जाय। उसके दोषों और त्रुटियों को हम बता चुके थे। उस योजना का जो अर्थ हम निकालते थे, वह भी बता चुके थे। यह भी हम कह चुके थे कि अपने अर्थ के अनुसार ही हम उसमे काम लेंगे। इस प्रकार, यद्यपि अपनी सम्मति के अनुसार उससे काम निकालने की बात कहकर हम एक प्रकार से उसे मंजूर तो कर चुके थे; पर स्पष्ट शब्दों में दो-टूक फैसला करके साफ-साफ कुछ नही कहा था। इसलिए उसपर एक बार फिर विचार करने की जरूरत पड़ी। कमिटी मे दो-एक आदमी छोड़कर, जो उसको मजूर नही करना चाहते थे, बाकी सभी सदस्य उसे मंजूर करने के पक्ष मे थे—विशेषकर महात्मा गाधी तो मजूरी का जोरो से समर्थन कर रहे थे। इसी समय एक तार आसाम से आया, जिसमे यह कहा गया था कि बंगाल मे विधान-निर्माण-समिति के चुनाव के लिए जो नियम बनाया गया है, उसके अनुसार प्रत्येक उम्मीदवार को प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी कि वह समिति का सदस्य होना, योजना की उस धारा के अनुसार, मजूर करता है, जिसमें बहुतेरी दूसरी बातों के साथ-साथ सूबों के तीन विभागों का भी जिक्र है। इस तार के प्रेषक ने यह अर्थ निकाला था कि उम्मीदवारों को पहले से ही विभागों को मान लेने की प्रतिज्ञा कर लेनी पडेगी। आसाम, और हम सभी, विभागों में जाने के विरोधी थे ही। इसलिए कुछ शंका पैदा होने लगी, पर अभी कोई राय स्थिर नही हुई थी; क्योंकि नियम अभीतक पूरे देखे नहीं गये थे—यद्यपि, नमूने के तौर पर, भारत-सरकार की ओर से प्रान्तों में जो नियम भेजे गये थे, उनकी नकल, हमारे पास भी, सरकार ने भेज दी थी।

उस दिन का काम खत्म करने का समय हो गया था, इसलिए दूसरे दिन के विचार के लिए बात स्थगित कर दी गई। सोचा गया कि इस बीच में हम लोग नियमों को भी भलीभांति देख लेंगे। महात्माजी के दिल में उक्त तार के कारण शंका हो गई। प्रार्थना के समय भाषण में उन्होंने यह बात कह दी। इसका नतीजा यह निकलता था कि काग्रेस उस योजना को भी मंजूर नहीं करेगी। दूसरे दिन हम लोग मिले। हम लोगों की राय में

नियम का वह अर्थ नहीं निकलता था, जो तार भेजनेवाले ने निकाला था। इस बीच में महात्माजी की, कैबिनेट-मिशन के लोगों से भेंट हुई। उन्होंने भी यही कहा कि उस प्रतिज्ञा का अर्थ वह नहीं है; पर यदि किसी प्रकार से वह अर्थ निकलता हो और महात्माजी को नियम के शब्दों के कारण कोई नैतिक अड़चन मालूम होती हो, तो उसके शब्दों को भी वे बदलवा देंगे और साफ कर देंगे; क्योंकि उनका यह कभी आशय था ही नही।

नियम बदल भी दिया गया। इसलिए हमने उस योजना को मंजूर कर लिया। इस तरह अब स्थिति यह हो गई कि काग्रेस वर्किंग कमिटी ने तारीख १६ मई (१९४६) वाली दीर्घकालीन योजना को मंजूर कर लिया। यद्यपि मजूर करने मे उसकी त्रुटियों को नजरअन्दाज नही किया और न जो अर्थ वह योजना का लगाती थी, उसे ही छोड़ा तथापि उसने तारीख १६ जून (१९४६) वाली अन्तरकालीन सरकार-सम्बन्धी योजना को नामंजूर कर दिया। यह निश्चय एक पत्र द्वारा, प्रस्ताव की नकल साथ भेजकर, मिशन और वाइसराय को बता दिया गया। उस तरफ लीग ने दीर्घकालीन योजना को पहले ही मंजूर कर लिया था और अन्तरकालीन योजना के सम्बन्ध मे काग्रेस के फैसले का इन्तजार कर रही थी। उसी दिन वाइसराय से मि० जिन्ना की मुलाकात हुई, जिस दिन काग्रेस का फैसला वहां भेजा गया था। वाइसराय ने उनको हमारा पत्र दिखला दिया। तारीख १६ जून की योजना में एक बात यह लिखी थी कि अगर कोई दल उस योजना को नामंजूर कर दे तो भी वाइसराय अन्तरकालीन सरकार बनाने के प्रयत्न को जारी रखेग और ऐसे दलों के प्रतिनिधियों की अन्तरकालीन सरकार बनायंगे, जिन्होने १६ मई की योजना को मंजूर कर लिया हो। अब स्थिति यह थी कि कांग्रेस और लीग दोनों ही ने १६ मई की योजना मंजूर कर ली थी, इसलिए तारीख १६ जून की योजना की आठवीं दफा के अनुसार इन दोनों दलो के प्रतिनिधि लेकर ही वाइसराय अन्तरकालीन सरकार बना सकते थे, और वह वैसा ही करना चाहते हैं—यह बात उन्होने उसी मुलाकात में मि० जिन्ना से कह भी दी।

लोगवाले तो इसी उम्मीद मे बैठे थे कि काग्रेस ने अगर १६ जून की योजना नामंजूर कर दी तो अब अन्तरकालीन सरकार में लीग की ही प्रधानता रहेगी और कांग्रेसी लोगों के उससे बाहर रह जाने से लीग के हाथो में ही अधिकार आ जायगा। मुलाकात के समय तक १६ जूनवाली योजना को लीग ने भी मंजूर नही किया था; क्योकि वह कांग्रेस के फैसले का इन्तजार कर रही थी। वाइसराय की यह बात उनको खटकी, तो भी उन्होंने उसी रात को निश्चय किया कि लीग १६ जून की योजना भी मंजूर करती

है। दूसरे दिन मिशन और वाइसराय ने घोषणा कर दी कि १६ जून की योजना कांग्रेस ने नामंजूर कर दी, इसलिए उसकी आठवीं दफा के अनुसार अब, कांग्रेस और लीग दोनों के प्रतिनिधियों को लेकर, वाइसराय अन्तरकालीन सरकार बनायंगे—पर चूकि मिशन को तुरन्त इंगलैंड वापस जाना है और इसके बनने में कुछ विलम्ब हो सकता है, इसलिए तबतक केवल सरकारी अफसरों को लेकर ही कामचलाऊ सरकार बना ली जायगी। इस निश्चय के अनुसार मिशनवाले वापस चले गये। कामचलाऊ सरकार बना ली गई।

वाइसराय और मिशन के इस फैसले से लीग बहुत रुष्ट हुई। उसके प्रमुख लोगों ने कडे-कड़े वक्तव्य दिये। लीग-कौन्सिल की एक बैठक बुलाई गई। उन लोगों का कहना था कि काग्रेस ने १६ मई की योजना को मंजूर नही किया है—उसकी इतनी कड़ी आलोचना की है और उसके अर्थ का ऐसा अनर्थ किया है कि वह नामंजूर के बराबर है—उसने यह भी अपना इरादा बतला दिया है कि वह सूबो के विभाजन को नही मानती, जो उस योजना की मौलिक बात है और उसे तोड़ने के इरादे से ही वह विधान-निर्माण-समिति मे जाना चाहती है। इस बीच में अखिल भारतीय कमिटी की बैठक बम्बई मे हुई, जिसमे नये चुनाव में निर्वाचित सभापति पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अध्यक्ष-पद ग्रहण किया। वहापर कांग्रेस-सोशलिस्ट-दल के विरोध के बाद भी कमिटी ने वर्किंग कमिटी के निश्चय का समर्थन कर दिया। इसके बाद सभी सूबो मे असेम्बलियो ने विधान-निर्माण-समिति के सदस्यों को चुन लिया। इस चुनाव मे कांग्रेस ने यह नीति बरती कि काग्रेस के बाहर के भी प्रमुख लोगो को उसने चुनवाया। उनके अलावा कुछ और लोग भी चुने गये। मुसलमानों मे प्राय. सभी प्रान्तों मे लीगी सदस्य ही असेम्बली मे थे, इसलिए प्रायः लीगी सदस्य ही चुने गये, क्योकि मुसलमान ही मुसलमान को चुन सकते थे। सीमाप्रान्त से तीन ही मुसलमान चुने जा सकते थे—मौलाना अबुलकलाम आजाद और खा अब्दुलगफ्फार खां चुने गये। संयुक्तप्रदेश मे श्री रफीअहमद किदवई, दिल्ली से श्री आसफअली और बंगाल मे श्री फजलुल हक, लीग के बाहर के लोगों में, चुने जा सके। बिहार मे कोई मुसलमान नही चुना जा सका। डाक्टर अम्बेदकर बंगाल से चुने गये। मुख्य कांग्रेसी लोग और दूसरे नामी विधानवेत्ता तथा पुराने देशभक्त लोग चुने गये। इस प्रकार से विधान-निर्माण-समिति के सदस्य चुन लिये गए। इस चुनाव में लीग शरीक रही। उसके मेम्बरों ने अपने प्रतिनिधियों को चुना। मि० जिन्ना पंजाब से चुने गये।

चुनाव हो जाने के बाद लीग-कौन्सिल की बैठक हुई। उसने निश्चय

किया कि लीग १६ मई और १६ जून की दोनों योजनाओं को नामंजूर करती है—अपने उन निश्चयों को, जिनमें ये मजूर की गई थीं, वापस लेती है। उसने यह भी निश्चय किया कि पाकिस्तान स्थापित करने के लिए 'सीधी कार्रवाई' काम मे लायेगी। उसने तबतक के लिए अपने मेम्बरों को आदेश दिया कि ब्रिटिश सरकार की दी हुई उपाधियों को वे वापस कर दे। बैठक में गरमागरम भाषण हुए, जो कांग्रेस और सरकार दोनों के विरुद्ध थे। ऐसा मालूम हुआ कि वे दोनो से भिड़ेंगे। इसके बाद ही कांग्रेस वर्किंग कमिटी की बैठक वर्धा मे हुई। उसने फिर साफ शब्दों मे १६ मई की योजना मजूर कर ली।

अब वाइसराय के सामने यह स्थिति आई कि एक ओर कांग्रेस ने १६ मईवाली योजना मंजूर की थी और १६ जूनवाली योजना नामंजूर। लीग ने अपनी कौन्सिल की बैठक मे दोनों योजनाओ को नये सिरे से नामजूर कर दिया था। इसलिए १६ जून की आठवी दफा के अनुसार लीग को छोडकर अब अन्तरकालिक सरकार बनाना लाजिमी हो गया। वाइसराय ने पडित जवाहरलाल नेहरू को अन्तरकालिक सरकार के निमित्त अपने प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए लिखा। पडितजी ने मि० जिन्ना को दरमियानी सरकार मे शरीक होने के लिए निमन्त्रण दिया, पर उन्होने इससे इन्कार कर दिया। तब पंडितजी के सामने इसके सिवा दूसरा कोई चारा न रह गया कि लीग को छोड़कर ही दरमियानी सरकार के लिए नाम सोचे। वाइसराय से मुलाकात के बाद उन्होने नामों का सोचना शुरू किया। इस काम में सहायता पाने के लिए उन्होंने वर्किंग कमिटी की पार्लमेटरी सब-कमिटी की बैठक दिल्ली में की। इसके तीन मेम्बर थे—सरदार वल्लभभाई पटेल, मौलाना अबुलकलाम आजाद और मैं।

: १६१ :

कलकत्ते का हत्याकांड

हम लोग इस काम में लगे हुए थे कि कलकत्ते से खबर आई कि वहां भयंकर साम्प्रदायिक दगा शुरू हो गया है। लीग की ओर से, अपनी नई नीति के प्रचार के लिए, १६ अगस्त मुकर्रर किया गया था। उस दिन सभी जगहो में हड़ताल और सभाएं करने की आज्ञा थी। इसी निश्चय के अनुसार कलकत्ते में भी हड़ताल वगैरह होने की बात थी। बगाल और सिन्ध में लीगी मंत्रिमण्डल काम कर रहे हैं। इन दोनों सूबों मे मंत्रिमण्डल ने उस दिन आम सरकारी छुट्टी दे दी। इस तरह सभी दफ्तरों, बैंकों इत्यादि को जबरन बन्द कर दिया। काग्रेस प्रायः सत्ताईस-अट्ठाईस बरसों से हड़ताल मनाने के लिए दिन मुकर्रर करती आई है। बहुत हड़ताले पूरी तरह कामयाब भी रही हैं। पर वह चाहे सरकार के विरुद्ध रही हो, चाहे सरकार की बागडोर उसके हाथ में रही हो, उसने सरकार के अधिकार से इस काम मे कभी लाभ नही उठाया। लीग ने इस पहले अवसर पर उस अधिकार का दुरुपयोग किया। इसका विरोध सभी लोगों ने किया। यह खास करके कहा गया कि छुट्टी हो जाने से बहुतेरे लोग बेकार रहेंगे और जलूस, सभा तथा हड़ताल मे इतने बेकार लोग हमेशा खतरा पैदा कर सकते हैं। बंगाल की धारासभाओं में ये बातें हुई। पर प्रधान मंत्री मि० सुहरावर्दी ने एक की भी न सुनी—उलटे यह कहा कि शान्ति बनाये रखने के लिए ही छुट्टी दी गई है। उस दिन सवेरे से ही दूकानें बन्द कारवाने में जबरदस्ती शुरू हो गई। उसके साथ-साथ लूट-पाट और खून-खराबा भी जारी हो गया।

सरकार ने १६ और १७ अगस्त के दोपहर तक बलवा रोकने की कोई विशेष कार्रवाई नही की। इस बीच हजारों आदमी कत्ल हो चुके और हजारों मकान लूटे और जलाये गए। उसकी रोक-थाम की कोशिश की गई, पर उपद्रव बहुत आगे बढ़ चुकने के बाद! चार दिनों तक खूब हत्याएं और ज्यादतियां होती रहीं।

सुना जाता है कि छः-सात हजार आदमियों का खून हुआ। सड़कों पर दो-तीन दिनों तक लाशें पड़ी रहीं। तीन हजार से ऊपर लाशें जहां-तहां से

हटाई गई। यह भी खबर है कि बहुत-सी लाशे जमीन के अन्दर के नाले में डाल दी गई, जिनकी दुर्गन्ध से रास्ता चलना कठिन हो गया। इसी तरह जलाये हुए मकानों के अन्दर और हुगली नदी में कितनी लाशें डाल दी गई, इसका पता नही। सुना जाता है कि हावड़ा-पुल पर से बहुतेरे लोग फेंक और ढकेलकर गगा मे डुबा दिये गए। बच्चे, बूढ़े, बेकस स्त्रिया, किसी पर आततायियों ने दया नहीं की—सब उनके क्रूर कर्मों के शिकार बने। आज नवां दिन है। अब हालत सुधर रही है। पर अब भी फौज और पुलिस का कड़ा पहरा है। तो भी इक्के-दुक्के कुछ-न-कुछ हो ही जाता है। इस तरह का कत्ल-आम कलकत्ते में कभी न हुआ था। शायद नादिरशाह के दिल्ली-वाले कत्ल-आम के अलावा और कही भारतवर्ष के इतिहास मे ऐसा नही हुआ। इसका भी ठीक पता नहीं है कि उस कत्ल-आम मे कितने लोग मारे गये थे। लीग के एक प्रमुख नेता सर फीरोज खां नून ने एक बार हाल ही में कहा था कि वह ऐसी हालत पैदा कर देगे जैसी चंगेज और हलाकू खा ने भी नही की थी। लीग की सीधी कार्रवाई का कुछ नमूना लोगो के सामने आ गया। उस दिन और जगहों में भी जहा-तहां कुछ होता नजर आया, पर कहीं कोई विशेष बात नहीं हुई। छोटी-मोटी घटनाएं कलकत्ते के सामने नगण्य है। पर अब सुनने मे आया कि ढाका, बनारस, इलाहाबाद, रानीगज, दिल्ली तथा दूसरे कई स्थानों में इस समय कुछ-न-कुछ हुआ है। कुछ खून-खराबा इन सभी जगहों मे हो रहा है; पर वहां के सरकारी कर्मचारी स्थिति संभालने में लगे है। अब तो मि० सुहरावर्दी भी इस काम मे लगे हुए है और सबसे शांति-स्थापना की अपील कर रहे हैं। हिन्दी कहावत है—"सत्तर चूहे खाकर बिल्ली चली हज को।" कलकत्ते के बलवे के सम्बन्ध में 'स्टेट्स्मैन' जैसे अंगरेजी पत्र ने, जो हमेशा लीग को हिमायत करता रहा है, जोरों से बार-बार लिखा कि लीगी मंत्रिमण्डल शान्ति कायम रखने मे अपने-को अयोग्य साबित कर चुका, उसे हटना चाहिए। इसी प्रकार की बाते इंगलैंड के बहुतेरे पत्रों ने लिखी, जिनमें 'टाइम्स' भी शरीक है। देशी पत्रो की तो बात ही क्या। किन्तु इतने पर भी लीगवालों के कान में जू तक न रेंगी। १९३७-३९ के कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों के विरुद्ध जिन्होंने बिना कारण इतना बावैला मचाया था, वे ही लोग इस अभूतपूर्व हत्याकाण्ड और भीषण अत्याचार पर, जिसके कराने में अगर उनका हाथ साफ-साफ नही रहा तो कम-से-कम जिसपर से चश्मपोशी उन्होंने जरूर की, बिलकुल चुप थे। मि० जिन्ना ने केवल इतना ही कहा कि जिस किसीने बलवा किया हो उसको सजा मिलनी चाहिए और चूंकि उनको पूरी रिपोर्ट नहीं मिली, इसलिए वह यह नहीं कह सकते कि इसमें किसका कसूर है तथा उनको

विश्वास है कि लीगी लोग लीग के हुक्म के विरुद्ध नहीं गये होंगे और यदि कोई गया होगा तो प्रान्तीय लीग उसपर अनुशासन की कार्रवाई करेगी। उनके मुख्य पत्र 'डॉन' ने तो जो कुछ हुआ उसे बहुत थोड़ा बतलाया और देर करके खबरें छापने के अलावा कई दिनों तक इस विषय पर कुछ लिखा ही नहीं। इस दुर्घटना से सारे देश में खलबली मच गई और घबराहट पैदा हो गई। यह भी सुनने में आया कि शुरू में तो हिन्दू ही मारे गये, पर पीछे जब किसी तरह की मदद उनको सरकार की ओर से नहीं मिली तो उन्होंने भी अपना बचाव किया और बाद में तो जितने मरे उनमें शायद अधिक संख्या मुसलमानों की ही होगी। जो हो, चाहे हिन्दू अधिक मरे हों या मुसलमान, इसमें शक नहीं कि मरनेवालों में सबसे अधिक बेकसूर लोग हैं, जो दंगे में शरीक नहीं हुए, पर उसके शिकार बन गये! धन तो करोड़ों का बर्बाद हुआ है—बहुत अंशों में हिन्दुओं का ही धन बर्बाद हुआ और लूटा गया। अभी तक वहां तनातनी है। देखें, आगे कलकत्ते में और दूसरे स्थानों में क्या होता है।

: १६२ :

अस्थायी सरकार के पहले

इधर दरमियानी राष्ट्रीय सरकार की बातचीत चल रही थी, उधर इस तरह का खून-खराबा हो रहा था। वाइसराय और पंडित जवाहरलाल ने निश्चय कर लिया कि इस कारण उस काम मे रुकावट नही पड़नी चाहिए। हम लोगों से राय करके पंडितजी ने वाइसराय को दरमियानी राष्ट्रीय सरकार के लिए नाम दे दिये, इन नामों में मेरा नाम भी था। आज से एक सप्ताह बाद, सितम्बर के आरम्भ से, ये नामजद लोग सरकार का काम संभालने लग जायंगे। आज ही तक यह वृत्तान्त लिखकर समाप्त करना चाहता हूं।

यों तो शिमले में भी मेरा नाम दिया गया था। जैसा ऊपर कह आया हूं, मैं बहुत पसोपेश में था। अन्त मे पूज्य बापू (महात्माजी) के कहने पर मैने उसे मंजूर किया था। मुझे एक नैतिक अड़चन बहुत सता रही थी। वह यह थी कि उस समय लड़ाई चल रही थी। सरकार का भार लेने का अर्थ उस लड़ाई में सहायता देना भी होता था। शिमला-कान्फ्रेन्स के भंग होने के थोड़े ही दिन बाद वह लड़ाई समाप्त हो गई। इसलिए, जब कैबिनेट-मिशन और वाइसराय से इस बार बाते शुरू हुई तो वह नैतिक अड़चन उस रूप में अब नही रही, और पहले भी पंडित जवाहरलालजी ने मेरा नाम कह दिया था। इस तरह १६ जून की योजना में मेरा नाम भी था, पर उसकी नामंजूरी के बाद वह बात टल गई थी। इस बीच में जब फिर यह बात चली तो पहले यह भी सोचा गया कि दरमियानी सरकार में पंडितजी के शरीक हो जाने के बाद मैं ही मेरठ-कांग्रेस के प्रेसिडेण्ट के लिए खाली रखा जाऊं। कुछने यह भी सोचा कि विधान-निर्माण-समिति का सभापति मै ही बनाया जाऊं, मुझे दरमियानी सरकार मे जगह न दी जाय। मुझे इस विषय में किसीसे कुछ कहना नहीं था। जो कुछ भी निश्चय होता, मुझे मंजूर था। पर यदि मेरी अपनी रुचि की बात पूछी जाय तो मैं उन दोनो को अस्थायी सरकार की मेम्बरी से ज्यादा पसन्द करता। पर यह बात मेरी पसन्द पर निर्भर नहीं थी। लोगों ने सब बातों पर विचारकर मुझे यही पद देना उचित समझा। मेरा नाम दे दिया गया है। यह सब निश्चय दिल्ली

में मेरे सामने ही किया गया। मैं आराम करने के लिए पिलानी चला आया था। वहां से एक दिन के लिए जयपुर गया था। जयपुर में ही बुलाहट का तार मिला। वहीं से दिल्ली चला गया। हमारे बीच जब नामों का निश्चय हो गया तो मैं पिलानी चला आया। मैं समझता था कि शायद अगस्त के अन्त तक यहां रह सकूंगा, क्योंकि इसके पहले दरमियानी सरकार में काम उठाने का समय नही होगा। पर यहां पहुंचने पर मालूम हुआ कि तारीख २७ अगस्त (१९४६) को वर्किंग कमिटी की बैठक दिल्ली में होनेवाली है, जिसमे पूज्य महात्माजी भी आ रहे हैं, इसलिए अब वहां २७ अगस्त तक ही पहुंच जाना जरूरी है।

पिछले छब्बीस बरसों मे दिन-रात कांग्रेस के काम में लगा रहा हू। घर पर बीमार होकर ही गया हू। वहां के काम मे, भाई के मरने के बाद ही, कुछ थोड़ा समय कुछ दिनों तक देना पड़ा था, नहीं तो घर के काम से भी एकबारगी अलहदगी रही है। अपने रहने के लिए कही कोई अलग इन्तजाम नही किया। आश्रम मे रहा या जब कही गया तो मित्रों के साथ। पटने में मृत्युञ्जय के डेरे पर दो-चार ही रोज रहा हूं। इस तरह एक ही प्रकार का जीवन कटा है। कभी किसी दफ्तर में बैठकर काम नही किया। कुछ दिनों तक पटना-म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन की हैसियत से दफ्तर का काम किया था, पर वह अनुभव इतना कम और थोड़े दिनों का था कि कोई गिनती नही है। कांग्रेस के दफ्तर का काम सभालना पड़ा है, पर वहां भी दफ्तर से अधिक जन-सम्पर्क का ही काम किया है और जाहिर है कि वह काम बिलकुल दूसरे प्रकार का है। अब एक नये प्रकार के जीवन में प्रवेश करना है। पहले तो अपने लिए अलग खास घर लेना है। उसमें रहने और खाने-पीने आदि का इन्तजाम करना होगा। अब रुपये भी वहां मुशाहरे के मिलेंगे। मालूम नही, इस सम्बन्ध मे कांग्रेस की ओर से क्या आदेश मिलेगा—हम कितना लेगे और उसे किस तरह खर्च करेगे।

इसके बाद जो जटिल समस्याएं सामने पेश हैं, उनका हल किस तरह किया जायगा। मालूम नही, मुझे कौन विभाग मिलेगा। पहले सुनता था कि कृषि-विभाग और अन्न-विभाग मुझे दिये जायंगे। पता नही कि पंडितजी से वाइसराय की जो बातचीत मेरे चले आने के बाद हुई, उसमें मेरे लिए कौन विभाग सोचा गया। यदि वे ही विभाग रहें तो मेरे मन के मुताबिक होंगे, यद्यपि अन्न-संकट बहुत कठिन है और इसका इस समय संभालना आसान नहीं है।

मैं चाहता था कि काम शुरू करने के पहले एक बार पटने और रांची हो आता, पर शायद इसका समय नहीं मिलेगा। रांची जाने की बहुत

जरूरत है। जनार्दन का बच्चा चिरंजीवी सूर्यप्रकाश बहुत दिनों से बीमार है। उसे बीमारी के कारण बम्बई से पटने बुला लिया था। बम्बई और पटने के डाक्टर उसे आराम न कर सके। तब वह रांची भेजा गया है। आज से प्रायः दस महीने हो गये। ढाई बरस का बच्चा बहुत कष्ट पाता आ रहा है। प्रतिदिन ज्वर हो आता है। खासी भी बहुत हुआ करती थी। फेफड़े की कुछ शिकायत थी। पर अब सुनते है कि वह कम है। अब काख में घाव-सा हो आया है। उसको देख लेने की बहुत इच्छा है। जनार्दन भी अब बम्बई अपनी नौकरी पर चले गये है। देखें, क्या होता है। ऐसी स्थिति में नया काम शुरू करना पड रहा है।

नये लोगों का साथ होगा, जिनमे बहुतेरे ऐसे होगे, जिन्होने या जिनके साथियों ने हमको और हमारे साथियो को जेलो मे बन्द रखा—हमारे लोगों के साथ तरह-तरह की सख्तिया की। पर मेरे मन मे किसीके प्रति कोई दूसरा भाव नही है और मैं मानता हू कि मै सबको मिलाकर अपना काम कर सकू। पर सरकार के बाहर भी भारी कठिनाइयो का सामना करना है। न मालूम लीग क्या-क्या करेगी और जनता का रुख क्या रहेगा। यदि हमने सचाई के साथ और निष्पक्ष होकर सबकी सेवा की, तो फल अच्छा ही होगा। अपना इरादा ऐसा ही है। आगे ईश्वर के हाथ में है।

पिलानी
२४ अगस्त, १९४६

परिशिष्ट

मैंने संस्मरण लिखना कब आरम्भ किया और यह कैसे लिखा गया, इसका जिक्र पुस्तक के १५३वें अध्याय में किया है। पुस्तक के अन्त मे यह भी लिखा है कि दरमियानी सरकार के बनने तक का ही हाल इसमें लिखा गया है। आज से प्रायः चार महीने पहले मैंने पुस्तक को पूरा किया था। इस बीच मे बहुत बातें हो गई हैं, जिनका महत्व है और जिनको इस परिशिष्ट के रूप मे दे देना अच्छा प्रतीत होता है।

तारीख २ सितम्बर, १९४६ को दरमियानी सरकार बनी। इसमें बारह मत्री बनाये गए, जिनके नाम थे—सर्वश्री जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, शरतचन्द्र बोस, राजगोपालाचारी, आसफअली, डाक्टर मथाई, जगजीवनराम, सर शफात अहमदखां, सरदार बलदेवसिंह, भाभा, अली जहीर और मैं। सरदार वल्लभभाई पटेल, श्री जगजीवनराम और मैं उस समय बिड़ला-भवन मे ठहरे हुए थे। वहां के लोगों ने मागलिक क्रिया के साथ हमको गवर्नमेण्ट हाउस के लिए रवाना किया। वहा से हम लोग पूज्य गाधी के पास गये और अन्य साथियों के साथ गांधीजी का आशीर्वाद लेकर वाइसराय के पास अपना काम संभालने के लिए गये। वहां नियमानुकूल हमको सौगध लेनी पड़ी। इसमें एक मुख्य बात यह थी कि हम बादशाह जार्ज और उनके वारिसों के प्रति सच्ची वफादारी बरतेंगे।

हमारी सारी जिन्दगी ब्रिटिश साम्राज्य से हिन्दुस्तान को मुक्त कराने में लगी रही है। अन्त मे ब्रिटिश बादशाह की वफादारी की सौगन्ध कहा-तक ठीक है, यह प्रश्न बहुतो के दिलो मे उठा करता है। बात यह है कि ब्रिटिश-विधान मे इस प्रकार की सौगन्ध एक आवश्यक वस्तु है और प्रजातन्त्र का काम प्रजा की मरजी के मुताबिक चलना और चलाना भी वैसा ही आवश्यक अग है। राजा प्रजातन्त्र की सम्मति के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकता और प्रजातन्त्र की सम्मति पार्लमेण्ट द्वारा ही जानी जाती है। प्रधान मन्त्री उस सम्मति के अनुसार ही काम करता है। राजा उसमें हस्तक्षेप नही कर सकता और मंत्रिमण्डल के बनाये हुए भाषण देता है तथा बताये हुए काम को ही करता है। एक विधान-शास्त्री ने लिखा है कि जो भी कागज प्रधान मन्त्री पेश करे, उसपर राजा को दस्तखत करना ही पड़ता है, यहांतक कि यदि उसके सामने राजा को फांसी देने का हुक्मनामा भी

पेश किया जाय तो राजा उसपर दस्तखत करने से इन्कार नहीं कर सकता। इस प्रकार की एक घटना कुछ वर्ष पूर्व हुई भी जब राजा अष्टम-एडवर्ड को, प्रधान मन्त्री बाल्डविन की सम्मति मानकर गद्दी छोड़नी पड़ी। जब वहां का विधान ऐसा है तो भारतवर्ष को स्वतन्त्र बनाने का प्रयत्न इस सौगन्ध के विरोध में नही माना जा सकता है और सब लोगो ने ऐसा ही समझा भी है। यदि बाल्डविन राजा को गद्दी छोडने की सम्मति दे सकते हैं तो भारतीय मन्त्री भी उसे हिन्दुस्तान पर से ब्रिटिश सत्ता हटा देने की सलाह, सौगंध के बावजूद, दे ही सकते हैं। इसलिए दोनो में कोई विरोध नहीं दीखा और हम सबने सौगंध ले ली।

मेरे जिम्मे अन्न और खेती-विभाग दिये गए। अन्न-संकट सारे देश में जबर्दस्त था, विशेष करके दक्षिण के उन हिस्सों में जहा के लोग चावल ही खाया करते हैं। १९४५ में वर्षा बहुत कम हुई और धान की फसल बहुत जगहों में, विशेष करके दक्षिण में, मारी गई। जाड़ों मे भी पानी नही बरसा। इसलिए रबी की फसल भी कम हुई। पहले से, लडाई के जमाने मे ही, अन्न की बहुत कमी हो गई थी, क्योंकि बर्मा से चावल आना बन्द हो गया था। हिन्दुस्तान के कुछ हिस्सों मे वहां के लोगों के खाने के लिए काफी अन्न नहीं होता है। यह कमी बर्मा के चावल से पूरी होती थी। जब उसकी आमद बन्द हो गई तो बड़ी कठिनाई हो गई। बंगाल के भयंकर अकाल के कारणों में यह भी एक था। १९४६ के आरम्भ से ही इसका डर हुआ कि इस साल अन्न की बहुत कमी रहेगी और फिर कहीं अकाल न पड़ जाय। इसलिए भारत-सरकार ने विदेशों से अन्न मंगाने का इन्तजाम सोचा। आजकल दुनिया में अन्न-संकट है, इसलिए एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था बनाई गई है, जो सभी देशों में, जहां कुछ अधिक अन्न मिल सकता है, पता लगाकर उन देशों में उसे पहुचवाने का प्रबन्ध करती है, जहां अन्न की कमी है। इस संस्था में भारतवर्ष भी शरीक है और उससे भारत की ओर से अन्न की मांग की गई।

विदेशों मे और विशेष करके अमेरिका में यहां का समाचार पहुंचा। वहां के भूतपूर्व राष्ट्रपति हूवर सभी देशों में अन्न-संकट की स्थिति देखते-देखते हिन्दुस्तान भी पहुंचे। वे यहां की बुरी हालत से बहुत प्रभावित हुए और मदद देने की सलाह दी। इसके बाद ही कुछ लोग अमेरिका से गैर-सरकारी तौर पर यहां की हालत देखने आये। इनके प्रधान थे डाक्टर शुल्ट्ज, जो कृषि और अन्न-सम्बन्धी समस्याओं के विशेषज्ञ समझे जाते हैं. वह भी यहां की दुर्दशा से बहुत प्रभावित हुए। नतीजा यह हुआ कि अन्तर्राष्ट्रीय संस्था ने भारतवर्ष के लिए अन्न दिया। पर हम जितना चाहते थे

उतना नहीं, उससे बहुत कम। इसका कारण यह था कि उनके पास इससे अधिक देने की शायद गुंजाइश थी ही नहीं, क्योंकि उनको दूसरे देशों को भी देखना था। जिस दिन मैंने इस काम को संभाला, हालत बहुत नाजुक थी और डर मालूम होता था कि किसी-न-किसी दिन अन्न बिना लोग मरने लग जायंगे। देश और विदेश से जो कुछ मिल सकता था, उसे देश के भिन्न-भिन्न भागों में जरूरत के मुताबिक बांटा जा रहा था। आते ही मैंने देखा कि पूज्य गांधीजी ने जो कुछ पहले कहा था, वही ठीक है। उन्होंने कहा था कि विदेशों पर हम बहुत भरोसा नहीं कर सकते, क्योंकि वहां से अन्न लाने में हजारों अडचनें पड़ सकती हैं। हमारे लिए अपने देश और अपने लोगों पर ही भरोसा करना ठीक है। मैंने तुरन्त स्थिति को समझकर इस बात की अपील की कि जिससे जो बन पड़े, अधिक अन्न पैदा करने के लिए करे—जितना कम अन्न खर्च कर सके, करे और जितना बचा करके दूसरों के लिए दे सके, दे।

विदेशों से जो कुछ आ सकता था, उसपर जोर लगाया गया और देश मे जो कुछ मिल सकता था और अन्न के खर्च में जितनी किफायत हो सकती थी, की गई। चिन्ता दिन-रात बनी रहती। यह सब केवल मेरे ही माथ नहीं थी—हमारे विभाग के सभी कर्मचारी हमसे भी अधिक चिन्तित रहते थे, क्योंकि अभी तक अकाल-मृत्यु से बचाने का भार तो उनपर ही था। मैं तो अभी आया था। मुझे इस बात से बड़ी प्रसन्नता हुई कि मेरे विभागों में मेरे और कर्मचारियों के बीच किसी प्रकार का मतभेद नहीं हुआ और सभी मिल-जुलकर अपनी शक्ति-भर संकट से देश को बचाने के काम में लगे रहे। सबसे कठिन समय हम, सितम्बर से दिसम्बर तक के, चार महीने मानते थे। दिसम्बर समाप्त हो गया। ईश्वर की कृपा है कि अबतक कोई अन्न बिना मरा नहीं है। लोगों की खुराक बहुत कम कर दी गई है। जो चावल के सिवा गेहूं-मकई कभी खाते नहीं थे, ऐसे अन्न को किस तरह खाने के लिए तैयार किया जाता है—यह भी नहीं जानते थे, उनको भी हम गेहूं-मकई दे सके है और चावल बहुत कम मात्रा में। इस तरह उनको बहुत कम खुराक मिली है और ऐसी खुराक मिली है, जिसको वह पहले जानते ही नहीं थे। तो भी बावजूद इन कष्टों के उधर लोगों ने बहुत ही साहस और धीरज से संकट का समय काट लिया है। बरसात मामूली तौर पर अच्छी हुई है और धान की फसल औसत है। अब तो धान लोगों की आंखों के सामने है, कहीं-कहीं खलिहान मे आ गया है और कहीं-कहीं तो चावल भी तैयार हो गया है। अब उन हिस्सों के लोगों के लिए, जहां चावल खाया जाता है, भय कम हो गया है। पर गेहूंवाले प्रदेशों की

हालत अब चिन्तित करने लगी है। चावल की कमी के कारण जहांतक हो सका, वहा से गेहूं लेकर चावलवाले प्रदेशों मे दिया गया था। उसे अब वापस करना है। गेहूं की फसल तैयार होने में अभी कम-से-कम तीन-चार महीनो की देर है। इस बीच मे पत्थर-पानी न मालूम कितनी आसमानी आफते आ सकती है। विदेशो से, विशेष करके अमेरिका से जो गेहूं आने की आशा थी, वह पूरी नही हो रही है, क्योंकि वहा जहाजो पर काम करने-वालों की और कोयले की खानो मे हडताल चली है। इसलिए गेहूं की कमी हो रही है। जिस तरह ईश्वर ने चावल-सकट को हटाया, आशा है, इस संकट से भी वही त्राण देगा।

थोड़े दिनो के अनुभव ने मेरा यह विश्वास और भी दृढ कर दिया है कि भारतवर्ष जैसे कृषिप्रधान देश को अपनी खुराक खुद पैदा करनी चाहिए। इसके लिए विदेशो पर भरोसा करना ठीक नही। यह कोई आसान समस्या नही है। हमारी आबादी बढती जा रही है। आबाद होने लायक जमीन अब बहुत नही बची है। बहुत-कुछ आबाद हो चुकी है। पहले भी पांच-छ. करोड मन चावल हर साल बाहर से मंगाना पडता था। अब आबादी बढ जाने से अधिक अन्न की जरूरत हो गई है और बढती जायगी। इस कमी को पूरा करने का प्रयत्न करना कृषि-विभाग का काम है। फिर यह भी जाहिर है कि हमारे लोगो को जो भोजन मिलता है, वह ऐसा नही होना कि उससे उनका स्वास्थ्य उन्नत हो। उसमे बहुत प्रकार की कमी है, जिसे पूरा करना चाहिए। इसलिए अन्न के अलावा दूध, मछली, मास, तेल, घी, फल-मूल, सब्जी इत्यादि सभी चीजो को अधिक मात्रा मे पैदा करना आवश्यक है। मेरी दिलचस्पी इन विषयो मे काफी है और ऐसे प्रयत्न मे दिन-रात लगा हूं कि यह कैसे किया जाय। सरकार तो केवल कुछ मार्ग-दर्शन करा सकती है, सलाह दे सकती है—थोडी-बहुत सहायता कर सकती है। पर काम तो जनता का है। हमारी जनता विशेष करके खेती का काम करती है। उसे ही इस भार को सभालना है। जनता को किस तरह सहा-यता दी जाय कि वह इसे सभाल सके। कृषि-विभाग का प्रधान होने की हैसियत से मुझे इस जवाबदेही को सभालने का प्रयत्न तो करना है। सभी कर्मचारी मदद कर रहे है, पर काम इतना बड़ा और विस्तृत है कि प्राय चार महीनो के बाद भी अभी यह नही कह सकता कि मै यह कहातक कर पाया हूं और कहांतक पूरा कर सकूगा। संकट-निवारण में जनता ने काफी मदद की। मेरी अपील पर हजारों लोगों ने खाना कम कर दिया। उन्होंने निश्चय किया कि समय-समय पर नियमित रूप से उपवास करके अन्न बचायेगे और दूसरे प्रकार से सबने मदद की थी। आशा है, अन्न की पैदा-

वार बढ़ाने में भी उनकी ओर से वैसे ही मदद मिलेगी।

लार्ड वेवल इस बात के लिए बराबर कोशिश मे थे कि मुस्लिम लीग किसी तरह दरमियानी सरकार मे और विधान-परिषद् में शरीक हो जाय। हमारी नियुक्ति के थोडे ही दिनो बाद उन्होंने मि० जिन्ना से पत्र-व्यवहार शुरू किया और एक समय आया जब प० जवाहरलाल नेहरू को उनसे बात-चीत करनी पड़ी। भोपाल के नवाबसाहब भी बीच मे पड़े और इस बात की कोशिश की गई कि कांग्रेस और मि० जिन्ना के बीच कुछ समझौता हो जाय। पर यह प्रयत्न सफल नही हुआ। अन्त मे मि० जिन्ना ने निश्चय किया कि वाइसराय की अनुमति से, कांग्रेस की सम्मति के बिना ही, वह अपने लोगों को दरमियानी सरकार मे भेजेंगे। हमने तीन जगहे खाली कर दीं और मुस्लिम लीग के पाच सदस्यों की नियुक्ति हो गई। इस नियुक्ति के सम्बन्ध मे कुछ बातें लिख छोड़ना बुरा न होगा। १६ जून १९४६ के वक्तव्य मे कैबिनेट-मिशन और वाइसराय ने कहा था कि वही लोग दरमियानी सरकार मे शरीक हो सकेंगे, जिन्होंने १६ मईवाले वक्तव्य को मजूर कर लिया हो और चूंकि उस समय लीग और कांग्रेस दोनों ने ही उसे मान लिया था, दोनों के सदस्यों को लेकर ही दरमियानी सरकार बनाई जा सकती थी। उस समय कांग्रेस उसमे शरीक होने के लिए तैयार नही थी, इसलिए उस समय दर-मियानी सरकार नही बनी। इससे रुष्ट होकर लीग की कान्सिल ने निश्चय किया कि वह अब १६ मई और १६ जून के दोनों वक्तव्यों की स्वीकृति के अपने प्रस्तावों को वापस ले लेती है।

अक्तूबर मे जब लार्ड वेवल ने लीग के मेम्बरों को नियुक्त करना चाहा तो प्रश्न यह हुआ कि क्या लीग ने १६ मईवाले वक्तव्य को मंजूर कर लिया है या नही। उसके मंजूर कर लेने का अर्थ यह है कि वह विधान परिषद् में शरीक होगी और उसकी कार्रवाई को पूरा करेगी। हम लोगों के पूछने पर लार्ड वेवल ने हम लोगों को आश्वासन दिया कि उन्होंने लीग को बता दिया है कि दरमियानी सरकार मे शरीक होने का अर्थ ही है कि १६ मईवाले वक्तव्य को लीग मजूर करती है।

दूसरी बात यह थी कि दरमियानी सरकार मे शरीक होने के पहले हमने यह तय कर लिया कि हम सब कैबिनेट की तरह एकमाथ मिल-जुल-कर काम करेंगे। इसका अर्थ यह होता है कि हम सबकी सम्मिलित जवाब-देही है अर्थात् हरेक मंत्री की कार्रवाई के लिए सारी कैबिनेट जवाबदेह होगी और यदि एक को हटना पड़े या हटाया जाय तो सारी कैबिनेट हटेगी। इस तरह हरेक मत्री अपनी मर्जी और इच्छा के अनुसार काम न करके सब साथ मिलकर काम करेंगे और उनको एक-दूसरे के विरुद्ध फोड़ा न जा

सकेगा। हमने इसी रीति के अनुसार काम भी शुरू किया। हमने समझा, सरकार की रीति में यह एक बहुत बड़ा फर्क होगा, क्योंकि इस तरह वाइसराय को हस्तक्षेप करने का मौका बहुत कम रह जायगा। बात यह है कि किसी एक के साथ हस्तक्षेप का अर्थ सबके साथ हस्तक्षेप हो जाता है और सारा मंत्रिमण्डल टूट जा सकता है।

पहले के एक्जिक्यूटिव-कौन्सिल के लोग अलग-अलग नियुक्त किये जाते थे और एक-दूसरे के साथ उनका सम्पर्क वाइसराय के मार्फत ही होता था और एक के हटने से दूसरों पर असर नही पड़ता था। हमारी नियुक्ति के बाद दफ्तर के कामों और कागजों में मंत्रिमण्डल और उसके सदस्यो को एक्जिक्यूटिव कौन्सिलर और कौन्सिल का सदस्य न कहकर कैबिनेट और कैबिनेट-मेम्बर के नाम का ही व्यवहार किया जाने लगा। सभी कागजो मे, जहां कौन्सिल का नाम था, काट करके कैबिनेट बना दिया गया। हमारी निजी कार्रवाई भी इसीके अनुकूल होने लगी। हम मंत्रिगण प्रतिदिन संध्या के पांच बजे निजी तौर पर मिलते थे और सभी महत्वपूर्ण विषयों पर, चाहे वह किसी भी विभाग के क्यों न हो, बाते कर लेते थे और सबकी राय से निश्चय भी कर लिया करते थे। जब लीग के लोगों के आने की बात चली तो हमने आशा की कि वही तरीका रहेगा। पर ऐसा हुआ नही।

लीग ने आते ही इन दोनों बातों से इन्कार किया। कहा गया कि उसकी ओर से ऐसा कोई वचन नही दिया गया है कि १६ मई के वक्तव्य की नामंजूरी के निश्चय को वह रद्द करेगी और उसने यह मंजूर नही किया है कि दरमियानी सरकार के सदस्य कैबिनेट की तरह काम करेंगे। वे इस बात को मानते हैं कि जैसे पहले की एक्जिक्यूटिव कौन्सिल काम किया करती थी, उसी तरह वे अब भी काम करेंगे। प० जवाहरलालजी के निमन्त्रण देने पर कि वे हमारी संध्यावाली कैबिनेट की निजी बैठक में शरीक हों, उन्होंने इन्कार कर दिया। अब वे लोग और हम लोग वाइसराय की उपस्थिति में जब कभी कैबिनेट की वाजाब्ता बैठक होती थी तभी मिल सकते थे और जो विषय वहां उपस्थित होते थे, उनके सम्बन्ध में जो कुछ कहना-सुनना होता था, वही हो सकता था।

इधर दरमियानी सरकार का काम इस तरह चल रहा था, उधर कलकत्ते के हत्याकाण्ड के बाद सारे देश में बड़ी खलबली मच रही थी। बम्बई, प्रयाग, ढाका इत्यादि अनेक स्थानों में लोगों को छूरे भोंके जा रहे थे और बहुतेरे बेकसूर निरीह लोग हिन्दू या मुसलमान होने के कारण राह चलते मारे जा रहे थे। बिहार के बहुत लोग कलकत्ते में रहा करते हैं। उनमें से

बहुतेरे कलकत्ते के हत्याकाण्ड में मारे गये थे और दूसरी तरह से सताये गए थे। जो भाग करके वापस आये, उन्होंने अपने और दूसरों के दुखड़े सुनाये। इसका असर बिहार के लोगों पर बहुत पड़ता गया। मुजफ्फरपुर जिला के बेनीवाद गाव से खबर उड़ी कि वहां कोई मुसलमान एक हिन्दू स्त्री को कलकत्ते से जबरदस्ती ले आया है। हिन्दुओं की एक भीड उस गांव में गई और कई मुसलमानों को उसने मार डाला और कितनों के घर जला दिये। खबर मिलने पर वहां के लोगों के साथ सरकार ने सख्ती की और बहुतेरे गिरफ्तार किये गए और सामूहिक जुर्माना दिया गया। इस घटना की खबर फैलने पर मुसलमानों मे अशान्ति फैली। कुछ दिनों के बाद जोरों से खबर आई कि नोआखाली और त्रिपुरा जिलों मे, जहां मुसलमानों की बहुत आबादी है, मुसलमानों ने हिन्दुओं पर हमला शुरू कर दिया। बहुतेरे मारे गए और गाव-के-गाव, जहा हिन्दू रहते थे, जला दिये गए और हजारों की तादाद मे हिन्दू जबर्दस्ती मुसलमान बना लिये गए। बहुतेरी स्त्रियो के साथ जबरदस्ती शादी कर ली गई और बहुतेरी भगा या चुराकर अन्यत्र हटा दी गई। ये बकाया दो जिलों के कई थानों में फैले हुए थे। पहले तो ठीक पता नही चला कि इसका फैलाव कितना है। हजारों की तादाद मे हिन्दू अपने घर-द्वार को छोडकर अथवा सब-कुछ बर्बाद होने और लुट जाने या जला दिये जाने के बाद भाग करके शहरो मे और दूसरे स्थानों मे आश्रय लेने आये। उन इलाकों मे किसी भी हिन्दू के लिए जाना कठिन था, क्योंकि इलाके-भर का महासरा कर लिया गया था। वहा की सरकार की शिकायत होने लगी कि उसने बलवाइयो को रोकने का कोई समुचित प्रबन्ध नहीं किया और जैसे कलकत्ते मे बलवाइयो को छोड़ दिया गया था वैसे ही वहा भी छोड़ दिया गया कि वे मनमानी करे। यह काण्ड कई दिनों तक चलता रहा। वहा के और कलकत्ते के काण्ड मे एक बहुत बड़ा अन्तर यह था कि कलकत्ते में हिन्दुओं की आबादी बहुत ज्यादा है, लेकिन नोआखाली और त्रिपुरा में मुसलमानों की। इसलिए कलकत्ते मे शुरू मे तो हिन्दू खूब पिटे, पर पीछे उन्होंने अपना बचाव जोरों से किया। नोआखाली और त्रिपुरा में ऐसा नही हो सका, क्योंकि वहां हिन्दू बहुत कम और कमजोर थे। इन घटनाओं की खबर देश-भर में फैल गई और चारों ओर हिन्दुओं में बडा रोष पैदा हुआ।

इन घटनाओं का नतीजा यह हुआ कि हिन्दुओं में प्रतिशोध की भावना भर गई। उधर मुस्लिम लीग के नेता लोग और समाचार-पत्र दिन-प्रतिदिन जहर उगला करते थे और हिन्दुओं को युद्ध के लिए ललकार रहे थे। पं० जवाहरलालजी पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में सरकार के मंत्री की हैसि-

यत से सफर करने गये। वहां के सरकारी राजनैतिक विभाग के कर्मचारी सीधे वाइसराय की मातहती मे काम करते थे। कुछ हिस्सों मे गलत प्रचार से लोगो को उभाड़ा गया और कुछ आदमियो ने पडितजी तथा बादशाह खान के साथ केवल बदतमीजी ही नही की, बल्कि और तरह की ज्यादतिया की। एक जगह तो इतना जबर्दस्त हमला हुआ कि उन लोगो की जान किसी तरह से बची और बादशाह खान के हाथ मे इतनी चोट आई कि हड्डी टूट जाने के कारण महीनो तक पट्टी बाध रखने की जरूरत हो गई। पर बावजूद इस तरह की दुर्घटनाओ के पडितजी की यात्रा बहुत सफल रही और वहा के लोगो ने उनका बहुत स्वागत किया—प्रेम और उत्साह दिखलाया। इस बात का भी असर देश के हिन्दुओ पर काफी पड़ा। उनको ऐसा जान पड़ा कि मुस्लिम लीग हिन्दुओ को ब्रिटिश के साथ मिल करके दबाना चाहती है और दबाती जा रही है।

बिहार मे भारी बलवा शुरू हो गया। कई जगहो मे छोटी-मोटी घटना को लेकर हिन्दू बड़ी तादाद म मुसलमानो के गावो पर हमला करने लगे। पटना-जिले के कई थानो के कितने ही मुसलमान मारे गए और कितनो के साथ क्रूरता का व्यवहार किया गया। यह आग मुगेर और गया जिलो के कई थानों तक पहुंच गई। छपरा में इसका आरम्भ ही हुआ था, जहा पहले शहर मे और पीछ गावो मे बहुतेरे मुसलमान मारे गए। दिल्ली में इन दुर्घटनाओ की खबर मिली। पडित जवाहरलाल और सरदार वल्लभभाई—जो बगाल की हालत देखने कलकत्ता गये थे—पटने मे वापसी के समय रुक गये। उनके साथ मि० लियाकतअली और सरदार निश्तर भी गये थे। वे लोग भी रुक गये। सरदार वल्लभभाई और मि० लियाकतअली तो दिल्ली के काम से वापस आ गये, पर पंडित जवाहरलाल और सरदार निश्तर विहार मे ठहर गये। मैं भी हवाई जहाज से वहां पहुंचा। हमारे मंत्रिमण्डल के लोग बहुत जोरों से दौड़-धूप कर रहे थे और पुलिस से जहातक हो सकता था, बलवा रोकने का प्रयत्न कर रहे थे। फौज की मदद भी मागी थी, जो कुछ देर के बाद पहुंची। पंडित जवाहरलाल और मैं दोनो दौड़-धूप करने लगे। उधर जब गाधीजी को खबर मिली तो उन्होंने घोषणा की कि यदि बिहार में बलवा न रुका तो वह आमरण अनशन करेंगे। इस समय गांधीजी नोआखाली में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच पुनः सद्भाव स्थापित करने के लिए गये हुए थे। वही से उन्होंने यह घोषणा की। नतीजा यह हुआ कि बिहार में बलवा एकबारगी जल्द बन्द हो गया। पर जितना हो चुका था वह बहुत भयंकर था। कितने मारे गए, इसका ठीक पता अभीतक नही लगा है, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनकी संख्या हजारों की है।

मुस्लिम लीग के लोगों ने तो बहुत बढा करके सख्या बताई है और मि० जिन्ना ने ३०,००० के आकड़ों को घोषित किया। यह तो बिलकुल गलत है और मेरे अनुमान मे इसके दशमांश को मान लेना गलत न होगा। संख्या जो भी हो, इसमें शक नही कि बहुत जुल्म और क्रूरता की गई, जिसके लिए सबको लज्जित होना चाहिए। आपस के मेल-जोल के प्रयत्न मे बड़ा धक्का लगा। इन बलवों के कारण हजारो की तादाद मे मुसलमान भाग करके शहरों और ऐसे स्थानों मे, जहा वे अपनेको सुरक्षित समझते है, आ गये हैं। वहा उन लोगो के रहने, खाने इत्यादि का प्रबन्ध सरकार कर रही है और मुस्लिम लीग के बहुतेरे काम करनेवाले पहुच गये है। बलवा तो चन्द दिनो के बाद ही रुक गया, पर उसका नतीजा तो अभीतक आखो के सामने है और बहुत दिनो तक रहेगा।

इसी तरह की भयंकर घटना मेरठ-जिला के गढ़मुक्तेश्वर के मेले के समय हो गई। वहा भी बहुतेरे मुसलमान मारे गए और पीछे मुसलमानों ने हिन्दुओं से उसका कुछ बदला चुकाया। इस समय खबर है कि सीमाप्रान्त में भी, हजारा जिले मे, कुछ कबीलो का लश्कर हिन्दुओं पर हमले कर रहा है। बहुतेरे शहरो मे छुरेबाजी तो कम-बेश जारी है ही। एक भयंकर स्थिति है।

इस बार मेरठ मे ही कांग्रेस होने की बात थी। जब गढमुक्तेश्वर की दुर्घटना हुई तो ऐसा शक होने लगा कि वहा कांग्रेस नही हो सकेगी। पर स्थिति सभल गई और कांग्रेस का जलसा हुआ। हा, जो समारोह होने को था, वह नही हुआ। कांग्रेस के साथ होनेवाली प्रदर्शनी और अनेकानेक दूसरी सस्थाओं की सभाएं नही हुई। कांग्रेस मे भी दर्शको को आने से रोक दिया गया और केवल प्रतिनिधियो को ही आने दिया गया तो भी समारोह तो हो ही गया और कुछ-न-कुछ दर्शक आ ही गये। आचार्य कृपालानी के सभापतित्व में सफलतापूर्वक कांग्रेस समाप्त हुई। महत्व के दो प्रस्ताव हुए। एक मे भारतवर्ष मे प्रजातन्त्र कायम करने की बात कही गई और दूसरे में विधान-परिषद् को विधान-सम्बन्धी आदेश दिये गए।

हम दिल्ली से ही मेरठ गये थे। वहा से लौटते ही मालूम हुआ कि इंगलैंड के मंत्रिमण्डल ने कांग्रेसी नेता प० जवाहरलाल और वल्लभभाई को, सिखों के नेता सरदार बलदेवसिंह को और लीग के नेता मि० जिन्ना तथा मि० लियाकतअली को बुलाया है। हम लोगों की समझ में यह नही आया कि हमको क्यों बुलाया जा रहा है, क्योकि हमने तो १६ मईवाले वक्तव्य को मान करके काम शुरू कर ही दिया। केवल लीग ने अभीतक अपनी अस्वीकृति के निश्चय को नही बदला था। अब विधान-परिषद् की बैठक

का समय नजदीक आ गया था, क्योंकि ९ दिसम्बर से होनेवाली थी और यह बात २७ नवम्बर को पेश हुई थी। हम लोगों ने तो पहले यह कहा कि हमारे जानते वहां जाने की कोई जरूरत नही है, क्योंकि हमारा मतभेद विलायती मंत्रिमण्डल के साथ १६ मई के वक्तव्य के अर्थ के सम्बन्ध मे था। वह उनको मालूम ही था और वहां जाने से उसमें कोई फर्क नही पड़नेवाला है, पर तो भी यदि वे बुलावेंगे ही तो हम चले जायंगे। प्रधान मत्री मि० एटली का तार आया कि जरूर आइये और ९ दिसम्बर तक विधान-परिषद् की कार्रवाई शुरू होने के पहले ही वापस चले जाइये। लीग ने पहले तो जाने का निश्चय कर लिया, पर जब मि० जिन्ना को मालूम हुआ कि कांग्रेस को कुछ आश्वासन दिया गया है तो उन्होने जाने से इन्कार कर दिया। वह उस समय करांची मे ही थे। वाइसराय वहा पहुचे और दोनो मे कुछ बातें हुईं और वह भी जाने के लिए तैयार हो गये। इस प्रकार प० जवाहरलाल, सरदार बलदेवसिंह, मि० जिन्ना और मि० लियाकत-अली वाइसराय के साथ हवाई जहाज से इगलैंड गये।

कैबिनेट-मिशन और वाइसराय ने बार-बार आश्वासन दिया था कि १६ मई के वक्तव्य में कोई परिवर्तन या परिवर्धन नहीं किया जायगा। पर इस बार उन्होने उसमे परिवर्धन और परिवर्तन दोनों ही किये और यद्यपि यह कहा गया है कि केवल उस वक्तव्य का अर्थ साफ कर दिया गया है और उससे कुछ भी ज्यादा नही किया है, फिर भी इसमें शक नही कि कुछ नई बातें कही गई और कुछ पहले कही गई बातो में जोड़ा गया। लन्दन में जो बातचीत हुई, उसका नतीजा तारीख ६ दिसम्बर १९४६ का वक्तव्य है, जिसके सम्बन्ध में उपर्युक्त परिवर्तन और परिवर्धन की बाते कही गई है। इस सम्बन्ध में विचार करके अपनी राय प्रकट करने के लिए अखिल भारतीय कमिटी की एक विशेष बैठक बुलाई गई।

९ दिसम्बर को विधान-परिषद् की बैठक का निश्चय कर दिया गया था और उसके सदस्यों के पास निमन्त्रण भेज दिये गए थे। इसलिए वह बैठक की गई। उसकी बैठक के लिए केन्द्रीय धारा सभा के चौगोल में एक भाग, जिसमें पुस्तकालय था, खास तौर पर बहुत अच्छी तरह सजवा करके तैयार किया गया था। विशेष करके उसमें ऐसा प्रबन्ध किया गया था कि सदस्यों को बोली की प्रतिध्वनि, जो ऐसी इमारतों में स्वाभाविक है, न होने पावे। इसके लिए अनेक प्रकार के वैज्ञानिक प्रबन्ध किये गए और सदस्यों को दिल्ली की सरदी से बचाने के लिए स्थान को गर्म रखने का प्रबन्ध था। वहां ९ दिसम्बर से विधान परिषद्-का काम शुरू हुआ।

इसके सम्बन्ध में पहला प्रश्न यह उठा था कि जबतक स्थायी सभापति

का चुनाव न हो जाय तबतक परिषद् की कार्रवाई का संचालन कौन करे। निश्चय हुआ कि सदस्यों में जो सबसे अधिक वयोवृद्ध हों, वही अस्थायी सभापति हों। हमारे बिहार के डाक्टर सच्चिदानन्दसिंह ही सबसे अधिक वयोवृद्ध निकले। इनकी उम्र और हरिसिंह गौड़ तथा श्री प्रकाशम् की अवस्था में थोड़ा ही अन्तर था, पर वह सबसे बड़े निकले। इसलिए उन्होंने ही सभापति का आसन ग्रहण किया और दो-तीन दिनों तक—जबतक स्थायी सभापति का चुनाव नहीं हुआ, बड़ी खूबी के साथ काम चलाया।

अब यह प्रश्न उठा कि स्थायी सभापति किसको नियुक्त किया जाय। ऊपर कह चुका हूं कि दरमियानी सरकार में हम लोगों की नियुक्ति के पहले विचार हुआ था कि मुझे इस काम के लिए रख छोड़ा जाय और दरमियानी सरकार में मुझे न भेजा जाय। पर अन्त में यह विचार बदल दिया गया और मुझे वहां नियुक्त कराया गया। इगलैंड जाने के पहले हम लोगों ने पं० जवाहरलालजी से बातें की थी और सोचा गया था कि कांग्रेस के बाहर के किसी योग्य व्यक्ति को ही चुनना ठीक होगा। सर गोपालस्वामी आयंगर का नाम भी सामने आया था। वह योग्य और अनुभवी व्यक्ति है और इस विषय में उन्होंने काफी दिलचस्पी ली थी। वह कांग्रेस के नहीं थे, तथापि चुने जाने में कांग्रेसी सदस्यों ने उनकी मदद की थी। जब परिषद् के इजलास के लिए लोग आने लगे तो सदस्यों का विचार हुआ कि मुझे यह पद दिया जाय। उन्होंने आपस में बातें की और मालूम हुआ कि बहुत लोगों की यही इच्छा थी। मुझे पहले इसका पता नहीं था, पर लोग एक-एक करके मेरे पास पहुंचने लगे और जोर देने लगे कि मैं इस पद को स्वीकार करूं। मेरे सामने बड़ी कठिनाई यह थी कि दो विभागों का काम मेरे जिम्मे था और वह मेरे लिए काफी था। उसपर यह काम भी उठाना बहुत भारी हो जायगा। मैंने इस विचार से इसे पहले इन्कार कर दिया। वर्किंग कमिटी में यह बात पेश हुई और मैंने यह प्रश्न उपस्थित किया कि यदि मुझे यह पद लेना पड़े तो दरमियानी सरकार में से मुझे मुक्त कर दिया जाय। इसपर कोई राजी न था। परिषद् के सदस्य इस बात पर तुल गये थे कि मुझे ही यह भार दिया जाय। अन्त में मजबूर होकर और डरते-डरते मैंने इस भार को भी लेना मंजूर किया। मेरा नाम पेश हुआ और मैं सर्वसम्मति से चुना गया। लोगों ने बधाई देते समय मेरे सम्बन्ध में बहुत-कुछ कहा। पर मैं तो भार से दबा जा रहा था और अब भी वही हालत है। इधर तो चन्द दिनों की ही बैठक रही है। काम चला लिया है और विशेष करके कोई विरोध या जटिल प्रश्न अभी तक सामने नहीं आया है। देखें आगे कैसे निभता है। ईश्वर ही चलायेगा।

ऊपर कहा गया है कि ६ दिसम्बर के वक्तव्य पर विचार करने के लि अखिल भारतीय कमिटी की बैठक बुलाई गई। वह ५-६ जनवरी १९४७ को हुई और उसने निश्चय किया कि १६ मईवाले वक्तव्य का जो अर्थ ६ दिसम्बर के वक्तव्य में लगाया गया है, उसीके अनुसार काम किय जाय। हां, किसी सूबे या भाग के साथ जोर-जबर्दस्ती हम बर्दाश्त नहीं करेंगे और जब कभी ऐसा होता दीखेगा तो हम उसके विरोध में जो उचित समझेंगे, करेंगे। देखें अब भी मुस्लिम लीग विधान-परिषद् में शरीक होती है या नहीं। उसे या ब्रिटिश सरकार को अब कांग्रेस के साथ कोई शिकायत १६ मई के वक्तव्य के सम्बन्ध में नहीं रहनी चाहिए। पर देखना है वह करते क्या है।

इधर तो विधान-परिषद् की बैठक होने लगी, उधर मैंने काशी-हिन्दू विश्वविद्यालय में दीक्षान्त भाषण देने का पहले से ही वचन दे रखा था उसके लिए १५ दिसम्बर को वहां जाना पड़ा। हवाई जहाज से पंडित जवाहरलालजी के साथ वहां गया। उनको डाक्टर की उपाधि दी गई और मैंने दीक्षान्त भाषण दिया। हिन्दू-विश्व-विद्यालय तीस बरसों से चल रहा है। आरम्भ में पूज्य मालवीयजी का विचार था कि वहां हिन्दी द्वारा ह शिक्षा दी जाय। पर विश्व-विद्यालय की स्थापना के समय उनको परि स्थिति से मजबूर होकर यह विचार बदल देना पड़ा था और अंगरेजी को माध्यम बनाना पड़ा था। नागपुर की नई युनिवर्सिटी ने निश्चय कर लिया है कि वहां शिक्षा का माध्यम हिन्दी और मराठी हो। बहुत लोग को हिन्दू-विश्वविद्यालय की यह त्रुटि बहुत खटकती है। उसकी रजत जयन्ती के समय महात्मा गांधीजी ने हिन्दी के अभाव और अंगरेजी के प्राचुर्य की टीका की थी। मैंने अपने भाषण में इस बात पर जोर दिया कि अब कोई कारण नहीं है कि हिन्दी को माध्यम क्यों न बनाया जाय, क्योंकि अब पाठ्य-पुस्तकों की कमी नहीं है और जो कमी हो भी वह शीघ्र पूरी की जा सकती है। मैं जहांतक समझ सका, उपस्थित जनता ने इसे पसन्द किया। मालूम नहीं, अधिकारी लोगों का क्या विचार होगा।

इस बार विश्वविद्यालय का समावर्तन संस्कार एक बड़ी विशेषता और महत्व रखता है। इसके निर्माता, कर्ता-धर्ता महामना पूज्य पंडित मदनमोहन मालवीयजी का देहावसान हाल ही में हो गया। एक महान् कर्मठ योगी संसार से चला गया। विश्वविद्यालय तो चिरकाल तक उनका स्मारक बना रहेगा ही। पर स्वराज्य-प्राप्ति के प्रयत्न में भी उनका हिस्सा उतना ही बड़ा रहा। वह तीन बार कांग्रेस के सभापति हुए थे और मतभेद रहते

भी उन्होंने कांग्रेस को कभी नहीं छोड़ा। जब-जब कांग्रेस कठिनाई में पड़ी, उन्होंने अदम्य उत्साह के साथ उसकी सहायता की।

हिन्दू महासभा के तो मालवीयजी एक प्रकार से जन्मदाता और प्राण ही थे। धार्मिक उत्थान के लिए हिन्दुओं की उन्होंने जो सेवा की वह अवर्णनीय है। सभी देश-सेवकों के साथ प्रेम और दया का भाव उनके लिए स्वाभाविक था। उनके उठ जाने से एक प्रकार से देश सूना हो गया है। उनके अन्तिम दिन कुछ विपत्तियों के कारण दुःखपूर्ण हो गये थे। ज्येष्ठ पुत्र पं० रमाकान्त मालवीय की मृत्यु से बहुत धक्का लगना स्वाभाविक था, पर अन्तिम दिनों तक वह देश को नहीं भूले और आज की परिस्थिति से चिन्तित और प्रसन्न दोनों ही थे। उनके जीवन से हमको बहुत-कुछ सीखना है और वह हमारे सामने मार्गप्रदर्शक का काम करता रहेगा।

इसी प्रकार की एक भारी क्षति बिहार में पूज्य बाबू ब्रजकिशोरप्रसाद की मृत्यु से हुई है। इधर अस्वस्थता के कारण कई बरसों से वह सार्वजनिक कामों में भाग लेने से बिलकुल असमर्थ हो गये थे और देश तथा सूबे को उनकी सेवा से वंचित हो जाना पड़ा था। पर जो सेवाएं वह पहले कर चुके थे, उनको स्मरण करके कोई भी देशवासी और विशेष करके बिहारी इस क्षति से दुःखित हुए बिना नहीं रह सकता। मेरे लिए तो यह बड़ी चोट है। वह तीक्ष्ण बुद्धि, अटल दृढ़ता और पैनी दूरदर्शिता, वह महान् त्यागशक्ति और निःस्पृहता, वह अनुपम प्रसिद्धि से बचने का निश्चय, वह निर्भयता कहां देखने को मिलेगी? जब हम बिहार के लोग सार्वजनिक जीवन को केवल मनोरंजन का साधन मान करके उसमे कुछ थोड़ा समय लगा देना ही काफी समझते थे, उन्होने हमारे सामने अखण्ड सेवा की बात रखी और हममें से बहुतेरों को उस व्रत में व्रती बनाया। हममें जब कभी कमजोरी आई तो उन्होने अपने अटल निश्चय से हमको अनुप्राणित किया और व्रत में ढीलापन लाने से बचाया। किसानों की सेवा का आरम्भ उन्होंने उस समय से किया जब नीलवरों का बोलबाला था और उनके विरुद्ध आवाज उठाना खतरे से खाली नहीं था। जब मैंने एण्ट्रेन्स की परीक्षा पास की थी तभी से उनका प्रेम मेरे साथ हो गया था और मेरे जीवन की प्रत्येक कठिन घड़ी मे वह बराबर सहायता करते रहे। उस सम्बन्ध ने इधर उनकी पुत्री के साथ मृत्युञ्जय के विवाह के कारण कुछ और रूप भी धारण कर लिया था। पर सार्वजनिक जीवन में इसका कोई असर नहीं था। भाई की मृत्यु के बाद वह एक प्रकार से मेरे घर के कारबार में भी मदद देने लगे थे और देते रहते यदि स्वयं अस्वस्थ होकर अक्षम न हो जाते। इसलिए उनके देहावसान का समाचार सुनकर मैं दिल्ली में बहुत दुःखी हुआ। पर महात्माजी

ने जो सान्त्वना का तार उनके पुत्रों को भेजा था, वह मेरे लिए भी सहायक हुआ। उन्होंने लिखा था कि उनके शरीर की जो दुरवस्था हो गई थी, उसमें उनका देहावसान सुखद होना चाहिए, न कि दुःखद और आत्मा तो अ है ही। उसके लिए चिन्ता करना व्यर्थ है। बात ठीक है और जैसा क उनको देखकर हुआ करता था, वह अब नहीं होगा। ईश्वर उनके लड़कों की मदद करे।

उनके श्राद्ध के अवसर पर मृत्युञ्जय की स्त्री, विद्यावती दरभंगे, जहां उसके भाई और माता है और जहा उनकी मृत्यु हुई थी, गई। मृत्युञ्जय भी गये थे, पर श्राद्ध के बाद उसे वहां छोड़कर पटने चले आये। चन्द दिन के बाद ही न मालूम उसको क्या हो गया और वह एकाएक एक-दो की बीमारी मे ही चल बसी। मृत्युञ्जय बीमारी की खबर पाते ही पटना से दरभगा के लिए रवाना हुए, पर उनको रास्ते मे ही उसके देहान्त की खबर मिल गई। मैं बिहार मे हिन्दु-मुस्लिम दंगों की खबर पाकर पटने जा रहा था और रवाना होने के समय समाचार मिला। मै वहा चला गया। बच्चो का कोलाहल और स्त्रियों का रोना-पीटना सुना। मृत्युञ्जय उसी दिन दरभंगा गये हुए थे। दो दिनों के बाद वहां से दाह-क्रिया करके लौटे। मैं पटना जिला के गांवों मे हिन्दू-मुस्लिम-दंगा रोकने के काम मे लगा रहा। जहां इतने लोग मारे गए थे और इतने घरो मे शोक और कोलाहल था वहां अपना शोक एक प्रकार से शर्माकर दब-सा गया। मैं पटने मे बहुत दौड़-धूप के कारण बीमार पड़ गया। इससे चन्द दिनो तक ठहर जाना पडा। इसी बीच श्राद्ध का काम भी समाप्त हुआ।

एक-दो महीनों के अन्दर यह दूसरा शोक था। राची में बहुत दिनों तक कष्ट सहकर बच्चा प्रकाश चला गया। जब बीमारी बहुत बढ़ी तो मुझे टेलीफोन से दिल्ली में खबर दी गई। मैं जाने की तैयारी कर ही रहा था कि खबर आई कि वह चला गया। यह बहुत मोटी चोट थी। उसका बड़ा भाई मोहन बारह बरस पहले चला गया था। वह घाव अभी तक मौजूद है और जब याद आती है तो आसू आ ही जाते हैं। अब यह दूसरी चोट निर्दय काल ने लगाई। पर किया क्या जाय ? जनार्दन और चन्द्रमुखी तथा भाई-बहू की दशा क्या कहूं। इन बच्चों को चले जाना ही होता है तो आते ही क्यों हैं ? भगवान की लीला समझ में नही आती। एक तरफ विपत्ति-पर-विपत्ति और दूसरी तरफ एक-पर-एक काम के बोझ का बढ़ता जाना। इतना भी समय नहीं मिलता कि दुःखी परिवार के लोगों के साथ कुछ समय बिताऊं। पर मैं जानता हूं कि इसमें भी ईश्वर का ही हाथ है। वह जो चाहे करे और करावे।

दिल्ली का जीवन कई बातों मे नया जीवन है। दफ्तर का काम करने का पहले-पहल मौका हुआ है। सुना है कि लोग मेरे काम से सन्तुष्ट हैं। अभीतक देश जो अन्न-संकट मे पडा रहा है, उससे रिहाई तो नहीं हुई है, पर कुछ हालत सुधरी जरूर है। दक्षिण मे चावल की कमी के कारण जो भय था, वह अब कम हो गया है, पर उत्तर में गेहूं की कमी के कारण बढ़ता जा रहा है। मैं नही जानता कि मैंने खास क्या किया, जिसके लिए मुझे बधाई या ख्याति मिलनी चाहिए। पर लोग सन्तुष्ट है और अनेकों मानते हैं कि मैंने परिस्थिति को संभाला है। यदि कर्मचारी और जनता साथ न देती तो कोई भी कुछ नही कर सकता था। मै तो कर ही क्या सकता था? यहां जीवन मेरे लिए बिलकुल एक नया अनुभव है। मकान बहुत बड़ा है, पर उसमें जगह बहुत कम है, क्योंकि कमरे बड़े-बड़े पर संख्या में कम है। अहाता बहुत बड़ा और फूलों से सुसज्जित है। तरकारी की खेती की गई है और अपनी उपजाई तरकारी हम लोग इस्तेमाल कर रहे हैं। पर खर्च काफी पड़ता है। जब से आया हूं, इतना व्यस्त रहता हूं कि मित्रों से मिलने-जुलने का भी समय नही मिलता। कही आना-जाना तो बहुत मुश्किल से हो सकता है। अब तो और भी कठिनाई बढ गई। पर ईश्वर की दया है कि स्वास्थ्य काम दे रहा है और अभीतक कोई ऐसी हालत नहीं हुई है कि काम रोकना पड़े। यदि स्वास्थ्य ने साथ दिया, जैसा अभीतक रहा है, तो ईश्वर चाहेगा तो विधान-परिषद् के अध्यक्ष का काम भी किसी तरह से चला ले जाऊंगा।

दिल्ली,
८ जनवरी, १९४७